प्रकाशक
विश्वरंजन,
सरस्वती-सदन, मसूरी

प्रथम संस्करण मार्च, १९५०
परिवर्धित दूसरा संस्करण १९५१
संशोधित तृतीय संस्करण १९५६

मुद्रक
सुरेन्द्र प्रिंटर्स प्राइवेट लि०,
सदर बाजार, दिल्ली।

प्रारम्भिक शब्द

'यूरोप का आधुनिक इतिहास' के दूसरे मस्करण के समान इस तृतीय सस्करण मे भी मैने अनेक मशोधन किये है। मुझे आशा है कि पाठक इस नये सस्करण को पहले की अपेक्षा भी अधिक उपयोगी पाएगे।

स्वतन्त्रता के वाद भारत मे अन्य देशो का इतिहास पढने की रुचि वढ रही है। ज्ञान, विज्ञान, राजनीतिक मगठन आदि के क्षेत्र मे यूरोप अव भी ससार का अग्रणी है। ससार की आधुनिक मभ्यता का विकास यूरोप मे ही हुआ है। अत उसके इतिहास का अध्ययन न केवल विद्यार्थियो अपितु सर्वसाधारण पाठको के लिये भी वहुत उपयोगी है। स्वतन्त्र भारत का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे महत्त्व निरन्तर वढ रहा है। इस कारण भी भारतीय पाठको के लिये देश विदेश की आधुनिक प्रगति से परिचित रहना अत्यन्त आवश्यक है। इसी दृष्टि से मैने इस पुस्तक मे यूरोप का (उसके निमित्त से अन्य महत्त्वपूर्ण देशो का भी) १९५५ तक का इतिहास दे दिया है, जिसके कारण इस नये मस्करण की उपयोगिता और भी अधिक बढ गई है।

मुझे प्रसन्नता है कि पाठको ने मेरे इस इतिहास को पसन्द किया है। पाच-छ साल के स्वल्प काल मे तीसरे सस्करण का प्रकाशित होना इसका स्पष्ट प्रमाण है। यद्यपि पिछले सालो मे यूरोप के इतिहास पर अन्य भी अनेक पुस्तके हिन्दी मे प्रकाशित हो चुकी है, पर इस इतिहास का अपना जो विशिष्ट स्थान है, उसमे उनसे कोई अन्तर नही आया। नये सस्करण मे अनेक अध्यायो व प्रकरणो के क्रम मे जो कतिपय परिवर्तन किये गये है, उनको पाठक अधिक उपयोगी पाएगे, यह मेरा विश्वास है।

—सत्यकेतु विद्यालकार

निवेदन

स्वतन्त्र भारत के शासन-विधान मे यह बात स्वीकृत कर ली गई है, कि हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा है, और अधिक से अधिक पन्द्रह सालो मे भारत की संघ-सरकार, अपने प्राय सभी कार्य हिन्दी मे करने लगेगी। भारतीय संघ के अन्तर्गत अनेक राज्य हिन्दी को अपनी राजभाषा स्वीकार कर चुके है। अनेक विश्वविद्यालयो मे उच्च शिक्षा भी हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाने लगी है।

इस दशा मे हिन्दी के लेखको व प्रकाशको पर विशेष उत्तरदायित्व आ गया है। अब यह आवश्यक हो गया है, कि इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, रसायन, भौतिक विज्ञान आदि सभी आधुनिक विषयो पर उच्च से उच्च ज्ञान हिन्दी मे उपलब्ध हो। हिन्दी का साहित्य-भण्डार विविध वैज्ञानिक व आधुनिक विषयो की उच्च कोटि की पुस्तको से इतना अधिक परिपूर्ण हो जाय, कि किसी को यह कहने का अवसर न रहे, कि साहित्य की कमी के कारण हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने व सरकारी कार्यो के लिये प्रयोग करने मे रुकावट होती है। हमारा प्रयत्न यह है कि विविध विषयो पर उच्च कोटि की पुस्तके हिन्दी मे तैयार कराके उन्हे प्रकाशित करे। 'यूरोप का आधुनिक इतिहास' इसी मार्ग पर हमारा पहला कदम था। हमे इस बात की प्रसन्नता है, कि हिन्दी-ससार ने हमारी इस पुस्तक का समुचित आदर किया। इस इतिहास का पहला सस्करण हमने मार्च, १९५० मे प्रकाशित किया था। वह अठारह मास के स्वल्प काल मे बिक कर समाप्त हो गया था, और नवम्बर, १९५१ मे उसका द्वितीय सशोधित व परिवर्धित सस्करण हमने प्रकाशित किया था।

अब हम इस इतिहास के तृतीय (सशोधित व परिवर्धित) सस्करण को पाठको की सेवा मे उपस्थित कर रहे है। इसमे लेखक ने पुस्तक का भलीभाति सशोधन कर दिया है, और अनेक स्थलो पर पाठ्य-सामग्री को घटा बढा दिया है।

विद्यार्थियो की सुविधा को दृष्टि मे रखकर हम नये सस्करण को तीन विभिन्न प्रकार मे प्रकाशित कर रहे है। आगरा यूनिवर्सिटी ने बी० ए० की परीक्षा के दो खण्ड कर दिये है। प्रथम खण्ड मे १७८९ से १८७१ तक का इतिहास रखा गया है, और दूसरे खण्ड मे १८७१ से १९३९ तक का। इसीलिये हमने भी इस इतिहास के दो भागो मे क्रमश १७८९ से १८७१ तक का और १८७१ से १९३९ तक का इतिहास दिया है। अन्य यूनिवर्सिटियो के विद्यार्थियो की आवश्यकता को दृष्टि मे रखकर पुस्तक ऐसे दो भागो मे भी प्रकाशित की गई है, जिनमे पूर्ववत् क्रमश १७८९ से १९१४ तक का और १९१४ से १९५५ तक का इतिहास रहे। पुस्तकालयो के लिये सम्पूर्ण ग्रन्थ को एक जिल्द मे भी प्रकाशित किया गया है।

इस इतिहास के तृतीय सस्करण मे १९५५ तक का यूरोपियन इतिहास दे दिया गया है, जिसके कारण इस पुस्तक की उपयोगिता और भी अधिक बढ गई है।

सरस्वती सदन, मसूरी

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

पहला भाग

द्वितीय भाग

तीसरा भाग

अपने प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय पिता

श्री आशाराम

और

अपनी पूजनीया स्वर्गीय माता

श्रीमती रामरखी देवी

की

पुण्य स्मृति मे

यूरोप का आधुनिक इतिहास

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

१ प्रस्तावना

इस इतिहास का प्रारम्भ हमने सन् १७८९ से किया है। इस साल फ्रास मे राज्यक्रान्ति का सूत्रपात हुआ था। इस घटना को हुए अभी डेढ सौ वर्ष से कुछ ही अधिक समय हुआ है। डेढ सदी के इस थोडे से समय मे यूरोप ने जो असाधारण उन्नति की है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक, धार्मिक—सभी क्षेत्रो मे यूरोप मे एक युगान्तर उपस्थित हो गया है। अठारहवी सदी के अन्तिम भाग मे फ्रेंच राज्यक्रान्ति के श्रीगणेश के समय यूरोप मे एक भी देश ऐसा नही था, जहा लोकतन्त्र शासन हो। प्राय सब देशो मे वशक्रम से आये हुए एकतन्त्र स्वेच्छाचारी निरकुश राजा राज्य करते थे। उनका शासन सम्बन्धी मुख्य सिद्धान्त यह था—"हम पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि है, और हमारी इच्छा ही कानून है।" समाज मे ऊच-नीच का भेद विद्यमान था। कुछ लोग ऊचे समझे जाते थे, क्योकि वे कुलीन घर मे पैदा हुए थे। दूसरे लोग नीचे समझे जाते थे, क्योकि वे जन्म से नीच थे। कल कारखानो का विकास उस समय नही हुआ था। रेल, मोटर, तार, हवाई जहाज आदि का नाम तक भी कोई नही जानता था। सूत कातने के लिये तकुवे और चरखे काम मे आते थे। घोडे या बैल से चलनेवाली गाडिया सवारी के काम आती थी। समुद्र मे जहाज चलते थे पर भाप व बिजली से नही, अपितु पाल व चप्पुओ से। कारीगर लोग अपने घर मे बैठकर पुराने ढग के मोटे औजारो से काम करते थे। यान्त्रिक-शक्ति से चलनेवाले विशाल कारखाने यूरोप मे उस समय तक नही बने थे। स्त्रियो को स्वाधीनता नही मिली थी। उनका कार्य-क्षेत्र घर था और घर से बाहर वे बहुत कम दिखाई देती थी। धर्म के मामले मे लोग बडे सकीर्ण और असहिष्णु थे। प्रोटेस्टेन्ट और रोमन कैथोलिक लोगो का सघर्ष अभी समाप्त नही हुआ था। आजकल के ज्ञान विज्ञान उस समय विकसित नही हुए थे। जिन बातो पर आज यूरोप गर्व करता है, उनका प्रादुर्भाव उस समय तक नही हुआ था।

डेढ सदी के इस थोडे से समय मे कितना भारी परिवर्तन हो गया है। इस बीच मे पाश्चात्य ससार ने कैसी आश्चयजनक उन्नति की है। आज यूरोप मे एक भी ऐसा देश नही है, जहा किसी न किसी रूप मे लोकतन्त्र शासन विद्यमान न हो। वशक्रम से आए

हुए निरंकुश राजाओं के स्वेच्छाचारी शासन आज यूरोप में नष्ट हो गये हैं। 'राजाओं का दैवी अधिकार' अब स्वप्न की बात हो गया है। समाज में ऊंच-नीच का भेद मिट गया है। जन्म के कारण न आज कोई ऊंचा है, न नीचा। रेल, तार, मोटर, हवाई जहाज और रेडियो ने देश और काल पर कैसी अद्भुत विजय प्राप्त की है। आज बम्बई में बैठे लन्डन से बात की जा सकती है। दिल्ली में पेरिस का संगीत सुना जा सकता है। दो दिन में हजारों मील की दूरी पार कर भारत से यूरोप पहुंच सकते हैं। आज कपड़ा बनाने के लिये तकली, चरखे व करघे की आवश्यकता नहीं रही। आज कपड़े की ऐसी मिल विद्यमान हैं, जो एक दिन में लाखों गज कपड़ा तैयार करती हैं। कल-कारखानों के विकास ने यूरोप के आर्थिक जीवन को बिल्कुल बदल दिया है। स्वतन्त्र कारीगर का स्थान आज पूंजीपति और मजदूर ने ले लिया है। स्त्रियां अब स्वाधीन हो चुकी हैं। उन्हें सब क्षेत्रों में अब पुरुषों के बराबर अधिकार मिल गये हैं। स्त्रियों की स्वाधीनता के कारण यूरोप के सामाजिक और पारिवारिक जीवन में भारी परिवर्तन आ गया है। धर्म के क्षेत्र में आज प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है। धर्म के कारण आज कोई व्यक्ति किसी अधिकार से वंचित नहीं रहता।

यह महान् परिवर्तन किस प्रकार आ गया, यही हम इस इतिहास में स्पष्ट करेंगे। पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह परिवर्तन एकदम नहीं हुआ। मनुष्य जाति के इतिहास में कोई परिवर्तन अकस्मात् व एकदम नहीं होता। मानव-शरीर के समान मनुष्य जाति भी एक जीती जागती चेतन सत्ता है। उसमें उन्नति और ह्रास दोनों धीरे-धीरे होते हैं। हमने १७८९ से यूरोप के आधुनिक इतिहास को शुरू किया है। उस वर्ष फ्रांस में राज्यक्रान्ति का श्रीगणेश हुआ था। पर यह नहीं समझना चाहिये, कि १७८९ में ये सब महान् परिवर्तन यूरोप में अकस्मात शुरू हो गये थे। ये परिवर्तन देर से धीरे-धीरे हो रहे थे। १७८९ के बाद भी ये धीरे-धीरे होते रहे। पर सुगमता के लिये हमने १७८९ के साल को आधुनिक यूरोपियन इतिहास का प्रारम्भ करने के लिये चुन लिया है। जैसे मनुष्य के जीवन में बाल्य यौवन और बुढ़ापा—तीनों अवस्थाएं क्रमशः आती हैं और हम यह नहीं बता सकते, कि किस दिन बाल्य काल समाप्त हुआ और यौवन का प्रारम्भ हुआ या यौवन का अन्त हो बुढ़ापा शुरू हुआ। पर यह निश्चित है, कि किसी समय बाल्य के बाद यौवन और यौवन के बाद बुढ़ापा आ जाता है। हम केवल सुगमता के लिये यह मान लेते हैं, कि २५ वर्ष की आयु में यौवन और ५० वर्ष की आयु में बुढ़ापा शुरू होता है। इसी तरह मनुष्य जाति के इतिहास में परिवर्तनों के धीरे-धीरे होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता, कि कब मध्यकाल समाप्त हुआ और आधुनिक काल का प्रारम्भ हुआ। पर इतिहास-लेखक अपनी सुगमता के लिये कोई निश्चित वर्ष चुन लेते हैं, और हम ने इस इतिहास में फ्रांस की राज्यक्रान्ति के श्रीगणेश के वर्ष—सन १७८९ को आधुनिक यूरोपियन इतिहास को शुरू करने के लिये चुना है।

१७८९ से १९५१ तक लगभग डेढ सदी के इस काल में यूरोप ने जो आश्चर्यजनक उन्नति की है, उसी पर हम इस ग्रन्थ में प्रकाश डालेंगे। पर यूरोप के आधुनिक इतिहास को शुरू करने से पूर्व यह जरूरी है, कि हम प्राचीन और मध्यकालीन यूरोप के सम्बन्ध में

भी कुछ प्रकाश डाले। पुराने यूरोप को जाने बिना नवीन यूरोप को समझ सकना कठिन है।

२ प्राचीन काल

यूरोप का इतिहास बहुत पुराना नही है। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व यूरोप का बडा भाग जगलो से आच्छादित था। जहा आजकल इङ्गलैंड, फ्रास, जर्मनी, रूस, नार्वे, स्वीडन, आस्ट्रिया आदि के सभ्य और समृद्ध राज्य है, वहा उस समय प्राय जगली और असभ्य लोग बसते थे। उस समय यूरोप मे केवल दो देश ऐसे थे, जहा सभ्यता का विकास हो रहा था। ये देश थे, ग्रीस और इटली। आज से ढाई हजार वर्ष पहले ग्रीस अच्छा उन्नत और सभ्य देश था। वहा के लोग सुन्दर मकानो मे रहते थे, खेती करते थे, ससार के गूढ तत्त्वो पर विचार करते थे और विविध देवी-देवताओ की पूजाकर इहलोक और परलोक मे सुखी होने का प्रयत्न करते थे।

यूरोप की प्राचीनतम सभ्यता—पर ग्रीक लोगो के इतिहास के रगमच पर प्रकट होने से पूर्व भी यूरोप मे एक अन्य प्राचीन सभ्यता का विकास हुआ था, जिसका नाम ईगियन था। यह ईगियन सभ्यता ससार की प्राचीनतम सभ्यताओ—सुमेरियन, असीरियन, ईजिप्सियन, सिन्धु सभ्यता और चीनी सभ्यता की समकालीन थी।

इस सभ्यता का क्षेत्र भूमध्यसागर के तटवर्ती प्रदेश और ईगियन सागर के विविध द्वीप थे। इसका प्रधान केन्द्र क्रीट नाम का द्वीप था। उस मे क्नोस्सस नामक स्थान पर जो खुदाई हुई है, उससे ज्ञात होता है कि किसी प्राचीन समय मे वहा एक अत्यन्त समृद्ध और वैभवपूर्ण नगर विद्यमान था। इसमे बडे-बडे राजप्रसाद थे, जिनमे क्रीट के राजा बडे विलास के साथ अपना जीवन व्यतीत करते थे। इन राजाओ को मीन कहते थे। मीन राजाओ के महल मे बाकायदा स्नान-गृह बने हुए थे, जिनमे नलको द्वारा पानी आता था। क्नोस्सस की खुदाई मे न केवल राजमहलो के खण्डहर मिले है, अपितु उस काल के बहुत से बर्तन, वस्त्र लेख, आभूषण, मूर्तिया और चित्र भी प्राप्त हुए है। इन्हे देख कर यह भलीभाति ज्ञात होता है, कि क्रीट के निवासी बहुत उन्नत और समृद्ध थे।

क्रीट के समान एशिया माइनर, ग्रीस आदि के तटवर्ती अन्य भी अनेक स्थानो पर खुदाई द्वारा इस प्राचीन ईगियन सभ्यता के भग्नावशेष उपलब्ध हुए है। इनमे ट्रॉय, टिरिन्स और माइसेनी मुख्य है। समुद्र के क्षेत्र मे रहने के कारण ईगियन लोगो को यूरोप के मैदानो मे रहनेवाली जगली व पशुपालक जातियो के हमलो का विशेष भय नही था। इसीलिये वे निश्चिन्त होकर एक डेढ हजार साल के लगभग शाति के साथ अपनी सभ्यता का विकास करते रहे। जहाजो के निर्माण पर उन्होने विशेष ध्यान दिया। वे न केवल अपनी विविध बस्तियो मे जहाजो द्वारा आते जाते थे, अपितु ईजिप्ट और पशिया की खाडी के सुदूरवर्ती प्रदेशो मे भी व्यापार के लिये पहुचते थे।

ग्रीक लोगो ने ईगियन सभ्यता का अन्त किया। ये ग्रीक लोग उस विशाल आर्य जाति की एक शाखा थे जिस की पूर्वी शाखा ने भारत मे प्रवेश कर सिन्ध और गगा नदी की उन्नत सभ्यताओ का अन्त किया था। ग्रीक लोगो ने ईगियन सागर के क्षेत्र मे १२०० ई० पू० के लगभग प्रवेश करना शुरू किया। यद्यपि ईगियन लोग सभ्यता की दृष्टि

बहुत उन्नत थे, पर ग्रीक लोग वीरता और साहस मे उन से बहुत आगे बढ़े हुए थे। सभ्यता के रोग ने उन्हे अभी निर्बल नही कर दिया था। ईजियन लोगो को परास्त कर वे उनके प्रदेश मे आबाद हो गये और पराजित ईजियन लोगो से उन्होने सभ्यता की बहुत सी बाते सीखी।

प्राचीन ग्रीक राज्य—आर्य जाति की जिस पश्चिमी शाखा ने यूरोप मे बालकान प्रायद्वीप से होकर ग्रीस मे प्रवेश किया, उसने इस प्रदेश मे बहुत से छोटे-छोटे राज्य कायम किये। ग्रीस की भूमि समतल व मैदान नही है। उसमे बहुत-सी पहाडिया है, जिनके कारण यह देश बहुत सी घाटियो मे विभक्त है। विविध ग्रीक लोग विविध घाटियो मे बस गये और उनके राज्य एक दूसरे से पृथक रहे। ग्रीक लोग ग्रीस से आगे बढ़कर ईजियन सागर के विविध द्वीपो और एशिया माइनर के समुद्र तट पर भी आबाद हुए। इस क्षेत्र मे जो ईजियन सभ्यता पहले विद्यमान थी, उसे ग्रीक लोगो ने विजय कर लिया। ईजियन लोगो को दास बना लिया गया। उन के साथ ग्रीक लोगो ने वही व्यवहार किया जो भारत के आर्यो ने द्रविडो के साथ किया था। ईजियन लोगो से नौकाओ और जहाजो का उपयोग सीखकर ग्रीक लोग और आगे बढ़े और इटली तथा सिसली के समुद्र तट पर भी उन्होने अपने अनेक राज्य कायम किये। भूमध्यसागर के तट पर उन लोगो ने अपने राज्यो का एक जाल-सा बिछा दिया।

ग्रीक राज्यों की संख्या सैकडो मे थी। उन मे प्रमुख एथन्स, स्पार्टा, कारिन्थ, थेब्स, सेमस और मिलेटस थे। अधिकाश ग्रीक राज्यो की आबादी पचास हजार के लगभग थी। उनमे कोई भी राज्य ऐसा नही था, जिसकी आबादी तीन लाख से अधिक हो। इस आबादी मे भी दासो की संख्या अधिक होती थी। स्वतन्त्र ग्रीक नागरिक संख्या मे दासो की अपेक्षा बहुत कम होते थे। ग्रीस की भौगोलिक स्थिति ऐसी थी, कि वहा एक शक्तिशाली साम्राज्य का विकास हो सकना सुगम नही था। विविध राज्य पहाडो की घाटियो, द्वीपो या समुद्र तट पर स्थित थे। किसी शक्तिशाली राजा के लिये यह सम्भव नही था कि वह आसानी से इन सबको जीतकर अपने अधीन कर ले और फिर निश्चिन्त होकर उन पर शासन कर सके।

राजनीतिक दृष्टि से पृथक रहते हुए भी इन विविध राज्यो मे एक प्रकार की एकता व एकानुभूति विद्यमान थी। सब ग्रीक राज्यो की भाषा एक थी, सब अपने पूर्व पुरुषो की वीर गाथाओ का समान रूप से स्मरण करते थे, होमर के ईलियड और ओडिस्सी का सर्वत्र समानरूप से आदर था। साथ ही, प्रति चार साल के बाद सब ग्रीक राज्यो के प्रतिनिधि एक स्थान पर एकत्र होते थ। यहा विविध खेलो मे उनके सम्मुख होते थे। ग्रीक लोगो को कुश्ती व खेलो का बडा शौक था। ग्रीक नवयुवको की यह महत्त्वाकाक्षा रहती थी कि वे इन खेलो मे विजयी हो कर प्रथम पुरस्कार प्राप्त करे। ये खेल ओलिम्पिया नामक स्थान पर होते थे। ग्रीस मे इन खेलो का इतना महत्त्व था कि ओलिम्पिया मे टूर्नामेन्ट के अवसर पर विविध राज्य आपस के लडाई-झगडे व युद्धो को बन्द कर देते थे और सब राज्यो से न केवल खिलाडी अपितु दर्शक भी बडी संख्या मे वहा एकत्र होते थे। ओलिम्पिया मे विविध ग्रीक राज्यो के लोगो को आपस मे मिलने का सुवर्णीय अवसर प्राप्त होता था और वे भलीभाति अनुभव करते थे कि हम एक ही जाति के अग है।

शासन पद्धति—विविध ग्रीक राज्यो की शासन-पद्धति भी भिन्न-भिन्न थी। कुछ मे वशक्रमानुगत राजा राज्य करते थे, कुछ मे कतिपय कुलीन श्रेणियो का शासन था और कुछ मे सर्वसाधारण जनता का राज्य था। राज्यो मे शासन-पद्धति भी सदा एक सी नही रही। जहा पहले राजा का शासन था, वहा बाद मे जनता का राज्य स्थापित हो गया। जहा पहले जनता का राज्य था, वहा बाद मे किसी वीर पुरुष ने अपने एकतन्त्र शासन की स्थापना कर ली। ग्रीस के नगर राज्यो मे शासन का प्रकार निरन्तर बदलता रहा। एथन्स ग्रीस का प्रमुख राज्य था, वहाँ लोकतन्त्र शासन प्रणाली विद्यमान थी। आज-कल लोकतन्त्र शासन का अभिप्राय यह समझा जाता है, कि राज्य के सब नागरिको का शासन मे भाग हो। पर एथेन्स मे केवल उन नागरिको को राज्य मे अधिकार था, जिनके माता और पिता दोनो एथीनियन हो। गुलाम इस अधिकार से वचित थे, विदेशी ग्रीक लोगो को भी शासन मे कोई स्थान प्राप्त नही था। एथन्स की शासन-पद्धति लोकतन्त्र थी, पर उसमे शासन सम्बन्धी अधिकार बहुत कम लोगो को प्राप्त था।

ग्रीक नगर राज्यो मे इस बात की आवश्यकता नही थी, कि नागरिक लोग राजसभा के लिये प्रतिनिधियो का निर्वाचन करे। सब नागरिको को अधिकार था, कि वे स्वय सभा मे एकत्र हो, वहा विविध मामलो पर बहस करे और बहुसम्मति द्वारा किसी बात का निर्णय करे। एथन्स जैसे समृद्ध राज्य की सभा मे (इसे एक्लीजिया कहते थे) मे हजारो नागरिक एकत्र होते थे। अनेक वक्ता इस बात का अभ्यास करते थे, कि अपने प्रभाव-शाली व जोरदार भाषणो द्वारा लोगो को प्रभावित करे और उन्हे अपनी बात मानने के लिये प्रेरित करे। वोट के समय नागरिक लोग 'हा' या 'ना' कह कर अपनी सम्मति प्रकट करते थे। जिस पक्ष मे अधिक ऊँची आवाज रहे, वही स्वीकृत समझा जाता था। अनेक राजनीतिक नेता अपने अनुयायियो को यह सिखाते थे कि वे बहुत जोर से चिल्ला कर अपने मत को प्रकट करे।

कानून की दृष्टि मे सब नागरिक एक समान होते थे। इसीलिये अनेक राज्यो में यह व्यवस्था थी, कि राजकर्मचारियो की नियुक्ति लाटरी द्वारा की जाय। लाटरी मे जिसका भी नाम निकल आवे, वही राजपद पर नियत कर दिया जाता था। ग्रीस के इन प्राचीन नगर-राज्यो मे राजनीतिक दल भी विद्यमान थे। कई बार जब विविध राज-नीतिक दलो के नेताओ मे उग्र मतभेद हो जाता था, तो वोट द्वारा यह फैसला किया जाता था, कि किस नेता को देश से बहिष्कृत कर दिया जाय। यह देश निकाला प्राय दस साल के लिये दिया जाता था। इस प्रकार का वोट पर्चियो द्वारा लिया जाता था।

श्रेणितन्त्र राज्यो मे सब ग्रीक लोगो को भी शासन मे अधिकार नही रहता था। कुछ कुलीन परिवारो के लोग शासन करते थे और शेष उन की प्रजा होते थे। राजतन्त्र राज्यो मे वशक्रमानुगत राजाओ का शासन होता था। पर इन राजाओ पर भी जनता के नियन्त्रण का अभाव नही था। अनेक राज्यो मे यह प्रथा थी, कि जब कोई राजा राजगद्दी पर पर बैठने लगे, तो प्रजा उसे स्वीकार करे।

ग्रीक सभ्यता—पाचवी सदी ई० पू० ग्रीक इतिहास मे अत्यन्त समृद्धि और उन्नति का काल था। इस समय तक ग्रीस के बहुत से राज्यो ने परस्पर मिल कर अपना एक सघ

वना लिया था, जिसका नेता एथन्स था। इस समय एथन्स राज्य का प्रधान पैरिक्लीज था, जो वडा योग्य और कुशल नीतिज्ञ था। उसने एथन्स की समृद्धि और वैभव के लिये असाधारण प्रयत्न किया। उसके यत्न से एथन्स मे वहुत सी नई इमारते वनी। उसके समय की वहुत सी सुन्दर मूर्तियो के अनेक अवशेष अव भी विद्यमान है, और उनसे यह भली भाति सूचित होता है कि पैरिक्लीज के समय का एथन्स कितना उन्नत, कलामय और समृद्ध था।

पैरिक्लीज ने एथन्स के वाह्य कलेवर की उन्नति पर ही ध्यान नही दिया, साथ ही उसका यह भी यत्न था, कि एथन्स ज्ञान, कला, कविता और साहित्य की दृष्टि से भी अनुपम हो जाए। इसी कारण उसने वहुत से कवि, दार्शनिक और विचारको को एथन्स मे निमन्त्रित किया। इन लोगो मे कुछ के नाम इतिहास मे अमर है। हीरोडोटस पैरिक्लीज के निमन्त्रण पर ४३८ ई० पू० मे एथन्स आया और वहा इस ने अपने 'इतिहास' का प्रवचन किया। सम्भवत हीरोडोटस पाश्चात्य ससार का पहला ऐतिहासिक हुआ है। उसने प्राचीन ससार की विविध जातियो और सभ्यताओ के पुराने इतिहास की खोज कर एक ग्रन्थ लिखा, जो आज तक भी वडे शौक से पढा जाता है। अनैक्सेगोरस ज्योतिषी था। सूर्य, नक्षत्र, तारे आदि के विषय मे उसने महत्वपूर्ण खोज की थी। वह भी इस समय एथन्स मे आया और वहा आकर उसने ज्योतिष सम्बन्धी अपनी खोज को जारी रखा। अनेक कवि और नाटककार भी इस युग मे एथन्स की शोभा वढा रहे थे। ग्रीक भाषा मे कविता पहले से विद्यमान थी। होमर के वाद अन्य भी अनेक कवि ग्रीस मे उत्पन्न हुए, जिन्होने अनेक उत्कृष्ट काव्यो की रचना की। पर पैरिक्लीज के जमाने मे नाटको की रचना विशेष रूप से प्रारम्भ हुई। एथन्स आदि विविध राज्यो के नागरिको को नाटको का वडा शौक था। ये नाटक सार्वजनिक रूप से खेले जाते थे, और ग्रीक लोग वडी सख्या मे इन्हे देखने के लिये एकत्र होते थे।

पैरिक्लीज के समय मे ही एक ऐसे विचारक का ग्रीस मे प्रादुर्भाव हुआ, जिसका नाम दर्शन शास्त्र के इतिहास मे सदा अमर रहेगा। इसका नाम सुकरात है। वह कहता था, कि सत्य ज्ञान से वढकर कोई वात नही होती। पर किसी वस्तु का सत्य या यथार्थ ज्ञान तभी सम्भव है, जव मनुष्य प्रत्येक वात की सचाई को परखकर देखने का प्रयत्न करे। अन्ध विश्वास से वढकर वुरी वात अन्य कोई नही। सुकरात की शिक्षा का यह परिणाम हुआ, कि उसके वहुत से अनुयायी उन सव वातो को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे, जिन्हे ग्रीक लोग पुराने समय से मानते आये थे। सुकरात स्वय तत्त्वज्ञानी था। यथार्थज्ञान से उसका अभिप्राय यही था, कि मनुष्य प्रत्येक वात को सत्य की कसौटी पर कसने का प्रयत्न करे। पर उसके वहुत से अनुयायी सत्य के नाम पर सभी पुरानी वातो के विरुद्ध विद्रोह करने लगे। ग्रीक लोगो ने इस वात को वहुत भयकर समझा। परिणाम यह हुआ, कि सुकरात को प्राणदड दिया गया और उसने विष से भरा प्याला पीकर अपने जीवन का (३९९ ई० पू०) अन्त कर दिया।

सुकरात का प्रधान शिष्य प्लेटो या अफलातून था। उसका जन्म ४२६ ई० पू० म हुआ था। उसने एथन्स मे एक एकेडेमी की स्थापना की। इसमे एकत्र हुए विद्वान् सत्य

की खोज मे तत्पर रहते थे। प्लेटो कहता था, मनुष्य अपने भाग्य का स्वय विधाता है। हम अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग कर उन परिस्थितियो को बदल सकते है, जो हमारे कष्टो का कारण है। हम सोच समझ कर ऐसे समाज और ऐसे राज्य का निर्माण कर सकते है, जिसमे हम अधिक सुख मे रह सके। मनुष्य स्वय नही जानते, कि उसमे कितनी शक्ति है। यही कारण है, कि वे विविध कष्ट उठाते है। प्लेटो ने समाज की नई कल्पना को जनता के सम्मुख रखा। यह कल्पना उसने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' मे विस्तृत रूप से प्रतिपादित की है।

प्लेटो का प्रधान शिष्य अरिस्टॉटल था। वह कहता था, कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वय विधाता अवश्य है, पर वह तभी अपने प्रयत्न मे सफल हो सकता है, जब कि वह सब बातो का सही-सही ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करे। इसीलिये अरिस्टॉटल ने सब वस्तुओ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये खोज के उपाय का आश्रय लिया। उसने १५८ राज्यो के शासन-विधानो का सग्रह किया और उनका अनुशीलन करके राजनीति-शास्त्र का निर्माण किया। इसी पद्धति मे उसने अन्य क्षेत्रो मे भी वैज्ञानिक खोज की कोशिश की। जिसे हम आजकल वैज्ञानिक खोज कहते है, उसका प्रारम्भ अरिस्टॉटल द्वारा ही हुआ था।

सुकरात, प्लेटो और आरिस्टॉटल के समान अन्य भी अनेक विचारक व दार्शनिक इस समय ग्रीस मे उत्पन्न हुए। उनके प्रयत्नो से ग्रीस मे तत्त्वज्ञान की खोज की एक भूख सी पैदा हो गई थी।

ग्रीक लोगो ने कला के क्षेत्र मे भी बहुत उन्नति की। भवन निर्माण मे तो वे अत्यन्त कुशल थे ही, पर मूर्तिनिर्माण कला मे तो उन्होने कमाल ही कर दिया। उन्होने बहुत सी सुन्दर मूर्तिया बनाई, जो आजतक भी अपने शिल्पियो की योग्यता और प्रतिभा का परिचय देती है। ये ग्रीक मूर्तिया अत्यन्त सुन्दर और कलापूर्ण है। ग्रीक लोग प्रकृति की विविध शक्तियो की देवतारूप मे पूजा करते थे। इन देवताओ की उन्होने सजग मूर्तिया बनाई।

मैसिडोनिया का उत्कर्ष—ग्रीस के उत्तर में मेसीडोनिया नाम का एक राज्य था, जिसके निवासी ग्रीक लोगो की ही एक शाखा थे। उनकी भाषा ग्रीक मे मिलती जुलती थी। पर सभ्यता की दृष्टि से वे ग्रीक लोगो से बहुत पीछे थे। चौथी सदी ई० पू० मे मैसिडोनिया मे एक ऐसा राजा उत्पन्न हुआ, जिसने उसे एक शक्तिशाली राज्य बना दिया। इसका नाम अमिन्टस था।

अमिन्टस का लडका फिलिप था, जो उसकी मृत्यु के बाद मैसिडोनिया का राजा बना। उसका बहुत सा समय ग्रीस मे व्यतीत हुआ था। वहा रहते हुए उसने न केवल ग्रीस के साहित्य और दर्शन शास्त्र का अनुशीलन किया, पर साथ ही उसकी युद्धनीति से भी परिचय प्राप्त किया। मैसिडोनियन सैनिक ग्रीक सैनिको की अपेक्षा अधिक उग्र और साहसी थे। फिलिप ने उन्हे ग्रीक युद्धनीति की शिक्षा दी। परिणाम यह हुआ, कि मैसिडोनियन सेना की शक्ति बहुत बढ गई।

इस शक्तिशाली सेना का उपयोग फिलिप ने अपने राज्य के विस्तार के लिये किया। कुछ ही समय मे सम्पूर्ण बालकन प्रायद्वीप उसके अधीन हो गया। पर फिलिप केवल

बना लिया था, जिसका नेता एथन्स था। इस समय एथन्स राज्य का प्रधान पैरिक्लीज था, जो बडा योग्य और कुशल नीतिज्ञ था। उसने एथन्स की समृद्धि और वैभव के लिये असाधारण प्रयत्न किया। उसके यत्न से एथन्स मे बहुत सी नई इमारते बनी। उसके समय की बहुत सी सुन्दर मूर्त्तियो के अनेक अवशेष अब भी विद्यमान है, और उनसे यह भली भाति सूचित होता है कि पैरिक्लीज के समय का एथन्स कितना उन्नत, कलामय और समृद्ध था।

पैरिक्लीज ने एथन्स के बाह्य कलेवर की उन्नति पर ही ध्यान नही दिया, साथ ही उसका यह भी यत्न था, कि एथन्स ज्ञान, कला, कविता, और साहित्य की दृष्टि से भी अनुपम हो जाय। इसी कारण उसने बहुत से कवि, दार्शनिक और विचारकों को एथन्स मे निमन्त्रित किया। इन लोगो मे कुछ के नाम इतिहास मे अमर है। हीरोडोटस पैरिक्लीज के निमन्त्रण पर ४३८ ई० पू० मे एथन्स आया और वहा उस ने अपने 'इतिहास' का प्रवचन किया। सम्भवत, हीरोडोटस पाश्चात्य ससार का पहला ऐतिहासिक हुआ है। उसने प्राचीन ससार की विविध जातियों और सभ्यताओं के पुराने इतिहास की खोज कर एक ग्रन्थ लिखा, जो आज तक भी बडे शौक से पढा जाता है। अनेक्सेगोरस ज्योतिषी था। सूर्य, नक्षत्र, तारे आदि के विषय मे उसने महत्वपूर्ण खोज की थी। वह भी इस समय एथन्स में आया और वहा आकर उसने ज्योतिष सम्बन्धी अपनी खोज को जारी रखा। अनेक कवि और नाटककार भी इस युग मे एथन्स की शोभा बढा रहे थे। ग्रीक भाषा मे कविता पहले से विद्यमान थी। होमर के बाद अन्य भी अनेक कवि ग्रीस मे उत्पन्न हुए, जिन्होने अनेक उत्कृष्ट काव्यो की रचना की। पर पैरिक्लीज के जमाने में नाटको की रचना विशेष रूप से प्रारम्भ हुई। एथन्स आदि विविध राज्यो के नागरिको को नाटको का बडा शौक था। ये नाटक सार्वजनिक रूप से खेले जाते थे, और ग्रीक लोग बडी सख्या में इन्हे देखने के लिये एकत्र होते थे।

पैरिक्लीज के समय मे ही एक ऐसे विचारक का ग्रीस मे प्रादुर्भाव हुआ, जिसका नाम दर्शन शास्त्र के इतिहास में सदा अमर रहेगा। इसका नाम सुकरात है। वह कहता था, कि सत्य ज्ञान से बढकर कोई बात नही होती। पर किसी वस्तु का सत्य या यथार्थ ज्ञान तभी सम्भव है, जब मनुष्य प्रत्येक बात की सचाई को परखकर देखने का प्रयत्न करे। अन्ध विश्वास से बढकर बुरी बात अन्य कोई नही। सुकरात की शिक्षा का यह परिणाम हुआ, कि उसके बहुत से अनुयायी उन सब बातो को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे, जिन्हे ग्रीक लोग पुराने समय से मानते आये थे। सुकरात स्वय तत्त्वज्ञानी था। यथार्थज्ञान से उसका अभिप्राय यही था, कि मनुष्य प्रत्येक बात को सत्य की कसौटी पर कसने का प्रयत्न करे। पर उसके बहुत से अनुयायी सत्य के नाम पर सभी पुरानी बातो के विरुद्ध विद्रोह करने लगे। ग्रीक लोगो ने इस बात को बहुत भयकर समझा। परिणाम यह हुआ, कि सुकरात को प्राणदड दिया गया और उसने विष से भरा प्याला पीकर अपने जीवन का (३९९ ई० पू०) अन्त कर दिया।

सुकरात का प्रधान शिष्य प्लेटो या अफलातून था। उसका जन्म ४२६ ई० पू० मे हुआ था। उसने एथन्स में एक एकेडेमी की स्थापना की। इसमे एकत्र हुए विद्वान् सत्य

की खोज मे तत्पर रहते थे। प्लेटो कहता था, मनुष्य अपने भाग्य का स्वय विधाता है। हम अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग कर उन परिस्थितियो को वदल सकते है, जो हमारे कष्टो का कारण है। हम सोच समझ कर ऐसे समाज और ऐसे राज्य का निर्माण कर सकते है, जिसमे हम अधिक सुख मे रह सके। मनुष्य स्वय नही जानते, कि उसमे कितनी शक्ति है। यही कारण है, कि वे विविध कष्ट उठाते है। प्लेटो ने समाज की नई कल्पना को जनता के सम्मुख रखा। यह कल्पना उसने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' मे विस्तृत रूप से प्रतिपादित की है।

प्लेटो का प्रधान शिष्य अरिस्टॉटल था। वह कहता था, कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वय विधाता अवश्य है, पर वह तभी अपने प्रयत्न मे सफल हो सकता है, जव कि वह सब बातो का सही-सही ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करे। इसीलिये अरिस्टॉटल ने सब वस्तुओ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये खोज के उपाय का आश्रय लिया। उसने १५८ राज्यो के शासन-विधानो का सग्रह किया और उनका अनुशीलन करके राजनीति-शास्त्र का निर्माण किया। इसी पद्धति से उसने अन्य क्षेत्रो मे भी वैज्ञानिक खोज की कोशिश की। जिसे हम आजकल वैज्ञानिक खोज कहते है, उसका प्रारम्भ अरिस्टॉटल द्वारा ही हुआ था।

सुकरात, प्लेटो और आरिस्टॉटल के समान अन्य भी अनेक विचारक व दार्शनिक इस समय ग्रीस मे उत्पन्न हुए। उनके प्रयत्नो से ग्रीस मे तत्त्वज्ञान की खोज की एक भूख सी पैदा हो गई थी।

ग्रीक लोगो ने कला के क्षेत्र मे भी वहुत उन्नति की। भवन निर्माण मे तो वे अत्यन्त कुशल थे ही, पर मूर्तिनिर्माण कला मे तो उन्होने कमाल ही कर दिया। उन्होने वहुत सी सुन्दर मूर्तिया वनाई, जो आजतक भी अपने शिल्पियो की योग्यता और प्रतिभा का परिचय देती है। ये ग्रीक मूर्तिया अत्यन्त सुन्दर और कलापूर्ण है। ग्रीक लोग प्रकृति की विविध शक्तियो की देवतारूप मे पूजा करते थे। इन देवताओ की उन्होने सजग मूर्तिया वनाई।

मैसिडोनिया का उत्कर्ष—ग्रीस के उत्तर में मेसीडोनिया नाम का एक राज्य था, जिसके निवासी ग्रीक लोगो की ही एक शाखा थे। उनकी भाषा ग्रीक मे मिलती जुलती थी। पर सभ्यता की दृष्टि से वे ग्रीक लोगो से वहुत पीछे थे। चौथी सदी ई० पू० मे मैसिडोनिया मे एक ऐसा राजा उत्पन्न हुआ, जिसने उसे एक शक्तिशाली राज्य वना दिया। इसका नाम अमिन्टस था।

अमिन्टस का लडका फिलिप था, जो उसकी मृत्यु के वाद मैसिडोनिया का राजा वना। उसका वहुत सा समय ग्रीस मे व्यतीत हुआ था। वहा रहते हुए उसने न केवल ग्रीस के साहित्य और दर्शन शास्त्र का अनुशीलन किया, पर साथ ही उसकी युद्धनीति से भी परिचय प्राप्त किया। मैसिडोनियन सैनिक ग्रीक सैनिको की अपेक्षा अधिक उग्र और साहसी थे। फिलिप ने उन्हे ग्रीक युद्धनीति की शिक्षा दी। परिणाम यह हुआ, कि मैसिडोनियन सेना की शक्ति वहुत वढ गई।

इस शक्तिशाली सेना का उपयोग फिलिप ने अपने राज्य के विस्तार के लिये किया। कुछ ही समय मे सम्पूर्ण वाल्कन प्रायद्वीप उसके अधीन हो गया। पर फिलिप केवल

बाल्कन प्रदेश को जीतकर ही सन्तुष्ट नही हुआ, उसने दक्षिण मे उससे आगे बढकर ग्रीस पर भी हमला किया। धीरे-धीरे समस्त ग्रीस उसके अधीन हो गया। पर ग्रीक लोगो के लिये मैसिडोनियन फिलिप का शासन विदेशी नही था। फिलिप की अपनी शिक्षा ग्रीस मे हुई थी, और मैसिडोनिया के निवासी जाति की दृष्टि से ग्रीक ही थे। ग्रीस के अनेक राज्य पहले भी एथन्स जैसे शक्तिशाली राज्यो के वशवर्ती थे। फिलिप ने अब एथन्स को परास्त कर सब ग्रीक राज्यो को अपने अधीन कर लिया था। विविध राज्यो की पृथक् सत्ता और आन्तरिक स्वतन्त्रता अब भी कायम रही। भेद केवल इतना हुआ, कि अब सब ग्रीक राज्य फिलिप को अपना अधिपति स्वीकृत करने लगे।

३३६ ई० पू० मे अपने पिता फिलिप की मृत्यु के बाद सिकन्दर मैसिडोनियन साम्राज्य का अधिपति बना। फिलिप द्वारा साम्राज्य-विस्तार की जो प्रक्रिया शुरू हुई थी, सिकन्दर ने उसे जारी रखा। उस समय एशिया माइनर, ईजिप्ट, तुर्किस्तान व अफगानिस्तान के प्रदेश पर्शियन साम्राज्य के अन्तर्गत थे। ६०० ई० पू० के लगभग जिस विशाल पर्शियन साम्राज्य का उत्कर्ष हुआ था, वह अब डाई सौ साल के बाद बहुत कुछ निर्बल हो गया था। उसके सम्राट् और क्षत्रप भोग विलास मे मग्न रहते थे। धन, सम्पत्ति और वैभव की प्रचुरता ने उन्हे निर्बल बना दिया था। सिकन्दर ने इस विशाल पर्शियन साम्राज्य पर आक्रमण किया। एशिया माइनर को जीतकर उसने ईजिप्ट मे प्रवेश किया। ३३२ ई० पू० मे ईजिप्ट सिकन्दर के अधीन हो गया और नील नदी के मुहाने पर उसने सिकन्दरिया नाम के एक समृद्ध नगर की स्थापना की। ३३१ ई० पू० मे सिकन्दर ने मैसोपोटामिया की उपजाऊ घाटी पर आक्रमण किया। बैबिलोन, निनेवा आदि सब प्राचीन नगरो पर कब्जा करके सिकन्दर पर्शिया मे प्रविष्ट हुआ। इस समय पर्शिया के राजसिंहासन पर डेरियस तृतीय विराजमान था। उसने सिकन्दर का मुकाबला करने की कोशिश की, पर वह सफल नही हुआ। ३३० ई० पू० मे डेरियस के अपने सैनिको ने उसकी हत्या कर दी। पर्शिया को विजय कर सिकन्दर ने मध्य एशिया में प्रवेश किया। वहा के क्षत्रप ने सिकन्दर की सेनाओ के साथ डट कर लडाई की, पर अन्त में वह भी परास्त हुआ। अब सिकन्दर ने हिन्दूकुश पर्वतमाला को पार कर भारत पर आक्रमण किया। भारत के विविध राज्यो ने डटकर मैसिडोनियन सेनाओ के साथ युद्ध किया। भारत मे सिकन्दर को न केवल राजाओ और उनकी सेनाओ से युद्ध करना पडा, अपितु अनेक गण-राज्यो के साथ भी उसके युद्ध हुए । उस समय पजाब मे आरट्ट, क्षत्रिय, क्षुद्रक, मालव, शिवि, आग्रेय आदि अनेक गणराज्य विद्यमान थे। ग्रीस के एथन्स, स्पार्टा, थेबस आदि राज्यो के समान ये भी अत्यन्त समृद्ध और शक्तिशाली थे। अपनी स्वतत्रता की रक्षा के लिये इन्होने सिकन्दर की सेनाओ के साथ घनघोर युद्ध किया। यद्यपि सिकन्दर इन्हें परास्त करने में समर्थ हुआ, पर इन लडाइयो से उसके सैनिको की हिम्मत टूट गई और सिकन्दर ने यही उचित समझा, कि वह भारत मे और अधिक आगे बढने का प्रयत्न न करे।

३२३ ई० पू० में सिन्दकर की मत्यु हुई। मृत्यु के समय उसकी आयु केवल ३३ साल की थी। इतनी छोटी आयु में सिकन्दर इतने विशाल साम्राज्य की स्थापना में समर्थ हुआ

यह उसकी अपूर्व प्रतिभा और साहस को सूचित करता है। पर उसकी मृत्यु के बाद उसका विशाल साम्राज्य कायम नही रह सका। भारत मे उसके प्रभुत्व के खिलाफ विद्रोह हो गया। चन्द्रगुप्त मौर्य नाम के एक साहसी युवक ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया। साम्राज्य के जो प्रदेश अब भी मैसिडोनिया के अधीन रहे, उनमे भी सिकन्दर के विविध सेनापतियो ने स्वतन्त्र रूप से शासन प्रारम्भ कर दिये। ये सेनापति तीन थे सेल्युकस, टालमी और एन्टीगोनस। हिन्दूकुश से एशिया माइनर तक के सुविस्तृत प्रदेश सेल्युकस के आधिपत्य मे आये। ईजिप्ट पर टालमी का अधिकार हुआ और मैसिडोनिया तथा ग्रीस पर एन्टीगोनस ने अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित कर लिया। यद्यपि सिकन्दर का विशाल साम्राज्य अखण्ड रूप से कायम नही रह सका, पर उसके उत्तराधिकारी भी मैसिडोनियन थे। फिलिप और सिकन्दर के समान उनकी भाषा, सभ्यता और संस्कृति भी ग्रीक थी। उनकी सेनाओ मे ग्रीक सैनिको की प्रचुरता थी। इस दशा का परिणाम यह हुआ, कि इस समय (तीसरी सदी ई० पू० मे) हिन्दूकुश से भूमध्यसागर तक के विशाल भूखण्ड पर ग्रीक लोगो का आधिपत्य था। ग्रीक लोग सभ्यता, संस्कृति साहित्य और कला मे बहुत उन्नत थे। उनके सम्पर्क से ईजिप्ट और पर्शिया के जीवन में बहुत परिवर्तन हुआ।

सिकन्दरिया—सिकन्दर ने ७० के लगभग नये नगरो की स्थापना की थी। इन सबमे ग्रीक सैनिको को आबाद किया गया था। ये ऐसे केन्द्र थे, जहा से ग्रीक सभ्यता अपने समीपवर्ती प्रदेशो पर असर डालती थी। सिकन्दर द्वारा स्थापित इन नगरो मे सबसे अधिक प्रसिद्ध वह सिकन्दरिया नगरी है, जो ईजिप्ट मे नील नदी के मुहाने पर स्थित थी। टालमी ने इसे अपनी राजधानी बनाया और उसकी समृद्धि तथा उत्कर्ष के लिये अपनी सारी शक्ति को लगा दिया।

टालमी ने सिकन्दरिया मे एक कलाभवन (म्यूजियम) की स्थापना की। यह कलाभवन एथन्स की एकेडेमी के समान एक विशाल विद्यापीठ था, जहा बहुत से विद्वान् सत्य की खोज और ज्ञान की प्राप्ति मे तत्पर थे। यूक्लिड का नाम प्रत्येक विद्यार्थी जानता है। ज्यामिति का वह प्रसिद्ध विद्वान् था। यूक्लिड सिकन्दरिया के कलाभवन मे ही रहता था। एरेटोस्थनीज प्रसिद्ध गणितज्ञ और भूगोलवेत्ता था। उसने पृथ्वी के आकार परिधि और व्यास का सही-सही ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश की। एरेटोस्थनीज ने पृथ्वी का जो व्यास निकाला, वह वर्तमान वैज्ञानिको द्वारा निकाले हुए व्यास के बहुत समीप है। उनमे केवल पचास मील का अन्तर है। हिप्पार्कस प्रसिद्ध ज्योतिषी हुआ है, इसने नक्षत्रो की गति व दूरी के विषय मे खोज कर नक्षत्र-मण्डल का नक्शा तैयार करने का यत्न किया। आर्चिमीडस ने वस्तुओ के आपेक्षिक गुरुत्व के विषय में नये मत का प्रतिपादन किया। ये सब वैज्ञानिक सिकन्दरिया के ही निवासी थे। अन्य भी अनेक विचारक और तत्त्ववेत्ता सिकन्दरिया के कलाभवन मे रहते थे, और उनके कारण सिकन्दरिया अपने समय का सबसे महान् विद्यापीठ बन गया था।

टालमी ने सिकन्दरिया मे एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की। उस समय प्रेस नही थे। टालमी ने पुस्तको की नकल करने के लिये हजारो पण्डितो को नियत किया।

ये लोग न केवल पुस्तकालय के लिये विविध पुस्तकों की नकल करते थे, अपितु बिक्री के लिये भी बहुत सी उपयोगी पुस्तकों को लिख कर तैयार करते थे। सिकन्दरिया का यह पुस्तकालय पुस्तकप्रकाशक और पुस्तकविक्रेता भी था। इसका परिणाम यह हुआ था, कि पुस्तके जनता को उपलब्ध हुई और इससे शिक्षा-प्रसार म सहायता मिली।

ग्रीक सभ्यता के सम्पर्क मे आकर ईजिप्ट के लोगो ने बहुत सी नई बाते सीखी। ग्रीक कला और तत्त्वज्ञान ने उनमे अनेक परिवर्तन उत्पन्न किये। यही प्रक्रिया अन्य प्रदेशो मे भी हुई। अफगानिस्तान मे उस समय बौद्ध धर्म का प्रचार था। बौद्ध लोग भगवान् बुद्ध की मूर्तिया बनाकर उनकी उपासना करते थे। ग्रीक कला के सम्पर्क मे गान्धार (अफगानिस्तान) देश के लोगो ने बुद्ध की जो मूर्तिया बनाई, वे अत्यन्त सुन्दर थी। उस समय गान्धार देश भारत का ही अग था। भारत की मूर्ति-निर्माण कला मे जो शैली 'गान्धार शैली' के नाम से प्रसिद्ध है, उसका विकास ग्रीक लोगो के सम्पर्क के कारण ही हुआ।

रोम का उत्कर्ष—जिस प्रकार आर्य जाति की एक शाखा ने ग्रीस मे प्रवेश कर वहा अपने बहुत से राज्य स्थापित किये थे, वैसे ही आर्यो की एक अन्य शाखा ने इटली मे प्रवेशकर वहा अपने अनेक राज्यो की स्थापना की थी। आर्यो की इस शाखा को लैटिन कहते है। लैटिन जाति के राज्यो मे सब से प्रमुख रोम था। यह इटली के मध्य में टाइबर नदी के तट पर स्थित था। इस की स्थापना ७५३ ई० पू० मे हुई थी। उन दिनो टाइबर नदी के उत्तर मे ऐट्रस्कन लोगो का शक्तिशाली राज्य था। ये ऐट्रस्कन आर्य-भिन्न जाति के थे, और युद्ध में बहुत कुशल थे। इटली के आर्य राज्यो पर ये बहुधा हमला करते रहते थे। रोम की स्थापना इसी उद्देश्य से हुई थी, कि ऐट्रस्कन लोगो के आक्रमणो का भलीभाति मुकाबला किया जा सके। धीरे-धीरे रोम की उन्नति होती गई। छठी सदी ई० पू० तक वह इटली का प्रमुख नगर-राज्य बन गया। विविध लैटिन (आर्य) राज्यो के बहुत से साहसी व्यक्ति वहा आकर बसते गये। टाइबर नदी के तट पर होने के कारण यह राज्य सामुद्रिक व्यापार के लिये बहुत उपयुक्त था। ऐट्रस्कन लोगो से निरन्तर युद्ध होते रहने से योद्धाओ को भी यहा बसकर अपनी वीरता प्रदर्शित करने का अच्छा अवसर मिलता था।

शुरू में रोम मे राजाओ का था शासन। पर ४०६ ई० पू० मे वहा राजतन्त्र शासन का अन्त होकर रिपब्लिक की स्थापना हुई। रोम के निवासी दो श्रेणियो मे विभक्त थे, कुलीन (पैट्रिसियन) और जनसाधारण (प्लैबियन)। शुरु मे रोम के शासन मे सब शक्ति कुलीनो के हाथ मे थी। ये कुलीन लोग मिलकर अपनी सभा करते थे। सब कानून यह सभा बनाती थी और साथ ही शासनकार्य के लिये विविध कर्मचारियो का चुनाव भी करती थी। प्रमुख राज-कर्मचारी कासल कहलाते थे। रोम मे एक साथ दो कासल हुआ करते थे। इनका चुनाव हर साल होता था। जनसाधारण का शासन मे कोई हाथ नही था, इस कारण उनमें बहुत असतोष था। उन्होने अपने अधिकारो के लिये सघर्ष शुरू किया। एक बार तो उन्होने यह भी निश्चय किया, कि वे रोम को छोडकर अन्यत्र जा बसे। पर कुलीन लोग उन्हें समझा बुझाकर रोम में वापस लौटा लाये। जन-साधारण के आन्दोलन का परिणाम यह हुआ, कि धीरे-धीरे उन्हे शासन मे अनेक अधि-

कार प्राप्त हो गये। पर रोम मे लोकतन्त्र शासन की स्थापना पूरी तरह से नही हो सकी। शासन कुलीनो के ही हाथो मे रहा। जनसाधारण ने अपने अधिकारो के लिये अधिक संघर्ष की आवश्यकता भी नही समझी, क्योकि इस समय रोम अपने साम्राज्य का विस्तार करने में लगा था। सम्पूर्ण इटली व अन्य प्रदेशो मे धन सम्पत्ति प्रचुर परिमाण मे रोम पहुच रही थी। इस सम्पत्ति का उपभोग करने का अवसर रोम के प्लेबियन लोगो (जन साधारण) को भी प्राप्त होता था। वे इससे संतुष्ट थे।

चौथी सदी ई० पू० मे रोम साम्राज्य विस्तार मे प्रवृत्त हुआ। आर्यों की लेटिन शाखा के जो विविध राज्य इटली मे कायम थे, उन्हे ३३८ ई० पू० तक रोम ने विजय कर लिया। २८० ई० पू० मे रोम ने ऐट्रुस्कन लोगो के राज्य को भी जीत लिया। इटली के समुद्र तट पर जो अनेक ग्रीक उपनिवेश विद्यमान थे, वे भी २७५ ई० पू० मे रोम के हाथ मे आ गये। तीसरी सदी ई० पू० के अन्त तक सम्पूर्ण इटली मे रोम का आधिपत्य स्थापित हो गया।

इटली विजय कर लेने से रोम एक अत्यन्त शक्तिशाली राज्य बन गया था। उस समय भूमध्यसागर के विविध द्वीपो और तटवर्ती प्रदेशो पर कार्थेज का अधिकार था। कार्थेज उत्तरी अफ्रीका के समुद्र तट पर एक समृद्ध व शक्तिशाली नगर था। इसकी स्थापना ८१४ ई० पू० मे हुई थी। कार्थेज के निवासी फिनीशियन जाति के थे। इस जाति का निवासस्थान पैलेस्टाइन के उत्तर मे भूमध्यसागर के तट पर था। टायर और सीडोन इन के प्रमुख नगर थे। समुद्रतट पर बसे होने के कारण फिनीशियन लोग जहाज बनाने और उनमे व्यापार करने मे बहुत चतुर थे। टायर और सीडोन मे बहुत से फिनीशियन व्यापारी निवास करते थे, और ये लोग समुद्र द्वारा दूर दूर तक व्यापार किया करते थे।

८१४ ई० पू० मे टायर के कुछ फिनीशियन व्यापारी उत्तरी अफ्रीका मे समुद्र तट पर कार्थेज मे जा बसे थे। धीरे-धीरे कार्थेज एक समृद्ध व शक्तिशाली नगर बन गया। फिनीशियन लोगो के अपने प्रदेश पर पडोसी राज्य निरन्तर हमले करते रहते थे। अतः टायर और सीडोन के बहुत से समृद्ध व्यापारी कार्थेज मे जाकर बसने लगे। कुछ ही समय मे कार्थेज भूमध्यसागर मे व्यापार का सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया।

जिस प्रकार रोम का नगर-राज्य अपना साम्राज्य बनाने मे तत्पर था, वैसे ही कार्थेज भी अन्य राज्यो को अधीन कर अपनी शक्ति का विस्तार कर रहा था। उन दिनो अफ्रीका के समुद्र तट पर, स्पेन के तट के साथ-साथ व भूमध्यसागर के विविध द्वीपो मे अनेक छोटे-छोटे नगर-राज्य विद्यमान थे। अपनी जलशक्ति का प्रयोग कर कार्थेज ने उन्हें जीत लिया। कार्सिका और सार्डिनिया के द्वीप भी उसके हाथ मे आ गये। सिसली पर भी उसने आक्रमण किया, और इस द्वीप का बडा भाग कार्थेज के अधीन हो गया।

रोम इटली मे अपना साम्राज्य स्थापित कर चुका था। उसकी इच्छा थी, कि सिसली को भी जीतकर अपने अधीन कर ले। कार्थेज भी सिसली मे अपनी शक्ति बढा रहा था। इस दशा मे यह स्वाभाविक था, कि उनमे युद्ध शुरू हो। रोम और कार्थेज के इस संघर्ष को प्यूनिक-युद्ध कहते हैं। २६४ ई० पू० मे इस युद्ध का प्रारम्भ हुआ। रोम ने इसमें अपूर्व वीरता प्रदर्शित की। जलशक्ति का विकास कर उसने शीघ्र ही सिसली, सार्डिनिया

और कार्सिका को विजय कर लिया। पर कार्थेज इससे निराश नही हुआ। हैनिबाल नामक वीर सेनापति के नेतृत्व मे उसने स्थल मार्ग से इटली पर आक्रमण किया। उत्तरी अफ्रीका, स्पेन और फ्रान्स होती हुई कार्थेज की सेना ने इटली मे प्रवेश किया और उत्तरी इटली का विजय करती हुई हैनिबाल की यह सेना रोम के समीप तक आ पहुची। पर अन्त मे रोम की विजय हुई। हैनिबाल परास्त हुआ, और १४६ ई० पू० मे रोम ने कार्थेज को बुरी तरह ध्वस किया। प्यूनिक-युद्धो के कारण कार्थेज की शक्ति नष्ट हो गई, और जो भी प्रदेश उसके अधीन थे, वे सब रोम के साम्राज्य मे शामिल हो गय।

रोमन साम्राज्य का विस्तार—कार्थेज की पराजय से रोम की शक्ति बहुत बढ गई थी। सारा उत्तरी अफ्रीका उसके अधीन हो गया था। पश्चिमी भूमध्यसागर के सब द्वीप (कार्सिका, सिसली और सार्डिनिया) उसके हाथ मे आ गये थे। स्पेन पर भी उसका प्रभुत्व स्थापित हो गया था। कार्थेज के सब जहाज अब रोम के हाथ में आ गये थे। उसकी जलशक्ति अब बहुत बढ गई थी। स्थल और जल, दोनो जगह वह अजेय था।

अपनी जलशक्ति का उपयोग कर रोम ने पूर्व की तरफ अपनी शक्ति का विस्तार शुरू किया। पूर्व के प्रदेश उन दिनो (दूसरी सदी ई० पू०) मे मैसिडोनियन लोगो के प्रभुत्व में थे। सिकन्दर ने इन सब प्रदेशो का विजय कर विशाल मैसिडोनियन साम्राज्य की स्थापना की थी। सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य किस प्रकार खण्ड-खण्ड होकर विविध मैसिडोनियन सेनापतियो के हाथ मे आ गया था, इसका उल्लेख हम पहले कर चुके है। अब रोम ने इन विविध मैसिडोनियन राज्यो पर आक्रमण शुरू किया। १४६ ई० पू० मे मैसिडोनिया और ग्रीस पर रोम ने आक्रमण किया। इनके शासक रोम की शक्तिशाली सेनाओ का मुकाबला नही कर सके। वे परास्त हो गये। सम्पूर्ण ग्रीस व मैसिडोनिया अब रोम के अधीन हो गये। कुछ साल बाद कैस्पियन सागर के विविध द्वीपो पर भी रोम ने अपना अधिकार कर लिया। ६४ ई० पू० मे एशिया माइनर रोम के हाथ मे आ गया। ३० ई० पू० में ईजिप्ट को भी उसने विजय कर लिया।

रोम अपने साम्राज्य का विस्तार केवल पूर्व की ओर ही नही कर रहा था। उसकी विविध सेनाये पश्चिम मे भी रोम की शक्ति का प्रसार कर रही थी। स्पेन पहले ही उसके हाथ मे था। अब फ्रास का प्रदेश भी उसने विजय कर लिया। फ्रास मे उस समय गॉल नाम की जाति का निवास था। यह भी आर्य जाति की ही एक शाखा थी। इसे विजय कर लेने के कारण रोमन साम्राज्य की पश्चिमी सीमा अटलान्टिक सागर तक पहुच गई। एशियामाइनर से अटलान्टिक सागर तक और आल्पस की पर्वत माला से उत्तरी अफ्रीका तक अब रोम का अबाधित शासन था। भूमध्यसागर की स्थिति रोमन साम्राज्य के बीच मे एक विशाल झील के समान थी।

इस विस्तृत साम्राज्य का स्वामी कोई एक शक्तिशाली सम्राट् नही था। इसका अधिपति रोम का नगर-राज्य था, जिसमे अब भी रिपब्लिक विद्यमान थी। रोम के कुलीन नागरिक अब भी प्रतिवर्ष अपने कासलो का निर्वाचन करते थे। साम्राज्य के विविध नगरो के पराभव से उनकी अपार सम्पत्ति रोम में एकत्र हो रही थी, और इस

सम्पत्ति को रोम के महत्वाकाक्षी सेनापति अपने राजनीतिक उत्कर्ष के लिये प्रयुक्त करते थे। वोट प्राप्त करने के लिये इस सम्पत्ति को वे पानी की तरह बहाते थे। रोम के नागरिको के लिये यह परम सन्तोष की बात थी।

रिपब्लिक का अन्त और सम्राटो का शासन—रोम का नगर-राज्य अब एक विशाल साम्राज्य का स्वामी था। शुरू मे उसका विस्तार केवल बीस वर्गमील के क्षेत्र मे था। उस समय यह सम्भव था, कि उसके नागरिक लोक-सभा मे सुगमता के साथ एकत्र हो सके, और अपना शासन स्वय कर सके। पर साम्राज्य विस्तार के कारण यह बात सम्भव नही रही। इस समय रोम की आन्तरिक दशा मे अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए—

(१) रोम के बहुत से नागरिक सेना में भरती होकर साम्राज्य के दूरवर्ती प्रदेशो मे रहने लगे। पहले ये नागरिक अपने खेतो मे स्वय खेती करते थे। अब इनके लिये यह सम्भव नही रहा, कि ये स्वय खेती कर सके। इनकी जमीने रोम के धनी मानी लोगो ने खरीद ली और खेती का काम गुलामो द्वारा लिया जाने लगा। पराजित देशो के बहुत से लोग गुलाम के रूप में रोम मे बिक्री के लिये लाये जाने शुरू हुए, और रोम मे कृषि, व्यवसाय आदि का सब काम गुलामो द्वारा होने लगा। रोम के अपने नागरिको की अपेक्षा इन गुलामो की सख्या बहुत अधिक हो गई।

(२) सुदूर प्रदेशो मे निवास करने वाले रोमन नागरिको के लिये यह सम्भव नही रहा, कि वे लोकसभा या सीनेट (रोम की रिपब्लिक मे दो सभाये होती थी, लोकसभा और सीनेट) के अधिवेशनो मे शामिल हो सके। प्रतिनिधि चुनने की प्रथा उस युग मे नही थी। जो थोड़े बहुत नागरिक रोम मे रहते थे, सब राजशक्ति उनके हाथो मे आ गई। ये नागरिक गुलामो की मदद से अपना कारोबार करते थे। इनका अपना काम भोग विलास और मौज बहार मे मस्त रहना होता था।

(३) ज्यो ज्यो रोम के साम्राज्य का विकास होता गया, नागरिकता का अधिकार भी अधिक विस्तृत होता गया। इटली को विजय करने पर रोमन लोगो ने इटली के सब लैटिन निवासियो को रोम का नागरिक बना दिया। बाद मे वे सब इटालियन लोग रोम के नागरिक बना दिये गये, जो गुलाम नही थे। कुछ समय बाद साम्राज्य भर के सब स्वतन्त्र निवासियो को (गुलामो को नही) रोम की नागरिकता का अधिकार दे दिया गया। पर इन नागरिको के लिये यह सम्भव नही था, कि ये रोम आकर लोकसभा व सीनेट के अधिवेशनो मे शामिल हो सके। अत असली राजनीतिक शक्ति रोम मे रहने वाले नागरिको के हाथ मे रही। कौसल या अन्य उच्च पदो को प्राप्त करने के लिये महत्वाकाक्षी राजनीतिज्ञो के सम्मुख एक मार्ग था, वह यह कि इन रोमनिवासी नागरिको के वोट प्राप्त करे। ये वोट एक ही तरीके से प्राप्त किये जा सकते थे, नागरिको को रुपये द्वारा सन्तुष्ट किया जाय। जो सेनापति दूर देशो मे युद्ध कर उनके समृद्ध नगरो को रोमन साम्राज्य के अधीन कर रहे थे, उनके पास धन सम्पत्ति की कमी नही थी। लूट मे वे अपार धन प्राप्त करते थे। इस धन का उपयोग वे इस बात के लिये करते थे, कि रोम के निवासी नागरिको को धन बाटकर उनके वोट प्राप्त करे। परिणाम यह था, कि रोम के निवासी मुफ्त का धन पाकर मौज बहार मे मस्त रहते थे।

(४) पर रोम के निवासी नागरिको व राजनीतिज्ञो के पास कोई ऐसा साधन नही था, जिससे वे अपने अधिकारो की रक्षा कर सके। असली शक्ति उन सेनाओ के पास थी, जो साम्राज्य के विस्तार व रक्षा के लिये साम्राज्य के दूरवर्ती प्रदेशो में रहती थी। यदि ये सेनाये रोम के रिपब्लिकन शासन के खिलाफ उठ खडी हो, तो उन्हें वश में लाने का रोम के कासल व नागरिको के पास क्या उपाय था ? इन सेनाओ के सेनापति अपने हाथ मे ऐसी शक्ति रखते थे, जिसका प्रयोग कर वे साम्राज्य के शासन-विधान की सर्वथा उपेक्षा कर सकते थे। रोम की सेना मे केवल रोमन नागरिक ही नही थे, धीरे धीरे बहुत से ऐसे सैनिक भी इसमे भरती कर लिये गये थे, जो न रोमन थे और न इटालियन ये वेतन पर भरती किये गये थे, और उस सेनापति के प्रति अनुरक्त रहते थे, जो इन्हें वेतन देता था। इनकी सहायता से शक्तिशाली सेनापति रोम के शासन-विधान की सर्वथा उपेक्षा कर सारी ताकत को अपने हाथ मे कर सकते थे।

इस दशा का परिणाम यह हुआ, कि जूलियस सीजर नाम के एक शक्तिशाली सेनापति ने रोम से रिपब्लिक का अन्त कर दिया और सारी राजशक्ति को अपने हाथ में कर लिया। यह जूलियस सीजर रोमन साम्राज्य की पश्चिमी सेनाओ का सेनापति था उसका मुख्य प्रतिस्पर्धी पोम्पे था, जो स्वय ही जूलियस के समान ही रोमन साम्राज्य का एक प्रमुख सेनापति था। पोम्पे को परास्त कर जूलियस रोम का अधिपति बन गया। रोम में यह रिवाज देर से चला आता था, कि संकट के समय में किसी व्यक्ति को एकाधिकारी (डिक्टेटर) नियुक्त किया जा सकता था। जूलियस ने इस नियम का लाभ उठाया और सीनेट द्वारा अपने को एकाधिकारी नियत करा लिया। पहले डिक्टेटर के पद पर उसकी नियुक्ति दस साल के लिये हुई। ४५ ई० पू० मे उसने सीनेट से यह प्रस्ताव स्वीकृत करा लिया, कि डिक्टेटर के पद पर वह जीवन भर रहेगा। जूलियस की शक्तिशाली सेनाओं के सम्मुख रोम की लोकसभा व सीनेट असहाय थी। वे उसकी इच्छा का विरोध करने का साहस नही कर सकती थी।

जूलियस सीजर

पर अभी रोम मे अनेक ऐसे वीर पुरुष विद्यमान थे, जो अपने राज्य मे इस प्रकार रिपब्लिक का अन्त होते हुए नही देख सकते थे। उन्होंने षड्यन्त्र करके जूलियस सीजर की हत्या कर दी। तेरह साल तक रोम के विविध राजनीतिक दलो और विभिन्न सेना

पतियो मे सघर्ष जारी रहा। इस सघर्ष में ओक्टेवियन सीजर को सफलता प्राप्त हुई। अपने सब विरोधियो को परास्त कर २७ ई० पू० मे ओक्टेवियन ने रोमन साम्राज्य की सारी राजशक्ति अपने हाथ मे कर ली। यह ओक्टेवियन सीजर जूलियस सीजर का भतीजा था। अपने चाचा के चरणचिह्नो का अनुसरण कर यह भी रोम का एकाधिकारी बन गया। ओक्टेवियन भलीभाति जानता था, कि रोम के नागरिको मे रिपब्लिक के प्रति प्रेम विद्यमान है। अत उसने लोकसभा और सीनेट को कायम रखा। पर सारी राजशक्ति अब ओक्टेवियन के हाथ मे थी। उसकी शक्ति का आधार रोम के नागरिको की इच्छा नही थी। वह अपनी सेना के बल पर रोम का कर्ता धर्ता बना था और इस सेना पर ही उसकी सत्ता निर्भर थी।

राजशक्ति को अपने हाथ मे लेकर ओक्टेवियन ने प्रिसप और आगस्टस की उपाधिया धारण की। उसने अपने को डिक्टेटर नही कहा। यह उसकी नीति कुशलता थी। पर वस्तुत जूलियस सीजर के समान वह भी रोम का एकाधिकारी था। अब रोम मे रिपब्लिक का अन्त होकर सम्राटो के शासन का प्रारम्भ हो गया था। ओक्टेवियन रोम का पहला सम्राट् था। उसने २७ ई० पू० से १५ ई० पू० तक शासन किया।

ओक्टेवियन सीजर के बाद अनेक प्रतापी सम्राटो ने रोमन साम्राज्य का शासन किया। इनमे कुछ के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। क्लोडियस (४१-५४ ई० प०) के समय मे ब्रिटेन रोमन साम्राज्य मे सम्मिलित हुआ। आर्य जाति की केल्ट शाखा ने वहा जो अनेक राज्य कायम किये हुए थे, वे अब रोम के अधीन हो गये। रोमन साम्राज्य के उत्तर मे राइन और डैन्यूब नदियो के क्षेत्र मे अनेक जातियो का निवास था। ६९ ई० के लगभग सम्राट् वस्पेसियन (६९-७९ ई० प०) के समय मे ये रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत हो गये। सम्राट ट्राजन (९८-११५ ई० प०) के समय मे रोमन साम्राज्य अपने विस्तार की चरम सीमा तक पहुच गया। पूर्व मे आर्मीनिया और मैसोपोटामिया के प्रदेशो को ट्राजन ने जीतकर अपने अधीन कर लिया। अब रोमन साम्राज्य की सीमा उत्तर मे राइन नदी, पूर्व मे ईरान की घाटी, दक्षिण मे सहारा का मरुस्थल और पश्चिम मे ब्रिटेन के पश्चिमी समुद्र तट तक विस्तृत थी।

साम्राज्य का पतन—पर यह विशाल रोमन साम्राज्य देर तक कायम नही रह सका। इसके दो कारण थे—(१) साम्राज्य की आन्तरिक निर्बलता, और (२) विविध जातियो के आक्रमण। रोम मे सम्राटो की शक्ति का मुख्य आधार उनकी सेनाये थी। सेना जिसे चाहती, सम्राट के पद पर बिठाती थी। कई बार ऐसा भी होता था, कि एक साथ अनेक व्यक्ति विभिन्न प्रदेशो मे अपने को सम्राट् घोषित कर देते थे, और अपनी सेनाओ की मदद से रोम की राजगद्दी पर अधिकार प्राप्त करने के लिये सघर्ष करते थे। सेनाओ के विविध नेता सम्राट के राजमुकुट को गेद की तरह उछालते रहते थे। इस दशा मे यह सुगम नही था कि रोमन साम्राज्य विदेशी आक्रमणो का सफलता के साथ मुकाबला कर सके।

तीसरी सदी मे अनेक जातियो ने उत्तर की तरफ से रोमन साम्राज्य पर हमले शुरू किये। इस समय राइन और डैन्यूब नदियो के उत्तर मे अनेक पराक्रमी जातिया का

का निवास था। ये आर्य जाति की ही विविध शाखाये थी, और इन्हे जर्मन व ट्यूटानिक कहते थे। तीसरी सदी मे शुरू होकर चौथी और पाचवी सदियो मे जर्मन जातियो के आक्रमण निरन्तर जारी रहे। फ्राक, लोम्बार्ड, ऐंगल आदि जर्मन जातिया रोमन साम्राज्य के विविध प्रदेशो पर कब्जा कर के वहा बसनी शुरू हुई। आज भी इन प्रदेशो के नाम इन्ही जातियो के नाम पर है। फ्राक लोग जहा बसे, वह प्रदेश फ्रास कहलाता है। इसी तरह लोम्बार्ड लोगो के प्रदेश को लोम्बार्डी और ऐंगल लोगो के प्रदेश को इङ्गलैण्ड कहते ह।

रोमन लोगो के सम्पर्क मे आकर इन जातियो ने रोमन सभ्यता और संस्कृति को अपना लिया। उन्होने जो विविध राज्य कायम किये, यद्यपि वे स्वतन्त्र थे, पर उनमे से कतिपय रोमन सम्राट् की प्रभुता को स्वीकार करते थे। यही कारण था, कि यद्यपि इन जर्मन जातियो के आक्रमणो से रोमन साम्राज्य खण्ड-खण्ड हो गया था, पर ऊपर से देखने पर उसका वैभव और प्रभाव अब भी कायम था।

साम्राज्य का विभाग—चौथी सदी के अन्तिम भाग मे रोमन सम्राट के पद पर थियोडोसियस विराजमान था। उसके प्रधान सेनापति जर्मन जाति के थे। साम्राज्य की पश्चिमी सेनाओ का सेनापति स्टिलिको था, जो वैण्डल जाति का था। पूर्वी सेनाओ का सेनापति एलेरिक था, जो गोथ जाति का था। वैण्डल और गोथ दोनो जर्मन जाति की ही शाखाये थी। यद्यपि सम्राट् के पद पर थियोडोसियस था, पर वास्तविक राजशक्ति इन दो सेनापतियो के हाथ मे थी। ३९५ ई० मे सम्राट् थियोडोसियस की मृत्यु हो गई। उसके दो लडके थे, आर्केडियस और होनोरियस। रोमन साम्राज्य के राजसिंहासन पर कौन आरूढ हो, इस प्रश्न पर इनमे लडाई शुरू हो गई। सेनापति एलेरिक ने आर्केडियस का पक्ष लिया, और कान्स्टेन्टिनोपल मे उसे सम्राट घोषित कर दिया। इसी तरह सेनापति स्टिलिको ने होनोरियस का पक्ष लिया, और इटली मे उसके सम्राट् बनने की घोषणा कर दी। इस समय से रोमन साम्राज्य दो विभागो मे विभक्त हो गया—(१) पूर्वी साम्राज्य—इसकी राजधानी कान्स्टेन्टिनोपल थी। इसके अन्तर्गत प्रदेशो मे ग्रीक भाषा और ग्रीक सस्कृति का प्रभुत्व था। (२) पश्चिमी साम्राज्य—इसका केन्द्र रोम था, और इसके प्रदेशो म लैटिन भाषा और रोमन सस्कृति का प्राधान्य था। पूर्वी रोमन साम्राज्य १४५३ ई० तक कायम रहा। तुर्क लोगो ने पन्द्रहवी सदी मे इस साम्राज्य का अन्त किया। पर पश्चिमी रोमन साम्राज्य की सत्ता देर तक कायम नही रह सकी। हूणो के आक्रमणो के कारण शीघ्र ही उसका अन्त हो गया।

हूणो के आक्रमण—मध्य एशिया के उत्तर मे चीन की सीमा पर एक वर्बर जाति का निवास था, जिसे हूण कहते थे। इसी के आक्रमणो से परेशान होकर चीन के शक्तिशाली सम्राट ट्शिनशी ने १८०० मील लम्बी दीवार बनवाई थी। इसी के हमलो के कारण भारत का गुप्त साम्राज्य खण्ड-खण्ड हो गया था। पाचवी सदी मे रोमन साम्राज्य पर भी हूणो के आक्रमण शुरू हुए। इस समय इनमे एक वीर नेता का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका नाम एट्टिला था। मध्य एशिया से पश्चिम की तरफ आगे बढकर उसने र्‌हाइन नदी तक अपना प्रभुत्व कायम कर लिया। अब उसने रोमन साम्राज्य पर हमले शुरू किये। हूण लोग टिड्डी दल के समान आते थे। वे जिधर भी निकल जाते थे, शहरो और बस्तियो को ध्वस

रोमन साम्राज्य का विस्तार
स्पेन
ग्रीस
पार्थिया
मेसोपोटामिया
उत्तरी अफ्रीका
इजिप्ट
अरब
सम्राट ट्राजन का साम्राज्य
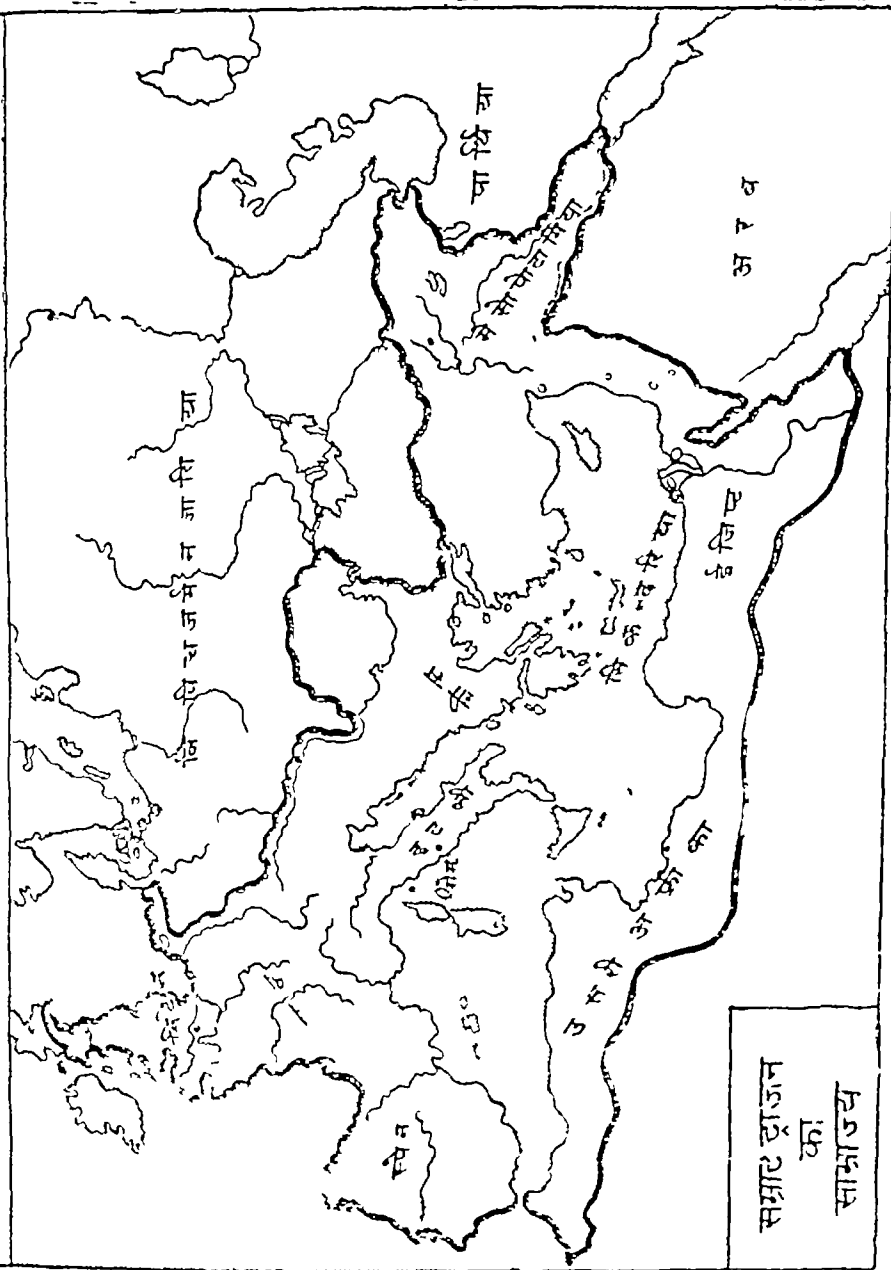
कर देते थे। बाल्कन प्रायद्वीप मे उन्होने ७० से ऊपर नगरो को नष्ट कर दिया। फ्रास मे उनके आक्रमणो से हाहाकार मच गया। इटली मे हमला कर उन्होने मिलान आदि कितने ही नगरो को भूमिसात किया। उनके आक्रमणो के कारण रोमन साम्राज्य की शक्ति जड से हिल गई। फ्राक, लोम्बार्ड, वैन्डल, गोथ आदि विविध जर्मन जातियो के सरदार एट्टिला के मुकाबले मे नही टिक सके। ४५६ ईस्वी मे वीर हूण विजेता एट्टिला की मृत्यु हुई।

पश्चिमी रोमन साम्राज्य का अन्त—हूणो के आक्रमणो के कारण पश्चिमी रोमन साम्राज्य की राजशक्ति अत्यन्त निर्बल हो गई थी। सब जगह अव्यवस्था और अशान्ति विद्यमान थी। ऐसे समय मे रोम मे एक ऐसा शक्तिशाली सम्राट् नही था, जो कि विविध सरदारो को काबू मे कर के साम्राज्य को सम्भाल सके। ४५६ से ४७५ ई० तक बीस सालो मे रोम मे दस सम्राटो ने शासन किया। ये सब निर्बल और अशक्त थे। इस दशा मे विविध जर्मन जातियो के सरदार अपने अपने प्रदेशो मे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो गये। ब्रिटेन, फ्रास, स्पेन, लोम्बार्डी आदि सब प्रदेश रोम की अधीनता से मुक्त हो गये और वहा नये राजवशो ने स्वतन्त्र रूप से शासन प्रारम्भ कर दिया। ४७५ ईस्वी मे खास रोम मे भी गोथ जाति के एक सरदार ने अन्तिम रोमन सम्राट को पदच्युत कर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। पूर्वी रोमन साम्राज्य का अब अन्त हो गया था। पर कान्स्टेन्टिनोपल में अब भी पश्चिमी रोमन सम्राटो का शासन विद्यमान था। कहने को तो कान्स्टेन्टिनोपल के सम्राट 'रोमन' थे, पर वस्तुत उन के साम्राज्य मे ग्रीक संस्कृति का प्रभुत्व था।

३ ईसाई धर्म का प्रादुर्भाव

यहूदी लोग—हम इस इतिहास मे फिनीशिया का जिक्र कर चुके है। यह प्रदेश एशिया माइनर के दक्षिण मे भूमध्य सागर के तट पर विद्यमान था। फिनीशिया के ठीक नीचे पैलेस्टाइन का प्रदेश था, जिस मे यहूदी लोग निवास करते थे। यद्यपि यहूदी लोग इस प्रदेश मे १००० ई० पू० से भी पहले आबाद हो गये थे, पर उन्होने किसी शक्तिशाली राज्य का विकास नही किया था। उनका प्रदेश मैसोपोटामिया और ईजिप्ट के बीच मे था, अत इन शक्तिशाली देशो के राजा समय समय पर इस पर आक्रमण करते रहते थे। बाद मे जब पर्शिया, मैसिडोनिया और रोम के शक्तिशाली राज्यो का विकास हुआ, तो पैलेस्टाइन उन के अधीन रहा। यही कारण है, कि राजनीतिक दृष्टि से यहूदी लोगो का ससार के प्राचीन इतिहास मे कोई विशेष महत्व नहीं रहा।

जीसस क्राइस्ट—जिस समय ओक्टेवियन सीजर रोम मे रिपब्लिक का अन्त कर सारी राजनीतिक शक्ति अपने हाथ मे कर रहा था, रोमन साम्राज्य के इस सुदूरवर्ती प्रदेश (पैलेस्टाइन) मे एक महात्मा का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका नाम जीसस या यीशु था। वह एक यहूदी कुल मे उत्पन्न हुआ था। इसके प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध मे कोई वृत्तान्त उपलब्ध नही होता। ईसाई लोग उसे ईश्वर का पुत्र मानते है, और यह समझते है, कि वह भगवान का अवतार था। जीसस ने यहूदियो मे एक नये धर्म का प्रचार करना शुरु किया। वह कहता था, हमें पृथिवी को स्वर्ग बनाने का यत्न करना चाहिए, पृथिवी पर स्वर्ग का राज्य स्थापित करना चाहिए। परमेश्वर सबका पिता है, उसके सामने सब बराबर है।

जिस प्रकार सूर्य प्राणिमात्र को समान रूप से रोशनी देता है, वैसे ही परमेश्वर की दी हुई वस्तुए भी सब के लिए एक सी है। ईश्वर किसी का पक्ष नही लेता, उसके लिये सब मनुष्य एक सदृश है। जीसस ने जो उपदेश दिये, वे बाइबल मे सगृहीत है। उसके अनुयायी ईसाई कहते है, और वे बाइबल को अपनी धर्म-पुस्तक मानते है। उनकी दृष्टि मे बाइबल ईश्वरीय ज्ञान है।

धीरे-धीरे बहुत से लोग यीशु के शिष्य होते गये। वह एक ईश्वर के अतिरिक्त अन्य देवी देवताओ को नही मानता था। पर उस समय के रोमन लोग विविध देवी देवताओ की पूजा करते थे। जब रोम मे रिपब्लिक का अन्त हुआ, तो साम्राज्य के निवासी रोमन सम्राट् की भी देवता के रूप मे पूजा करने लगे। ससार की पुरानी सभ्यताओ मे राजा को देवता का रूप माना जाता था। ईजिप्ट, बैबिलोन आदि के शासक जहा राजा थे, वहा साथ ही प्रधान धर्माध्यक्ष भी होते थे। जनता उन्हे साक्षात् देवता मानती थी। विशाल रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत विविध प्रदेशो मे राजा को दैवी मानने की परम्परा देर से चली आती थी। जब रोम मे रिपब्लिक का अन्त होकर सम्राट् (प्रिसप व सीजर) का शासन शुरु हुआ, तो जनता उसे भी दैवी मानने लगी, और देवता रूप मे उसकी पूजा भी करने लगी। पर जीसस कहता था, ईश्वर केवल एक है। केवल एक ईश्वर की ही पूजा करना उचित है, अन्य देवताओ की पूजा ठीक नही। रोमन साम्राज्य के कर्मचारियो ने इसे राजद्रोह समझा। जीसस को राजद्रोह मे गिरफ्तार कर लिया गया और उसे प्राणदण्ड दिया गया। जीसस को सूली पर चढाने के समय मे ही ईस्वी सन् का प्रारम्भ होता है। इसी सन को हम इस इतिहास मे प्रयुक्त कर रहे है।

ईसाई धर्म का प्रचार—जीसस के समय उसकी शिक्षाओ का प्रसार केवल पैलेस्टाइन मे हुआ था। पर उस के शिष्य बडे कर्मठ थे। राज्य की शक्ति उन्हे प्राप्त नही थी, रोम के राजा और राज कर्मचारी उन पर घोर अत्याचार करते थे। पर सब प्रकार के कष्टो और अत्याचारो को सहते हुए भी ईसाई भिक्खु अपने गुरु की शिक्षाओ के प्रचार मे तत्पर थे। रोमन साम्राज्य मे जनसाधारण की दशा अच्छी नही थी। दुखी व पीडित जनता जीसस की शिक्षाओ से सान्त्वना और शक्ति प्राप्त करती थी। धीरे-धीरे ईसाई धर्म का प्रचार बहुत बढता गया। सर्वसाधारण जनता उसकी अनुयायी होती गयी।

सम्राट् कान्स्टेन्टाइन—३०६ ईस्वी मे कान्स्टेन्टाइन रोम का सम्राट बना। इस समय रोमन साम्राज्य पर जर्मन जातियो के आक्रमण बडे प्रबल रूप से हो रहे थे। इनके कारण साम्राज्य की दशा बहुत खराब थी। कान्स्टेन्टाइन ने अनुभव किया, कि साम्राज्य की रक्षा के लिये जनता की सहानुभूति प्राप्त करना उपयोगी है। उस ने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया। उस समय तक ईसाई मत अच्छी शक्ति प्राप्त कर चुके थे। इन सब का सहयोग कान्स्टेन्टाइन को प्राप्त हो गया और वह कुछ समय के लिये रोमन साम्राज्य को [illegible] हुआ। कान्स्टेन्टाइन का आश्रय पाकर ईसाई धर्म ने और भी उन्नति की। अब वह रोमन साम्राज्य का राजधर्म हो गया। कान्स्टेन्टाइन ने साम्राज्य के पूर्वी प्रदेश मे बाइजन्टियम को अपनी राजधानी बनाया था। उसके नाम से इस नगर का नाम कान्स्टे-न्टिनोपल हो गया। जब विशाल रोमन साम्राज्य दो भागो मे विभक्त हुआ, तो यह

कान्स्टेन्टिनोपल ही पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी बना।

४ मध्यकालीन यूरोप

सामन्त पद्धति का विकास––विविध जर्मन जातियों के आक्रमणों से विशाल रोमन साम्राज्य किस प्रकार खण्ड खण्ड हो गया था, इसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। पांचवीं सदी के बाद यूरोप में रोमन साम्राज्य का सर्वथा लोप हो गया था, और उसके स्थान पर अनेक छोटे बड़े राज्य कायम हो गये थे। इन राज्यों की संख्या दस बीस नहीं, सैकड़ों नहीं, अपितु हजार से भी अधिक थी। छठी और सातवीं सदी, यूरोप के इतिहास में अव्यवस्था और अराजकता की सदियां थीं। जिन जर्मन जातियों ने आक्रमण कर रोमन राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया था, उनके सैकड़ों सरदारों ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपने स्वतन्त्र राज्य कायम कर लिये थे। उनके अतिरिक्त, जो प्रदेश जर्मन जातियों के आक्रमण से बचे रहे थे, उन पर पुराने युग के राजकर्मचारी या बड़े जमींदार स्वतन्त्रता के साथ शासन करने लगे थे। कोई-कोई प्रदेश ईसाई महन्तों के हाथ में थे। ईसाई मठों व गिरजों के पास विशाल सम्पत्ति थी, और उनके महन्त वैभव के साथ जीवन व्यतीत करते थे। रोमन शक्ति के क्षीण होने पर भी ये महन्त अपने-अपने प्रदेश में स्वतन्त्र हो गये थे। समुद्र या नदियों के तट पर अनेक व्यापारिक नगरों का विकास रोमन युग में हुआ था। इन नगरों के व्यापारी समूहों (निगमों) में संगठित थे, अब ये निगम स्वतन्त्र हो गये थे, और राजनीतिक शक्ति भी इन्होंने प्राप्त कर ली। मतलब यह है, कि यह काल राजनीतिक दृष्टि से सर्वथा अराजकता का था। जिसके पास शक्ति थी, वही अपनी सत्ता कायम किये हुए था। सर्वसाधारण जनता की जान और माल तब तक सुरक्षित नहीं थे, जब तक वह अपने को किसी शक्तिशाली व्यक्ति की संरक्षता में न ले आवे। इसी परिस्थिति में सामन्त पद्धति का जन्म हुआ।

अव्यवस्था और अराजकता के इस युग में सामन्त पद्धति द्वारा धीरे-धीरे व्यवस्था का विकास हुआ। जिन प्रदेशों पर कोई विजेता सरदार अपना अधिकार स्थापित करता था वहां वह जीते हुए प्रदेश को अपने साथियों में बांट देता था। यदि उस विजेता सरदार को हम राजा कहें, तो उसके इन साथियों को हमें सामन्त कहना चाहिये। यद्यपि ये सामन्त अपनी जागीर राजा से प्राप्त करते थे, पर अपने प्रदेश के पूरे स्वामी होते थे। राजा के साथ उनका यह सबन्ध रहता था, कि जब राजा को आवश्यकता हो,वे अपने सैनिकों के साथ राजा की सहायता करें। कौन सामन्त कितने सैनिक लावे, यह बात रिवाज द्वारा निश्चित होती थी। इस सैनिक सहायता के अतिरिक्त, ये सामन्त विशेष अवसरों पर राजा की सेवा में विविध प्रकार के उपहार भी भेंट किया करते थे। कोई निश्चित टैक्स इन्हें नहीं देना पड़ता था। जब तक ये राजा के विरुद्ध विद्रोह न करें, उस के प्रति अनुरक्त रहें, तब तक जागीर पर इनका व इनकी सन्तान का अधिकार रहता था। सामन्त लोग भी अपनी जागीर को अपने साथियों में बांट देते थे। इस प्रकार सामन्तों के भी सामन्त होते थे। उनका सम्बन्ध अपने स्वामी से ठीक उसी प्रकार का होता था, जैसा कि बड़े सामन्त का अपने राजा से।

जिन प्रदेशो पर किसी विजेता सरदार ने अधिकार स्थापित नही किया था, वहा भी इसी ढग की सामन्त पद्धति का विकास हो गया था। वहा के निर्बल लोगो ने अपने प्रदेश के शक्तिशाली व्यक्ति के साथ और इन शक्तिशाली व्यक्तियो ने उस प्रदेश के और अधिक प्रबल मनुष्य के साथ इसी पद्धति से सम्बन्ध कर लिया था। सामन्त पद्धति एक पिरामिड के समान थी, जिसमे सब से ऊपर एक प्रतापी राजा व राजाधिराज होता था, उनके नीचे कुछ बडे-बडे सामन्त, उनके नीचे बहुत से राव राजा और सब से नीचे अनगिनत जागीरदार व ठाकुर होते थे।

सामन्त पद्धति के समय मे विविध राजाओ मे परस्पर सघर्ष चलता रहता था। जो राजा हार जाता था, वह प्राय विजेता का सामन्त बन जाता था। अनेक प्रतापी सामन्त अपने राजा के विरुद्ध विद्रोह कर अपने को स्वतन्त्र राजा बनाने का भी उद्योग करते रहते थे। इस प्रकार सामन्त पद्धति के युग मे शान्ति या व्यवस्था कायम नही रह सकती थी। पाचवी और छठी सदियो मे यूरोप के विविध सरदारो व राजाओ मे यह सघर्ष निरन्तर जारी रहा। बाद मे कुछ शक्तिशाली राजा इस बात मे सफल हुए, कि बहुत से सामन्तो व राजाओ को जीतकर उन्हे पूरी तरह से अपने अधीन कर ले और एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना करे।

शार्लमेगन--विविध सामन्तो और राजाओ के इस सघर्ष मे सबसे अधिक सफलता चार्ल्स को मिली। यह चार्ल्स मार्टल उन सब प्रदेशो का अधिपति था, महाराजाधिराज था जहा अब फ्रास, बेल्जियम, हालैन्ड, जर्मनी और आस्ट्रिया के राज्य विद्यमान है। यह मतलब नही कि इन विस्तृत प्रदेशो का वह एकक्षत्र सम्राट था। इन प्रदेशो मे बहुत से छोटे बडे सामन्त राजा राज्य करते थे, पर वे सब इस चार्ल्स मार्टल का आधिपत्य स्वीकार करते थे। चार्ल्स मार्टल का शासनकाल ७५१ ईस्वी मे शुरू हुआ। उस के बाद उसका लडका पिपिन और फिर शार्लमेगन (७६८ ई०) इस विस्तृत साम्राज्य का अधिपति बना। शार्लमेगन ने अपने साम्राज्य को और अधिक विस्तृत किया। पहले उसने उत्तरी इटली को विजय किया और बाद मे (७७५ ई०) रोम भी उसकी अधीनता म आ गया।

अब शार्लमेगन फ्रास, जर्मनी, हालैन्ड, बेल्जियम आस्ट्रिया और इटली का स्वामी था। रोम उसके अधीन था। उसका साम्राज्य पुराने रोमन साम्राज्य का स्मरण दिलाता था। रोमन साम्राज्य की स्मृति अभी तक जीवित थी। रोम का राजनीतिक साम्राज्य यद्यपि नष्ट हो चुका था, पर रोम का धार्मिक साम्राज्य अभी तक विद्यमान था। रोम के पोप अब भी ईसाई जगत के धर्मचक्रवर्ती होते थे। रोम के धार्मिक साम्राज्य ने रोम के राजनीतिक साम्राज्य की कल्पना को भी जीवित रखा हुआ था। अब शार्लमेगन द्वारा इसी कल्पना को मूर्त रूप धारण करने का अवसर प्राप्त हुआ।

पवित्र रोमन साम्राज्य का प्रारम्भ—७९५ ई० मे पोप के प्रभावशाली पद पर लियो तृतीय आरूढ हुआ। रोम मे लियो तृतीय के विरोधी बहुत अधिक थे। ७९९ ई० मे जब रोम मे एक जलूस निकल रहा था लियो पर हमला हुआ और उसे विवश होकर रोम से भागना पडा। इस समय इटली शार्लमेगन के अधिकार मे था। अत स्वाभाविक रूप से लियो तृतीय ने अपनी रक्षा के लिये शार्लमेगन की शरण ली। ८०० ईस्वी मे शार्ल-

मेगन की सहायता से लियो तृतीय ने फिर रोम मे प्रवेश किया और पोप की गद्दी पर अधिकार किया।

८०० ईस्वी मे क्रिसमस के दिन एक बडी महत्वपूर्ण घटना हुई। जिस समय शार्लमेगन सेण्ट पीटर के गिरजे मे प्रार्थना कर के उठ रहा था, पोप लियो तृतीय ने उसके सिर पर राजमुकुट धर उसे 'सीजर' और 'आगस्टस' के रूप मे सम्बोधित किया। 'सीजर' और 'आगस्टस' प्राचीन रोमन सम्राटो की उपाधिया थी। शार्लमेगन को सीजर और आगस्टस बनाकर लियो तृतीय ने रोमन साम्राज्य का पुनरुद्धार किया। क्योकि ये नये रोमन सम्राट् पोप से अभिषिक्त होकर सम्राट् पद को प्राप्त करते थे, अत इन्हें 'पवित्र रोमन सम्राट्' और इनके साम्राज्य को "पवित्र रोमन रोमन साम्राज्य" (होली रोमन एम्पायर) कहते है।

४७६ ई० मे पश्चिमी रोमन साम्राज्य का अन्तिम रूप मे विनाश हुआ था। अब आठवी और नवी शताब्दियो के सन्धिकाल मे, ८०० ईस्वी के क्रिसमस के दिन इसका पुनरुद्धार हुआ। यद्यपि कहने को यह रोमन साम्राज्य था पर इसकी शक्ति का केन्द्र इटली न होकर जर्मनी था। ये नये रोमन सम्राट् अबाधित रूप मे एकच्छत्र शासन नही कर सकते थे, क्योकि इनकी शक्ति उन अनगिनत सामन्तो पर आश्रित थी जो सदा विद्रोह और स्वेच्छाचार के लिये उद्यत रहते थे। पवित्र रोमन सम्राट का पद भी शार्लमेगन के वशजो मे सदा स्थिर नही रहा। जब अन्य राजवश अधिक प्रबल हो गये और अन्य राजाओ व सामन्तो को अपनी प्रभुता स्वीकृत कराने मे समर्थ हुए, तो पवित्र रोमन सम्राट् का पद भी उन वशो मे चला गया।

शार्लमेगन के उत्तराधिकारी—८१४ ईस्वी मे शार्लमेगन की मृत्यु हुई। इसमें सन्देह नही, कि वह बडा प्रतापी और शक्तिशाली सम्राट था। उसकी विजयो के कारण एक बार फिर कुछ समय के लिये यूरोप मे राजनीतिक एकता स्थापित हो गई थी। पर यह एकता देर तक कायम नही रही। शार्लमेगन की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के सम्बन्ध में लडाई प्रारम्भ हो गई। शार्लमेगन का साम्राज्य बहुत विस्तृत था। उसमे भाषा, संस्कृति आदि की दृष्टि से अनेक भिन्नताये थी। र्‌हाइन नदी को पारकर उसके पश्चिम व दक्षिण मे जो जर्मन जातिया बसी थी, वे शीघ्र ही रोमन सभ्यता के असर मे आ गई थी। ये प्रदेश रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत रह चुके थे, अत इनमे बसनेवाले फ्रेक आदि जर्मन जातियो के लोग बहुत कुछ रोमन प्रभाव मे आ गये थे। इसके विपरीत र्‌हाइन नदी के उत्तर और पूर्व मे आबाद हुए जर्मन लोग रोमन सभ्यता के असर मे सर्वथा वचित रहे थे। परिणाम यह हुआ, कि र्‌हाइन के पश्चिम और पूर्व के प्रदेशो में भिन्न-भिन्न प्रकार से सभ्यता विकसित होने लगी। शार्लमेगन के वशधरो के पारस्परिक झगडो के कारण ये दोनो प्रदेश एक दूसरे से राजनीतिक दृष्टि से पृथक हो गये। र्‌हाइन के पश्चिम मे फ्रास के पृथक् राज्य का निर्माण हुआ, जो पवित्र रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत नही था। र्‌हाइन के पूर्व में विविध राजा व महाराजा पवित्र रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत रहते हुए निरन्तर एक दूसरे के साथ सघर्ष म व्यापृत रहे। इन शक्तिशाली राजाओ की यह आकांक्षा रहती थी, कि वे अन्य सब को वशवर्ती रख कर रोम मे जाकर पोप द्वारा अपना राज्याभि

षेक करावे, और इस प्रकार पवित्र रोमन सम्राट् के गौरवशाली पद को प्राप्त करे। फ्रास के अतिरिक्त पश्चिमी यूरोप के विविध प्रदेश स्थूल रूप से इस रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत माने जाते थे। पर इस 'साम्राज्य' की सीमा घटती-बढती रहती थी। यह पवित्र रोमन सम्राट् की अपनी शक्ति पर निर्भर था कि वह कितने सामन्त राजाओ (जो ड्यूक, अर्ल, बैरन आदि कहलाते थे) को अपने अधीन व वशवर्ती रख सकता है।

इङ्गलैड—इङ्गलैण्ड पवित्र रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत नही रहा। वहा जिस एग्लो-सैक्सन जाति ने आक्रमण कर रोमन शासन का अन्त किया था, उसी के विविध सरदार वहा पर शासन करते रहे। धीरे-धीरे वहा भी सामन्त-पद्धति का विकास हुआ और नवी सदी के शुरू (८२८ ईस्वी) मे एग्बर्ट नाम का राजा इङ्गलैण्ड के अन्य राजाओ को अधीनता मे लाने मे समर्थ हुआ। एग्बर्ट के उत्तराधिकारी भी प्रतापी और महत्वाकाक्षी थे। वे ग्यारहवी सदी के मध्य तक इङ्गलैण्ड मे अपना अबाधित शासन कायम रखने मे समर्थ रहे।

५ क्रूसेड

छठी शताब्दी के अन्त मे अरब के मरुस्थल मे एक महान नेता तथा सुधारक का जन्म हुआ। इसका नाम था मुहम्मद। मुहम्मद से पूर्व अरब मे बहुत सी छोटी-छोटी जातिया थी जो निरन्तर आपस मे लडती रहती थी। अरब लोग देवी-देवताओ की पूजा करते थे और अनेक विधि-विधानो तथा पूजा-पाठ द्वारा उन्हे सन्तुष्ट करते थे। मुहम्मद ने अरब के इस पुराने धर्म मे सुधार किया। ईश्वर एक है, सब मनुष्य उस एक ईश्वर के पुत्र है, सब परस्पर भाई है—इन सिद्धान्तो का प्रचार मुहम्मद ने किया। इतना ही नही, मुहम्मद ने अरब की विविध जातियो को सगठित कर उसे एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे परिवर्तित किया। इसके बाद अरब लोगो ने बडी उन्नति की। देखते-देखते अरब का साम्राज्य पूर्व मे सिन्ध नदी तक और पश्चिम मे स्पेन तक विस्तृत हो गया। सिन्ध, बिलोचिस्तान, पर्शिया, ईराक, आर्मीनिया, काशगर, तुर्किस्तान, एशिया माइनर, पेलेस्टाइन, ईजिप्ट, उत्तरी अफ्रीका और स्पेन—ये सब प्रदेश अरब साम्राज्य के अन्तर्गत थे। सभ्यता के क्षेत्र मे भी अरब लोगो ने बडी उन्नति की। गणित, ज्योतिष, चिकित्सा आदि के क्षेत्र मे इन लोगो ने बहुत सी नई खोजे की। अरब लोग धार्मिक क्षेत्र मे भी सहिष्णु थे। ईसाइयो की पवित्र भूमि पेलेस्टाइन इनके साम्राज्य के अन्तर्गत थी—पर वहा तीर्थ करने के लिये जाने वाले ईसाई यात्रियो पर वे अत्याचार नही करते थे।

सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में अरबों से परास्त हो गये। यूइशि, कुशाण और हूण जातियां जिस प्रकार भारत की उन्नत सभ्यता के सम्पर्क में आकर भारत की संस्कृति आदि को अपनाने के लिये विवश हुई थी, वैसे ही तुर्क जातियां अरबों की संस्कृति व धर्म को स्वीकार करने के लिये विवश हुई। जल की धारा के समान संस्कृति भी ऊपर से नीचे की ओर बहती रहती है। अरबों की सभ्यता तुर्क सभ्यता की अपेक्षा ऊंची थी। तुर्क लोग धर्म और सभ्यता के क्षेत्र मे अरबो द्वारा परास्त हो गये।

पर तुर्क लोग अरबों के समान सहिष्णु नही थे। ईसाइयों की धर्म-भूमि पैलेस्टाइन अरब साम्राज्य के अन्तर्गत थी। ईसाई लोग बडी संख्या मे पैलेस्टाइन में तीर्थयात्रा के लिये आते थे। अरब लोग उन पर कोई अत्याचार नही करते थे। पर अरब-साम्राज्य को नष्ट कर तुर्क जातियों ने अपने जो विविध राज्य कायम किये थे, उनके शासक अरबों के समान सहिष्णु नही थे। उन्होंने पैलेस्टाइन मे आनेवाले ईसाई यात्रियों पर अत्याचार शुरू किये और यूरोप के ईसाई जगत मे इस बात पर भारी असन्तोष उत्पन्न हुआ।

क्रूसेड का प्रचार—उस समय रोम का पोप अर्बन द्वितीय था। उसने १०९५ ईस्वी मे यूरोप के विविध राजाओं से अपील की, कि आपस के युद्धों को बन्द कर पैलेस्टाइन की पवित्र भूमि को तुर्कों की अधीनता से मुक्त करावें। पीटर नाम का एक ईसाई भिक्षु सारे यूरोप मे इस बात के लिये आन्दोलन करता हुआ भ्रमण करने लगा, कि जनता पवित्र धर्मभूमि को तुर्कों से स्वतन्त्र कराने के लिये तैयार हो। पीटर नंगे पैर सब जगह जाता था, उसके शरीर पर मोटे कपडे रहते थे, उसके हाथ मे एक विशाल क्रास होता था। वह सब जगह बाजारों और मण्डियों में जनता को एकत्र कर उन्हे धर्मयुद्ध के लिये प्रेरित करता था। पीटर और उसके साथियों के प्रयत्न का परिणाम यह हुआ, कि सारे यूरोप में धार्मिक जोश फैल गया, और लोग धर्मयुद्ध (क्रूसेड) के लिये निकल पडे।

इतिहास में यह शायद पहला अवसर था, जब यूरोप की सर्वसाधारण जनता एक विचार व एक भावना से परिपूर्ण हुई थी। क्रूसेड मे केवल वे लोग ही शामिल नही हुए थे, जिनका पेशा ही लडना था। इसमें सन्देह नही कि अनेक राजा महाराजा, सामन्त व ठाकुर पोप अर्बन द्वितीय की प्रेरणा से धर्मयुद्ध के लिये मैदान मे उतर आये थे। पर सर्वसाधारण जनता ने इन क्रूसेडों में बहुत दिलचस्पी दिखाई थी, और किसान, कारीगर, व्यापारी आदि भी बडी संख्या में इनमे शामिल हुए थे। यूरोप के लोग इस समय यह अनुभव करते थे, कि उन्हें एक ऐसे उद्देश्य को सम्मुख रख कर लडना है, जिसके साथ उन सबका सम्बन्ध है। विधर्मियों से अपनी धर्मभूमि की रक्षा करना उन्हे एक ऐसा उद्देश्य प्रतीत होता था, जिसके सम्मुख उन्होंने आपस के सब झगडों को भुला दिया था।

क्रूसेडों का परिणाम—कुल मिला कर आठ क्रूसेड (१०९५ से १२५० ई० तक) हुए। पहले दो क्रूसेडों मे सम्मिलित धर्म-सैनिक पैलेस्टाइन तक पहुंच भी नही सके। उस समय तक लोगों को भूगोल का ज्ञान बहुत कम था। ईसाई धर्म के ये सैनिक पैलेस्टाइन की बजाय हंगरी पहुंच गये और वहां के निवासियों को ही विधर्मी तुर्क समझ कर उनके साथ उलझ गये। वहां उनका बुरी तरह से संहार हुआ।

१०९९ ईस्वी में क्रूसेडर लोग पैलेस्टाइन पहुंचने मे समर्थ हुए। वहां भयंकर रूप से

नर हत्या हुई। घनघोर युद्ध के बाद ईसाई धर्म-सैनिक जेरुमलम (पैलेस्टाइन की राजधानी) पहुच पाये, और उन्होने अपने तीर्थस्थान को तुर्को की अधीनता से मुक्त किया।

पर जेरुमलम देर तक ईसाइयो के हाथ मे न रह सका। सलादीन नामक मुस्लिम सरदार ने ईसाइयो के विरुद्ध जिहाद (धर्मयुद्ध) का प्रारम्भ किया और मुस्लिम सैनिको को सगठित कर ११८७ ई० मे फिर जेरुसलम पर अधिकार कर लिया। सलादीन और उसके मुस्लिम धर्म-सैनिको ने ईसाइयो पर घोर अत्याचार किये। इस पर यूरोप मे फिर क्रूसेडो का सगठन किया गया। इन क्रूसेडो का वर्णन कर सकना यहा सभव नही है। पर अन्ततोगत्वा जेरुसलम और पैलेस्टाइन पर तुर्क लोगो का ही अधिकार रहा। ईसाई क्रूसेडर उन्हे तुर्को से स्वतन्त्र नही करा सके।

यद्यपि क्रूसेडर अपना उद्देश्य पूर्ण नही कर सके, पर इनसे यह लाभ अवश्य हुआ, कि यूरोप के विविध राजा महाराजा कुछ समय के लिये एक उद्देश्य मे सगठित हो गये, जनता मे नये उत्साह का सचार हुआ और सर्वसाधारण लोगो को अन्य देशो के अवलोकन का अवसर मिला। इन धर्म युद्धो मे व्यापार व पर्यटन को बडा प्रोत्साहन मिला। जनता की दृष्टि विशाल होने मे इनसे बहुत सहायता मिली।

६ चर्च की स्थिति

चर्च का महत्व—मध्यकालीन यूरोप मे क्रिश्चियन चर्च का प्रभाव बहुत अधिक था। उस समय के राजाओ को प्रजा की भलाई का जरा भी ध्यान नही था। उन्हे आपस मे लडने झगडने मे ही फुरसत नही मिलती थी। सामन्त पद्धति के कारण उस समय के राज्य बहुत असगठित तथा अव्यवस्थित थे। परन्तु क्रिश्चियन चर्च की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न थी। चर्च का जनता पर अतुल प्रभाव था। सब ईसाई लोग पोप को अपना गुरु मानते थे। चर्च का सगठन बहुत उत्तम था। स्थान-स्थान पर ईसाई मठ बने हुए थे। उनके पादरी पोप के अधीन थे, और उसकी आज्ञाओ का पालन करते थे। उस समय यूरोप मे जो भी शिक्षा विद्या व प्रकाश था वह सब चर्च मे केन्द्रित था। सर्वसाधारण जनता चर्च से आकर शान्ति और आश्वासन अनुभव करती थी। पादरी लोग जनता को इहलोक व परलोक मे सुख देने के लिये विविध उपायो का अवलम्बन करते थे।

चर्च की शक्ति—मध्य काल मे यूरोप का चर्च बडा समृद्ध व शक्तिशाली था। लोग समय समय पर चर्च को दान दक्षिणा देते रहते थे। जिन लोगो के कोई सन्तान न हो, वे प्राय अपनी सम्पत्ति चर्च को दे देते थे। दान दक्षिणा चढावा और विरासत मे प्राप्त हुई सम्पत्ति के कारण चर्च बहुत अधिक समृद्ध व वैभवपूर्ण हो गया था। किसी-किसी देश मे तो कुल सम्पत्ति का चौथाई भाग तक चर्च के स्वत्व मे था।

करता था। चर्च से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति, पुरोहित व पुजारी राज-करो से मुक्त होते थे। चर्च की सम्पत्ति पर राज्यकर नही लगा सकता था। इसके विपरीत, चर्च के टैक्सो से कोई वंचित नही होता था। चर्च के अपने कानून थे, अपने न्यायालय थे, अपनी पुलिस थी और अपनी दण्ड-व्यवस्था थी। चर्च का संगठन ठीक राज्यो का सा था। चर्च की अपनी सरकार थी। प्रत्येक मनुष्य चर्च की सरकार के अधीन होता था, चाहे वह पुरोहित हो या सामान्य व्यक्ति। पर चर्च के आदमियो पर राजा का कानून नही लगता था। उन्हें राजकीय न्यायालय दण्ड नही दे सकते थे।

राजा और चर्च—चर्च की स्थिति सब राज्यो व राजाओ से ऊपर थी। प्रत्येक राजा उसके अधीन होता था। यदि चर्च चाहे तो किसी भी राजा को पदच्युत कर सकता था। अपनी आज्ञा को मनवाने के लिये चर्च के पास चार बडे साधन थे—

(१) **धर्म-बहिष्कार**—यदि कोई राजा व अन्य मनुष्य चर्च की बात को न माने, तो चर्च उसे धर्म-बहिष्कृत कर देता था। आजकल धर्म से बहिष्कृत हो जाना बडी बात नही है। पर मध्यकाल के यूरोपियन लोग धर्मप्राण होते थे। धर्म से बहिष्कृत कर दिये जाने पर उन्हे इस लोक और परलोक मे कल्याण का मार्ग अवरुद्ध प्रतीत होता था। धर्म-बहिष्कार के डर से वे तुरन्त काबू मे आ जाते थे।

(२) **धार्मिक हडताल**—यदि कोई राजा धर्म-बहिष्कार से काबू मे न आवे, तो चर्च उसके राज्य मे हडताल कर देता था। वहा पादरी अपना काम बन्द कर देते थे। बच्चो का बपतिस्मा नही होता था, मृतको का संस्कार नही हो सकता था, विवाह बन्द हो जाते थे। चर्च के घन्टे नही सुनाई देते थे। पादरी लोग श्रद्धालु भक्तो से पाप श्रवण करना बन्द कर देते थे। धर्मप्राण जनता चिन्ताकुल हो किकर्तव्यविमूढ हो जाती थी। सारे राज्य में हाहाकार मच जाता था। इस दशा मे राजा को विवश होकर चर्च के सम्मुख सिर झुकाना पडता था।

(३) **पदच्युत करना**—यदि इतने मे भी कोई राजा चर्च के काबू मे न आते तो पोप उसे पदच्युत कर उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को राजा बनाने की घोषणा करता था और धर्मप्राण प्रजा को आज्ञा देता था, कि पदच्युत राजा का साथ छोडकर नये राजा का अनुगमन करे। उस समय की यूरोपियन जनता पोप की आज्ञा का उल्लघन नही करती थी।

(४) **क्रूसेड**—यदि किसी प्रदेश मे चर्च के विरुद्ध भावना हो और वहा के लोग पोप व उसके अधिकारियो की आज्ञा का पालन न करे, तो उस प्रदेश के खिलाफ क्रूसेड (धर्म-युद्ध) की घोषणा कर दी जाती थी। भक्त ईसाइयो के दल के दल उस प्रदेश पर हमला करते थे और वहा की जनता पर भयकर से भयकर अत्याचार कर उसे पोप का वशवर्ती होने के लिये बाधित करते थे। पोप की आज्ञा से केवल पैलेस्टाइन के विधर्मियो के खिलाफ ही क्रूसेड नही हुए, अपितु क्रिश्चियन जगत मे भी उन प्रदेशो के विरुद्ध धर्मयुद्ध की घोषणा की गई, जो किसी भी प्रकार पोप व चर्च के आदेशो की उपेक्षा करने का साहस करते थे।

मध्यकाल मे पोप और चर्च की यह अपार शक्ति थी।

नये प्रदेशों की खोज

पन्द्रहवीं सोलहवीं सदियों में

भारत

चीन

कोलम्बस की यात्रायें

वास्को डी गामा की यात्रायें

मैगल्लन की यात्रायें
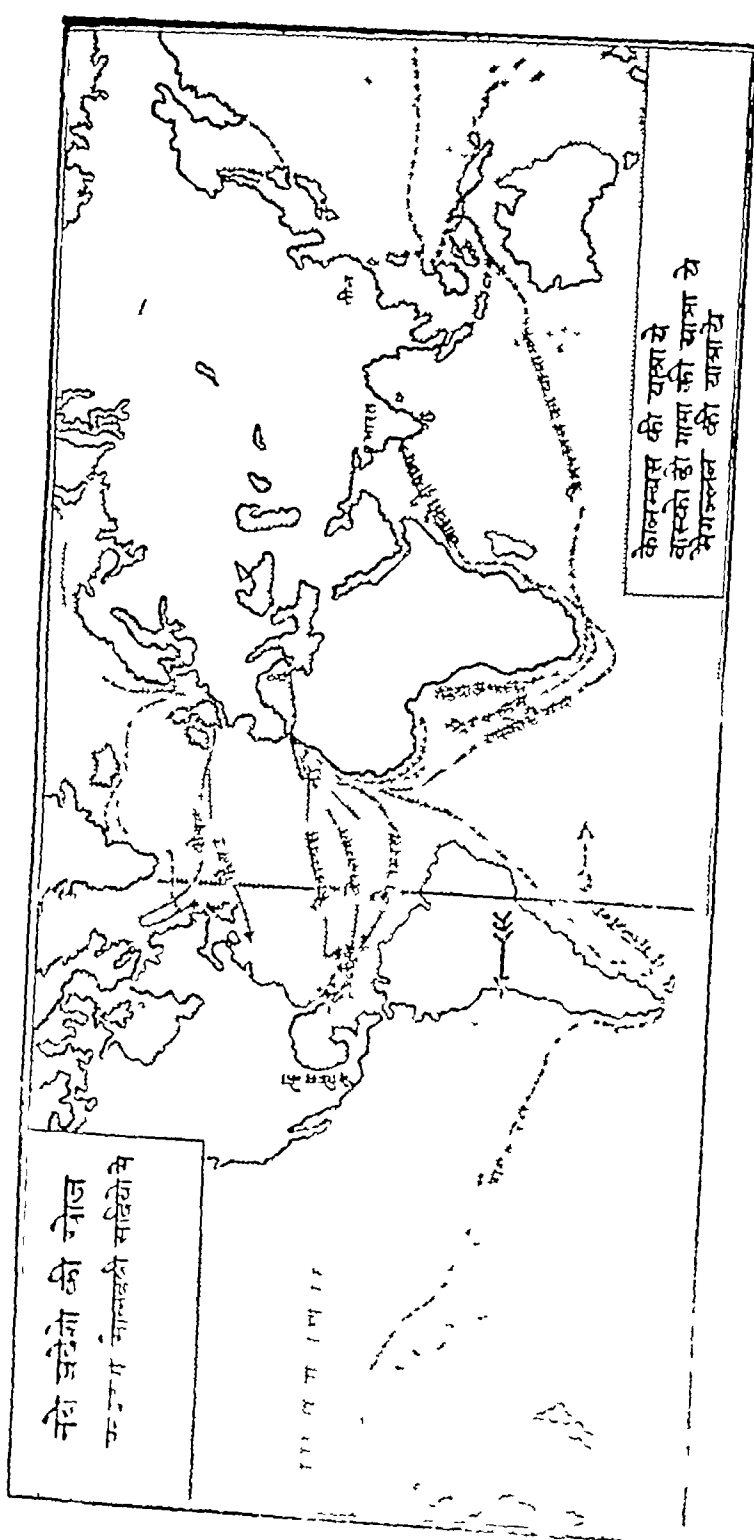
चर्च और राजा के मध्य संघर्ष—साधारणतया मध्यकालीन यूरोप के सब राजा चर्च व पोप के वशवर्ती थे । पर कुछ राजाओ ने उसका विरोध करने का भी साहस किया। इस प्रसग मे फ्रेडरिक द्वितीय का नाम उल्लेखनीय है । यह बारहवी सदी के अन्त (११९८ ई०) मे पवित्र रोमन सम्राट के गौरवमय पद पर आरूढ हुआ था । फ्रेडरिक द्वितीय का बचपन सिसली मे व्यतीत हुआ था । यह द्वीप पहले अरबो के अधीन रह चुका था, अरब विचारधारा और सभ्यता का इस पर बहुत प्रभाव था । फ्रेडरिक की शिक्षा के लिये जो अध्यापक नियुक्त हुए थे, उनमे अनेक अरब भी थे । इस युग मे अरब लोग ईसाइयो के समान सकीर्ण, धर्मान्ध व असहिष्णु न थे । उनके सम्पर्क मे रहने के कारण फ्रेडरिक के हृदय मे भी धर्म की उदात्त व उदार कल्पना विकसित हो गई थी और वह चर्च व पोप के प्रभुत्त्व को सहने के लिय तैयार नही था । शीघ्र ही पोप के साथ उसका झगडा हो गया और उसे धर्म बहिष्कृत कर दिया गया । पोप और फ्रेडरिक का सघर्ष निरन्तर जारी रहा । अन्त मे सम्राट फ्रेडरिक द्वितीय की पराजय हुई । अब तक भी यूरोप मे पोप व चर्च का सामना करने की शक्ति सम्राटो मे भी नही थी ।

पर धीरे-धीरे यूरोप के शक्तिशाली राजा पोप का मुकाबला करने के लिये कटिबद्ध हो रहेथे । चौदहवी सदी के शुरू तक यह दशा हो गई थी, कि फ्रास के राजा को जब बहिष्कृत करने के लिये जब पोप ने इरादा किया, तो फ्रास के राजा की आज्ञा से पोप को कुछ सैनिको ने रोम मे ही गिरफ्तार कर लिया । चौदहवी सदी मे पोप व चर्च का प्रभाव कम होने लग गया था । कारण यह है, कि धीरे-धीरे चर्च मे विकार आने लगा था । पोप और अन्य पादरी लोग अपने कर्त्तव्य से विमुख हो भोग-विलास मे मग्न रहने लगे थे । पोप एक वैभवशाली सम्राट के समान जीवन व्यतीत करता था । उसके बिशपो व एबटो की स्थिति बडे-बडे सामन्तो और मनसबदारो के समान थी । सम्पत्ति बढने के साथ-साथ पादरियो मे अनेक बुराइया भी आने लगी थी । धर्म गुरु का असली कार्य सेवा, परोपकार व सन्मार्ग का प्रदर्शन है । पर यूरोप के मध्यकालीन धर्म गुरु पदो के लिये आपस मे लडते थे, आमोद-प्रमोद मे मस्त रहते थे और स्वार्थमय जीवन व्यतीत करते थे । इस स्थिति मे यह स्वाभाविक था, कि चर्च का प्रभाव धीरे-धीरे कम होने लगे और लोग यह सोचने लगे कि क्या चर्च की यह अपार सम्पत्ति और भोगपूर्ण वातावरण क्रिश्चियन धर्म के अनुकूल है ।

चर्च के विरुद्ध आवाज—यही कारण है, कि तेरहवी सदी मे ही यूरोप मे अनेक ऐसे आचार्य उत्पन्न होने शुरू हो गये थे, जिन्होने चर्च की शक्ति और वैभव के विरुद्ध आवाज उठाई । वाल्डो, जान हस्स और विक्लिफ इनमे प्रमुख है । इन आचार्यो ने यत्न किया, कि ईसाई धर्म का सुधार किया जावे और चर्च फिर से अपने कर्त्तव्य का पालन करने लगे । पर पोप की दृष्टि मे ये लोग काफिर और धर्मद्रोही थे । इनके विरुद्ध क्रूसेड की घोषणा की गई । वाल्डो के अनुयायी वाल्डेन्सियन कहाते थे । उनका निवास दक्षिणी फ्रास मे था । इन लोगो का प्रयत्न यही था, कि जीसस क्राइस्ट की शिक्षाओ के अनुसार सरल व परोपकार का जीवन व्यतीत किया जाय । पोप के क्रूसेडरो ने इसका पूरी तरह से सहार किया । बोहेमिया मे हस्स के अनुयायियो के खिलाफ बाकायदा सेनाए भेजी गई, और हस्स को जीते जी आग मे जला दिया गया । विक्लिफ का मुख्य अपराध

यह था, कि उसने बाइबल का अनुवाद अंग्रेजी मे किया था, ताकि सर्वसाधारण ईसाई जनता अपने धर्मग्रन्थ को स्वयं पढ सके, धर्म के ज्ञान के लिये उन्हे लैटिन के पण्डितो पर निर्भर न रहना पडे। विक्लिफ को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी गई। पर पोप के हाथ मे पडने से पहले ही उसकी मृत्यु हो गई थी। इसलिये उसकी हड्डियो को कब्र से निकाल कर अग्नि मे भस्म किया गया। पोप की इच्छा के विरुद्ध आचरण करनेवाले को यथोचित दण्ड न मिले, यह बात मध्यकालीन यूरोप मे सम्भव नही थी।

७ मध्यकाल मे यूरोप की दशा

शिक्षा और ज्ञान—मध्यकालीन यूरोप की तीन बडी विशेषताए थी—सामन्त पद्धति, पवित्र रोमन साम्राज्य और शक्तिशाली चर्च। हम तीनो पर प्रकाश डाल चुके है। अब प्रश्न यह है, कि इस काल मे सर्वसाधारण जनता की क्या दशा थी। इस काल मे यूरोप मे शिक्षा का प्रचार बहुत कम था। सर्वसाधारण जनता प्राय अशिक्षित और निरक्षर थी। न केवल जनता, पर बडे-बडे राजा, महाराजा, सामन्त और अमीर उमरा भी इस युग मे प्राय अशिक्षित ही होते थे। उस समय विद्या व ज्ञान यदि कही थे, तो क्रिश्चियन मठो मे ही थे। मठो मे जो शिक्षा उस समय दी जाती थी, वह मुख्यतया धार्मिक होती थी। बाइबल और उसके भाष्य उस युग मे अध्ययन की सब से उत्कृष्ट सामग्री थे। चर्चो मे गुरु और शिष्य लैटिन के अध्यापन और अध्ययन मे व्यस्त रहते थे। लैटिन के व्याकरण को पहले बडी सूक्ष्मता के साथ पढा जाता था। फिर लैटिन ग्रन्थो को कण्ठस्थ करने की बारी आती थी। स्वतन्त्र विज्ञानो का विकास उस समय तक नही हुआ था। लोगो मे स्वतन्त्र विचार की प्रवृत्ति का प्राय अभाव था। बाइबल और उसके भाष्यो मे, प्राचीन शास्त्रो मे जो कुछ लिखा है उसको पढकर कण्ठस्थ कर लेना उस समय की सब से बडी विद्वत्ता थी। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, इटालियन आदि भाषाए उस समय अशिक्षित जनसाधारण की भाषाए थी। उनमे साहित्य का अभाव था। उस समय के विद्वान केवल लैटिन व ग्रीक भाषा पढते थे। वे लोकभाषाओ को हीन दृष्टि से देखते थे।

यूरोप के अनेक विश्वविद्यालयो का प्रारम्भ मध्यकाल मे हो गया था। पर शुरू मे पेरिस, आक्सफोर्ड आदि के ये विद्यापीठ ईसाई मठो के ही अंग थे। इनमे मुख्यतया लैटिन और ईसाई शास्त्रो की ही शिक्षा दी जाती थी। इनका संचालन भी ईसाई पादरियो द्वारा होता था। ज्ञान-विज्ञान का जैसा विकास इन विश्वविद्यालयो मे आधुनिक युग मे दिखाई देता है, मध्यकाल मे उसका सर्वथा अभाव था।

लोग, दूसरे मुहल्ले मे अमीर व्यापारी लोग और तीसरे हिस्से मे व्यवसायी लोग बसते थे। गरीब मजदूर लोग शहर से बाहर मैले-कुचैले झोपड़ो मे निवास करते थे। शहर के धनी व सम्पन्न लोग उन्हे अछूत समझते थे।

अज्ञान और अन्धविश्वास—यूरोप के इतिहास मे मध्यकाल को अन्धकार और अज्ञान का युग कहा जाता है। इस युग मे जनता मे तरह-तरह के अन्धविश्वास प्रचलित थे। बीमारी का इलाज दवाई से करना पाप समझा जाता था। लोगो का ख्याल था, कि रोग ईश्वर के रोष के परिणाम होते है। अत उनसे बचने का उपाय केवल पूजा व प्रार्थना है। विज्ञान का उस समय सर्वथा अभाव था। लोग समझते थे, जमीन स्थिर है, सूर्य उसके चारो ओर घूमता है। जमीन गोल नही, अपितु चपटी है। नक्षत्रो के सम्बन्ध मे आम लोगो का विचार था, कि ये जीवित जागृत प्राणी है। भूगोल का भी ज्ञान लोगो को बहुत कम था। इङ्गलैण्ड के पश्चिम मे अटलांटिक सागर से परे क्या है? अफ्रीका कितना विशाल है? भारतवर्ष कहाँ है? ये सब बाते लोगो को ज्ञात नही थी। चीन और भारत का नाम तो यूरोप के लोग जानते थे, पर उन्हे यह मालूम नही था कि ये देश किस जगह पर स्थित है।

उस युग मे यूरोप के लोग अपने अज्ञान मे सन्तुष्ट थे। उनमे जरा भी जिज्ञासा नही थी। वे अपनी दशा से सर्वथा सन्तोष अनुभव करते हुए मोहमयी निद्रा मे सो रहे थे। इसी काल के अरब, मङ्गोलिया, भारत तथा चीन की दशा यूरोप से बहुत उत्तम थी। इन देशो के मुकाबले मे उस समय यूरोप 'अर्द्धसभ्य' था।

दूसरा अध्याय

नवयुग का सूत्रपात

१ यूरोप का पुनः जागरण

पुनः जागरण के कारण—मध्यकाल मे यूरोप एक मोहमयी निद्रा मे सो रहा था। पर धीरे-धीरे उसमे जागरण के चिह्न प्रकट होने शुरू हुए। पुनः जागरण की यह नई प्रवृत्ति तेरहवी सदी मे ही शुरू हो गई थी। पर इसने चौदहवी और पन्द्रहवी सदियो मे स्पष्ट रूप धारण किया। इसका प्रारम्भ निम्नलिखित कारणो व परिस्थितियो से हुआ—

(१) हम बतला चुके है, कि जब यूरोप मे अविद्या का अन्धकार छाया हुआ था, तब अरब मे ज्ञान का दीपक प्रज्वलित था। अरबो का साम्राज्य स्पेन तथा उत्तरी अफ्रीका मे भी विस्तृत था। कुछ समय के लिये सिसली भी अरबो के अधीन रहा था। इन प्रदेशो मे अरबो ने अनेक विद्यापीठ स्थापित किये थे, जिनमे ज्योतिष, गणित तथा अन्य विज्ञानो के अतिरिक्त प्राचीन ग्रीक दार्शनिको के ग्रन्थो का भी स्वाध्याय होता था। अरिस्टॉटल, प्लेटो आदि ग्रीक विचारक ईसाई नही थे। उनके ग्रन्थो मे दर्शन और ज्ञान का शुद्ध रूप से प्रतिपादन था। यूरोपियन लोग इन विद्यापीठो के सपर्क मे आकर ऐसा ज्ञान प्राप्त करने मे समर्थ हुए, जिसका ईसाई शास्त्रो के साथ कोई सम्बन्ध नही था। अरब पण्डित बडे स्वतन्त्र विचारक तथा उदार थे। उनके सम्पर्क के कारण यूरोप के ईसाइयो मे भी स्वतन्त्र विचार की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई।

खोज के लिये परीक्षण शुरू किये। पहले यूरोपियन लोगो का यह विश्वास था, कि जो चीज बोझ मे सौ गुना होगी, वह सौ गुने वेग से नीचे गिरेगी। यह विश्वास ठीक है या नही इस पर लोग शास्त्रीय विचार तो करते थे पर इसके लिये परीक्षण करने का कष्ट नही उठाते थे। गैलिलियो (१५६४-१६४२) ने पहले पहल परीक्षण करके इस विश्वास को असत्य सिद्ध किया। कोपर्निकस (१४७३-१५४३) ने पहले पहल यूरोप मे इस सत्य का पता किया, कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी इसके चारो ओर घूमती है। गैलिलियो और कोपर्निकस के समान अन्य भी अनेक विचारक अब यूरोप मे उत्पन्न होने लगे, जो परीक्षा द्वारा सत्य की खोज कर नये-नये तथ्यो का पता लगा रहे थे। उस समय के विद्वान इनका न केवल उपहास ही करते थे, अपितु इन्हे धर्मद्रोही और काफिर समझते थे। इन्हे भयंकर दण्ड दिये गये। अनेक को जीते जी आग मे जलाया गया। वस्तुत ये लोग विज्ञान के लिये शहीद हो रहे थे। चर्च के सब अत्याचारो के बावजूद भी बुद्धि-स्वातन्त्र्य और वैज्ञानिक खोज की यह प्रवृत्ति रुकी नही। आज ससार ने जो उन्नति की है उसमे यह प्रवृत्ति एक बडा कारण है।

(४) इसी समय यूरोप मे कागज और छापेखाने का प्रवेश हुआ। पहिले यूरोप में लिखने के लिये बकरी की खाल प्रयोग मे आती थी। कागज का आविष्कार सबसे पहले चीन मे हुआ था। चीन मे यह मगोल लोगो ने सीखा। मगोलो से अरबो ने और फिर अरबो द्वारा यूरोप मे कागज का प्रवेश हुआ। पहले पहल चौदहवी सदी मे यूरोप में कागज का निर्माण शुरू हुआ था। पन्द्रहवी सदी मे छापेखाने का यूरोप मे प्रवेश हुआ और पुस्तकें अच्छी तथा सस्ती छपने लगी। जनता मे ज्ञान-विस्तार के लिये पुस्तको का प्राचुर्य और सस्ता होना बहुत आवश्यक है। विक्लिफ जैसे विद्वानो ने बाइबल का जो अनुवाद यूरोप की लोकभाषाओ मे करना शुरु किया था, वह अब सस्ते मूल्य पर बडी सख्या में जनता को उपलब्ध होने लगा। लोगो को अब यह अवसर मिला, कि वे स्वय ईसाई धर्म के सिद्धान्तो का ज्ञान प्राप्त कर सके। चर्च ने प्रमाणवाद की जजीरो मे यूरोप के दिमाग को जिस प्रकार जकड रखा था, उसमें अब शिथिलता आने लगी और लोग विभिन्न विचारको के विचारो को पढकर अपनी बुद्धि से काम लेने के लिये तत्पर हुए। कागज और छापेखाने का प्रवेश यरोप के पुन जागरण मे बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

परिणाम—बुद्धि-स्वातन्त्र्य का जो आन्दोलन यूरोप मे धीरे-धीरे जोर पकड रहा था उसने अनेक महत्त्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न किये।

(१) चर्च की अपार शक्ति के विरुद्ध जनता मे भावना बढने लगी। विक्लिफ, बाल और हस्स जैसे व्यक्तियो के कारण चर्च के विरुद्ध जो असन्तोष व विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई थी, उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। आगे चलकर चर्च के खिलाफ बाकायदा विद्रोह शुरु हो गया।

(२) अरबो के सम्पर्क से यूरोप मे अरबी सख्याओ और एलजबरा (बीज गणित) आदि का प्रवेश पहले ही हो चुका था। रसायनशास्त्र का पहला रूप अल्केमी था, जिसके द्वारा लोग एक ऐसे उपाय की खोज में थे, जिससे वे लोहे व अन्य सस्ती धातु को सोने मे बदल सके। साथ ही, वे किसी ऐसी औषधि की खोज मे भी तत्पर थे, जिससे बुढापे और मृत्यु

पर विजय पा सके। यूरोप में अल्केमी की उन्नति में भी अरबों का सम्पर्क बहुत सहायक हुआ। पर अब परीक्षणों द्वारा सत्य का निर्णय करने की जो नई प्रवृत्ति यूरोप में पैदा हुई थी, उसके कारण विज्ञान की निरन्तर उन्नति होने लगी। कोपर्निकस और गैलिलियो का उल्लेख हमने ऊपर किया है। डा० गिल्बर्ट (१५४०-१६०३) ने चुम्बक का पता लगाया, और यह प्रतिपादित किया कि वस्तुओं में एक दूसरे को खींचने की, अपनी तरफ आकर्षित करने की शक्ति किस प्रकार विद्यमान है। हार्व (१५७८-१६५७) ने शरीर-विज्ञान के सम्बन्ध में बहुत से नये तथ्यों का पता लगाया। न्यूटन (१६४२-१७२६) बड़ा प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुआ है। उसने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। बुद्धि-स्वातन्त्र्य और परीक्षण की प्रवृत्ति के कारण यूरोप के विद्वान इस समय नये-नये तथ्यों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने लगे और उस अद्भुत उन्नति का श्रीगणेश हुआ, जिसके कारण मनुष्य ने प्रकृति पर आश्चर्यजनक विजय प्राप्त की है।

(३) लोकभाषाओं में साहित्य का निर्माण यूरोप के पुनः जागरण के आन्दोलन का महत्त्वपूर्ण परिणाम था। मध्यकाल में यूरोप के विद्वान लैटिन और ग्रीक का अध्ययन किया करते थे। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि जनसाधारण की भाषाओं में न कोई साहित्य था और न विद्वान लोग इन्हें विकसित करने की आवश्यकता ही समझते थे। पर अब इस दशा में परिवर्तन आया और अनेक ऐसे लेखक उत्पन्न हुए, जिन्होंने लोकभाषाओं में ग्रन्थ लिखने शुरू किये।

(४) इस समय यूरोप के लोगों में भूगोल का ज्ञान भी खूब बढ़ा। उन्होंने नये-नये प्रदेशों की खोज शुरू की। इसी प्रवृत्ति के कारण अमरिका के महाद्वीप का पता लगा। अफ्रीका का चक्कर काटकर यूरोपियन लोग भारत, चीन आदि पूर्वी देशों में भी जाने-आने लगे। नये प्रदेशों की खोज के सम्बन्ध में हम एक पृथक प्रकरण में अधिक विस्तार से प्रकाश डालेंगे।

२ धार्मिक सुधारणा

करता था। लूथर एक पुराने ढंग का पादरी था और धार्मिक प्रश्नों पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया करता था। बाइबल तथा अन्य क्रिश्चियन शास्त्रों का वह बड़ा गम्भीर विद्वान था। उसने अनुभव किया, कि पाप-मोचन-पत्रों की व्यवस्था शास्त्रों के अनुकूल नहीं है अतः उसने इसके विरुद्ध एक निबन्ध प्रकाशित किया। यह निबन्ध सर्वसाधारण जनता के लिये नहीं था। इसे लैटिन में लिखा गया था और केवल विद्वानों के सम्मुख अपने विचार प्रकट करने के उद्देश्य से ही लूथर ने इसे प्रकाशित कराया था।

प्रोटेस्टेन्ट चर्च--पर राजाओं और जनता में चर्च के विरुद्ध जो असन्तोष की अग्नि विद्यमान थी, वह इस घटना से प्रदीप्त हो गई। छापेखाने का प्रवेश इस समय तक यूरोप में हो चुका था। चर्च के विरोधियों ने अपने विचार छाप-छापकर प्रकाशित करने शुरू किये। लूथर उनका नेता बना। अनेक राजाओं ने इस आन्दोलन का साथ दिया। वे चर्च के वैभव तथा शक्ति को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते थे। चर्च की सम्पत्ति को जब्त कर अपनी शक्ति बढ़ाने का यह सुवर्णावसर उन्हें प्राप्त हुआ था। देखते-देखते चर्च और उसके विरोधियों की बाकायदा लड़ाई शुरू हो गई। इस समय यूरोप दो भागों में विभक्त हो गया। एक भाग वह, जो पोप और चर्च के प्रभुत्व को पूर्ववत् स्वीकार करता था और दूसरा भाग वह जो पोप के विरुद्ध विद्रोह कर उसके प्रभुत्व का विरोध करता था। पहले भाग को 'रोमन कैथोलिक चर्च' और दूसरे भाग को 'प्रोटेस्टेन्ट चर्च' कहते थे।

चर्च के अधिपति राजा—जहाँ पोप के विरुद्ध विद्रोह कर पृथक् चर्च की स्थापना हो रही थी, वहा भी वस्तुतः चर्च स्वतन्त्र नहीं हुआ था। वहाँ प्रायः चर्च के अधिपति राजा लोग हो रहे थे, जो चर्च की सम्पत्ति तथा जायदाद को जब्त कर अपने काबू में करते जाते थे। उत्तरी जर्मनी के विविध राजा महाराजाओं ने इसी तरह चर्च की सम्पत्ति जब्त कर अपने अधीन कर ली थी और अपने-अपने राज्य मे स्वय चर्च के अधिपति बन गये थे। इङ्गलैण्ड मे भी हेनरी अष्टम (१५३०) ने अपने एक स्वार्थ को पूर्ण करने के लिये पोप के विरुद्ध विद्रोह किया और इङ्गलिश चर्च को पोप की अधीनता से मुक्त कर राजा के अधीन कर दिया। यही दशा अन्य अनेक देशो मे भी हुई। अभिप्राय यह है, कि जो प्रोटस्टेन्ट आन्दोलन इस समय यूरोप मे चल रहा था, उसका उद्देश्य केवल धार्मिक सुधार नही था। उसमे अनेक राजाओ के निज स्वार्थ भी कार्य कर रहे थे।

जैसुएट सम्प्रदाय—पर इसमे सन्देह नही, कि इस आन्दोलन ने यूरोप मे एक नई जागृति उत्पन्न करने मे अवश्य सहायता की। इससे रोमन कैथोलिक चर्च मे भी नव जीवन का सचार हुआ। प्रोटेस्टेन्ट लोगो का विरोध करने के उद्देश्य से रोमन कैथोलिक लोगो मे अनेक ऐसे सम्प्रदायो का प्रादुर्भाव हुआ, जो बड़े सतर्क और जीवित जागृत थे। जैसुएट सम्प्रदाय इनमे प्रमुख है। इस सम्प्रदाय की स्थापना इग्नेटियस लोयोला (१५३९) ने की थी। लोयोला स्पेन का निवासी था। जैसुएट सम्प्रदाय आगे चलकर बहुत ही शक्तिशाली हुआ। दूर देशो मे ईसाई धर्म के प्रसार के लिये इस सम्प्रदाय के पादरियो ने बड़ा भारी कार्य किया।

चर्च का सघर्ष--प्रोटेस्टेण्ट और रोमन कैथोलिक लोगो का पारस्परिक सघर्ष बड़ा ही बीभत्स और प्रचण्ड था। जहाँ के राजा प्रोटेस्टेण्ट थे, वे रोमन कैथोलिक लोगो पर

घोर अत्याचार करते थे। जहाँ के राजा रोमन कैथोलिक थे, वे प्रोटेस्टेण्ट लोगों को जीने नहीं देते थे। रोमन कैथोलिक राज्यों में पोप की संरक्षता में एक विशेष धार्मिक न्यायालय (इन्क्वीजिशन कोर्ट) का निर्माण हुआ था। जिन लोगों पर जरा भी सन्देह होता था, कि वे चर्च के विरुद्ध सम्मति रखते हैं, उन्हें इस न्यायालय के सम्मुख पेश किया जाता था। वहाँ उन्हें कठोर दण्ड दिये जाते थे। मुख्य दण्ड यह था, कि ऐसे लोगों को जीते जी आग में जला दिया जावे। एक-एक राजा के शासनकाल में एक-एक देश में इस ढंग से हजारों आदमियों को केवल इसलिये प्राणदण्ड दिया गया, क्योंकि वे धार्मिक क्षेत्र में स्वतन्त्र सम्मति रखते थे। यूरोप के इतिहास में यह धार्मिक असहिष्णुता सचमुच बड़ी बीभत्स थी।

पर इन सब अत्याचारों और संघर्षों के होते हुए भी धीरे-धीरे यूरोप में एक नवयुग का प्रारम्भ हो रहा था। लोग स्वतन्त्रता के साथ विचार करने लगे थे। वे अपनी सम्मति और विचारों के लिये प्राणों की बलि तक देने लगे थे।

३ नये प्रदेशों की खोज

पन्द्रहवीं सदी तक यूरोप के लोगों को बाहरी दुनिया का बहुत कम परिचय था। उस समय समुद्र में जो जहाज चलते थे, वे चप्पुओं से खेये जाते थे। दिग्दर्शक यन्त्र का प्रवेश भी तब तक यूरोप में नहीं हुआ था। ऐसे समय में उन जहाजों व नौकाओं से महासमुद्रों का पार करना नितान्त कठिन था। पर पन्द्रहवीं सदी में दिग्दर्शक यन्त्र का प्रवेश पहले पहल यूरोप में हुआ। यह यन्त्र भी कागज के समान अरब होता हुआ चीन से यूरोप में आया था। इसके साथ ही अब जहाज पहले की अपेक्षा बड़े और मजबूत बनने लगे। चप्पुओं के साथ साथ पालों का भी प्रयोग शुरू हुआ। पाल से चलने वाले जहाजों से यह सम्भव था, कि अनुकूल वायु के साथ महासमुद्र को पार किया जा सके।

उस समय यूरोप और एशिया का व्यापारिक मार्ग लालसागर से ईजिप्ट होता हुआ भूमध्य सागर पहुँचता था। एक दूसरा मार्ग परशिया की खाड़ी से बसरा बगदाद होता हुआ एशिया माइनर के बन्दरगाहों पर जाता था। पहले इन व्यापारिक मार्गों पर अरबों का अधिकार था। अरब लोग समय से व्यापार के महत्त्व को भलीभांति अनुभव करते थे। पर पन्द्रहवीं सदी में तुर्क लोग इन प्रदेशों के स्वामी हो गये और एशिया व यूरोप के व्यापारिक मार्ग रुकने लगे। सन् १४५३ में जब तुर्क विजेता मोहम्मद द्वितीय ने कान्स्टेण्टिनोपल को भी जीत लिया, तब यूरोप के लोगों के लिये इन पुराने मार्गों से व्यापार कर सकना अत्यन्त कठिन हो गया।

भारत पहुचने मे समर्थ हुआ।

अफ्रीका का चक्कर काटकर एशिया पहुँचने का यह नया मार्ग इस प्रकार आविष्कृत हुआ। पर इसी समय कोलम्बस नामक एक इटालियन मल्लाह के मन मे एक नई कल्पना उत्पन्न हुई। पृथिवी गोल है, यह बात उस समय तक ज्ञात हो चुकी थी। कोलम्बस ने सोचा, कि यदि अटलाण्टिक सागर मे निरन्तर पश्चिम की ओर चलते जावे, तो जमीन के गोल होने के कारण भारत पहुचा जा सकता है। कोलम्बस के इस विचार का इटली में किसी ने स्वागत नही किया। पर स्पेन के राजा ने उसकी सहायता की और १४९२ म वह अपनी कल्पना को क्रिया मे परिणत करने के लिये चल पडा। उस के साथ छोटे-छोटे तीन जहाज थे, जिनके मल्लाहो की कुल सख्या ८८ थी। अटलाटिक सागर मे पश्चिम की तरफ चलते-चलते ११ अक्टूबर, १४९२ को जमीन के दर्शन हुए। कोलम्बस ने समझा, कि भारतवर्ष आ गया। वस्तुत वह भारत नही था—वह एक नया महाद्वीप था, जो अब अमेरिका के नाम से प्रसिद्ध है।

कोलम्बस को जो महाद्वीप अचानक ही प्राप्त हो गया था, वह अत्यन्त विशाल था। उसके अधिकाश प्रदेश मे जङ्गली और असभ्य जातिया निवास करती थी। पर दो प्रदेश ऐसे भी थे, जहा अच्छे उन्नत सभ्य लोग बसते थे। ये प्रदेश थे, मैक्सिको और पेरू। कोलम्बस स्पेन के राजा की सहायता से समुद्र-यात्रा के लिये निकला था, अत स्वाभाविक रूप से अमेरिका पर स्पेन का अधिकार हुआ। स्पेनिश लोगो ने बडी निर्दयता से अमेरिका के निवासियो को नष्ट किया। न केवल वहा के जङ्गली असभ्य लोगो को, अपितु एजटेक और मय लोगो का भी क्रूरता के साथ सहार किया गया। यूरोप के लोग तब तक बारूद का प्रयोग जान चुके थे। वे बन्दूक चलाना भी सीख गये थे। बन्दूक की मार के सामने अमेरिकन लोग न ठहर सके और कुछ ही समय मे उन लोगो का विनाश हो गया। स्पेनिश लोगो ने इस विशाल भूखण्ड मे अपने उपनिवेश बसाने प्रारम्भ किये। यह प्रदेश खनिज पदार्थो की दृष्टि से बडा समृद्ध था। सोने चादी की खानो से आकृष्ट हो स्पेनिश लोग बडी सख्या मे अमेरिका जाने लगे। इन नये प्राप्त हुए प्रदेशो से स्पेन की समृद्धि दिन दूनी रात चौगुनी बढने लगी। स्पेन की होड मे अन्य यूरोपियन राज्य भी अमेरिका जाकर बसने के लिये प्रयत्नशील हुए। दक्षिणी अमेरिका मे स्पेनिश लोग बस रहे थे, वहा पर उनका कब्जा हो चुका था। अत फ्रास, ब्रिटेन आदि ने उत्तरी अमेरिका मे बसना शुरू किया। जहा आजकल सयुक्त राज्य अमेरिका है, वहा ब्रिटेन के तथा जहा अब कनाडा है, वहा फ्रास के उपनिवेश बसने शुरू हुए। अमेरिका के विस्तृत प्रदेशो पर अधिकार करने के लिये इन यूरोपियन राज्यो मे परस्पर सघर्ष का भी प्रारम्भ हुआ।

अफ्रीका का चक्कर काट कर पहले पहल पोर्तुगीज लोग भारत आये थे। उन्होने इस नये मार्ग से पूर्वी देशो के व्यापार को हस्तगत करना शुरू किया। इस व्यापार से पोर्तुगीज लोग बडे समृद्ध हो गये। उनकी देखादेखी अन्य यूरोपियन राज्य भी इसी दक्षिण मार्ग से एशिया जाने लगे। हालैन्ड, फ्रास, ब्रिटेन आदि मे पूर्वी व्यापार को हस्तगत करने के लिये कम्पनिया खडी की गईं। ये कम्पनिया पूर्वी देशो के विविध बन्दरगाहो पर अपनी कोठिया कायम करती थी, और अधिक से अधिक व्यापार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का

उद्योग करती थी।

पर यूरोपियन जातिया केवल व्यापार से ही सन्तुष्ट नही रही। एशिया के विविध राज्यो की दशा उस समय उत्तम नही थी। भारत को ही लीजिये। अठारहवी सदी मे मुगल साम्राज्य क्षीण हो गया था, और विविध राजनीतिक सत्ताये शक्ति के लिये परस्पर संघर्ष करने लगी थी। यही दशा उस समय जावा, सुमात्रा, मलाया आदि देशो की थी। यूरोपियन लोगो ने इस राजनीतिक दुर्दशा का लाभ उठाया और व्यापार के साथ-साथ अपनी राजनीतिक सत्ता भी स्थापित करनी शुरू की।

अमेरिका की प्राप्ति तथा पूर्वी व्यापार के दक्षिणी मार्ग की खोज से यूरोप के उत्कर्ष मे बहुत सहायता मिली,। जिन यूरोपियन लोगो को पहले यह भी ज्ञान नही था, कि भारत कहा है और अफ्रीका कितना विशाल है, वे अब सारे भूमण्डल की परिक्रमा करने लगे। वस्तुत यूरोप का अब पुन जागरण हो गया था।

४ स्वेच्छाचारी निरकुश राजा

यूरोप मे सभ्यता का पुन जागरण हो रहा था। सब ओर नवजीवन के चिह्न प्रगट होने लगे थे। पर राजनीतिक क्षेत्र मे अभी कोई परिवर्तन नही हुआ था। राजा पहले की तरह निरकुश और स्वेच्छाचारी थे। पोप की शक्ति कम हो जाने के कारण उनका प्रभाव और भी बढ गया था। वे बडे वैभव के साथ राजप्रासादो मे निवास करते थे, और आमोद प्रमोद मे अपना जीवन व्यतीत करते थे।

सामन्त-पद्धति का ह्रास—मध्यकाल के प्रारम्भ मे सैकडो हजारो राजा, महाराजा और सामन्त यूरोप के विविध प्रदेशो पर शासन करते थे। ये आपस मे निरन्तर लडते रहते थे। कोई किसी की प्रभुता को सुगमता से स्वीकार नही करना चाहता था। पर धीरे-धीरे इन बहुत से राजा महाराजाओ के बीच मे कुछ शक्तिशाली राजाओ का विकास हुआ, जिन्होने अपने सामन्तो को पूरी तरह काबू मे करके

और बारूद के सम्मुख मिट्टी के दुर्ग देर तक नही ठहर सकते थे। मगोल लोगो द्वारा यूरोप मे बारूद का प्रवेश हुआ। शक्तिशाली राजाओ ने मगोलो से बारूद व तोपो का प्रयोग सीख लिया और उनके हाथ मे एक ऐसा हथियार आ गया, जिससे वह सामन्तो के दुर्गों को आसानी से भूमिसात् कर सकते थे। यही कारण है कि जब तोपो की मार से दुर्ग नष्ट होने लगे, तो सामन्तो की शक्ति भी क्षीण होनी शुरू हो गई। इसके अतिरिक्त, चौदहवीं व पन्द्रहवीं सदियो मे यूरोप के प्राय सभी देशो मे बडे भयकर युद्ध हुए। ये युद्ध विविध राजवशो और विविध सामन्तो मे परस्पर हुए थे। इनके कारण बहुत से राजकुल नष्ट हो गए, और विविध सामन्तो की शक्ति क्षीण हो गई। इसी का परिणाम हुआ, कि कुछ शक्तिशाली राजाओ के लिये उत्कर्ष का मार्ग साफ हो गया, और स्वेच्छाचारी निरकुश राजाओ का विकास हुआ।

शक्तिशाली राजा—फ्रास, इङ्गलैण्ड, स्पेन, रूस आदि प्राय सभी देशो मे यह प्रक्रिया हुई। सत्रहवीं सदी तक इन सब देशो के शक्तिशाली राजाओ ने अपने-अपने सामतो को पूर्णतया काबू मे करके अपनी सत्ता का भलीभाति विकास कर लिया था। इङ्गलैण्ड का राजा हेनरी अष्टम (१५३०), फ्रास का राजा लुई १४वा (१६४३), स्पेन का राजा फिलिप द्वितीय (१५५८), रूस का राजा पीटर (१६८०), सब इसी प्रकार के शक्तिशाली निरकुश राजा थे। जर्मनी और आस्ट्रिया मे किसी एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन का विकास नही हो सका था। वहा अभी अनेक राजा, महाराजा और सामन्त स्वतन्त्रतापूर्वक शासन मे तत्पर थे, जिनका अधिपति मध्यकाल के समान अब भी पवित्र रोमन सम्राट होता था। पर प्रशिया के रूप मे जर्मनी मे भी एक ऐसे शक्तिशाली राज्य का विकास हो रहा था, जिसके राजा फ्रास और इङ्गलैण्ड के राजाओ के समान ही शक्तिशाली और निरकुश थे।

राष्ट्रीयता—सामन्त पद्धति के ह्रास और शक्तिशाली केन्द्रीय राजाओ के विकास के कारण फ्रास, इङ्गलैण्ड और स्पेन सदृश राज्यो को अपनी शक्ति बढाने का बहुत उत्तम अवसर हाथ लगा। आन्तरिक व्यवस्था और शान्ति किसी भी देश की उन्नति मे बहुत सहायक होती है। सामन्त पद्धति के कारण देश मे आन्तरिक व्यवस्था सम्भव नही रहती। फ्रास, इङ्गलैण्ड, स्पेन आदि में शक्तिशाली केन्द्रीय शासन के स्थापित हो जाने से इन देशो की बहुत उन्नति हुई। यही कारण है, कि ये देश उन्नति की दौड मे बहुत आगे निकल गये। इसके विपरीत जर्मनी, इटली आदि अनेक देशो मे बहुत से छोटे-बडे राजाओ और सामन्तो का शासन जारी रहा। इसी कारण वे फ्रास और इङ्गलैण्ड के मुकाबले मे बहुत पीछे रह गये।

इस स्थिति का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह भी हुआ, कि फ्रास, इङ्गलैण्ड आदि जिन देशो मे शक्तिशाली केन्द्रीय राजाओ का शासन स्थापित हुआ, उनमे एक प्रकार की एकता की भावना भी उत्पन्न होने लगी। फ्रेंच राजा द्वारा शासित सब प्रदेश एक थे, उसके दरबार में एकत्र हुए सब अमीर उमरा एक भाषा बोलते थे, एक सस्कृति के रग मे रगे हुए थे और अपने राजा के राज्य को एक देश समझते थे। इस दशा का परिणाम यह हुआ, कि धीरे-धीरे फ्रास एक राष्ट्र बनने लगा, और उसके निवासियो मे राष्ट्रीयता की अनु-

भूति विकसित होने लगी। यही प्रक्रिया इङ्गलैंड, स्पेन, पर्शिया आदि देशो मे भी हुई।

राजाओ का जीवन—सामन्त पद्धति के ह्रास होने पर यूरोप मे जो शक्ति-शाली निरकुश राजा शासन करने लगे, वे बडी शान शौकत के साथ अपनी राजधानी मे निवास करते थे। फ्रास के राजाओ को लीजिये। वे हजारो पार्श्वचरो और अनुचरो के साथ वर्साय के राजप्रासाद मे निवास करते थे। पेरिस से बारह मील दूर राजा और उसके दरबारियो के भोग विलास का केन्द्र वर्साय नगर विद्यमान था। राजा का महल तीस करोड रुपये की लागत से बनाया गया था। राजदरबार मे १५ हजार आदमी थे। अकेली रानी के नौकरो की सख्या ५०० से ऊपर थी। राजा के निजी खर्च की कोई सीमा न थी पचास लाख के लगभग रुपये प्रतिवर्ष भोजन मे व्यय होते थे। राजा के आमोद-प्रमोद शान-शौकत और भोग-विलास का खर्च छ करोड रुपया सालाना से कम न था। जो दशा फ्रास के राजाओ की थी, वही प्राय अन्य यूरोपियन देशो के राजाओ की थी। छोटे-छोटे देशो के राजा भी अपने महल और दरबार पर लाखो करोडो रुपया खर्च किया करते थे।

राज्य-शासन का सिद्धात—यूरोप के राजाओ का शासन-सम्बन्धी मूल सिद्धान्त यह था कि राजा पृथ्वी पर परमेश्वर का प्रतिनिधि है। वह राजा है, क्योकि परमेश्वर ने उसे राजा बनाया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण विश्व पर परमेश्वर विश्व के विविध प्राणियो की किसी भी प्रकार सम्मति लिये बिना स्वेच्छा से शासन करता है, उसी प्रकार राजा अपने राज्य मे प्रजा की सम्मति पर जरा भी आश्रित हुए बिना अपनी इच्छा से शासन करता है। यदि राजा दयालु है, तो प्रजा का सौभाग्य है, यदि राजा अत्याचारी है, तो किसी का क्या वश है। परमेश्वर के शासन मे आधिया आती है तूफान आते है, महामारिया फैलती है, भूकम्प आते है, इन सब ईश्वरीय विधानो के सम्मुख मनुष्य क्या कर सकता है? कुछ नही। इसी प्रकार यदि राजा अत्याचार करता है, करो द्वारा जनता को पीडित करता है, तो मनुष्य को इस राजकीय प्रकोप को चुपचाप सहना ही चाहिये। फ्रास का राजा लुई १४वा अभिमान से कहा करता था—"यह कानून है, क्योकि मेरी ऐसी ही इच्छा है। राज्य की प्रभुत्व शक्ति मुझमे निहित है। कानून बनाने का हक केवल मुझे है, इसके लिये मुझे किसी का सहयोग लेने की आवश्यकता नही।"

न हो। भिन्न सम्प्रदाय को माननेवाली प्रजा पर इन राजाओ ने घोर अत्याचार किये। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ, कि विविध देशो की प्रजा प्रधानतया एक ही धर्म व सम्प्रदाय की अनुयायिनी हो गई। साथ ही पोप और चर्च के प्रभुत्व के कारण यूरोप म जो एकता की भावना थी, वह नष्ट होने लगी। पहले यह विचार प्रबल था, कि सम्पूर्ण क्रिश्चियन यूरोप एक क्षेत्र है, जिस पर एक पोप का प्रभुत्व है। प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय व विकास और राजाओं की शक्ति के बढने से यह विचार निर्बल हो गया, और विविध राज्यो के पृथकत्व की भावना जोर पकडने लगी। अठारहवी सदी के शुरु तक फ्रास, स्पेन आदि विविध देश बहुत कुछ पृथक राष्ट्रो का रूप धारण कर चुके थे।

राजनीतिक जागृति—निरकुश शासन के इस युग मे भी कोई कोई स्थान ऐसे थे, जहा जनता के शासन का धीरे-धीरे सूत्रपात हो रहा था। स्विटजरलैण्ड की पहाडी घाटियो के निवासी चौदहवी सदी मे ही अपना शासन स्वय करने लगे थे। हालैण्ड के निवासियो ने स्पेन के स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर १६४८ में स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। स्वतन्त्र होने के बाद हालैण्ड मे जो सरकार कायम हुई थी, उसम जनता का पर्याप्त हाथ था। पर निरकुश स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कर के लोकसत्तात्मक शासन की स्थापना के लिये सब से प्रबल सघर्ष इङ्गलैण्ड मे हुआ। अठारहवी सदी में स्टुअर्ट वश के राजाओ के स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध इङ्गलैण्ड मे जो क्रान्ति हुई, उस पर हम आगे चलकर प्रकाश डालेगे। पर इन थोडे से अपवादो को छोडकर अठारहवी सदी तक यूरोप के सभी देशो के शासक पूर्णतया स्वेच्छाचारी रहे।

पर यूरोप मे सर्वत्र जो पुन जागरण हो रहा था, जो युग परिवर्तन हो रहा था, जिस प्रकार ज्ञान, धर्म, भूगोल व आर्थिक जीवन के क्षेत्र मे एक नये युग का सूत्रपात हो रहा था उसका प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र पर न पडे, यह असम्भव था। कुछ समय बाद अठारहवी सदी के अन्त में फ्रास मे राज्यक्रान्ति हुई। इस क्रान्ति के साथ यूरोप के राजनीतिक जीवन मे एक नवीन प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ, जिसे हम लोकतन्त्र शासन कहते हैं। आज यह प्रवृत्ति प्राय पूर्णतया सफल हो चुकी है। यूरोप के प्राय सब देशो मे एकतन्त्र शासन का अन्त होकर लोकतन्त्र शासनो की स्थापना हो गई है। यूरोप के आधुनिक इतिहास में यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है।

यूरोप के पुन जागरण का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत था। जब एक बार मनुष्यो ने पुरानी रूढियो और अन्धविश्वासो का परित्याग कर अपनी बुद्धि से काम लेना प्रारम्भ किया, तो उनके बन्धन निरन्तर टूटते गये। प्रत्येक क्षेत्र मे उन्नति का मार्ग उनके लिये खुलता गया। न केवल राजनीतिक क्षेत्र मे ही, अपितु सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक और धार्मिक क्षेत्रो मे भी यूरोप ने असाधारण उन्नति की। इस इतिहास मे हम इसी चौमुखी उन्नति पर प्रकाश डालने का यत्न करेगे।

५. अमेरिका मे यूरोपियन उपनिवेश

स्पेन के उपनिवेश—कोलम्बस ने किस प्रकार स्पेन के राजा की सहायता से अमेरिका के विशाल महाद्वीप का पता लगाया, इस पर हम पहले प्रकाश डाल चुके है। यह

महाद्वीप धनधान्य से पूर्ण था, इसमे एजटेक और मय सभ्यताओ का विकास हो चुका था। मैक्सिको और पेरु के निवासियो के पास जो भी सम्पत्ति थी, उसे स्पेन के लोग लूट कर अपने देश मे ले आये। वहा के निवासियो का उन्होने बुरी तरह से सहार किया।

कुछ समय बाद स्पेन के लोगो ने अनुभव किया, कि अमेरिका के विस्तृत प्रदेशो में खेती बडे पैमाने पर की जा सकती है। साथ ही, वहा बहुमूल्य धातुओ की खान भी है। उन्हे खोदकर सोना, चादी, लोहा आदि बडी मात्रा मे प्राप्त किया जा सकता है। पर इन दोनो कामो के लिये मजदूरो की आवश्यकता थी। स्पेनिश लोगो ने पहले यह कोशिश की, कि अमेरिका के मूल निवासियो को गुलाम बनाकर उनसे काम लिया जावे। इस उद्देश्य से बहुत से मूल अमेरिकनो को पकडा गया, उनपर भयकर अत्याचार किये गये। पर मूल अमेरिकन लोग गुलामी के जीवन को जरा भी पसन्द नही करते थे। उन्हे गुलामी की अपेक्षा मौत अधिक प्रिय थी। स्पेन के लोग मूल अमेरिकनो को गुलाम बनाने व उनसे काम लेने मे सफल नही हो सके।

इस दशा मे कुछ लोगो ने यह विचार किया, कि अफ्रीका महाद्वीप के हब्शियो को पकडकर उनसे अमेरिका मे गुलामो का काम लिया जा सकता है। हबशी लोगो की तबियत गुलामी के जीवन मे उतनी नही बिदकती थी, जितनी कि मूल अमेरिकनो की। उस समय तक यूरोप के लोग अफ्रीका मे भी दूर-दूर तक प्रवेश करने लगे थे। उन्होने हब्शियो को बडी सख्या मे पकडकर गुलाम के रूप मे बेचना शुरू किया। सोलहवी सदी मे यह एक बाकायदा व्यापार बन गया और हजारो लाखो हबशी पशुओ के समान जहाजो मे लादकर अमेरिका लाये जाने लगे। उनकी बाकायदा मण्डी लगती थी। अमेरिका मे बसे हुए स्पेनिश लोगो के पास धन व जमीन की कमी नही थी। अपने विशाल खेतो व समृद्ध खानो मे काम करने के लिये उन्हे गुलामो की जरूरत थी। ये गुलाम उन्हे अफ्रीका से मिलने लगे। सोलहवी, सत्रहवी और अठारहवी सदियो मे गुलामो का यह व्यापार निरन्तर जारी रहा, और बहुत से यूरोपियन व्यापारियो ने इस घृणित व्यापार से अपार धन कमाया। उस समय मे यूरोप के लोग गुलामो की प्रथा व गुलामी के क्रय-विक्रय को घृणित बात नही समझते थे।

धीरे-धीरे मध्य व दक्षिणी अमेरिका मे स्पेन के अनेक उपनिवेश बस गये। वेस्ट इन्डीज, ब्राजील, मैक्सिको, पेरु आदि विविध अमेरिकन राज्य शुरू मे स्पेन के ही उपनिवेश थे। अन्य कोई देश इस विशाल अमेरिकन महाद्वीप मे अपने उपनिवेश नही बसा सकता था, क्योकि १४९४ ईस्वी मे रोम के पोप ने यह घोषणा कर दी थी, कि केप वर्द द्वीपसमूह से ३७० लीग पश्चिम मे एक रेखा उत्तर से दक्षिण की तरफ खीच दी जाय, तो इस रेखा के पश्चिम के सब प्रदेशो पर स्पेन का अधिकार रहेगा और इस रेखा के पूर्व मे पोर्तुगाल का।

की सर्वथा उपेक्षा कर अमेरिका मे अपने उपनिवेश बसाने शुरू किये। सोलहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे इङ्गलिश और फ्रेंच नाविक अमेरिका जाने लगे। स्पेन की बस्तिया मध्य और दक्षिणी अमेरिका मे जा बसी थी। जहा अब कनाडा और सयुक्त राज्य अमेरिका के विशाल राज्य है, वे प्रदेश उस समय तक खाली पडे थे। उन मे केवल जङ्गली और असभ्य जातियो का निवास था। इङ्गलिश और फ्रेंच लोगो ने वहा अपने उपनिवेश बसाने शुरू कर दिये। फ्रेंच लोग मुख्यतया कनाडा मे बसने लगे और इङ्गलिश लोग उनके दक्षिण मे सयुक्त राज्य अमेरिका मे।

सत्रहवी सदी के शुरू मे वर्जिनिया, न्यू इङ्गलैण्ड, मेरीलैण्ड, पेन्सिलवेनिया आदि अनेक इङ्गलिश उपनिवेश अमेरिका मे स्थापित हो गये थे। इसी समय मे फ्रेंच लोगो ने नोवा स्कोटिया और क्यूबेक मे अपने उपनिवेश बसा लिये थे। इङ्गलिश और फ्रेंच लोग निरन्तर नये-नये उपनिवेश बसाने मे तत्पर थे और अमेरिका मे उनकी आबादी निरन्तर बढती जाती थी। अठारहवी सदी के मध्य तक अमेरिका मे बसे हुए इङ्गलिश लोगो की सख्या दस लाख और फ्रेंच लोगो की सख्या एक लाख तक पहुच गई थी। इन यूरोपियन लोगो के अतिरिक्त लाखो हब्शी गुलाम उत्तरी अमेरिका के उपनिवेशो मे बसे हुए थे, जिन्हे वहा खेती और मजदूरी के लिये ले जाया गया था।

६ अमेरिका की स्वाधीनता

फ्रेंच शासन का अन्त—उत्तरी अमेरिका मे फ्रेंच लोगो ने जो उपनिवेश कायम किये थे, वे देर तक उनके अधीन नही रह सके। १७५६ ई० से १७६३ ई० तक यूरोप के विविध देशो मे एक महायुद्ध हुआ, जो इतिहास मे सप्तवर्षीय युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि इस महायुद्ध मे यूरोप के अनेक देश शामिल थे, पर मुख्यतया इसमे फ्रास और इङ्गलैण्ड एक दूसरे के साथ सघर्ष कर रहे थे। ये दोनो शक्तिशाली देश अमेरिका और एशिया मे अपनी-अपनी सत्ता के विस्तार मे लगे थे। यह स्वाभाविक था, कि इनमे सघर्ष हो। इस सघर्ष मे ब्रिटेन सफल हुआ। कनाडा मे जो अनेक उपनिवेश फ्रेंच लोगो ने कायम किये थे, वे ब्रिटन के अधिकार मे आ गये। उस समय से कनाडा ब्रिटेन का उपनिवेश है। यद्यपि वहा फ्रेंच लोग बडी सख्या मे बसते है, पर अब वह विशाल देश ब्रिटिश साम्राज्य का एक अग है।

ब्रिटिश उपनिवेशो की स्वाधीनता—कनाडा के दक्षिण मे ब्रिटिश लोगो ने न्यू इङ्गलण्ड, मेरीलैण्ड, पेन्सिलवेनिया, वर्जिनिया आदि जो अनेक उपनिवेश बसाये थे, उन्होने १७६६ ई० में इङ्गलण्ड के खिलाफ विद्रोह शुरू कर दिया। इन उपनिवेशो में बसे हुए इङ्गलिश लोग यह नही चाहते थे, कि अटलान्टिक महासागर के पार से ब्रिटिश राज्य व ब्रिटिश पार्लियामेन्ट उन पर शासन करे। सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६-१७६३) का उल्लेख हमने अभी किया था। इस युद्ध में ब्रिटेन को बहुत खर्च उठाना पडा था। विशेषतया कनाडा को फ्रेंच लोगो से जीतने मे उन्हे सेना पर बहुत खर्च करना पडा था। इङ्गलैण्ड में इस समय जार्ज तृतीय का शासन था। वह शक्तिशाली और स्वेच्छाचारी राजा था। उसने विचार किया, कि सप्तवर्षीय युद्ध के खर्च को पूरा करने के लिये अमेरिकन उपनि-

चीजों पर विशेष टैक्स लगाया जाना चाहिये। अमेरिका के लोग यह बात सहन करने के लिये तैयार नहीं थे कि अटलान्टिक महासागर के पार बैठे हुए पार्लियामेन्ट के सदस्य उन पर टैक्स लगावें। वे कहते थे, ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में हमारा कोई प्रतिनिधि नहीं है। बिना हमारे प्रतिनिधित्व के उसे क्या अधिकार है, कि हमारे ऊपर टैक्स लगाने का फैसला करे। उन्होंने उन टैक्सों को देने से इनकार कर दिया। जो चाय ब्रिटेन से अमेरिका जाती थी, उन पर भी टैक्स लगाया गया था। जब इङ्गलैण्ड का एक जहाज चाय की पेटियां लेकर बोस्टन के बन्दरगाह में प्रविष्ट हुआ, तो कुछ अमेरिकन लोग उस पर चढ़ गये और उन्होंने चाय की पेटियों को समुद्र में फेंक दिया। यह घटना १७७३ ई० में हुई थी। बोस्टन से विद्रोह की जो अग्नि भड़कनी शुरू हुई धीरे-धीरे उसने ब्रिटेन के सब अमेरिकन उप-निवेशों को व्याप्त कर लिया। सब जगह ब्रिटेन का मुकाबला करने के लिये स्वयसेवक भरती किये जाने लगे और इन स्वयंसेवक सेनाओं की ब्रिटिश सेनाओं के साथ बाकायदा लड़ाई शुरू हो गई।

अमेरिकन उपनिवेशों के लिये यह सम्भव नहीं था, कि वे स्वयं ब्रिटेन की सेनाओं का मुकाबला कर सकते। उस समय फ्रांस इङ्गलैण्ड का कट्टर शत्रु था। सप्तवर्षीय युद्ध में फ्रांस को इङ्गलैण्ड से नीचा देखना पड़ा था। फ्रेंच लोग अपनी पराजय का बदला चुकाने के लिये उत्सुक थे। अतः अमेरिकन लोगों ने फ्रांस से सहायता की अपील की। जनरल लफायत के नेतृत्व में फ्रेंच स्वयंसेवकों ने स्वातन्त्र्य युद्ध में अमेरिका की सहायता करने के लिये प्रस्थान किया।

इसी बीच में, जुलाई १७७६ में अमेरिका ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। फ्रांस ने अमेरिका की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार कर लिया और जी जान से उसकी सहायता प्रारम्भ कर दी। १७८१ तक ब्रिटेन और अमेरिका की लड़ाई जारी रही। आखिर, ब्रिटेन परास्त हुआ और अमेरिका के ये उत्तरी उपनिवेश ब्रिटेन की अधीनता से मुक्त हुए।

७. व्यापारिक क्रांति

पन्द्रहवी सदी के अन्त मे नये प्रदेशो की खोज निकालने की जो प्रवृत्ति यूरोप में शुरू हुई थी, उसका हम पहले जिक्र कर चुके है। इस प्रवृत्ति ने न केवल विशाल अमेरिका महाद्वीप मे उपनिवेश बसाने का अवसर यूरोपियन देशो को प्रदान किया, अपितु अफ्रीका के विविध प्रदेशो को हस्तगत करने और एशिया के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बढाने के लिये भी उन्हे प्रेरित किया। इससे यूरोप के लोगो के सम्मुख व्यापार का एक विशाल क्षेत्र खुल गया और उससे लाभ उठाकर वे आर्थिक समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर होने लगे।

नये प्रदेशो के परिज्ञान के कारण यूरोप की आर्थिक दशा मे जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया, उसे व्यापारिक क्रान्ति के नाम से कहा जाता है।

व्यापारिक क्रांति का स्वरूप—पहले यूरोप के सामुद्रिक व्यापार का क्षेत्र भूमध्यसागर व अटलान्टिक महासागर के तटवर्ती प्रदेशो तक ही सीमित था। अब यूरोपियन नाविक अमेरिका, अफ्रीका और एशिया मे आने-जाने लगे। उनके व्यापारी सुदूरवर्ती इण्डोचायना, इण्डोनीसिया, भारत, अमेरिका और अफ्रीका आदि देशो के साथ व्यापार के लिये तत्पर हुए। जहाजो का आकार अधिक विशाल होने लगा। एजटक व मय सभ्यताओ के विनाश द्वारा स्पेनिश लोगो को सोना और चादी अत्यधिक परिमाण मे लूट में प्राप्त हुए। अमेरिका मे इन बहुमूल्य धातुओं की जो अनेक नई खानें ज्ञात हुई थी, उनसे भी सोना चादी बहुत बडी मात्रा मे यूरोप पहुचने लगा। अमेरिका और एशिया के साथ व्यापार के कारण भी यूरोपियन लोगो को बहुत अधिक आर्थिक लाभ हुआ। धन की वृद्धि से महाजनो की बहुत उन्नति हुई। बहुत से नये बैंक खुले। बड़े व्यापार के लिये अधिक पूजी की आवश्यकता होती थी। इसलिये जायन्ट स्टाक कम्पनियो का सगठन शुरू हुआ और करोडो रुपये की पूजी से नई-नई कम्पनिया खुलनी प्रारम्भ हुई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस प्रकार की कम्पनियो का एक अच्छा उदाहरण है। इन ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनियो के हिस्से बाजार मे खुले तौर पर बिकते थे और इस से स्टाक एक्सचेंज का भी प्रारम्भ हुआ, जो यूरोप के आर्थिक जीवन मे एक सर्वथा नई चीज थी। आर्थिक उत्पत्ति के लिये अभी यूरोप मे यान्त्रिक शक्ति का प्रयोग शुरु नही हुआ था। तैयार माल का उत्पादन पुराने तरीके से कारीगरो द्वारा ही किया जाता था, जो अपने घर पर बैठकर हाथ से सब काम करते थे। पर व्यापार का क्षेत्र और परिमाण अब पहले की अपेक्षा बहुत अधिक विशाल हो गया था।

व्यापार के सम्बन्ध में इस युग में (१५०० से १७५० तक) जिस नीति का अनुसरण किया जाता था, उसे मर्कन्टाइल सिस्टम कहा जाता है। इस नीति के अनुसार यूरोप का प्रत्येक देश यह यत्न करता था, कि वह अधिक से अधिक मात्रा मे अपना माल और देशों को बेचे। आयात की अपेक्षा उसका निर्यात अधिक रहे, ताकि अपने माल के बदले में प्रचुर परिमाण में सोना चादी प्राप्त की जा सके। वह देश समृद्ध समझा जाता था, जो अपने माल की कीमत के रूप में अन्य देशो से सिक्का (सोने या चादी का) प्राप्त कर सके। इसलिये इस युग मे प्रत्येक राज्य यह प्रयत्न करता था, कि अपने व्यवसाय को उन्नत कर

और उनका तैयार माल अन्यत्र बिककर राज्य की समृद्धि मे सहायक हो। स्पेन, इङ्गलैण्ड, फ्रास आदि देश इसी नीति का अनुसरण कर इस युग मे धनी होने के लिये प्रयत्नशील थे।

व्यापारिक क्रांति के परिणाम—(१) व्यापारिक क्रान्ति का सब से महत्त्वपूर्ण परिणाम व्यावसायिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव था, जो अठारहवी सदी के अन्तिम भाग मे यूरोप मे शुरू हुई। अधिक से अधिक माल तैयार करने की की प्रवृत्ति ने यूरोप के शिल्पियो को इस बात के लिये प्रेरणा दी, कि वे उत्पादन के नये तरीको का अवलम्बन करे। हम इस व्यावसायिक क्रान्ति पर एक पृथक अध्याय मे प्रकाश डालेगे। पर यहा यह ध्यान मे रहना चाहिये, कि व्यवसायो के लिये नये साधनो के अवलम्बन के लिये जो प्रेरणा यूरोप के लोगो को प्राप्त हुई, उसका मूल कारण व्यापारिक क्रान्ति ही थी।

(२) सामाजिक क्षेत्र मे व्यापारिक क्रान्ति ने अनेक महत्त्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न किये। यूरोप के लोग दूर-दूर के देशो मे व्यापार के लिये आने-जाने लगे, उन्हे नये देशो व नये लोगो से परिचय हुआ। इससे उनकी दृष्टि अधिक विशाल हुई। वे अनेक नई वस्तुओ का अपने जीवन मे उपयोग करने लगे। चाय और काफी का प्रयोग उन्होने इसी युग मे शुरू किया। तमाखू से भी पहले पहल परिचय उन्हे इसी समय मे हुआ। अमेरिका और अफ्रीका के विशाल प्रदेशो मे बसने व व्यापार के लिये यूरोपियन लोग बडी सख्या मे जाने लगे। इससे यूरोप मे जनसख्या घटने लगी। इस समय तक यूरोप के किसानो की दशा अर्द्ध-दास की सी थी। आबादी के कम होने से इस दशा मे अन्तर आने लगा और अफ्रीका के हब्शी गुलामो के कारण यूरोपियन किसानो को गुलामी से छुटकारा पाने मे सहायता मिली। मध्यश्रेणी के लोगो को व्यापार और व्यवसाय द्वारा समृद्ध होने का अनुपम अवसर प्राप्त हुआ और धीरे-धीरे उनका महत्त्व बढने लगा। अठारहवी सदी मे यूरोप मे राज्यक्रान्ति की जो लहर प्रारम्भ हुई, उसका नेतृत्व मध्यश्रेणी के इन लोगो ने ही किया। मध्यश्रेणी मे जो आत्मसम्मान और अपने महत्त्व की भावना प्रादुर्भूत हुई थी, उसका कारण यह व्यापारिक क्रान्ति ही थी।

प्रामाणिक रूप से यह जानने का अवसर मिला, कि आर्थिक दृष्टि से राज्य की कितनी दुर्दशा हो गई है।

कैलोन—नैकर के वाद उसके महत्त्वपूर्ण पद पर कैलोन को अधिष्ठित किया गया। कैलोन एक दरवारी था। आर्थिक क्षेत्र मे उसका एक ही असूल था और वह यह, कि राजकीय व्यय के लिये जितने धन की आवश्यकता हो, उसे ऋण लेकर प्राप्त कर लिया जाय। राजा और उसके दरवारियो को मौज उडाने के लिये रुपये की जरूरत थी। टैक्सो से इतना रुपया प्राप्त नही होता था, कि सव आवश्यकताएँ पूर्ण की जा सके। एक उपाय और था, वह यह कि कर्ज लिया जाय। कैलोन ने इसी का आश्रय लिया। चार सालो मे उसने ९० करोड रुपये कर्ज लिये। पर कर्ज की भी कोई हद होती है। इससे अधिक कर्ज भी न मिल सका। लोग इतने वेवकूफ न थे, कि इस प्रकार कर्ज देते जावे। आखिर, कैलोन को भी सुधारो की सूझी। उसने राजा को सूचना दी, कि फ्रास के दिवालिया होने मे अव अधिक विलम्व नही है। यदि इस विकट परिस्थिति से फ्रास की रक्षा करनी हो, तो उसके लिये महत्वपूर्ण सुधारो की आवश्यकता है। कैलोन की सम्मति मे सवसे अधिक महत्वपूर्ण सुधार यह था, कि कुलीन और पुरोहित श्रेणियो पर भी भूमिकर लगाया जाय। अव तक ये श्रेणिया प्राय इस कर से मुक्त थी। कैलोन चाहता था, कि सव लोगो पर भूमिकर एक समान रूप से लगाया जाय। इसलिये उसने राजा को सलाह दी, कि कुलीन श्रेणियो और चर्च के प्रमुख व्यक्तियो को वुलाया जाय और उनके सम्मुख ये सुधार विचार के लिये उपस्थित किये जावें।

प्रमुख लोगो की सभा (१७८६)—राज्य और चर्च के प्रमुख व्यक्तियो की सभा वुलाई गई। इस सभा में सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधि नही वुलाये गये थे। केवल विशेपाधिकार प्राप्त लोग इसम आये थे। इस सभा के सम्मुख कैलोन ने फ्रास की वास्तविक दशा का चित्र खीचकर अपने सुधार प्रस्तावित किये। कैलोन ने वताया कि फ्रास को १२ करोड रुपया वार्पिक घाटा हो रहा है। राष्ट्रीय ऋण की मात्रा २४ करोड वढ गई है। अधिक किफायत नही की जा सकती। कितनी भी किफायत की जाय, घाटा दूर नही हो सकता। नया कर्ज भी अव नही मिलता। अव क्या किया जाय? सर्वसाधारण जनता पहले ही टैक्सो के वोझ से लदी हुई है, उस पर नये टैक्स नही लगाये जा सकते। हा, एक उपाय है। टैक्स की पद्धति के दोपो को दूर किया जाय, तो समस्या हल हो सकती है। वहुत से लोग टैक्स से मुक्त है, वहुत से लोग विशेपाधिकार प्राप्त है। हा, यदि इनसे भी टैक्स वसूल किय जावें, यदि टैक्स का कानून सव प्रदेशो तथा सव लोगो पर एक समान रूप से लागू हो, तो आर्थिक पहेली सुलझाई जा सकती है। कैलोन ने वडी निर्भयता से अपने कार्यक्रम को, अपने सुधारो को पेश किया। पर प्रमुख लोगो की इस सभा को कैलोन पर विश्वास न था, वे उसके सुधारो को स्वीकृत करने के लिये तैयार न थे। कैलोन वर्खास्त कर दिया गया और उसके साथ ही प्रमुख लोगो की यह सभा भी वर्खास्त कर दी गई।

आर्थिक समस्या को हल करने के लिये राजा ने स्वय सुधार प्रस्तावित किये। इसके लिये राजा ने दो नये टैक्स लगान का निश्चय किया था। सामान्य रीति से इन टैक्सो को

दर्ज करने के लिये पेरिस के न्यायालय (पार्लमां) के पास भेजा गया। पर इस बार पेरिस के न्यायालय ने असाधारण मार्ग का अवलम्बन किया। उसने इस नये टैक्स को दर्ज करने से ही इनकार नहीं किया, पर साथ ही यह भी उद्घोषित किया, कि किसी नये स्थिर टैक्स को लगाने की अनुमति के देने का अधिकार 'एस्टेट्स जनरल' में एकत्रित जनता का ही है, अन्य किसी का नहीं। इस उद्घोषणा के कुछ दिन बाद ही पेरिस के न्यायालय ने राजा से प्रार्थना की, कि राजा के 'एस्टेट्स जनरल' के अधिवेशन को बुलाया जाय।

राजा के लिये अब एक नई समस्या उपस्थित हो गई थी। न्यायालय उसके नये टैक्सों को दर्ज नहीं करते थे। उन्होंने तो खुल्लम-खुल्ला राजा तथा उसके सहायकों के कार्य का विरोध करना शुरू कर दिया था। राजा ने पेरिस के न्यायालय को बर्खास्त कर दिया और न्याय की नई पद्धति की स्थापना की। पर स्थिति अब उसके हाथ से बाहर हो चुकी थी। क्रान्ति की भावना लोगों में गहरा स्थान प्राप्त कर गई थी। आखिर, उसे मजबूर होकर 'एस्टेट्स जनरल' के अधिवेशन को बुलाने के लिये सहमति देनी पड़ी।

८ क्रान्ति का श्रीगणेश

एस्टेट्स जनरल—'एस्टेट्स जनरल' के अधिवेशन के साथ ही क्रान्ति का श्रीगणेश हो जाता है। राजा की यह प्रथम पराजय थी। उसे यह स्वीकार करना पड़ा था, कि वह अकेला अपनी इच्छा से—चाहे साक्षात् परमात्मा ने ही उसे राज्य करने के लिये नियुक्त किया हो—फ्रास की आर्थिक समस्या को हल नही कर सकता। उसे जनता की सहायता की आवश्यकता को स्वीकार करना पड़ा था। क्रान्ति के सिद्धान्त की यह भारी विजय थी।

एस्टेट्स जनरल क्या चीज थी, उसका निर्माण किस प्रकार होता था और उसके क्या नियम थे—इन बातो को जाननेवाला उस समय कोई न था। इस सभा का १७५ साल से कोई भी अधिवेशन नही हुआ था। सभी लोग इसकी चर्चा तो करते थे, पर इसका ठीक ठीक परिज्ञान किसी को न था। परिणाम यह हुआ, कि यह कार्य विद्वानो के सुपुर्द किया गया। आखिरकार, फ्रास के विद्वानो ने बड़े अनुसन्धान के अनन्तर यह पता लगाया कि एस्टेट्स जनरल का क्या स्वरूप था।

जिन दिनो फ्रास में सामन्तपद्धति (Feudal System) प्रचलित थी, तब इस सभा के अधिवेशन हुआ करते थे। इसका निर्माण सामन्तपद्धति की परिस्थितियो को दृष्टि में रखकर हुआ था। यह सभा तीन विभागो मे विभक्त थी और इन विभागो मे क्रमश पुरोहित, कुलीन तथा तृतीय (सर्वसाधारण जनता) श्रेणि के प्रतिनिधि सम्मिलित हुआ करते थे। तीनो श्रेणियो के सदस्यो की सख्या बराबर-बराबर होती थी और प्रत्येक विभाग पृथक्-पृथक् वोट देता था। एक विभाग का एक वोट समझा जाता था। किस विभाग की क्या सम्मति है, यह बहुमत से निर्णय किया जाता था। तीन विभागो मे से कम से कम दो जिसके पक्ष मे हो, वह स्वीकृत समझा जाता था। मध्यकाल की परिस्थितियो के अनुसार यह व्यवस्था सर्वथा उपयुक्त थी। उस समय राष्ट्रीय भावना और लोकतन्त्रवाद का प्रादुर्भाव नही हुआ था। पुरोहित और कुलीन श्रेणियो की महत्ता लोगो की दृष्टि मे निर्विवाद थी। सर्वसाधारण जनता मे अपने महत्व का विचार ही उत्पन्न नही हुआ था। उस

जमाने में यह भी बहुत बडी बात थी कि सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधि इस सभा मे सम्मिलित हो। उस समय मे यह बिल्कुल स्वाभाविक था, कि कुलीन और पुरोहित श्रेणिया पृथक् विभागो मे वोट करे और अपने को साधारण जनता से अलग रखे। पर अब १७८८ मे जमाना बिलकुल बदल चुका था। अब सर्वसाधारण लोगो के प्रतिनिधि यह दावा करते थे, कि हम ९५ फीसदी से अधिक जनता के प्रतिनिधि है। पुरोहितो और कुलीनो को पृथक्-पृथक् जितने सदस्य प्राप्त है, केवल उतने ही हमे भी प्राप्त हो—यह कहा का न्याय है ?

प्रतिनिधियो की सख्या—इस समय राजा का प्रधानमन्त्री नैकर था। कैलोन के पतन के बाद उसे फिर अपने पुराने पद पर नियत किया गया था। नैकर ने स्वीकार किया कि सर्वसाधारण जनता को दुगने प्रतिनिधि मिलने चाहिये। कुलीनो और पुरोहितो के तीन-तीन सौ प्रतिनिधि होते थे, अत सर्वसाधारण जनता को ६०० प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

वोट का प्रकार—परन्तु इससे वास्तविक समस्या का हल नही हुआ। सर्वसाधारण जनता को दुगने प्रतिनिधि मिल गये—पर इससे लाभ कुछ नही हुआ। यदि तीनो विभागो को एक सभा में वोट देना होता, प्रत्येक सदस्य का एक वोट गिना जाता और सम्पूर्ण सदस्यो के बहुमत से निर्णय होता, तब तो अवश्य लाभ था। पर यदि इसके विपरीत अब भी पहले की ही तरह प्रत्येक विभाग का एक वोट गिना जाय और प्रत्येक विभाग अपना निर्णय पृथक् रूप से करे, तो इससे कोई लाभ नही था। अत सर्वसाधारण जनता ने यह आन्दोलन शुरु किया कि वोट का ढग बदलना चाहिये। तीनो विभागो की पृथक्-पृथक् सभा न होकर एक साथ सभा होनी चाहिये और उसमें बहुमत से निर्णय किया जाना चाहिये। पर नैकर ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

शिकायत-पत्र—एस्टेट्स जनरल के लिये प्रतिनिधियो को निर्वाचित करने के साथ ही पुराने रिवाज के अनुसार जनता को यह भी अवसर दिया गया था, कि सरकार और देश के शासन से उन्हें जो शिकायत हो, उन्हे लिखकर भेजें। लोगो ने इस अवसर का पूर्ण रूप से उपयोग किया। हजारो की सख्या मे शिकायत पत्र लिखकर भेजे गये। साठ हजार के लगभग इस प्रकार के शिकायत-पत्र अब भी सुरक्षित है, और उनके अनुशीलन से भलीभाति जाना जा सकता है, कि उस समय लोग क्या अनुभव करते थे और उन्हे क्या शिकायते थी। इन शिकायत-पत्रो से, जिन्हें फ्रास में काइए (cahiers) कहा जाता था, ज्ञात होता है कि उस समय फ्रासीसी लोग रिपब्लिक नही चाहते थे, वे केवल राजा के स्वेच्छाचारी शासन का अन्त करने के लिये इच्छुक थे। वे प्रत्येक मनुष्य को वोट का अधिकारी नही समझते थे, लोकतन्त्र शासन का यह प्रारम्भिक तत्त्व उनकी समझ में नही आया था। परतु साथ ही उस समय के शासन के विविध दोषो की अनुभति उनमे उत्पन्न हो चुकी थी और वे उन्हे दूर करने के लिये पूर्णतया उद्यत थे। एक भारी परिवर्तन के लिये लोग तैयार हो गये थे।

अधिवेशन का प्रारम्भ (५ मई १७८९)—५ मई १७८९ के दिन एस्टेट्स जनरल की प्रथम बैठक हुई। सदस्यो को आज्ञा दी गई थी, कि वे उसी पोशाक को पहनकर आवे,

जो कि मध्यकाल मे उस सभा के सदस्य पहना करते थे। राजा अपनी आज्ञा से सदस्यो की पोशाक को पुराना बना सकता था, पर उनकी भावनाओ और विचारो को पुराना बनाना उसकी सामर्थ्य से बाहर था। वर्साय के एक शानदार महल मे एस्टेट्स जनरल का प्रारम्भिक अधिवेशन शुरू हुआ। बीच म ऊंचे राजसिंहासन पर राजा विराजमान था। रानी उसके पार्श्व मे बैठी थी। सब से पहले राजा का प्रारम्भिक भाषण हुआ। राजा उस भाषण को रटकर लाया था और पाठशाला मे पढनेवाले लडके की तरह उसने उसे उगल दिया। नैकर के भाषण मे तीन घण्टे लगे। जब राजा और उसके प्रधान मन्त्री के भाषण हो चुके, तो जय जयकार की ध्वनि के बीच म राजा और रानी ने सभाभवन से प्रस्थान किया।

एस्टेट्स जनरल के उस अधिवेशन के प्रारम्भ होते ही कुछ ऐसी घटनाएं हो गई जिनसे कि सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधि चिढ गये। जब तक पुरोहित और कुलीन श्रेणियो के प्रतिनिधि बैठ नही गये, तब तक उन्हे खडे रहना पडा। राजा जब अपना प्रारम्भिक भाषण दे रहा था, तब सब लोगो ने अपनी टोपियां उतारी हुई थी। भाषण की समाप्ति के अनन्तर जब राजा अपने सिंहासन पर बैठा, तो उसने अपनी टोपी सिर पर रख ली। उसके बाद कुलीनो और पुरोहितो ने भी अपनी टोपियां सिर पर रख ली। पर जब सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधि भी यही करने लगे, तो उन्हे टोका गया। ये बातें मामूली थी, पर इनसे शुरू मे ही सर्वसाधारण लोगो के मन पर बहुत बुरा असर पडा।

वोट किस प्रकार से लिये जावे, इस बात का फैसला अभी नही हुआ था। पहले प्रारम्भिक अधिवेशन मे सभाभवन से प्रस्थान करने से पूर्व राजा ने तीनो विभागो को पृथक् पृथक् जाकर अपना-अपना अधिवेशन करने का आदेश दिया था, पर तृतीय श्रेणी के प्रतिनिधि इसको मानने के लिये उद्यत न थे। वे निरन्तर अन्य दोनो विभागो को इस बात के लिये निमन्त्रित कर रहे थे, कि वे उनके साथ मिलकर एक सभा के रूप म राष्ट्रीय समस्याओ पर विचार करे। पर अन्य विभागो ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया। आखिर, जब तृतीय श्रेणी के लोग अन्य विभागो के व्यवहार से सर्वथा निराश हो गये तो उन्होने एक बडे साहस का कार्य किया। १७ जून को तृतीय श्रेणी के विभाग के सम्मुख यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया, कि क्योकि वे ९५ फीसदी जनता के प्रतिनिधि है, और क्योकि वास्तविक शक्ति यह सर्वसाधारण जनता ही है, अत निश्चय किया जाता है कि जनता के ये वास्तविक प्रतिनिधि राष्ट्रीय महासभा का रूप धारण कर ले। इस प्रस्ताव के पक्ष मे ४९१ वोट आये और विपक्ष मे ९०। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। एस्टेट्स जनरल के तृतीय श्रेणी के प्रतिनिधियो ने अपने को राष्ट्रीय महासभा के रूप मे परिवर्तित कर लिया। कुलीनो और पुरोहितो की सर्वथा उपेक्षा कर दी गई।

जब राजा और उसके दरबारियो को यह समाचार मिला, तो उनको होश आई। राजा ने आज्ञा दी, कि तीनो विभागो का अधिवेशन एक साथ किया जाय, सभापति के पद पर वह स्वय रहेगा। ऐसा ही किया गया। एस्टेट्स जनरल के तीनो विभाग एक सभा के रूप मे एकत्रित हुए। राजा सभापति बना और उसने अपने श्रीमुख से अनेक सुधार प्रस्तुत किये। जब यह सब हो चुका, तो राजा ने बडी गम्भीरता से आज्ञा दी कि अब तीनो

विभाग पृथक्-पृथक् चले जावें और अपने-अपने अधिवेशन करे। पुरोहित और कुलीन श्रेणियो के सदस्य राजा की आज्ञा का पालन कर उठकर चले गये। शेष सदस्य चुपचाप बैठे रहे। वे देख रहे थे कि अब क्या होता है। एक बार फिर राजकीय आज्ञा दोहराई गई। मिराबो ने इसका प्रतिवाद किया। उसने निधडक होकर कहा, कि हम तब तक यहा से नही उठेगे, जबतक कि बन्दूक के कुन्दो से हमें बाहर नही निकाल दिया जायगा। यह मिराबो सर्वसाधारण जनता का प्रमुख और प्रभावशाली नेता था।

जनता की विजय—अन्त मे राजा की पराजय हुई। उसे जनता की माग स्वीकार करनी पडी। उसने आज्ञा प्रकाशित की, कि तीनो विभागो का अधिवेशन एक साथ हो, कुलीन और पुरोहित-श्रेणियो के जो सदस्य अभी तक तृतीय श्रेणी के साथ राष्ट्रीय महासभा मे सम्मिलित नही हुए है, वे सम्मिलित हो जावे। आखिर, सर्वसाधारण जनता अपने महत्व को प्रदर्शित करने मे सफल हुई। कुलीन और पुरोहित श्रेणियो पर उसकी विजय हुई।

दरबार की साजिश—सर्वसाधारण जनता जिस ढग से शक्ति प्राप्त करती जा रही थी, वह दरबार के लोगो को सह्य न था। वे अच्छी तरह जानते थे कि उनकी भलाई इसी मे है, कि राजा का एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन कायम रहे। ये लोग सुधार के जानी दुश्मन थे। वे अपने विशेषाधिकारो को किसी भी प्रकार छोडने के लिये तैयार न थे। वे यह भी सहन नही कर सकते थे, कि राजा की स्थिति वैध शासक की हो जाय। फ्रास के शासन मे जनता का हाथ हो जाने पर उन्हे मौज उडाने का अवसर कैसे मिलेगा? रानी इन दरबारियो का हृदय से समर्थन कर रही थी। राजा का छोटा भाई आर्तोआ का काउन्ट भी उनका प्रबल पक्षपोषक था। ये लोग सर्वसाधारण जनता की हरकतो को बहुत ही खतरनाक तथा शैतानियत से भरी हुई समझते थे, और उन्हे कुचलने के लिये सब प्रकार के उपायो का अवलम्बन करने के पक्ष मे थे। इन्होने साजिश की, कि राष्ट्रीय महासभा को तोड दिया जाय। पर ये यह भी जानते थे, कि जनता इसे सहन न कर सकेगी। वह गदर के लिये तैयार हो जायगी। इसलिये इसका प्रबन्ध वे पहले से ही रखना चाहते थे। उन्होने गदर को कुचलने के लिये विदेशी सैनिको का प्रयोग करने का निश्चय किया। उस समय मे वेतन की खातिर बहुत से सैनिक दूसरे देशो मे भी नौकरी किया करते थे। विशेषतया, स्विट्जरलैण्ड और जर्मनी के वीर योद्धा यूरोप के अनेक राजाओ के पास सैनिक की नौकरी किया करते थे। इन्हे केवल अपनी नौकरी से मतलब था। अपने मालिक के हुक्म से ये कुछ भी करने को तैयार हो जाते थे। दरबार का गुट चाहता था, कि इन सैनिको की एक सेना को बुलाकर पेरिस मे तैनात कर दिया जाय, ताकि यदि राष्ट्रीय महासभा के बर्खास्त करने पर जनता विद्रोह करे, तो उसे कुचल दिया जा सके। उनकी यह भी इच्छा थी कि नैकर को—जो सर्वसाधारण जनता से सहानुभूति रखता था—पदच्युत कर दिया जाय।

राजा इस साजिश से सहमत हो गया। स्विस और जर्मन सैनिको की सेनाएँ पेरिस में तैनात कर दी गईं। जब पेरिस की जनता को ये समाचार मिले, तब वह भडक उठी। एक उद्यान मे बहुत से लोग एकत्रित थे और इसी विषय पर बातचीत कर रहे थे। कैमिल

देसमोला नाम का एक नवयुवक अखवारनवीस उनके बीच मे पहुचा और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा, कि शीघ्र ही स्विस सिपाही 'देशभक्तो' को कतल करते हुए दिखाइ पडेगे, अत हम चाहिये कि अपने को शस्त्रो से सुसज्जित कर सगठित करे, ताकि दरबारी गुट से अपनी रक्षा की जा सके। देसमोला का आन्दोलन काम कर गया। सारी रात लोग पेरिस की गलियो मे चक्कर लगाते फिरे। जितने भी हथियार मिल सके, एकत्रित किये गये। लूटमार मच गई।

बस्तीय्य का पतन—कुछ ही दिनो के बाद पेरिस के लोग फिर इकट्ठे हुए। उन्हे हथियारो की खोज थी। वे देशभक्ति का कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहते थे। लोगो की एक भीड बस्तीय्य की तरफ निकल गई। यह एक पुराना किला था, जो अब जेलखाने के तौर पर इस्तेमाल होता था। लोगो को उससे विशेष घृणा थी। उनका खयाल था, कि फ्रास की सरकार के क्रूर अत्याचारो का यह एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। उन्हे पूर्ण आशा थी, कि यहा बहुत से हथियार इकट्ठे ही मिल जावेगे। बस्तीय्य का किलेदार लौनी नाम का एक महानुभाव था। उसने किले को खोलने से इनकार कर दिया। अब तक बहुत सी भीड वहा इकट्ठी हो चुकी थी। दोनो तरफ से कहासुनी होने लगी। पता नही, किस प्रकार बस्तीय्य की सेना ने भीड पर गोली चला दी। सौ देशभक्त मर कर गिर पडे। लोगो मे जोश फैल गया। हमला होने लगा। आखिर, लौनी को मजबूर होना पडा, कि किले के दरवाजे खोल दे। कुछ जनता अन्दर घुस गई। कैदियो को बन्धन से मुक्त कर दिया गया। लौनी और उसके सम्पूर्ण सैनिको के सिर धड से अलग कर दिये गये। उन सब सिरो को लाठियो और बरछो की नोक पर लटकाकर सारे पेरिस मे जुलूस निकाला गया। बस्तीय्य को ध्वस कर दिया गया। यह घटना १४ जुलाई, सन् १७८९ के दिन हुई थी। इस घटना का बडा महत्व है। फ्रास मे आज भी १४ जुलाई का दिन प्रधान राष्ट्रीय त्योहार के रूप मे मनाया जाता है। निस्सन्देह, पुराने युग के एकतन्त्र शासन पर यह प्रबल आघात था। इस घटना से भलीभाति स्पष्ट हो गया, कि क्रान्ति अब हुए बिना नही रहेगी। कुलीन श्रेणी के बहुत से लोग इसी समय मे फ्रास छोडकर और देशो मे जाने लग गये। सारे देश मे अव्यवस्था फैल गई।

राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना—स्थिति इतनी बिगड चुकी थी, कि उसे सँभाल सकना राजा की शक्ति के बाहर था। जब किसी देश मे अव्यवस्था फैलने लगती है, शासनसूत्र ढीला पडता है, तो बदमाशो और लफङ्गो की बन आती है। पेरिस की भी अब यही दशा थी। सारे शहर मे हजारो की सख्या मे भूखे, नगे लोग तबाही मचाते फिरते थे। वे जिस पर चाहते हमला कर देते, जिस दूकान को चाहते लूट लेते। इस अव्यवस्था मे पेरिस के लोगो की जान और माल की रक्षा करने के लिये राष्ट्रीय नेताओ ने एक 'राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना' का सगठन किया। लफायत इसका सेनापति बनाया गया। पेरिस मे शान्ति और व्यवस्था कायम रखने मे राष्ट्रीय सेना को पूरी सफलता प्राप्त हुई। राजा को यह बहाना बनाने का अवसर नही दिया गया, कि इस अव्यवस्था की सम्भावना को दृष्टि मे रखकर ही उसने विदेशी सैनिको की सेना को बुलाया था।

नागरिक सभा—इतना ही नही, पेरिस के नागरिक शासन को भी नये ढग से सग-

फ्रास में राज्यक्राति का श्रीगणेश (श्री देसमोला जनता के बीच में)

ठित किया गया। राजा और उसकी सरकार की सर्वथा उपेक्षा कर जनता ने स्वय परि
की नगर सभा का निर्माण किया। राष्ट्रीय महासभा के एक सदस्य को ही इस नगर-सभ
का अध्यक्ष नियत किया गया। फ्रास के अन्य बडे नगरो ने भी पेरिस का अनुसरण किया
सर्वत्र नवीन नगर-सभाओ की रचना की गई और राष्ट्रीय स्वयसेवक सेनाए सगठित व
गई।

देहातो मे भी अव्यवस्था फैल गई। किसानो ने जमीदारो के मकानो पर हमले शु
कर दिये। टैक्स वसूल कर सकना असम्भव हो गया। बस्तील्य के ध्वस के साथ जि
लहर का प्रादुर्भाव हुआ था, वह पेरिस तक ही सीमित नही रही, उसने बडी शीघ्रता
सम्पूर्ण फ्रास को व्याप्त कर लिया।

एक दिन राजा १६वा लुई दिन भर शिकार मे थककर जब साझ को अपने बिस्तर प
लेटने लगा, तो उसे ये समाचार दिये गये। समाचार सुनकर राजा ने चकित होकर पू
—'है! क्या कोई दगा हो गया है?' खबर लानवाले ने जवाब दिया—'नही मालिक
दगा नही, क्रान्ति हो गई है।'

वस्तुत, अब राज्यक्रान्ति का श्रीगणेश हो चुका था।

पाचवा अध्याय

राज्यक्रान्ति की प्रगति

१ वैध राजसत्ता की स्थापना का प्रयत्न

राजा का रुख--फ्रास मे जिस प्रकार अव्यवस्था और अशान्ति फैल रही थी, उससे १६वा लुई वस्तुत चिन्तित था। राजा अपने आप मे बुरा नही था। उसका दोष यही था, कि वह कमजोर था, इरादे का पक्का न था। उसके सलाहकार उसके लिये सबसे अधिक हानिकारक थे। यदि १६वा लुई इन सलाहकारो के प्रभाव से बच सकता, तो निस्सन्देह क्रान्ति की दिशा कुछ और ही होती। जब उसे बस्तीय्य के ध्वस का समाचार मिला, तब अगले ही दिन वह राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन मे उपस्थित हुआ। वहा उसने प्रतिज्ञा की, कि विदेशी सैनिको की सेनाओ को वापिस भेज दिया जायगा और नैकर को फिर प्रधानमन्त्री बनाया गया। इसके बाद वह २०० प्रतिनिधियो (राष्ट्रीय महासभा के सदस्यो) के साथ पेरिस गया, ताकि जनता को शान्त कर सके। पेरिस मे जाकर राजा ने क्रान्तिकारियो के तिरगे झण्डे को भी नमस्कार किया। फ्रास मे जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे, राजा ने उनके सम्मुख सिर झुका देने मे ही अपना कल्याण समझा। निस्सन्देह, वह ठीक मार्ग पर चल रहा था। पर उसके सलाहकार ? उसके दरबारी ? वे उसे इन नई प्रवृत्तियो को कुचल देने के लिये उकसा रहे थे। आखिर, राजा ने रात-दिन अपने आस-पास रहनेवाले इन दरबारियो के कहने को मान लिया। १६वें लुई की यही निर्बलता थी। मानवीय स्वभाव की यह निर्बलता बहुत स्वाभाविक थी।

सामाजिक क्राति--राज्यक्रान्ति की जो प्रक्रिया अब प्रारम्भ हो चुकी थी, वह अपना प्रभाव प्रदर्शित कर रही थी। गाव-गाँव मे किसान लोग सभाएँ करके पुराने जमाने को कब्र मे गाड देने के प्रस्ताव पास कर रहे थे। केवल प्रस्ताव ही पास नही हो रहे थे, काम भी हो रहा था। टैक्स वसूल करनेवाले पानी मे डुबोये जा रहे थे। जमीदारो के किले ध्वस किये जा रहे थे, गोदामो मे आग लगाई जा रही थी। सर्वसाधारण जनता सामाजिक दृष्टि से अपनी हीन दशा के खिलाफ विद्रोह कर रही थी। जिन कुलीन लोगो ने उन्हे सदियो मे दलित बनाया हुआ था, उनसे पूरा-पूरा बदला लिया जा रहा था। सामाजिक भेदो पर कुठाराघात किया जा रहा था। राज्यक्रान्ति तो पेरिस मे हो रही थी, ये देहात के लोग तो सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति की तरफ पग बढा रहे थे। मध्यकाल की सामन्तपद्धति के जो अवशेष इस काल मे विद्यमान थे, उन्हे चुन-चुनकर नष्ट किया जा रहा था।

राष्ट्रीय महासभा की जो बैठक ४ अगस्त को हुई, वह बहुत महत्त्वपूर्ण थी। पेश

किया गया, कि सामन्तपद्धति को नष्ट कर दिया जाय, प्रस्ताव पास हो गया। प्रस्ताव किया गया, कि चर्च को दशांश वसूल करने का जो अधिकार है, वह नष्ट कर दिया जाय, प्रस्ताव पास हो गया। प्रस्ताव किया गया, कि शिकार के कानून नष्ट कर दिये जाय, यह भी पास हो गया। कुलीन और पुरोहित श्रेणियो को जो विशेषाधिकार प्राप्त है, उन्हे नष्ट करने का प्रस्ताव किया गया, उसे भी पास कर दिया गया। इसी तरह के अन्य भी बहुत से प्रस्ताव उपस्थित किये गये, जिनका उद्देश्य मध्यकाल के अन्यायो को नष्ट करना था। वे सब स्वीकृत हो गये। उस बैठक मे मध्यकालीन सस्थाओ के बहुत से अवशेषो का अन्त कर दिया गया। यह बैठक बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी।

इन चार महीनो मे फ्रास मे दो महत्त्वपूर्ण क्रान्तिया हो गई थी। राज्यक्रान्ति द्वारा फ्रास की जनता ने राजा के एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कर राजा को जनता की इच्छा को स्वीकृत करने के लिये बाधित किया था। सामाजिक क्रान्ति द्वारा फ्रास मे सामन्तपद्धति तथा उससे सम्बद्ध सस्थाओ को नष्ट कर जनता की विविध श्रेणियो मे समानता स्थापित की गई थी।

कुलीन लोगो का फ्रास से भागना—चार अगस्त की बैठक मे राष्ट्रीय महासभा ने जो रुख अख्तियार किया था, उससे यह स्पष्ट हो गया था कि फ्रास मे पुराने जमाने का अन्त होना अवश्यम्भावी है। इसलिये बहुत से उच्च पुरोहित तथा कुलीन लोग इस समय मे फ्रास छोडकर अन्य देशो मे चले गये। बस्तीय्य की जेल के ध्वस के बाद ही हजारो की सख्या मे ये विशेषाधिकार प्राप्त लोग फ्रास छोडकर विदेशो मे जाने शुरु हो गये थे। अब इस प्रवृत्ति की गति और भी बढ गई। यूरोप के अन्य देशो मे अभी क्रान्ति की भावना उदित नही हुई थी। उन्हे आशा थी, कि वहा उन्हे आश्रय मिलेगा और वे दूसरे देशो के कुलीन लोगो तथा राजशक्ति की सहायता से फ्रास मे क्रान्ति को कुचल सकेगे।

पेरिस की भीड का राजप्रसाद पर हमला—पर अभी बहुत से कुलीन लोग फ्रास मे विद्यमान थे। राजा को उसके दरबारी पहले की ही तरह घेरे रहते थे। दरबार के इस गुट ने राजा को उकसाना शुरु किया, कि चार अगस्त को राष्ट्रीय महासभा ने जो प्रस्ताव स्वीकृत किये है, उन पर अपनी स्वीकृति न दे। राजा अपने दरबारियो के प्रभाव मे आ गया। समय गुजरता गया, राजा ने उन प्रस्तावो पर हस्ताक्षर नही किये। तरह-तरह की अफवाहे फैलने लगी। लोग आपस मे बातचीत करने लगे, कि राजा क्रान्ति को कुचलने के लिये तैयारिया कर रहा है। इसके लिये उसने बाहर से फौज मँगवाई है। पेरिस का वातावरण इसी प्रकार की अफवाहो से गरम हो गया। ठीक वही हालत हो गई, जो कि बस्तीय्य के पतन से पहले दिन थी। इसी समय खबर आई, कि फ्लान्डर्स से एक फौज वर्साय पहुँच गई है। राजा की अगरक्षक सेना ने उसका बडी धूमधाम से स्वागत किया है। इस फौज को जब सहभोज दिया जा रहा था, तो रानी भी वही उपस्थित थी। यह भी सुना गया है, कि सेना के अफसरो ने जोश मे भरकर क्रान्ति के तिरगे झण्डे को पैरो से कुचला है। इस प्रकार की अफवाहो से जनता मे जोश लहरे मारने लगा। पेरिस मे भूखो नङ्गो की क्या कमी थी। गुण्डे और बदमाश भी ऐसे मौको की प्रतीक्षा मे रहते है। भूखे, गुण्डे, बदमाश, देशभक्त, क्रान्तिकारी—सब तरह के लोग कामकाज छोडकर बाजारो मे

निकल आये। गपशप उडने लगी। जरा सी देर मे लोगो का एक जुलूस वन गया। हजारो औरते और हजारो मर्द पेरिस की गलियो मे जुलूस वनाकर फिरने लगे। जिधर भी ये गये, लोग साथ होते गये। पेरिस मे चक्कर काट कर इस जुलूस ने वर्साय की तरफ—जहा राजा रहता था—प्रस्थान किया। लफायत अपनी राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना को लेकर जुलूस के पीछे-पीछ हो लिया। उसे फिकर थी, कि कही दगा न हो जाय। स्थिति को कावू मे रखने के लिये वह पेरिस की इस भीड के साथ-साथ वर्साय गया था। यह घटना ५ अक्टूवर को हुई।

पेरिस की इस भीड ने राजप्रासाद को घेर लिया। जव तक जुलूस वर्साय पहुचा, शाम हो गई थी। लोगो ने राजप्रासाद के आसपास खुले आसमान के नीचे रात व्यतीत की। सुवह होने पर लोग फिर हल्ला-गुल्ला करने लगे। कुछ लोगो ने प्रासाद के सन्तरियो से छेडछाड की। झगडा हो गया, अनेक सन्तरी मारे गये। कुछ लोग प्रासाद मे घुस गये। ईट और पत्थर फेके जान लगे। कुछ समझदार लोग राजा के पास पहुँचे और निवेदन किया कि महाराज, भीड तव तक शान्त न होगी, जवतक आप उसे दर्शन न दे देगे। राजा ने स्वीकार कर लिया। राजप्रासाद के झरोखे पर खडे होकर राजा, रानी और राजकुमार ने जनता को दर्शन दिया। पर लोग इतने से भी सतुप्ट न हुए। वे आग्रह करने लगे, कि राजा को उनके साथ पेरिस चलना पडेगा। उन्हे विश्वास था, कि राजा ही सव सुख समृद्धि का मूल है। उसे पेरिस मे अपन साथ रखकर वे समझते थे, कि उनकी सव समस्याओ का हल हो जायगा। फ्रास की जनता अव तक भी हृदय से राजभक्त थी। रिपब्लिक की कल्पना अव तक भी उत्पन्न नही हुई थी।

पुराने जमाने का मातमी जलूस—छ अक्टूवर को दिन के एक वजे जुलूस ने वर्साय से पेरिस के लिये प्रस्थान किया। पुराने जमाने का यह मातमी जुलूस था। मरे हुए सन्तरियो के कटे सिर वरछियो पर टाग लिये गये थे और लोग उन्हे हाथ में लेकर आगे-आगे चल रहे थे। राष्ट्रीय महासभा के सदस्यो को भी साथ ले लिया गया था। राजा, रानी और राजकुमार वाधित होकर जुलूस के साथ-साथ जा रहे थे। भूखी, नगी जनता आनन्द के आवेश मे चिल्लाती जाती थी—'रोटीवाला, रोटीवाली और रोटीवालो का लडका'। ये लोग समझ रहे थे, कि राजा हमारे साथ है, उसके पास रोटियो का अक्षय भण्डार है, अव उन्हे रोटियो की कमी नही रहेगी।

राजा और राष्ट्रीय महासभा को वर्साय से पेरिस ले आया गया। यह घटना फ्रेंच राज्यक्रान्ति के इतिहास मे वहुत महत्त्व रखती है। अव राज्यक्रान्ति की पगति पर पेरिस की जनता का प्रभाव वहुत अधिक वढ गया। पेरिस के लोगो की इच्छा क्रान्ति के स्वरूप को परिवर्तित करने लगी। पेरिस के आम लोग सुसगठित न थे। वहा भूखो, नङ्गो, गण्डो और वदमाशो की प्रचुरता थी। इनके अतिरिक्त गैर-जिम्मेदार, वढ-वढकर वात वनानेवाले लोग पेरिस मे वडी सख्या मे मौजूद थे। इन सव लोगो की सम्मतिया—सम्मतिया नही, क्षणिक मानसिक आवेश राष्ट्रीय महासभा के निर्णयो पर असर करने लगे। फ्रास की राज्यक्रान्ति जनता की इच्छा को सर्वोपरि करना चाहती थी। यह तो हो गया, पर जनता की इच्छा अनेक वार ऐसे विकृत रूप मे प्रकट हुई, कि उसकी उपादेयता में ही

लोगों को सन्देह होने लगा। राजा को तुइलरी के राजप्रासाद में रखा गया। वहां उस पर जनता का कड़ा निरीक्षण था। उसकी स्थिति कैदी से बहुत अच्छी नहीं रह गई थी।

मनुष्यों के आधारभूत अधिकार—जिस समय ये सब घटनाएं हो रही थीं, राष्ट्रीय महासभा देश के लिये नवीन शासन-विधान का निर्माण करने में लगी थी। उसकी एक उपसमिति शासन-विधान का खाका तैयार कर रही थी। अब उसने अपना कार्य पूर्ण कर दिया। जो नया शासन विधान बनाया गया, उसमें सबसे पहले जनता के आधारभूत अधिकारों की उद्घोषणा की गई। इन अधिकारों में से मुख्य-मुख्य निम्नलिखित थे—

(१) सब मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न होते हैं, और उनके अधिकार एक समान हैं। सामाजिक भेद का आधार सार्वजनिक उपयोगिता के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। (२) राज की स्वामित्व शक्ति जनता में निहित है। (३) स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह है, कि प्रत्येक मनुष्य को वह सब कुछ करने का अधिकार है, जिससे कि किसी दूसरे को हानि पहुंचने की सम्भावना न हो। (४) सरकार का प्रयोजन मनुष्यों के आधारभूत अधिकारों को सुरक्षित रखना है। (५) जनता की सार्वजनिक इच्छा ही कानून है। प्रत्येक नागरिक को अधिकार है, कि स्वयं या अपने प्रतिनिधि द्वारा कानून का निर्माण करने में हाथ बंटावे। (६) प्रत्येक मनुष्य के लिये कानून एक ही होना चाहिये। (७) प्रत्येक मनुष्य तब तक निरपराधी समझा जायगा, जब तक कि कानून के अनुसार बने हुए न्यायालय उसे अपराधी साबित नहीं कर देंगे। कानून के प्रतिकूल किसी मनुष्य को न कैद किया जा सकता है, न अपराधी कहा जा सकता है, और न सजा दी जा सकती है। (८) किसी भी मनुष्य को अपनी सम्मतियों के कारण—चाहे वे सम्मतियां धार्मिक मामलों के सम्बन्ध में ही हों, सजा नहीं दी जायगी, बशर्ते कि ये सम्मितियां सार्वजनिक व्यवस्था में बाधा डालनेवाली न हों। (९) अपने विचारों और सम्मतियों को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट कर सकना मनुष्य के सबसे अधिक बहुमूल्य अधिकारों में से एक है। अतः प्रत्येक मनुष्य को यह अधिकार है कि वह स्वतन्त्रता के साथ भाषण कर सके, लिख सके और मुद्रण कर सके। परन्तु यदि वह इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करेगा—दुरुपयोग किस प्रकार का होता है, यह कानून स्पष्ट करेगा—तो जिम्मेदारी उसी की होगी। (१०) प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है, कि वह स्वयं या अपने प्रतिनिधि द्वारा इस बात का निश्चय करने में हाथ बटावे, कि सार्वजनिक कोष के लिये कितने धन की आवश्यकता है, इस धन का खर्च किस प्रकार किया जाय और इस धन को प्राप्त करने के लिये कौन-कौन से टैक्स लगाये जावें, ये टैक्स किस प्रकार से वसूल किये जावें और कितने समय के लिये कायम रहें। (११) जनता को हक है, कि प्रत्येक राजकर्मचारी से उसके कार्य का ब्यौरा ले सके। (१२) सम्पत्ति पर वैयक्तिक अधिकार एक पवित्र तथा अनुलघनीय अधिकार है।

इन आधारभूत अधिकारों को जनता के सम्मुख प्रकाशित करते हुए राष्ट्रीय महासभा ने निस्सन्देह यह ठीक दावा किया था, कि सदियों से मनुष्यों के इन अधिकारों का अपमान किया जाता रहा है। अब हम फिर इन अधिकारों की स्थापना करते हैं, और हमारी यह विज्ञप्ति अत्याचारियों के विरुद्ध एक शाश्वत युद्ध-घोषणा का कार्य करती रहेगी।

शासन-विधान—आधारभूत अधिकारों की यह उद्घोषणा शासन-विधान की प्रस्तावना

मात्र थी। शासन-विधान का निर्माण प्रधानतया दो सिद्धान्तो को दृष्टि मे रखकर किया गया था—(१) राज्य मे जनता ही है, जिसम कि राज्य की प्रभुत्व-शक्ति निहित रहती है। (२) सरकार के शासन, कानून-निर्माण तथा न्याय—ये तीनो विभाग पृथक्-पृथक् रहने चाहिये। इन सिद्धान्तो को आधार मे रखकर जो शासन-विधान वनाया गया था, उसका ढाचा निम्नलिखित था —

राजा को इस शासन-विधान मे स्थान दिया गया था, पर उसकी स्थिति को एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजा से परिवर्तित कर वैध तथा शासन-विधान का अङ्गभूत वना दिया गया था। अव वह केवल परमेश्वर की कृपा से ही राज्य नही करता था, पर उसकी सत्ता जनता की इच्छा पर भी आश्रित थी। राज्य के कानूनो के अन्दर और उनके अधीन रहना उसके लिये आवश्यक था। वह मन्त्रियो को नियुक्त और वर्खास्त कर सकता था, पर ये मन्त्री व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी थे। व्यवस्थापिका सभा मे जो प्रस्ताव व विधान स्वीकृत होते थे, उनके प्रयोग मे आने मे पूर्व राजा की स्वीकृति भी आवश्यक थी। पर यदि राजा किसी प्रस्ताव व कानून को स्वीकृत न करे, और व्यवस्थापिका सभा तीन वार निरन्तर पास करती जाय, तो राजा की स्वीकृति के विना भी वह लागू हो जाता था। इस प्रकार राजा किसी प्रस्ताव का निषेध नही कर सकता था, वह केवल उसे स्थगित ही कर सकता था। पर शासन का सचालन उसी के हाथ मे रखा गया था, सेना का प्रधान अध्यक्ष भी उसे ही वनाया गया था। पर वह न सन्धि के अधिकार रखता था और न विग्रह के। वह जनता की इच्छा का दास था, पर जनता की इस इच्छा के निर्माण मे उसका कोई हाथ न था। जनता राजा की इच्छा की सर्वथा उपेक्षा कर सकती थी, पर राजा जनता की इच्छा की किसी भी दशा में उपेक्षा नही कर सकता था।

कानून-निर्माण का कार्य एक व्यवस्थापिका सभा को दिया गया था। इस सभा के ७४५ सदस्य होते थे। इस सभा का निर्वाचन दो साल के लिये होता था। प्रत्येक पुरुष (स्त्री नही) नागरिक, जो अपनी तीन दिन की आमदनी के वरावर धनराशि राज्य को कर के रूप मे दे इस सभा के निर्वाचन के लिये वोट देने का अधिकार रखता था। इस व्यवस्थापिका सभा की शक्ति वहुत विस्तृत थी। कानून-निर्माण करना इस सभा का ही कार्य था।

मध्यकाल मे सामन्तपद्धति के समय में फ्रास जिन विभागो म विभक्त था—जिनका आधार मध्यकालीन सामन्तो के छोटे-वडे और अस्वाभाविक राज्य थे—उन्हें अव उडा दिया गया था, और उनके स्थान पर कुल ८३ प्रान्त वनाये गये थे। इन प्रान्तो को जिलो, ताल्लुको और परगनो में वाटा गया था। इन विविध विभागो मे स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था की गई थी और राज-कर्मचारियो की नियुक्ति निर्वाचन द्वारा करने का तरीका जारी किया गया था।

चर्च में परिवर्तन—राष्ट्रीय महासभा ने चर्च के सम्बन्ध मे भी वडे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये। इनमे चर्च के सगठन और स्वरूप मे वडी भारी क्रान्ति हो गई। चर्च के पुराने दशाश कर को तो ४ अगस्त के दिन ही उडा दिया गया था और आधारभूत अधिकारो की घोषणा करते हुए धार्मिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को भी स्वीकृत कर लिया गया

था। अब राष्ट्रीय महासभा ने और आगे कदम बढाया। २ नवम्बर, सन् १७८९ के अधिवेशन में चर्च की सारी जायदाद जब्त कर ली गई। जब्त की हुई चर्च की जागीरों को बेच दिया गया और उसकी कीमत को राष्ट्रीय आय में शामिल कर लिया गया। इससे पहले फ्रास में ११७ मठ थे, अब केवल ८३ मठ रहने दिये गये। प्रत्येक प्रान्त में एक मठ रखा गया। इन मठों के पादरियों के बारे में यह तय किया गया, कि राजकर्मचारियों की तरह उनका भी निर्वाचन किया जाय। उस निर्वाचन में न केवल रोमन कैथलिक लोग ही भाग ले, पर प्रोटेस्टेन्ट, यहूदी और नास्तिकों तक को इनके निर्वाचन में वोट देने का अधिकार दिया गया। अपने पद पर नियत किये जाने से पूर्व प्रत्येक पादरी से यह शपथ ली जाती थी, कि वह राष्ट्रीय शासन-विधान का भक्त बना रहेगा। नाममात्र को रोम के पोप का चर्च पर स्वामित्व स्वीकृत किया गया, पर वस्तुतः चर्च राज्य के अधीन हो गया। यह सर्वथा स्वाभाविक ही था, कि पोप, बिशप तथा अन्य पुरोहित श्रेणी के लोग इन सुधारों का विरोध करें। जिस समय राष्ट्रीय शासन-विधान के प्रति भक्ति की शपथ लेने का प्रश्न उत्पन्न हुआ, तो दो तिहाई पादरियों ने यह शपथ लेने से इनकार कर दिया। जिन लोगों ने शपथ लेने से इनकार किया, उन्हें सार्वजनिक शान्ति और व्यवस्था का घातक समझा गया। उन्हें अपने पदों से पृथक् कर दिया गया। परिणाम यह हुआ, कि उच्च पुरोहित श्रेणी के अधिकांश लोग असन्तुष्ट कुलीन जमींदारों के साथ मिल गये। ये लोग भी क्रान्ति को कुचलने के लिये भरसक कोशिश करने लगे। केवल ये ही नहीं, सर्वसाधारण जनता, जो कि क्रान्ति के अन्य सब कार्यों को सहानुभूति की दृष्टि से देख रही थी, चर्च के प्रति इस व्यवहार से बहुत असन्तुष्ट हो गई। सर्वसाधारण जनता में धर्म, चर्च तथा पुरोहित श्रेणी के प्रति श्रद्धा की भावना बहुत गहरी रही है। उसके प्रति इस व्यवहार को इन सर्वसाधारण लोगों ने सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देखा।

पत्रमुद्रा—राज्य के पास धन की जो कमी थी, उसे पूर्ण करने के लिये राष्ट्रीय महासभा ने पत्रमुद्रा (Assignat) प्रकाशित करने का निश्चय किया। महासभा को यह विश्वास था, कि चर्च की जागीरों से राज्य को जो आमदनी होगी, वह इस पत्रमुद्रा के लिये अमानत का काम करेगी और उसके मूल्य को गिरने न देगी। इसी आशा से बहुत बडे परिमाण में पत्रमुद्राएँ प्रकाशित की गईं, जो कि 'आसिया' के नाम से प्रसिद्ध हैं। पर शीघ्र ही इनका मूल्य गिरना शुरू हो गया। राज्यक्रान्ति के आगामी वर्षों में इनकी कोई भी कीमत नहीं रह गई थी।

२ राजसत्ता का अन्त

क्रांति की विरोधी शक्तिया—राष्ट्रीय महासभा अपना कार्य समाप्त कर रही थी। फ्रास के स्वरूप में बडा भारी परिवर्तन आ गया था। सामन्त-पद्धति का अन्त हो गया था, श्रेणिभेद नष्ट कर दिया गया था, चर्च के विशेषाधिकार उडा दिये गये थे। राजा की स्वेच्छाचारिता को हटाकर उसकी वैध सत्ता स्थापित कर दी गई थी। फ्रास की राज्यक्रान्ति अपना कार्य कर चुकी थी। पर पुराने जमाने की शक्तिया इतनी आसानी से दब जानेवाली नहीं थी। वे क्रान्ति को कुचलने के लिये चुपचाप कोशिश में लगी हुई थीं।

जो कुलीन लोग क्रान्ति के प्रारम्भ होते ही फ्रास छोडकर विदेशो मे भाग गये थे, वे शान्त नही बैठे थ। वहा जाकर वहा के एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजाओ तथा कुलीनो की सहायता प्राप्त करना तथा अपनी शक्ति को सगठित करना उनका एकमात्र लक्ष्य था। उस जमाने मे राष्ट्रीयता का तत्त्व विकसित नही हुआ था। फ्रास का कुलीन जमीदार अपने देश के किसान व मजदूर से कोई भी समता व एकता अनुभव नही करता था। जर्मनी के कुलीन जमीदार के साथ उसे अधिक सादृश्य नजर आता था। फ्रास के य कुलीन लोग विदेशी राजाओ के दरबार मे आश्रय पाकर बदला लेन की तैयारी मे लगे हुए थ। इनकी आकाक्षा थी, कि फ्रास की नई सरकार के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर दिया जाय। इस कार्य मे यूरोप के अन्य राजाओ तथा कुलीनो की सहायता का इन्ह पूरा भरोसा था। केवल फ्रास के बाहर ही नही, अपितु अन्दर भी ये कुलीन लोग अपने उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये कोशिश मे लगे हुए थे। राजा को बहुत से कुलीन लोग हर समय घेरे रहते थे। राजा अब भी पूरी तरह उनके प्रभाव में था। ये लोग वैध राजसत्ता को सहन करना तो दूर रहा, उसकी कल्पना भी नही कर सकते थे। इनकी समझ मे ही नही आता था, कि राजा भी कानून के अधीन रह सकता है। राजा की यह नवीन कल्पना इनके विचार से कोसो दूर थी। ये लोग राजा को निरन्तर उकसाते रहते थे। फ्रास के बाहर भागे हुए कुलीन लोग भी उसे हमेशा सन्देश भेजते रहते थे। एक पूरा षड्यन्त्र तैयार हो रहा था। इन लोगो ने साजिश की, कि राजा अपने परिवार के साथ चुपचाप पेरिस से भाग निकले। फ्रास की उत्तर-पूर्वी सीमा पर एक सेना तयार कर दी गई थी, जो कि राजा के वहा पहुँचते ही उसका स्वागत करे। इन कुलीनो का यह ख्याल था, कि यदि राजा किसी तरह क्रान्तिकारियो के प्रभाव तथा कब्जे से निकलकर बाहर चला आये, तो यूरोप के अन्य राजाओ से सहायता प्राप्त करना और भी अधिक सुगम हो जायगा। विशेषतया, १६वे लुई की रानी मेरी आतोआत के भाई लियोपोल्ड द्वितीय से, जो कि इस समय आस्ट्रिया का सम्राट था, उन्हे बहुत आशाएँ थी। निश्चय यह किया गया था, कि राजा के फ्रास से चले आने पर एक शक्तिशाली सेना फ्रास पर आक्रमण करेगी और क्रान्ति को कुचलकर फिर यथापूर्व एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजसत्ता की स्थापना कर देगी।

राजा का भागने का प्रयत्न—साजिश पूर्ण रूप से तैयार हो गई। १७९१ का साल था और जून का महीना। एक रात राजा, रानी, राजकुमार और उनके दो एक साथी वेश बदल कर चुपचाप तुइलरी के राजमहल से बाहर निकले। ग्यारह बज चुके थे। पेरिस की गलियो मे शान्ति थी। सब तरफ अँधियारा छाया हुआ था। अपनी जिन्दगी मे शायद पहली बार राजा और रानी चुपचाप पेरिस की गलियो मे पैदल चलने लगे। उनके हृदय धडक रहे थे। अपने ही राज्य मे वे चोरो और सन्दग लगानेवालो की तरह डरते-डरते चले जा रहे थे। एक अँधेरे मोड पर एक घोडागाडी तैयार खडी थी। बिना कुछ बोले वे उस पर बैठ गये। गाडी चल पडी। गाडी मे बैठे हुए राजा और रानी के दिल म क्या ख्याल आ रहे थे? बस कुछ दूर और। उस पहाडी के पार—सब ठीक है। वहा पहुँचने की देर है, सैनिक सलाम करेंगे। अफसर पैर चूमेंगे। राजभक्ति कितनी मधुर चीज है, कम से कम उस आदमी के लिये जो राजा हो, या अगर राजा न हो, तो कम से

कम दरबारी ही हो। कुछ देर वहां खूब धूमधाम होगी। बहुत दिनों बाद पुराने नजारे देखने को मिलेंगे। और उस के बाद ? उस राजभक्त फौज के साथ पेरिस की तरफ प्रस्थान होगा। थोडी बहुत गोलाबारी हो जायगी। कुछ लोग फांसी पर चढा दिये जावेंगे, कुछ गोली से उडा दिये जावेंगे। बस, सब शान्त हो जायगा। फिर केलोन प्रधान मन्त्री बनेगा, रुपया जुटाने में उस की अकल खूब चलती है। बाकी कुलीन लोग भी वापिस चले आवेंगे। वर्साय की वे बहारें, वे नाचरंग—बस दो चार दिन की ही तो बात है।

सुबह हो चुकी थी। राजा और रानी इसी प्रकार सुमधुर कल्पनाएं करते हुए चले जा रहे थे, कि वारेन नाम के नगर में पुल पर चढते हुए कुछ सन्तरियों ने अकस्मात् पूछ लिया—"आपके पासपोर्ट ?" सुखद कल्पनाओं का सारा महल मिट्टी में मिल गया। राजा पकड लिया गया। उसे दलबल सहित पेरिस वापिस ले जाया गया। लोगों ने चुपचाप बिना एक शब्द भी कहे, राजा को इस प्रकार वापिस आते हुए देखा। तुइलेरीज महल पर कडा पहरा बिठा दिया गया राजा पहले तो केवल नजरबन्द था, अब बिल्कुल कैद ही हो गया।

रिपब्लिक के पक्षपातियों का अभ्युदय—राज्यक्रान्ति के इतिहास में इस घटना का बहुत महत्त्व है। इसने क्रान्ति के रूप को बिल्कुल बदल दिया। अब तक फ्रांस के क्रान्तिकारी राजसत्ता का अन्त नहीं करना चाहते थे। कोई भी महत्त्वपूर्ण दल इस प्रकार का नहीं था, जो राजा को हटाकर रिपब्लिक की स्थापना करने को तैयार हो। पर इस घटना के बाद से लोगों की प्रवृत्ति बदलनी शुरु हुई। अनेक लोग साफ-साफ यह कहने लगे, कि राजा की क्या आवश्यकता है ? रिपब्लिक क्यों न कायम की जाय ? एक ऐसा दल उत्पन्न हो गया, जो कि राजसत्ता का विरोधी और रिपब्लिक का पक्षपाती था। परन्तु स्मरण रखना चाहिये, कि अब भी इस दल की शक्ति बहुत कम थी। राष्ट्रीय महासभा ने राजा के भागने की बात को दबाने की कोशिश की। उन की तरफ से यह प्रकाशित कर दिया गया, कि राजा भागा नहीं था, अपितु कुछ लोग उसे पेरिस से बाहर ले गये थे। राजा के भागने की घटना के कुछ ही दिन बाद जुलाई के महीने में ही पेरिस में एक सभा की जा रही थी, जिसमें कि राजा को च्युत कर देने के लिये लिये प्रार्थना-पत्र पेश करने का विषय उपस्थित था। इस सभा को बर्खास्त होने का हुक्म दिया गया। गोली चलाई गई और बहुत से आदमी गोली खाकर गिर गये। यह घटना १६ जुलाई, १७९१ को हुई थी, और इतिहास में यह 'शा द मार' के हत्याकाण्ड के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि राजा को च्युत कर रिपब्लिक स्थापित करने के पक्षपाती 'शा द मार (पेरिस का एक स्थान) में एकत्र होकर अपनी सभा कर रहे थे। लोगों पर गोली चलाने का हुक्म पेरिस के मेयर बेली के आदेश पर दिया गया था। अभी तक भी फ्रांस की जनता में रिपब्लिक का भाव प्रबल नहीं हुआ था। लोग राजसत्ता को ही कायम रखना चाहते थे। पर इसमें भी सन्देह नहीं, कि ऐसा दल निरन्तर शक्ति प्राप्त करता जा रहा था, जो राजसत्ता को नष्ट कर देने के पक्ष में था। इस दल के प्रबल होने का मुख्य श्रेय राजा, उसके दरबारी तथा बाहर भागे हुए कुलीन लोगों के कारनामों को ही प्राप्त है। इनके कृत्यों के कारण ही जनता की सहानुभूति रिपब्लिक के पक्षपातियों की तरफ बढती गई। राजसत्ता को कायम रखने

वालो का पक्ष निर्बल होता गया।

रिपब्लिकन दल के नेता—इस नये रिपब्लिकन दल के नेता कौन थे? राजसत्ता के विरोधी दल का सर्वप्रधान नेता डा० मरत था। डा० मरत बहुत ही विद्वान् व्यक्ति था। इङ्गलिश, स्पेनिश, जर्मन और इटालियन भाषाओ का उसे अच्छा ज्ञान था। उसने अनेक वर्ष इङ्गलैण्ड मे व्यतीत किये थे। इङ्गलैण्ड के एक शिक्षणालय ने उसके सम्मान के लिये उसे एम० डी० की उपाधि प्रदान की थी। उसने वैज्ञानिक विषयो पर अनेक ग्रन्थ लिखे थे। विशेषतया, चिकित्साशास्त्र का वह बडा पण्डित था। वैजमिन फ्रैंकलिन तथा गैटे जैसे विद्वान् उसके भौतिकशास्त्र-विषयक ग्रन्थ को बडे शौक से पढते थे। डा० मरत ने अपने साहित्यक और वैज्ञानिक जीवन का परित्याग कर राजनीतिक क्षेत्र मे प्रवेश किया था। इन दिनो मे वह "लोक-मित्र" नाम के एक समाचार-पत्र का सचालन कर रहा था। इस समाचार-पत्र द्वारा वह कुलीनो तथा उच्च-मध्य श्रेणी के लोगो पर भयकर रूप से आक्षेप कर रहा था और साधारण जनता का शासन स्थापित करने के लिये जोर दे रहा था।

रिपब्लिक दल का दूसरा नेता कैमिल देसमोला था। यह भी एक समाचार-पत्र का सम्पादक था। इसी देसमोला ने पेरिस की जनता को विदेशी सैनिको से अपनी रक्षा करने के लिये तैयार होने को भडकाया था, जिसके कारण लोग हथियारो की खोज मे निकल पडे थे और वस्तीय्य के ध्वस की घटना हुई थी। इस दल का एक अन्य नेता दातो (Danton) था, जो अपने जोशीले व्याख्यानो के कारण प्रसिद्ध था। वह वकालत का पेशा करता था और पेरिस की जनता मे बहुत लोकप्रिय था। ये तथा अन्य बहुत से नेता इस समय राजसत्ता के विरुद्ध आवाज उठा रहे थे। इनकी राय में राजसत्ता अब इतनी विकृत हो चुकी थी, कि उसके साथ किसी भी प्रकार का समझौता सम्भव न था। ये पूर्ण लोकतन्त्र रिपब्लिक के पक्षपाती थे।

वैध राजसत्ता का पक्षपाती दल और उसके नेता—वैध राजसत्ता के पक्षपातियो के प्रधान नेता लफायत तथा मिराबो थे। लफायत स्वय कुलीन श्रेणी का था, पर उसमे क्रान्ति और स्वतन्त्रता की भावनाए विद्यमान थी। अमेरिकन स्वाधीनता के युद्ध मे वह स्वयसेवक के रूप मे सम्मिलित हुआ था। फ्रास की राज्यक्रान्ति मे उसका शुरू से ही प्रधान भाग था। राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना का सगठन उसी द्वारा हुआ था। मिराबो भी कुलीन श्रेणी का था। राज्यक्रान्ति का वास्तविक नेता वही था। एस्टेट्स जनरल के तीनो विभागो की एक बैठक एक साथ होनी चाहिये और प्रत्येक विभाग का एक वोट न होकर सदस्यो के बहुमत मे निर्णय किया जाना चाहिये—इस आन्दोलन का प्रधान नेतृत्व मिराबो ने ही किया था। जिस समय राजा ने तीनो विभागो को पृथक्-पृथक् बैठक करने का आदेश दिया, तब मिराबो ही था, जिसने कि निर्भय होकर इसका विरोध किया था। मिराबो बहुत ऊँचे किस्म का राजनीतिज्ञ था। वह बहुत दूरदर्शी तथा साफ दिमाग का आदमी था। राष्ट्रीय महासभा का सारा कार्य उसी के नेतृत्व मे हुआ था। फ्रास के लिये जो नया शासन-विधान बना था, वह बहुत अशो मे उसी की कृति थी। राजा तथा रानी पर भी उसका बहुत प्रभाव था। वे उसे बहुत मानते थे। खेद यही है, कि मिराबो देर तक न

जी सका। राजा के फ्रास भागने के लिये प्रयत्न करने से पूर्व ही २ अप्रैल, १७९१ के दिन उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु वैध राजसत्ता के पक्षपातियो के लिये एक भारी क्षति थी। यदि वह जीवित रहता, तो शायद राजा को अनेक भयकर भूलो से बचाये रखने मे समर्थ होता। पर उसकी मृत्यु ने राजसत्ता को बहुत कमजोर कर दिया था।

व्यवस्थापिका सभा—राष्ट्रीय महासभा ने ३० सितम्बर, १७९१ को अपना काम समाप्त कर दिया। इसने कुल मिलाकर २५०० कानून पास किये। इसमे सन्देह नही, कि राष्ट्रीय महासभा ने बडा महत्वपूर्ण कार्य किया था। इसके नवीन विधानो ने फ्रास के स्वरूप को सर्वथा परिवर्तित कर दिया था। फ्रास का नवीन शासन-विधान अब तैयार हो चुका था। अब उसके अनुसार कार्य प्रारम्भ हुआ। नये शासन-विधान में मुख्य शक्ति व्यवस्थापिका सभा को दी गई थी। उसका निर्वाचन हो गया था और अब इसकी प्रथम बैठक १ अगस्त, १७९१ के दिन शुरु हुई। व्यवस्थापिका सभा के कुल सदस्यो की सख्या ७४५ थी। इनमे प्रधानतया दो दल थे। (१) वैध राजसत्तावादी—इनकी सख्या बहुत अधिक थी। बहुमत इन्ही का था। इनका विचार था, कि राज्यक्रान्ति का काय अब समाप्त हो चुका है। राजा की एकतन्त्र स्वेच्छाचारी सत्ता का अन्त हो गया है, और उसके स्थान पर जनता का अधिकार हो गया है। यह पर्याप्त है। अब फ्रास का भला इसी में है, कि १७९१ के शासन-विधान के अनुसार कार्य हो और नवीन युग के सुख का उपभोग किया जाय। (२) रिपब्लिक के पक्षपाती—इनकी सख्या २८० थी। इस प्रकार व्यवस्थापिका सभा मे ये अल्प सख्या मे थे। इनका ख्याल था, कि राज्यक्रान्ति अभी पूर्ण नही हुई है, अभी कुछ और आगे बढने की जरूरत है, राजसत्ता का सर्वथा अन्त किया जाना चाहिये। राजसत्ता को उडा कर रिपब्लिक की स्थापना इनका प्रधान लक्ष्य था।

जेकोबिन क्लब—यह रिपब्लिकन दल दो भागो मे विभक्त था, जेकोबिन और जिरोदिस्ट। इन दोनो विभागो मे क्या भेद था और इनके मुख्य विचार क्या थे—इस बात पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है। जिस समय राजा को वर्साय से पेरिस लाया गया, तब राष्ट्रीय-महासभा भी पेरिस ही चली आई थी। इसके अधिवेशन पेरिस मे ही होने लगे थे। इस राष्ट्रीय महासभा के कुछ सदस्यो ने—जिनके विचार आपस मे मिलते जुलते थे, महासभा के मकान के नजदीक ही एक बडा मकान किराये पर लिया था। ये सदस्य इस मकान में अपनी सभा किया करते थे। ओर आपस मे विचार करने के अनन्तर यह निश्चय करते थे, कि राष्ट्रीय महासभा मे उन्हे किस नीति का अनुसरण करना चाहिये। शुरू-शुरू मे इन सदस्यो की सख्या एक सौ थी, पर धीरे-धीरे और सदस्य इस सभा मे शामिल होने लगे और इसे बहुत महत्व प्राप्त हो गया। किसी वक्त मे यह मकान जेकाब का गिरजा था, अत इस मकान मे विद्यमान इस क्लब को जेकोबिन क्लब कहा जाने लगा। धीरे-धीरे यह क्लब अधिक-अधिक महत्व पकडता गया। पहले इसकी बैठक गुप्त होती थी, जनता उनमे शामिल नही हो सकती थी। पर अक्टूबर सन् १७९१ में जनता को भी यह अवसर दिया गया, कि वह क्लब की बहस मे शामिल हो सके। परिणाम यह हुआ, कि लोगो की दिलचस्पी इस क्लब में बहुत बढ गई। यह क्लब पेरिस के राजनीतिज्ञो का अखाडा बन गया। इसमें खूब गरमागरम बहस होने लगी। जो लोग

सबसे आगे बढे होते थे, कोई नया परिवर्तन प्रस्तावित करते थे, वे इस क्लब मे ऊँचा स्थान प्राप्त करते थे। डा० मरत, दातो और देसमोला इसके प्रमुख सदस्य थे। जब अभी वैध राजसत्ता के विरुद्ध भावना नही उत्पन्न हुई थी, तब भी इस क्लब मे रिपब्लिक की गूज सुनाई दे जाती थी। पर जब वैध राजसत्ता का पक्ष कमजोर पडने लगा, तब तो यह क्लब बहुत ही आगे बढ गया। पुराने जमाने का सर्वनाश कर ससार का नये सिरे से निर्माण करना इसका आदर्श बन गया। पेरिस के अतिरिक्त अन्य नगरो मे भी इस क्लब की शाखाएँ खुली हुई थी। जून, १७९१ मे इसकी शाखाओ की सख्या ४०६ तक पहुँच गई थी। व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचन मे जेकोबिन क्लब तथा उसकी शाखाओ ने बडा हिस्सा लिया। इनके प्रयत्नो का ही परिणाम था, कि २०० के लगभग प्रतिनिधि इस दल के निर्वाचित हो गये।

जिरोदिस्ट दल—जिरोद एक प्रदेश का नाम है, जो कि फ्रास के दक्षिण-पूर्वी भाग मे स्थित है। इस के प्रधान नगर का नाम है, बोर्दियो। यहा से जो प्रतिनिधि व्यवस्थापिका सभा मे निर्वाचित हुए थे, वे भी राजसत्ता का अन्त कर रिपब्लिक की स्थापना करना चाहते थे। इनके प्रधान नेता का नाम वर्जनियो था। यह एक होशियार वकील था और इसके बहुत से साथी भी वकालत का पेशा करने वाले थे। ये लोग भी पेरिस मे परस्पर मिलते रहते थे और इन्होने भी अपनी क्लब बना रखी थी। जिरोद के अतिरिक्त फ्रास के देहातो के अनेक अन्य प्रतिनिधि भी इस क्लब मे शामिल हुआ करते थे। रिपब्लिक के पक्षपाती होते हुए भी ये लोग बहुत गरम नही थे। ये जेकोबिन दल की जल्दबाजी तथा गरम मनोवृत्ति को नापसन्द करते थे, और राजसत्ता को नष्ट करने के तरीको के सम्बन्ध मे भी मतभेद रखते थे। जेकोबिन क्लब पेरिस की मनोवृत्ति का प्रतिनिधि था और जिरोदिस्ट दल देहातो का।

व्यवस्थापिका सभा के सम्मुख विद्यमान समस्याएँ—व्यवस्थापिका सभा ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। उसका कार्य सुगम न था। फ्रास के विशद आकाश मे विपत्ति के डरावने बादल मँडरा रहे थे। भागे हुए कुलीन लोग अपना कार्य जोर शोर से कर रहे थे। फ्रास के अन्दर भी समस्याएँ कम न थी। पादरी लोगो की बहुसख्या चर्च की नई व्यवस्था को मानने के लिये तैयार नही थी। वे लोग अपने सम्पूर्ण प्रभाव को—और उस समय मे फ्रासीसी लोगो पर धर्म का आतक कम नही था, क्रान्ति के विरुद्ध प्रयुक्त कर रहे थे। राजा और उसके दरबारी चुपचाप गुप्त तरीके से विदेशी राजाओ से पत्र-व्यवहार करने मे लगे थे। इस विकट परिस्थिति का व्यवस्थापिका सभा को सामना करना था। फ्रास मे राज्यक्रान्ति का समाचार सुनते ही यूरोप के अन्य राजाओ को खतरा अनुभव होने लगा था। उन्हे भय था, कि कही उनकी प्रजा भी फ्रास का अनुकरण न करे। इसलिये वे अपना भला इसी मे समझते थे, कि फ्रास में क्रान्ति को कुचल दिया जाय। क्रान्ति भी छूत का रोग है, जिसे फैलते हुए देर नही लगती। जब आस्ट्रियन सम्राट् लिओपोल्ड द्वितीय ने सुना, कि फ्रास का राजा १६वा लुई अपनी रानी सहित वारेन नगर मे पकड लिया गया है, तो उसके क्रोध की कोई सीमा न रही। उसने कहा कि सम्पूर्ण राजाओ का सम्मान और सारी सरकारो की सुरक्षितता अब खतरे में पड गई है। उसने यूरोप के अन्य राजाओ

से अपील की, कि इस क्रान्ति की भावना को समूल नष्ट कर देना और फ्रास के शासन पवित्र धर्मप्राण राजा और उसके परिवार को क्रान्तिकारियो के चगुल से बचाकर फिर अपनी पूर्व स्थिति मे स्थापित कर देना सब राजाओ का परम कर्तव्य है। इसी अपील का परिणाम हुआ, कि २७ अगस्त के दिन पिल्निट्ज की प्रसिद्ध उद्घोषणा प्रकाशित की गई। यह उद्घोषणा आस्ट्रियन सम्राट् लिओपोल्ड द्वितीय तथा प्रशिया के राजा द्वारा प्रकाशित की गई थी।

पिल्निटप की उद्घोषणा—इसमे कहा गया था, कि फ्रास के राजा के अनुयायियो (भागे हुए कुलीन लोगो) की इच्छानुसार वे इस बात के लिये तैयार है, कि यूरोप के अन्य राजाओ के साथ मिलकर १६वे लुई को अपनी पूर्व स्थिति मे स्थापित करे। फ्रास मे एक ऐसा शासन कायम होना चाहिये, जो कि राजाओ के पवित्र अधिकारो के अनुसार हो। उन्होने केवल उद्घोषणा ही नही की, अपितु उसके अनुसार तैयारी भी प्रारम्भ कर दी। सेनाएँ सगठित की जाने लगी और क्रान्ति की विरोधी सेनाए फ्रास की तरफ बढने लगी।

इस उद्घोषणा का परिणाम—पिल्निटप की इस उद्घोषणा से फ्रेंच लोगो में बडी सनसनी फैल गई। वे लोग इस बात को सहन न कर सके, कि फ्रास के आन्तरिक मामलो में विदेशी लोग इस तरह हस्तक्षेप करे। यूरोप के दो शक्तिशाली राजा फ्रास में क्रान्ति की भावनाओ को कुचलने तथा फिर से पुराने जमाने को स्थापित करने के लिये हमला करने को तैयार है, तथा अन्य राजाओ से सहयोग के लिये अपील कर रहे है, यह बात जनता से नही सही गई। फ्रास के भागे हुए कुलीन लोग अपनी साजिशो मे इस प्रकार सफल हो रहे है, यह जानकर जनता के रोष की कोई सीमा न रही। इसी बीच मे १६वे लुई के भाई आर्तोआ के काउन्ट ने, जो कि स्वय फ्रास से भागा हुआ था, उद्घोषित किया कि, फ्रास का असली राजा १६वा लुई जनता द्वारा कैद कर लिया गया है, अत मैं स्थानापन्न राजा के तौर पर कार्य करूँगा। क्रान्ति के विरुद्ध प्रवृत्तिया वस्तुत चाहे बहुत बलवती न हो, पर इन समाचारो से लोग सावधान हो गये। समाचार-पत्रो मे जोश से भरे हुए भडकीले लेख निकलने लगे। १७८९ के बाद फ्रास मे बाकायदा अखबार निकलने लगे थे। अनेक क्रान्तिकारी अखबार इन समाचारो से पूरा फायदा उठाकर लोगो को राजसत्ता के विरुद्ध भडका रहे थे। जेकोबिन क्लब मे इसकी बडी चर्चा रहती थी। महीनो तक यही हालत रही। जनता मे भयकर उत्तेजना फैली हुई थी। लोग स्वतन्त्रता की लाल टोपिया पहनने मे शान समझते थे। मजदूरो के से लम्बे पाजामे पहनने का लोगो को शौक हो गया था। समझा जाता था, कि यह स्वतन्त्रता और भ्रातृभाव की निशानी है।

आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की उद्घोषणा—यह परिस्थिति थी, जब कि २० एप्रिल, १७९२ के दिन व्यवस्थापिका सभा मे आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर देने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। सदस्यो मे युद्ध के लिये बडा उत्साह था। केवल सात आदमी थे, जिन्होने युद्ध के खिलाफ वोट दिया। जिन लोगो ने युद्ध के खिलाफ आवाज उठाई थी, उसमे रोबस्पियर प्रमुख था। रोबस्पियर कट्टर रिपब्लिकन था, वह जेकोबिन क्लब का प्रमुख सदस्य था, पर इस युद्ध के विषय मे उसका खयाल था, कि इससे गरीबो का सरासर नुकसान होगा। इससे फायदा पहुँचेगा, तो केवल अमीर लोगो को। जो लोग

शान्ति के पक्ष मे थे, उन्हे कहा गया कि यह युद्ध आत्मरक्षा के लिये है, विजय करने के लिये नही। यह युद्ध अत्याचारी एकतन्त्र राजाओ के खिलाफ है, जनता के खिलाफ नही। यह युद्ध एक स्वतन्त्र राष्ट्र के अधिकारो की रक्षा के लिये है। निस्सन्देह, यह युद्ध फ्रास के नये युग और यूरोप के पुराने जमाने के बीच मे था। इसमे स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव की प्रवृत्तिया स्वेच्छाचारी शासन, विशेपाधिकार और अन्याययुक्त विपमता के साथ सघर्प कर रही थी। इसी युद्ध का यह परिणाम हुआ, कि फ्रास के क्रान्तिकारी विचार यूरोप के अन्य देशो मे भी फैल गये। क्रान्ति केवल फ्रास तक ही सीमित नही रही। वह यूरोप भर मे विस्तीर्ण हो गई।

राजा व्यवस्थापिका सभा के इस निश्चय को स्वीकृत करने के लिये तैयार न था, पर उसे वाधित होकर इस पर हस्ताक्षर करने पडे। परन्तु फ्रास की सेना युद्ध के लिये सुसज्जित न थी। सेना के सव अफसर पहले कुलीन लोग हुआ करते थे, और उन्हे ही सैन्यसचालन का अनुभव था। पर प्राय सभी कुलीन सैनिक अफसर इस समय फ्रास छोडकर विदेशो में भाग चुके थे। राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना आन्तरिक अव्यवस्था को दवाने मे तो काम आ सकती थी, पर विदेशो की अनुभवी तथा सुसज्जित सेनाओ का मुकावला करने का सामर्थ्य उसमे नही था। यही कारण है, कि जव आस्ट्रिया की सेना का मुकावला करने के लिये पहले पहल फ्रेंच सेना भेजी गई, तव वह उसका सामना नही कर सकी।

व्यवस्थापिका सभा के प्रस्ताव और राजा द्वारा उन्हे वीटो किया जाना—जिस समय में फ्रास की सेनाएँ विदेशी शत्रुओ का मुकावला करने के लिये सीमा की तरफ प्रस्थान कर रही थी, उसी समय व्यवस्थापिका सभा देश मे व्यवस्था कायम रखने तथा युद्ध के लिये साधन जुटाने की फिकर में लगी थी। इसीलिये उसने यह कानून पास किया, कि जो पादरी लोग चर्च की नई व्यवस्था मानने को तैयार न हो, वे एक महीने के अन्दर-अन्दर फ्रास छोडकर चले जावे। जव यह कानून राजा के पास स्वीकृति के लिये भेजा गया, तो उसने इन पर अपनी सहमति देने से इनकार कर दिया। इसी प्रकार व्यवस्थापिका सभा में एक प्रस्ताव पास किया गया, कि राजधानी की रक्षा करने के लिये बीस हजार स्वयसेवको की एक छावनी पेरिस के समीप ही डाली जावे। राजा ने इस प्रस्ताव को भी वीटो कर दिया।

राजप्रासाद पर आक्रमण—राजा की इस कार्रवाई का यह परिणाम हुआ, कि उसके विरुद्ध भावनाएँ और भी अधिक प्रवल हो गईं। लोगो में राजा और रानी की वहुत वदनामी होने लगी। रानी को घृणा के साथ 'आस्ट्रियन औरत' और 'श्रीमती वीटो' कहा जाने लगा। लोगो का खयाल था, कि रानी फ्रास के दुश्मनो से मिली हुई है, और उसने फ्रास पर आक्रमण करने की एक योजना तैयार करके आस्ट्रिया के पास भेजी है। इन अफवाहो को सुनकर जनता के जोश की कोई सीमा नही रही। लोगो की भीड इकट्ठी हो गई, जुलूस तैयार हो गया। पेरिस की गलियो मे चक्कर लगाकर इस जुलूस ने तुइलरी के राजप्रासाद की तरफ प्रस्थान किया। अनेक 'देशभक्त' राजप्रासाद मे घुस गये। ईंट और पत्थर फेंके जाने लगे। भीड कावू से वाहर हो गई। ऐसे समय मे राजा ने वडी वुद्धिमत्ता प्रदर्शित की। उसने क्रान्तिकारियो की लाल टोपी सिर पर पहन कर तथा

छोटे से तिरंगे झंडे को छाती पर लगाकर एक झरोखे से जनता को दर्शन दिया। राजा को इस प्रकार क्रान्ति के चिह्नों से युक्त देखकर लोगों का जोश कुछ ठण्डा पड गया। राज-प्रासाद के इस आक्रमण का कोई विशेष असर नहीं हुआ।

ब्रुन्स्विक के ड्यूक की उद्घोषणा—पर जिस समय इस घटना का समाचार यूरोप के अन्य राजाओं ने सुना, तो उन्हें इस बात में जरा भी सन्देह नहीं रहा, कि फ्रांस के क्रान्तिकारी अराजकता चाहते हैं। प्रशिया के राजा फ्रेडरिक ने उद्घोषित किया, कि वह भी फ्रांस के विरुद्ध लड़ाई में आस्ट्रिया का साथ देगा। प्रशिया की सधी हुई और शक्तिशाली सेना ने ब्रुन्स्विक के ड्यूक के सेनापतित्व में फ्रांस की तरफ प्रस्थान किया। फ्रांस की सीमा पर पहुंचकर ब्रुन्स्विक के ड्यूक ने एक उद्घोषणा प्रकाशित की। इसमें कहा गया, कि आस्ट्रिया और प्रशिया फ्रांस पर इसलिये हमला कर रहे हैं, ताकि वहां पर अराजकता का अन्त कर फिर से राजा के न्याय्य अधिकारों की स्थापना की जाय। फ्रांस के जो कोई आदमी आस्ट्रिया और प्रशिया की सेनाओं का सामना करने का प्रयत्न करेंगे उन्हें युद्ध के कठोरतम नियमों द्वारा भयंकर से भयंकर सजा दी जायगी और उनके घरों को अग्नि से भस्म कर दिया जायगा। यदि पेरिस के लोगों ने राजा व रानी का जरा भी अपमान किया और फिर तुइलरी के राजप्रासाद पर हमला किया, तो सारे पेरिस नगर को पूर्णतया तबाह कर दिया जायगा।

इस उद्घोषणा का परिणाम—इस उद्घोषणा से लोगों में उत्तेजना और भी अधिक बढ गई। यह विश्वास दृढ हो गया, कि राजा और रानी फ्रांस के दुश्मनों से हार्दिक सहानुभूति रखते हैं। रिपब्लिक के पक्षपातियों ने राजसत्ता का अन्त करने का निश्चय कर लिया। पेरिस की एक भीड ने फिर तुइलरी के राजप्रासाद पर हमला किया। यह हमला १० अगस्त, १७९२ को हुआ था। राजा, रानी और राजकुमार बडी कठिनता से जान बचाकर निकल सके। उन्होंने व्यवस्थापिका सभा के भवन में आश्रय लिया। समाचारदाताओं की गेलरी में उन्हें स्थान दिया गया। आज राजा को अपनी रक्षा के लिये व्यवस्थापिका सभा का आश्रय लेने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा न था।

राजा की पदच्युति—अगले ही दिन व्यवस्थापिका सभा में प्रस्ताव पेश किया गया कि राजा को पदच्युत कर फ्रांस में रिपब्लिक की स्थापना की जाय। यह प्रस्ताव पास हो गया। १६वां लुई अब फ्रांस का राजा नहीं रहा। परन्तु अब देश का शासन किस प्रकार हो? अब तक जो शासन-विधान विद्यमान था, वह वैध राजसत्ता के सिद्धान्त पर आश्रित था। अतः निश्चय किया गया, कि नया शासन विधान तैयार करने के लिये एक कान्वेन्शन संगठित किया जाय। कान्वेन्शन के लिये व्यवस्था कर व्यवस्थापिका सभा की समाप्ति कर दी गई। देश का शासन करने के लिये सामयिक रूप से जिस सरकार का निर्माण किया गया, उसका मुखिया दांतों बना।

छठा अध्याय

क्रान्तिकारी फ्रांस का यूरोप के साथ संघर्ष

१ क्रांति के विरुद्ध जिहाद

पेरिस की नागरिक सभा—सोलहवें लुई के शासन-च्युत किये जाने के अनतर फ्रास का शासन करने के लिये कोई व्यवस्थित सरकार विद्यमान नही रही थी। नये शासन-विधान का स्वरूप तैयार करने के लिये जो कान्वेन्शन बुलाया गया था, उसने अभी अपना कार्य प्रारम्भ ही किया था। इसमे सन्देह नही, कि एक सामयिक सरकार का सगठन कर लिया गया था, जिसका मुखिया दातो था, परन्तु इस समय शासन की वास्तविक शक्ति पेरिस की नागरिक सभा के हाथ मे आ गई थी। यह नागरिक सभा बहुत व्यवस्थित तथा सगठित थी और स्वाभाविक रूप से क्रान्तिकारियो पर इसका प्रभाव बहुत अधिक था। पेरिस का शासन इसके हाथ मे ही था, और क्योकि राज्यक्रान्ति का नेतृत्व पेरिस द्वारा हो रहा था, अत पेरिस की नागरिक सभा ही सम्पूर्ण देश मे राज्यक्रान्ति का सचालन कर रही थी।

कान्वेन्शन का अधिवेशन—२१ सितम्बर, सन १७९२ के दिन कान्वेन्शन का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। इसके कुल सदस्यो की सख्या ७८२ थी। कान्वेन्शन मे अधिक सख्या उन लोगो की थी, जो राजसत्ता के विरोधी और रिपब्लिक के पक्षपाती थे। इसमें जिरोदिस्ट दल के सदस्य सबसे अधिक थे। इस दल का विचार था, कि क्रान्ति का सचालन कानून और व्यवस्था के अनुसार ही किया जाना चाहिए। यह दल खून-खराबी के खिलाफ था, और शान्तिपूर्वक राज्य-परिवर्तन चाहता था। पर जिरोदिस्ट दल के शक्तिशाली होते हुए भी उसमे कोई प्रभावशाली नेता नही था। इस के विपरीत जेकोबिन दल मे दातो, मरत और रोबस्पियर जैसे योग्य व प्रभावशाली नेता थे। इन के कारण इस दल का प्रभाव बहुत बढा हुआ था। जेकोबिन दल क्राति के सचालन में व्यवस्था और कानून का आख मीच कर अनुसरण करने के पक्ष मे नही था। मौके के अनुसार सब प्रकार के उपायो मे सफलता प्राप्त करना ही उसका मूलमन्त्र था। कान्वेन्शन मे पहले जिरोदिस्ट दल का प्राधान्य था, परन्तु कुछ समय बाद ही जेकोबिन दल प्रबल हो गया और सम्पूर्ण शक्ति उसके प्रभावशाली नेताओ के हाथ में चली गई।

अपनी पहली ही बैठक में कान्वेन्शन ने यह प्रस्ताव पास किया, कि फ्रास से राजसत्ता का अन्त करके रिपब्लिक की स्थापना की जाय। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ था। तीन साल पहले फ्रास में एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजसत्ता विद्यमान थी, परन्तु अब इतने थोडे से समय मे ही वहा एक क्रान्तिकारी रिपब्लिक की स्थापना कर दी गई थी। फ्रास

की जनता ने रिपब्लिक की उद्घोषणा का बड़े उत्साह से स्वागत किया। लोगो का
था, कि अब एक नवीन युग का प्रारम्भ हो रहा है। स्वेच्छाचारिता का जमाना
हो गया है, और उसके स्थान पर स्वतन्त्रता का युग शुरू हुआ है। १७९२ के मि
मास के २२वे दिन से एक नवीन संवत् का प्रारम्भ किया गया।

नवीन संवत्—यह फ्रेंच स्वतन्त्रता के संवत् का प्रथम वर्ष था। कान्वेन्शन की
उपसमिति पचाङ्ग का सुधार करने के लिये बनाई गई। इसने प्रस्ताव किया, कि
मास मे ३० दिन रखे जावे और प्रत्येक मास को दस-दस दिन के तीन 'दशाहों' में
किया जाय। साल मे ३६५ दिन होते है, तीस-तीस दिन के १२ महीने होने से
५ दिन शेष रह जावेगे। ये ५ दिन छुट्टी मनाने के लिये रखे जावे। दिनो के नाम
और पुराने सतो के नामो पर रखने के बजाय पालतू पशुओ, वनस्पतियो और
के उपकरणो के नामो पर रखने का प्रस्ताव किया गया। यह क्रान्ति की भावना थी
सब क्षेत्रो मे अपने को प्रकट कर रही थी।

क्रान्ति के विरुद्ध जिहाद—उधर जिस समय कान्वेन्शन देश के लिये नवीन
विधान तैयार करने के कार्य मे लगा था, उधर यूरोप के विविध राजा क्रान्ति के
जिहाद कर रहे थे। अगस्त के समाप्त होने से पूर्व ही प्रशियन सेना फ्रास में प्रवेश कर
थी। २ सितम्बर को वर्दून का किला जीत लिया गया था। ऐसा प्रतीत होता था
शीघ्र ही पेरिस को घेर लिया जायगा। ऐसे विकट समय मे फ्रेंच सेनापति दूमरे ने
नामक स्थान पर प्रशियन सेना से मोरचा लिया। यहा पर फ्रास की सेना को बहुत सफ
मिली। प्रशियन सेना का आक्रमण रुक गया, और सेनापति दूमरे इन आक्रान्ताओ को
से बाहर खदेडने मे समर्थ हुआ। इतना ही नही, फ्रेंच सेनाओ ने जर्मनी के प्रदेश पर
आक्रमण किया और र्‌हाइन नदी के प्रदेश के अनेक दुर्गो को जीतकर अपने अधीन
लिया। दूमरे के सैनिक नगे पैर थे, उनके पास सैनिक वर्दिया और शानदार हथि
नही थे। वे नये भर्ती किये हुए रँगरूट थे, पर उनमें क्रान्ति की भावना थी। वे
उद्देश्य से—किसी भावना से युद्ध कर रहे थे। लडना उनका पेशा नही था। इन सैनि
ने नीदरलैण्ड पर आक्रमण किया। यह प्रदेश उस समय मे आस्ट्रिया के अधीन
आस्ट्रिया की सेनाएँ परास्त हो गई, और नीदरलैण्ड पर फ्रास का कब्जा हो गया। यह
सचालन और समरनीति की विजय नही थी, यह क्रान्ति की भावना की विजय थी।

२, ३ सितम्बर के वीभत्स हत्याकाण्ड—इन युद्धो के प्रारम्भ होने के समय प
की क्रान्तिकारी सरकार ने बहुत से लोगो को सन्देह मे गिरफ्तार कर लिया था। इ
सन्देह नही, कि उस समय फ्रास मे ऐसे लोगो की कमी नही थी, जो क्रान्ति के विरोधी
और अपनी सम्पूर्ण शक्ति क्रान्ति को कुचलने के लिये लगा रहे थे। क्रान्तिकारियो
बहुत से आदमियो को इसी सन्देह में कैद किया था। इनकी सख्या तीन हजार के लग
थी। युद्ध के शुरू होने पर २ और ३ सितम्बर को इन सब कैदियो को कत्ल कर दिया गया
इसके लिये जो कारण पेश किया गया, वह यह था कि हम लोग बेफिकर होकर शत्रु
का मुकाबला करने के लिये कैसे प्रस्थान कर सकते है, जब कि तीन हजार शत्रु हमा
अपनी जेलो मे बन्द है, और जो किसी भी क्षण जेल तोडकर बाहर निकल सकते है,

हमारी स्त्रियो तथा बच्चो का सहार कर सकते है। निस्सन्देह, यह एक बडा ही वीभत्स और क्रूर कत्ल था। एक साथ तीन हजार आदमियो का कत्ल—वह भी केवल सन्देह के कारण और न्याय का उपहास करके—कितनी वीभत्स घटना है! स्वतन्त्रता और न्याय के नाम पर पुरानी राजसत्ता का अन्त किया गया था। परन्तु नये युग का यह श्री-गणेश कितना अन्यायपूर्ण, अत्याचारमय और वीभत्स था! रिपब्लिक और क्रान्ति की रक्षा के नाम पर, स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव की स्थापना के लिये इन तीन हजार आदमियो की बलि दी गई थी।

कान्वेन्शन की क्रान्तिकारी उद्घोषणा—फ्रास ने आक्रान्ताओ को परास्त कर जर्मनी और आस्ट्रिया के अनेक प्रदेशो पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। अब कान्वे-न्शन ने निश्चय किया, कि सम्पूर्ण यूरोप मे क्रान्ति की भावनाओ का प्रसार किया जाय। फ्रास के क्रान्तिकारी नेता इस बात को खूब अच्छी तरह समझते थे, कि उनके देश मे क्रान्ति तब तक सफल नही हो सकती, जब तक कि उनके अपने चारो ओर सम्पूर्ण यूरोप में एकतन्त्र स्वेच्छाचारी सरकार कायम है। अत वे सर्वत्र क्रान्ति का प्रसार करने के लिये उत्सुक थे। कान्वेन्शन ने १५ सितम्बर, १७९२ के दिन उन प्रदेशो की जनता के नाम, जिन पर कि फ्रास ने कब्जा कर लिया था, एक उदघोषणा प्रकाशित की। इसमें कहा गया था कि "हमने तुम्हारे अत्याचारी शासको को खदेड दिया है। तुम अपने को स्वतन्त्र मनुष्य प्रदर्शित करो और हम तुम्हारी उन अत्याचारियो के प्रतिशोध से रक्षा करेंगे।" इस उद्घोषणा मे यह भी कहा गया था, कि फ्रास का उद्देश्य सर्वत्र समानता और स्वाधीनता की स्थापना करना है। जो लोग इसका विरोध करेगे, उन्हें अपना शत्रु समझा जायगा और उनके साथ शत्रु के समान ही व्यवहार किया जायगा।

राजा को प्राणदण्ड—इस बीच में कान्वेन्शन के सम्मुख यह प्रश्न भी विद्यमान था, कि पदच्युत राजा का क्या किया जाय? बहुत से लोगो का खयाल था, कि उसने देश के विरुद्ध विद्रोह किया है। इसलिये उसके खिलाफ मुकदमा चलाया गया। दातो ने अपने भाषण मे बडी जोर से गरज कर कहा—यूरोप के राजाओ ने हमको चैलेंज दिया है। हम उसके जवाब मे राजा का सिर उनके पैरो मे फेंक देगे। मुकदमे के सिलसिले में कान्वेन्शन के सम्मुख एक सन्दूकची पेश की गई, जिसमें कि वह गुप्त पत्र-व्यवहार बन्द था, जो कि राजा और उसके परिवार ने विदेशी राजाओ तथा फ्रास से भागे हुए कुलीन लोगो के साथ किया था। राजा को प्राणदण्ड दिया जाय या नही, इस विषय पर जब वोट लिये गये, तो ७२१ वोटो में से ३८७ वोट प्राणदण्ड के पक्ष में आये। राजा का फैसला हो गया। उसे प्राणदण्ड मिलना निश्चित हुआ। २१ जनवरी, सन् १७९३ के दिन राजा का सिर धड से अलग कर दिया गया। मरने से पूर्व राजा के अन्तिम वाक्य ये थे—'मेरा खून फ्रास की समृद्धि का कारण बने।' इस प्रकार १६वें लुई का अन्त हुआ। फ्रास की जनता लुई की दुश्मन नही थी। क्रान्तिकारियो का उद्देश्य राजसत्ता का अन्त करना नही था। वे एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कर वैध राजसत्ता की स्थापना करना चाहते थे। यदि १६वा लुई चाहता, तो क्रान्ति के बाद भी इङ्गलैण्ड के राजाओ की तरह अपनी शानदार और सम्मानास्पद स्थिति रख सकता था। पर १६वा लुई बहुत कमजोर

व्यक्ति था। वह अपने अदूरदर्शी दरबारियो के प्रभाव से कभी ऊपर नही उठ सका। उसका अन्त इस प्रकार दुरवस्था के साथ हुआ, इसमे उसकी अपनी गलतिया प्रधान हेतु है।

राजा के कत्ल का प्रभाव—१६वे लुई का कत्ल यूरोप के स्वेच्छाचारी राजाओ को खुला चैलेज था। उन्होने इस चैलेज को स्वीकार करने मे जरा भी देर नही की। इङ्गलैण्ड के राजा जार्ज तृतीय ने फ्रास के राजदूत को अपने देश से निकल जाने का हुक्म दिया। प्रधानमन्त्री पिट ने पार्लियामेन्ट मे भाषण देते हुए कहा, कि सम्पूर्ण मानव इतिहास मे १६वे लुई के कत्ल के समान बीभत्स और अमानुषिक कार्य अन्य कोई नही हुआ है। शायद पिट इङ्गलिश राज्यक्रान्ति मे चार्ल्स प्रथम के कत्ल को भूल गया था। फ्रास और इङ्गलैण्ड मे सामुद्रिक प्रतिस्पर्धा विद्यमान थी। इङ्गलैण्ड ने समझा, कि अपने प्रतिस्पर्धी को कुचलने का यह सुवर्ण अवसर उपलब्ध हुआ है, इस को हाथ से नही जाने देना चाहिए। पिट ने पार्लियामेन्ट मे प्रस्ताव किया, कि इङ्गलैण्ड को भी फ्रास के खिलाफ आस्ट्रिया और प्रशिया की सहायता करनी चाहिये।

फ्रास के विरुद्ध जिहाद—उधर फ्रास मे कान्वेन्शन के सम्मुख भी यह विषय पेश हुआ। इङ्गलैण्ड का राज्यक्रान्ति के प्रति जो रुख था, उसे दृष्टि मे रखते हुए कान्वेन्शन ने उचित समझा कि इङ्गलैण्ड के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर दिया जाय। एक फरवरी, सन् १७९३ के दिन इङ्गलैण्ड और फ्रास मे लडाई घोषित कर दी गई।

आस्ट्रियन नीदरलैण्ड की विजय के बाद फ्रास की सीमा हालैण्ड से जा लगी थी। हालैण्ड फ्रास की इस समृद्धि तथा सफलता को नही सह सकता था। इतने शक्तिशाली राज्य का अपनी सीमा तक आ पहुँचना उसे सह्य नही था। परिणाम यह हुआ, कि हालैण्ड ने भी फ्रास के विरोधियो का साथ दिया।

फ्रेंच राज्यक्रान्ति के शत्रुओ की सख्या निरन्तर बढ रही थी। आस्ट्रिया, प्रशिया इङ्गलैण्ड और हालैण्ड उसके विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर चुके थे। अब मार्च, १७९३ में स्पेन और पवित्र रोमन साम्राज्य भी फ्रास के विरुद्ध लडने को तैयार हो गये। फ्रास अपने सारे पडोसियो से अकेला लड रहा था। उसे विकट परिस्थिति का सामना करना था। यूरोपियन राज्यो की सदियो की सधी हुई सेनाएं उसके विरोध मे थी। उसके अपने कुलीन तथा उच्च पुरोहित श्रेणियो के लोग उसके विरुद्ध सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार थे। फ्रास की क्रान्तिकारी सेनाएँ युद्ध-नीति मे निष्णात नही थी। यही कारण है कि १८ मार्च के दिन नीरविन्डन नामक स्थान पर आस्ट्रियन सेना ने फ्रेंच सेनापति दूमरे को बुरी तरह परास्त किया, और नीदरलैण्ड फ्रास के हाथ से निकल गया। इस पराजय के बाद सेनापति दूमरे फ्रास का पक्ष छोडकर शत्रुओ से जा मिला। लफायत इससे कुछ दिन पहले ही शत्रुओ से मिल चुका था। ये दोनो महानुभाव राज्यक्रान्ति के प्रमुख नेता थे। एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजसत्ता को नष्ट करने मे इनका कर्तृत्व बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। पर राजा को प्राणदण्ड मिलना इनकी दृष्टि मे अक्षम्य अपराध था। ये क्रान्ति के पथ पर इतनी दूर नही जाना चाहते थे। क्रान्ति को अपने काबू से बाहर जाते देख इन्होने यही उचित समझा, कि शत्रुओ के साथ मिलकर क्रान्ति को कुचला जाय। राष्ट्रीयता की भावना उस समय तक भलीभाति विकसित नही हुई थी। राष्ट्रीयता के

इस युग मे इन्हे देश-द्रोही कहा जायगा, पर उस जमाने में देश या राष्ट्र ने मनुष्यो के विचारो मे वह स्थान प्राप्त नही किया था, जो अब कर लिया है। राष्ट्रीयता की भावना भी, इसी प्रकार की अन्य अनेक भावनाओ की तरह, इतिहास की उपज है।

शत्रुओ का सुख-स्वप्न—नीदरलैण्ड फ्रास के कब्जे से निकल गया, इस बात से क्रान्ति के विरोधियो की हिम्मत बहुत बढ गई। उन्होने आपस मे सलाह करनी शुरू की, कि फ्रास को जीत कर परस्पर बाट लिया जाय। अब से कुछ दिन पहले सन् १७९३ मे ही पोलैण्ड को जीतकर रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया ने आपस मे विभक्त कर लिया था। अब फ्रास को भी इसी प्रकार बाट खाने का स्वप्न लिया जाने लगा। आस्ट्रिया की आख फ्रास के उत्तरी प्रदेशो पर थी। इङ्गलैण्ड उपनिवेशो को हडपने की सोच रहा था। स्पेन पिरेनीज की पर्वतमाला को पार कर दक्षिण फ्रास मे अपना हिस्सा लेने की फिकर मे था। इस प्रकार राज्यक्रान्ति के सब विरोधी फ्रास को लूट खाने का सुख-स्वप्न ले रहे थे। निस्सन्देह, फ्रास के लिये यह विकट परिस्थिति थी। उसने जिस हिम्मत और बहादुरी से इसका मुकाबला किया, वह इतिहास मे वस्तुत अद्वितीय है।

२ आतक का राज्य

शक्तिशाली सरकार का सगठन—फ्रास के लिये नवीन शासन-विधान बनाने का कार्य कान्वेन्शन कर रहा था। पर इस समय देश की मुख्य आवश्यकता शासन-विधान का निर्माण नही थी। इस समय बाह्य और आभ्यन्तर शत्रुओ से रक्षा करना ही प्रधान कार्य था। इसी बात को दृष्टि में रखकर ४ जनवरी, १७९३ के दिन कान्वेन्शन ने एक 'सामान्य रक्षा-समिति' का निर्माण किया। इस समिति का कार्य फ्रास मे शाति और व्यवस्था कायम रखना था। पर इस समय स्थिति इतनी गम्भीर और विकट होती जाती थी, कि एक अत्यन्त और मजबूत और शक्तिशाली सरकार की जरूरत थी। युद्ध या विद्रोह के समय लोकतन्त्र शासन के सिद्धान्तो को क्रिया में परिणत कर सकना सम्भव नही रहता। उस समय आवश्यकता होती है, कि किसी व्यक्ति व व्यक्ति-समूह को सारे अधिकार दिये जावें। फ्रास में विद्रोह भी हो रहे थे, और बाह्य शत्रुओ से युद्ध भी जारी थे। इस दशा में कान्वेन्शन के लिये यह सम्भव नही था, कि वह एक लोकतन्त्र रिपब्लिक को स्थापित कर सके। कान्वेन्शन शासन-विधान निर्माण करने का अपना मुख्य कार्य करता गया, पर उसने सामयिक रूप से शासन करने के लिये एक ऐसी समिति का निर्माण कर दिया, जिसे कि शासन और व्यवस्थापन सम्बन्धी सब अधिकार प्राप्त थे। इस समिति का नाम 'सार्वजनिक व्यवस्था समिति' था, और इसका निर्माण ६ एप्रिल, १७९३ के दिन हुआ था। एक क्रान्तिकारी के अनुसार "राजाओ के स्वेच्छाचारी शासन का अन्त करने के लिये स्वतन्त्रता का स्वेच्छाचारी शासन स्थापित करना आवश्यक है", और इसी उद्देश्य से इस समिति का निर्माण किया गया था। इसके अतिरिक्त एक 'क्रान्तिकारी न्यायालय' की भी स्थापना की गई थी। क्रान्ति के विरोधियो को इस न्यायालय के सम्मुख पेश किया जाता था, और वहा उन्हें कठोर दण्ड दिये जाते थे। यह शक्तिशाली और सब राजकीय अधिकारो से युक्त सरकार अपने शासन में जनता के विचारो की परवाह नही करती थी। उस समय यह सम्भव

भी नहीं था। इस सरकार ने विदेशी आक्रमणों से फ्रांस की रक्षा करने के लिये भारी कोशिश की। सब लोगों के लिये सैनिक सेवा करना आवश्यक कर दिया गया। लाखों की संख्या में सिपाही भर्ती किये गये। यूरोप और अमेरिका के विविध देशों में सहायता प्राप्त करने की कोशिश की गई, पर उसमें कोई सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। उस समय लोग फ्रांस की राज्यक्रान्ति को बड़े आतंक और घृणा की दृष्टि से देख रहे थे। उनकी सम्मति में फ्रांस में ऐसी घटनाएं हो रही थीं, जो न्याय और औचित्य से सर्वथा शून्य थीं। किसी भी नई लहर को लोग पहले पहल इसी दृष्टि से देखते हैं। फ्रांस को कहीं से भी सहायता प्राप्त नहीं हुई। परन्तु अकेले फ्रांस ने उन विकट परिस्थितियों में जो कार्य कर दिखाया, वह वस्तुतः आश्चर्यजनक था। इसका प्रधान कारण फ्रांस के लोगों में क्रान्ति की भावना ही थी। उन्हें अपने सिद्धान्तों पर अटल विश्वास था। उनमें वह जोश था, जो कि किसी नये धर्म के प्रचारकों में होता है। वे क्रान्ति के लिये मर मिटने को तैयार थे।

जिरोदिस्ट दल का पतन—कान्वेन्शन में पहले जिरोदिस्ट दल का बहुमत था। यह दल रिपब्लिक तथा क्रान्ति का प्रबल पक्षपाती होते हुए भी इस समय की विकट परिस्थिति का सामना करने के लिये उपयुक्त न था। इस दल के लोग कानून और व्यवस्था को बहुत महत्त्व देते थे। पर शायद इस समय फ्रांस में कानून और व्यवस्था की अपेक्षा ताकत और प्रत्युत्पन्नमतिता की अधिक आवश्यकता थी। फ्रांस एक अत्यन्त भयंकर परिस्थिति में फँसा हुआ था, और उसका मुकाबला करने के लिये जिस हिम्मत और अदीर्घसूत्रता की आवश्यकता थी, वह जिरोदिस्ट लोगों में मौजूद न थी। परिणाम यह हुआ, कि उन का विरोध बढ़ता गया और जेकोबिन दल प्रबल होता गया। जेकोबिन दल का क्या स्वरूप था, और उसमें किस प्रकार क्रान्ति के अत्यन्त गरम नेता सम्मिलित थे, इस पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। पेरिस की नगर-सभा, जो फ्रांस के शासन-सूत्र का अनेक अंशों में संचालन कर रही थी, जेकोबिन दल के साथ थी। जिरोदिस्ट दल पेरिस की नगर-सभा के सख्त खिलाफ था। वह समझता था, कि इस नगर-सभा ने फ्रांस के शासन में अनुचित रूप से बहुत अधिक स्थान प्राप्त किया हुआ है। इसलिये उसकी तरफ से कान्वेन्शन में प्रस्ताव उपस्थित किया गया, कि पेरिस की नगर-सभा को तोड़ दिया जाय और कान्वेन्शन के अधिवेशन पेरिस के स्थान पर किसी अन्य नगर में किये जावें, ताकि पेरिस की जनता का अनुचित प्रभाव कान्वेन्शन पर न रहे। जेकोबिन दल ने इन प्रस्तावों का घोर विरोध किया। उसका कहना था, कि पेरिस का प्रभुत्व निर्विवाद है, अन्य प्रदेशों को राजधानी का अनुसरण करना ही चाहिये। इस समय फ्रांस और विशेषतया पेरिस की जो मनोवृत्ति थी, उसमें कानून और कायदों का बाकायदा अनुसरण करना सम्भव नहीं था। चाहिये तो यह था, कि इन प्रस्तावों पर बाकायदा वोट लिये जाते और बहुमत से जो फैसला होता, उसे क्रिया में परिणत किया जाता। पर कानून-कायदों को तोड़कर अपनी ताकत से काम करने की प्रवृत्ति जब एक बार उत्पन्न हो जाती है, तो उसका प्रयोग मर्यादित नहीं रहने पाता। पेरिस के लोग जिरोदिस्ट दल के खिलाफ उठ खड़े हुए। २ जून, १७९३ के दिन कान्वेन्शन को घेर लिया गया। जिरोदिस्ट दल के सब नेता कैद कर लिये गये। यह सब कार्य पेरिस की सर्वशक्तिमान नागरिक-सभा के आदेश से हुआ था।

अब कान्वेन्शन म जेकोबिन दल का प्रभुत्व निर्विवाद हो गया। जेकोबिन दल पेरिस के लोगो पर आश्रित था। अत यू कहना चाहिये, कि पेरिस के लोग ही अब कठपुतली की तरह कान्वेन्शन को नचाने लगे। पेरिस की नगर-सभा जो चाहती, वही करा लेती। उसका विरोध करनेवाला अब कोई न रहा।

विद्रोह की अग्नि भडक उठी—जिरोदिस्ट दल को कान्वेन्शन से बहिष्कृत कर दिया गया, इस बात का परिणाम अच्छा नही हुआ। इस दल मे फ्रास के दक्षिणी प्रदेशो के बहुत से प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इन्होने विद्रोह करने का निश्चय किया। सबसे पूर्व जिरोद—जहा के प्रतिनिधियो के कारण ही इस दल का नाम जिरोदिस्ट पडा था—के प्रमुख नगर बोर्दियो मे विद्रोह हुआ। बोर्दियो का अनुसरण मार्सेय्य ने किया और धीरे-धीरे यह विद्रोहाग्नि दक्षिणी फ्रास के बहुत से प्रदेशो मे व्याप्त हो गई। लायन्स नामक नगर रेशम तथा इसी प्रकार की अनेकविध भोगविलास की वस्तुएँ बनाने का बडा भारी केन्द्र था। इनकी वस्तुओ की खपत सर्वसाधारण जनता मे नही हो सकती थी। इनके खरीदार कुलीन वा उच्च श्रेणी के लोग ही होते थे। पर अब राज्यक्रान्ति के कारण फ्रास के ये उच्च श्रेणी के लोग विदेशो मे भाग गये थे, और लायन्स के सारे व्यवसाय तथा व्यापार तबाह हो गये थे। यहा के लोगो को क्रान्ति से बडी घृणा थी। इन्होने भी विद्रोह का झण्डा खडा कर दिया। इसी प्रकार ब्रिटेनी के निवासी भी क्रान्ति के विरुद्ध इस विद्रोह मे सम्मिलित हुए। यहा के निवासी और विशेषतया किसान लोग राजसत्ता के कट्टर पक्षपाती थे। देहात के लोगो मे परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे आता है, वे जमाने से बहुत पीछे पड जाते है। ब्रिटेनी के निवासी अभी तक क्रान्ति की भावना से प्राय अपरिचित थे। वे अब तक भी राजसत्ता को पसन्द करते थे, पुरोहितो को पूजते थे और कुलीन जमींदारो का रोब मानते थे। जिरोद, ब्रिटेनी, लायन्स और मार्सेय्य के इन विद्रोहो ने फ्रास की सामयिक सरकार का कार्य बहुत कठिन बना दिया। उसे केवल विदेशी आक्रान्ताओ का ही मुकाबला नही करना था, अपितु इन आन्तरिक विद्रोहो की भी व्यवस्था करनी थी। क्रान्ति के लिये यह अग्निपरीक्षा का अवसर था।

शत्रुओ के आक्रमण—विदेशी आक्रान्ता अपने आक्रमण मे निरन्तर सफलता प्राप्त कर रहे थे। आस्ट्रियन और इङ्गलिश सेनाएँ फ्रास की भूमि पर पदार्पण कर चुकी थी, और एक के बाद एक दुर्ग को जीतती जाती थी। शत्रुओ की सेना पेरिस से कुल १०० मील दूर रह गई थी। साफ दिखाई दे रहा था, कि शीघ्र ही पेरिस पर हमला कर दिया जायगा और ब्रुन्स्विक के ड्यूक की उद्घोषणा क्रिया में परिणत हो जायगी।

नवीन सरकार—ऐसी विकट परिस्थिति में स्थिति को सँभालने का एक ही उपाय था। वह यह कि सरकार को और भी मजबूत किया जाय, लोकतन्त्र रिपब्लिक के उदात्त सिद्धातो को कुछ समय के लिये ताक में रख कर स्वेच्छाचारी मजबूत सरकार की स्थापना की जाय। नेशनल कान्वेन्शन ने रिपब्लिक के सिद्धान्त का अनुसरण कर जो नया शासन-विधान बनाया था, वह यू ही रखा रह गया। १७९३ में फ्रास के लिये जो शासन-विधान तैयार किया गया था, वह क्रिया में नही आ सका। उस समय की परिस्थिति उस के लायक नही थी, उस समय एक शक्तिशाली सरकार की आवश्यकता थी, और सामयिक आवश्यकता

ने उसे धीरे-धीरे स्वय उत्पन्न कर दिया था। इस सरकार का स्वरूप क्या था ? यह शासन के लिये स्वेच्छाचारिता और आतक का प्रयोग करती थी। इसके तरीके वही थे, जो पुराने एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजाओ के होते थे। तरीके पुराने थे, पर उद्देश्य नवीन था। इस नई सरकार के स्वरूप को सक्षेप मे इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—

(१) **सार्वजनिक व्यवस्था समिति**—सार्वजनिक व्यवस्था समिति के कुल १२ सदस्य थे। इन्हे राज्य के शासन और व्यवस्थापन-सम्बन्धी सब अधिकार प्राप्त थे। इस समिति का निवासस्थान राजा का पुराना प्रासाद था। राज्यक्रान्ति का वास्तविक सचालन इसी के हाथ मे था। आतक के विविध साधनो का उपयोग भी मुख्यतया इसी के द्वारा होता था। यही समिति राजकीय आज्ञाए प्रकाशित किया करती थी। इसी के हुक्म से हजारो आदमियो को प्राणदण्ड दिया जाता था। जनता मे क्रान्ति की भावना को निरन्तर ताजा तथा गरम बनाये रखना इसी समिति का काम था। यह समिति स्वतन्त्रता के नाम पर काम करती थी, पर इसके हथियार जुल्म, अन्याय, अत्याचार और आतक के बने हुए थे।

(२) **सामान्य रक्षा समिति**—सामान्य रक्षा समिति का प्रमुख कार्य फ्रास मे शान्ति और व्यवस्था कायम रखना था। इसके सदस्यो की सख्या २१ थी। यह शान्ति और व्यवस्था के नाम पर जिस आदमी को चाहती गिरफ्तार करती, जेल मे डालती या न्यायालय के सम्मुख पेश कर सकती थी।

(३) **क्रान्तिकारी न्यायालय**—क्रान्तिकारी न्यायालय का निर्माण देश-द्रोहियो तथा क्रान्ति के खिलाफ साजिश करनेवालो के मामलो का फैसला करने के लिये हुआ था। इसके न्यायाधीशो की नियुक्ति सार्वजनिक व्यवस्था समिति की तरफ से होती थी। इसके पास कार्य की बहुत अधिकता थी। क्रान्ति के दुश्मनो के सब अभियोग इसी के सम्मुख पेश होते थे और इसके निर्णयो के खिलाफ अपील नही की जा सकती थी। कार्य की अधिकता के कारण इस न्यायालय को चार भागो मे बाट दिया गया था। फिर भी कार्य का बोझ कम नही हुआ और यही कारण है, कि इसके फैसले बहुत जल्दबाजी के साथ किये जाते थे।

(४) **विशेष प्रतिनिधि**—इस समय फ्रास मे जो विकट परिस्थिति थी, उसमे यह जरूरी था, कि विशेष कार्यों के लिये ऐसे कर्मचारी नियत किये जावे, जिन्हे अपनी सम्मति के अनुसार कार्य करने के पूरे अधिकार प्राप्त हो। इनकी नियुक्ति सार्वजनिक व्यवस्था समिति द्वारा की जाती थी, और नेशनल कान्वेन्शन के सदस्यो को ही इस महत्त्वपूर्ण पद पर नियुक्त किया जाता था। ये लोग कानून की परवाह बहुत कम करते थे। ये एक प्रकार के स्वेच्छाचारी राजा होते थे, जो अपनी शक्ति का निरकुश रूप से प्रयोग करने मे जरा भी सकोच नही करते थे।

(५) **जेकोबिन क्लब**—जेकोबिन क्लब की शाखाएँ फ्रास भर मे व्याप्त थी। इनका सगठन बहुत विस्तृत तथा व्यापक था। उस अव्यवस्थित तथा अनिश्चित दशा के समय में इस क्लब के देशव्यापी सगठन का प्रयोग बहुत उत्तम रीति से किया जा सकता था। सार्वजनिक व्यवस्था समिति ने इन जेकोबिन क्लबो का पूर्ण रीति से उपयोग किया और इनसे

वे बहुत से काम लिये गये, जो किसी सरकारी महकमे से लिये जाने चाहियें थे ।

विद्रोहो का दमन—इस शक्तिशाली सरकार ने बडी योग्यता और क्षमता से क्रान्ति के बाह्य और आभ्यन्तर—दोनो प्रकार के शत्रुओ का मुकाबला किया। आन्तरिक विद्रोहो को बुरी तरह कुचला गया। लायन्स के विद्रोह को शान्त करने के लिये बाकायदा फौज भेजी गई। शहर का घेरा डाल दिया गया। गोलाबारी की गई, और लायन्स को आत्मसमर्पण करने के लिये विवश किया गया। लायन्स के लोगो के साथ बडा भयकर वर्ताव किया गया। दो हजार के लगभग आदमी कत्ल कर दिये गये। सार्वजनिक व्यवस्था समिति का यह खयाल था, कि इस नगर को पूर्णतया भस्मसात् कर दिया जाय, पर सौभाग्य-वश यह निश्चय क्रिया में परिणत नही हो सका। पर इसमे सन्देह नही, कि लायन्स के इस पराजय ने फ्रास की जनता के सम्मुख यह भलीभाति स्पष्ट कर दिया कि क्रान्ति के विरुद्ध विद्रोह करना हँसी-मजाक नही है, क्रान्तिकारी भी विद्रोहियो से भयकर बदला लेते है। बोर्दियो और मार्सेय्य के विद्रोही लायन्स की दुर्दशा को देखकर घबरा गये। उन्हे विश्वास हो गया, कि वे क्रान्ति का मुकाबला सफलतापूर्वक नही कर सकेगे। इसलिये उन्हे परास्त करने मे विशेप कठिनता नही हुई। दोनो नगरो मे चार-चार सौ के लगभग विद्रोहियो को कत्ल किया गया और दक्षिणी फ्रास का विद्रोह सुगमता के साथ शान्त कर दिया गया।

ब्रिटेनी प्रदेश के विद्रोह न बहुत व्यापक और प्रचण्ड रूप धारण किया हुआ था। विशेपतया वेन्डी के लोग क्रान्ति का सर्वनाश करने पर तुले हुए थे। विदेशी लोग भी इन्हे गुप्त रूप से सहायता पहुँचा रहे थे। क्रान्ति की सेनाओ को इनके साथ बाकायदा युद्ध लडने पडे। सार्वजनिक व्यवस्था समिति ने इस विद्रोह को शान्त करने के लिये जो विशेष प्रतिनिधि नियत किया था, उसने अपना कार्य बडी निर्दयता से किया। यहा पर भी दो हजार के लगभग विद्रोहियो का क्रूरतापूर्वक घात किया गया ।

विद्रोहो को कुचलने मे सार्वजनिक व्यवस्था समिति को पूर्ण सफलता हुई। पर विद्रोह की भावना अभी नष्ट नही हुई थी। क्रान्तिकारी नेताओ को हमेशा भय बना रहता था, कि क्रान्ति के विरोधी लोग कही विद्रोह न कर बैठें। फ्रास मे क्रान्ति के विरोधियो की कमी नही थी। बहुत से लोग क्रान्ति के खुल्लम-खुल्ला विरोधी थे, पर अधिक सख्या उन लोगो की थी, जो क्रान्ति की प्रगति को पसन्द नही करते थे। क्रान्ति के विरोध मे जो कुछ भी सम्भव हो, उसे ये गुप्त रूप से करने को तैयार रहते थे। जनता की सहानुभूति और लोकमत भी महत्त्वपूर्ण शक्तिया है। यदि लोगो की सम्मति किसी बात के लिये खिलाफ हो, यदि लोगो की महानुभति किसी बात के विरोध में हो—तो वह स्वय एक महत्त्वपूर्ण ताकत होती है। फ्रास के क्रान्तिकारी नेता इस बात को खूब समझते थे। इसीलिये वे क्रान्ति की विरोधी भावनाओ को जड से उखाड फेकने के लिये तुले हुए थे। उनका खयाल था, कि क्रान्ति की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है, कि जिन पर क्रान्ति का विरोधी होने का सन्देह हो, उन्हें भी क्षमा नही करना चाहिये। कोई आदमी क्रान्ति का पक्षपाती है, या कम से कम विरोधी नही है, यह जानने के लिये इतनी ही बात काफी नही है, कि उसने क्रान्ति के विरोध में कोई काम नही किया है। इस के लिये यह भी जरूरी है, कि उसने क्रान्ति के पक्ष में कोई कोशिश की है। यदि कोई आदमी आज उदा-

सीन है, क्रान्ति का जोरदार तरीके से पक्षपाती नहीं है, तो क्या भरोसा है, कि कल वह विरोधी न बन जायगा ? जब क्रान्ति के नेता ही शत्रुओं से मिल जाते है, तो उदासीनो का तो भरोसा ही क्या ? इन सब दृष्टियो से कान्वेन्शन ने निश्चय किया, कि विरोधियो के हृदयो पर आतक जमा दिया जाय, क्रान्ति का सिक्का बैठा दिया जाय, ताकि कोइ आदमी क्रान्ति का विरोध करने की हिम्मत न कर सके। इसी नीति का परिणाम हुआ कि फ्रेंच राज्यक्रान्ति के इतिहास मे वह काल प्रारम्भ हुआ, जिसे 'आतक का राज्य' कहा जाता है। यह काल कब से कब तक रहा, यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। पर मोटे तौर पर यह कहा सकता है, कि सितम्बर १७९३ से जुलाई १७९४ तक—दस मास के लगभग फ्रास मे 'आतक का राज्य' रहा ।

आतक का राज्य—क्रान्ति के विरोधियो को प्राणदण्ड या अन्य भयकर दण्ड देने के लिये व्यवस्था पहले से भी विद्यमान थी, 'क्रान्तिकारी न्यायालय' पहले भी कार्य कर रहा था। पर १७ सितम्बर, १७९३ के दिन एक भयकर कानून पास किया गया। इस कानून द्वारा यह व्यवस्था की गई, कि जो लोग अपने व्यवहार व क्रिया द्वारा, अपनी सम्मति व विचारो के प्रकट करने से अथवा अन्य किसी प्रकार से क्रान्ति का विरोध करे, उन सबको प्राणदण्ड दिया जाय। यह कानून अत्यन्त व्यापक था। क्रान्ति के विरुद्ध या क्रान्ति के किसी भी कार्य के विरुद्ध सम्मति प्रकाशित करना भी अब अपराध था, और उसके लिये प्राणदण्ड की व्यवस्था की गई थी। प्राणदण्ड के लिये इस काल मे एक नवीन उपकरण का आविष्कार किया गया था, जिसे गुलेटिन कहते है। इसका आविष्कारकर्त्ता डा० गुलेटिन नाम का व्यक्ति था और उसी के नाम के कारण इसे गुलेटिन कहते है। इस उपकरण मे दो स्तम्भो के बीच एक बहुत बडा फलका लटक रहा होता था, जिसे रस्सी द्वारा ऊपर या नीचे ले जाया जा सकता था। अपराधी को इन दो स्तम्भो के बीच मे लेटाकर फलके की रस्सी ढीली कर दी जाती थी और वह भारी फलका बडे वेग से और शब्द के साथ नीचे गिरकर अपराधी के सिर को धड से अलग कर देता था। इस उपकरण को दो पहियेवाली गाडी पर रखकर जहा चाहे, ले जा सकते थे। इस काल मे पेरिस की गलियो मे ये गुलेटिन सर्वत्र नजर आते थे। प्रात काल उठने पर इनका शब्द सुनाई पडता था। बडे पैमाने पर अब क्रान्ति के विरोधियो का घात किया जा रहा था। इस बीभत्स और भयकर कतल के कारण ही इस काल का नाम 'आतक का राज्य' रखा गया है।

रानी मेरी का कतल—अक्टूबर, १७९३ मे १६वे लुई की रानी मेरी आतोआत पर मुकदमा चलाया गया। उसे क्रान्ति का विरोधी पाया गया। गुलेटिन ने रानी का—जिसका सारा जीवन भोग-विलास और आमोद-प्रमोद मे व्यतीत हुआ था, सिर धड से अलग कर दिया। गुलेटिन की दृष्टि मे राजा व रक सब बराबर थे। फ्रास के क्रान्तिकारियो ने कतल की प्रक्रिया मे कुल या जाति आदि किसी बात की परवाह नहीं की थी। रानी के साथ ही बहुत से कुलीन तथा उच्च पुरोहित श्रेणी के लोग कतल किये गये। जिरोदिस्ट दल के बहुत से नेता, जिन्हे पेरिस की नागरिक-सभा ने कान्वेन्शन की बैठक में गिरफ्तार कर लिया था—अब तक जेलो मे पडे थे। उन सब को भी कतल कर दिया गया। मदाम रोला नाम की एक कुलीन महिला को जिस समय गुलेटिन पर कतल के लिये ले

जाया गया, तो उसने चिल्लाकर कहा—'स्वाधीनते, तेरे नाम पर क्या-क्या अनर्थ किये जा रहे हैं ?' रोला का यह कहना सर्वथा ठीक था। मनुष्य धर्म, राष्ट्रीयता, स्वाधीनता और देशभक्ति आदि उच्च भावो के आवरण मे कैसे-कैसे बीभत्स कार्य करता है ? फ्रास के क्रान्तिकारी निस्सन्देह एक विकट परिस्थिति का सामना कर रहे थे, उन्हे बाह्य और आभ्यन्तर—दोनो प्रकार के अनगनित शत्रुओ का मुकाबला करना पड रहा था। इस-लिये कुछ हद तक सख्ती की जरूरत थी। पर इसमे सन्देह नही, कि इस समय क्रान्तिकारी लोग औचित्य, न्याय और आवश्यकता की सीमा का उल्लघन कर रहे थे।

जैकोबिन दल में फूट—शीघ्र ही जैकोविन दल मे भी मतभेद शुरू हो गये। दातो का खयाल था, कि अधिक खूनखराबी नही होनी चाहिये। वह कतलो और गुलेटिन से थक गया था। दूसरी तरफ पेरिस की नागरिक सभा के नेता हेबॅर् की राय थी, कि क्रान्ति को शीघ्र ही पूर्ण करना चाहिये और क्रान्ति को पूर्ण करने के एकमात्र उपाय आतक और कतल हैं। ईश्वर की कोई आवश्यकता नही है। ईश्वर के स्थान पर 'बुद्धि' की उपासना प्रारम्भ होनी चाहिये। एक सुन्दर नटी के रूप मे 'बुद्धि' की प्रतिमा भी बनाई गई और उसको एक मन्दिर मे प्रतिष्ठापित भी किया गया। रोबस्पियर और सेन्ट जस्टन न दातो से सहमत थे और न हेबॅर से। ये दोनो नेता रूसो के कट्टर अनुयायी थे। क्रान्ति के सम्बन्ध में इनके निश्चित विचार थे। ये एक ऐसी रिपब्लिक की कल्पना करते थे, जिसमे न कोई अमीर हो और न कोई गरीब हो। बच्चो को पाच साल की उमर में राज्य के सुपुर्द कर दिया जाय और स्पार्टन तरीके से उनका शिक्षण किया जावे। रोबस्पियर परमेश्वर को मानता था, वह बुद्धि की उपासना के खिलाफ था। उसका सिद्धान्त था—'यदि पर-मेश्वर की कोई सत्ता नही है, तो हमें उसका आविष्कार करना चाहिये।' जैकोबिन दल के विविध नेताओ में रोबस्पियर का प्रभुत्त्व था। दातो तथा उस के अनुयायियो को इसलिये कतल किया गया, क्योकि वे खूनखराबी से थक गये थे। हेबॅर् को इसलिये कतल किया गया, क्योकि वह परमेश्वर को नही मानता था। इस काल मे फ्रास के क्रान्तिकारियो के पास एक ही उपाय था, अपने विरोधी के साथ व्यवहार करने का एक ही तरीका उन्हे मालूम था—कतल। जो हमसे मतभेद रखता है, वह क्रान्ति का दुश्मन है। उसकी एक ही सजा है—गुलेटिन। इसी मनोवृत्ति से फ्रास के क्रान्तिकारी नेता अपने पुराने सहयो-गियो को बेधडक होकर कतल करते रहे। दातो और हेबॅर् के कतल के बाद रोबस्पियर का कुछ समय के लिये एकाधिपत्य हो गया।

नवीन युग की सृष्टि—यह ध्यान रखना चाहिये, कि रोबस्पियर पूरी तरह ईमानदार था। वह वस्तुत समझ रहा था, कि वह जो कुछ कर रहा है, क्रान्ति के, फ्रास के कल्याण के लिये है। रोबस्पियर के नेतृत्त्व मे 'सार्वजनिक व्यवस्था समिति' ने जो कार्य किया, वह वस्तुत अद्भुत है। जिन समस्याओ को हल करना आज भी मनुष्य जाति को बहुत कठिन प्रतीत हो रहा है, जिनको हल करने के लिये बडे-बडे विद्वान् आज तक परेशान हो रहे है, उनके लिये इस सार्वजनिक व्यवस्था-समिति के पास अत्यत सुगम हल विद्य-मान थे। क्रान्ति के जोश में, नये युग की सृष्टि करने के आवेश में क्रान्तिकारियो ने फ्रास मे बडे-बडे परिवर्तन किये। सम्पत्ति को एक बराबर करने की कोशिश की गई।

अमीरों की सम्पत्ति पर भारी टैक्स लगाये गये। बहुत से सम्पत्तिशाली लोगो की जायदादें इसलिये जब्त कर ली गई, ताकि गरीबो को उनसे फायदा पहुँच सके। यह व्यवस्था की गई, कि सब आदमी अपनी स्त्री और बच्चो के साथ आराम से अपने घर में रह सकें। मुनाफे को उठाने की कोशिश की गई। अर्थशास्त्रियो के लिये मुनाफा एक जटिल पहेली है। व्यापार और व्यवसाय के लिये मेहनत करने का उत्साह इस से उत्पन्न होता है। पर साथ ही इससे बहुत से लोगो का दूसरो का हिस्सा छीनकर अपने को अनुचित रूप से समृद्ध बनाने का भी अवसर मिलता है। १७९३ में फ्रास में मुनाफे को मर्यादित करने के लिये कानून बनाये गये। सामाजिक-क्षेत्र में भी बड़े परिवर्तन किये गये। तलाक को उतना ही आसान कर दिया गया, जितना कि विवाह। जायज और नाजायज बच्चों का भेद सर्वथा नष्ट कर दिया गया। एक नये पचाङ्ग का निर्माण किया गया, जिसमें साल को तीन-सौ साठ दिन के १२ महीनों में बाटा गया। महीनों के नाम कुहरा, वर्षा, बर्फ, ग्रीष्म, फूल, मेघ, फल आदि रखे गये। महीनों में चार के स्थान पर तीन सप्ताह (या दशाह) रखे गये। दिन को चौबीस घण्टो के स्थान पर दस घण्टों में विभक्त किया गया। मुद्रापद्धति का नवीन प्रकार से निर्माण किया गया। चर्च के घण्टे घण्टियों को पिघलाकर मुद्रा बनाने के काम में लाया गया। धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना की गई। कुछ लोगो की कोशिश थी, कि क्रिश्चियन धर्म को भी उडा दिया जाय। परमेश्वर को नष्ट कर देने का प्रस्ताव तो क्रिया में भी आ चुका था, पर रोबस्पियर के विरोध से यह बात देर तक नहीं रह सकी। तोल और भार मापने के लिये नये माप चलाये गये। दशमलव पद्धति पर तोल और भार के जिन परिमाणो को आज सारा संसार स्वीकृत करता जा रहा है, उनका आविष्कार इस 'आतंक के राज्य' के समय में ही हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा का प्रसार करने के लिये एक उत्तम योजना तैयार की गई। ये सब महत्त्वपूर्ण कार्य उस समय में किये गये, जब कि फ्रास की राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना विदेशी आक्रान्ताओं से घनघोर युद्ध कर रही थी, और क्रान्तिकारी नेता क्रान्ति के विरोधियो का सर्वनाश करने के लिये गुलेटिन का बड़े पैमाने पर प्रयोग कर रहे थे। निस्सन्देह, फ्रास के लोगों की क्षमता और कार्यशक्ति इस समय में असाधारण रूप से बढ़ गई थी। वे लोग न केवल नाश के कार्य में लगे थे, पर बड़ी गम्भीरता तथा ईमानदारी से नये युग की सृष्टि में भी तत्पर थे।

रोबस्पियर का पतन—रोबस्पियर का यह एकाधिपत्य देर तक कायम नहीं रहा। जिस प्रकार उसने दातो तथा हेबॅर् को कतल किया था, उसी प्रकार उसे भी कतल किया गया। उसके खिलाफ एक साजिश तैयार की गई। २७ जुलाई, १७९४ के दिन जब वह कान्वेन्शन में भाषण करने के लिये खडा हुआ, तब इन षड्यन्त्रकारियो ने चिल्लाना शुरू किया—'अत्याचारी हाय हाय!' रोबस्पियर हैरान रह गया। हैरानी और डर के मारे उस के मुख से आवाज नहीं निकली। एक आदमी ने चिल्लाकर कहा—'दातों का खून इसका गला घूट रहा है।' रोबस्पियर समझ गया, उसका अन्त भी समीप है। उस पर मुकदमा चलाया गया, और उसे दोषी पाया गया। विरोधियो ने उस पर हमला किया, और उसे गिरफ्तार कर लिया। पेरिस की नागरिक-सभा तथा जैकाबिन क्लब अवश्य

उसके पक्ष मे थे। जैकोविन क्लव ने कान्वेन्शन के खिलाफ विद्रोह कर दिया। दोनो पक्षो मे खुल्लमखुल्ला लडाई होने लगी। आखिर जैकोविन क्लव ने रोवस्पियर को छुडवा लिया, और उसने अपनी क्लव के सुरक्षित विशाल भवन मे आश्रय लिया। सारे शहर मे सनसनी फैल गई। सब तरह के जुलूस निकलने लगे। सुवह तीन वजे कान्वेन्शन की सेनाओ ने जैकोविन क्लव पर हमला किया। खुल कर लडाई हुई। उस समय जैकोविन सेनापति हेन्रियत शराव पीकर मस्त-सा पडा था। पेरिस की नागरिक-सभा के सिपाही कान्वेन्शन से मिल गये। जैकोविन क्लव अकेला रह गया। लडाई मे रोव्रस्पियर के जवाडे पर गोली लगी। वह वुरी तरह घायल हो कर गिर पडा। रोवस्पियर के अगले १७ घटे वडी तकलीफ से गुजरे। इस वीच मे वह एक शब्द भी न वोल सका। उसका फटा हुआ जवाडा एक मैले कपडे से वाध दिया गया था। आखिर, रोवस्पियर को गुलेटिन के नीचे कतल करने के लिये ले जाया गया। कतल करने से पहले उसकी पट्टी उतार दी गई थी। गुलेटिन का फलका आया और उसके सव कष्टो का अन्त कर गया।

विवेचना—अनेक ऐतिहासको ने इस आतक के राज्य का वडे वीभत्स रूप से वर्णन किया है। फ्रेंच राज्यक्रान्ति को वदनाम करने के लिये इस काल को इस रूप मे पेश किया गया है, मानो इससे अधिक भयकर और वीभत्स काल इतिहास मे पहले कभी हुआ ही नही। राजसत्ता के पक्षपातियो ने इस काल का वर्णन करके यह परिणाम निकाला है, कि मानव प्रवृत्तियो मे जो सवसे अधिक घृणास्पद तथा रौद्र प्रवृत्तिया है, राज्यक्रान्ति द्वारा उनका प्रकाशन हो रहा था। पर वास्तविकता क्या है, इसे हमे अपनी दृष्टि में रखना चाहिये। सम्पूर्ण आतक के राज्य में कुल मिला कर चार हजार के लगभग आदमी कतल किये गये थे। यदि हम इस की तुलना पुराने राजसत्ता के जमाने के कारनामो से करे, तो इसकी भयकरता वहुत कुछ कम हो जायगी। चार्ल्स ५वें के शासन-काल मे नीदरलैण्ड जैसे छोटे मे देश मे ५० हजार के लगभग आदमियो को जीते जी आग मे जला दिया गया था। सेण्ट वार्थो-लोमियो के दिन फ्रास मे दो हजार से अधिक निरपराध लोगो को तलवार के घाट उतार दिया गया था। राजसत्ता के जमाने में राजा तथा उसके अमीर उमरा मानवीय जीवन को जिस प्रकार तुच्छ और अगण्य समझकर उसे अपनी स्वेच्छा से नष्ट करते थे—यह कौन नही जानता। इस आतक के राज्य मे तो एक विशेष सिद्धान्त को दृष्टि मे रखकर कुछ खास विकट परिस्थितियो मे ये कतल हुए थे। पर इसी काल में इङ्गलैण्ड तथा अन्य देशो के मनुष्य, समाज और मानव जीवन की क्या दशा थी ? इङ्गलैण्ड तथा अमेरिका में इसी काल मे तुच्छ-तुच्छ अपराधो पर जितने आदमी कतल किये जा रहे थे, या जन्म भर के लिये जेलो में सडाये जा रहे थे, उतने फ्रास में देशद्रोह के अपराध मे कतल नही किये गये। फर्क इतना ही है, कि फ्रास में जिन लोगो को मारा गया, वे राजघराने के थे, कुलीन और उच्च श्रेणियो के थे। पर अन्य देशो में जो आदमी कुत्ते की मौत मर रहे थे, वे गरीव थे, नीची श्रेणियो के थे। उनका रोना रोने के लिये उस जमाने में कोई न था। पर एक कुलीन को गुलेटिन से मारने पर सारा यूरोप काप उठता था। यही कारण है, जिससे फ्रास के इस आतक के राज्य को इतना वदनाम किया गया है। परन्तु यह ध्रुव सत्य है, कि कतलो के इस काल में भी फ्रास की सर्वसाधारण जनता का जीवन अधिक

अमीरों की सम्पत्ति पर भारी टैक्स लगाये गये। बहुत से सम्पत्तिशाली लोगों की जायदादें इसलिये जब्त कर ली गईं, ताकि गरीबों को उनसे फायदा पहुँच सके। यह व्यवस्था की गई, कि सब आदमी अपनी स्त्री और बच्चों के साथ आराम से अपने घर में रह सकें। मुनाफे को उडाने की कोशिश की गई। अर्थशास्त्रियों के लिये मुनाफा एक जटिल पहेली है। व्यापार और व्यवसाय के लिये मेहनत करने का उत्साह इस से उत्पन्न होता है। पर साथ ही इससे बहुत से लोगों को दूसरों का हिस्सा छीनकर अपने को अनुचित रूप से समृद्ध बनाने का भी अवसर मिलता है। १७९३ में फ्रांस में मुनाफे को मर्यादित करने के लिये कानून बनाये गये। सामाजिक-क्षेत्र में भी बड़े परिवर्तन किये गये। तलाक को उतना ही आसान कर दिया गया, जितना कि विवाह। जायज और नाजायज बच्चों का भेद सर्वथा नष्ट कर दिया गया। एक नये पचाङ्ग का निर्माण किया गया, जिसमें साल को तीस-तीस दिन के १२ महीनों में बाटा गया। महीनों के नाम कुहरा, वर्षा, बर्फ, ग्रीष्म, फूल, सर्ग, फल आदि रखे गये। महीनों में चार के स्थान पर तीन सप्ताह (या दशाह) रखे गये। दिन को चौबीस घण्टों के स्थान पर दस घण्टों में विभक्त किया गया। मुद्रापद्धति का नवीन प्रकार से निर्माण किया गया। चर्च के घण्टे घण्टियों को पिघलाकर मुद्रा बनाने के काम में लाया गया। धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना की गई। कुछ लोगों की कोशिश थी, कि क्रिश्चियन धर्म को भी उडा दिया जाय। परमेश्वर को नष्ट कर देने का प्रस्ताव तो क्रिया में भी आ चुका था, पर रोबस्पियर के विरोध से यह बात देर तक नहीं रह सकी। तोल और भार मापने के लिये नये माप चलाये गये। दशमलव पद्धति पर तोल और भार के जिन परिमाणों को आज सारा संसार स्वीकृत करता जा रहा है, उनका आविष्कार इस 'आतंक के राज्य' के समय में ही हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा का प्रसार करने के लिये एक उत्तम योजना तैयार की गई। ये सब महत्त्वपूर्ण कार्य उस समय में किये गये, जब कि फ्रांस की राष्ट्रीय स्वयंसेवक सेना विदेशी आक्रान्ताओं से घनघोर युद्ध कर रही थी, और क्रान्तिकारी नेता क्रान्ति के विरोधियों का सर्वनाश करने के लिये गुलेटिन का बड़े पैमाने पर प्रयोग कर रहे थे। निस्सन्देह, फ्रांस के लोगों की क्षमता और कार्यशक्ति इस समय में असाधारण रूप से बढ़ गई थी। वे लोग न केवल नाश के कार्य में लगे थे, पर बडी गम्भीरता तथा ईमानदारी से नये युग की सृष्टि में भी तत्पर थे।

रोबस्पियर का पतन—रोबस्पियर का यह एकाधिपत्य देर तक कायम नहीं रहा। जिस प्रकार उसने दांतो तथा हेबॅर् को कतल किया था, उसी प्रकार उसे भी कतल किया गया। उसके खिलाफ एक साजिश तैयार की गई। २७ जुलाई, १७९४ के दिन जब वह कान्वेन्शन में भाषण करने के लिये खडा हुआ, तब इन षड्यन्त्रकारियों ने चिल्लाना शुरू किया—'अत्याचारी हाय हाय!' रोबस्पियर हैरान रह गया। हैरानी और डर के मारे उस के मुख से आवाज नहीं निकली। एक आदमी ने चिल्लाकर कहा—'दांतो का खून इसका गला घूट रहा है।' रोबस्पियर समझ गया, उसका अन्त भी समीप है। उस पर मुकदमा चलाया गया, और उसे दोषी पाया गया। विरोधियों ने उस पर हमला किया, और उसे गिरफ्तार कर लिया। पेरिस की नागरिक-सभा तथा जैकोबिन क्लब अब भी

उसके पक्ष मे थे। जैकोबिन क्लब ने कान्वेन्शन के खिलाफ विद्रोह कर दिया। दोनो पक्षो मे खुल्लमखुल्ला लडाई होने लगी। आखिर जैकोबिन क्लब ने रोबस्पियर को छुडवा लिया, और उसने अपनी क्लब के सुरक्षित विशाल भवन मे आश्रय लिया। सारे शहर मे सनसनी फैल गई। सब तरह के जुलूस निकलने लगे। सुबह तीन बजे कान्वेन्शन की सेनाओं ने जैकोबिन क्लब पर हमला किया। खुल कर लडाई हुई। उस समय जैकोबिन सेनापति हेन्रियत शराब पीकर मस्त-सा पडा था। पेरिस की नागरिक-सभा के सिपाही कान्वेन्शन से मिल गये। जैकोबिन क्लब अकेला रह गया। लडाई मे रोबस्पियर के जबाडे पर गोली लगी। वह बुरी तरह घायल हो कर गिर पडा। रोबस्पियर के अगले १७ घटे बडी तकलीफ से गुजरे। इस बीच मे वह एक शब्द भी न बोल सका। उसका फटा हुआ जबाडा एक मैले कपडे से बाध दिया गया था। आखिर, रोबस्पियर को गुलेटिन के नीचे कतल करने के लिये ले जाया गया। कतल करने से पहले उसकी पट्टी उतार दी गई थी। गुलेटिन का फलका आया और उसके सब कष्टो का अन्त कर गया।

विवेचना—अनेक ऐतिहासिकों ने इस आतक के राज्य का बडे बीभत्स रूप से वर्णन किया है। फ्रेच राज्यक्रान्ति को बदनाम करने के लिये इस काल को इस रूप मे पेश किया गया है, मानो इससे अधिक भयकर और बीभत्स काल इतिहास मे पहले कभी हुआ ही नही। राजसत्ता के पक्षपातियो ने इस काल का वर्णन करके यह परिणाम निकाला है, कि मानव प्रवृत्तियो मे जो सबसे अधिक घृणास्पद तथा रौद्र प्रवृत्तिया है, राज्यक्रान्ति द्वारा उनका प्रकाशन हो रहा था। पर वास्तविकता क्या है, इसे हमें अपनी दृष्टि मे रखना चाहिये। सम्पूर्ण आतक के राज्य मे कुल मिला कर चार हजार के लगभग आदमी कतल किये गये थे। यदि हम इस की तुलना पुराने राजसत्ता के जमाने के कारनामो से करे, तो इसकी भयकरता बहुत कुछ कम हो जायगी। चार्ल्स ५वे के शासन-काल मे नीदरलैण्ड जैसे छोटे से देश में ५० हजार के लगभग आदमियो को जीते जी आग में जला दिया गया था। सेण्ट बार्थो-लोमियो के दिन फ्रास मे दो हजार से अधिक निरपराध लोगो को तलवार के घाट उतार दिया गया था। राजसत्ता के जमाने मे राजा तथा उसके अमीर उमरा मानवीय जीवन को जिस प्रकार तुच्छ और अगण्य समझकर उसे अपनी स्वेच्छा से नष्ट करते थे—यह कौन नही जानता। इस आतक के राज्य मे तो एक विशेष सिद्धान्त को दृष्टि मे रखकर कुछ खास विकट परिस्थितियो मे ये कतल हुए थे। पर इसी काल में इङ्गलैण्ड तथा अन्य देशो के मनुष्य, समाज और मानव जीवन की क्या दशा थी ? इङ्गलैण्ड तथा अमेरिका में इसी काल मे तुच्छ-तुच्छ अपराधो पर जितने आदमी कतल किये जा रहे थे, या जन्म भर के लिये जेलो में सडाये जा रहे थे, उतने फ्रास में देशद्रोह के अपराध मे कतल नहीं किये गये। फर्क इतना ही है, कि फ्रास में जिन लोगो को मारा गया, वे राजघराने के थे, कुलीन और उच्च श्रेणियो के थे। पर अन्य देशो में जो आदमी कुत्ते की मौत मर रहे थे, वे गरीब थे, नीची श्रेणियो के थे। उनका रोना रोने के लिये उस जमाने में कोई न था। पर एक कुलीन को गुलेटिन से मारने पर सारा यरोप काप उठता था। यही कारण है, जिससे फ्रास के इस आतक के राज्य को इतना बदनाम किया गया है। परन्तु यह ध्रुव सत्य है, कि कतलो के इस काल में भी फ्रास की सर्वसाधारण जनता का जीवन अधिक

सुरक्षित, अधिक सम्मानास्पद तथा अधिक सुखी था—उस समय के मुकाबले मे जब कि बूर्बो राजवश के स्वेच्छाचारी राजा अपने कृपापात्रो के साथ वर्साय के राजप्रासादो मे भोग-विलास मे मस्त रहते थे।

३ डायरेक्टरी का शासन

आतक के राज्य का अन्त—रोबस्पियर की मृत्यु के बाद 'आतक का राज्य' समाप्त हो गया। लोगो पर अत्याचार करने के लिये, निधडक हो कर अपने स्वेच्छाचारी कृत्या से भयानक किस्म का आतक फैलाने के लिये भी असाधारण हिम्मत, प्रभाव और व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है। रोबस्पियर की मृत्यु के बाद क्रान्तिकारी नेताओ मे कोई एसा नही था, जो उसके समान साहसी और प्रभावशाली हो। इसके अतिरिक्त अब जनता खूनखराबी से थक चुकी थी। आतकमय शासन को न्याय्य और समुचित समझ सकने के जो भी कारण पहले विद्यमान थे, वे भी अब धीरे-धीरे हटते जा रहे थे। आन्तरिक विद्रोह बहुत कुछ शान्त किये जा चुके थे। विदेशी आक्रान्ताओ को पराजित किया जा चुका था। १६वे लुई के कतल के बाद विदेशी राजाओ ने बडी तेजी के साथ फ्रास पर हमला किया था, पर अब इन आक्रमणो का जोर घट चुका था। कार्नो नाम के क्रान्तिकारी सेनापति ने शत्रुओ का मुकाबला करने के लिये बडी भारी सेना का सगठन किया था। इसमें साडे सात लाख सैनिक थे। इन्हें तेरह भागो मे विभक्त कर विविध रणक्षेत्रो में शत्रुओ को परास्त कर फ्रास से बाहर खदेड देने के लिये भेज दिया गया था। प्रत्येक सेना के सेनापति के साथ दो दो 'विशेष प्रतिनिधि' रहते थे। इसका उद्देश्य यह था, कि कही सेनापति विद्रोह करके शत्रुओ से न मिल जावें। दूमरे और लफायत के उदाहरण ने फ्रास के क्रान्तिकारियो मे सन्देह और अविश्वास की भावनाओ को बहुत प्रबल कर दिया था। जैकोबिन दल के ये 'विशेष प्रतिनिधि' न केवल सेनापतियो को विश्वासघात से रोकते थे, पर साथ ही सैनिको में क्रान्ति के लिये असाधारण उत्साह और जोश को भी जागृत करते रहते थे। इन सैनिक प्रयत्नो का यह परिणाम हुआ, था कि फ्रास के आक्रान्ता परास्त हो गये थे और क्रान्तिकारी सेनाएँ फ्रास की सीमाओ से आगे बढकर जर्मनी और आस्ट्रिया पर आक्रमण कर रही थी। इस स्थिति में न आन्तरिक विद्रोह और न विदेशी आक्रमण ही इस आतक के राज्य को—जो कि विशेष परिस्थितियो मे आवश्यक हो गया था, न्याय्य और समुचित बना सकते थे। परिणाम यह हुआ, कि रोबस्पियर की मृत्यु के साथ अपने आप ही इसकी समाप्ति हो गई, और फ्रास मे लोकतन्त्र सिद्धान्तो के अनुसार रिपब्लिक स्थापित कर दी गई।

नवीन शासन विधान—यह नवीन शासन-विधान नेशनल कान्वेन्शन द्वारा तैयार किया गया था। यद्यपि कान्वेन्शन ने विशेष परिस्थितियो को दृष्टि में रखकर देश के शासनकार्य को सार्वजनिक-व्यवस्था समिति के सुपुर्द कर दिया था, पर स्थायी शासन-विधान बनाने का विचार छोड नही दिया गया था। १७९५ में यह नवीन शासन-विधान तैयार हो गया। इसमें भी सबसे पूर्व नागरिको के अधिकारो और कर्त्तव्यो की उद्घोषणा की गई। व्यवस्थापन विभाग दो सभाओ द्वारा बनाया गया—'पाच सौ की सभा, और 'बडो की परिषद्'।

वडो की परिषद् के सदस्य के लिये आवश्यक था, कि उसकी उमर ४० साल से अधिक हो। इस परिषद् की सदस्यता के लिये विवाहित या विधुर होना भी आवश्यक था। कोई अविवाहित आदमी इसका सदस्य नही बन सकता था। दोनो सभाओ के लिये सदस्य चुनने का अधिकार सम्पूर्ण नागरिको को नही दिया गया था। फ्रास का जो पहला शासन-विधान वना था, उसमे वोट का अधिकार सव वयस्क लोगो को दिया गया था, पर इस वार इसके लिये टैक्स देने की शर्त लगाई गई थी। जो लोग राज्य को किसी किस्म का टैक्स नही देते थे, उन्हे वोट देने का अधिकार भी नही दिया गया था। शासन का कार्य एक समिति को दिया गया, जिसके सदस्यो की सख्या पाच नियत की गई। इनका निर्वाचन व्यवस्थापन-विभाग द्वारा किया जाता था। इस समिति को 'डाइरेक्टरी' कहते थे। पाचो सदस्य क्रमश तीन-तीन महीने के लिये 'डाइरेक्टरी' के अध्यक्ष होते थे। जिसकी अध्यक्ष होने की वारी होती थी, वही तीन महीने के लिये फ्रास का राष्ट्रपति समझा जाता था। इस नये शासन-विधान से सव लोग सन्तुष्ट नही थे। विशेषतया, राजसत्ता के पक्षपाती और पूर्णतया लोकतन्त्र की स्थापना चाहनेवाले क्रान्तिकारी लोग इसे नापसन्द कर रहे थे। राजसत्ता के पक्षपाती तो इससे सन्तुष्ट ही कव हो सकते थे? लोकतन्त्रवादी दल भी इसे अपूर्ण तथा असन्तोपजनक समझता था। कान्वेन्शन को भय था, कि नये चुने हुए सदस्य कही इस शासन-विधान को अस्वीकृत न कर दे। अत उन्होने व्यवस्था कि व्यवस्थापन-विभाग की दोनो सभाओ के दो-तिहाई सदस्य अवश्य ही कान्वेन्शन के सदस्यो मे से चुने जावें। परिणाम यह हुआ, कि कान्वेन्शन के इस हुक्म के खिलाफ नये शासन-विधान से असन्तुष्ट लोगो ने विद्रोह किया। इस विद्रोह को शान्त करने का कार्य एक पतले सुकडे नौजवान सिपाही के सुपुर्द किया गया था, जिसने बडी योग्यता और चातुर्य से इस विद्रोह को शान्त किया। इस सिपाहीका नाम नैपोलियन बोनापार्ट था। २६ अक्टूवर, १७९५ के दिन कान्वेन्शन वर्खास्त हो गया, और फ्रास का शासनसूत्र डाइरेक्टरी के हाथ में चला गया।

डाइरेक्टरी की नई सरकार के सम्मुख सव से वडा प्रश्न विदेशी युद्धो का था। विदेशी आक्रान्ताओ के हमले का पहला जोर तो अव घट चुका था। १७९५ के शुरू में प्रशिया, स्पेन और हालैण्ड ने फ्रास से सन्धि कर ली थी। परन्तु इङ्गलैण्ड, आस्ट्रिया, पीडमौण्ड और विविध जर्मन राज्य अव तक भी फ्रास के साथ युद्ध मे जुटे हुए थे। सेना और युद्ध की दृष्टि से फ्रास इस समय वहुत अच्छी दशा में था। वे स्वयसेवक लोग, जो नगे पैर और फटे कपडे पहने हुए फ्रास के क्रान्तिकारी सिद्धान्तो को सारी दुनिया मे फैला देने के लिये सेना मे भर्ती हुए थे, अव अच्छे कुशल सैनिक वन चुके थे। उनमें केवल सैनिक क्षमता ही नही थी, साथ ही असाधारण उत्साह और जोश भी था। इन सेनाओ के सेनापति भी पुराने कुलीन लोग नही थे। कोई भी आदमी सेनापति वन सकता था, वशर्ते कि वह अपनी क्षमता सावित कर सके। इतिहास में यह एक नई वात थी। पुराने जमाने मे राजा और राजकर्मचारियो की तरह सेनापति के पद भी ऊँचे कुलीन लोगो के लिये ही सुरक्षित रहते थे। पर फ्रास के सभी क्रान्तिकारी सेनापति वहुत साधारण स्थिति के आदमी थे। मूरो एक वकील था। जोर्डन कपडे वेचने का काम करता था। मरट अर्दली

रह चुका था। नैपोलियन बोनापार्ट एक गरीब वकील का लडका था। राज्य की तरह सेना भी अब सर्वसाधारण जनता की चीज बन चुकी थी। यह क्रान्ति का अत्यन्त महत्व-पूर्ण परिणाम था।

नये आक्रमणो की योजना—नई भावनाओ और उमङ्गो मे भरी हुई जन-साधारण की यह सेना विदेशी युद्धो मे असाधारण सफलता प्राप्त कर रही थी। डाइरेक्टरी का शासन शुरू होने से पहले ही आस्ट्रियन नीदरलैण्ड (बेल्जियम) को जीता जा चुका था। राइन नदी के पश्चिमी तट तक जर्मनी मे विजय की जा चुकी थी। नीस और सेवाय पर फ्रास का कब्जा था। ऐसी स्थिति मे डाइरेक्टरी के सम्मुख प्रधान कार्य यही था, कि अन्य शत्रुओ को भी परास्त कर क्रान्ति के सिद्धान्तो की विजय निरपवाद रूप से स्थापित कर दी जाय। क्रान्ति का सबसे बडा दुश्मन आस्ट्रिया था। इसलिये डाइरेक्टरी ने योजना बनायी, कि आस्ट्रिया पर दो मार्गो से आक्रमण किया जाय। एक सेना जोर्डन और मूरो के सेना-पतित्व मे दक्षिणी जर्मनी के मार्ग से आस्ट्रिया पर हमला करे, और दूसरी सेना नैपोलियन बोनापार्ट की अध्यक्षता मे उत्तरी इटली को जीतती हुई दक्षिण की तरफ से आस्ट्रिया पर आक्रमण करे।

नैपोलियन का सैनिक गौरव वास्तविक रूप से इसी आक्रमण से प्रारम्भ हुआ। इन आक्रमणो मे नैपोलियन ने जिस असाधारण वीरता और युद्ध-क्षमता का परिचय दिया, उससे सम्पूर्ण यूरोप आश्चर्य-चकित रह गया। इन्ही शानदार विजयो का परिणाम था, कि नैपोलियन फ्रास का न केवल सबसे बडा सेनापति तथा राज्याधिकारी बन गया, पर कुछ ही समय मे सम्राट् पद तक भी पहुंच गया।

नैपोलियन का आक्रमण—उत्तरी इटली के मार्ग से आस्ट्रिया पर आक्रमण करते हुए नैपोलियन ने सबसे पूर्व पीडमौण्ड के राज्य पर हमला किया। पीडमौण्ड सुगमता से परास्त हो गया। नीस और सेवाय पर फ्रास के अधिकार स्वीकृत करने के लिये पीड-मौण्ड के राजा को बाधित किया गया। पीडमौन्ट के राजा ने इन दोनो प्रदेशो पर अपना अधिकार छोडना स्वीकृत कर सन्धि कर ली। इस के बाद नैपोलियन ने उत्तरी इटली के दो अन्य राज्यो—लोम्बार्डी और मिलान पर हमला किया। दोनो प्रदेश फ्रास के अधीन हो गये। १५ मई, १७९६ को नैपोलियन ने बडी धूमधाम के साथ मिलान की वैभवशाली नगरी मे प्रवेश किया।

कैम्पो फोर्मियो की सधि—अब आस्ट्रिया पर आक्रमण करने का द्वार खुल गया था। मेन्टुआ और आर्कोल के रणक्षेत्रो मे आस्ट्रियन और फ्रेंच सेनाओ मे लडाइया लडी गई। आस्ट्रिया की पराजय हुई। अक्टूबर, १७९७ मे कैम्पो फोर्मियो नाम के स्थान पर दोनो देशो में सन्धि हो गई, जो कि 'कैम्पो फोर्मियो की सन्धि' के नाम से इतिहास मे प्रसिद्ध है। इस सन्धि के अनुसार आस्ट्रियन नीदरलैण्ड (बेल्जियम) पर फ्रास के अधिकार को स्वीकृत किया गया। उत्तरी इटली के जिन प्रदेशो पर नैपोलियन ने विजय प्राप्त की थी उन्हे सगठित कर एक रिपब्लिक के रूप मे परिवर्तित किया गया। इस नई रिपब्लिक का नाम सिसल्पाइन रिपब्लिक (आल्प्स पर्वतमाला की दक्षिणवर्ती रिपब्लिक) रखा गया। यह नई रिपब्लिक फ्रास की सरक्षा मे उसी के नमूने पर बनाई गई थी। आस्ट्रिया ने इस

रिपब्लिक को भी स्वीकृत किया। इसके अतिरिक्त, र्‌हाइन नदी के पश्चिमी तट पर फ्रास के अधिकार मे किसी किस्म की बाधा न डालने का वचन आस्ट्रिया की तरफ से दिया गया। इन सब बातो के बदले मे वेनिस की प्राचीन रिपब्लिक आस्ट्रिया के सुपुर्द कर दी गई। वेनिस की रिपब्लिक को भी नैपोलियन ने जीतकर अपने अधीन कर लिया था। कैम्पो फोर्मियो की यह सन्धि मध्यकालीन राजनीतिक सन्धियो का एक अच्छा नमूना है। जनता और देश की जरा भी परवाह किये बिना बिक्री के मामूली माल की तरह राज्यो का भी उस जमाने मे सौदा होता था। कैम्पो फोर्मियो मे भी नैपोलियन ने आस्ट्रिया के साथ इसी ढग का सौदा किया था।

इधर तो नैपोलियन को यह शानदार विजय प्राप्त हुई थी, उधर जोर्डन और मूरो —जिन्होंने कि दक्षिण जर्मनी होकर आस्ट्रिया पर हमला करना था, र्‌हाइन नदी के तट पर परास्त होकर वापिस लौट गये थे। एक साल के अन्दर-अन्दर ही नैपोलियन ने १८ बडे और ५० छोटे युद्ध लडे। इन युद्धो के परिणामस्वरूप उसने पीडमौन्ट और आस्ट्रिया को परास्त कर उन्हे फ्रास से सधि करने के लिये बाधित किया। इन लडाइयो का सारा खर्च नैपोलियन ने पराजित प्रदेशो से वसूल किया। इतना ही नही, अपना सारा खर्च निकालकर नैपोलियन ने १ करोड ८० लाख रुपया फ्रास को भी भेजा। पेरिस के अद्‌भुतालय (म्यूजियम) को विभूषित करने के लिये वह बहुत सी कृतिया इटली से पेरिस ले गया। जब वह फ्रास लौटा, तो लोगो ने एक भारी विजेता के रूप मे उसका स्वागत किया। निस्सन्देह, इन विजयो के कारण फ्रास की जनता उसे एक महान् वीर के रूप में पूजने लग गई।

पेरिस लौटकर नैपोलियन ने कोशिश की, कि वह डाइरेक्टरी का सदस्य चुन लिया जाय। अपनी गत विजयो से उसे भरोसा हो गया था, कि वह इस महत्त्वपूर्ण पद को सुगमता से प्राप्त कर सकेगा। पर उसे निराशा हुई। उसने अनुभव किया, कि अभी समय नही आया है। अपनी महत्त्वाकाक्षा को पूर्ण करने के लिये अभी और अधिक आश्चर्यजनक कृत्यो की आवश्यकता है। अभी मैदान भलीभाति तैयार नही हुआ है। इसलिये उसने एक अन्य विजय की योजना तैयार की।

विजय की नई योजना—पीडमौन्ट और आस्ट्रिया के साथ सन्धि हो जाने के कारण अब फ्रास की लडाई केवल इङ्गलैण्ड से जारी थी। इङ्गलैण्ड और फ्रास मे लडाई का कारण केवल क्रान्ति के सिद्धान्त ही नही थे। इन दोनो देशो मे सामुद्रिक प्रतिस्पर्धा सत्रहवी सदी में प्रारम्भ हो चुकी थी। इङ्गलैण्ड और फ्रास—दोनो ही अपना-अपना सामुद्रिक साम्राज्य स्थापित करने के प्रयत्न में थे। अत इनमे सघर्ष का होना स्वाभाविक था। नैपोलियन का विचार था, कि यदि ईजिप्ट को अपने अधीन कर लिया जाय, तो इङ्गलैण्ड के पूर्वी देशो मे निरन्तर बढते हुए सामुद्रिक व्यापार तथा राजनीतिक शक्ति को सुगमता से नष्ट किया जा सकता है। यूरोप और एशिया के पारस्परिक सम्बन्ध का मार्ग ईजिप्ट के उत्तर से होकर जाता है। ईजिप्ट पर जिसका अधिकार होगा, वह सुगमता से इस मार्ग का नियन्त्रण कर सकेगा। नैपोलियन स्वप्न ले रहा था, कि ईजिप्ट को जीतकर मै भारतवर्ष पर आक्रमण करूँगा। जिस प्रकार बहुत पुराने जमाने में सिकन्दर ने भारत पर हमला

किया था, उसी प्रकार मै भी एक हाथी की पीठ पर बैठकर सारे भारत को जीत लूगा। उन दिनो मे भारत मे फ्रासीसी और अङ्गरेज लोग विविध राजाओ का पक्ष लेकर, या विविध राजाओ को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर आपस मे शक्ति के लिये सघर्ष कर रहे थे। नैपोलियन ने टीपू सुलतान से भी पत्र व्यवहार किया था। भारतवर्ष की विजय कर वह पूर्वी ससार का स्वामी बनना चाहता था। वह उस चामत्कारिक तथा रहस्यमयी कीर्ति को प्राप्त करना चाहता था, जिसे सिकन्दर के बाद किसी अन्य पाश्चात्य विजेता ने प्राप्त नही किया था। उसका ख्याल था, कि यदि इन विजयो के सिलसिले में ही फ्रास के विरुद्ध यूरोपीय राज्यो का कोई नया गुट बना, तो उसका मुकाबला करने की सामर्थ्य मेरे सिवा और किसी मे न होगी। स्वाभाविक रूप मे डाइरेक्टरी मुझे फ्रास की रक्षा करने के लिये निमन्त्रित करेगी और तब अपनी महत्वाकाक्षा को पूर्ण करने के लिये उपयुक्त अवसर आयगा। तब फ्रास के रक्षक के रूप मे वापिस जाना होगा और अपना मनोरथ सुगमता से पूर्ण हो जायगा।

ईजिप्ट पर आक्रमण—डाइरेक्टरी ने नैपोलियन की योजना को स्वीकृत कर लिया। इङ्गलैण्ड को परास्त करने का निस्सन्देह, यह उत्तम उपाय था। चालीस हजार सैनिको और एक शक्तिशाली जहाजी बेडे को लेकर नैपोलियन ने ईजिप्ट के लिये प्रस्थान किया। नेल्सन के नेतृत्व मे इङ्गलिश जलसेना ने फ्रास के बेडे को परास्त करना चाहा। पर नैपोलियन बच गया, और ८ जुलाई, १७९८ के दिन ईजिप्ट के प्रसिद्ध बन्दरगाह एलेग्जेन्ड्रिया पहुँच गया। पहली अगस्त को नील नदी के तट पर लडाई लडी गई। ईजिप्ट परास्त हो गया। ईजिप्ट को जीतने की योजना का परिज्ञान जब टर्की की सरकार को हुआ, तो उसने फ्रास के खिलाफ युद्ध उद्घोषित कर दिया। इसीलिये ईजिप्ट को विजय कर लेने के अनन्तर नैपोलियन ने टर्की के साम्राज्य पर आक्रमण किया। इस बीच इङ्गलिश नौसेनापति नेल्सन फ्रेंच जहाजी बेडे को नष्ट करने मे व्यग्र था। उसे अपने प्रयत्न मे सफलता हुई। फ्रेंच बेडा पूर्णरूप से नष्ट कर दिया गया। अब नैपोलियन सामुद्रिक मार्ग से फ्रास वापस नही लौट सकता था। उसका फ्रास से सम्बन्ध टूट गया था। अब उसके सम्मुख एक ही मार्ग था। वह सीरिया और टर्की को जीतता हुआ एशिया माइनर के रास्ते से ही फ्रास वापस लौट सकता था। यह मार्ग कितना कठिन था, और इसमे उसे कितने राज्यो और शत्रुओ के साथ मुकाबला करना था, इसकी कल्पना सुगमता से की जा सकती है। पर विवश होकर उसे इसी मार्ग का आश्रय लेना पडा। टर्की फ्रास के खिलाफ युद्ध उद्घोषित कर चुका था, इसलिये भी आवश्यक था कि वह उसके साथ लडाई लडे।

सीरिया में पराजय—नैपोलियन ने पहले सीरिया पर आक्रमण किया। सीरिया उस समय तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत था। एकर नामक स्थान पर तुर्की सेनाओ के साथ नैपोलियन की बडी भारी लडाई हुई। इटालियन लोगो ने टर्की की सहायता की, और नैपोलियन परास्त हुआ। अब उसे वापस लौटने के लिये बाधित होना पडा। फ्रेंच सेना ने भारी मुसीबत का सामना किया। तुर्की गिरोह उस पर एक तरफ से हमला कर रहे थे, और उधर सेना मे महामारी फैल रही थी। आखिर नैपोलियन ईजिप्ट वापिस आया। यहा उसे समाचार मिला, कि फ्रास के खिलाफ यूरोपियन राज्यो का एक नया गुट तैयार हुआ

है, फ्रास पर भयकर आक्रमण की तैयारी हो रही है। नैपोलियन इसी समाचार की इतने दिनो से प्रतीक्षा कर रहा था। इसे जानकर उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा नही रही। उसने अपनी सेना की कोई भी परवाह नही की, और अपने अच्छे-अच्छे सैनिक कर्मचारियो के साथ गुप्त रूप से फ्रास के लिये प्रस्थान कर दिया। ९ अक्टूबर, १७९९ के दिन वह फ्रास पहुँच गया। नैपोलियन के फ्रास वापस होते ही जनता में नवीन उत्साह का सचार हो गया। लोगो को आशा बँध गई। वे इटली और आस्ट्रिया के विजेता, ईजिप्ट मे रहस्य-पूर्ण कारनामे सम्पादित करनेवाले, अजेय सेनापति को फिर से अपने बीच मे पाकर हर्ष से फूल उठे। अब समय आ गया था, मैदान तैयार हो चुका था। नैपोलियन अपनी महत्त्वाकाक्षा को अब सुगमता से पूर्ण कर सकता था। राज्यक्रान्ति की जो लहर बस्तीय्य के ध्वस के साथ शुरू हुई थी, उसने अब एक नया रुख स्वीकृत किया था। क्रान्ति का युग अब समाप्त होने लगा था—उसका स्थान ले रहा था, नैपोलियन, वह नैपोलियन जो कि अपनी सेना को ईजिप्ट मे निराश्रित रूप मे छोडकर अपनी वैयक्तिक महत्त्वाकाक्षा को पूर्ण करने के लिये फ्रास वापस आया था।

सातवा अध्याय

नैपोलियन का उत्कर्ष

१ नैपोलियन का अभ्युदय

नैपोलियन का कुल—नैपोलियन बोनापार्ट का जन्म १५ अगस्त, सन् १७६९ का कोर्सिका द्वीप मे हुआ था। यह द्वीप १७६८ तक जिनोआ की रिपब्लिक (इटली मे) के अधीन था। नैपोलियन के जन्म मे केवल एक वर्ष पूर्व ही इस पर फ्रास का आधिपत्य स्थापित हुआ था। नैपोलियन के माता-पिता इटालियन थे। उसके पुरखा सोलहवी सदी मे इटली से कोर्सिका मे आ बसे थे। उसकी जन्मभूमि फ्रास के अधीन थी, और स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये कोशिश कर रही थी। नैपोलियन के पिता का नाम कार्लो बोनापार्ट था। कहने को तो यह परिवार कुलीन श्रेणी का था, पर वस्तुत इसके पास जमीन जायदाद का सर्वथा अभाव था। अन्य बहुत मे कुलीन लोगो की तरह कार्लो बोनापार्ट का परिवार भी अब गरीब हो चुका था—कुलीनता तथा उच्चता की स्मृति ही शेष रह गई थी। कार्लो बोनापार्ट वकालत का पेशा करता था। वकालत मे उसे इतनी आमदनी नही थी, कि अपने विशाल परिवार का खर्च सुगमता मे चला सके। उसकी आठ सन्तानें थी। इतने बडे परिवार को पाल सकना उसके लिये सुगम नही था। इसलिये उसने दो बडे लडको, जोसफ और नैपोलियन को फ्रास में शिक्षा दिलाने का निश्चय किया। जोसफ को पुरोहिताई की शिक्षा दी गई और नैपोलियन को ब्रीएन के सैनिक शिक्षणालय मे भर्ती करा दिया गया। सैनिक शिक्षा प्रारम्भ करने के समय नैपोलियन की आयु केवल दस वर्ष की थी। फ्रेंच भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान उसने फ्रास आकर ही प्राप्त किया था। उसकी मातृ-भाषा इटालियन थी।

सैनिक शिक्षा—ब्रीएन के सैनिक शिक्षणालय मे नैपोलियन का जीवन बडी मुसीबत मे गुजरा। वहा के सभी विद्यार्थी उच्च कुलीन श्रेणी के तथा अमीर थे। वे नैपोलियन को बहुत तग करते थे, और उसकी गरीबी का मजाक उडाया करते थे। एक बार नैपोलियन ने अपने पिता को पत्र में लिखा था—'ये बेशर्म लडके मेरी गरीबी पर जिस ढग से मजाक उडाते है, उससे मै तग आ गया हूँ। ये लोग केवल सम्पत्ति मे ही मुझसे ज्यादा है। वास्तविक योग्यता मे ये लोग मेरा मुकाबला नही कर सकते।' इस शिक्षणालय मे फ्रेंच विद्यार्थियो के साथ पढते हुए नैपोलियन मे अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने की भावना भी निरन्तर प्रबल होती गई।

सैनिक शिक्षा समाप्त कर लेने पर नैपोलियन को सेना मे लेफ्टिनेन्ट के पद पर नियत किया गया। उसे विशेष उन्नति की कोई आशा नही थी। अभी तक फ्रास मे १६वे लुई

का एकतन्त्र शासन कायम था। सब जगह कुलीनो और अमीरो की पूछ थी। नैपोलियन गरीब तथा साधारण स्थिति का आदमी था। उसकी सिफारिश करनेवाला कोई प्रभावशाली व्यक्ति नही था। फिर वह उन्नति किस प्रकार कर सकता? इसी बीच मे उसके पिता की मृत्यु हो गई। वह गरीब परिवार—जिसके प्रत्येक व्यक्ति को एक दिन राजा व रानी के पद तक पहुँचना था, जिसके समान सौभाग्यशाली परिवार सम्भवत इतिहास मे अन्य कोई नही हुआ, कार्लो बोनापार्ट की मृत्यु से अब सर्वथा आश्रयहीन हो गया था। इस अवस्था मे नैपोलियन के लिये आवश्यक था, कि वह कोर्सिका जाकर अपने परिवार की देखभाल करे। वह कोर्सिका लौट गया। वहा फ्रास के शासन के विरुद्ध अनेक षडयत्र जारी थे। नैपोलियन मे भी अपने देश को स्वाधीन कराने की भावना प्रबलरूप मे विद्यमान थी। वह भी षड्यन्त्रकारियो मे शामिल हो गया। कोर्सिका की फ्रेंच सरकार ने षड्यन्त्रकारियो के दमन का उद्योग किया, और नैपोलियन को कोर्सिका छोड़कर बाहर चले जाने के लिये विवश होना पडा।

राज्यक्रान्ति और नैपोलियन—जब फ्रास मे राज्यक्रान्ति हुई, तो नैपोलियन को अपनी उन्नति के लिये अच्छा मौका मिला। वह अपने परिवार सहित फ्रास वापस लौट आया, और वहा क्रान्तिकारी सेना मे सम्मिलित हो गया। उसने उच्च सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी। फ्रास की सेना के पुराने कुलीन अफ्सर विदेशी शत्रुओ से जा मिले थे। कोई भी योग्य व्यक्ति इस स्थिति का उपयोग कर अच्छी उन्नति कर सकता था। नैपोलियन ने इस स्थिति से पूरा-पूरा लाभ उठाया। वह जैकोबिन दल मे सम्मिलित हो गया। जैकोबिन दल की महत्ता के बढने के साथ-साथ नैपोलियन की सैनिक क्षमता भी क्रान्तिकारियो के सम्मुख आने लगी। उसे जो भी कार्य सौपा गया, सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। 'आतक के राज्य' के समय उसने अनेक विद्रोहो को शान्त करने मे भाग लिया। पर नैपोलियन को विशेष उन्नति का अवसर तब मिला, जब डाइरेक्टरी की सरकार स्थापित हुई। डाइरेक्टरी का एक सदस्य जनरल बरा उस पर मेहरबान था। इसकी सहायता से उसने क्रान्ति के प्रमुख नेताओ से परिचय प्राप्त किया। पेरिस के बडे लोगो में उसका आना जाना होने लगा। इसी समय नैपोलियन ने सेनापति बोआर्ने की विधवा श्रीमती बोआर्ने से विवाह किया। सेनापति बोआर्ने को 'आतक के राज्य' मे कतल किया गया था। उसकी विधवा अनुपम सुन्दरी तथा प्रभावशाली महिला थी। उसके साथ विवाह कर लेने से नैपोलियन का महत्त्व व प्रभाव बहुत अधिक बढ गया। वह भी फ्रास के महत्त्वपूर्ण और बडे आदमियो में गिना जाने लगा। डाइरेक्टरी की सरकार ने जब आस्ट्रिया पर विजय करने के लिये आक्रमण की योजना बनाई, तो जनरल बरा के प्रयत्न तथा श्रीमती बोआर्ने के प्रभाव से उसे उत्तरी इटली होकर आस्ट्रिया पर आक्रमण करनेवाली सेना का प्रधान सेनापति नियत किया गया। इस इटालियन आक्रमण के समय नैपोलियन की आयु केवल २६ वर्ष की थी। वह ५ फीट २ इच ऊँचा था। उसका शरीर पीला, पतला सुकडा तथा देखने मे बहुत कमजोर मालूम होता था। इस पतले सुकडे नौजवान को जिस सेना का सेनापतित्व दिया गया था, उसके अन्य बहुत से अफसर उसकी अपेक्षा बहुत अधिक आयु के तथा अनुभवी थे। पर नैपोलियन ने इस आक्रमण में जिस वीरता तथा प्रतिभा का परिचय

दिया, उससे वह अपनी सेना का हृदयेश्वर बन गया। इतना ही नहीं, सारा फ्रांस और सारा यूरोप इस नौजवान की प्रतिभा से आश्चर्यचकित सा रह गया।

इटालियन आक्रमण—नैपोलियन ने किस प्रकार इटालियन आक्रमण में सफलता प्राप्त की, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। उसके हृदय में अभी से वे महत्त्वाकांक्षाएं विद्यमान थीं, जिन्होंने आगे चलकर उसे सम्राट् पद तक पहुँचा दिया। वह डाइरेक्टरी के अधीन सेनापति मात्र बने रहने में सन्तुष्ट नहीं रह सकता था। वह सम्राट् बनना चाहता था। यही कारण है, कि जब मिलान की विजय की गई, तो नैपोलियन ने बाकायदा दरबार लगाया। मिलान के समीप एक सुन्दर स्थान पर नैपोलियन का शानदार दरबार लगा। फ्रेंच सेना के सब सेनापति तथा नायक निश्चित वर्दी पहनकर दरबारी तरीके से एकत्रित हुए। बीच में ऊँचे सिंहासन पर नैपोलियन विराजमान हुआ। इटली के बहुत से बड़े-बड़े वैभवशाली अमीर आदमी इस नौजवान विजेता के दर्शनों के लिये पधारे। नैपोलियन का एक दृष्टिपात उनके लिये अहोभाग्य की बात थी।

इस दरबार के सिलसिले में नैपोलियन ने एक बातचीत में कहा था—अब तक जो कुछ मैंने किया है, वह तो कुछ भी नहीं है। यह तो मेरी शानदार सफलताओं का प्रारम्भमात्र है। क्या तुम समझते हो, कि इटली में जो विजय मैंने प्राप्त की है, वह डाइरेक्टरी के वकीलों के लिये है? क्या तुम समझते हो, कि मेरा उद्देश्य वस्तुत रिपब्लिक की स्थापना है? कैसा फिजूल खयाल है। डाइरेक्टरी मुझ से सेनापतित्व लेकर तो देखे, उसे मालूम पड़ जायगा कि असली मालिक कौन है? राष्ट्र को एक स्वामी की आवश्यकता है, पर वह स्वामी राज्यशास्त्र के सिद्धान्तों पर बहस करनेवाला नहीं होना चाहिये, अपितु शानदार कृत्यों से उसकी कीर्ति उज्ज्वल हुई होनी चाहिये।

निस्सन्देह, नैपोलियन का यही राजनीतिक सिद्धान्त था। जिस समय वह राज्यक्रान्ति की विजयपताका को आल्प्स की पर्वतमाला पर फहरा रहा था, उस समय भी वह १६वें लुई की तरह दरबार लगाने की फिकर में था, उस समय भी वह रिपब्लिक का अन्त कर स्वयं सम्राट् बनने का स्वप्न ले रहा था। कोर्सिका के एक गरीब वकील का लड़का इस छोटी सी उमर में न केवल फ्रांस अपितु सम्पूर्ण यूरोप का बादशाह बनने की धुन में था। उसकी यह आकांक्षा कितनी महान् थी, पर उसमें उसे सफलता भी कितने शानदार रूप में प्राप्त हुई।

उत्तरी इटली की विजय और आस्ट्रिया के साथ सन्धि कर चुकने के अनन्तर नैपोलियन फ्रांस वापस आया। पर अभी उपयुक्त समय नहीं आया था। वह ईजिप्ट चला गया। वहां उसे बहुत सफलता प्राप्त नहीं हुई। एकर के मैदान में तुर्की सेनाओं ने उसे परास्त किया। पर दूर बैठे हुए फ्रेंच लोगों की दृष्टि में ईजिप्ट में वह असाधारण रूप से उज्ज्वल कारनामे कर रहा था। जब फ्रांस के विरुद्ध यूरोपियन राज्यों का नया गुट तैयार हुआ, तो नैपोलियन अपनी सेना को इकला छोड़कर स्वयं वापिस चला आया। जिस अवसर की वह प्रतीक्षा कर रहा था, वह अब उपस्थित हो गया था।

डाइरेक्टरी का अन्त—यूरोपियन राज्यों का मुकाबला करने के लिये फ्रांस को एक योग्य सेनापति की आवश्यकता थी। डाइरेक्टरी के वकील और भद्रपुरुष इस विकट

परिस्थिति में फ्रास की रक्षा नही कर सकते थे। डाइरेक्टरी का शासन भी सर्वथा असन्तोष-जनक था। परिणाम यह हुआ, कि नैपोलियन के नेतृत्व मे डाइरेक्टरी का अन्त करने के लिये एक षड्यन्त्र तैयार किया गया। व्यवस्थापन विभाग की दोनो सभाओ के अनेक सदस्य इन षड्यन्त्रकारियो के साथी तथा सहायक थे। यह निश्चय किया गया, कि नैपोलियन अपने विश्वासपात्र सिपाहियो के साथ 'पाच सौ की सभा' पर हमला करे, और वहा जाकर अपने विरोधियो को बाहर निकाल दे। ऐसा ही किया गया। ९ नवम्बर, १७९९ के दिन जब 'पाच सौ की सभा' का अधिवेशन हो रहा था, नैपोलियन ने अपने सिपाहियो के साथ सभाभवन को घेर लिया। विरोधियो को एक-एक कर के बाहर कर दिया गया। केवल वे ही लोग बच गये, जो नैपोलियन के साथी व पक्षपाती थे। लूसि-यन बोनापार्ट के—यह नैपोलियन का भाई था, और 'पाच सौ की सभा' का अन्यतम सदस्य था—सभापतित्व में 'पाच सौ की सभा' का या उसके खण्डहर का अधिवेशन किया गया और निश्चय हुआ, कि डाइरेक्टरी की सरकार का अन्त कर शासनशक्ति तीन 'कौसलो' के हाथ मे दे दी जाय, प्रधान कौन्सल नैपोलियन बोनापार्ट को बनाया जाय और ये तीनो कान्सल देश के लिये एक नवीन शासनविधान तैयार करे। डाइरेक्टरी का अन्त हो गया, और नैपोलियन के लिये अपनी महत्त्वाकाक्षाओ को पूर्ण करने का द्वार खुल गया।

नवीन शासन-विधान—नवीन शासन-विधान का निर्माण करने मे बहुत देर नही लगी। यह नया विधान मुख्यतया नैपोलियन की ही कृति था। इस द्वारा चार सभाओ की रचना की गई। एक सभा का कार्य कानून प्रस्तावित करना था, दूसरी सभा उस पर बहस करती थी। तीसरी सभा उस पर वोट देने के लिये थी और चौथी सभा यह निर्णय करती थी, कि कानून शासन-विधान के अनुकूल है या प्रतिकूल। इन सभाओ मे सबसे प्रधान स्थान पहली सभा को था, जिसे राज्य-परिषद् कहते थे। यह केवल कानून प्रस्ताविन ही नही करती थी, साथ ही कानूनो का प्रयोग करना, शासन करना, और विदेशी मामलो तथा सेना का प्रबन्ध करना भी इसी का कार्य था। नपोलियन बोनापार्ट स्वय इसका सभापति बना और इसमें सब दलो के बुद्धिमान् लोगो को रखा गया। 'कौसलो' की व्यवस्था पहले के समान ही रखी गई, और नैपोलियन को ही प्रधान कौन्सल बनाया गया।

केन्द्रीय सरकार में इन परिवर्तनो के अतिरिक्त प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारो के स्वरूप में भी बहुत से परिवर्तन किये गये। नैपोलियन राजशक्ति को एक केन्द्र मे केन्द्रित करना चाहता था। वह सारे देश का शासन पेरिस से ही सचालित करना चाहता था। इसीलिये उसने प्रत्येक प्रान्त में केन्द्रीय सरकार की तरफ से एक-एक सूबेदार को नियत करने की व्यवस्था की। इसी प्रकार प्रत्येक प्रान्त के अन्य छोटे विभागो में नायब सूबेदार नियत किये गये। नगरो के मेयर तथा पुलिस के प्रधान कर्मचारी तक केन्द्रीय सरकार द्वारा नियत किये जाने लगे। और क्योकि केन्द्रीय सरकार में वास्तविक शक्ति प्रधान कौसल अथवा नैपोलियन के पास थी, अत इन सब अफसरो की नियुक्ति उसी के हाथो में आ गई। देश के वास्तविक शासन में लोकसत्तावाद के तत्त्व नष्ट हो गये, और फिर से पुराने राजसत्ता के युग की स्थापना का सूत्रपात हुआ। राज्यक्रान्ति का प्रमुख तत्त्व यही था कि राज्यशक्ति को जनता के हाथो मे दिया जाय, शासनकार्य कौन करे और किस प्रकार

करे—इसका निर्णय जनता स्वय किया करे। पर १७९९ के इस नये शासन-विधान ने इस सब पर पानी फेर दिया। प्रान्तीय और स्थानीय सभाओ का महत्त्व लुप्त हो गया। वास्तविक शक्ति उन सूबेदारो और नायब सूबेदारो के हाथ मे आ गई, जो प्रधान कौसल के प्रति जिम्मेवार थे, जनता के प्रति नही।

जनता द्वारा स्वीकृति—नैपोलियन शासन के मामलो मे जनता की इच्छा को कोई महत्त्व नही देता था। वह कहता था, मामूली लोग राज-काज के मामलो को जानने ही क्या है? यहा तक उसमे और १६वे लुई मे कोई भेद न था। पर उसका यह भी खयाल था, कि शासन का प्रकार क्या हो—इस विषय मे सर्वसाधारण जनता को अपनी राय प्रगट करने का अधिकार है। यहा पर वह १६वे लुई से मतभेद रखता था। अपने विचारो के अनुसार उसने आवश्यक समझा, कि नये शासन-विधान को जनता द्वारा स्वीकृत करा लिया जाय। जनता की सम्मति ली गई। तीस लाख से अधिक लोगो ने नये शासन-विधान के पक्ष मे वोट दिया। विरोध मे सम्मति देनेवालो की सख्या १५६२ थी। यह नही समझना चाहिये, कि अधिकाश जनता इस शासन-विधान से सन्तुष्ट थी। बहुत से लोग इसमें परिवर्तन चाहते थे, पर उन्हे तो केवल पक्ष या विपक्ष मे वोट देना था। इसे सर्वथा अस्वीकृत कर देने की अपेक्षा वे इसके पक्ष मे वोट देना अधिक अच्छा समझते थे। बहुत से प्रश्न ऐसे होते है, जिन पर 'हा' या 'नही' मे सम्मति नही दी जा सकती। शासन-विधान तो मुख्यतया इसी तरह का विषय है। नैपोलियन की इस सफलता का प्रधान कारण यह है, कि लोग एक स्थिर सरकार चाहते थे। अव्यवस्था और अस्थिरता से वे अब ऊब चुके थे उन्हे आशा थी, कि नैपोलियन जैसा बहादुर आदमी जहा विदेशी शत्रुओ को परास्त करने मे सफल होगा, वहा देश मे भी व्यवस्था कायम रख सकेगा।

नैपोलियन प्रधान कौसल बन गया। वह वस्तुत देश का राजा था, पर नाम मे नही। नैपोलियन इससे सतुष्ट नही रह सकता था उसकी हार्दिक महत्त्वाकाक्षा के पूर्ण होने मे अभी कुछ कसर बाकी थी।

२ प्रधान कौसल के रूप मे नैपोलियन का शासन

यूरोपियन राज्यो का नया गुट—फ्रास के खिलाफ यूरोपियन राज्यो का जो नया गुट बना था, जिसके कारण नैपोलियन को अपने अभ्युदय का यह सुवर्णावसर मिला था, उसमें इङ्गलैण्ड, रूस, आस्ट्रिया और टर्की—ये चार राज्य शामिल थे। यह नया गुट क्या बना था, इस बात की व्याख्या की जरूरत है। इसे भलीभाति समझने के लिये डाइरेक्टरी के शासन की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओ का उल्लेख करने की आवश्यकता होगी।

नये रिपब्लिकन राज्यो की स्थापना—कैम्पो फोर्मियो की सन्धि के बाद (अक्तूबर, १७९७) फ्रास यूरोप के किसी भी देश के साथ युद्ध मे व्यापृत नही रहा था। उस समय भी अगर कोई राज्य फ्रास से सघर्ष कर रहा था, तो वह केवल इङ्गलैण्ड ही था। पर इङ्गलैण्ड के युद्धो का यूरोप से कोई सम्बन्ध न था। इस प्रकार सब यूरोपियन राज्यो की फ्रास से पूर्ण सन्धि थी। पर इस बीच मे भी—इस सन्धि और शान्ति के काल में भी—फ्रास के क्रान्तिकारी सिद्धान्त पडोस के अन्य देशो मे क्रान्ति की भावना को फैला रहे थे। फ्रेंच

रिपब्लिक के नमूने पर समीप के राज्यो मे भी नवीन शासन-विधानो की स्थापना हो रही थी। उत्तरी इटली म किसल्पाइन रिपब्लिक की स्थापना कर दी गई थी। नीदरलैण्ड मे राजतन्त्र को नष्ट कर रिपब्लिक स्थापित कर दी गई थी। इस नई रिपब्लिक का नाम बैटेवियन रिपब्लिक रखा गया था फ्रास के क्रान्तिकारियो ने उतरी इटली के एक अन्य प्राचीन राज्य जिनोआ में क्रान्ति कराके वहा लिगूरियन रिपब्लिक के नाम से एक नये लोक-तन्त्र राज्य की स्थापना कर दी थी। नई रिपब्लिको का सिलसिला यही पर खतम नही हुआ। नैपोलियन का भाई जोसफ बोनापार्ट रोम मे फ्रास का राजदूत था। उसके उकसाने पर रोम मे विद्रोह हुआ। वहा के क्रान्तिकारी लोग पोप के शासन के खिलाफ उठ खडे हुए। खुल्लम-खुल्ला गदर हो गया। इस गदर मे एक फ्रेच सेनापति मारा गया। फ्रेच सेनापति का मारा जाना डाइरेक्टरी के लिये काफी अच्छा बहाना था। उन्होने एक सेना रोम मे पोप के शासन का अन्त कर रिपब्लिक स्थापित कराने के लिये रवाना कर दी। इस सेना की मदद से रोम म रिपब्लिक की स्थापना की गई। पोप का अपमान किया गया। धार्मिक तथा राजकीय चिह्नो को छीनकर उसे रोम से बाहर निकाल दिया गया। इस प्रकार रोमन रिपब्लिक ्थापित की गई। स्विट्जरलैण्ड मे भी इसी ढग से फ्रेच नमूने पर हेल्वेटिक रिपब्लिक कायम की गई इस श मे ग ले भी राजतन्त्र शासन विद्यमान न था स्विटजरलैण्ड अने छोटे-छोटे प्रदेशो मे, जिन्हे कैण्टन कहा जाता है, विभक्त था। प्रत्येक कैण्टन की अपनी अलग-अलग सरकार थी, और इ न विविध कैन्टनो को मिलाकर एक केन्द्रीय सगठन भी बना हुआ था। इसका शासन कतिपय कुलीन श्रेणियो के हाथ मे था।

कुछ आन्तरिक झगडो से लाभ उठा कर फ्रेच सेना ने स्विट्जरलैण्ड पर आक्रमण किया और श्रेणितन्त्र शासन का अन्त कर वहा हेल्वटिक रिपब्लिक की स्थापना कर दी। नेपल्स मे भी यही हुआ। पोप के राज्य मे रिपब्लिक की स्थापना से नेपल्स का राजा बहुत भयभीत हो गया था। उसका खयाल था, कि यदि अपनी राजगद्दी को कायम रखना है, तो रोम में फिर से पोप के आधिपत्य को स्थापित करना चाहिय। इसलिये उस ने इङ्गलैण्ड के साथ मिलकर फ्रास के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर दिया। इस पर फ्रा स की एक सेना ने नेपल्स पर आक्रमण किया। बात की बात में नेपल्स परास्त हो गया। वहा भी पुराने राजतन्त्र राज्य का अन्त कर एक नवीन रिपब्लिक की स्थापना की गई, और उसका नाम पर्थेनोपियन रिपब्लिक रखा गया। इसके कुछ ही दिनो बाद फ्रास की सेनाओ ने पीडमौन्ट पर आक्रमण किया। पीडमौण्ट परास्त हो गया। वह ा का राजा भागकर सार्डिनिया के द्वीप मे चला गया। पीडमौण्ट पर भी फ्रास का आधिपत्य कायम हो गया।

ये सब घटनाएँ डाइरेक्टरी के शासनकाल में हुई थी। इनका परिणाम यह हुआ, कि फ्रास की शक्ति बहुत बढ गई। हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड और सम्पूर्ण इटली पर फ्रास का आधिपत्य हो गया। ये जो नई रिपब्लिके बनी थी, वे पूणतया फ्रास के प्रभाव मे थी। इस समय फ्रास सर्वत्र विजयी हो रहा था।

नये गुट का निर्माण—फ्रास की यह असाधारण सफलता अन्य यूरोपीय राज्यो को सह्य नही हुई। इसके अतिरिक्त, क्रान्तिकारी सिद्धान्तो का इस प्रकार विस्तार एकतन्त्र राजाओ के लिये भयकर खतरा था। यही कारण है, कि इङ्गलैण्ड अन्य अनेक राज्यो

को फ्रास के खिलाफ लडने के लिये सुग ता से तैयार कर सका । रूस का जार पाल (राज्यारोहण काल १७९६ ई०) क्रान्ति का कट्टर दुश्मन था । इङ्गलैन्ड के चतुर प्रधान मन्त्री पिट ने इस शक्तिशाली सम्राट को फ्रास के खिलाफ लडने के लिये तैयार कर लिया। नि चय हुआ, कि जार अपनी सेनाएं फ्रास से युद्ध करने के लिये भेजेगा और उनका खर्च इङ्गलैण्ड देगा। फ्रास को कुचलने के इ भगीरथ प्रयत्न मे सहायता देने मे आस्ट्रिया को हार्दिक खुशी थी। वह भी इङ्गलैण्ड और रूस के साथ सम्मिलित हो गया। नैपोलियन के इजिप्शियन युद्धो के कारण टर्की के सुल्तान ने भी फ्रास के खिलाफ युद्ध उद्घोषित कर दिया था—इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस प्रकार डाइरेक्टरी के शासनकाल में ही इन चारो राज्यो का नया गुट फ्रास के विरुद्ध बन गया था। इसी गुट का मुकाबला करने मे डाइरेक्टरी की असमर्थता देखकर नैपोलियन ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र किया था, और अब प्रधान कौन्सल के पद पर अधिष्ठित होकर नैपोलियन को सब से पहले इसी गुट का मुकाबला करना था ।

युद्ध का प्रारम्भ—यूरोपियन राज्यो का यह नया गुट फ्रास के लिये बहुत हानिकारक सिद्ध हुआ। एकदम परिस्थिति ने पलटा खाया। जो फ्रास पहले सर्वत्र विजयी और सफल हो रहा था, वह अब सब तरफ से आक्रान्त हो गया। आस्ट्रियन सेनाओ ने फ्रास को दक्षिणी जर्मनी मे परास्त किया। रूसी सेनापति सुवेराफ ने आस्ट्रिया की सहायता मे उत्तरी इटली से फ्रेंच सेनाओ को निकाल बाहर कर दिया और वहा से फ्रास का कब्जा उठ गया। इस के बाद सुवेराफ ने स्विटजरलैण्ड पर हमला किया। उसे आशा थी, कि एक अन्य रूसी सेना जो उत्तर की तरफ से स्विट्जरलैण्ड को फ्रेंच अधीनता से मुक्त कराने के लिये आक्रमण कर रही थी, उसकी सहायता उसे प्राप्त हो जायगी और ये दोनो रूसी सेनाएँ मिलकर स्विट्जरलैण्ड को स्वतन्त्र करा देंगी। पर उसे निराश होना पडा। जिस रूसी सेना ने उत्तर की तरफ से हमला किया था, वह फ्रेंच लोगो द्वारा परास्त की जा चुकी थी। सुवेराफ बहुत भयकर कठिनाइयो का मुकाबला कर स्विट्जरलैण्ड पहुँचा था। उसे आल्प्स पर्वत-माला के विकट दर्रों को लाघना पडा था। इतनी कठिनाइयो का मुकाबला कर जब उसे निराश होना डा, तो रूस का जार घबरा गया। उसने समझा कि आस्ट्रिया की बेईमानी और साजिशे रूसी सेनाकी असफलता की हेतु है। उसने आस्ट्रिया से सब सम्बन्ध विच्छिन्न कर दिया और सुवेराफ को वापिस बुला लिया।

नैपोलियन द्वारा सधि का प्रयत्न—इसी बीच मे फ्रास मे डाइरेक्टरी का पतन हुआ और नैपोलियन के एकाधिकार का सूत्रपात हुआ। प्रधान कौन्सल नैपोलियन ने इङ्गलैण्ड के राज जार्ज तृतीय और आस्ट्रियन सम्राट् फासिस द्वितीय को वैयक्तिक पत्र भेजे। उसने लिखा—युद्ध करने से क्या लाभ है? यूरोप के पवित्र और धार्मिक सम्राट् आपस मे क्यो लडें? व्यापार, व्यवसाय, सुख, समृद्धि और शान्ति के महान् लाभो का खोखले बडप्पन के लिये क्यो कुर्बान किया जाय? नैपोलियन के इस सन्देश पर इङ्गलैण्ड ने कोई ध्यान नही दिया। प्रधान मन्त्री पिट ने उत्तर में लिखा, कि युद्ध की वास्तविक उत्तर-दायिता फ्रास पर है। यदि फ्रास को सचमुच शान्ति की इच्छा है, तो उसका एकमात्र उपाय यह है, कि फिर से बूर्बो राजवश का एकच्छत्र शासन स्थापित करदिया जाय। ब्रिटेन

मे इस समय पार्लियामेंट का जो 'वैध शासन' स्थापित था, वह फ्रास मे फिरसे निरकुश व स्वेच्छाचारी सरकार की स्थापना के लिये उत्सुक था। वस्तुत, अभी ब्रिटेन मे जनता का शासन प्रारम्भ नही हुआ था। आस्ट्रिया का उत्तर भी इसी प्रकार निराशाजनक था। नैपोलियन ने शान्ति के लिये जो हाथ बढाया था, इन दोनो राज्यो ने उसे घृणापूर्वक ठुकरा दिया। रिणाम यह हुआ, कि नैपोलियन ने युद्ध के लिये डे जो से तैयारी शुरू कर दी।

आस्ट्रिया की पराजय—आस्ट्रिया पर दो तरफ से आक्रमण क ने की योजना की गई। सेन. f मूरो को र्हाइन की तरफ से आक्रमण के लिये भेजा गया। नैपोलियन ने स्वय आ ल्प्स की विकट और दुर्गम पर्वतमालाओ को पार कर सीधा आस्ट्रिया पर हमला करने का निश्चय किया। आस्ट्रिया पर हमला करने का यह बहुत ही विकट मार्ग था। सम्भवत, प्रसिद्ध कार्येजियन सेनापति हैनीबाल के बाद किसी अन्य सेनापति ने इस मार्ग का अवलम्बन करने का साहस नही किया था। उस समय मे आल्प्स की पर्वतमाला पर कोई सडक विद्यमान नही थी। इसलिये मोटे-मोटे वृक्षो के तनो को खोखला कर उनमे तोपो को बन्द किया गया, और इस प्रकार वृक्षो के तनो को लुढका-लुढकाकर आल्पस के पार पहुँचाया गया। आस्ट्रियन लोगो को स्वप्न में भी सम्भावना नही थी, कि आल्प्स की दुर्गम पर्वतमाला को पार कर कोई सेना उस पर आक्रमण कर सकती है। जब नैपोलियन आस्ट्रिया के मैदान मे अपनी सेना सहित प्रवेश कर गया, तो उनके आश्चर्य की सीमा नही रही। मरेंगो नामक रणक्षेत्र मे १४ जुलाई, सन् १८०० के दिन भयकर लडाई हुई, जिसमें नैपोलियन की विजय हुई। आस्ट्रियन सेना बुरी तरह परास्त हो गई। दूसरी तरफ सेनापति मूरो भी निरन्तर आगे बढ रहा था। होहनलिण्डन नामक स्थान पर उसने आस्ट्रियन सेना को परास्त किया। इन दो पराजयो का यह परिणाम हुआ, कि आस्ट्रिया को सन्धि के लिये प्रार्थना करने को बाधित होना पडा। आखिर ९ फरवरी, १८०१ को फ्रास और आस्ट्रिया में सन्धि हो गई। यह सन्धि लूनेविल की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे प्रधानतया कैम्पो फोर्मियो की सन्धि की शर्तों को ही फिर से दुहराया गया। आस्ट्रियन नीदरलैण्ड पर फ्रास का अधिकार पुन स्वीकृत किया गया। बैटेवियन, हैल्वटिक, लिगूरियन, और किसल्पाइन रिपब्लिको को पुन सगठित किया गया और इनकी फ्रास के अधीन सत्ता को आस्ट्रिया ने स्वीकृत किया। इसके अतिरिक्त, र्हाइन नदी के बाये तट पर भी फ्रास के अधिकार को स्वीकृत किया गया। लूनेविल की इस सन्धि से फ्रास की स्थिति बहुत सुदृढ हो गई। यूरोपियन राज्यो के दूसरे गुट ने उसको जो कुछ नुकसान पहुँचाया था, वह सब दूर हो गया।

आमीन की सन्धि—आस्ट्रिया के साथ सन्धि हो जाने पर अन्य राज्यो से सन्धि का मार्ग साफ हो गया। रूस तो पहले ही आस्ट्रिया से नाराज होकर युद्ध से पृथक् हो चुका था इङ्गलैण्ड की शक्ति विशेष रूप से समुद्र में थी। ईजिप्ट मे विद्यमान फ्रेंच सेना को (वह सेना जिसे लेकर नैपोलियन ईजिप्ट की विजय के लिये गया था, और जिसे निराश्रय छोडकर वह स्वय डाइरेक्टरी का अन्त करने के लिये फ्रास चला आया था) इङ्गलिश जहाजी बेडा परास्त कर चुका था। अब और अधिक युद्ध जारी रखना निरर्थक था। फ्रास और इङ्गलैण्ड मे भी आखिरकार सन्धि हो गई, जो कि आमीन की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध

है। फ्रास और इङ्गलैण्ड मे आठ साल मे निरन्तर युद्ध जारी था। दोनो राज्य अपनी सामुद्रिक प्रभुता तथा साम्राज्य विस्तार के लिये सघर्ष कर रहे थे। पिट फ्रास का कट्टर शत्रु था। वह फ्रास के पतन मे ही इङ्गलैण्ड का अभ्युदय देखता था। १८०२ मे पिट प्रधान मन्त्री न रहा। उसके पतन के अनन्तर ही फ्रास के साथ सन्धि सम्भव हो सकी। आमीन की इस सन्धि के अनुसार इङ्गलैण्ड ने फ्रास की नवीन सरकार की सत्ता को स्वीकार किया। सीलोन और ट्रिनिडाड के अतिरिक्त अन्य सब फ्रेंच उपनिवेश जो कि पिछले युद्ध मे इङ्गलैण्ड ने फ्रास से जीतकर अपने अधीन कर लिये थे—फ्रास को वापस दे दिये गये। लूनेविल की सन्धि की सब शर्तो को इङ्गलैण्ड ने भी स्वीकार किया। फ्रास की राज्यक्रान्ति के बाद यह पहला अवसर था, जब कि यूरोप मे लडाई बन्द होकर शान्ति की स्थापना हुई।

३. व्यवस्था की स्थापना

नैपोलियन का विधायक कार्य—यूरोपियन राज्यो मे युद्ध की समाप्ति के पश्चात् नैपोलियन ने अपनी शक्ति का उपयोग फ्रास मे व्यवस्था और शान्ति स्थापित करने के लिये किया। नैपोलियन केवल अनुपम योद्धा और विजेता ही नही था, विधायक कार्यो मे भी उनकी असाधारण शक्ति और क्षमता प्रगट हुई थी। क्रान्ति के कारण फ्रास मे पुराने जमाने का तो अन्त हो गया था, पुरानी सस्थाए नष्ट-भ्रष्ट हो गई थी, पर नवीन रचना और नवयुग की स्थापना का कार्य अभी तक नही किया जा सका था। रिपब्लिक के समय मे भी इसके लिये प्रयत्न किया गया था। पर आन्तरिक और बाह्य युद्धो के कारण क्रान्तिकारियो को इसके लिये उपयुक्त अवसर नही प्राप्त हो सका था। अब इतने समय के बाद इन युद्धो का अन्त हुआ था। अब इस बात का अवसर आ गया था, कि नये युग की स्थापना की जाय। इसमे सन्देह नही, कि नैपोलियन ने यह कार्य पर्याप्त सफलता के साथ सम्पन्न किया। नैपोलियन बाहर से यही प्रदर्शित करता था, कि वह राज्यक्रान्ति के सिद्धान्तो को ही क्रिया में परिणत कर रहा है। स्वाधीनता, समानता और भ्रातृभाव के उदार सिद्धान्तो का ही उसे अनुसरण करना है। क्रान्ति की नई कृतियो—रिपब्लिक, मनुष्यमात्र को मताधिकार, सामाजिक समता आदि को उसे अक्षुण्ण रखना है। पर मुह से यह कहते हुए भी वस्तुत नैपोलियन राजनीतिक स्वाधीनता की जड पर कुठाराघात कर रहा था। वह शासन और व्यवस्थापन की सम्पूर्ण शक्ति को अपने ही हाथो मे रखना चाहता था। और तो और रहा, न्यायालय भी वस्तुत उसी के कब्ज मे थे। पुलिस भी उसी के इशारा पर नाचती थी। कानूनो का वह इस ढग से प्रयोग करता था, मानो फ्रास मे फौजी कानून जारी हो। सम्भवत, उस समय की परिस्थितियो मे यही उचित और आवश्यक था। बाहर से लोकतन्त्र शासन के सम्पूर्ण ढाचे को कायम रखा गया था। बाहरी शरीर लोकतन्त्र और रिपब्लिक का था। पर असली शासन एक व्यक्ति की इच्छा पर आश्रित हो गया था। नैपोलियन का विश्वास था, कि फ्रास को एक शक्तिशाली और मजबूत शासन की जरूरत है, जो कि देश में व्यवस्था और शान्ति स्थापित रख सके। निस्सन्देह, नैपोलियन का यह विचार ठीक था। मतभेद, पार्टीबन्दी और झगडो का अन्त करने के लिये उसने सब दलो के लोगो को एक समान रूप से राजनीतिक पद दिये। देश से बहि-

प्कृत कुलीन श्रेणी तथा उच्च पुरोहित श्रेणी के लोगो को फिरसे फ्रास वापस आने की अनुमति दी। एप्रिल, १८०२ मे क्रान्ति के विरुद्ध अपराध करनेवालो को एक सार्वजनिक उद्घोषणा द्वारा क्षमा प्रदान कर दी गई। इस के परिणाम-स्वरूप चालीस हजार से अधिक परिवार फ्रास वापस लौट आये। क्रान्ति के समय की वहुत सी बातो को हटा दिया गया। अव प्रत्येक आदमी के लिये यह आवश्यक नही रह गया, कि वह दूसरे को 'नागरिक' शब्द से ही सम्बोधन करे। अव कुल और स्थिति के अनुसार 'श्रीमान्' 'हुजूर' आदि शब्दो का पुन प्रयोग किया जाने लगा। नैपोलियन के रहन-सहन मे भी अन्तर आने लगा। टुइलरी के राजप्रासाद मे फिर रौनक, शानशौकत और धूमधाम नजर आने लगी। बूर्बों वश के राजाओ का स्थान कोर्सिका के गरीब वकील के लडके ने ले लिया। कलेवर दूसरा था, पर आत्मा वही थी। नये रूप मे फिर से बूर्बों ढग का एकतन्त्र राज्य फ्रास मे स्थापित हो गया। फ्रास ने क्रान्ति की ओर जो पग वढाया था, वह मार्ग मे ही रुक गया। निस्सन्देह, फ्रास जहा पहले विद्यमान था, अव वहा से आगे वढ गया था। पर उसने जो ऊँची उडान उडनी चाही थी, उसमे वह असफल रहा था। वह तेजी से आगे वढा था, पर अपने उद्देश्य तक न पहुच कर रास्ते मे ही रह गया था। मानवीय उन्नति का यही ढग है। मनुष्य जाति छलाग मारकर उन्नति नही करती है, वह धीरे-धीरे कदम वढाकर अ गे वढती है। 'आतक के राज्य' मे रोवस्पियर और हेवॅर् फ्रास को जहा तक खीच कर ले गये थे, वहा वह टिक नही सका। वह पीछे लौट आया, पर इसमे सन्देह नही, कि वह लौटकर उस जगह तक नही गया, जहा कि वह लुई १६वे के समय मे विद्यमान था। नया समुतलन स्थापित होगया-- पर पुराने और नये के वीच में, बूर्बों शासन और रिपब्लिक के मध्यवर्ती स्थान पर।

नैपोलियन विधान—नैपोलियन के विधायक कार्यों में सबसे मुख्य स्थान उसके 'विधान' का है, जो नैपोलियन-विधान के नाम से प्रसिद्ध है। क्रान्ति से पूर्व फ्रास मे बहुत प्रकार के विधान प्रचलित थे। क्रान्ति ने इस सवको नष्ट करके सम्पूर्ण फ्रास मे एक ही कानून को प्रचलित करने का प्रयत्न किया था। इसी उद्देश्य से क्रान्तिकारी सरकारो ने अनेक नये कानूनो का निर्माण भी किया था। परन्तु ये सव कानून किसी एक विधान मे सकलित नही थे। इसलिये नैपोलियन ने एक कमीशन नियत किया, जिसको कि इन सम्पूर्ण कानूनो को सगृहीत कर एक व्यवस्थित विधान तैयार करने का कार्य सुपुर्द किया गया। नवीन विधान के मसविदे को राज्य परिषद् के सम्मुख पेश किया गया। कुछ परिवर्तनो के साथ वह स्वीकृत हो गया। फ्रास के वर्तमान कानून का मुख्य आधार यह नैपोलियन-विधान ही है। केवल फ्रास मे ही नही, परन्तु हालैण्ड, वेल्जियम, पश्चिमी और दक्षिणी जर्मनी, इटली और लुईसियेना के राज्यो के प्रचलित कानून भी मुख्यतया इसी विधान पर आश्रित है। इसका कारण यह है, कि उस समय इन देशो पर भी फ्रास का आधिपत्य था, और इनमें भी यही विधान प्रचलित किया गया था। यूरोप के अन्य देशो पर भी इस विधान का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

धार्मिक नीति—नैपोलियन को किसी विशेष धर्म में आस्था नही थी। ईजिप्ट मे वह इस्लाम का आदर करता था, और फ्रास मे रोमन कैथोलिक धर्म का। वह जानता था, कि फ्रास की अधिकाश जनता कैथोलिक धर्म को मानने वाली है। इसलिये वुद्धिमत्ता इसी मे है,

कि स्वय भी कैथोलिक धर्म का अनुसरण किया जावे। क्रान्ति के समय ईसाई चर्च में पूर्णतया अव्यवस्था मच गई थी। नैपोलियन समझता था, कि जनता की सहानुभूति को प्राप्त करने के लिये उसके धार्मिक विश्वासो का सम्मान करना आवश्यक है। इसीलिये उसने कैद मे पडे हुए पादरियो को स्वतन्त्र कर दिया। जिन्हे देश निकाला दिया गया था, उन्हे फिर से फ्रास लौट आने की अनुमति दी गई। रविवार को फिर से महत्त्व दिया गया। क्रान्ति के समय मे जो नई छुट्टिया शुरू हुई थी, उन सब को हटा दिया गया। केवल १४ जुलाई, जो कि बस्तील के जल के ध्वस का दिन था, तथा २२ सितम्बर को—जो कि रिपब्लिक की स्थापना का दिन था, सार्वजनिक छुट्टी के तौर पर कायम रखा गया। क्रान्ति के समय की अन्य सब छुट्टियो को हटाकर फिर से धर्म पर आश्रित पुरानी छुट्टियो को जारी किया गया। यह सब जनता की सहानुभूति को प्राप्त करने के लिये ही था।

कान्कार्डट—रोमन कैथोलिक चर्च की पुन स्थापना करने के लिये सितम्बर, १८०१ मे पोप से बाकायदा सन्धि की गई। यह सन्धि 'कान्कार्डट' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कान्कार्डट मे उद्घोषित किया गया, कि फ्रास की अधिकाश जनता रोमन कैथोलिक धर्म को माननेवाली है, अत फ्रास मे इसी धर्म को राजकीय धर्म स्वीकृत किया जाना चाहिये। बिशपो तथा चर्च के अन्य पदाधिकारियो की नियुक्ति प्रधान कौन्सल द्वारा की जायगी, पर उसके लिये पोप से स्वीकृति लेनी आवश्यक होगी। बिशपो तथा अन्य पुरोहितो को राज्य की तरफ से वृत्ति दी जायगी। सब पुरोहितो के लिये आवश्यक होगा कि वे रिपब्लिक के शासनविधान के प्रति भक्ति की शपथ लें। चर्च की सपूर्ण सम्पत्ति क्रान्ति के समय में राज्य ने छीन ली थी। निश्चय किया गया कि जो सम्पत्ति अभी बेची नही गई है, वह चर्च के सुपुर्द कर दी जाय। पर जो सम्पत्ति किसी व्यक्ति को बेच दी गई है, उसको न छेडा जाय। इस सन्धि के अनुसार राज्य और चर्च को पृथक् नही रहने दिया गया। चर्च भी एक प्रकार से राज्य की ही अधीनता मे आ गया। यद्यपि नाममात्र को पोप का आधिपत्य कायम रखा गया था, और बिशप आदि की नियुक्ति के लिये भी पोप की स्वीकृति प्राप्त करनी आवश्यक थी, पर ये सब बाते नाम को ही थीं। वस्तुत चर्च पर प्रधान कौंसल का, राज्य का ही अधिकार कायम हो गया था। इस प्रकार यद्यपि ऊपर से रोमन कैथोलिक चर्च का सगठन क्रान्ति से पहले जमाने का सा ही था, पर असल मे उसमे भारी परिवर्तन हो गया था। अब न चर्च के न्यायालय रहे थे, और न चर्च के पृथक् टैक्स। अब चर्च राज्य का प्रतिद्वन्द्वी नही था, अब वह राज्य के अधीन एक सस्थामात्र था। सम्भवत, नैपोलियन चर्च के इस पुनरुद्धार का भी पक्षपाती नही था। पर जनता की सहानुभुति प्राप्त करन के लिये इसकी आवश्यकता थी, और इसीलिये उसने निस्सकोच भाव से इसे पुन स्थापित किया।

शिक्षा प्रसार—शिक्षा के प्रसार के लिये भी नैपोलियन ने विशेष रूप से प्रयत्न किया। प्रत्येक नगर मे शिक्षणालयो की स्थापना की गई। शिक्षको को राज्य की ओर से वेतन दिया जाने लगा। शिल्प और व्यवसाय के लिये विद्यालय खोले गये। पेरिस के विश्वविद्यालय का पुन सगठन किया गया। सब शिक्षणालयो म राजभक्ति की शिक्षा देने के लिये विशेष रूप से जोर दिया गया। विद्या और शिक्षा के प्रसार के लिये भरसक

कोशिश की गई।

आर्थिक नीति—राज्यक्रान्ति के कारण फ्रास की आर्थिक दशा पहले की अपेक्षा भी अधिक खराब हो गई थी। टैक्स नियमित रूप से वसूल नही हो पाते थे। रिपब्लिकन सरकार ने जो पत्र-मुद्राएँ जारी की थी, उनकी कीमत वहुत अधिक गिर गई थी। वाजार मे उन्हें कोई पूछता नही था। डाइरेक्टरी आर्थिक दृष्टि से बिलकुल दिवालिया हो गई थी। प्रधान कौन्सल के पद पर अधिष्ठित हो जाने पर नैपोलियन ने इस दशा मे सुधार करने का प्रयत्न किया। उस के व्यवस्थित शासन मे सरकारी टैक्स फिर से नियमित रूप से वसूल होने लगे। राष्ट्रीय ऋण को अदा करने के लिये एक नई निधि की स्थापना की गई। पुरानी गवर्नमेट सिक्यूरिटी (सरकारी कागज) को अदा करने के लिये नई सिक्यूरिटी जारी की गई। फ्रास के आर्थिक जीवन को सुव्यवस्थित करने के लिये वैक ऑफ फ्रास (१८००) की स्थापना की गई, और सरकार की आर्थिक नीति को सचालित करने का कार्य इस वैक के सुपुर्द किया गया। नैपोलियन ने यह यत्न भी किया, कि फ्रास के व्यवसायो और व्यापार मे वृद्धि हो। व्यापार की उन्नति के लिये उसने पैतीस नई सडको का निर्माण किया, जो पेरिस से फ्रास के विभिन्न प्रदेशो को मिलाती थी। उसने आल्प्स की पर्वतमाला पर भी दो नई सडको का निर्माण किया। इन सडको का उपयोग केवल सैनिक दृष्टि से ही नही था, व्यापार के लिये भी ये वहुत सहायक थी।

व्यवसायो की उन्नति के लिये नैपोलियन ने ऐसे अनेक शिक्षणालयो की स्थापना की, जिनमें श्रमियो को मशीनो के प्रयोग की शिक्षा दी जाती थी। नये वैज्ञानिक आविष्कारो के कारण इस समय यूरोप में मशीनरी का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका था। नैपोलियन ने प्रयत्न किया, कि फ्रास के व्यवसायो में इन यान्त्रिक आविष्कारो का अधिकतम उपयोग किया जाय। इसी उद्देश्य से उसने अनेक प्रदर्शनियो की भी योजना की, जिनमे उत्कृष्ट वस्तुओ पर पारितोषिक दिये जाते थे। इङ्गलैण्ड के तैयार माल के मुकावले से फ्रास के व्यवसायो की रक्षा करने के लिये नैपोलियन ने आयात-कर (इम्पोर्ट ड्यूटी) की भी व्यवस्था की। नैपोलियन को यह भी चिन्ता थी, कि फ्रास का अपना विशाल साम्राज्य होना चाहिये, ताकि उसकी आर्थिक समृद्धि मे सहायता पहुँचे।

इस प्रकार नैपोलियन निरन्तर फ्रास को सगठित तथा व्यवस्थित करने में प्रयत्नशील रहा। परन्तु उसकी महत्त्वाकाक्षा अभी पूर्ण नहीं हुई थी। वह एक रिपब्लिक के प्रधान कौन्सल के पद से ही सन्तुष्ट नहीं रह सकता था। वह सम्राट् वनना चाहता था, और अपनी इस आकाक्षा को पूर्ण करने मे उसे देर नहीं लगी।

४ सम्राट् नैपोलियन

नैपोलियन का सम्राट् बनना—नैपोलियन सम्राट् वनना चाहता था। वस्तुत, प्रधान कौन्सल के रूप में भी नैपोलियन की शक्ति, अधिकार और शानशौकत सम्राटो से कम नही थी, पर उसे रिपब्लिक का ढाचा भी सह्य नही था। इसीलिये उसके आदेश से शासन-विधान में इस प्रकार के परिवर्तन किये गये, जिनसे वह पूर्ण रूप से सम्राट् पद पर अधिष्ठित हो गया। पहले नैपोलियन को दस वर्ष के लिये कौन्सल वनाया गया। फिर १८०२

में उसे जन्म भर के लिये कौन्सल बना दिया गया। इस के बाद उसे यह भी अधिकार दिया गया, कि वह अपना उत्तराधिकारी भी स्वय चुन सके। १८०४ में यह प्रस्ताव पेश किया गया, कि नैपोलियन को फ्रेंच जनता का सम्राट् बना दिया जावे। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। यह प्रस्ताव नैपोलियन की प्रेरणा से ही पेश किया गया था, और उसी की कोशिश से पास हुआ था।

राज्याभिषेक—२ दिसम्बर, १८०४ के दिन नैपोलियन का राज्याभिषेक बड़ी धूमधाम के साथ हुआ। उसका अभिषेक-समारोह पुराने बूर्बों राजाओं के राज्याभिषेक को भी मात करता था। उस महत्त्वपूर्ण अवसर पर पोप भी उपस्थित हुआ। परन्तु अभिमानी नैपोलियन यह नही सह सका, कि पोप उसके सिर पर राजमुकुट रखे। इस से पहले कि पोप राजमकुट को उठाये, उसने उसे स्वय उठाकर अपने सिर पर रख लिया। नैपोलियन कहा करता था कि 'मैंने फ्रास के राजमुकुट को धूल में पडा पाया, और तलवार की नोक से उठाकर उसे अपने सिर पर रख लिया।' निस्सन्देह, नैपोलियन का यह दावा ठीक था। वह इसलिये सम्राट् नही बना था, क्योंकि वह किसी सम्राट् का लडका था। वह अपनी तलवार के जोर पर इस गौरवमय पद पर ही अधिष्ठित हुआ था।

पुरानी राजसत्ता का प्रारम्भ—सम्राट् बनकर नैपोलियन ने राज दरबार, अग-रक्षक, अनुचर, पार्श्वचर आदि का फिर से सगठन किया। नये दरबारियो को दरबार के ढग और कायदो को सिखाने के लिये सेजर, जो कि एक भागा हुआ कुलीन श्रेणी का आदमी था, और मदाम डि सापेन को, जोकि पहले मेरी आनोआत की पार्श्वचर थी, नियत किया गया। नैपोलियन के परिवार के आदमियो को सबसे ऊचे पद दिये गये। एक विशाल अङ्गरक्षक सेना का सगठन किया गया। नये सिरे से लोगो को खिताब दिये जाने लगे। इस प्रकार, एक नवीन कुलीन श्रेणी का निर्माण किया गया। यह नवीन कुलीन श्रेणी नैपोलियन की कृति थी। इसकी सत्ता एक आदमी की इच्छा पर आश्रित थी।

सम्राट् बन कर नैपोलियन निरन्तर अधिक से अधिक स्वेच्छाचारी तथा क्रूर होता गया। अब वह सार्वजनिक समालोचना को नही सह सकता था। प्रधान कौन्सल बनते ही उसने समाचार-पत्रो की स्वतन्त्रता मे बाधा डालनी प्रारम्भ कर दी थी। अनेक राजनीतिक पत्र बन्द कर दिये गये थे। नये पत्रो का प्रकाशन सर्वथा रोक दिया गया था। पर सम्राट् बनने पर नैपोलियन ने समाचार-पत्रो की स्वतन्त्रता का अपहरण करने में कमल ही कर दिया। यह व्यवस्था की गई, कि सब समाचार सरकार की तरफ से पहुँचाये जावे। समाचार भेजने का कार्य पुलिस के सुपुर्द किया गया। पुलिस उन सब समाचारो को रोक देती थी, जो सरकार के खिलाफ जाते थे। नैपोलियन की अपनी इच्छा तो यह थी, कि सब समाचार-पत्रो को बन्द कर दिया जावे। केवल एक ही पत्र सरकार की तरफ से प्रकाशित हो। जनता को समाचार ही तो चाहिये, और ये समाचार एक पत्र द्वारा भी सुगमता के साथ दिये जा सकते है।

आठवा अध्याय

सम्राट् नैपोलियन

१. नवीन युद्धो का प्रादुर्भाव

नवीन युद्ध—यूरोप के विविध राजाओ ने नैपोलियन के इस उत्कर्ष को वहुत आतक तथा आशका की दृष्टि से देखा। निस्सन्देह, नैपोलियन सम्राट् था, पर साथ ही वह क्रान्ति की कृति भी था। यूरोप के राजा अच्छी तरह समझते थे, कि वह उन के ढग का सम्राट् नही है। वह एक प्राचीन राजवश के खण्डहर पर, क्रान्ति के गम्भीर समुद्र-मथन से, जनता की इच्छा और सहमति से सम्राट् बना है। उसके हाथ मे तलवार है, जो उनके राजसिहासनो पर लुब्ध व क्रूर दृष्टि से देख रही है। वेशक, फ्रास मे फिर से राजसत्ता की स्थापना हो गई है, पर पिछले दस वर्षों की उथल-पुथल ने इस देश में एक महान् शक्ति का सचार कर दिया है, इसे आमूल-चूल परिवर्तित कर दिया है। यह नवीन शक्ति, यह नवीन राष्ट्र पुराने ढग की राजगद्दियो और दरवारो के लिये भारी खतरे का कारण है। नैपोलियन के व्यक्तित्व ने इस नई शक्ति में नवजीवन का ही सचार किया है। नैपोलियन के सम्राट् वन जाने से फ्रास में इतना ही परिवर्तन आया है, कि क्रान्ति और परिवर्तन की शक्तिया और भी अधिक सगठित तथा नियन्त्रित हो गई है। परिणाम यह हुआ, कि यूरोप के विविध राजे-महाराजे इस नये खतरे के विरुद्ध तैयारी में व्यग्र हो गये। उधर नैपोलियन भी युद्ध के लिये उत्सुक था। उसके वैयक्तिक अभ्युदय के लिये आवश्यक था, कि फ्रास अपनी सैनिक क्षमता को निरन्तर प्रदर्शित करता रहे। फ्रास की समृद्धि के लिये नैपोलियन यह भी उपयोगी समझता था, कि उसका अपना विस्तृत साम्राज्य हो। १८०२ मे राज्यपरिषद् के सम्मुख भाषण करते हुए उसने एक वार कहा था—'यदि यूरोपियन राज्य फिर से युद्ध प्रारम्भ करना चाहते है, तो लडाई जितनी जल्दी शुरू हो उतना ही अच्छा है। जितना समय गुजरता जाता है, उन के पराजयो की स्मृति मद पडती जाती है, और हमारा विजय-गौरव लोगो की दृष्टि से ओझल होता जाता है। फ्रास को शानदार कृत्यो की आवश्यकता है—इसलिये युद्ध की भी जरूरत है।' १८०४ में एक अन्य अवसर पर नैपोलियन ने कहा था—'यूरोप मे तव तक शान्ति स्थापित नही हो सकती, जब तक कि सम्पूर्ण महाद्वीप एक शासक के अधीन न हो जाय। यूरोप के ऊपर शासन करनेवाला एक ऐसा सम्राट् होना चाहिये, जिसके अधीन विविध राजा कर्मचारी के रूप मे कार्य करते हो। जो एक आदमी को इटली का राजा नियत करे, दूसरे को ववेरिया का, एक आदमी को स्विट्जरलैण्ड का शासक नियत करे, दूसरे को हालैण्ड का।' निस्सन्देह नैपोलियन का यही आदर्श था, और इसको क्रिया में परिणत करने के लिये युद्ध—निरन्तर और भयकर युद्ध के अतिरिक्त

अन्य कोई उपाय नही था। परिणाम यह हुआ, कि यूरोप मे उन भयकर युद्धो का प्रारम्भ हुआ, जो दस वर्ष तक निरन्तर जारी रहे और जिन्होने यूरोप के नक्शे मे भारी परिवर्तन ला दिया। यूरोप के आधुनिक इतिहास मे ये युद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इङ्गलैण्ड के साथ युद्ध—फ्रास के साथ सब से पहले युद्ध उद्घोपित करनेवाला राज्य इङ्गलैण्ड था। मई, १८०३ मे आमीन की सन्धि की समाप्ति हो गई, और फ्रास तथा इङ्गलैण्ड म युद्ध शुरू हो गया। इस युद्ध के अनेक कारण थे। फ्रास और इङ्गलैण्ड मे सामुद्रिक साम्राज्य के सम्बन्ध मे प्रतिस्पर्धा इसका प्रधान कारण था। निस्सन्देह, नैपोलियन साम्राज्यवादी था। सप्तवर्षीय युद्ध मे इङ्गलैण्ड ने फ्रास के जिस सामुद्रिक और औपनिवेशिक साम्राज्य का अन्त कर दिया था, नैपोलियन उस का पुनरुद्धार करना चाहता था। १८०० में नैपोलियन स्पेन को इस बात के लिये प्रेरित करने मे सफल हो गया था, कि अमेरिका मे मिसिसिपी नदी की घाटी के प्रदेश को—जो लुसिएना के नाम मे प्रसिद्ध है, फ्रास को दे दे। इसके कुछ समय बाद ही सेनापति लेक्लेर्क को २५,००० सैनिको के साथ हेयटी के द्वीप पर कब्जा करने के लिये भेजा गया था। भारत मे अग्रेज लोगो के बढते हुए अधिकार और प्रभाव का मुकाबला करने के लिये सेनापति दकेन को अनेक सैनिक अफसरो के साथ भेजा गया था। इसी प्रकार अन्यत्र भी अपने साम्राज्य के पुनरुद्धार को दृष्टि मे रख कर सेनापति भेजे गये थे। यद्यपि ये प्रयत्न प्राय असफल ही रहे, पर अपने प्रतिद्वन्द्वी को इस प्रकार शक्तिसम्पन्न तथा प्रयत्नशील होते देखकर इङ्गलैण्ड का चिन्तातुर हो जाना सर्वथा स्वाभाविक था। बेशक, इङ्गलैंड की सामुद्रिक शक्ति का मुकाबला कर सकना फ्रास के लिये सम्भव नही था। पर स्थल मे फ्रास की शक्ति अद्वितीय थी। इङ्गलैण्ड इस महान् सैनिक शक्ति को कदापि सहन नही कर सकता था। यूरोप पर फ्रास का प्रभाव जिस ढग से बढ रहा था, उससे इङ्गलैण्ड को भारी नुकसान था। कारण यह, कि फ्रास इङ्गलैण्ड के यूरोपियन व्यापार को जब चाहे नुकसान पहुँचा सकता था। नैपोलियन यूरोप के अधिकाश भाग को जीतकर अपने अधीन कर लेना चाहता था, और बाह्य व्यापारी माल पर तट-कर लगा कर इङ्गलैण्ड के सम्पूर्ण यूरोपियन व्यापार को आसानी से नष्ट कर सकता था। यही भयकर खतरा था, जिस ने इङ्गलैण्ड को आमीन की सन्धि का अन्त करने और युद्ध शुरू करने के लिये बाधित कर दिया। नैपोलियन ने भी इस युद्ध का खुले दिल से स्वागत किया क्योकि वह खूब अच्छी तरह से समझता था, कि इङ्गलैण्ड को कुचले बिना सम्पूर्ण यूरोप को अपने अधीन करने के स्वप्न को क्रिया मे परिणत नही किया जा सकता।

इङ्गलैण्ड पर आक्रमण की योजना—इङ्गलैण्ड और फ्रास मे युद्ध शुरू हो गया। इस समय हैनोवर के प्रदेश का शासक इङ्गलैण्ड का राजा ही था। नैपोलियन ने उसपर हमला किया और बात की बात में उसे अपने अधीन कर लिया। फ्रास के अधीन सब राज्य—जो पहले रिपब्लिक थे और नैपोलियन के सम्राट् बन जाने पर अब उस के द्वारा नियत किये गये शासको के अधीन थे, पूर्णतया उस की सहायता कर रहे थे। स्पेन को भी इङ्गलैण्ड के विरुद्ध सहायता करने के लिये नैपोलियन ने तैयार कर लिया था। इस प्रकार हैनोवर से लेकर इटली तक का सम्पूर्ण समुद्री तट नैपोलियन के कब्जे मे था, और इस परिस्थिति का प्रयोग उसने इङ्गलिश व्यापार को नष्ट करने के लिये किया। हैनोवरसे लेकर इटली तक

इङ्गलिश माल का आना सर्वथा रोक दिया गया। सब वन्दरगाह इङ्गलिश माल के लिये वन्द कर दिये गये। इतना ही नही, इङ्गलैण्ड पर हमला करने के लिये भी धूमधाम से तैयारी की गई। बोलोन मे डेढ लाख सैनिको की एक विशाल सेना एकत्र की गई। नैपोलियन इस वडी सेना के साथ अवश्य ही ब्रिटेन पर आक्रमण करता, परन्तु दो कारणो से उसे अपनी योजना का परित्याग कर देने के लिये बाधित होना पडा। इङ्गलैण्ड का जहाजी वेडा जहा इस योजना की सफलता मे वडी रुकावट था, वहा साथ ही यूरोपियन राज्यो का एक नया गुट भी फ्रास के विरुद्ध युद्ध करने के लिये सगठित हो गया था।

फ्रास के विरुद्ध नवीन गुट का निर्माण—यह नया गुट किस प्रकार वना था, इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता है। इङ्गलैण्ड का शासनसूत्र इस समय फिर पिट के हाथ मे आ गया था। पिट फ्रास और नैपोलियन का पुराना दुश्मन था। आमीन की सन्धि के टूट जाने पर युद्ध का सचालन करने के लिये ही पिट को प्रधानमत्री वनाया गया था। अपनी नीति तथा धन के वल से रूस और आस्ट्रिया को फ्रास के विरुद्ध युद्ध उद्घोपित कर देने के लिये तैयार करने मे पिट सफल हुआ। एप्रिल, १८०५ मे रूस के जार अलेक्जण्डर प्रथम ने फ्रास के खिलाफ इङ्गलैण्ड से सन्धि कर ली। इस सन्धि का उद्देश्य यह था, कि हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, इटली और हैनोवर मे फ्रास को निकाल वाहर किया जावे। अलेक्जण्डर प्रथम नैपोलियन से वहुत नाराज था। उसकी नाराजगी का एक मुख्य हेतु यह था, कि उसने वूर्वा वश के एक व्यक्ति एन्ज्ञीन के ड्यूक को इसलिये प्राणदण्ड दिया था, क्योकि उस पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया था। आस्ट्रिया भी १८०५ में ही इस नये गुट मे शामिल हो गया। आस्ट्रिया फ्रास के विरुद्ध वनाये गये किसी भी गुट में शामिल होने के लिये हमेशा उत्सुक रहता था। फ्रास के अभ्युदय से सव से अधिक नुकसान आस्ट्रिया को ही पहुँचा था। प्रशिया को भी इस गुट मे सम्मिलित होने के लिये प्रेरित किया गया। उस के राजा को यह भी लालच दिया गया, कि हैनोवर का प्रदेश उसे दे दिया जायगा। परन्तु प्रशिया का कमजोर राजा फ्रेडरिक विलियम तृतीय इतने पर भी इस गुट मे सम्मिलित होने के लिये तैयार नही हुआ।

फ्रेंच वेडे की पराजय—इस नये गुट ने नैपोलियन की इङ्गलैण्ड पर आक्रमण करने की योजना को मिट्टी मे मिला दिया। वोलोन मे जो भारी सेना एकत्रित की गई थी, उसे एक दम आस्ट्रिया का मुकावला करने के लिये दक्षिणी जर्मनी की तरफ भेज देना पडा। २१ अक्टूवर, १८०५ के दिन इङ्गलैण्ड के नौसेनापति नेलसन ने ट्राफल्गार के अन्तरीप के समीप फ्रेंच और स्पेनिश वेडे को वुरी तरह परास्त किया। इस के अनन्तर इङ्गलैण्ड समुद्र में अजेय हो गया, और फ्रास ने जल मे इङ्गलैण्ड का मुकावला करने का विचार छोड दिया। अव नैपोलियन ने अपना सम्पूर्ण ध्यान स्थल मे ही अपनी शक्ति का विस्तार करने के लिये लगा दिया। आस्ट्रिया और रूस के साथ जो युद्ध अव प्रारम्भ हुए, उनसे नैपोलियन की सैनिक कीर्ति वहुत अधिक वढ गई।

आस्ट्रिया के साथ युद्ध—आस्ट्रिया के साथ युद्ध मे नैपोलियन को असाधारण सफलता प्राप्त हुई। तीन सप्ताह मे फ्रेंच सेनाएँ विएना पहुँच गईं। २ दिसम्वर, १८०५ के दिन उसने आस्टरलिड्ज नामक स्थान पर रूस और आस्ट्रिया की सम्मिलित सेनाओं को

परास्त किया। इस पराजय के बाद रूसी सेनाएं अपने देश को लौट गईं, और आस्ट्रिया को सन्धि करने के लिये बाधित होना पड़ा।

प्रेसबुर्ग की सधि—२६ दिसम्बर, १८०५ को प्रेसबुर्ग में सन्धि कर ली गई। यह सन्धि आस्ट्रिया के लिये बहुत महँगी पडी। कैम्पो फोर्मियो की सन्धि के अनुसार वेनिस के (उत्तरी इटली मे) जिस प्रदेश को आस्ट्रिया ने प्राप्त किया था, वह उससे ले लिया गया। जर्मनी के अनेक राज्यो ने गत युद्ध मे फ्रास से सहानुभूति प्रगट की थी। आस्ट्रिया को नुकसान पहुँचाकर उन सबको इनाम दिया गया। बाडन और बवेरिया के राज्यो की सीमा में वृद्धि की गई। आस्ट्रिया का राजा पवित्र रोमन सम्राट् भी होता था। इस कारण जर्मनी के ये विविध राज्य उसके अधीन माने जाते थे। पवित्र रोमन सम्राट् की स्थिति में आस्ट्रिया के राजा को इस बात के लिये बाधित किया गया, कि बवेरिया और बुर्टम्बुर्ग के शासकों को प्रशिया के राजा के समान ही 'राजा' की स्थिति तक पहुँचा दिया जावे। नेपल्स ने फ्रास के शत्रुओ से सहानुभूति प्रदर्शित की थी, अत वहा के बूर्बो राजवश के राजा को पदच्युत कर दिया गया और वहा का शासन करने के लिये नैपोलियन के भाई जोसफ बोनापार्ट को नियत किया गया। बटेवियन रिपब्लिक (हालैण्ड) को भी राजतन्त्र राज्य के रूप मे परिवर्तित कर दिया गया, और वहा का राजा लुई बोनापार्ट को नियत किया गया।

र्‌हाइन के राज्यसघ का सूत्रपात—प्रेसबुर्ग की सन्धि एक अन्य दृष्टि मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अनेक जर्मन राज्यो को पवित्र रोमन साम्राज्य से पृथक् कर नैपोलियन ने अपनी अधीनता मे र्‌हाइन के राज्यसघ (कान्फिडरेशन) का निर्माण किया। इस सघ में बवेरिया, वुर्टमबर्ग, बाडन तथा अन्य तेरह जर्मन राज्य सम्मिलित हुए। यह सघ फ्रेञ्च सम्राट् की सरक्षा में बना था और इसकी वही स्थिति थी, जो कि हालैंड आदि की थी। आवश्यकता पडने पर फ्रास के लिये यह भी उसी प्रकार काम आ सकता था, जैसे हालैंड, स्विट्जरलैण्ड, सिसल्पाइन रिपब्लिक आदि अधीनस्थ राज्य। यह व्यवस्था की गई, कि यह सघ अपने सरक्षक नैपोलियन को ६६ हजार सिपाही प्रदान करेगा और फ्रेंच सेनापति इन्हें सगठित करेंगे।

पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त—प्रथम अगस्त, १८०६ के दिन पवित्र रोमन साम्राज्य की महासभा के सम्मुख नैपोलियन ने उद्घोषित किया, कि क्योकि मैंने र्‌हाइन के राज्यसघ के सरक्षक के पद को स्वीकृत कर लिया है, अत अब मैं पवित्र रोमन साम्राज्य की सत्ता को स्वीकार नही कर सकता। यह साम्राज्य अब नाममात्र का ही रह गया था, और इसके अधीनस्थ अनेक राज्य अब स्वतन्त्र स्थिति को प्राप्त कर चुके थे। इसकी सत्ता अब पारस्परिक झगडो का ही कारण बनी हुई थी। नैपोलियन की इस उद्घोषणा का परिणाम यह हुआ, कि इस प्राचीन साम्राज्य का अन्त हो गया। आस्ट्रिया का राजा, जो हगरी, बोहेमिया, क्रोटिया, गेलिसिया आदि अन्य भी बहुत से प्रदेशो का राजा था और साथ मे पवित्र रोमन सम्राट् के गौरवशाली पद को भी प्राप्त किये हुए था, अब इस पद से विरहित हो गया। ६ अगस्त, १८०६ के दिन उसने स्वय इस पद का परित्याग कर दिया। १८ सदियो से जो सम्मानित पद चला आ रहा था, उसका इस ढग से,

अन्त हुआ। आस्ट्रिया का राजा अव पवित्र रोमन सम्राट् नही रह गया।

प्रशिया से युद्ध—र्‌हाइन के राज्यसघ के निर्माण से जर्मनी में नैपोलियन का प्रभाव बहुत अधिक बढ गया था। यह वात प्रशिया कभी सहन नही कर सकता था। प्रशिया के राजाओ की वहुत समय से यह महत्त्वाकाक्षा रही थी, कि जर्मनी में अपने प्रभुत्व और प्रभाव को कायम रखा जाय। इसमें नैपोलियन द्वारा सगठित र्‌हाइन का राज्यसघ सबसे वडी बाधा थी। आखिर, फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने निर्णय किया कि फ्रास के खिलाफ गुट मे शामिल होने में ही प्रशिया का भला है। इस कारण प्रशिया ने भी फ्रास के विरुद्ध युद्ध उद्घोपित कर दिया। आस्ट्रिया आस्टरलिट्ज के युद्ध मे परास्त होकर फ्रास मे सन्धि कर चुका था। उसका स्थान अव प्रशिया ने ले लिया।

जेना का युद्ध—परन्तु प्रशिया को परास्त करने मे नैपोलियन को देर नही लगी। १४ अक्तूवर, १८०६ को जेना के रणक्षेत्र मे प्रशिया की वुरी तरह पराजय हुई। दस दिन वाद नैपोलियन ने प्रशिया की राजधानी बर्लिन मे प्रवेश किया। वहा जाकर उसने महान् फ्रेडरिक की तलवार को विजयोपहार के रूप में पेरिस भेजा। प्रशिया से वहुत वडे परिमाण मे हरजाना लिया गया। इतना ही नही, प्रशिया से कुछ प्रदेश लेकर वेस्टफेलिया के नये राज्य की सृष्टि की गई, और उसका राजा नैपोलियन के छोटे भाई जेरोम बोनापार्ट को वनाया गया।

रूस की पराजय और टिलसिट की सन्धि—प्रशिया को परास्त करने के वाद रूस पर आक्रमण किया गया। वात की वात मे रूस भी परास्त कर दिया गया। नैपोलियन की विश्वविजयिनी सेनाओ का मुकावला करना किसी के लिये भी सम्भव नही था। फ्रीडलैण्ड के रणक्षेत्र में १४ जून, १८०७ के दिन रूस और फ्रास मे भयकर युद्ध हुआ, जिसमें रूस की पराजय हुई। आखिर, रूस और फ्रास मे भी सन्धि हो गई, जो टिलसिट की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि के कारण फ्रास के विरुद्ध यूरोपियन राज्यो का गुट सर्वथा टूट गया। आस्ट्रिया पहले ही गुट से अलग हो चुका था। प्रशिया को जेना के युद्ध में वुरी तरह परास्त कर दिया गया था। अव रूस ने भी सन्धि कर ली। शेष बचा केवल इङ्गलैण्ड, जो निरन्तर दस वर्ष तक फ्रास से लडता रहा और जिसके ही अनवरत परिश्रम का परिणाम यह था, कि अन्त में नैपोलियन की पराजय हुई।

टिलसिट की सन्धि से फ्रास और रूस मे युद्ध ही वन्द नही हुआ, अपितु इससे नैपोलियन और जार अलेक्जेण्डर प्रथम ने आपस मे एक गुप्त समझौता भी किया। इस समझौते के अनुसार यूरोप के इन दो शक्तिशाली सम्राटो ने यह फैसला किया कि नैपोलियन को पश्चिमी यूरोप में अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करन की पूर्ण स्वतन्त्रता हो और जार को पूर्वी यूरोप में। जार अलेक्जेण्डर प्रथम ने नैपोलियन से वातचीत मे कहा—'यूरोप क्या है ? मै और तुम ही तो यूरोप है।' निस्सन्देह, इन दोनो सम्राटो की यही धारणा थी। इस गुप्त समझौते मे अलेक्जेण्डर ने इगलैण्ड के विरुद्ध फ्रास की सहायता करने का भी वचन दिया।

टिलसिट की सधि से महत्वपूर्ण परिवर्तन—रूस और प्रशिया के पराजय के अनन्तर यूरोप के राजनीतिक नकशे मे जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए, उनमे वेस्टफेलिया

और वारसा के राज्य सबमे प्रमुख है। वेस्टफेलिया का जिकर पहले किया जा चुका है। पोलैण्ड का प्रदेश पहले प्रधानतया प्रशिया और रूस के अधीन था। इस समय नैपोलियन ने पोलैण्ड के अधिकाश प्रदेश को लेकर अपनी सरक्षा मे वारसा के नये राज्य का निर्माण किया और उसका शासक सेक्सनी के राजा को नियत किया। सेक्सनी जर्मनी का एक राज्य था। उसके राजा के साथ नैपोलियन की बडी दोस्ती थी। वारसा, सेक्सनी और वेस्टफेलिया—ये तीनों राज्य र्‌हाइन के राज्यसघ मे सम्मिलित कर लिये गये और इनके सम्मिलित हो जाने से र्‌हाइन के राज्यसघ का महत्त्व बहुत अधिक बढ गया।

इगलिश प्रतिरोध—फ्रास के विरुद्ध यूरोपियन राज्यों का गुट इस समय पूर्णतया टूट चुका था। परन्तु इङ्गलैण्ड के साथ अब भी युद्ध जारी था। नैपोलियन को स्थलीय युद्धों मे असाधारण सफलता प्राप्त हुई थी। पर समुद्र मे इङ्गलैण्ड की शक्ति अजेय थी। इङ्गलैण्ड मे व्यावसायिक क्रान्ति के कारण जिस अपूर्व क्षमता तथा शक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा था, अन्य यूरोपियन राज्यों मे उसका सर्वथा अभाव था। इङ्गलैण्ड के कारखाने इस समय इतनी तेजी के साथ आर्थिक उत्पत्ति कर रहे थे, कि ससार का अन्य कोई भी देश इस क्षेत्र मे उसका मुकाबला नही कर सकता था। एक ऐतिहासिक ने लिखा है, कि नैपोलियन को वाटर्लू के रणक्षेत्र मे परास्त नही किया गया था, उसकी वास्तविक पराजय मान्चेस्टर के कपडे के कारखानों तथा बरमिंघम की लोहे की भट्ठियों मे हुई थी। इस कथन मे बहुत कुछ सचाई है। इङ्गलैण्ड अपने व्यापार और व्यवसाय के जोर पर ही नैपोलियन का इतनी व्यग्रता के साथ मुकाबला कर सका था। नैपोलियन भी इस बात को भलीभाति समझता था। वह जानता था, कि इङ्गलैण्ड पर किसी सेना द्वारा आक्रमण कर सकना तब तक असम्भव है, जब तक कि उसका जहाजी बेडा कायम है। इसलिये उसने इङ्गलैण्ड के व्यापार को तबाह करने का निश्चय किया। नैपोलियन को पूर्ण विश्वास था, कि जब इङ्गलैण्ड के व्यापार और व्यवसाय को धक्का लगेगा, तब यह "दुकानदारों की कौम" अपने आप सन्धि के लिये याचना करने को तैयार हो जावेगी। इस नीति को क्रिया मे परिणत करने के लिये नैपोलियन ने निश्चय किया, कि इङ्गलैण्ड का कोई भी माल यूरोप मे न आने पावे। नवम्बर, १८०६ मे बर्लिन मे एक उद्घोषणा प्रकाशित की गई, जिसमे कि इङ्गलैण्ड तथा उसके सम्पूर्ण उपनिवेशों के साथ सब प्रकार का व्यापारिक सम्बन्ध निषिद्ध कर दिया गया। यह उद्घोषित किया गया, कि कोई भी इङ्गलिश जहाज यूरोप के किसी भी बन्दरगाह पर न आने पावे। फ्रास तथा नैपोलियन के सरक्षित राज्यों मे यदि कोई अग्रेज पाया जावे, तो उसे कैद कर लिया जावे, और उसके माल को जब्त कर लिया जावे। इङ्गलैण्ड मे किसी आदमी को कोई पत्र तथा पैकेट तक न भेजा जा सके। यदि किसी पत्र पर अग्रेजी भाषा मे पता लिखा हो, तो उसे भी जब्त कर लिया जावे। नैपोलियन इन सब आज्ञाओं द्वारा इङ्गलैण्ड का यूरोप से पूर्ण बहिष्कार कर देना चाहता था। उस की इस नीति को 'इङ्गलिश प्रतिरोध' के नाम से कहा जाता है।

इस नीति को क्रिया मे परिणत करने के लिये नैपोलियन ने कोई भी उपाय उठा न रखा। यूरोप के बडे भाग पर उस का कब्जा था। प्रशिया, आस्ट्रिया और रूस उसके साथ सन्धि कर चुके थे। रूस के साथ सन्धि के परिणामस्वरूप उत्तरी आर्कटिक सागर

से इटली तक के समुद्र तट तक नैपोलियन का अधिकार था । यूरोप के देशो को वह अपनी इङ्गलिश प्रतिरोध की नीति का अनुसरण करने के लिये बाधित कर सकता था। यदि कोई देश उसकी उपेक्षा करने का साहस करे, तो उसे उपयुक्त सजा देने के लिये नैपोलियन के पास पर्याप्त शक्ति विद्यमान थी ।

व्यापारी युद्ध—इस नीति का इङ्गलैण्ड ने यह जवाब दिया, कि उसने भी फ्रेंच साम्राज्य के सम्पूर्ण बन्दरगाहो को 'प्रतिरुद्ध' उद्घोपित कर दिया। साथ ही इङ्गलैण्ड ने एक और बुद्धिमत्ता का कार्य किया। उसने उदासीन राज्यो को अपने साथ व्यापार करने के लिये प्रोत्साहित किया । परन्तु नैपोलियन के पास इसका इलाज मौजूद था। दिसम्बर, १८०७ मे उसने मिलान (उत्तरी इटली मे) से एक उद्घोपणा प्रकाशित की, जिसमे उद्घोपित किया गया, कि जो कोई देश इङ्गलैण्ड के साथ व्यापारिक सम्बन्ध रखेगा, उस के जहाजो को लूट लिया जायगा, तथा उसे हर तरह से नुकसान पहुंचाने की कोशिश की जायगी। ससार के आधुनिक इतिहास मे यह व्यापारिक युद्ध बहुत महत्त्व रखता है। वर्तमान युग के युद्ध मुख्यतया व्यापार और व्यवसाय की प्रतिस्पर्धा के कारण ही हुए है। इस ढग के युद्धो मे फ्रास और इङ्गलैण्ड का यह युद्ध बहुत महत्त्वपूर्ण है ।

'इङ्गलिश प्रतिरोध' की नीति का सख्ती से प्रयोग—यूरोप के जिस देश ने भी नैपोलियन की 'इङ्गलिश प्रतिरोध' की नीति का उल्लघन करना चाहा, उसे सख्त दण्ड दिया गया। स्वीडन ने बर्लिन की उद्घोपणा को मानने से इन्कार किया था। परिणाम यह हुआ, कि नैपोलियन ने रूस को फिनलैण्ड का प्रदेश स्वीडन से छीन लेने के लिये प्रेरित किया। जब इसने भी स्वीडन काबू मे नही आया, तो वहा के राजा को राजगद्दी छोड देने के लिये बाधित किया गया, और नैपोलियन ने अपने एक सेनापति बर्नेदो को स्वीडन का राजा नियत किया। हालैण्ड का राजा लुई बोनापार्ट—जो नैपोलियन का भाई था, सदा अपने भाई से विमुख रहता था। उसने भी 'इङ्गलिश प्रतिरोध' की नीति को अमल मे लाने मे आनाकानी की। नैपोलियन ने उसे भी राज्यच्युत कर दिया और हालैण्ड को फ्रास के साथ मिला लिया। रोम के पोप ने इस मामले मे उदासीन रहना चाहा, पर नैपोलियन यह कब सह सकता था। उसने पोप के राज्य को छीन लिया और उसे इटली के अन्तर्गत कर दिया। पोप अपना क्रोध एक ही तरह मे प्रगट कर सकता था। उसने नैपोलियन को धर्म-बहिष्कृत कर दिया। पर नैपोलियन की तलवार के सम्मुख पोप की क्या ताकत थी। नैपोलियन ने उसे कैद कर लिया। कई सालो तक पोप कैद मे पडा रहा। पोर्तुगाल के बन्दरगाह मे इङ्गलिश जहाज आते जाते थे। नैपोलियन ने हुक्म दिया, कि पोर्तुगाल इङ्गलैण्ड के खिलाफ युद्ध उद्घोपित कर दे, और जितने भी अग्रेज उस देश मे है, उन सब को कैद कर उनकी सम्पत्ति को जब्त कर ले। पोर्तुगाल ने इस आज्ञा को मानने से इन्कार किया। परिणाम यह हुआ, कि नैपोलियन ने सेनापति जूनो को पोर्तुगाल पर हमला करने का आदेश दिया। बडी ही सुगमता मे जूनो ने पोर्तुगाल को जीत लिया। राजकीय परिवार ने पोर्तुगाल मे भागकर ब्राजील मे आश्रय लिया। विजयी जूनो ने बडी धूमधाम से लिस्बन मे प्रवेश किया। नैपोलियन बडी सख्ती तथा व्यग्रता से 'इगलिश प्रतिरोध' की नीति को अमल मे ला रहा था। हजारो आदमियो को इसलिये सख्त सजाएँ

दी गई, क्योकि उन्होने धोखे से इङ्गलिश माल को मंगाने की कोशिश की थी।

स्पेन पर कब्जा—इस प्रकार नैपोलियन निरन्तर अधिकाधिक शक्तिशाली होता जाता था। सम्पूर्ण यूरोप में उसका आतक-सा छाया हुआ था। यूरोप के सब राजा उसकी उँगली के इशारे पर नाचते थे। पोर्तुगाल को अपने अधीन कर लेने के अनन्तर नैपोलियन को स्पेन के राज्य को भी हस्तगत करने का सुवर्णावसर प्राप्त हुआ। वहा के राज्य-परिवार में कुछ झगडे चल रहे थे। नैपोलियन ने इनका उपयोग कर वहा के राजा चार्ल्स चतुर्थ तथा युवराज फर्डिनैण्ड को इस बात के लिये मजबूर किया, कि वे दोनो स्पेन की राजगद्दी से अपने दावे का परित्याग कर दें। ६ जून, १८०८ को नैपोलियन ने अपने भाई जोसफ बोनापार्ट को स्पेन का राजा नियत किया। जोसफ पहले नेपल्स का राजा था। वहा का शासन करने के लिये सेनापति मूरे को नियत किया गया। मूरे नैपोलियन का बहनोई था। इस प्रकार स्पेन भी नैपोलियन के पूर्णतया अधीन हो गया। स्पेन पहले भी फ्रास का मित्र तथा आज्ञाकारी था, परन्तु अब तो वहा की राजगद्दी पर भी नैपोलियन का कब्जा हो गया।

स्पेनिश जनता ने नैपोलियन के इस कृत्य को सहन नही किया। वे विद्रोह करने के लिये कटिबद्ध हो गये। रोमन कैथोलिक पादरियो तथा भिक्षुओ ने यह कहकर लोगो को नैपोलियन के खिलाफ भडकाना शुरू किया, कि वह पोप तथा धर्म का दुश्मन है। युवराज फर्डिनेण्ड इस विद्रोह का नेता बना। फ्रेंच सेना परास्त कर दी गई, और जोसफ को मेड्रिड से बाहर निकाल दिया गया। पर शीघ्र ही नैपोलियन ने एक विशाल सेना के साथ स्वय स्पेन पर आक्रमण किया। इस सेना में दो लाख सैनिक थे। स्पेनिश सेना परास्त हो गई। ४ दिसम्बर, १८०८ को मेड्रिड पर फिर नैपोलियन का अधिकार हो गया। स्पेन के आन्तरिक सुधार के लिये नैपोलियन ने अनेक प्रयत्न किये। एक महीने के लगभग स्पेन मे रहकर वह फ्रास वापस चला आया, और अपने भाई जोसफ बोनापार्ट की सहायता के लिये एक अच्छी बडी सेना स्पेन में छोड दी गई।

आस्ट्रिया के साथ युद्ध और विएना की सधि—जिस समय नैपोलियन अपने दो लाख सैनिको के साथ स्पेनिश विद्रोह को शान्त करने मे व्यग्र था, आस्ट्रिया को अपने पुराने शत्रु फ्रास से लडाई शुरू करने का अच्छा मौका हाथ लग गया। नैपोलियन की बढती हुई शक्ति से आस्ट्रिया बहुत चिन्तित था। रूस से लेकर इटली तक उसका प्रभाव स्थापित हो चुका था। यूरोप का 'शक्ति समुत्तुलन' इस समय नष्ट हो गया था और फ्रास की शक्ति इतनी अधिक बढ गई थी, कि कोई भी यूरोपियन राज्य व गुट उसका मुकाबला नही कर सकता था। ऐसी दशा मे स्पेनिश लोगो का विद्रोह आस्ट्रिया के लिये एक सुवर्णीय अवसर था। एप्रिल, १८०९ में आस्ट्रिया ने फ्रास के खिलाफ युद्ध उद्घोषित कर दिया। परन्तु इस बार फिर नैपोलियन विजयी हुआ। उसने एकदम विएना पर हमला किया। ५ जुलाई, १८०९ को विएना के समीप वाग्रम नामक स्थान पर आस्ट्रियन सेना बुरी तरह परास्त हुई। आस्ट्रिया को सन्धि की याचना के लिये बाधित होना पडा। अक्तूबर, १८०९ मे सन्धि हो गई, जो कि विएना की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया को अपने राज्य का छठा हिस्सा, जिसके निवासियो की सख्या ४० लाख थी,

नैपोलियन को अर्पित कर देना पडा। यह भी व्यवस्था की गई, कि आस्ट्रिया की सेना डेढ लाख से अधिक न वढने पावे।

नैपोलियन का विवाह—आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री मेटरनिख को अव विश्वास हो गया था, कि नैपोलियन अजेय है, उसे परास्त नही किया जा सकता। अत उसने इसी वात मे अपने देश का कल्याण समझा, कि नैपोलियन के साथ स्थिर रूप से सन्धि कर ली जाय। उसने भरपूर कोशिश की, कि नैपोलियन का विवाह आस्ट्रिया की राजकुमारी मेरिया लुईसा से हो जाय। नैपोलियन की पहली स्त्री जोसेफाइन की कोई सन्तान नही थी। नैपोलियन सन्तान के लिये उत्सुक था। साथ ही, वह यह भी चाहता था, कि यूरोप के सवमे प्राचीन राजवश से उसका सम्वन्ध स्थापित हो जाय। हाप्सवुर्ग वश की राजकुमारी को प्राप्त कर लेना कोर्सिका के गरीव वकील के लडके के लिये कितने गौरव तथा अभिमान की वात थी। नैपोलियन इस विवाह मे अपनी एक अत्यन्त ऊँची महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति का अनुभव करता था। अव वह असल मे 'सम्राट्'वन जायगा। कुल की दृष्टि से भी उसे कौन हीन समझ सकेगा ? जोसेफाइन को तलाक दे दिया गया। मेरिया लुइसा के साथ नैपोलियन का विवाह हो गया। १८११ मे इस दम्पति के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। नैपोलियन ने इसे 'रोम का वादशाह' की उपाधि से विभूपित किया।

अव नैपोलियन की शक्ति अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई थी। प्राय सम्पूर्ण पश्चिमी और मध्य यूरोप उसके अधीन हो चुका था। सारी दुनिया मे नैपोलियन की तूती वोल रही थी। रूस उसका दोस्त था। प्रशिया की क्या ताकत थी, जो उसे किसी भी प्रकार का नुकसान पहुँचा सके। आस्ट्रिया वार-वार पराजित होकर सीधे रास्ते पर आ गया था। स्पेन, पोर्तुगाल, इटली, हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, स्वीडन—सव नैपोलियन के अधीन थे। पर इस समय भी एक देश नैपोलियन के शक्ति के खिलाफ अकेला युद्ध कर रहा था—वह देश था इङ्गलैण्ड। किस प्रकार इङ्गलैण्ड कोर्सिका के इस गरीव हिम्मती सिपाही को, जिसने इतिहास में एक चमत्कार कर दिखाया था, परास्त करने मे समर्थ हुआ, इस पर आगे प्रकाश डाला जायगा।

२ नैपोलियन का पतन

साम्राज्य की कमजोरिया—नैपोलियन का साम्राज्य अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। परन्तु यह विशाल साम्राज्य किसी सुदृढ आधार पर आश्रित न था। इसमें अनेक कमजोरिया थी। इन्ही का यह परिणाम हुआ, कि यह साम्राज्य देर तक कायम नहीं रह सका। ये कमजोरिया निम्नलिखित थी —

(१) यह साम्राज्य एक आदमी की प्रतिभा द्वारा वना था। यह एक व्यक्ति की कृति थी। अत इसकी सत्ता और स्थिति उस एक आदमी के जीवन तथा शक्ति पर ही निर्भर थी।

(२) शासित जनता की सहमति और सहानुभूति इस साम्राज्य के साथ नही थी। लोग इसे नही चाहते थे। यह जनता की इच्छा पर कायम न होकर सैनिकशक्ति तथा पाशविक वल पर आश्रित था। सैनिकशक्ति पर आश्रित साम्राज्य देर तक कायम नही रह

सकते। जब कोई अन्य सेना तथा शक्ति बलवती हो जाती है, तो ऐसे साम्राज्य नष्ट हुए बिना नही रहते। नैपोलियन के साम्राज्य मे लोकमत तथा लोकतन्त्र शासन को कोई स्थान नही था, वह एक व्यक्ति की इच्छा पर आश्रित था। यह बात समय की प्रवृत्ति के प्रतिकूल थी।

(३) राष्ट्रीयता की भावना इस समय यूरोप मे प्रादुर्भूत होनी प्रारम्भ हो चुकी थी। यह भावना किस प्रकार आरम्भ हुई, इस पर हम फिर विचार करेंगे। परन्तु यह स्पष्ट है, कि नैपोलियन का साम्राज्य राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर आश्रित नही था, अत यह नवीन भावना उसे नष्ट करने के लिये पूर्ण प्रयत्न कर रही थी। १८०८ के बाद स्पेन, इटली, जर्मनी तथा अन्य यूरोपियन देशो की जनता यह भलीभाति अनुभव करने लग गई थी कि हम लोग स्पेनिश है, इटालियन है, व जर्मन है। हमे किसी अन्य देश के अधीन नही रहना चाहिये। हमारा अपना पृथक् व स्वतन्त्र राज्य होना चाहिये। ससार के इतिहास में यह एक नई भावना थी। इससे पूर्व लोग ऐसा नही समझते थे। इस भावना के कारण विविध राष्ट्रो मे जो अद्भुत शक्ति उत्पन्न हुई थी, उसका मुकाबला करना नैपोलियन की अपूर्व प्रतिभा तथा फ्रास की विश्वविजयिनी सेना के लिये भी सर्वथा असम्भव था। नैपोलियन के पतन मे यह प्रधान कारण है।

(४) 'इगलिश प्रतिरोध' की नीति से यूरोप के व्यापार को भारी नुकसान पहुँच रहा था। व्यापारियो तथा सम्पत्तिशाली लोगो में इससे भारी असन्तोष था। व्यापार के अस्तव्यस्त हो जाने से सर्वसाधारण लोग भी बहुत तकलीफ उठा रहे थे।

(५) नैपोलियन की धार्मिक नीति जनता को बिलकुल भी पसन्द न थी। पादरी तथा भिक्षु लोग उसको बदनाम करने की पूरी कोशिश कर रहे थे। उसने पोप को कैद में डाल रखा था। चर्च को राज्य की कठपुतली बना दिया था। धर्म को अपनी राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओ को पूर्ण करने का साधन समझ रखा था। पादरी लोग इन सब बातो को कैसे सह सकते थे। वे उसे नास्तिक, काफिर तथा ईश्वर का दुश्मन कहते थे। सर्वसाधारण जनता इस धर्मद्वेषी नैपोलियन के विरुद्ध हो गई थी।

(६) क्रान्ति की जिस भावना से फ्रास मे अनुपम उत्साह तथा शक्ति उत्पन्न हुई थी, वह नैपोलियन के सम्राट् बन जानेसे अब मन्द पड गई थी। राज्यक्रान्ति ने लोगो मे जिन नई उमङ्गो तथा भावनाओ का सचार किया था, वे अब खतम हो गई थी। नैपोलियन को तो इन्ही भावनाओ, उमङ्गो तथा शक्ति ने इस आश्चर्यजनक स्थिति तक पहुँचा दिया था। पर उसके एकतन्त्र स्वेच्छाचारी सम्राट् बन जाने से इन सबका ही विनाश हो गया था। नैपोलियन ने स्वय अपने पैरो पर कुल्हाडी मार ली थी। नैपोलियन कोई अलौकिक आदमी तो था ही नही। इतिहास मे कोई भी व्यक्ति अलौकिक तथा दैवी नही होता। वह तो फ्रास की विशेष परिस्थितियो की उपज था। जब वे परिस्थितिया ही नष्ट हो गई, तो उसके नष्ट होने मे क्या देर हो सकती थी ?

इङ्गलैण्ड का स्पेन में आक्रमण—ये बाते थी, जो नैपोलियन के पतन में कारण हुई। इङ्गलैण्ड उसके साथ निरन्तर सघर्ष मे लगा था। 'इगलिश प्रतिरोध' की नीति से जरा भी न घबराकर इङ्गलैण्ड जी-जान से फ्रास का मुकाबला करने में कटिबद्ध था। अगस्त,

१८०८ मे इङ्गलिश सेनापति सर आर्थर वेलेज्ली (जो वेलिंगटन के ड्यूक के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है) ने एक अंग्रेजी सेना के साथ पोर्तुगाल मे प्रवेश किया। फ्रेंच सेनापति जूनो के साथ उसके युद्ध हुए। जूनो परास्त हो गया और पोर्तुगाल छोडकर वापस चले आने के लिये बाधित हुआ। इसके बाद, जिस समय नैपोलियन आस्ट्रिया के साथ युद्ध मे व्यग्र था, अवसर देखकर वेलेज्ली ने स्पेन पर आक्रमण कर दिया। जोसफ बोनापार्ट वेलेज्ली का मुकाबला नही कर सका। परन्तु फ्रेंच सेना को स्पेन से निकाल सकना आसान कार्य नही था। इसके लिये निरन्तर युद्धो की आवश्यकता थी। अत वेलेज्ली ने यह उचित समझा, कि पोर्तुगाल वापस आकर अपनी किलाबन्दी को खूब मजबूत कर लिया जाय। इसके बाद फ्रेंच सेना के साथ उसके निरन्तर युद्ध होते रहे। स्पेन की जनता और इङ्गलिश सेना एक तरफ थी, और नैपोलियन की सधी हुई फ्रेंच सेना दूसरी तरफ। यह युद्ध बहुत देर तक जारी रहा। नैपोलियन की तीन लाख सेना तथा बहुत से योग्यतम सेनापति इन युद्धो मे फसे रहे। इन युद्धो का मुख्य परिणाम यह हुआ, कि नैपोलियन स्पेन की तरफ से कभी निश्चिन्त नही हो सका। अन्य देशो के साथ युद्ध करते हुए वह कभी भी अपनी सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग नही कर सका। स्पेन मे उसे हमेशा एक भारी सेना रखने की आवश्यकता बनी रहती थी। पिछले युद्धो मे नैपोलियन की असफलता का एक मुख्य कारण यह भी था।

रूस के साथ युद्ध—यूरोप मे देर तक शान्ति कायम नही रह सकी। सम्पूर्ण यूरोप में केवल रूस ही एक ऐसा राज्य था, जो नैपोलियन के कब्जे से बाहर रहने की हिम्मत कर सकता था। रूस इङ्गलिश प्रतिरोध की नीति से सन्तुष्ट नही था। जार अलेक्जेण्डर प्रथम इस बात के लिये तैयार था, कि इङ्गलिश जहाजो को अपने बन्दरगाहो पर न आने दे, पर उसे यह उचित नही प्रतीत होता था, कि मिलान की उद्घोषणा के अनुसार इङ्गलैण्ड से व्यापार करनेवाले अमेरिका आदि उदासीन राज्यो के जहाजो का भी बहिष्कार किया जावे। इसके अतिरिक्त, रूस इङ्गलिश व्यापार का पूर्णरूप से बहिष्कार करके अपना काम नही चला सकता था। टिलसिट के समझौते के अनुसार रूस को पूर्वी यूरोप मे स्वेच्छाचार करने का अधिकार दिया गया था। परन्तु नैपोलियन बाल्कन प्रायद्वीप तथा टर्की के सम्बन्ध मे रूस की नीति में हस्तक्षेप किये बिना नही रह सकता था। दूसरी तरफ, नैपोलियन भी रूस के गर्व को चूर्ण करने के लिये उत्सुक था। वह सोचता था, एक रूस को हरा दिया जावे, तो सारा यूरोप अपना है। यूरोप भर मे एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित करने में केवल एक ही तो बाधा है, और वह है रूस। यदि उसे परास्त कर उस पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया जावे, तो मैदान साफ है! ये कारण थे, जिन्होने टिलसिट की सन्धि को समाप्त कर दिया। नैपोलियन ने रूस पर आक्रमण करने के लिये तैयारी प्रारम्भ कर दी। १८१२ मे उसने अनुमान किया, कि तैयारी पूर्ण हो गई है। उसके अनेक सलाहकारो ने उसे सावधान भी किया, कि रूस पर आक्रमण करने मे बहुत खतरे है। पर नैपोलियन ने किसी की बात पर ध्यान नही दिया। छ लाख सैनिको की एक विशाल सेना एकत्रित की गई। एक हजार तोपे साथ ली गई। नैपोलियन के सम्पूर्ण साम्राज्य से इस आक्रमण के लिये सैनिक एकत्रित किये गये थे।

रूसी आक्रमण—रूस के इस महान् तथा साहसपूर्ण आक्रमण का इतिहास बहुत ही भयकर तथा करुणामय है। नैपोलियन का विचार था, कि तीन साल मे सम्पूर्ण रूस को जीत कर अपने अधीन कर लिया जावेगा। नैपोलियन निरन्तर आगे बढता गया, रूसी लोग पीछे हटते गये। रूसी लोगो ने युद्ध किया ही नही। वे चाहते थे, कि नैपोलियन उनके देश मे बहुत अधिक आगे तक बढ जावे। आखिर, ७ सितम्बर, १८१२ को बोरोडिना नामक स्थान पर रूसी सेना ने नैपोलियन का मुकाबला किया। रूसी लोग हार गये। पर रूस की भयकर मौसम, प्रतिकूल परिस्थिति तथा युद्ध का यह परिणाम हुआ, कि जब विजयी नैपोलियन ने मास्को मे प्रवेश किया, तब उसके साथ केवल एक लाख सैनिक रह गये थे। नैपोलियन की सेना को अपने भरण-पोषण के लिये अनाज तथा आश्रय न मिल सके, इसलिये रूसी लोगो ने मास्को को पहले ही अग्निदेव के अर्पण कर दिया था। रूसी लोगो का यही तरीका था। वे ज्यो-ज्यो पीछे हटते जाते थे, त्यो-त्यो अपने देश को उजाडते जाते थे, ताकि नैपोलियन को किसी भी किस्म की मदद न पहुँच सके। नैपोलियन ने मास्को पर कब्जा तो कर लिया, पर उसे स्थिर रूप से अपने अधीन रख सकना सम्भव नही था। सर्दी की मौसम आ गई थी। रूस की सर्दी अत्यन्त भयकर होती है, सब ओर बरफ ही बरफ छा जाती है। एक ऐसे सुदूरवर्ती प्रदेश मे जहा मनुष्य और प्रकृति दोनो ही दुश्मन हो, रह सकना नैपोलियन के लिये सम्भव न रहा। उसने वापस लौटने का निश्चय किया। वापस लौटते हुए फ्रेंच सेना ने बडे बीभत्स कष्ट सहे। भयकर सर्दी, भोजन का अभाव और रूसी लोगो के आक्रमणो ने इस सेना की बुरी हालत कर दी। सैनिक इतिहास मे नैपोलियन की यह वापसी बहुत ही दु खपूर्ण घटना है। जब वह वापस फ्रास पहुँचा, तो उसके साथ केवल बीस हजार सैनिक ही रह गये थे।

नये गुट का निर्माण—इस भयकर दुरवस्था से भी नैपोलियन निराश नही हुआ। उसने फिर सेना एकत्रित की। बाधित रूप से सैनिक सेवा की व्यवस्था कर एक बार फिर छ लाख सैनिक एकत्रित करने मे वह समर्थ हुआ। पर इसी समय नैपोलियन के विरुद्ध यूरोपियन राज्यो का एक अन्य गुट सगठित हुआ। इस नये गुट मे ग्रेट ब्रिटेन, रूस, प्रशिया और स्वीडन सम्मिलित हुए। यद्यपि यह गुट राजाओ ने सगठित किया था, पर जनता की सहानुभूति भी इसके साथ थी। इस समय न केवल राजा, पर जनता भी राजकीय मामलो मे दिलचस्पी लेने लग गई थी। राष्ट्रीयता की भावना विकसित होती जा रही थी, और इस नवीन भावना के कारण जनता की शक्ति नैपोलियन का मुकाबला करने के लिये सन्नद्ध हो गई थी। इस नवीन गुट ने अपना उद्देश्य यह घोषित किया, कि हम एक अत्याचारी के पजे से जनता को—अधीन राष्ट्रो को स्वतन्त्र कराने का उद्योग करेगे। अलेक्जेण्डर प्रथम या फ्रेडरिक विलियम तृतीय चाहे इस उद्देश्य को केवल जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये कह रहे हो, पर इसमे सन्देह नही, कि यह बहुत हद तक ध्रुव सत्य था। वस्तुत ही नैपोलियन का साम्राज्य राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के सिद्धान्तो की जड पर कुठाराघात था। इस नये गुट ने इस अस्वाभाविक साम्राज्य का अन्त कर सचमुच ही जनता के हित का सम्पादन किया।

सब राष्ट्रो का युद्ध—लाइप्जिग के रणक्षेत्र मे प्रशियन और रूसी सेनाओ ने मिलकर

नैपोलियन का मुकावला किया। कुछ समय पूर्व आस्ट्रिया भी फ्रास के विरुद्ध इस नये गुट मे सम्मिलित हो गया था, और उसकी सेनाएँ भी लाइप्जिग मे मौजूद थी। १६—१९ अक्टूवर, १८१३ को वह भयकर युद्ध लडा गया, जो कि इतिहास मे 'सव राष्ट्रो का युद्ध' के नाम से मशहूर है। इसमे नैपोलियन की पराजय हुई। इस युद्ध मे एक लाख वीस हजार से अधिक सैनिक या तो मारे गये या वुरी तरह से घायल हुए। पराजित होकर नैपोलियन अपनी अवशिष्ट सेना के साथ र्‌हाइन पार कर फ्रास वापस चला आया। उसके वापस आते ही र्‌हाइन का राज्य-सघ नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

साम्राज्य का अन्त—जर्मनी मे पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त कर नैपोलियन ने जिस सघ का निर्माण किया था, वह सैनिक शक्ति पर ही आश्रित था। इस सैनिक शक्ति के निर्वल होते ही यह सघ छिन्न-भिन्न हो गया। यही नही, हालैण्ड और वेस्टफेलिया से भी अव फ्रेच शासन का अन्त हो गया। जेरोम वोनापार्ट वेस्टफेलिया का परित्याग कर वापस भाग आया, और डच लोगो ने फ्रेच अफसरो को हालैण्ड से निकाल वाहर किया। उधर सर आर्थर वेलेज्ली (वेलिंगटन का ड्यक) स्पेन मे फ्रेच सेनाओ से निरन्तर युद्ध कर रहा था। १८१३ के अन्त तक उसने फ्रेच लोगो को स्पेन से भी वाहर निकाल दिया।

नैपोलियन का राज्यच्युत होना—यूरोपियन राज्यो के गुट की यह इच्छा नही थी, कि नैपोलियन को सर्वथा नष्ट कर दिया जावे। वे उसे फ्रास की राजगद्दी पर विराजमान रखने के लिये उद्यत थे। फ्रास का अभिप्राय वे उत्तर मे र्‌हाइन नदी, उत्तर-पश्चिम मे आल्प्स की पर्वतमाला और दक्षिण मे पिरेनीज पर्वत माला तक के प्रदेश से लेते थे। लुई १४वे की महत्त्वाकाक्षा इसी सीमा को प्राप्त करने की थी। नैपोलियन को इस विशाल फ्रास का राज्य प्रस्तुत किया गया। परन्तु वह इतने से सन्तुष्ट नही रह सकता था। उसने फ्रास की सीमा को नियमित करने से सर्वथा इन्कार कर दिया। उसे अपनी तलवार का भरोसा था। वह किसी भी किस्म के समझौते के लिये तैयार नही था। आखिर, १८१४ के प्रारम्भ में रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया की चार लाख सेना ने उत्तरी फ्रास पर आक्रमण किया। उधर वेलिंगटन का ड्यूक दक्षिण की तरफ से फ्रास पर आक्रमण कर रहा था। उसके साथ इङ्गलिश सेनाओ के अतिरिक्त स्पेन और पोर्तुगाल की भी सेनाएँ थी। नैपोलियन के सम्मुख विकट समस्या उपस्थित हो गई। ३१ मार्च, १८१४ के दिन पेरिस पर कब्जा कर लिया गया। इस दशा में नैपोलियन को राज्य छोडने के लिये वाधित होना पडा। नैपोलियन ने भरपूर कोशिश की, कि वह मुकावला करे। पर अव क्या हो सकता था? आखिर, उसे स्वीकार करना पडा कि उसका तथा उसके परिवार का फ्रेच राजगद्दी पर कोई अधिकार नही है। उसकी शान रखने के लिये उसकी 'सम्राट्' की पदवी कायम रखी गई, और उसे वारह लाख रुपया वार्षिक पेंशन दे दी गई। साथ ही, एल्वा के छोटे से द्वीप मे उसका अवाधित अधिकार स्वीकृत कर लिया गया।

वूर्वो राजवश का पुनरुद्धार—विजेता राष्ट्रो के सम्मुख अव यह प्रश्न आया, कि फ्रास की राजगद्दी के विषय मे क्या निर्णय किया जाय। इस समस्या का हल करने मे देर नही लगी। फिर से वूर्वो राजवश का पुनरुद्धार कर दिया गया। लुई १६वे के भाई को १८वें लुई के नाम से राजगद्दी पर विठाया गया। नैपोलियन के साम्राज्य का किस प्रकार

निबटारा किया जाय, इस बात पर विचार करने के लिए विएना मे एक कांग्रेस बुलाई गई। इस कांग्रेस के सम्बन्ध मे हम आगे चलकर विचार करेंगे।

नैपोलियन का वापस लौटना—इस बीच मे नैपोलियन चुपचाप नही बैठा था। एल्बा के अपने 'साम्राज्य' मे कैदी की तरह रहता हुआ यह महान् 'सम्राट्' फ्रास के आन्तरिक परिवर्तनो तथा विएना की कांग्रेस को बडे ध्यान मे देख रहा था। फ्रास की जनता १८वे लुई के शासन से सतुष्ट नही थी। उसके विरुद्ध असन्तोष निरन्तर बढता जा रहा था। उधर विएना म एकत्रित राजा नैपोलियन के साम्राज्य के बटवारे के सम्बन्ध मे आपस में खूब लड-झगड रहे थे। नैपोलियन ने देखा, अब समय आ गया है। अकस्मात् वह एल्बा से भाग निकला, और १ मार्च,१८१५ के दिन फ्रास जा पहुचा। सेना अब भी उसकी भक्त थी। उसने उसका साथ दिया। खून का एक भी कतरा गिराये बिना नैपोलियन एक बार फिर फ्रास का सम्राट् बन गया। नैपोलियन मे एक अद्भुत व चामत्कारिक व्यक्तित्व था। वह लोगों को अपने पीछे लगाना जानता था। लोग वीरता तथा अद्भुत कार्यो के पीछे चलते हैं। नैपोलियन सचमुच वीर था। वह आख मीचकर छलाग मार सकता था। उसके व्यक्तित्व मे एक प्रकार का जादू था। उसने लोगो से कहा—मैं तुम्हारी कुलीनो, जमीदारो और विषमताओ से रक्षा करने के लिये आया हूँ। जो सब मे बडा साम्राज्यवादी और स्वेच्छाचारी था, वह अपने को फिर सम्राट् बनाने के लिये अब लोक-तन्त्रवाद तथा क्रान्तिकारी सिद्धान्तो की दुहाई दे रहा था। नैपोलियन की यह विशेषता थी, कि मौके के अनुसार वह अपने को बदलना जानता था। दुनिया मे ऐसे लोग आसानी से सफल हो जाते हैं।

वाटर्लू का युद्ध—१८वा लुई नैपोलियन के प्रगट होते ही फ्रास छोडकर भाग गया। सम्पूर्ण यूरोप में सनसनी सी फैल गई। विएना की कांग्रेस के सम्मुख एक भयानक समस्या उपस्थित हो गई। सारा यूरोप युद्ध की दुन्दुभी से प्रतिध्वनित हो उठा। फिर से सेनाएँ सगठित की जाने लगी। वेलिंगटन का ड्यूक एक लाख सैनिको के साथ प्रशिया की एक लाख बीस हजार सेना से मिलने के लिये ब्रुसल्स की तरफ चल पडा। उसका खयाल था, कि इङ्गलिश और प्रशियन सेनाएँ मिलकर नैपोलियन को परास्त कर सकेंगी। आस्ट्रिया की सेनाएँ भी र्‌हाइन नदी की तरफ चल पडी। इस परिस्थिति मे नैपोलियन के लिये आवश्यक था, कि वह भी तैयारी करे। जल्दी-जल्दी मे उसने दो लाख सैनिक एकत्रित किये, और उनको लेकर वह उत्तर की तरफ चल पडा। उसका विचार था कि इङ्गलिश, प्रशियन और आस्ट्रियन सेनाएँ परस्पर न मिलने पावे, एक-एक करके तीनो को परास्त कर दिया जावे। १८ जून, १८१५ के दिन वाटर्लू के रणक्षेत्र मे उसने अपने जीवन की अन्तिम लडाई लडी। सम्भवत, वह वेलिंगटन के ड्यूक की इङ्गलिश सेना को परास्त भी कर देता, पर सेनापति ब्लूचर की प्रशियन सेना ठीक मौके पर आ गई। नैपोलियन की सेना के पैर उखड गये। वह परास्त हो गया। वाटर्लू का युद्ध ससार के इतिहास मे अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसने इस बात का अन्तिम रूप से फैसला कर दिया, कि राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद के सिद्धान्त मे से किसकी विजय होनी है, एक सैनिक ससार का शासन करने में सफल हो सकता है या नही।

सेन्ट हेलेना में कैद—वाटर्ल् मे परास्त होकर नैपोलियन पेरिस वापस आया। परन्तु वहा लफायत के नेतृत्व मे पार्लियामेंट ने शासनसूत्र को अपने हाथ मे सम्हाल लिया था। उसे राजगद्दी प्राप्त करने की कोई भी सम्भावना न रही। उसने निश्चय किया, कि अपने लडके के लिये राजसिहासन का परित्याग कर स्वय फ्रास से चला जाय। सम्भवत उसका खयाल अमेरिका जाने का था। परन्तु ब्रिटिश जहाजी वेडा फ्रास के समुद्र तट पर वडे ध्यान से पहरा दे रहा था। वह नैपोलियन को कैद करना चाहता था। आखिर, नैपोलियन ब्रिटिश लोगो के हाथ पड ही गया। नैपोलियन चाहता था, कि उसके साथ एक परास्त राजनीतिज्ञ और पदच्युत सम्राट् का सा व्यवहार किया जाय। पर ब्रिटिश लोग इस वात के लिये उद्यत न थे। वे उसे भयकर आदमी समझते थे। एलवा के द्वीप से वह जिस तरह भाग आया था, उसे दृष्टि मे रखते हुए यह सुरक्षित नही था, कि उस पर कडी निगाह न रखी जाय। ब्रिटिश लोग उसे दुनिया के लिये एक भयकर उत्पात समझते थे। उसे ससार की दृष्टि से परे रखने मे ही कल्याण था। इसलिये निश्चय किया गया, कि उसे दक्षिणी अटलाटिक सागर के एक छोटे से द्वीप सेट हेलेना मे ले जाकर कैद कर दिया जावे।

सेण्ट हेलेना मे नैपोलियन छ वर्ष के लगभग रहा। उस पर कडा पहरा रखा जाता था। उसने अपना समय मुख्यतया इतिहास तथा अपने जीवन के सस्मरण लिखने मे व्यतीत किया। नैपोलियन के लिखे ये इतिहास और सस्मरण आत्म-प्रशसा और कल्पित विचारो से भरे हुए है। उसने अपने को क्रान्ति का पक्षपाती तथा क्रान्ति के विचारो का प्रसारक लिखा है। वह लिखता है, कि मै शान्ति का पक्षपाती था। मै पददलित राष्ट्रो को स्वतन्त्र कराना चाहता था। परन्तु यूरोपियन राज्यो और विशेषतया इङ्गलैण्ड ने मेरे प्रयत्न को सफल नही होने दिया। उसने लिखा है, कि मै सम्पूर्ण यूरोपियन राज्यो को अमेरिकन काग्रेस की तरह एक सगठन में सगठित करना चाहता था और मुझे विश्वास है, कि एक दिन मेरा यह विचार अवश्य ही क्रिया मे परिणत होकर रहेगा।

अन्त—५ मई, १८२१ के दिन यह महान् विजेता अपने गौरवमय कृत्यो की रगभूमि से वहुत दूर एक छोटे से द्वीप में अपनी जीवन-लीला को समाप्त कर गया। उसका मृतक सस्कार वही हुआ। २० वर्ष वाद, १८४० में उसके मृत शरीर के अवशेषो को वडे सम्मान के साथ पेरिस ले आया गया, और वहा पर एक वडी शानदार समाधि मे उसके भौतिक अवशेषो को स्थापित कर दिया गया।

३ नैपोलियन का इतिहास मे स्थान

ससार के इतिहास में वडे-वडे विजेताओ और आक्रान्ताओ को वहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। इतिहास की साधारण पुस्तको मे अलेक्जेण्डर, सीजर, महमूद गजनवी, पाच, हैनीवाल और नैपोलियन को जितना अधिक स्थान दिया गया है, उतना वडे-वडे धर्म प्रवर्त्तको, वैज्ञानिको तथा विचारको को नही दिया गया। इतिहास मे इन्हे 'महान्' की उपाधि दी गई है, और सामान्य पाठक इन्हे महापुरुष समझते भी है। नैपोलियन को भी इतिहास में वडा गौरवपूर्ण स्थान मिला है।

परन्तु ससार के इतिहास मे नैपोलियन का वास्तविक स्थान क्या है ? इस विषय पर लिखते हुए इतिहासकार को बडी कठिनता का सामना करना पडता है। आप यदि नैपोलियन-सम्बन्धी साहित्य को पढे, तो दो प्रकार के लेखक मिलेगे । एक वे जिन्होने नैपोलियन को बहुत ऊचा चढा दिया है, दूसरे वे जो उसे अत्यन्त हीन समझते है। उसके जीवन-काल मे लोग नैपोलियन को एक आश्चर्यजनक विजेता समझते थे, और उसकी अद्भुत वीर गाथाओ से सम्पूर्ण यूरोप चमत्कृत हो गया था। फ्रास के लिये वह अनुपम विजेता था। उसकी तलवार ने फ्रास की शक्ति को रूस की बर्फ मे आच्छादित घाटियो और आल्प्स की दुर्गम पर्वतमाला से भी परे बहुत दूर तक विस्तृत कर दिया था। फ्रेच लोग क्यो न उसको पूजते ? उसी का काम था, कि ईजिप्ट और सीरिया की रहस्यमय अद्भुत वस्तुओ से पेरिस का अद्भुतालय परिपूर्ण हो गया था। इटली, हालैण्ड और स्पेन से करोडो रुपये फ्रास को भेजे गये थे। उसकी मृत्यु के बाद जब फ्रास की दुरवस्था शुरू हुई, फ्रास का विशाल साम्राज्य बालू की भीत की तरह नष्ट हो गया, तब वहा के लोग उसका स्मरण कर आश्चर्य से चकित रह जाते थे। उनकी दृष्टि मे एक जादूगर आया था, जो फ्रास को इतने ऊँचे स्थान पर ले गया था। फ्रेंच लोगो की दृष्टि मे नैपोलियन ने वह गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया, जो सम्भवत अन्य किसी व्यक्ति को नही मिला। फ्रेच इतिहास, साहित्य और काव्य मे नैपोलियन सबसे अधिक उज्ज्वल, शानदार और पूजनीय व्यक्ति बन गया।

पर फ्रास के शत्रुओ की दृष्टि मे ? नैपोलियन एक भयकर व्यक्ति था, जो ससार की शान्ति और व्यवस्था को नष्ट करने के लिये उत्पन्न हुआ था। उन्होने उसे बदनाम करने के लिये जो कुछ भी बन सका, किया। उसके पतन के बाद भी उनके विरुद्ध भावना प्रचण्ड रही। इङ्गलिश ऐतिहासिको ने नैपोलियन को कभी भी सहानुभूति की दृष्टि से नही देखा।

पर आज नैपोलियन को अपनी जीवन-लीला समाप्त किये सवा सदी से अधिक समय व्यतीत हो चुका है। अब उसके सम्बन्ध मे ठीक विचार बना सकना असम्भव नही रहा है। वस्तुत नैपोलियन क्रान्ति की उपज था। फ्रेच राज्यक्रान्ति ने जो असाधारण और अद्भुत शक्ति उत्पन्न की थी, वही नैपोलियन की शानदार विजयो मे मुख्य कारण थी। यह नही समझना चाहिये, कि नैपोलियन कोई अलौकिक पुरुष था। इतिहास मे कोई भी व्यक्ति अलौकिक नही होता। सब अपनी परिस्थितियो की कृति होते है। क्रान्ति ने एक अद्भुत शक्ति, एक अद्भत लहर उत्पन्न की थी, जो यूरोप के अधिकाश देशो को व्याप्त कर रही थी। यह लहर नैपोलियन की कृति नही थी। उसे जो कुछ भी सफलता हुई, उसने जो कुछ भी विजय प्राप्त की, वह उसकी अलौकिक शक्ति का परिणाम नही थी। उसमे कोई ऐसी असाधारण शक्ति नही थी—जिसने आस्ट्रिया, प्रशिया, स्पेन और रूस को उसके सम्मुख घुटने टेक देने को विवश कर दिया। वह अद्भुत शक्ति तो उन नई प्रवृत्तियो मे—नवीन भावनाओ मे थी, जिन्हे फ्रेच राज्यक्रान्ति ने जन्म दिया था, नैपोलियन तो उन प्रवृत्तियो के हाथ मे एक कठपुतली की तरह काम कर रहा था। यदि इस बात को हम अपनी दृष्टि में रखे तो हम नैपोलियन के सम्बन्ध मे ठीक-ठीक सम्मति बनाने में समर्थ हो सकेगे। जहा तक उसके गौरवमय असाधारण कृत्यो का सम्बन्ध है, वहा तक यह

अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, कि यह उसके किसी जादू, किसी अलौकिक प्रभाव के परिणाम नही थे। जिस प्रकार पैगम्बर मुहम्मद के कार्य से अरब की जनता मे एक अद्भुत शक्ति प्रादुर्भत हुई थी और उसने अपने समय के सभ्य ससार के बडे भाग को व्याप्त कर लिया था—अरब लोगो के विविध सेनापति तो उस शक्ति के प्रतिनिधि-मात्र थे, इसी प्रकार फ्रेंच राज्यक्रान्ति से जो अतुल शक्ति उत्पन्न हुई थी, वह सम्पूर्ण यूरोप को व्याप्त कर रही थी। नैपोलियन, मूरो आदि सेनापति तो उसके प्रतिनिधि, निशान व उपलक्षण-मात्र थे। नैपोलियन अपनी सैनिक प्रतिभा से उनमे अधिक सफल तथा अधिक प्रसिद्ध हो गया, पर वह शक्ति उसकी अपनी कृति नही थी।

नैपोलियन की वैयक्तिक योग्यता के सम्बन्ध मे अपनी सम्मति बनाने का अवसर हमे तब प्राप्त होता है, जब वह घटनाचक्र से फ्रेंच रिपब्लिक का प्रधान कॉन्सल बन गया था, जब राज्यक्रान्ति का सबसे प्रमुख नेता वही था। प्रधान कॉन्सल के पद पर अधिष्ठित होने पर नैपोलियन को एक ऐसा अद्भुत अवसर मिला था, जैसा कि उससे पूर्व शायद किसी अन्य व्यक्ति को नही मिला। पुराने जमाने का अन्त हो रहा था, नवीन युग की सृष्टि की जा रही थी। विषमता, अन्याय, अत्याचार और सकीर्णता पर आश्रित मध्यकालीन सस्थाएँ नष्ट हो रही थी, और उनके स्थान पर एक ऐसी नई दुनिया का प्रादुर्भाव हो रहा था, जिस में सब लोग समान हो, कोई किसी पर अत्याचार करनेवाला न हो, सब एक दूसरे को भाई-भाई समझे। फ्रास मे यह नया युग बहुत कुछ प्रादुर्भूत हो चुका था, और आस-पास के राज्य आख मीचकर उसका अनुसरण कर रहे थे। सारा यरोप एक नये युग का स्वप्न देख रहा था। अब इस सम्पूर्ण प्रवृत्ति, इस सारी लहर का नेता था—नैपोलियन। निस्सन्देह, नैपोलियन इस महत्त्वपूर्ण उच्च स्थान पर पहुँच गया था। सारा फ्रास उसके कब्जे में था, उसकी इच्छा ही वहा कानून थी, इसलिये नही, कि ईश्वर ने उसे इस पद पर पहुँचाया था, बल्कि इसलिये कि जनता ने उसे यह गौरवपूर्ण सम्मान प्रदान किया था। इस स्थिति का प्रयोग ससार में शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने के लिये भी किया जा सकता था। नैपोलियन नये युग का सस्थापक भी बन सकता था। पर उसने अपने गौरवपूर्ण असाधारण पद का प्रयोग किस काम के लिये किया? क्या क्रान्ति को स्थिर और व्यवस्थित करने के लिये? क्या मातस्क्यू और रूसो के सिद्धान्तो को एक क्रियात्मक सत्य बना देने के लिये? क्या सम्पूर्ण यूरोप के सम्मुख क्रान्ति के विधायक और उज्ज्वल रूप को प्रगट करने के लिये? नही, इसके लिये नैपोलियन ने प्रयत्न नही किया। फिर उसने क्या किया? वह १४वे लुई के पीछे चलना चाहता था। उसे टुइलरी के राजप्रासाद में दरबारियो की सगति मे रहने मे आनन्द अनुभव होता था। उसने अपनी असाधारण शक्ति और स्थिति का प्रयोग फ्रास मे फिर से एकतन्त्र राजसत्ता का पुनरुद्धार करने के लिये किया। उसके प्रयत्न से फिर राज-दरबार का उद्धार हुआ, लोगो में ऊँच-नीच के भाव उत्पन्न हुए, भाषण, लेखन और मुद्रण की स्वतन्त्रता मर्यादित की गई। क्रान्ति ने जो कुछ किया था, उस पर पानी फेरने के लिये—नैपोलियन के इन कार्यों का कितना असर हुआ।

वह सीजर का अनुसरण करना चाहता था। रोमन इतिहास उसे बहुत आकर्षित

करता था। 'कान्सल' शब्द उसने रोमन इतिहास से ही लिया था। प्राचीन रोमन रिप-ब्लिक के प्रधान को 'कान्सल' कहते थे, सीजर भी पहले कान्सल बना था। नैपोलियन भी पहले कॉन्सल बना। फिर सीजर सम्राट् बन गया। नैपोलियन ने भी उसका अनुसरण किया। वह भी 'कान्सल' से 'सम्राट्' बन गया। चाहिये तो यह था, कि वह राज्यक्रान्ति द्वारा उत्पन्न 'रिपब्लिक' को स्थिर और व्यवस्थित करता। यह न कर उसने सम्राट् बनने मे ही गौरव समझा। इसके बाद उसने जो कुछ भी कार्य किया—वह अपनी 'सम्राट्' की स्थिति को दृढ करने के लिये ही किया। फ्रास के बहिष्कृत कुलीन लोगो को उसने फिर वापस बुला लिया। रोम के पोप के साथ उसने समझौता किया। किस लिये? क्या उसे स्वय रोमन कैथोलिक धर्म मे श्रद्धा थी? क्या वह धर्म को मनुष्यो के लिये उपयोगी समझता था? नही। उसका विचार था, कि पोप के पक्ष मे हो जाने मे उसकी स्थिति सुदृढ हो जावेगी। धर्म को साथ लिये बिना उसकी राजसत्ता कायम नही रह सकेगी—ऐसा विचार उसका था। उसने एक बार कहा था—"धर्म के बिना राज्य मे व्यवस्था कैसे रह सकती है? विषमता के बिना समाज कायम नही रह सकता और विषमता रखने के लिये धर्म आवश्यक है। जब एक आदमी भूखके मारे तडप-तडप कर प्राण दे रहा हो और दूसरे के पास इतनी अधिक सम्पत्ति हो, कि वह यह भी न जानता हो, कि वह उसका क्या करे, इस हालत में वह भूखा मरता हुआ मनुष्य कैसे सन्तुष्ट रह सकता है, जब तक कि धर्म आकर उसे यह न समझावे—कि परमात्मा की ऐसी ही इच्छा है। ससार मे अमीर और गरीब दोनो ही रहने चाहिये, परन्तु परलोक मे यह भेद न रहेगा।' नैपोलियन का खयाल था, कि लोगो को सन्तुष्ट रखने के लिये धर्म के बिना काम नहीं चल सकता। धर्म एक ऐसी उत्तम वस्तु है, जो गरीब, दुखी और अत्याचार-पीडित लोगो को अपनी दुर्दशा में भी सन्तोष और शान्ति सिखाती है, अपनी दुर्दशा को परम-कृपालु मङ्गलरूप भगवान की इच्छा जताकर लोगो को दुखी और दलित रहने के लिये बाधित करती है। नैपोलियन चाहता था, कि इस अत्युत्तम पदार्थ का अपनी महत्त्वाकाक्षाओ की पूर्ति के लिये प्रयोग करे। पहले जब वह जैकोबिन दल का सदस्य था, तब धर्म को अत्यन्त हानिकारक समझता था और हमेशा उसके खिलाफ रहता था। पर अब अपने स्वार्थ को पूर्ण करने के लिये वह धर्म का पक्षपाती बन गया था।

अपनी राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओ को पूर्ण करने के लिये ही नैपोलियन ने ईसाई धर्म का विदेशो मे प्रचार करने का सकल्प किया था। उसने लिखा था, "मै चाहता हूँ, कि ईसाई मिशनो का फिर से सगठन किया जावे। रूस, अफ्रीका और अमेरिका में ये ईसाई मिशनरी मेरे लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगे। ये जहा भी जावेगे, देशो का ठीक ठीक परिज्ञान प्राप्त कर सकेगे। उनकी पोशाक को देखकर कोई उन पर सन्देह नहीं करेगा। कोई यह भी नही जान सकेगे, कि वे राजनीतिक और व्यापारी दृष्टि से खोज कर रहे है।" धर्म मे भी नैपोलियन का उद्देश्य राजनीतिक और व्यापारिक था।

शिक्षा के क्षेत्र में भी नैपोलियन के विचार बहुत सकीर्ण थे। १७९२ मे फ्रास के क्रान्तिकारियो ने बाधित और मुफ्त शिक्षा की स्कीम तैयार की थी। उनका विचार था, कि एक भी फ्रेंच पुरुष व स्त्री ऐसा नही रहना चाहिये, जो शिक्षित न हो। जिस उपाय का

अवलम्बन सभी सभ्य देशो मे उन्नीसवी सदी के अन्तिम भाग मे किया गया, फ्रेंच क्रान्तिकारी उसे अठारहवी सदी में ही प्रयोग मे लाने का प्रयत्न कर रहे थे। यदि राज्यक्रान्ति के मार्ग मे नैपोलियन की महत्त्वाकाक्षाएँ एक भारी विघ्न उपस्थित न कर देती, तो सम्भवत फ्रास मे बहुत पहले शिक्षा का प्रसार हो जाता। पर नैपोलियन की दृष्टि मे प्रारम्भिक शिक्षा का बहुत महत्त्व नही था। वह इस बात की कोई आवश्यकता नही समझता था, कि सर्वसाधारण जनता को शिक्षित किया जाय। निम्सन्देह, उसके समय मे बहुत से शिक्षणालय खुले। पर ये नैपोलियन की प्रतिभा के परिणाम नही थे। राज्यक्रान्ति ने लोगो मे शिक्षा के लिये प्रबल आकाक्षा उत्पन्न कर दी थी। नैपोलियन तो उसमे एक बाधा रूप ही था। स्त्री-शिक्षा के विषय मे नैपोलियन के विचार निम्नलिखित थे—मै नही समझता, कि हमे लडकियो की शिक्षा के सम्बन्ध मे किसी योजना को तैयार करने के लिये अपने दिमागो को तकलीफ देने की जरूरत है। उनकी शिक्षा के लिए उनकी माताएँ ही काफी है। सार्वजनिक शिक्षा उनके लिये किसी काम की नही है, क्योकि उन्हे जनता मे आने की आवश्यकता ही कब होती है। उनके लिये तो रीति-रिवाज और व्यवहार की शिक्षा ही पर्याप्त है—आखिर, उन्हे विवाह ही तो करना है। यह मत समझिये कि ये विचार एक ऐसे आदमी के है, जो अर्वाचीन काल की रोशनी से पहले उत्पन्न हुआ था। ये विचार एक ऐसे सम्राट् के है, जिसे फ्रेंच राज्यक्रान्ति की नवीन भावनाओ ने इतने ऊँचे पद पर पहुँचाया था।

नैपोलियन यदि चाहता, तो राज्यक्रान्ति के विचारो को न केवल फ्रास मे, अपितु अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में फैला सकता था। क्रान्ति द्वारा जिस नवीन युग की स्थापना की जा रही थी,और जिससे मनुष्य जाति का अनुपम कल्याण होना था, उसके लिए नैपोलियन असाधारण रूप से प्रयत्न कर सकता था। पर उसने इस दिशा में जरा भी प्रयत्न नही किया। उसके कृत्यो से क्रान्ति के अनेक प्रयोग नष्ट ही हुए। निस्सन्देह, उसकी विजयो ने क्रान्ति की भावना को दूर-दूर तक विस्तृत कर दिया था। पर यह होना सर्वथा स्वाभाविक था। जो देश फ्रेंच लोगो के ससर्ग में आते थे, वे नई भावनाओ से आप्लावित हुए बिना नही रह सकते थे। फ्रेंच सेनाएँ क्रान्ति की लपटो के समान थी। वे जहा जाती थी, किलो और नगरो को ध्वस करने के साथ-साथ पुराने जमाने की गन्दगी के ढेरो को भी भस्म करती जाती थी। इसमें नैपोलियन की क्या कृति थी? देखना तो यह है कि जब वह स्वय फ्रास का कर्त्ता धर्त्ता बन गया, तब उसने क्या किया, तब फ्रास और उसके साम्राज्य का शासन किन सिद्धान्तो के अनुसार किया गया? क्या उस समय क्रान्ति की विजयो और सफलता के लिये कोशिश की गई? नही। सत्य बात तो यह है, कि नैपोलियन पुराने जमाने की लहर में बह गया। प्रधान कॉन्सल के रूप मे ही उसने अपने भाई बहिनो को ऊँचे-ऊँचे पदो पर नियत किया। बिना इस बात की परवाह किये कि वे उन कार्यों के योग्य है, उन्हें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पद दिये गये। यह कितनी स्वाभाविक बात है? पर साथ ही कितनी अनुचित भी है। जिस प्रकार पुराने जमाने के अमीर उमरा लोग अपने भाइयो, कृपापात्रो और आश्रितो को उचित व अनुचित सब प्रकार के तरीको से ऊँचे पदो पर पहुँचाने की कोशिश किया करते थे, वैसे ही नैपोलियन ने भी किया। वह इस

स्वाभाविक मानव निर्बलताओ मे ऊंचा नही उठ सका। क्रान्ति का सिद्धान्त था, कि मनुष्यो मे ऊच-नीच का कोई भेद नही है। प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यता मे ही राजकीय पदो को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। पर इस शक्तिशाली, साहसी और सफल नेपोलियन के भाई बहिन केवल इसलिये बडे-बडे राज्यो के शासक और कर्त्ता धर्त्ता बनाये गये, क्योकि वे उसके निकट सम्बन्धी थे। नैपोलियन उनको खुश करना चाहता था, उनकी दृष्टि मे बडा बनना चाहता था। अपने घर—अपने परिवार में बडप्पन प्रदर्शित करना मनुष्य के लिये कितना स्वाभाविक होता है।

और जब नैपोलियन सम्राट् बन गया? फिर १६वे लुई का जमाना वापस लौट आया। वही राज-दरबार, वही पोशाके, वही अनुचर और परिचर—वही सब शान-शौकत और धूमधाम। रिपब्लिकन फ्रास के अधीन अन्य रिपब्लिकन राज्यो मे भी अब राजतन्त्र शासन स्थापित किया गया, और उन पर शासन करने के लिये नियत किये गये नैपोलियन के भाई बहिन। कहा तो फ्रास की क्रान्तिकारी सेनाए यूरोप भर में राजसत्ता का अन्त करने के लिये सघर्ष कर रही थी, और कहा यह सफल सेनापति रिपब्लिकन राज्यो मे एकसत्तात्मक शासन स्थापित कर रहा था। कितना भारी परिवर्तन था? फ्रास की क्रान्तिकारी भावनाएँ इस महान् सम्राट् के हाथ मे पडकर कितनी विकृत और पतित रूप धारण कर रही थी।

नैपोलियन को तब तक सन्तोष नही हुआ, जब तक कि उसने आस्ट्रिया की राजकुमारी से विवाह कर अपने को यूरोपियन राजाओ की दृष्टि मे कुलीन साबित नही कर दिया। सचमुच नैपोलियन इस बात के लिये उत्सुक था, कि लोग उसे अपने से ऊँचा समझे। सब लोग यह भूल जावे, कि वह कोर्सिका के एक गरीब वकील का लडका है, जो ब्रीएन के सैनिक शिक्षणालय में अपने साथी कुलीन विद्यार्थियो द्वारा निरन्तर अपमानित किया जाता था। वह चाहता था, कि लोग उसे सम्राट् महान् नैपोलियन समझे, जो कि आस्ट्रिया के पवित्र उच्च हाप्सबुर्ग सम्राट् का जामाता है, और जिसकी महारानी आस्ट्रियन राजकुमारी है। कैसा ऊँचा खयाल था? राज्यक्रान्ति इन्ही भावनाओ के प्रसार के लिये तो उत्पन्न हुई थी? रूसी जार अलेक्जेण्डर के साथ टिलसिट मे बैठकर उसने कैसे ऊँचे भावो को प्रगट किया था? 'यूरोप क्या है?' 'हम यूरोप है।' जनता कहा गई? यूरोप की जनता नैपोलियन की दृष्टि मे कोई स्थान नही रखती थी। इस दृष्टि से अलेक्जेण्डर और नैपोलियन—दोनो बिल्कुल एक जैसे विचार रखते थे।

इस स्थिति में हम नैपोलियन के सम्बन्ध मे क्या सम्मति प्रगट करे? इसमे तो कोई सन्देह नही, कि वह असाधारण शक्तिसम्पन्न, साहसी और जबर्दस्त व्यक्ति था। उसके अन्दर एक किस्म की आकर्षण शक्ति थी, जिससे लोग उसके पीछे लग जाते थे। अपनी योग्यता और सामर्थ्य से ही वह अत्यन्त साधारण स्थिति से ऊँचा उठकर एक महान् सम्राट् के पद तक पहुँचा था। पर इस उन्नति मे उसकी योग्यता ही एकमात्र कारण नही थी। नैपोलियन ने जो कुछ कर दिखाया, उसमे उसकी अपनी योग्यता के अतिरिक्त अधिक महत्त्वपूर्ण कारण—बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण कारण वह अद्भुत और अद्वितीय शक्ति थी, जिसे फ्रास की राज्यक्रान्ति ने उत्पन्न किया था। उसी शक्ति का सहारा लेकर नैपोलियन

ने इतनी असाधारण विजये प्राप्त की। उसी शक्ति का दुरुपयोग कर वह एक उच्च सम्राट् के पद तक पहुँच गया, और सम्पूर्ण यूरोपियन राज्यो के लिये एक भयकर खतरा बन गया। यदि सैनिक शक्ति और साहस के अतिरिक्त नैपोलियन मे प्रतिभा, विचार और सत्कल्पना भी होती, तो वह अपनी महत्त्वपूर्ण परिस्थितियो का उपयोग और ही प्रकार से करता। उस हालत में 'सब राष्ट्रो का युद्ध' उसके खिलाफ न लडा जाता, सब राज्यो की जनता भी अपने राजाओ के साथ उसका मुकाबला करने के लिये न उठ खडी होती। यूरोप भर की जनता उसे अपना रक्षक और नेता समझती, और उसकी सहायता प्राप्त कर अपने को स्वाधीन बनाने का प्रयत्न करती। नैपोलियन इस गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सकता था। इसके लिये उसको कितना उत्तम अवसर प्राप्त हुआ था। पर उसने इस क्षेत्र मे अपनी महत्त्वाकाक्षाओ को पूर्ण करने का प्रयत्न नही किया। वह बह गया, उस धारा मे—जो गिरावट और पतन की तरफ ले जाती थी।

नैपोलियन के युद्धो मे कुल मिलाकर चालीस लाख के लगभग मनुष्यो के जीवन नष्ट हुए। इतने जीवनो का विनाश किस लिये हुआ ? एक आदमी की महत्त्वाकाक्षाओ को पूर्ण करने के लिये। इससे बहुत कम, सम्भवत इसके शताश से नैपोलियन ससार को नवयुग का सदेश देने का कार्य कर सकता था। पर उसका ध्यान ही इस तरफ नही था। लुई सोलहवे का जीवन उसे अधिक आकर्षक प्रतीत होता था।

नवा अध्याय

यूरोप की नई व्यवस्था

१ राज्यक्रान्ति के परिणाम

सन् १७८९से१८१८ तक के पच्चीस साल यूरोप के इतिहास मे क्रान्ति का काल था। फ्रास मे जिस राज्यक्रान्ति का सूत्रपात हुआ था, उसने न केवल फ्रास के, अपितु यूरोप के अन्य बहुत से देशो के जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव डाला। फ्रेंच राज्यक्रान्ति के तीन आदर्श थे—समानता, स्वाधीनता और भ्रातृभाव। इस युग मे जिस नये समाज के निर्माण का प्रयत्न किया गया, उसके ये ही आधार-स्तम्भ थे। इसमें सन्देह नही, कि फ्रेंच राज्यक्रान्ति यूरोप के इतिहास मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, और न केवल यूरोप के, अपितु सम्पूर्ण ससार के इतिहास पर उसका प्रभाव पडा है। हम यहा सक्षेप में क्रान्ति के इन परिणामो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेगे।

(१) **लोकतन्त्र शासन**—फ्रास की राज्यक्रान्ति द्वारा यूरोप में लोकतन्त्रवाद का प्रारम्भ हुआ। राजा दैवी अधिकार से शासन करता है, और उसकी इच्छा ही कानून है, इस सिद्धान्त का अब अन्त हो गया। फ्रास के लोगो ने पहले वैध राजसत्ता की स्थापना का यत्न किया था। यदि सोलहवा लुई अपने दरबारियो के प्रभाव मे न होता, और समय के रुख को पहचान सकता, तो सम्भवत , फ्रास मे भी ग्रेट ब्रिटेन के समान वैध राजसत्ता विकसित हो सकती। राज्यक्रान्ति के बाद फ्रास में जो पहला शासन विधान बना था, उसमे राजा की सत्ता को स्वीकार किया गया था। पर राजा लुई जनता की इच्छा के अनुसार, विधान के अधीन रहकर शासन करने के लिये तैयार नही था। इसीलिये उसे राज्यच्युत कर फ्रेंच लोगो ने रिपब्लिक की स्थापना की। नैपोलियन ने रिपब्लिक का अन्त कर सम्राट् पद प्राप्त किया। पर नैपोलियन दैवी अधिकार से सम्राट् न बनकर जनता की इच्छा से, मत-दाताओ के वोटो द्वारा सम्राट् बना था। उसकी असाधारण शक्ति और प्रतिभा के कारण ही जनता ने उसे स्वेच्छाचारी शासक बनने का अवसर दिया था। पर नैपोलियन के समय में भी फ्रास में शासन-विधान विद्यमान था, पार्लियामेन्ट की सत्ता थी, और इस बात का प्रयत्न किया जाता था, कि सरकार का स्वरूप लोकमत के अनुकूल रहे। इसमे सन्देह नही, कि फ्रेंच क्रान्तिकारी बूर्वो वश के निरकुश शासन का अन्त कर तुरन्त लोकतन्त्र शासन की स्थापना नही कर सके। पर मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी है, कि उसमे और उसके समाज में कोई भी परिवर्तन अकस्मात् नही हो सकता। क्रान्तिकारी फ्रास ने नैपो-लियन के सम्मुख जो आत्मसमर्पण कर दिया, उसका यही कारण था। पर राज्यक्रान्ति द्वारा फ्रास में लोकतन्त्रवाद की जो लहर शुरू हुई थी, वह निरन्तर सफल होती गई, यह

निर्विवाद है। नैपोलियन की विजयो का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ, कि इटली, हालैण्ड, स्विटजरलैण्ड, स्पेन, जर्मनी आदि अन्य यूरोपियन देशो मे भी लोकतन्त्रवाद का प्रवेश हुआ। कुछ समय के लिये इन देशो के वडे भाग मे भी निरकुश व दैवी अधिकार पर आश्रित राजसत्ता का अन्त होकर लोकतन्त्र शासनो की स्थापना हुई, और यूरोपका वडा भाग क्रान्ति के सिद्धान्तो का अनुयायी वन गया।

(२) **नागरिक स्वतन्त्रता**—लोकतन्त्रवाद का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ, कि फ्रास मे पहली वार नागरिक स्वतन्त्रता का प्रारम्भ हुआ। क्रान्ति से पहले फ्रास मे सव नागरिक समान स्थिति नही रखते थे, सवके लिये टैक्स के नियम एक समान नही थे, कानूनो का प्रयोग भी सवके लिये समान रूप से नही होता था। राजकीय पदो पर नियुक्ति के लिये योग्यता को महत्त्व नही दिया जाता था। राजकीय पद राजा की कृपा-दृष्टि पर आश्रित होते थे। राज्यक्रान्ति ने इस दशा मे परिवर्तन किया। जनता को पहली वार वोट का अधिकार मिला, और उसमे यह अनुभूति उत्पन्न हुई, कि शासन उसकी इच्छा पर आश्रित है। राजकीय पदो पर नियुक्ति योग्यता और कार्यक्षमता के आधार पर की जाने लगी। टैक्स के नियम सव के लिये एक सदृश किये गये, और सारे देश मे एक कानून प्रचलित करने के लिये विधान का सकलन शुरू किया गया। नैपोलियन के समय मे यह कार्य पूर्ण हुआ, जो 'कोड नैपोलियन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्रान्तियुग में फ्रास मे जो शासन-विधान व कानून वने, उनमे नागरिक स्वतन्त्रता को प्रमुख स्थान दिया गया था। कानून की दृष्टि मे सव नागरिक वरावर है, और उनके कतिपय ऐसे आधारभूत अधिकार है, जिनका उल्लघन कर सकना किसी सरकार के हाथ में नही है, यह सिद्धान्त पहली वार फ्रास मे स्वीकृत किया गया। नैपोलियन की विजयो के कारण इटली, हालैण्ड आदि देशो मे भी नागरिक स्वतन्त्रता के इस सिद्धान्त का प्रवेश हुआ।

(३) **सामाजिक क्रान्ति**—फ्रास में जो राज्यक्रान्ति हुई, उसने वहा की जनता को केवल वूर्वो वश के निरकुश शासन से ही स्वतन्त्र नही किया, अपितु समाज मे समानता की भी स्थापना की। सामाजिक क्रान्ति फ्रेंच राज्यक्रान्ति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणाम है। क्रान्ति से पूर्व फ्रास में कुलीन और पुरोहित श्रेणियो का किस प्रकार प्रभुत्त्व था, जमीन पर किस प्रकार कतिपय वडे जागीरदारो का स्वामित्त्व था, और सर्वसाधारण जनता की दशा किस प्रकार अर्धदासो की सी थी—इन वातो पर हम पहले प्रकाश डाल चुके है। राज्यक्रान्ति द्वारा इस स्थिति मे भारी परिवर्तन आया। क्रान्ति के समय मे फ्रास के वडे कुलीन जागीरदार अपने देश को छोडकर वाहर भाग गये थे। क्रान्तिकारी सरकार ने उनकी जमीनो को जव्त कर लिया था। वाद में उसे सर्वसाधारण जनता को वेच दिया गया, और समृद्ध किसानो व मध्यश्रेणि के लोगो को यह अवसर मिला, कि वे भूमि के स्वामी वन सके। जमीन के कानून में जो वहुत से सशोधन क्रान्तिकारियो द्वारा किये गये थे, उनमे साधारण किसानो का भी अपने खेतो पर अधिकार स्थापित हो गया। जमीन के पूर्णरूप से स्वामी न होते हुए भी ये किसान अपने खेत से वेदखल नहीं किये जा सकते थे, वे जमीन पर अपने अधिकार को दूसरो को वेच सकते थे और निश्चिन्तता से

स्वतन्त्रता के साथ खेती के कार्य मे व्यापृत रह सकते थे ।

राज्यक्रान्ति के कारण मध्यश्रेणि का महत्त्व निरन्तर बढने लगा। रिपब्लिक व नैपोलियन के शासनकाल मे व्यापार और व्यवसाय को प्रोत्साहित करने के लिये विशेष रूप से प्रयत्न किया गया था। इन कार्यो मे लगे हुए मध्यश्रेणि के लोग न केवल सम्पत्ति और समृद्धि की दृष्टि से निरन्तर उन्नति कर रहे थे, अपितु वोट के अधिकार का प्रयोग कर राजशक्ति को भी अपने हाथो मे ले रहे थे । मध्यश्रेणि के महत्त्व मे वृद्धि फ्रेंच राज्यक्रान्ति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणाम था । फ्रास के पुराने समाज मे ऐसे कुलीनो और उच्च पुरोहितो का प्रभुत्व था, जिनकी स्थिति का आधार उनका किसी विशिष्ट कुल मे उत्पन्न होना ही था । अब उसके स्थान पर मध्यश्रेणि का महत्त्व बढने लगा, जिसका आधार सम्पत्ति व योग्यता थी ।

एक बार जब फ्रेंच लोग कुलीन श्रेणि के प्रभुत्व मे मुक्त हो गये, और मध्यश्रेणि का महत्त्व बढने लगा, तो यह स्वाभाविक था, कि लोगो का ध्यान आर्थिक विषमता की ओर भी आकृष्ट हो। अब राजसत्ता जिन लोगो के हाथ मे थी, उनके लिये जनता के हृदय मे वह आदर नही था, जो वशक्रमानुगत कुलीन श्रेणि के प्रति होता है । अत कतिपय विचारको का ध्यान इस बात की ओर भी आकृष्ट हुआ, कि समाज मे विषमता का अन्त होकर समता की स्थापना होनी चाहिए । जिस प्रकार राजनीतिक और नागरिक दृष्टि मे सबलोग एक समान हो गये है, वैसे ही आर्थिक क्षेत्र मे भी उन्हे एक समान होना चाहिये। इसी लिये उन्नीसवी सदी मे फ्रास व अन्य यूरोपियन देशो मे अनेक ऐसे विचारक उत्पन्न हुए, जो आर्थिक समता की स्थापना के लिये समाजवाद का प्रतिपादन करने के लिये तत्पर थे ।

(४) **आर्थिक परिवर्तन**—स्वतन्त्रता और समानता की लहर ने आर्थिक क्षेत्र को भी प्रभावित किया । क्रान्ति से पहले फ्रास के आर्थिक जीवन में स्वतन्त्रता का सर्वथा अभाव था। अनेक व्यवसाय राजा के एकाधिकार मे थे, उन्हे अन्य लोग नही कर सकते थे। नगरो का व्यावसायिक जीवन श्रेणियो (गिल्ड) मे सगठित था, प्रत्येक व्यवसायी के लिये यह आवश्यक था, कि वह इन श्रेणियो के नियमो के अधीन रहे । इस कारण शिल्पी व व्यवसायी लोग स्वतन्त्रता के साथ आर्थिक उत्पत्ति करने में असमर्थ रहते थे। देश के आन्तरिक व्यापार मे भी स्वतन्त्रता का अभाव था । एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाने मे अनेक प्रकार की बाधाएँ थी । क्रान्ति की लहर ने इस स्थिति मे परिवर्तन किया। इस युग मे इङ्गलैण्ड मे व्यावसायिक क्रान्ति शुरू हो चुकी थी। फ्रास के क्रान्तिकारी इस बात के लिये उत्सुक थे, कि उनके यहा भी व्यावसायिक क्रान्ति का प्रवेश हो, और नई मशीनरी और यान्त्रिक शक्ति का प्रयोग कर बडे कल-कारखानो की स्थापना की जाय। इसीलिये उन्होने व्यवसाय और व्यापार के क्षेत्र मे 'खुला छोड दो' की नीति को अपनाया। गिल्डो के सकीर्ण नियमो को नष्ट किया, और देश के आन्तरिक व्यापार की सब बाधाओ को दूर किया । अब शिल्पियो, श्रमियो और कारीगरो को यह स्वतन्त्रता प्रदान की गई, कि वे अपने श्रम को खुले बाजार मे बेच सके, और इस प्रकार अधिकतम मजदूरी प्राप्त कर सके । इस कारण फ्रास मे कल-कारखानो और व्यापार व्यवसाय के विकास मे बहुत सहायता मिली, और कुछ ही समय बाद आर्थिक क्षेत्र मे भी फ्रास इङ्गलैण्ड

का प्रधान प्रतिद्वन्द्वी बन गया।

(५) **शिक्षा में परिवर्तन**—फ्रास के क्रान्तिकारी जनता की शिक्षा को बहुत महत्त्व देते थे। वे भलीभाति समझते थे, कि शिक्षा के कार्य को चर्च के हाथ मे छोड देने से काम नही चल सकता। इसीलिये उन्होने राज्य की ओर से शिक्षा-प्रसार के कार्य को शुरू किया। नैपोलियन ने शिक्षा-सम्बन्धी जिस नीति को अपनाया था, उसका सूत्रपात क्रान्ति के नेताओ द्वारा ही किया गया था। पेरिस यूनिवर्सिटी का जो पुन सगठन नैपोलियन द्वारा हुआ, वह यूरोप के अन्य प्रगतिशील देशो में आदर्शरूप माना जाता था। इसी युग मे बर्लिन, ब्रेस्लो, लण्डन और न्यूयार्क की यूनिवर्सिटियो की स्थापना हुई, या उनका पुन सगठन किया गया। इस कार्य मे पेरिस यूनिवर्सिटी के सगठन को आदर्शरूप से स्वीकृत किया गया था। फ्रेंच क्रान्तिकारियो ने वैज्ञानिक अनुसन्धान के कार्य को भी बहुत महत्त्व दिया, और इसके लिये उन्होने राज्यकोश से प्रचुर परिमाण मे धन का व्यय किया। क्रान्ति के कारण फ्रास और यूरोप मे जिस नवजीवन का प्रारम्भ हुआ था, वह इस युग के लेखको और कवियो की रचनाओ में भलीभाति प्रतिबिम्बित होता है। फ्रास के विक्टर ह्यूगो और ला मार्तीन जैसे साहित्यिक क्रान्ति युग की ही उपज थे। ब्रिटेन के बायरन और शैले, और जर्मनी के हाइन जैसे साहित्यिको पर भी इस युग की भावनाओ का प्रभाव बहुत स्पष्ट है।

(६) **चर्च में परिवर्तन**—फ्रास का पुराना चर्च राजाओ के निरकुश शासन का प्रबल समर्थक था। इसलिये फ्रेंच क्रान्तिकारियो ने उसे नष्ट करने का प्रयत्न किया। नैपोलियन के समय मे चर्च का पुनरुद्धार हुआ, पर यह नया चर्च पुराने चर्च से उतना ही भिन्न था, जितना कि फ्रास का नया शासन सोलहवे लुई के शासन से भिन्न था। क्रान्ति की लहर ने जनता मे स्वतन्त्रता की जिस प्रवृत्ति को जन्म दिया था, उसका प्रभाव धार्मिक क्षेत्र पर भी पडा। अब लोग अन्धविश्वास और प्रमाणवाद के चगुल से मुक्त होकर धार्मिक विषयो पर भी स्वतन्त्रता के साथ विचार करने में प्रवृत्त हुए।

(७) **राष्ट्रीयता**—फ्रेंच राज्यक्रान्ति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणाम राष्ट्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव था। इस पर हम एक पृथक् अध्याय में विशदरूपसे विचार करेगे।

इसमें सन्देह नही, कि क्रान्ति द्वारा न केवल फ्रास अपितु यूरोप के अन्य देशो मे भी एक नये युग का सूत्रपात हुआ था। इसी को हम यूरोप का 'आधुनिक युग' कहते है।

(२) नैपोलियन के बाद यूरोप की समस्याए

नैपोलियन के पतन के बाद यूरोप के राजनीतिज्ञो के सम्मुख मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित थी—

(१) **क्रान्ति का दमन**—फ्रास की राज्यक्रान्ति को प्रारम्भ हुए एक चौथाई शताब्दि व्यतीत हो चुकी थी। इस काल में यूरोप में भारी उथल पुथल मच गई थी। पुरानी सस्थाएँ टूट रही थी, नवीन युग का प्रादुर्भाव हो रहा था। नई और पुरानी दोनो प्रकार की प्रवृत्तियो मे भारी सघर्ष चल रहा था। नैपोलियन परास्त हो गया था, और उसके साथ ही फ्रास का सैनिक गौरव भी मिट्टी मे मिल गया था। पर इससे नई प्रवृत्तियो का अन्त नही हो गया था। 'स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव' का निनाद अब भी यूरोप मे गूज रहा था।

राष्ट्रीयता की भावना लोगो मे नवजीवन उत्पन्न कर रही थी। एकतन्त्र शासन का स्थान लोकतन्त्र शासन ले रहा था। लोग आपस मे बात करते थे, राज्य जनता का है, वोट का हक सबको मिलना चाहिये, राजा की सत्ता जनता की इच्छा पर आश्रित है। ये सब प्रवृत्तिया फ्रेंच राज्यक्रान्ति ने उत्पन्न की थी। १७९२ से लेकर १८१५ तक फ्रास के खिलाफ जितने भी गुट बने, सब इन प्रवृत्तियो के दुश्मन थे, इन्हे नष्ट करने मे ही यूरोप का कल्याण समझते थे। इन गुटो का उद्देश्य क्रान्ति को कुचलना तथा एकतन्त्र शासन को फिर से स्थापित करना था। अब जब कि ये गुट अपने उद्देश्य मे सफल हो गये थे, जब इन्होने फ्रास को परास्त कर दिया था, तब स्वाभाविक रूप से इनका यही प्रयत्न था, कि नई प्रवृत्तियो को सर्वथा नष्ट कर फिर से पुराने जमाने को कायम कर दिया जाय। इङ्गलैण्ड और प्रशिया मे नये युग की रोशनी पहुच चुकी थी, पर वहा के शासक भी इस बात को अच्छी तरह समझे हुए थे, कि उनका कल्याण इसी मे है, कि रूस और आस्ट्रिया के साथ मिलकर नई प्रवृत्तियो को कुचल दिया जाय। इसलिये अब नैपोलियन को परास्त करनेवाले विजयी राज्यो के सम्मुख पहला प्रश्न यही था, कि कौन से ऐसे उपाय किये जावे, जिनसे क्रान्ति की भावनाओ का नामोनिशान ही ससार से मिट जाय।

(२) **नैपोलियन के साम्राज्य की व्यवस्था**—इसके अतिरिक्त, दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न उनके सम्मुख यह था, कि नैपोलियन के साम्राज्य की क्या व्यवस्था की जाय। नैपोलियन की असाधारण विजयो ने यूरोप के अनेक पुराने राजवशो को नष्ट कर दिया था। स्पेन, पोर्तगाल, इटली, नेपल्स, स्वीडन, हालैण्ड, आस्ट्रियन नीदरलैण्ड, पोलैण्ड आदि विविध देशो के पुराने शासक नैपोलियन द्वारा नष्ट किये जा चुके थे। इन सब पर नैपोलियन के बन्धु-बान्धव या सेनापति शासन करते थे। अब उसके पतन के बाद यह प्रश्न था, कि इन विविध राज्यो के शासन की क्या व्यवस्था की जाय। यह प्रश्न बहुत विकट था। क्रान्ति को कुचलने के प्रश्न पर तो सब राज्य सहमत थे, पर इन राज्यो की पुन व्यवस्था के सम्बन्ध में उनमे भारी मतभेद था। यूरोप के सभी राजा महत्त्वाकाक्षी, साम्राज्यवादी तथा स्वार्थ से परिपूर्ण थे। वे इस बात के लिये उत्सुक थे, कि इस विशेष परिस्थिति से लाभ उठाकर अपने स्वार्थ को सिद्ध करें। साथ ही, विविध व्यक्तियो के विविध राजगद्दियो के सम्बन्ध मे दावो पर भी गम्भीरता के साथ विचार किया जाना था। उस जमाने मे राज्य भी मामूली जायदाद की हैसियत रखते थे। जिस तरह जमीन जायदाद के मामले मे अनेक दावेदार होते है, और उन पर कानून की बारीकियो से फैसला करना होता है, उसी प्रकार राज्यो की भी दशा थी। नैपोलियन के साम्राज्य के पतन से जो बहुत से प्रदेश इस समय राजाओ से रहित हो गये थे, उनके दावेदारो की कमी नही थी। वीएना की काग्रेस मे इन सब के दावो पर विचार करके यह फैसला किया जाना था, कि कौनसा राज्य किस दावेदार के सुपुर्द किया जावे।

(३) **चर्च की समस्या**—चर्च का मामला और भी विकट था। राज्यक्रान्ति ने न केवल फ्रास में, अपितु पश्चिमी यूरोप के बहुत से प्रदेशो मे चर्च की व्यवस्था को सर्वथा नष्ट कर दिया था। प्रोटेस्टेन्ट और रोमन कैथोलिक चर्चों का भेद तो यूरोप मे था ही, अब राज्यक्रान्ति के कारण धर्म के विरुद्ध भावना भी बलवती हो गई थी। नैपोलियन ने तो

चर्च को सर्वथा राज्य की कठपुतली बना दिया था। पोप को कैद कर तथा उसके राज्य को अपने कब्जे में करके नैपोलियन ने चर्च के सम्पूर्ण रोब को ही धूल मे मिला दिया था। पुराने जमाने की स्थापना मे लगे हुए वीएना मे एकत्रित राजनीतिज्ञो के सम्मुख चर्च की व्यवस्था का भी प्रश्न विद्यमान था।

(४) **शान्तिरक्षा का उपाय**—साथ ही, ये राजनीतिज्ञ ऐसा उपाय ढूढने के लिये भी प्रयत्नशील थे, जिससे यूरोप मे युद्ध की सम्भावना कम हो जावे। पच्चीस वर्ष के निरन्तर युद्धो से यूरोप के राजा तग आ गये थे। नैपोलियन के विरुद्ध जो अन्तिम गुट बना था, उसमे यूरोप के बहुत से प्रमुख राज्य सम्मिलित थे। अब इन राज्यो के राजनीतिज्ञो का खयाल था, कि यदि इस गुट को कायम रखा जाय, तो एक ऐसे उपाय का सुगमता से आविष्कार किया जा सकता है, जिससे भविष्य मे युद्ध की सम्भावना बहुत कुछ दूर हो जायगी। इस उपाय को ढूढ निकालना भी उनके सम्मुख एक बहुत महत्त्वपूर्ण समस्या थी।

(३) मैटरनिख

नैपोलियन के पतन के बाद यूरोप में जिन राजनीतिज्ञो ने सर्वप्रधान स्थान प्राप्त किया, उनका नेता मैटरनिख था। प्रतिक्रिया और क्रान्ति की विरोधी प्रवृत्तियो को मैटरनिख के रूप मे एक अत्यन्त योग्य नेता मिल गया था। मैटरनिख का जन्म १७७३ ईस्वी में हुआ था। वह र्‌हाइन नदी के तट पर स्थित कोब्लेन्ट्स नामक स्थान का रहनेवाला था। उसके माता पिता कुलीन श्रेणी के व्यक्ति थे। उसका पालन-पोषण कुलीन वातावरण में हुआ था। जब वह विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त कर रहा था, तब उसने फ्रास से भागे हुए कुलीन परिवारो की दु ख गाथाओ को सुना था। इन गाथाओ तथा राज्यक्रान्ति के वृत्तान्त को सुनकर उसके हृदय में नवीन प्रवृत्तियो के विरुद्ध तीव्र भावना उत्पन्न हो गई थी। उसकी पैतृक सम्पत्ति नैपोलियन ने जब्त कर ली थी, इस कारण वह क्रान्ति तथा नई प्रवृत्तियो का और भी अधिक दुश्मन हो गया था। आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री के परिवार में उसका विवाह हुआ। इस कारण उसकी महत्ता तथा वैभव बहुत अधिक बढ गये। अपने श्वसुर-कुल की सहायता से वह यूरोप के सभी राजनीतिज्ञो तथा राजकुलो से परिचित हो गया। धीरे-धीरे आस्ट्रिया के राजनीतिक क्षेत्रो मे उसका महत्त्व बढता गया। १८०९ में उसे आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री के पद पर नियत किया गया। मैटरनिख ४० साल तक निरन्तर आस्ट्रिया का प्रधान मन्त्री रहा। इस सुदीर्घ काल में उसने अपनी शक्ति को पूर्ण रूप से क्रान्ति की भावनाओ को नष्ट करने तथा पुराने जमाने को फिर से स्थापित करने के लिये लगाया। उसका सिद्धान्त था, कि क्रान्ति एक ऐसी बीमारी है, जिसका इलाज किया जाना चाहिये। यह एक ऐसा ज्वालामुखी है, जिसका दमन करना आवश्यक है। क्रान्ति एक ऐसा भयकर राक्षस है, जो हर समय सामाजिक व्यवस्था को निगलने के लिये तैयार रहता है। वह कहा करता था, कि राजाओ को अधिकार है, कि वे अपनी प्रजा के भाग्य का निबटारा करे। राजा केवल ईश्वर के सम्मुख ही उत्तरदायी होते है, जनता के प्रति नही। उसका मत था, कि यूरोप को स्वत-

न्त्रता की जरूरत नही है, उसे शान्ति और व्यवस्था की आवश्यकता है। वह अपने जीवन का यही उद्देश्य समझता था, कि समाज के क्षीण होते हुए सगठन की रक्षा करने के लिये नई प्रवृत्तियो तथा क्रान्ति की भावनाओ को जड मे नष्ट कर दिया जावे।

केवल मैटरनिग ही नही, यूरोप के अन्य राजनीतिज्ञ भी इन्ही विचारो को मानते थे। उस समय के यूरोपियन वातावरण मे ये ही विचार मुख्यतया प्रचलित थे। इन राजनीतिज्ञो का यही सिद्धान्त था, कि जनता के अधिकारो की उपेक्षा की जाय। जनता शासन मे हिस्सा चाहती है, अपने अधिकार मागती है— कितनी फिजूल बात है। अधिकार तो राजा के है। दुनिया मे रिपब्लिको की जरूरत नही है। वैध शासन और अराजकता —एक ही बात है। यह प्रतिक्रिया का युग था। फ्रास ने जिन नई प्रवृत्तियो को शुरू किया था, उनके विरुद्ध अब भयकर प्रतिक्रिया हो रही थी। तलवार के जोर पर पुराने जमाने को स्थापित करने का उद्योग किया जा रहा था। मैटरनिख इस सम्पूर्ण प्रयत्न का प्रधान पुरोहित था। इसीलिये इस युग को 'मैटरनिग का युग' भी कहते है।

नैपोलियन के पतन के बाद यूरोप का पुन निर्माण करने के लिये वीएना में जो काग्रेस हुई, उसके सम्मुख सबसे महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय यही था, कि क्रान्ति के भूत से किस प्रकार यूरोप की रक्षा की जाय, और समाज को छिन्न-भिन्न होने से कैसे बचाया जाय।

(४) वीएना की काग्रेस

पेरिस की सधि—जिस समय नैपोलियन को फ्रास मे बहिष्कृत कर एल्बा के द्वीप मे भेजदिया गया, और १८वे लुई को फास की गद्दी पर बिठाया गया, उसी समय कुछ महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक मामलो का फैसला कर लिया गया था। ३० मई, १८१४ को विजयी राज्यो ने १८वे लुई के साथ एक सन्धि की थी, जो कि पेरिस की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि के अनुसार फ्रास पर बूर्बो वश का अधिकार स्वीकृत किया गया, और फ्रास की वह सीमा निश्चित की गई, जो कि १ नवम्बर १७९२ के दिन थी। उस समय जो उपनिवेश फ्रास के अधीन थे, वे भी उसे वापस लौटा दिये गये। नैपोलियन के भग्न साम्राज्य से नीदरलैण्ड के नये राज्य की सृष्टि की गई। इसे हालैण्ड और बेल्जियम को मिला कर बनाया गया था। इस नवीन राज्य पर शासन करने के लिये हालैण्ड के पुराने आरेन्ज राजवश के अधिकार को स्वीकृत किया गया। स्विट्जरलैण्ड को स्वतन्त्र कर दिया गया। जर्मनी के विविध राज्यो को मिलाकर एक नवीन सघ की रचना की गई। इटली के विविध पुराने राज्यो का पुनरुद्धार किया गया, और इस प्रकार जो विविध रिपब्लिकन राज्य क्रान्ति द्वारा प्रादुर्भूत हुए थे, उन सबका अन्त कर दिया गया। पेरिस की सन्धि मे मोटी-मोटी बातो का निबटारा कर लिया गया था। शेष बाते वीएना की काग्रेस के लिये छोड दी गई थी। महत्त्वपूर्ण प्रश्नो का फैसला वीएना मे ही किया जाना था।

काग्रेस के प्रतिनिधि—सितम्बर, १८१४ मे वीएना की काग्रेस प्रारम्भ हुई। ससार के आधुनिक इतिहास में यह काग्रेस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। राजनीतिज्ञो के

इसमे बडी-बडी आशाएँ थी। टर्की के सिवाय अन्य सब यूरोपियन देशो के प्रतिनिधि इसमे सम्मिलित हुए थे। कुल मिलाकर ९० बडे महाराजा और ५३ राजा या उनके प्रतिनिधि इसमे एकत्रित थे। आस्ट्रिया का सम्राट् फ्रासिस प्रथम अपने योग्य प्रधानमत्री मेटरनिख के साथ इस काग्रेस का सम्पूर्ण प्रवन्ध कर रहा था। सव राजे महाराजे उसके अतिथि थे। रूस का जार अलेक्जेण्डर प्रथम अपने मन्त्री नेसलरोड और जर्मनी के प्रसिद्ध नेता स्टाइन के साथ उपस्थित था। प्रशिया का राजा फ्रेडरिक विलियम तृतीय हार्डनवर्ग और फोन हुम्वोल्ड्ट को साथ लेकर आया था। ग्रेट ब्रिटेन ने कैसलरे तथा वेलिगटन के ड्यूक को अपना प्रतिनिधि वनाकर भेजा था। फ्रास की तरफ से तेलीरा आया था, जो मृदुभाषिता और चाणाक्षता मे अपना सानी नही रखता था। पोप की तरफ से कार्डिनल गानस ल्वी उपस्थित हुआ था। इनके अतिरिक्त, अन्य भी वहुत से प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और राजे महाराजे यूरोप के भाग्य का निर्माण करने के लिये वीएना मे एकत्रित हुए थे। इतने महाराजाओ, अमीर उमराओ, सरदारो और श्रीमन्तो के उपस्थित होने से वीएना की शान का कोई ठिकाना नही रहा था। तरह-तरह की बढिया पोशाके सव तरफ नजर आती थी। धूम-धाम और रौनक का कोई अन्त नही था। प्रतिनिधियो का स्वागत करने के लिये आस्ट्रियन सरकार ने कोई कसर नही उठा रखी थी। भोज, गान नाच, तमाशे की कोई हद्द न थी। यूरोप भर से नाचने गानेवाले इकट्ठे किये गये थे। प्रतिनिधियो की आवभगत करते हुए आस्ट्रियन सरकार दिवालिया तक हो गई थी।

कार्यनीति—काग्रेस के कार्य का कोई निश्चित ढग न था। कोई प्रस्ताव पेश नही होते थे, वोट लेने की भी व्यवस्था नही थी। नाचघर मे राज्यो की सीमाएँ तय होती थी। नाच-तमाशे देखते हुए राज्यो को वढाने या घटाने का फैसला हो जाता था। गम्भीर से गम्भीर राजनीतिक मामले सहभोजो, तमाशो और सगीत सम्मेलन मे तय कर लिये जाते थे। किसी ने कोई हँसी मजाक की वात कही, औरो को पसन्द आ गई, मान ली गई। जिन देशो के भाग्य का निर्णय हो रहा है, उनकी जनता क्या चाहती है, इसकी किसी को परवाह नही थी। रूस, आस्ट्रिया, प्रशिया और ब्रिटेन के शक्तिशाली प्रतिनिधि जो चाहते थे, हो जाता था। काग्रेस का कोई निश्चित सभापति नही था। मेटरनिख ही प्रधान और मन्त्री दोनो का कार्य करता था। वह जिस ढग से चाहता, कार्य चलाता। आस्ट्रिया, प्रशिया, रूस और ब्रिटेन—इन चार मुख्य राज्यो ने आपस में गुप्त फैसला कर लिया था, कि सव मामलो पर पहले आपस मे फैसला कर लेगे, और फिर उसे काग्रेस के सम्मुख पेश करेंगे। निर्वल राष्ट्रो की किसी को परवाह न थी। नैपोलियन का पतन करने के लिये जो अन्तिम गुट वना था, उसने डके की चोट के साथ उद्घोषित किया था, कि हम निर्वल राष्ट्रो को साम्राज्यवादी नैपोलियन के पजे से मुक्त करना चाहते है, पर अव विजयी हो जाने के अनन्तर उन्हें अपने स्वार्थ-साधन के अतिरिक्त अन्य किसी वात की चिन्ता नही थी। फ्रास का प्रतिनिधि तेलीरा ही था, जिसे निर्वल राष्ट्रो की फिकर थी। वस्तुत, वह इन छोटे राज्यो की सहायता से अपने देश के हितो की रक्षा करना चाहता था। वह इस वात पर जोर देता था, कि काग्रेस का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार होना चाहिये। परन्तु प्रशिया का फान हुम्वोल्ड्ट उसे जवाव देता

था, 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस'। हम अन्तर्राष्ट्रीय कानून को मानते ही नहीं। विजयी राज्यों के प्रतिनिधि अपनी ताकत के जोर पर मनमानी करने पर तुले हुए थे। पर उनके स्वार्थ भी आपस में टकरा खाते थे। निर्बल राज्यों को इसी बात का भरोसा था। तेलीरां इन्हीं मतभेदों और झगड़ों से लाभ उठाकर अपने उद्देश्य को पूर्ण करने का प्रयत्न कर रहा था।

विचारणीय प्रश्न—वीएना की कांग्रेस के सम्मुख प्रधानतया निम्नलिखित कार्य थे-

(१) बेल्जियम, हालैण्ड, राइन का राज्यसंघ, इटली के विविध राज्य, वारसा का राज्य और स्विट्जरलैण्ड की सीमाओं को निश्चित किया जाना था। यह भी निर्णय होना था, कि इन प्रदेशों को पृथक् राज्य के रूप में रखा जाय या नहीं।

(२) नैपोलियन के जमाने में जो विविध नवीन शासक यूरोप के रंग-मंच पर प्रगट हो गये थे, उनका निबटारा किया जाना था। साथ ही, पुराने राजवंशों के पुनरुद्धार के विषय पर भी विचार होना था।

(३) फ्रांस फिर कभी यूरोप की शान्ति और व्यवस्था के लिये खतरा न बन सके, इसका भी इन्तजाम आवश्यक था।

(४) जिन राज्यों ने नैपोलियन की सहायता की थी, या उसकी आज्ञाओं का पालन किया था, उन्हें क्या दण्ड दिया जाय, इस बात का भी निर्णय किया जाना था।

निर्णय करने के सिद्धान्त—इन समस्याओं का निर्णय बहुत कठिन नहीं था, पर शक्तिशाली यूरोपियन राज्यों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा तथा स्वार्थभावना ने इसे बहुत कठिन बना दिया था। रूस का जार सम्पूर्ण पोलैण्ड पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था। प्रशिया की आंख सेक्सनी पर थी। आस्ट्रिया इटली को हड़प जाना चाहता था, और जर्मनी पर भी पूर्ववत् अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। ग्रेट ब्रिटेन की इच्छा थी, कि फ्रांस के जिन उपनिवेशों पर गत युद्धों में उसने विजय प्राप्त की थी, उन्हें अपने कब्जे में रखे और साथ ही समुद्र पर भी उसका प्रभुत्व अक्षुण्ण बना रहे। फ्रांस अपने पुराने राज्य को कायम रखने की चिन्ता में था। छोटे राज्यों की अपनी अलग स्कीमें थीं। ऐसी स्थिति में किसी भी मामले का निबटारा सुगमता से कर सकना सम्भव नहीं था। विजयी राज्यों का सिद्धान्त तो यह था, कि पराजितों के माल को आपस में बांट लिया जाय। इसी सिद्धान्त को लेकर वे अपना कार्य कर रहे थे। वे समझते थे, न्याय यह है, कि जो भी राजा राज्यक्रान्ति से पूर्व यूरोप के विविध देशों का शासन कर रहे थे, उन सब के वंशधरों को फिर से राजगद्दी पर बिठा दिया जाय। पर यह कर सकना सुगम नहीं था। इसलिये निश्चय किया गया, कि इन राजाओं को शासन के लिये कोई न कोई प्रदेश देकर सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया जाय। वीएना में एकत्र राजनीतिज्ञों के सम्मुख 'राष्ट्रीयता' तो कोई कीमत ही नहीं रखती थी। राष्ट्रीयता की सर्वथा उपेक्षा कर वे 'परमेश्वर' द्वारा पृथिवी का शासन करने के लिये नियत किये गये राजाओं के अधिकारों और दावों की रक्षा करने के लिये कटिबद्ध थे। आज संसार में 'राष्ट्रीयता का सिद्धान्त' सर्वसम्मत है, पर उस समय यह एक भयंकर तथा क्रान्तिकारी सिद्धान्त था, जिसे राज्यक्रान्ति ने उत्पन्न किया था। उस समय के 'सभ्य' लोग इसे हानिकारक तथा अनुचित समझते थे।

मुख्य फैसले—वीएना की काग्रेस ने यूरोप के राजनीतिक नक्शे मे जो मुख्य-मुख्य परिवर्तन किये, उन्हे यहा उल्लिखित करना आवश्यक है—

(१) **हालैंड, स्विट्जरलैंड और फ्रास**—पिछले दिनो मे फ्रास ने जिन प्रदेशो पर अधिकार प्राप्त कर लिया था, उनमे से वेल्जियम और लुक्समबुर्ग हालैण्ड के साथ मिला दिये गये और इन तीनो राज्यो पर शासन करने के लिये आरेन्ज के राजवश को नियत किया गया। वेल्जियम और लुक्समवुर्ग की जनता हालैण्ड की जनता से सर्वथा भिन्न थी। परन्तु वीएना की कागेस ने इस वात की जरा भी परवाह न कर उन्हे एक ही शासन के अधीन कर दिया। स्विट्जरलैण्ड को फिर स्वतन्त्र सघात्मक रिपब्लिक के रूप मे परिणत कर दिया गया। फ्रास मे वूर्वो राजवश का पुनरुद्धार किया गया। उसकी सीमाएँ वे ही रखी गई, जो कि राज्यक्रान्ति से पूर्व थी। जब नैपोलियन एल्वा से वापिस आया था, तो फ्रास की जनता ने उसका साथ दिया था। इस अपराध पर सेवाय के प्रदेश को फ्रास से छीन लिया गया। फ्रास को यह अच्छी सजा दी गई थी। उस जमाने का ढग ही यह था।

(२) **जर्मनी**—नैपोलियन के आक्रमणो से पूर्व जर्मनी मे कई सौ राज्य थे। इनमे से अनेक राज्य चर्च की सम्पत्ति थे, और अनेक का विस्तार एक शहर से अधिक नही था। अधिकाश राज्य छोटे-छोटे थे। नैपोलियन ने इनमे से बहुत से राज्यो का अन्त कर कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण राज्यो को सगठित कर रहाइन के राज्यसघ का निर्माण किया था। अब यह तो असम्भव था, कि क्रान्ति के युग से पूर्व के सैकडो राज्यो का पुनरुद्धार किया जाय। वीएना के राजनीतिज्ञो ने जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यो के दावो पर कोई ध्यान नही दिया। उन्होने सब मिलाकर ३८ राज्यो को कायम रखा और उनको एक नवीन सघ मे सगठित किया। इस नवीन जर्मन राज्यसघ (कान्फिडरेशन) की एक केन्द्रीय राजसभा वनाई गई, जिसका नेता आस्ट्रिया को नियत किया गया। आस्ट्रिया की अधिकाश जनता जर्मन जाति की ही है। परन्तु ऐतिहासिक घटनाओ ने उसे बहुत समय से जर्मनी से पृथक् किया हुआ था। पर वस्तुत वह प्रशिया आदि अन्य जर्मन राज्यो के ही सदृश था, और इस काल के जर्मन राज्यो में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। आस्ट्रिया के नेतृत्व मे अब जिस नवीन जर्मन राज्यसघ का निर्माण हुआ, उसमे सब राज्यो—जिनकी सख्या ३८ थी—के प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये। यह स्मरण रखना चाहिये, कि ये जनता के प्रतिनिधि न होकर राजाओ के प्रतिनिधि थे, और उन्ही के प्रति उत्तरदायी होते थे। जर्मनी के जिन राज्यो की सत्ता को वीएना की काग्रेस ने स्वीकृत किया था, उनकी सीमा निश्चित करते हुए उसे बहुत कठिनता का सामना करना पडा। प्रशिया को बहुत नये प्रदेश दिये गये। रहाइन नदी का पश्चिमी प्रदेश, जिसको फ्रास ने जीत कर अपने अधीन कर लिया था, अब प्रशिया को दे दिया गया। सैक्सनी के राज्य ने पिछले युद्धो मे नैपोलियन की सहायता की थी, अत उसे यह सजा दी गई, कि उसका ४० प्रतिशत प्रदेश प्रशिया के अधीन कर दिया गया। पोलैण्ड और पोमेरेनिया का भी कुछ प्रदेश प्रशिया को दिया गया। नैपोलियन को परास्त करने मे प्रशिया का बडा हाथ था। अत स्वाभाविक रूप से उसे वीएना की काग्रेस मे बहुत से नये प्रदेश प्राप्त हुए और वह यूरोप के प्रथम श्रेणी के राज्यो मे गिना जाने लगा। प्रशिया सैनिक दृष्टि से तो पहले ही बहुत उन्नति कर चुका था,

अब उसका क्षेत्र भी बहुत काफी विस्तृत हो गया।

(३) **इटली**—इटली के विविध राज्यों को फिर से स्थापित किया गया। नेपल्स की राजगद्दी फिर बूर्बो राजवंश के अधीन की गई। पोप के प्रदेश फिर पोप के अधीन कर दिये गये। पीडमाण्ट का राज्य फिर सार्डिनिया के राजा को दिया गया। जिनोआ के प्राचीन रिपब्लिक भी इसी राज्य के साथ सम्मिलित कर दी गई। टस्कनी और मोडन मे फिर से उनके पुराने राजवंशो की स्थापना की गई। परमा का राज्य नैपोलियन के धर्मपत्नी मेरिया लुइसा के, जो कि आस्ट्रिया की राजकुमारी थी, सुपुर्द कर दिया गया पहले बेल्जियम पर, जो आस्ट्रियन नीदरलैण्ड के नाम से प्रसिद्ध था, आस्ट्रिया का कब्ज था। अब यह प्रदेश हालैण्ड को दे दिया गया था। अत आस्ट्रिया को सतुष्ट करने के लि बेल्जियम के बदले मे वेनिस की प्राचीन रिपब्लिक उसे सौप दी गई। मिलान तो नैपोलि के युद्धो से पूर्व भी आस्ट्रिया के अधीन था। अब वेनिस पर भी अधिका हो जाने के कारण उत्तरी इटली का एक महत्वपूर्ण प्रदेश—जो कि लोम्बार्डो-वेनेटिय राज्य के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है, आस्ट्रिया के अधीन हो गया। इस प्रका इटली मे अनेक राज्य कायम हुए। नैपोलियन के आक्रमणों का एक बड़ा लाभ इटली ि लिये यह हुआ था, कि वह प्रधानतया दो राज्यो मे सगठित हो गया था—इटली का राज और नेपल्स। इससे इटालियन लोगो मे अपनी एकता और राष्ट्रीयता की भावना उत्प होने लग गई थी। पर अब फिर उसे अनेक भागो में विभक्त कर दिया गया, औ इटली के एक सगठन मे सगठित होने की सम्भावना सुदीर्घ समय के लिये दूर जा पडी

(४) **स्वीडन**—फिनलैण्ड का प्रदेश स्वीडन से लेकर रूस को दे दिया गया। इ प्रकार पोमेरेनिया का प्रदेश प्रशिया के सुपुर्द किया गया। इनके बदले मे नार्वे का राज स्वीडन को दे दिया गया। नार्वे पहले डेनमार्क के अधीन था, पर क्योकि डेनमार्क के राज ने नैपोलियन की सहायता की थी, अत उसे यह सजा दी गई, कि नार्वे उससे छीन लिय गया।

(५) **पोलैण्ड**—पोलैंड को तीन टुकडो मे विभक्त कर रूस, प्रशिया तथा आस्ट्रिय ने निगल लिया। इससे पूर्व भी पोलैंड को अनेक बार इन राज्यो ने किस प्रकार आपस ि बाटा था, इस का वृत्तात यहा लिखने की आवश्यकता नही है। इतना निर्दिष्ट करन पर्याप्त है, कि वीएना की काग्रेस ने पोलैंड का मुख्य भाग रूस के अर्पित किया। वार्स का जो राज्य नैपोलियन के समय में बनाया गया था, वह भी रूस को दे दिया गया। पोमर योर्न और डान्टि्सग के प्रदेश प्रशिया के हिस्से मे आये। दक्षिणी गेलेसिया आस्ट्रिय के सुपुर्द किया गया।

(६) **ग्रेट ब्रिटेन**—ग्रेट ब्रिटेन ने बहुत से नवीन उपनिवेश प्राप्त किये। माल्ट सेण्ट लूसिया, टोबेगो और मोरिशस—ये द्वीप फ्रास से लेकर ब्रिटेन को दिये गये। ट्रिनि डाड और हाण्ड्रस पहले स्पेन के अधीन थे। वे भी अब ब्रिटेन को प्राप्त हुए। इसी प्रका सीलोन, केप कोलोनी और गायना का कुछ प्रदेश हालैण्ड से ब्रिटेन के हाथ लगा। ऊप मे देखने पर इन प्रदेशो व उपनिवेशो का विशेष महत्त्व नही मालूम होता, पर वस्तुत ग्रे ब्रिटेन इसी काल में अपने विशाल सामुद्रिक व औपनिवेशिक साम्राज्य की नीव डाल रहा था

इंग्लैण्ड
उत्तरी सागर
डनमार्क
हनोवर
प्रशिया
नीदर लैण्ड
प्रशिया
सेक्सनी
पोलैण्ड
अटलान्टिक सागर
लुक्समबुर्ग ल
सेल्सविग – स
हालस्टाइन ह
जर्मन राज्य सघ
बवेरिया
आ स्ट्रि या सा म्रा ज्य
स्वि०
फ्रांस
लम्बार्डी
वेनिस
मोडेना
पीडमांट
पारमा
हंगरी
बोसनिया
सरविया
टर्की साम्राज्य
एड्रियाटिक सागर
स्पेन
कार्सिका
भू म ध्य सा ग र
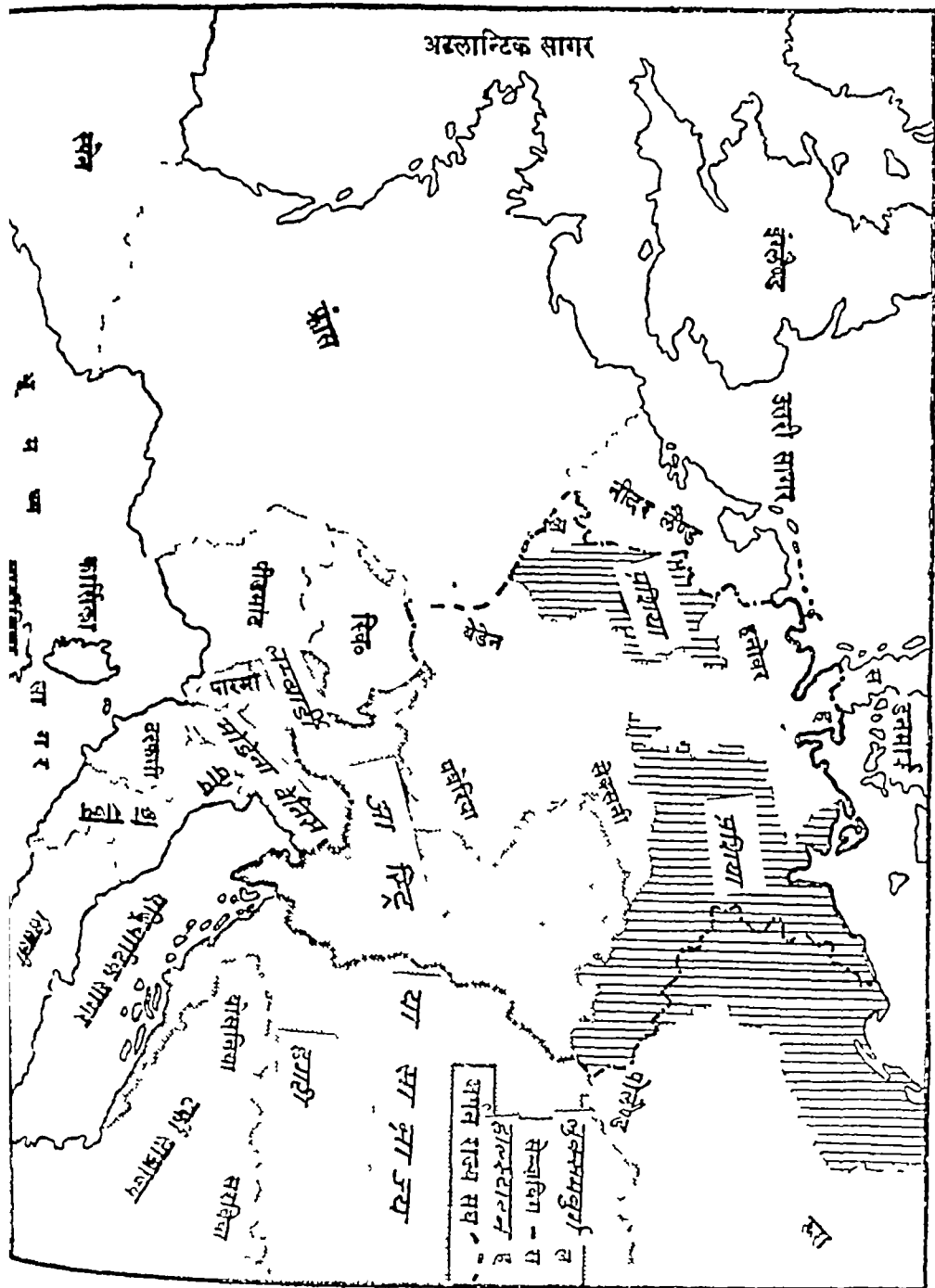
जो द्वीप उसने वीएना की काग्रेस मे प्राप्त किये थे, वे सामुद्रिक शक्ति की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण थे। विशेषतया माल्टा, सीलोन, केप कोलोनी और मोरीशस आगे चलकर ब्रिटेन के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए।

(७) स्पेन—स्पेन मे फिर से वहा के पुराने बूर्बो राजवश की स्थापना की गई।

दास प्रथा का विरोध—इन विविध राजनीतिक और प्रादेशिक परिवर्तनो के अतिरिक्त वीएना की काग्रेस ने अन्य भी अनेक निर्णय किये। दासप्रथा के विरुद्ध प्रस्ताव पास हुआ, और यह उद्घोषित किया गया कि यह प्रथा सभ्यता और मानवीय अधिकार के सर्वथा प्रतिकूल है। परन्तु इस प्रस्ताव को क्रिया मे परिणत करना प्रत्येक राज्य की अपनी इच्छा पर छोड दिया गया। अठारहवी सदी मे दासो का व्यापार जिस क्रूरता से होता था, दासो पर जिस ढग से भयकर अत्याचार किये जाते थे, उससे पाश्चात्य ससार के सभ्य विचारशील लोग उद्विग्न हो उठे थे। सबसे पूर्व अमेरिका ने दास प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई। उसके बाद मार्च, १८०७ मे ब्रिटिश पार्लियामेट ने इस प्रथा को नष्ट करने का प्रस्ताव पास किया। १८१३ मे स्वीडन ने दास प्रथा को नष्ट किया, और एक वर्ष बाद १८१४ मे हालैण्ड ने स्वीडन का अनुसरण किया। वीएना की काग्रेस मे पूर्व ही दासप्रथा के विरुद्ध वातावरण तैयार था, और इस कारण इस विषय में प्रस्ताव पास करना बहुत कठिन बात नही थी।

अन्तर्राष्ट्रीय विधान—दासप्रथा के विरुद्ध प्रस्ताव पास करने के अतिरिक्त वीएना की काग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय विधान तैयार करने के लिये भी उद्योग किया। यूरोप की नदियो में नौकानयन के लिये विविध देशो में क्या नियम हो, समुद्र का उपयोग विविध राज्य किस प्रकार करे, और राज्यो के आपस मे व्यवहार करने के लिये क्या नियम हों—इन सब बातो को एक विधान में सकलित किया गया।

वाटर्लू के युद्ध से कुछ दिन पूर्व २ जून, १८१५ तक वीएना की काग्रेस अपना कार्य समाप्त कर चुकी थी। सब समझौतो को एक निश्चित विधान मे एकत्रित कर लिया गया था, और उन पर विविध राज्यो के हस्ताक्षर भी हो चुके थे।

काग्रेस की भूलें—वीएना की काग्रेस का यह कार्य बीसवी सदी के एतिहासिक को बहुत ही अद्भुत तथा विचित्र प्रतीत होगा। वीएना मे एकत्रित राजनीतिज्ञो की दृष्टि में राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का कोई महत्त्व नही था। बेल्जियम के लोगो को अपना पृथक् राज्य बनाने का हक है, नार्वे को स्वीडन के साथ नहीं मिलाना चाहिये, फिन लोग रूस के नीचे नही रहना चाहते, पोलेंड मे जो लोग बसते है, वे एक है, उन्हें तीन टुकडो मे बाटकर तीन लुटेरो के हाथो मे नही सौंप देना चाहिये, इटली एक देश है, उसे एक सगठन में सगठित करना चाहिये—ये सब विचार वीएना के इन 'महान् राजनीतिज्ञो' को बहुत ही अस्वाभाविक, अनुचित तथा क्रान्तिकारी प्रतीत होते थे। साथ ही, राज्य के शासन मे जनता की इच्छा को भी कोई स्थान प्राप्त है,यह बात इन राजनीतिज्ञो को समझ में नही आती थी। जनता के भी कोई अधिकार है, यह इनकी अकल मे ही नही समाता था। इनकी दृष्टि में यदि किसी के अधिकार थे, तो केवल उन उच्च राजवशो के, जिन्हें साक्षात् भगवान् ने पृथिवी पर अपना प्रतिनिधि नियत किया है। वीएना मे जो कुछ भी

हुआ, समय की प्रवृत्तियों के सर्वथा विरुद्ध हुआ। फ्रास की राज्यक्रान्ति ने जिन प्रवृत्तियो को जन्म दिया गया था, वे एकदेशीय नही रहसकती थी। उन्होने धीरे-धीरे सम्पूर्ण यूरोप को ही नही, अपितु सम्पूर्ण ससार को व्याप्त कर लिया था। वीएना मे उन प्रवृत्तियो की उपेक्षा की गई। यह सर्वथा स्वाभाविक था, क्योकि मानव जाति की एक निर्बलता है, वह नई बात को जल्दी नही समझ सकती, नई प्रवृत्तियो को सुगमता से नही पहचान सकती। परन्तु यह स्पष्ट है, कि वीएना मे जो कुछ हुआ, वह समय को देखते हुए सर्वथा अनुचित तथा अस्वाभाविक था। यही कारण है, कि अगली एक सदी के यूरोपीय इतिहास ने विएना की सम्पूर्ण कृति को पलट दिया। १८१५ के बाद १५ साल के अन्दर ही बेल्जियम हालैण्ड से पृथक् हो गया। ५० सालो मे इटली और जर्मनी का स्वरूप सर्वथा परिवर्तित हो गया। इटली एक हो गया, सम्पूर्ण इटली मे एक राज्य स्थापित हो गया। जर्मनी ने आस्ट्रिया से पृथक् होकर अपने नवीन सगठन का निर्माण किया। नार्वे को स्वीडन से पृथक् होने मे देर नही लगी। १९१४-१८ के यूरोपीय महायुद्ध ने तो राज्यो की सीमा को राष्ट्रीयता के आधार पर निश्चित करने मे कोई भी कसर उठा नही रखी। पश्चिमी ससार मे उन्नीसवी सदी का इतिहास राष्ट्रीयता तथा लोकसत्तावाद के सिद्धान्तो और पुराने जमाने के पारस्परिक सघर्ष के वृत्तान्त से परिपूर्ण है। आखिरकार, नये सिद्धान्तो की विजय हुई। आज ससार राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को स्वीकार करता है, स्वभाग्य-निर्णय तथा लोकसत्तावाद के सिद्धान्तो मे आज किसी को भी सन्देह नही रहा है। आज दुनिया वीएना की काग्रेस के वातावरण से बहुत आगे बढ गई है।

काग्रेस से लाभ—परन्तु वीएना की काग्रेस से अनेक लाभ भी हुए। यूरोप मे शान्ति की स्थापना हो गई। चौथाई सदी के निरन्तर युद्धो के बाद यूरोप को शान्ति की बहुत सख्त जरूरत थी। कम से कम इस शान्ति की स्थापना में वीएना की काग्रेस को अवश्य सफलता हुई। इसके अतिरिक्त, यह पहला ही अवसर था, जब यूरोप के सम्पूर्ण राज्यो ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये थे। इससे कम से कम राज्यो को यह तो अनुभव हुआ, कि हम परस्पर मिलकर भी कार्य कर सकते है, आपस मे बातचीत करके भी किसी एक समझौते पर पहुच सकते है। राज्यो की अराजकता को नष्ट करने के लिये यह एक महत्त्वपूर्ण पग था। वीएना मे यूरोप भर के प्रतिनिधि एकत्रित हुए थे। उन्होने मिलकर अपनी समस्याओ पर विचार किया था, चाहे उनके विचार करने का ढग कितना ही निकम्मा क्यो न हो, चाहे उनके विचार कितने ही पुराने तथा भद्दे क्यो न हो—पर वे एक निश्चित उद्देश्य के लिये इकट्ठे तो हुए थे, और समय को देखते हुए यह बात भी कम न थी।

दसवाँ अध्याय

प्रतिक्रिया का काल

१. अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर पहला पग

वीएना की काग्रेस ने अपना कार्य अभी समाप्त किया ही था, कि नैपोलियन एल्वा के द्वीप से निकलकर फ्रास पहुच गया। किस प्रकार वाटर्लू के रणक्षेत्र मे उसे सदा के लिये परास्त कर दिया गया, इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। नैपोलियन के पतन के अनन्तर यूरोपियन राज्यो को निश्चिन्तता और सन्तोष का साम लेने का अवसर मिला। यूरोप युद्धो मे थक चुका था। केवल राजा ही नही, जनता भी शान्ति के लिये उत्सुक थी। लोग लडाई से ऊब चुके थे, और वस्तुत यूरोप को इस समय किसी ऐसे उपाय की आवश्यकता थी, जिससे युद्धो की सम्भावना एक अच्छे बडे समय के लिये दूर हो सके। इस दशा में यूरोप के प्रमुख राज्यो मे स्वाभाविक रूप से ऐसे साधनो को अपनाने की प्रवृत्ति हुई, जिनमे वे अपने मामलो को परस्पर सहयोग व विचारविनिमय द्वारा, युद्ध के विना ही निबटाने मे समर्थ हो। आगे चलकर जिस अन्तर्राष्ट्रीयता का यूरोप में विकास हुआ, उसकी ओर यह प्रथम पग था।

पवित्र मित्रमडल—आस्ट्रिया, रूस, प्रशिया और ग्रेट ब्रिटेन ने आपस में मिलकर नैपोलियन को परास्त किया था। वीएना मे भी ये चार राज्य ही सर्वप्रधान थे। अब इनके कन्धो पर ही इस बात की भी जिम्मेवारी थी, कि युद्ध की सम्भावना को दूर करने के लिये उपाय करें। सबसे पूर्व रूस के जार अलैक्जेण्डर प्रथम ने यह प्रस्ताव पेश किया, कि राजा लोग मिलकर एक धार्मिक भाई-चारे का निर्माण करे, और यह मित्रमडल यूरोप में शान्ति स्थापित रखने की उत्तरदायिता अपने ऊपर ले। अलेक्जेण्डर ने इसको 'पवित्र मित्रमण्डल' (होली एलायन्स) के नाम से पुकारा, और अन्य राज्यो से इसमे सम्मिलित होने की प्रार्थना की। प्रशिया के राजा और आस्ट्रिया के सम्राट् ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, और 'पवित्र मित्रमण्डल' का मसविदा दिसम्बर, १८१५ मे प्रकाशित किया गया। इस मसविदे मे रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया के राजाओ ने यह उद्घोषित किया, कि वे सब आपस मे एक दूसरे को भाई-भाई समझेगे, और एक की विपत्ति को सब अपनी ही विपत्ति मानेगे। इस मसविदे के अनुसार सम्पूर्ण ईसाई जगत् का वास्तविक स्वामी परमेश्वर था, जिसने विविध राजाओ को अपनी प्रजा पर शासन करने के लिए नियुक्त किया था। सम्पूर्ण ईसाई जगत् का असली स्वामी ईश्वर ही था, अत उस द्वारा नियत राजाओ को परस्पर सहयोग के साथ कार्य करना ही चाहिये। अन्य राजाओ को भी इस मित्रमण्डल में सम्मिलित होने के

लिये निमन्त्रित किया गया। बहुत से राज्यो ने निमन्त्रण को स्वीकार भी किया। ब्रिटेन इसमे शामिल नही हुआ। टर्की के सुल्तान को निमन्त्रण ही नही दिया गया था, और पोप ने इसमे सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया था। विचारशील लोग इस मसविदे को धोखेबाजी के सिवा और कुछ नही समझते थे। सर्वसाधारण लोगो का खयाल था, कि जनता के अधिकारो को कुचलने के लिये ही यह नया गुट बनाया गया है। निस्सन्देह, इस बात मे बहुत कुछ सचाई थी।

चतुर्मुख मित्रमण्डल—'पवित्र मित्रमण्डल' की यह स्कीम कामयाब नही हो सकी। इसके दो महीने बाद ही २० नवम्बर, १८१५ के दिन रूस, प्रशिया, आस्ट्रिया और ग्रेट ब्रिटेन—इन चार राज्यो ने मिलकर एक 'चतुर्मुख मित्रमडल' का निर्माण किया। यह मित्रमडल बहुत देर तक यूरोप के राजनीतिक मामलो का सचालन करता रहा। १८४८ की राज्यक्रान्ति द्वारा इस का अन्त हुआ। चौथाई शताब्दि के लगभग तक यह मडल यूरोप का भाग्यविधाता बना रहा। इस मडल का निर्माण इस उद्देश्य से हुआ था, कि यूरोप मे क्रान्तिकारी विचारो को नष्ट किया जावे, नैपोलियन और उसके परिवार का कोई व्यक्ति फ्रास व यूरोप की किसी राजगद्दी पर न बैठ सके, और राजाओ के अबाधित शासन को सर्वत्र अक्षुण्ण रखा जावे। इस मण्डल की धारणा थी, कि किसी भी राज्य के आन्तरिक मामलो मे भी हस्तक्षेप किया जा सकता है। यदि यूरोप के किसी कोने मे भी क्रान्ति की भावनाए व नवीन प्रवृत्तिया बलवती होगी, तो उनसे सभी राज्यो को नुकसान पहुचेगा। जनता मे कही किसी भी प्रकार का असन्तोष हो, तो उसको दबाना यह मित्रमण्डल अपना कर्त्तव्य समझता था। इस मण्डल ने यह भी व्यवस्था की, कि समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होते रहें, जिनमे कि यूरोप मे शान्ति स्थापना के सम्बन्ध में विचार हुआ करे और अशान्ति के तत्वो को नष्ट करने के उपायो का निश्चय किया जाया करे।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन—यूरोपियन समस्याओ पर विचार करने के लिये पहला सम्मेलन एक्स-ला-शापेल मे १८१८ में हुआ। इसमें वोट देने का अधिकार केवल रूस, प्रशिया, आस्ट्रिया और ग्रेट ब्रिटेन—इन चार राज्यो को ही प्राप्त था। पीछे से फ्रास को भी यह हक दे दिया गया, क्योकि उसने पेरिस की सन्धि की सम्पूर्ण शर्तो को पूर्णरूप से क्रिया मे परिणत कर दिया था। इस प्रकार अब यह मडल 'चतुर्मुख' के स्थान पर 'पचमुख' हो गया। अन्य राज्यो को इस सम्मेलन में निमन्त्रित तो किया गया था, पर उन्हे वोट का अधिकार नही था। वे अपने विचार प्रकट कर सकते थे, उनसे सलाह ली जा सकती थी, पर इसके अतिरिक्त उनका कोई अधिकार नही था।

दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन १८२० मे ट्रोप्पा नामक स्थान पर हुआ। १८२० मे स्पेन और नेपल्स में क्रान्तिया हुई थी, और उन्ही पर विचार करने के लिये यह सम्मेलन बुलाया गया था। इसमे रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया ने 'हस्तक्षेप के सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया। इन राज्यो का कहना था, कि यदि क्रान्ति द्वारा सरकारो मे परिवर्तन करने का प्रयत्न किया जायगा, तो हमे हस्तक्षेप करने का पूर्ण अधिकार होगा। ग्रेट ब्रिटेन और फ्रास ने इसका विरोध किया। उनका कहना था, कि यह मामला

प्रत्येक राज्य का अपना है। दूसरो को उसमे हस्तक्षेप नही करना चाहिये।

तीसरा सम्मेलन लैब्रख मे सन् १८२१ मे हुआ। इस समय नेपल्स मे पुन विद्रोह हुआ था। इस सम्मेलन ने आस्ट्रिया को यह अधिकार दिया, कि वह नेपल्स के इस आन्तरिक मामले मे हस्तक्षेप कर विद्रोह को शान्त करे। इस प्रकार हस्तक्षेप के सिद्धान्त को क्रिया मे परिणत किया गया, और आस्ट्रिया ने नेपल्स के विद्रोह को शान्त किया। इसी समय ग्रीस मे टर्की के शासन के विरुद्ध ग्रीक लोगो ने विद्रोह किया। इस पर रूस ने उद्घोषित किया, कि हम इस प्रकार के विद्रोहो को बिल्कुल पसन्द नही करते, और क्रान्तिकारियो को सावधान करते है कि वे भविष्य मे इस प्रकार का कार्य कभी न करे।

१८२३ मे वेरोना नामक स्थान पर चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन किया गया। इस समय स्पेन तथा उसके अमेरिकन उपनिवेशो मे विद्रोह हो रहे थे। इसी प्रकार, पीडमोण्ट तथा ग्रीस में भी विद्रोह की अग्नि भडक रही थी। पीडमोण्ट में हस्तक्षेप करने का अधिकार आस्ट्रिया को दिया गया। स्पेन का मामला फ्रास के तथा ग्रीस का मामला रूस के सुपुर्द किया गया। 'पचमुख मित्रमडल' अमेरिकन उपनिवेशो के मामले मे भी हस्तक्षेप करना चाहता था। पर सयुक्त राज्य अमेरिका इस बात को नही सह सका। वहा की सरकार ने उद्घोषित किया, कि नई दुनिया (अमेरिका) के मामलो मे पुरानी दुनिया (यूरोप) हस्तक्षेप न करे। इसी प्रकार अमेरिका भी यूरोपियन झगडो से कोई सम्बन्ध न रखे। सयुक्त राज्य अमेरिका के उस समय के राष्ट्रपति मुनरो के नाम से यह सिद्धान्त 'मुनरो सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी के कारण यूरोपियन राज्य अमेरिकन उपनिवेशो मे हस्तक्षेप न कर सके, और वे स्पेन की अधीनता से स्वतन्त्र हो गये।

मित्रमण्डल का पतन—निस्सन्देह, यह मित्रमण्डल यूरोप में शान्ति स्थापित रखने के कार्य में बहुत कुछ सफल हुआ। जहा तक शान्ति स्थापना का उद्देश्य था, वहा तक इसकी उपयोगिता थी, और इसका कार्य वस्तुत लाभदायक था। पर नई प्रवृत्तियो को कुचलने की कोशिश बहुत ही अनुचित और हानिकारक थी। एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन से तग आये हुए लोग जब अपने अधिकारो के लिये सघर्ष करने को उतारू होते थे, तो यह 'मित्रमडल' उन्हें कुचल देने के लिये यूरोप भर की सम्मिलित शक्ति को लेकर आ खडा होता था। जनता की नई भावनाओ का यह सबसे बडा दुश्मन था। कुछ समय तक इसे निरन्तर सफलता होती रही, पर आखिरकार इसके विरोध में भी शक्तिया सगठित होने लगी। ट्रोप्पा के सम्मेलन में ग्रेट ब्रिटेन और फ्रास ने इसके सिद्धान्तो का घोर विरोध किया था। 'मुनरो सिद्धान्त' स्पष्ट से इसके विरोध मे था। १८३० और १८४० की क्रान्तियो से इसे जबर्दस्त धक्के लगे। इन सब कारणो से यह चतुर्मुख या पचमुख मित्रमडल आखिर नष्ट हो गया, और नई प्रवृत्तियो को क्रिया मे परिणत होने का द्वार खुल गया।

मित्रमण्डल की उपयोगिता—१८१५ से १८४८ तक चतुर्मुख व पचमुख मित्रमडल यूरोप मे कायम रहा। यूरोप के इतिहास में यह शान्ति का काल था। इस बीच मे कोई बडी लडाई यूरोप में नही हुई। विविध राज्यो में जनता अपने स्वेच्छाचारी व निरकुश शासको के विरुद्ध सघर्ष अवश्य करती रही, कई जगह क्रान्तिया व विद्रोह भी हुए। पर

इन क्रान्तियो ने किसी वडे युद्ध का प्रादुर्भाव नही किया। इसका प्रमुख श्रेय इस मित्रमडल को ही है। इसमें सम्मिलित राज्य व राजा इस बात के लिये प्रयत्नशील थे, कि यूरोप मे शान्ति और व्यवस्था कायम रहे, और परस्पर सहयोग द्वारा कार्य करे। बीसवी सदी में राष्ट्रसघ (लीग आफ नेशन्स) और सयुक्त राज्यसघ (यूनाइटेड नेशन्स आर्गनिजेशन) के रूप मे ससार ने अन्तराष्ट्रीयता की ओर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम बढाये। पर इस अन्तराष्ट्रीयता का प्रारम्भ उन्नीसवी सदी मे चतुर्मुख मित्रमडल के रूप मे ही हुआ था। बीसवी सदी का राष्ट्रसघ भी ससार मे चिरशान्ति स्थापित कराने मे असफल रहा। सयुक्त राज्यसघ भी अपने उद्देश्य मे कहा तक सफल होगा, यह बात सदिन्ध है। इसका प्रधान कारण शक्तिशाली राज्यो की साम्राज्यसम्बन्धी प्रवृत्तिया ओर निर्बल राज्यो की उपेक्षा है। इन्ही कारणो से उन्नीसवी सदी का मित्रमडल भी अपने उद्देश्य मे सफल नही हो सका था। रूस, आस्ट्रिया, प्रशिया और इगलैड जहा यूरोप मे शान्ति स्थापना के लिये इच्छुक थे, वहा साथ ही उनमे साम्राज्यसबधी प्रतिस्पर्धा भी विद्यमान थी। इसके अतिरिक्त, वे जनता के अधिकारो को स्वीकृत करने के लिये तैयार नही थे। लोकतत्रवाद और राष्ट्रीयता की जिन नई प्रवृत्तियो को फ्रास की राज्यक्रान्ति ने जन्म दिया था, चतुर्मुख मित्रमण्डल उनके विरोध मे कार्य कर रहा था। इसी कारण, वह अपने उद्देश्य मे सफल नही हो सका। पर साथ ही, हमे यह स्वीकार करना होगा, कि इस मित्रमण्डल का निर्माण अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग पर महत्त्वपूर्ण कदम था, और इसने यूरोप मे शान्ति स्थापित रखने मे अच्छी सफलता प्राप्त की थी।

२ फ्रास मे प्रतिक्रिया का युग

अठारहवें लुई का शासन—नैपोलियन के पतन के बाद सोलहवे लुई के भाई को अठारहवे लुई के नाम से फ्रास की गद्दी पर बिठाया गया। क्रान्ति के प्रारम्भ होने पर जब अनेक कुलीन तथा राज-परिवार के व्यक्ति फ्रास से भाग गये थे, तब वह भी उनके साथ चला गया था, और अन्य राजाओ के साथ मिलकर निरन्तर क्रान्ति के विनाश के लिये प्रयत्न कर रहा था। सोलहवें लुई को प्राणदड मिलने के पश्चात् वह अपने को फ्रास की राजगद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी समझता था। बीस वर्ष तक वह निरन्तर राजगद्दी के लिये कोशिश करता रहा। क्राति का अन्त करने और नैपोलियन के पतन के लिये उसने भरपूर कोशिश की, और आखिर वह अपने प्रयत्न में सफल हुआ। जब वह राजगद्दी पर बैठा, तो उसका कोई खास विरोध नही हुआ। फ्रास की जनता बूर्बो राजवश के शासन के अधीन रहने के लिये अभ्यस्त थी। क्राति उन्हें नई तथा अद्भुत सी चीज मालूम होती थी। उन जमाने में सर्वसाधारण जनता राजनीतिक मामलो मे बहुत अधिक दिलचस्पी नही लेती थी। क्राति तथा उससे उत्पन्न रिपब्लिक प्रधानतया जैकोबिन दल की कृति थी। जनता का अधिकाश भाग इस बात से बेपरवाह था, कि कौन राजगद्दी पर बैठता है, और पेरिस में किसका प्रभुत्व स्थापित होता है। जब रिपब्लिक का ढाचा कायम रखते हुए नैपोलियन ने सम्पूर्ण शासन-सूत्र को अपने हाथ मे ले लिया, तो फ्रास की सर्वसाधारण जनता को विशेष आश्चर्य नही हुआ। जब नैपोलियन सचमुच सम्राट् बन गया

तब भी जनता को विशेष चिन्ता नहीं हुई, और जब बूर्बो राजवंश का ६० वर्ष का बूढ़ा लुई फिर उनके भाग्य का विधाता बन गया—तब भी उन्होंने इसे एक सामान्य सी बात ही समझा। वास्तविक बात यह है, कि फ्रान्स की अधिकांश जनता अब तक भी हृदय से राजसत्ता की ही पक्षपाती थी। जनता के विचारों में परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे होता है। वह नये विचारों को एकदम ग्रहण नहीं कर सकती। सैकड़ों वर्षों से फ्रान्स में राजा का शासन चला आ रहा था, जनता को राजाओं के शासन में रहने का अभ्यास था, राजसत्ता को मानने के संस्कार उसमें बहुत गहरे थे। वे आसानी से नहीं बदल सकते थे।

परन्तु राज्यक्रान्ति ने पच्चीस वर्ष तक जो कार्य किया था, उसे भी नष्ट नहीं किया जा सकता था। आखिर, क्रान्ति भी एक ध्रुव सत्य घटना थी। लाखों आदमियों का खून व्यर्थ में ही नहीं बहा था। बूर्बो वंश फिर फ्रांस की राजगद्दी पर आ गया, पर अब जमाना बहुत बदल चुका था। बूर्बो वंश के साथ पुराना जमाना वापस नहीं आया। सामन्त-पद्धति अब भूतकाल की चीज हो चुकी थी। चर्च अब राज्य का मुकाबला नहीं कर सकता था। कुलीन और पुरोहित श्रेणियों के विशेषाधिकारों को अब स्वीकृत नहीं किया जा सकता था। कानून की दृष्टि में सब लोग बराबर हो चुके थे। 'मुद्रित पत्रों' से अब किसी को कैद नहीं किया जा सकता था। स्वतन्त्र भाषण, स्वतन्त्र लेखन और अपने विश्वासों व अन्तरात्मा के अनुसार धार्मिक विधिविधानों का अनुसरण—ये ऐसी बातें थी, जिन्हें अब बूर्बो राजवंश भी नष्ट नहीं कर सकता था। इसीलिये अठारहवें लुई ने राजगद्दी पर बैठकर भी क्रान्ति के सिद्धान्तों को कायम रखा। उसने क्रान्ति के कार्य पर पानी फेरने का प्रयत्न नहीं किया। यदि वह चाहता, तो भी यह उसके वश के बाहर की बात थी। क्रांति को सर्वथा मिटा सकना उसके लिये असम्भव था।

जून, १८१४ की घोषणा—वैध राजसत्ता की स्थापना—जून १८१४ में अठारहवें लुई ने एक उद्घोषणा प्रकाशित की। इसके अनुसार फ्रान्स में वैध राजसत्ता को स्थापित करने की घोषणा की गई। फ्रान्स का शासन करने के लिये एक पार्लियामेंट बनाई गई, जिसमें दो सभाएं थी। एक सरदारों की सभा और दूसरी राष्ट्र प्रतिनिधि सभा। सरदारों की सभा के सदस्य राजा द्वारा मनोनीत किये जाते थे, और राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के सदस्यों को जनता चुनती थी। निर्वाचन का अधिकार सब नागरिकों को नहीं दिया गया। जिनकी आयु ३० वर्ष से कम न हो, और जो कम से कम १८० रु० वार्षिक टैक्स देते हो, उन्हीं को वोट का अधिकार दिया गया। इस प्रकार अमीर लोग ही निर्वाचन में हिस्सा लेते थे। राष्ट्र प्रतिनिधि सभा सर्वसाधारण जनता की प्रतिनिधि नहीं थी, वह केवल अमीर व मध्यश्रेणी के लोगों की ही सम्मति को प्रगट कर सकती थी। परन्तु यदि इङ्गलैंड के उस समय के शासन-विधान से तुलना की जाय, तो फ्रांस का यह शासन-विधान निस्सन्देह अधिक लोकसत्तात्मक था। प्रतिक्रिया के काल में भी फ्रांस का यह शासन-विधान यूरोप के अन्य सब देशों की अपेक्षा अधिक उन्नत था। यह राज्यक्रांति का ही प्रभाव था, जिसे प्रतिक्रिया का काल भी नहीं मिटा सका था। अठारहवें लुई ने अपनी उद्घोषणा में जनसाधारण के आधारभूत अधिकारों को भी घोषित किया। अधिकारों की इस घोषणा में क्रान्ति के प्राय सभी सिद्धान्तों को स्वीकृत किया गया था। कानून के सम्मुख सब मनुष्य बराबर हैं, राजकीय

पदो पर नियुक्त होने के लिये सब मनुष्य एक समान रूप से अधिकारी है, टैक्स का निर्णय नागरिको की सम्मति के अनुसार किया जायगा, प्रत्येक मनुष्य को धार्मिक तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता प्राप्त रहेगी, भाषण, लेखन तथा मुद्रण की सबको स्वतन्त्रता है—ये सब बाते उस अठारहवे लुई ने उद्घोषित की, जो कि सोलहवे लुई का भाई था, बूर्बो राजवश का था, जिन्दगी भर क्राति को कुचलने की कोशिश करता रहा था, और जिसे मेटरनिख तथा क्रान्ति के दुश्मनो ने राजगद्दी पर बिठाया था।

फ्रास के विविध दल—(१) कट्टर राजसत्तावादी—अठारहवे लुई के साथ बहुत से कुलीन तथा उच्च पुरोहित श्रेणियो के लोग भी फ्रास वापस लौट आये थे। ये क्रान्ति के कट्टर दुश्मन थे। क्रान्ति ने इन्हे तबाह कर दिया था। इनके हृदय मे बदला लेने की आग धधक रही थी। ये फिर से पुराने जमाने को वापस ले आने के लिए तुले हुए थे। इन्होने एक पृथक् दल सगठित किया, जो कि कट्टर राजसत्तावादी दल के नाम से प्रसिद्ध है। इस दल का नेता राजा का भाई 'आर्तोआ का काउण्ट' था। इसका कहना था, कि प्रेस को स्वतन्त्रता नही मिलनी चाहिये, कुलीनो की छिनी हुई सम्पत्ति उन्हे फिर वापस मिलनी चाहिये राजा का शासन एकतन्त्र तथा स्वेच्छाचारी होना चाहिये, और जनता का शासन में कोई अधिकार नही होना चाहिये। इस दल के लोग सख्या में बहुत अधिक नही थे, पर इनका प्रभाव तथा बल बहुत अधिक था।

(२) उदार राजसत्तावादी—राजसत्ता के पक्षपाती दल के सभी लोग इतने कट्टर तथा क्रान्ति के दुश्मन नही थे। 'आर्तोआ के काउण्ट' के दल के अतिरिक्त राजसत्तावादियो का एक और भी दल था, जो समय की गति को समझता था। ये लोग भली भाँति समझते थे, कि क्रान्ति के सम्पूर्ण कार्य को बात की बात में नष्ट नही किया जा सकता। इन्ही के प्रभाव से राजा ने वह उद्घोषणा प्रकाशित की थी, जिनमे जनता के अधिकारो की रक्षा की गई थी, और नवीन शासन-विधान का निर्माण किया गया था। अधिकाश लोग इसी दल से सहानुभूति रखते थे। यह दल फ्रास में इगलैंड के ढग पर वैध राजसत्ता को स्थापित करना चाहता था।

(३) लिबरल—तीसरा दल लिबरल या उदार दल कहाता था। ये लोग राजा के विरोधी नही थे। राजा की सत्ता को वे शासन की स्थिरता के लिये आवश्यक समझते थे। पर इनका खयाल था, कि १८१४ की उदघोषणा में जनता को पर्याप्त अधिकार नही मिले है। वोट देने के लिये १८० रु० वार्षिक टैक्स देने की शर्त बहुत अधिक है। इसमे बहुत कम लोगो को वोट का अधिकार प्राप्त होता है। वोट का अधिकार विस्तृत किया जाना चाहिये, और राजा को पूर्णतया मन्त्रियो के अधीन रहना चाहिये। मन्त्रियो का पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी होना भी आवश्यक है।

इन तीन दलो के अतिरिक्त कुछ लोग बूर्बो वश के शासन के पूर्णतया विरोधी थे। वे किसी भी प्रकार १८वे लुई के शासन से समझौता करने को उद्यत नही हो सकते थे। इन लोगो को निम्नलिखित दलो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) बोनापार्टिस्ट दल—यह दल नैपोलियन बोनापार्ट को राजगद्दी पर बैठाने का पक्षपाती था। नैपोलियन के गौरवमय कृत्य इनकी आखो के सामने मौजूद थे। ये प्राय

नैपोलियन की सेनाओ के सिपाही थे, जो अपने विश्वविजयी सेनापति की गौरव गाथाओ को किसी भी दशा में भूल नहीं सकते थे। जब तक नैपोलियन जीवित रहा, ये उसे राजगद्दी पर बिठाने का प्रयत्न करते रहे। जब वह मर गया, तो ये उसके लडके 'रोम के बादशाह' को नैपोलियन द्वितीय के नाम से सम्राट् बनाने के लिये प्रयत्नशील रहे।

(२) रिपब्लिकन दल—इस दल के लोग बूर्बो राजवश और नैपोलियन, दोनो के विरोधी थे। ये फिर से फ्रास में रिपब्लिक की स्थापना करना चाहते थे।

१८वे लुई के शासन में उदार राजसत्तावादियो की शक्ति अधिक प्रबल थी। कट्टर राजसत्तावादियोने पुराने जमानेको स्थापित करने के लिये बहुत कोशिश की। उन्होंने विद्रोह किये, मारकाट की, खून बहाया, पर उनका उद्देश्य पूर्ण नहीं हुआ। वे केवल इतना ही करा सके, कि नैपोलियन के कुछ प्रमुख पक्षपातियो को फ्रास से बहिष्कृत कर दिया गया। क्रान्तिको मिटा सकना उनकी शक्ति के बाहर था। परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि राजदरबार की बाहरी शान-शौकत और रोबको फिर से स्थापित कराने मे उन्हे पर्याप्त सफलता मिली। दरबार की पुरानी पोशाके, शिष्टाचार तथा तौरतरीके बहुत हद तक फिर वापस आ गये। क्रान्ति के तिरगे झडे की जगह बूर्बो वश का सफेद झडा फ्रास के राजप्रसाद पर फिर फहराने लगा। कट्टर राजसत्तावादी बाहरी तरीको को तो वापस ले आय, पर वास्तविक पुरान जमाने को पुन स्थापित कर सकना उनके लिये सर्वथा असम्भव था।

दलो का सघर्ष—अठारहवे लुई के शासन मे जब पहले पहल राष्ट्र प्रतिनिधि सभा का निर्वाचन हुआ, तो कट्टर राजसत्तावादी दल सबसे प्रबल रहा। वोट देने का अधिकार बहुत कम लोगो को था, अत इस दल की विजय अस्वाभाविक नहीं थी। इन्होंने कोशिश की, कि १८८४ की उद्घोषणा मे प्रतिपादित जनसाधारण के अधिकारो को वापस ले लिया जाय। इसके लिये निरन्तर ऐसे कानून पास किये जाने लगे, जिनसे कि राजा भी घबरा गया। उसे डर था, कि कही फिर क्रान्ति न हो जाय। उसने राष्ट्र प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर दिया, और नये निर्वाचन की आज्ञा दी। नये निर्वाचन मे वैध राजसत्तावादी तथा लिबरल दल को बहुमत प्राप्त हुआ। इन दलो के शासन मे फ्रास ने बहुत उन्नति की। सेना का पुन सगठन किया गया। वोट देने का अधिकार अधिक विस्तृत किया गया, और इसी प्रकार के अन्य भी अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार किये गये। १८२० मे कट्टर राजसत्तावादी दल फिर प्रबल हो गया। इसी कारण इस काल मे फ्रास ने मैटरनिख की भावनाओ का पूरा साथ दिया। स्पेन की जनता के विद्रोह को शान्त करने के लिये फ्रेंच सेना भेजी गई, और वोट देने का अधिकार को फिर से सकुचित कर दिया गया।

दसवे चार्ल्स का शासन—१८२४ मे १८वे लुई की मृत्यु हुई। उसके बाद उसका भाई 'आर्तोआ का काउण्ट' दसवे चार्ल्स के नाम से फ्रास की राजगद्दी पर बैठा। वह कट्टर राजसत्तावादी दल का प्रधान नेता था, और क्रान्ति व नैपोलियन का घोर शत्रु था। उसकी आयु का बडा भाग क्रान्ति के साथ युद्ध करने मे ही व्यतीत हुआ था। वस्तुत, वह उन्नीसवी सदी का व्यक्ति नही था, उसे सतरहवी सदी मे उत्पन्न होना चाहिये था। राजा का दैवी अधिकार, असहिष्णु चर्च और कुलीन लोगो की स्वेच्छाचारिता ही उसकी दृष्टि मे

सभ्यता के चिन्ह थे। उसकी उमर ६७ वर्ष की हो चुकी थी। इस बडी उमर मे उससे यह आशा करना, कि वह अपने जन्म भर के सिद्धान्तो और मन्तव्यो का परित्याग कर देगा, उसके साथ अन्याय करना था। नई प्रवृत्तियो को कुचलने मे उसने मैटरनिख को भी मात कर दिया। उसके स्वेच्छाचारी शासन से फ्रेंच जनता घबरा गई। यदि दसवा चार्ल्स भी अपने भाई की तरह समझदार और समय की गति को पहचानने वाला होता, तो शायद बूर्बो वश का शासन फ्रास मे स्थिर हो जाता। पर वैध राजसत्ता उसकी दृष्टि मे कोई अर्थ ही नही रखती थी। वह राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त को क्रिया मे परिणत करने के लिये तुला हुआ था। इसलिये उसने बहुत से ऐसे कानून अपने विशेष अधिकार से जारी किये, जिनमे जनता के सम्पूर्ण अधिकारो को छीनने का प्रयत्न किया गया था। वह कट्टर राजसत्तावादी दल का नेता रह चुका था। अब उसे अवसर मिला था, कि अपने सिद्धान्तो को क्रिया मे परिणत करे। उसकी नीति का परिणाम यह हुआ कि १८३० मे फ्रास मे फिर क्रान्ति हो गई। दसवे चार्ल्स को फ्रास छोडकर भागना पडा। १८३६ मे आस्ट्रिया मे उसकी मृत्यु हुई। वह अपने को शहीद समझता था। उसका ख्याल था, कि जो कुछ उसने किया है, ठीक किया है। परलोक मे उसे इसका फल मिलेगा।

दसवें चार्ल्स के राज्यच्युत होने के साथ फ्रास मे फिर क्रान्ति का काल प्रारम्भ हो गया। फ्रास मे नई और पुरानी प्रवृत्तियो मे परस्पर सघर्ष चल रहा था। पुरानी प्रवृत्तियो के अभेद्य दुर्ग को नष्ट किये बिना नई प्रवृत्तिया कार्य मे परिणत नही हो सकती थी। मनुष्य मशीन नही है, वह एक जीवित जागृत व चेतन सत्ता है। इसी प्रकार मानव समाज और राष्ट्र भी मशीन नही है, वे भी जीवित जागृत और चेतन सत्ताए है। उनमे परिवर्तन आते है, परन्तु धीरे-धीरे। उनमे विकास होता है। जो फ्रेंच जनता सैकडो वर्षो से एक खास ढग का जीवन बिताती चली आ रही थी, उसे राज्यक्रान्ति एकदम कैसे बदल सकती थी? निस्सन्देह, क्रान्ति ने उसे बदला—बहुत बदला। पर उसकी पूर्ण सफलता के लिये अभी समय की आवश्यकता थी। यही कारण है, कि क्रान्ति के बाद प्रतिक्रिया का काल आया पर यह काल भी देर तक नही रह सका। कुल १६ वर्ष बाद ही फिर क्रान्ति का युग प्रारम्भ हो गया। १८३० की क्रान्ति पर हम अगले एक अध्याय मे प्रकाश डालेगे।

३. अन्य यूरोपियन देशो मे प्रतिक्रिया का काल

फ्रास की राज्यक्रान्ति ने जिन नई प्रवृत्तियो को जन्म दिया था, वे केवल फ्रास तक ही सीमित नही रही थी। वे यूरोप के बडे भाग मे व्याप्त हो गई थी। विशेषतया, फ्रास के निकटवर्ती प्रदेशो को तो उन्होने सर्वथा परिवर्तित कर दिया था। इटली, हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड आदि देशो में तो पुराने एकतन्त्र शासनो का अन्त होकर रिपब्लिको की स्थापना भी हो गई थी। नैपोलियन की विजयो ने क्रान्ति की लहरो को स्पेन, पोर्तुगाल, जर्मनी और वारसा तक पहुचा दिया था। अब नैपोलियन के पतन के बाद इन सब देशो मे प्रतिक्रिया के काल का प्रारम्भ हुआ। पुराने राजा राजसिहासनो पर बिठाये गये और उनके साथ ही पुरानी सस्थाओ, रीतिरिवाजो और विचारो के भी पुनरुद्धार का प्रयत्न किया गया।

स्पेन में प्रतिक्रिया—नैपोलियन के पतन के बाद स्पेन का शासन फर्डिनैण्ड सप्तम के सुपुर्द किया गया। नैपोलियन ने स्पेन को अपने अधीन कर वहा की राजगद्दी पर अपने भाई जोसफ बोनापार्ट को नियत किया था। परन्तु राष्ट्रीयता की भावना के कारण जनता उसके शासन को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हुई। उसने विद्रोह कर दिया। वेलिंगटन का ड्यूक अपनी इगलिश सेनाओ के साथ जनताकी सहायता करने के लिये कटिबद्ध था। परिणाम यह हुआ, कि नैपोलियन को अपने तीन लाख के लगभग सैनिक स्पेन मे सन्नद्ध रखने पडे। आखिर, फ्रेंच सेना की पराजय हुई, और स्पेन स्वतन्त्र हो गया। यह घटना १८१२ मे हुई थी। स्पेन का राजकुमार फर्डिनैण्ड नैपोलियन की सरक्षा में फ्रास मे नजरबन्द था, अत वह अपने देश को वापस नही आ सका। इस स्थिति से लाभ उठाकर स्पेनिश जनता ने लोकसत्तात्मक शासन का सगठन किया। पार्लियामेण्ट की स्थापना की गई, और क्रान्ति द्वारा प्रादुर्भूत नये विचारो के अनुसार स्पेन का शासनविधान तैयार किया गया।

स्वतन्त्रता का अपहरण—१८१४ में नैपोलियन की पराजय के बाद फर्डिनैण्ड अपने देश मे वापस आया। क्रान्ति की विरोधी प्रवृत्तिया पूर्णतया उसकी सहायता के लिये उद्यत थी। उसने राजगद्दी पर बैठते ही शासन-विधान को नष्ट कर दिया। पार्लियामेण्ट बर्खास्त कर दी गई। वैयक्तिक स्वतन्त्रता छीन ली गई, कुलीन और पुरोहित श्रेणिया के विशेषाधिकार स्वीकृत किये गये। १८१२ के शासन-विधान में जिन उदार सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया था, उन्हें फ्रेंच राज्यक्रान्ति—जिसे बदनाम करना उस समय के राजनीतिक वातावरण में फैशन सा बन गया था—का प्रभाव बताकर नष्ट कर दिया गया। उदार विचारो के लोगो को देश से बहिष्कृत किया गया, या जेल में ठूस दिया गया। फिर पुराने ढग की एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजसत्ता स्थापित की गई। विधर्मियो को जीते जी आग में जला देने या अन्य बीभत्स दड देने के लिये धार्मिक न्यायालय (इन्क्वीजीशन कोर्ट) कायम किये गये। जेसुइट सम्प्रदाय का फिर जोर हो गया। पुस्तक, अखबार आदि पर कडा निरीक्षण जारी किया गया। भाषण और लेख की स्वतन्त्रता छीन ली गई। चर्च की सम्पत्ति यथापूर्व चर्च को दे दी गई। फर्डिनैण्ड सप्तम ने जनता के अधिकारो की रत्ती भर भी परवाह नही की। 'जनता के अधिकार' उसकी सम्मति में कोई अर्थ ही नही रखते थे। देश की सम्पत्ति को दरबारियो के सुखोपभोग, आमोद-प्रमोद और भोग-विलास के लिये स्वाहा किया जाने लगा। फर्डिनैण्ड की नीति इतनी मूर्खतापूर्ण थी, कि मेटरनिख तक ने उसे उदार नोति आ अनुसरण करने का परामर्श दिया था।

जनता का विद्रोह—फर्डिनैण्ड के शासन का वही परिणाम हुआ, जो ऐसे शासनो का हुआ करता है। उपनिवेशो में विद्रोह शुरू हो गया। स्पेन मे भी कुशासन के दोष प्रगट होने लगे। खर्च बहुत बढ गया, आमदनी रही नही। स्पेन दिवालिया हो गया। आखिर, १८२० मे स्पेन में भी विद्रोह की अग्नि भडक उठी। फर्डिनेण्ड इसे शान्त करने में असमर्थ था। पर यूरोपीय राजाओ का मित्रमण्डल उसकी सहायता करने को उद्यत था। १८२२ के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में—जो कि वेरोना नामक नगर मे हुआ था, स्पेनिश

विद्रोह को शान्त करने का कार्य फ्रास के सुपुर्द किया गया। ९५,००० सैनिको की एक सेना स्पेन गई और विद्रोह को शान्त करने मे सफल हुई। विदेशी सहायता से फर्डिनैन्ड सप्तम अपनी राजगद्दी को कायम रखने में समर्थ हुआ। इसके बाद यह अत्याचारी एकतन्त्र राजा १८३८ तक स्पेन का शासन करता रहा। १८३८ मे इसकी मृत्यु हुई। उस समय तक स्पेन पूर्णतया दिवालिया हो चुका था। जो स्पेन किसी समय यूरोपियन राज्यो मे सबसे अधिक उन्नत और प्रगतिशील था, वह अब बिलकुल क्षीण तथा अशक्त हो गया था।

फर्डिनैन्ड सप्तम के निर्बल परन्तु अत्याचारपूर्ण शासन में क्रान्ति की प्रवृत्तिया सर्वथा दबी हुई नही रही। १८३० मे जब क्रान्ति की लहर ने एक बार फिर सम्पूर्ण यूरोप को व्याप्त कर लिया, उस समय स्पेन भी उसके प्रभाव से अछूता नही बचा। १८३४ में स्पेन मे उदार विचारो की फिर प्रधानता हो गई और १८३७ मे फर्डिनैण्ड को पार्लियामेन्ट तथा नवीन शासन-विधान को स्वीकृत करने के लिये बाधित होना पडा। उसकी मृत्यु से पूर्व ही स्पेन मे वैध राजसत्ता की स्थापना हो गई थी। वह अपनी शक्ति को किसी भी ढग से मर्यादित कराने के लिये उद्यत नही था। परन्तु नई प्रवृत्तियो को दबाकर रख सकना उसकी शक्ति से बाहर था। इसलिये यद्यपि उसके जीते जी ही स्पेन मे क्रान्ति की भावनाए सफल हो गई, पर इसमे सन्देह नही, कि १८१४ के बाद यूरोप मे जब क्रान्ति के विरुद्ध प्रतिक्रिया का युग आया, तो फर्डिनैन्ड ने एक बार फिर सतरहवी सदी के 'स्वर्गीय दिवसो' की झलक कुछ समय के लिये यूरोप को दिखा दी।

इटली में प्रतिक्रिया का काल—वीएना की काग्रेस ने इटली मे फिर से पुराने विविध राज्यो का पुनरुद्धार कर दिया था। नैपोलियन के आक्रमणो और विजयो का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लाभ इटली के लिये यह हुआ था, कि वहा के लोगो मे एकानुभूति उत्पन्न हो गई थी, और इटालियन लोग अपने देश को एक राष्ट्र समझने लगे थे। युद्धो और विदेशी आक्रमणो से भी अनेक बार लाभ हो जाते है, और निस्सन्देह इटली के लिये नैपोलियन के आक्रमण इस दृष्टि से बहुत लाभदायक सिद्ध हुए थे। परन्तु वीएना में एकत्रित राजनीतिज्ञो के लिये इस नई प्रवृत्ति का कोई महत्व न था। वे जनता की इच्छा की अपेक्षा राजाओ के अधिकारो को अधिक महत्व देते थे। यही कारण है कि १८१४ के बाद मैटरनिख के शब्दो मे इटली केवल एक 'भौगोलिक सज्ञा' मात्र रह गया था। 'इटली' इस शब्द से किसी एक राज्य का ग्रहण नही होता था। यह तो केवल एक भौगोलिक देश का ही बोध कराता था। लोम्बार्डी (मिलान) और वेनिस के प्रदेश आस्ट्रिया के कब्जे मे थे। परमा, मोडेना और टस्कनी में विविध राजवशो का शासन था, जो प्राय आस्ट्रियन राजवश की शाखाए मात्र थे। दक्षिणी इटली में नेपल्स का प्रसिद्ध और पुराना राज्य था, जो बूर्बो राजवश की एक शाखा के अधीन था। मध्य में पोप का राज्य था। पीडमोण्ट और सार्डिनिया पर राजा विक्टर एमेनुअल का शासन था। इन विविध राज्यो के रहते हुए इटली की राजनीतिक एकता की आशा दुराशा मात्र ही थी।

पीडमोण्ड में सुधारो का नाश—नैपोलियन के काल मे इटली के शासन मे अनेक सुधार किये गये थे। सामन्त पद्धति का नाश कर कुलीन और पुरोहित श्रेणियो के विशेषाधिकारो का अन्त कर दिया गया था। क्रान्ति के सिद्धान्तो और नई प्रवृत्तियो को

उस समय पर्याप्त स्थान प्राप्त हो गया था। परन्तु अब प्रतिक्रिया के काल में इटली के विविध राज्यो मे भी पूर्णतया पुराने जमाने को कायम करने का प्रयत्न किया गया। २० मई, १८१४ को सार्डिनिया और पीडमौण्ट के राजा विक्टर एमेनुअल प्रथम ने अपनी राजधानी टूरिन मे प्रवेश किया। राजगद्दी पर बैठने ही उसने सुधारो को नष्ट कर दिया। क्रान्ति के जमाने मे उसके राज्य मे जो भी महत्वपूर्ण कार्य हुए थे, उन सबको कलम की नोक से दूर हटा दिया गया। कुलीन श्रेणी को अपने विशेषाधिकार फिर प्राप्त हुए, पादरियो को चर्च की सम्पत्ति फिर वापस मिल गई। चर्च के न्यायालय फिर कायम कर दिये गये। प्रेस पर कडी निगाह रखी जाने लगी। धार्मिक स्वतन्त्रता छीन ली गई। फ्रास के प्रति इतनी अधिक घृणा प्रगट की गई, कि राजप्रसाद के फ्रेंच साज-समान तक को नष्ट कर दिया गया। और तो और रहा, टूरिन के बाग मे बहुत से पौदो और वृक्षो को केवल इसलिये उखाड दिया गया, क्योंकि वे फ्रेंच लोगो द्वारा आरोपित किये गये थे। शिक्षा का कार्य फिर से चर्च के सुपुर्द कर दिया गया। उदार विचार के लोगो को राज्य के लिये अत्यन्त भयकर समझा जाने लगा। जरा सा सन्देह होने पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता था, और भारी दण्ड दिये जाते थे।

पोप का राज्य—केवल पीडमौण्ट मे ही नही, इटली के अन्य राज्यो में भी यही अवस्था थी। पोप के राज्य मे १८१४ मे एक उद्घोषणा प्रकाशित की गई, जिसमे कि फ्रेंच क्रान्तिकारियो के सम्पूर्ण कार्यों पर पानी फेर दिया गया। फ्रेंच लोगो के नामोनिशान तक को मिटा देने की पोप को इतनी उत्सुकता थी, कि रोम की गलियो में गैस के प्रकाश को इस लिए हटा दिया गया, क्योंकि वह फ्रेंच क्रान्तिकारियो द्वारा प्रारम्भ किया गया था। अधिक क्या, टीका लगाने की वैज्ञानिक प्रथा केवल इसलिये हटा दी गई, क्योंकि इसका आविष्कार फ्रान्स मे हुआ था।

उत्तरी इटली के विविध राज्य—लोम्बार्डी और वेनिस सीधे आस्ट्रिया के अधीन थे। वहा पर मैटरनिख का शासन स्थापित था। उसके समान नई भावनाओ का दुश्मन यूरोप भर में अन्य कोई नही था, फिर यह आशा कैसे की जा सकती थी, कि इन प्रदेशो मे नवीन युग का कोई भी चिह्न अवशिष्ट रह सकेगा? परमा, मोडेना और टस्कनी आस्ट्रियन राजवश के विविध व्यक्तियो के अधीन थे। इन पर आस्ट्रिया का पूरा प्रभाव विद्यमान था। ये सब मैटरनिख के सिद्धान्तो का आख मीचकर अनुसरण कर रहे थे।

नेपल्स की अवस्था भी अच्छी नही थी। वहा के बूर्बो शासक फिर से पुराने स्वर्गीय दिनो की स्थापना के लिये उत्सुक थे। सम्पूर्ण इटली मे नई प्रवृत्तियो के विरुद्ध भयकर प्रतिक्रिया चल रही थी। पर इटली में क्रान्ति के दिनो मे जो भारी परिवर्तन आया था, उसे राजाओ और कुलीन श्रेणियो के ये सब प्रयत्न भी सुगमता से दूर नही कर सकते थे। लोगो के दिमाग बदल चुके थे, वे एक नये ढग से सोचने लग गये थे। राष्ट्रीयता की भावना इटालियन नवयुवको के हृदयो मे नवीन आशा का सचार कर रही थी। वे सगठित और स्वतन्त्र इटली का स्वप्न देख रहे थे।

ग्यारहवा अध्याय

राजनीतिक क्रान्तियों का फिर से प्रारम्भ

१ प्रतिक्रिया के काल अन्त

नैपोलियन के पतन के बाद जब क्रान्ति के विरुद्ध प्रतिक्रिया के काल का प्रारम्भ हुआ, तो लोगो ने समझा, अब क्रान्ति का युग हमेशा के लिये समाप्त हो गया है। क्रान्ति के विरोधी खुशिया मनाने लगे। विचारको ने समझा, क्रान्ति कितनी अस्वाभाविक चीज थी। क्या कभी ससार मे सब लोग बराबर हो सकते है? सब लोगो का शासन-- कितनी असम्भव, कितनी फिजूल बात है। सब लोगो की बुद्धि एक समान नही होती। सब की शक्ति भी बराबर नही होती। फिर सब लोगो के अधिकार कैसे बराबर हो सकते है। ऊँच नीच के विचार, राजा के दैवी अधिकार का सिद्धान्त, पुरोहितो की उत्कृष्टता का भाव और कुलीनो की श्रेष्ठता के विश्वास लोगो में बहुत गहरे थे। पुराने जमाने मे अरिस्टोटल जैसे दार्शनिक ने लिखा था, कुछ लोग शासन करने के लियेही उत्पन्न हुए है, और अन्य लोग शासित होने के लिये। अरिस्टोटल जैसे तत्त्ववेत्ता भी अपने समय से परे नही देख सके थे। उन्हे कुछ का मालिक और कुछ का गुलाम होना सर्वथा स्वाभाविक प्रतीत होता था। लूथर इस बात की कल्पना भी नही कर सकता था, कि किसानो को भूमिपतियो के विरुद्ध विद्रोह करने का हक है। उसके सुधारो के सम्पूर्ण उपदेश कुलीन लोगो के लिये ही थे, और उसकी दृष्टि में यह उन्ही का कार्य था, कि वे अपनी जागीरो मे धार्मिक सुधार करे। लूथर ने किसानो पर भयकर से भयकर अत्याचार करने के लिये जर्मनी के जमीदारो को अपनी सहमति दी थी। वह भी अपने समय से परे नही देख सका था। फ्रास की राज्यक्रान्ति के असफल होने के अनन्तर यदि यूरोपियन जनता अपने युग मे परे न देख सकी हो, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? लोगो ने समझा, एक भयकर तूफान आया था, जो अब बीत गया है। दुनिया में तो राजाओ का एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन ही हमेशा के लिये कायम रहना है, यही ईश्वरीय विधान है, यही सदा से चला आ रहा है, और यही सदा रहेगा। कुछ समय तक मेटरनिख का प्रभाव निरपवाद रूप से सर्वत्र कायम रहा। क्रान्ति की भावनाओ को सब देशो मे कुचला गया। 'स्वाधीनता, समानता और भ्रातृभाव' ये सिद्धान्त अत्यन्त भयकर समझे जाने लगे। 'जनता के अधिकारो' मे विश्वास रखनेवाले लोग समाज और व्यवस्था के दुश्मन कहे जाने लगे। लोकतन्त्र शासन के पक्षपातियो का एक ही स्थान था, और वह था जेल। जो लोग कहते थे, जनता का शासन होना चाहिये, उन्हे सभ्यता के शत्रु समझा जाता था। नये विचारो का पहले पहल इसी प्रकार स्वागत होता है। आज ससार में जो सिद्धान्त सर्वसम्मत और निरपवादरूप से स्वीकृत

कर लिये गये है, वे कभी भयकर क्रान्तिकारी विचार माने जाते थे। जिन्हे आज क्रान्तिकारी और भयकर समझा जाता है, सम्भवत, सभ्य समार कल उन्हे सर्वसम्मत रूप मे तथ्य मानने लगेगा। इतिहास मे हमे यही क्रम दृष्टिगोचर होता है।

ससार मे सबसे प्रबल शक्ति विचारो की है। तलवार और बन्दूक से इसका सहार नही किया जा सकता। इसे जितना ही कुचलने का प्रयत्न किया जाता है, यह उतनी ही अधिक प्रबल होती जाती है। फ्रास मे जिन नवीन विचारो का प्रादुर्भाव हुआ था, उन्हे भी कुचल सकना असम्भव था। वे लोगो के दिमागो मे घर कर रहे थे। क्रान्ति की चौथाई सदी ने मनुष्य जाति के सम्मुख अनेक नवीन कल्पनाए उपस्थित की थी—एक नवीन दुनिया की सम्भावना प्रदर्शित की थी। प्रतिक्रिया के युग मे यह नया चित्र लोगो की आखो से ओझल नही हो गया था। एकतन्त्र राजाओ के अत्याचारो से तग आये हुए लोगो के सम्मुख एक निश्चित और स्पष्ट मार्ग था, और उस मार्ग की स्मृति उनमे अभी बिलकुल ताजी थी। फ्रेंच राज्यक्रान्ति ने जिन नई प्रवृत्तियो को जन्म दिया था, वे अपना कार्य कर रही थी। ससार मे किसी वस्तु का विनाश नही होता। केवल ठोस भौतिक पदार्थ ही नही, विचार और सिद्धान्त भी कभी सर्वथा नष्ट नही हो पाते। किसी न किसी रूप में वे कायम रहते ही है। उनका प्रभाव मनुष्यो पर अमर रहता है। फिर फ्रास की राज्यक्रान्ति ने जिस विचारसरणी की सृष्टि की थी, उसने तो प्रादुर्भूत होते ही सम्पूर्ण पाश्चात्य ससार को जड से हिला दिया था। उसकी शक्ति असीम थी। उसका नष्ट हो सकना असम्भव था। इसी लिए पुराने युग का लोथ के समान भारी बोझ उसे दबा सकने में सर्वथा असमर्थ रहा। यही कारण है, कि वीएना की काग्रेस के केवल पाच वर्ष बाद ही क्रान्ति की इन प्रवृत्तियो ने अपना कार्य फिर प्रारम्भ कर दिया। सर्वत्र विद्रोह और क्रान्ति के चिह्न नजर आने लगे। एक सदी के लगभग तक यूरोप में पुरानी और नई प्रवृत्तियो मे सघर्ष चलता रहा। पाश्चात्य ससार का अगला इतिहास वस्तुत इन प्रवृत्तियो के सघर्ष का ही इतिहास है। आखिर, फ्रेंच-राज्यक्रान्ति ने जिन भावनाओ को जन्म दिया था, वे सफल हुई। सन् १८२० से १८४८ तक यूरोप का इतिहास नई प्रवृत्तियो के प्रगट होने व फूट पडने के वृत्तान्त से भरा हुआ है। १८४८ के बाद ये प्रवृत्तिया सर्वत्र सफल होती हुई नजर आने लगी। इस अध्याय में हमें इस बात पर प्रकाश डालना है, कि १८४८ तक किस प्रकार इन प्रवृत्तियो ने पुराने जमाने को नष्ट करने का प्रयत्न किया, और उन्हें कहा तक सफलता हुई।

२ स्पेन की राज्यक्रान्ति

फर्डिनेन्ड के शासन से असन्तोष—फर्डिनैण्ड सप्तम ने किस प्रकार स्पेन मे क्रान्ति की भावनाओ तथा नवीन सुधारो को कुचलने का प्रयत्न किया था, इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। पुराने जमाने को फिर से वापस ले आने के लिये जो कुछ भी उससे बन पाया, उसने किया। परिणाम यह हुआ, कि जनता मे असन्तोष की अग्नि सुलगने लगी। सुधार के पक्षपाती शान्तिमय उपायो से अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में सर्वथा असमर्थ हो गये। राजा पर वे किसी भी प्रकार से अपना प्रभाव नही डाल सकते थे। राजा पूर्णतया कुलीन और पुरोहित श्रेणियो के प्रभाव में था। आखिर, निराश हो कर उन्होने गुप्त

समितियो का सगठन करना शुरू किया। सर्वसाधारण जनता उनके साथ थी। क्रान्ति ने जनता को जो अधिकार तथा अवसर दिये थे, उन्हे वह आसानी से नही छोड देना चाहती थी। मध्यश्रेणी के बहुत से लोग जो अपने व्यवसायो तथा व्यापार के कारण काफी उन्नत तथा समृद्ध हो चुके थे, अव इस वात को नही सह सकते थे, कि कुलीन लोग ऐसे विशेषाधिकारो का उपयोग करें, जो उन्हे प्राप्त नही है। सैनिक लोग भी फर्डिनैण्ड के शासन से असन्तुष्ट थे। नैपोलियन के विरुद्ध लडते-लडते राष्ट्रीयता की भावनाएँ उनमे भी विकसित हो गई थी। जनता की इच्छा के विरुद्ध इस प्रकार का एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन वे सहन नही कर सकते थे। विद्रोह के लिये मैदान तैयार था। १८२० मे विद्रोह की अग्नि स्पेन भर मे प्रचण्ड हो उठी। काडिज मे सेना ने विद्रोह किया। क्रान्तिकारी लोग तो उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा मे थे ही, वे भी उनके साथ शामिल हो गये। विद्रोह की अग्नि सम्पूर्ण स्पेन मे व्याप्त हो गई। फर्डिनैण्ड के लिये अपनी राजगद्दी को सँभालना मुश्किल हो गया। आखिर, जनता को सन्तुष्ट करने के लिये उसने १८१२ के शासन-विधान को फिर से स्थापित किया। धार्मिक न्यायालय नष्ट कर दिये गये। उसने और अधिक सुधार करने की भी प्रतिज्ञा की। परिणाम यह हुआ, कि जनता धोके मे आ गई। विद्रोह शान्त हो गया। दो वर्षो तक फर्डिनैण्ड ने नवीन शासन-विधान के अनुसार शासन किया। पार्लियामेण्ट का निर्वाचन किया गया। उदार विचारो के नेता मन्त्री नियत किये गये। परन्तु फर्डिनैण्ड की नियत साफ नही थी। वैध शासन की कल्पना भी उसे सह्य न थी। वह विदेशी सेनाओ की सहायता से वैध शासन को नष्ट करने के लिये षड्यन्त्र रच रहा था। कुलीन और पुरोहित श्रेणियो के लोग उसके साथ थे। आखिर, फर्डिनैण्ड अपने मित्र मटरनिख को इस वात के लिये प्रेरित करने मे समर्थ हुआ, कि वह 'चतुर्विध मित्रमण्डल' की शक्ति का स्पेन में स्वेच्छाचारी राजसत्ता को स्थापित करने के लिये प्रयोग करे। सन् १८२३ में वेरोना के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में स्पेन का मामला पेश किया गया। सब राज्य इस वात के पक्ष मे थे, कि फर्डिनैण्ड की सहायता की जाय। केवल इङ्गलैण्ट इसके विरुद्ध था। आखिर, यह निश्चय किया गया, कि फ्रास की सेनाएँ फर्डिनैण्ड की सहायता के लिये भेजी जाय। ९५ हजार फ्रेंच सैनिक एकसत्तात्मक राजतन्त्र की स्थापना के लिये स्पेन मे प्रविष्ट हुए। फ्रास की से वे सेनाएँ, जिन्होने सारे यूरोप को क्रान्ति की लहरो से व्याप्त कर दिया था, अव इतनी अधिक परिवर्तित हो गई थी, कि जनता के न्याय्य अधिकारो को कुचलने के लिये एक स्वेच्छाचारी राजा की सहायता करने मे सकोच नही करती थी। फ्रेंच सैनिको की सहायता से नई प्रवृत्तियो को सर्वथा कुचल दिया गया। पार्लियामेंट बर्खास्त कर दी गई। उदार मन्त्रिमण्डल पदच्युत कर दिया गया। स्पेन मे फिर वही स्वेच्छाचारी राजसत्ता, वही धार्मिक न्यायालय, वही कुलीनो के विशेष अधिकार, अभिप्राय यह है, कि वही पुराना जमाना स्थापित हो गया। उदार विचारो के लोगो पर भयकर अत्याचार किये गये। एक प्रकार का आतक सा बिठाने का प्रयत्न किया गया। फर्डिनैण्ड १८३० तक इसी प्रकार एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी रूप मे शासन करता रहा। इस सुदीर्घ काल मे उस के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस किसी को न हुआ। उसकी सहायता करने के लिये मटरनिख अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ उद्यत था। यूरोप के राजा अत्याचारो और

क्रूरताओं के लिये उसकी पीठ ठोक रहे थे।

विद्रोह की प्रवृत्ति का पुन प्रारम्भ—१८३० में जब फ्रांस में राज्यक्रान्ति हुई, तो उसका प्रभाव स्पेन पर भी पड़ा। जनता मे एक बार फिर साहस का सचार हुआ। उदार विचारो के लोग सुधार के लिये आन्दोलन करने लगे। परन्तु उन को सफलता न हुई। लोगो में डर बैठा देने के लिये सब प्रकार के उपायो को प्रयोग में लाया गया। गुप्तचरो की सख्या बढा दी गई। फौजी न्यायालय कायम किये गये। मेड्रिड में एक विद्यार्थी को केवल इसलिये फासी पर चढा दिया गया, क्योकि उसने 'स्वतन्त्रता की जय' का नारा लगाया था। एक स्त्री को इसलिये प्राणदण्ड दिया गया, क्योकि उसने एक झण्डे पर 'स्वतन्त्रता, कानून और समानता' ये शब्द लिखे थे। परन्तु इन सब अत्याचारो के बावजूद भी उदार और नवीन विचारो के लोग निरन्तर प्रबल होते जाते थे। १८३४ में पार्लियामेंट मे नवीन विचारो के लोगो की सख्या बहुत बढ गई। फर्डिनेण्ड सप्तम की पार्लियामेंट नाम को ही व्यवस्थापिका सभा थी, उसके अधिकार नही के बराबर थे। उसे टैक्सो पर वोट देने तक का अधिकार प्राप्त नही था। पर फिर भी पार्लियामेण्ट में बहुमत हो जाने के कारण नवीन विचारो के लोग राजा को शासन-सुधार करने के लिये विवश करने में समर्थ हुए। इस समय से स्पेन मे नवीन विचारो की शक्ति निरन्तर बढती ही गई। १८३७ मे राजा को बाधित होना पडा, कि १८१२ के शासन-विधान के आधार पर एक नवीन शासन-विधान स्पेन मे जारी करे। १८३७ के इस शासन-विधान द्वारा पार्लियामेण्ट की शक्ति फिर से स्थापित की गई। यद्यपि यह जनता की वास्तविक प्रतिनिधि नही थी, क्योकि वोट देने का अधिकार बहुत कम लोगो को दिया गया था, पर राजा की एकतन्त्र सत्ता अब अवश्य नष्ट हो गई थी।

वैध राजसत्ता की स्थापना—१८३७ के शासन-विधान से स्पेन में भी वैध राजसत्ता स्थापित हुई। पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल स्पेन का शासन करने लगा।

स्पेनिश उपनिवेशो में स्वतन्त्रता की भावना—सोलहवी और सतरहवी सदियो में जब यूरोपियन लोगो ने अपने सामुद्रिक साम्राज्यो का निर्माण आरम्भ किया, तो स्पेन इस क्षेत्र में सबसे आगे था। मध्य और दक्षिण अमेरिका मे स्पेन ने अनेक उपनिवेशो की स्थापना की थी। इन स्पेनिश उपनिवेशो में स्वशासन का जरा भी अस्तित्त्व न था। ये पूर्णतया स्पेन के अधीन थे। जब अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध में उत्तरी अमेरिका के इङ्गलिश उपनिवेशो मे स्वराज्य के लिये आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तो उसका प्रभाव स्पेनिश उपनिवेशो पर पडना सर्वथा स्वाभाविक था। इङ्गलिश उपनिवेशो को अपने प्रयत्न मे सफलता हुई। स्वतन्त्र होकर वे सयुक्त राज्य अमेरिका का निर्माण करने मे समर्थ हुए। जब स्पेन के उपनिवेशो ने देखा, कि उनके उत्तरी पडोसी स्वाधीन हो गये है, तो उनमे भी स्वराज्य प्राप्त करने की उत्कण्ठा प्रबल हो गई। फ्रास की राज्यक्रान्ति ने उनमे और अधिक साहस उत्पन्न किया, और वे स्वतन्त्रता के लिये सग्राम करने को सन्नद्ध होने लगे। उपनिवेशो में स्पेन का शासन बहुत ही कठोर और विकृत था। स्पेनिश लोग उपनिवेशो को धन उपार्जन और अपने लाभ का साधन मात्र समझते थे। फ्रास की क्रान्ति के बाद जब नैपोलियन ने स्पेन पर कब्जा कर लिया, तो इन अमेरिकन उपनिवेशो को अपनी

राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिये आन्दोलन करने का सुवर्णावसर हाथ लगा। साथ ही, अपने व्यापार को उन्नत करने का भी उन्हो ने विशेष रूप से प्रयत्न किया। इससे पूर्व वे स्पेन के अतिरिक्त अन्य किसी देश से व्यापार नही कर सकते थे। उन दिनो यूरोप की औपनिवेशिक नीति का यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धात था, कि उपनिवेश अपने मूल देश के अतिरिक्त अन्य किसी देश से व्यापार न करने पावे। नैपोलियन के समय की अव्यवस्था से लाभ उठा कर स्पेनिश उपनिवेशो ने सयुक्त राज्य अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन के साथ व्यापार करना आरम्भ कर दिया। राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए भी इन उपनिवेशो मे आन्दोलन चल रहा था। १८०४ के बाद उनमें निरन्तर विद्रोह होने शुरू हो गये।

क्रान्ति का प्रारम्भ—स्पेन उस समय नैपोलियन के कब्जे मे था। वहा स्वय गृह-कलह जारी था। स्पेन से किसी भी प्रकार की सहायता इन उपनिवेशो के विद्रोह को शान्त करने के लिये नही भेजी जा सकती थी। परिणाम यह हुआ, कि जो थोडी बहुत स्पेनिश सेनाएँ उपनिवेशो मे विद्यमान थी, वे परास्त कर दी गईं, और वहा के स्पेनिश शासको को पराजित कर बाहर निकाल दिया गया। इन विद्रोहो में सयुक्त राज्य अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन की सहानुभति विद्रोहियो के साथ थी। यद्यपि इङ्गलैण्ड नैपोलियन के खिलाफ स्पेन की सहायता करने के लिये कटिबद्ध था, तथापि स्पेनिश साम्राज्य का भङ्ग होते देखकर उसे हार्दिक प्रसन्नता थी। अधिकाश स्पेनिश उपनिवेश इस समय स्वतन्त्र हो गये और उनमे सयुक्त राज्य अमेरिका व फ्रास के नमूने के रिपब्लिकन शासन स्थापित हुए।

मित्रमण्डल का हस्तक्षेप—स्पेनिश उपनिवेशो की इन सफल क्रान्तियो को यूरोप के स्वेच्छाचारी राजा सहन नही कर सकते थे। जनता का विद्रोह, चाहे वह पृथ्वी के किसी भी कोने में क्यो न हो रहा हो, उन्हें सह्य न था। इसलिये वेरोना के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में (१८२३) जब स्पेनिश विद्रोह को कुचलने का कार्य फ्रास के सुपुर्द किया गया, तब साथ ही यह भी निश्चय हुआ, कि स्पेनिश उपनिवेशो के विद्रोहो को भी शान्त किया जाय और उन्हे फिर से फर्डिनैण्ड सप्तम की अधीनता में लाया जाय। फ्रास की सेनाएँ बडी खुशी से इस महत्त्वपूर्ण कार्य को अपने हाथ मे ले लेती, अगर ग्रेट-ब्रिटेन और सयुक्तराज्य अमेरिका इस बात का विरोध न करते।

इगलैण्ड का विरोध—ग्रेट ब्रिटेन दो कारणो से इसके विरोध में था। पहली बात यह, कि इससे स्पेन के साम्राज्य का पुन स्थापन होता था, और दूसरी बात यह कि पिछले दिनो में स्पेनिश उपनिवेशो के साथ उसका नया नया व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ था। ग्रेट ब्रिटेन को इस व्यापार मे बहुत आशा थी। यह निश्चित था, कि यदि ये उपनिवेश फिर से स्पेन के अधीन हो जाते, तो वह औपनिवेशिक नीति का अवलम्बन कर अन्य देशो के साथ उनके व्यापारिक सम्बन्ध को सर्वथा रोक देता। ग्रेट ब्रिटेन इस भारी नुकसान को सहने के लिये उद्यत नही था। अत उसने उद्घोषित किया, कि अमेरिका के इन स्वतन्त्र राज्यो की स्वतन्त्रता में यदि यूरोप के राज्य किसी भी प्रकार से बाधा डालेंगे, तो ग्रेट ब्रिटेन उनका विरोध करेगा और आवश्यकता पडने पर शस्त्रो का भी उपयोग करेगा। सयुक्त राज्य अमेरिका भी यह नही चाहता था, कि इन उपनिवेशो से स्थापित हुआ उसका नया नया व्यापारिक सम्बन्ध इतनी सुगमता से नष्ट हो जावे। साथ ही वह यह भी

सहन नही कर सकता था, कि पुरानी दुनिया के राज्य नयी दुनिया के मामलो मे इस प्रकार से हस्तक्षेप करे।

मुनरो सिद्धान्त—इसीलिये १८२२ मे सयुक्तराज्य अमेरिका ने कोलम्बिया, चिली, अर्जेन्टीन और मैक्सिको (ये सब पहले स्पेन के उपनिवेश थे) को स्वतन्त्र राज्यो के रूप मे स्वीकृत कर लिया, और अगले वर्ष १८२३ मे राष्ट्रपति मुनरो ने अमेरिकन काग्रेस के सम्मुख उस प्रसिद्ध सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जो अब तक उसके अपने नाम से विख्यात है। राष्ट्रपति मुनरो ने कहा—"यूरोपियन राज्यो के पारस्परिक युद्धो मे हम ने अब तक कभी हिस्सा नही लिया है। न हमारी यह नीति ही है, कि हम यूरोप के आन्तरिक मामलो मे किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप करे। परन्तु जिस समय हमारे अधिकारो पर हमला किया जाता है, या उनको गहरे तरीके से हानि पहुचाई जाती है, तभी हम आत्मरक्षा के लिये तैयारी करते है, या नुकसान से अपना बचाव करते है। पर पृथिवी के इस भाग के आन्दोलनो और घटनाओ से हमारा अधिक सन्निकट सम्बन्ध है, और इसका कारण कोई भी बुद्धिमान तथा निष्पक्ष व्यक्ति सुगमता से समझ सकता है। यूरोप के 'मित्रमडल' की राजनीतिक पद्धति हम लोगो से इस अश में सर्वथा भिन्न है। हम इस बात को उद्घोषित करना चाहते है, कि यदि यूरोपियन राज्यो का 'मित्रमण्डल' अपनी राजनीतिक पद्धति को पृथिवी के इस भाग के किसी हिस्से पर प्रयुक्त करने का प्रयत्न करेगा, तो इसे हम अपनी शान्ति और सुरक्षा के लिये खतरनाक समझेंगे।" यही स्थापना इतिहास में 'मुनरो-सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ध्यान में रखना चाहिये, कि इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में ग्रेट ब्रिटेन के परराष्ट्र सचिव जार्ज कैनिङ्ग का भी हाथ था।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति—राष्ट्रपति मुनरो की इस उद्घोषणा का यह परिणाम हुआ, कि यूरोपियन राज्यो के लिये स्वतन्त्र हुए स्पेनिश उपनिवेशो के मामले में हस्तक्षेप करना कठिन हो गया। मेटरनिख तथा उसके साथी राजनीतिज्ञ परेशान रह गये। प्रबल इच्छा होते हुए भी वे उपनिवेशो को अधीन करने के लिये फर्डिनैण्ड की सहायता नही कर सके। फर्डिनैण्ड ने स्वय भी कोई प्रयत्न नही किया। उसमे इतनी शक्ति नही थी, कि एक तरफ तो अपनी प्रजा की स्वाधीनता की भावनाओ को कुचलता रहे, और दूसरी तरफ सुदूरवर्ती अमेरिकन उपनिवेशो को भी अपने अधीन रख सके। परिणाम यह हुआ, कि स्पेन का औपनिवेशिक साम्राज्य नष्ट हो गया। क्रान्ति की जो भावनाएँ फ्रास मे प्रादुर्भूत हुई थी, वे यदि स्पेन में पूर्णतया प्रसारित नही हुईं, तो कम से कम समुद्र पार के उपनिवेशो मे तो वे अपना कार्य कर ही गईं।

३ पोर्तुगाल मे क्रान्ति की भावना

सन् १८२० मे स्पेन के साथ ही पोर्तुगाल में भी राज्यक्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। सन् १८०८ मे नैपोलियन की सेनाओ ने पोर्तुगाल पर कब्जा कर लिया था और वहा का राजा जॉन चतुर्थ अपने अमेरिकन उपनिवेश ब्राजील मे भाग गया था। इसके बाद पोर्तुगाल फ्रास के अधीन हो गया, और राजा जॉन चतुर्थ ब्राजील मे स्वतन्त्र रूप से शासन करता रहा। परन्तु पोर्तुगाल में फ्रेंच लोगो का शासन देर तक कायम नही रह सका। १८०८

के अन्त मे ही वेलिंगटन के ड्यूक ने अपनी इङ्गलिश सेनाओ के साथ वहा प्रवेश किया, और फ्रेंच सेनाओ को परास्त कर पोर्तुगाल को अपने कब्जे मे कर लिया। तब से लेकर १८२० तक (१८०८-१८२०) पोर्तुगाल इङ्गलिश अफसरो के शासन मे रहा, जो कि ब्राजील भागे हुए पोर्तगीज राजा के नाम पर वहा का शासन करते रहे। पोर्तुगाल के निवासी इङ्गलिश लोगो के शासन को जरा भी पसन्द नही करते थे। फ्रेंच राज्यक्रान्ति द्वारा प्रादुर्भूत नवीन भावनाओ ने उन पर भी प्रभाव डाला था, वे भी राष्ट्रीयता के भावो से प्रेरित होकर अपने देश को इङ्गलिश लोगो की हुकूमत से मुक्त कराने तथा जनता के अधिकारो को स्थापित करने के लिये उत्सुक थे। पोर्तुगाल पोर्तुगीज लोगो के लिये है, यह भावना सम्पूर्ण देश मे व्याप्त हो रही थी। इस दशा मे जब १८२० मे स्पेनिश लोगो ने विद्रोह किया, तो पोर्तुगाल मे भी विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड हो गई। ब्रिटिश शासको को बहिष्कृत कर दिया गया। धार्मिक न्यायालय (इन्क्वीजिशन) नष्ट किये गये। कुलीन और पुरोहित श्रेणियो से विशेषाधिकार छीन लिये गये। एक लोकसभा का सगठन कर यह भी उद्घोषित किया गया, कि कानून की दृष्टि मे सब मनुष्य एक समान है, सबको लिखने, बोलने और मुद्रण की पूर्ण स्वतन्त्रता है। इस लोकसभा ने लोकतन्त्र के सिद्धान्तो के अनुसार देश के लिये एक नवीन शासन-विधान का भी निर्माण किया।

पोर्तुगाल की इस क्रान्ति को यूरोप के स्वेच्छाचारी राजा सहन नही कर सके। वे हस्तक्षेप करने का विचार करने लगे। ग्रेट ब्रिटेन ने भी पोर्तुगाल के विद्रोह को कुचल देने का निश्चय किया। ब्राजील भागे हुए राजा जॉन चतुर्थ को प्रेरित किया गया, कि वह अपने वास्तविक राज्य को वापस लौटकर अपनी खोई हुई राजगद्दी को फिर से सँभाल ले। राजा जान ने इस सुवर्णावसर को हाथ से नही जाने दिया। वह पोर्तुगाल वापस लौट आया। १८२१ में पोर्तुगाल वापस आकर राजा जॉन ने उद्घोषित किया, कि मै नवीन शासन-विधान को स्वीकृत करने के लिये तैयार हूँ। जनता इससे बहुत सन्तुष्ट हुई। उसने उसे अपना राजा स्वीकृत कर लिया। इस प्रकार जॉन चतुर्थ एक बार फिर पोर्तुगाल का राजा बन गया। पर जॉन चतुर्थ के ब्राजील से प्रस्थान करते ही वहा विद्रोह हो गया। इस विद्रोह का नेता जॉन का बडा लडका पेड्रो था। उसे ब्राजील मे अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करते देर नही लगी। जॉन एक ही देश का राजा रह सकता था, पोर्तुगाल का या ब्राजील का। दोनो देशो को सँभाल सकना उसकी शक्ति से बाहर था।

पोर्तुगाल वापस लौटकर जान ने जिस उदार नीति का परिचय दिया था, उसे वह देर तक कायम नही रख सका। शीघ्र ही वह कुलीन और पुरोहित लोगो के प्रभाव मे आ गया। उसने शासन-विधान की उपेक्षा करनी प्रारम्भ कर दी। परिणाम यह हुआ, कि एक बार फिर विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड हो उठी। पोर्तुगाल की जनता ने विद्रोह कर दिया। राजा जान चतुर्थ को भाग निकलने के लिये बाधित होना पडा। एक ब्रिटिश जहाज का आश्रय लेकर वह अपनी जान बचाने मे समर्थ हुआ। परन्तु यूरोप के एकतन्त्र राजा और विशेषतया ब्रिटेन उसकी सहायता करने के लिये कटिबद्ध थे। उन्होने उसे फिर सहारा दिया। 'मित्रमण्डल' की सहायता से राजा जॉन एक बार फिर पोर्तुगाल की राजगद्दी पर आरूढ हुआ। इस समय मे कुलीन श्रेणियो और यूरोप के राजपरिवारो ने जनता के खिलाफ

एक भयकर षड्यन्त्र किया हुआ था। जनता इस षड्यन्त्र के सम्मुख सर्वथा असहाय थी।

१८२६ मे राजा जान की मृत्यु होगई। उसका लडका पेड्रो, जो इस समय ब्राजील का राजा था, अब पोर्तुगाल का भी राजा बन गया। सन् १८३४ तक जनता और राजा में निरन्तर सघर्ष जारी रहा। इस काल मे पोर्तुगाल मे एक प्रकार का गृह-युद्ध सा जारी था। जनता अपने अधिकारो के लिये कोशिश कर रही थी, और कुलीन श्रेणियो की सम्पूर्ण शक्ति उसकी न्याय्य मागो को पाशविक बल का प्रयोग कर के नष्ट करने में तत्पर थी। आखिर, १८३४ मे जनता की विजय हुई। राजा को एक उद्घोषणापत्र प्रकाशित करने के लिये बाधित होना पडा, जिसके अनुसार कुलीन और पुरोहित श्रेणियो के विशेषाधिकार नष्ट किये गये, चर्च की सम्पत्ति छीन ली गई, वैध राजसत्ता की स्थापना की गई और जनता के अधिकार स्वीकृत किये गये। पोर्तुगाल मे भी राजसत्ता को पूर्णतया जनता के अधीन कर दिया गया। क्रान्ति की प्रवृत्तिया आखिरकार पोर्तुगाल मे भी सफल हो गई।

४ इटली मे क्रान्ति की लहर

वीएना की काग्रेस के बाद इटली के विविध राज्यो की जो व्यवस्था की गई थी, उस पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। उत्तरी इटली के बडे भाग पर आस्ट्रिया का सीधा शासन था। साथ ही अनेक राज्य, जो सीधे आस्ट्रिया के शासन में नही थे, उसके प्रभाव में थे। पीडमौन्ट, नेपल्स, पोप का राज्य, लोम्बार्डी, टस्कनी आदि इटली के सभी राज्यो म एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजाओ का शासन था। पर इटली मे राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न हो चुकी थी। इटालियन नवयुवक अपने देश को एक शासन मे सगठित देखना चाहते थे, पर उनकी आकाक्षा के पूर्ण होने की कोई सम्भावना दृष्टिगोचर नही होती थी। वीएना के राजनीतिज्ञो ने जनता की इच्छा की सर्वथा उपेक्षा कर वहा पुराने राजवशो का पुनरुद्धार कर दिया था। ये छोटे-छोटे राजा अपने को परमेश्वर का प्रतिनिधि मान कर मनमानी तरीके से शासन करते थे। १८२० में जब स्पेन में राज्यक्रान्ति हुई, तो इटालियन लोगो मे भी साहस उत्पन्न हुआ। वे भी अपने अधिकारो के लिये सघर्ष करने को उद्यत हो गये। इटली में गुप्त समितियो की कमी नही थी। १८१५ के बाद जब प्रतिक्रिया के युग का प्रारम्भ हुआ था, तभी वहा अनेक गुप्त समितियो का सगठन हो गया था। 'कार्बोनरी' नामक समिति के सदस्यो की सख्या साठ हजार के लगभग थी। इस सुप्रसिद्ध गुप्त समिति के अतिरिक्त अन्य भी बहुत सी गुप्त समितिया वहा विद्यमान थी, जो अपने देश को स्वतन्त्र तथा सगठित करने के लिये प्रयत्न कर रही थी। १८२० मे इन समितियो को विद्रोह करने के लिये अत्यन्त उत्तम अवसर हाथ लगा। नेपल्स के लोगो ने अपने राजा फर्डिनैन्ड छठे के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, और उसे इस बात के लिये बाधित किया कि वह शासन-विधान का निर्माण कर उसीके अनुसार शासन करे। इसी प्रकार सिसली—जो कि नेपल्स के राजा के ही अधीन था, मे भी विद्रोह हुआ। वहा भी जनता के अधिकारो को स्वीकृत कराने के लिये आवाज उठाई गई, पर उसे सफलता प्राप्त नही हो सकी। आस्ट्रिया का प्रधान मन्त्री मेटरनिख यह सहन नही कर सकता था, कि इटली के लोगो मे भी नवीन भावनाओ का सचार हो। राजा फर्डिनैण्ड छठे की सहायता के लिये आस्ट्रियन सेनाएँ तैयार

थी। उन्होंने न केवल सिसली के विद्रोह को ही शान्त किया, अपितु नेपल्स की जनता को भी अच्छा पाठ पढाया। नेपल्स के नये शासन-विधान को नष्ट कर दिया गया। जिस किसी ने इसका विरोध करने की हिम्मत की, उसे भयकर दण्ड दिये गये। आस्ट्रियन सेनाओ की सहायता से नेपल्स के राज्य में फिर से पहले के समान एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजसत्ता की स्थापना कर दी गई।

१८२१ में पीडमौन्ट की जनता ने विद्रोह किया। पीडमौन्ट का राज्य फ्रास के वहुत समीप था। क्रान्ति की लहरे उसे अच्छी तरह आप्लावित कर चुकी थी। नेपोलियन ने उसे जीतकर फ्रास के अधीन कर दिया था, और वहा के निवासी स्वतन्त्रता और समानता के सिद्धान्तो पर आश्रित शासन का आस्वाद ले चुके थे। पीडमौन्ट के विद्रोहियो का कहना था, कि हमारे देश मे भी शासन-विधान की स्थापना होनी चाहिये, एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन का अन्त होना चाहिये, और उत्तरी इटली से आस्ट्रिया के प्रभाव को नष्ट कर सम्पूर्ण देश को एक सूत्र मे सगठित किया जाना चाहिये। पीडमौन्ट का राजा विक्टर एमेनुअल प्रथम इस विद्रोह को शान्त करने मे असमर्थ था। उसने राजगद्दी का परित्याग कर देने में ही कल्याण समझा। अपने भाई चार्ल्स फेलिक्स को राज्य सौप कर वह पीडमौन्ट छोडकर चला गया। चार्ल्स फेलिक्स वहुत हिम्मती और जवर्दस्त आदमी था। आस्ट्रिया और रूस की सहायता प्राप्त कर वह विद्रोह को शान्त करने मे सफल हो गया। १८२० में क्रान्ति की जो लहर स्पेन मे प्रारम्भ हुई थी, वह इटली तक पहुँचते-पहुचते सर्वथा शक्तिहीन हो गई थी। इटालियन लोगो की आकाक्षाएँ पूर्ण नही हो सकी। परन्तु जो नई प्रवृत्तिया इटली में कार्य कर रही थी, वे सदा के लिये दवाई नही जा सकती थी। चौथाई सदी के वाद ही इटली एक राष्ट्र वन गया, और वहा नई भावनाएं क्रिया में परिणत हो गईं।

५ अन्य देशो में क्रान्ति का प्रारम्भ

वालकन प्रायद्वीप—अठारहवी सदी के अन्त तक वाल्कन प्रायद्वीप के वडे भाग पर टर्की के सुल्तान का शासन था। वाल्कन प्रायद्वीप में अनेक जातिया निवास करती थीं। इन सव की भाषा, धर्म, नसल और जाति टर्की से भिन्न थी। फ्रास की राज्यक्रान्ति द्वारा उत्पन्न नई प्रवृत्तियो ने इन पर भी असर डाला, और इन्होने भी यह अनुभव करना शुरू किया कि हमें भी स्वतन्त्र होना चाहिये। ग्रीक लोग सोचने लगे, कि ग्रीक को टर्की के अधीन नही रहना चाहिये। सर्व, वल्गेरियन, रूमानियन आदि लोगो मे भी इसी प्रकार के विचार उत्पन्न हुए। राष्ट्रीयता की भावनाओ से प्रभावित होकर वाल्कन प्रायद्वीप की इन जातियों ने स्वतन्त्र होने का स्वप्न देखना प्रारम्भ कर दिया। टर्की के सुलतान का शासन पूर्णतया स्वेच्छाचारी और एकतन्त्र था। वाल्कन प्रायद्वीप के निवासी प्रधानतया ईसाई धर्म को माननेवाले थे। वे एक मुसलमान सुलतान का शासन किसी भी प्रकार नही सह सकते थे। जिस समय नैपोलियन का पतन करने के लिये ग्रेट ब्रिटेन, प्रशिया, रूस और आस्ट्रिया ने गुट का निर्माण किया और यह उद्घोषित किया, कि हम विविध जातियो को नैपोलियन के एकाधिपत्य से मुक्त कराने के लिये और यूरोप में स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीयता

की स्थापना के लिये संघर्ष कर रहे हैं, तो इन बाल्कन जातियों को बहुत आशा हुई। उन्होंने समझा, कि इस शक्तिशाली गुट की सहायता कर अन्त में हम भी अपनी अवस्था को उन्नत करने में समर्थ हो सकेंगे। विशेषतया, ग्रीस में नेपोलियन के विरुद्ध बने इस गुट की सहायता करने के लिये भारी आन्दोलन हुआ। १५ हजार के लगभग ग्रीक स्वयं-सेवक इस युद्ध में सम्मिलित हुए। आखिर, जब नेपोलियन का पतन हो गया, और यूरोप का पुनः निर्माण करने के लिये विविध राजनीतिज्ञ वीएना में एकत्रित हुए, तब ग्रीक लोगों को आशा थी, कि हमारी तरफ भी ध्यान दिया जायगा और हमारे उद्धार के लिये भी कोशिश की जायगी। पर वे पूर्णरूप से निराश हुए। वीएना के राजनीतिज्ञ राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता के कट्टर दुश्मन थे। नेपोलियन के खिलाफ विविध लोगों की सहायता प्राप्त करने के लिये ही उन्होंने इन उदात्त सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था। वीएना से निराश होकर ग्रीक लोगों ने अपने पहिये पर अपने आप कन्धा लगाने का निश्चय किया। अनेक गुप्त सभा-समितियां संगठित की गईं। विशेषतया, 'मित्रसभा' नाम की सस्था ने इस समय बड़ा काम किया। इस सभा के सदस्य सम्पूर्ण बाल्कन प्रायद्वीप में फैले हुए थे। केवल कान्स्टेन्टिनोपल में ही इसके सदस्यों की संख्या सतरह हजार के लगभग थी। इस संस्था ने राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये बड़ा प्रचार किया। इसके आन्दोलनों का परिणाम यह हुआ, कि सम्पूर्ण बाल्कन प्रायद्वीप में स्वाधीनता की भावना प्रबल हो गई। १८२० में जब स्पेन, पोर्तुगाल और इटली में विद्रोह की अग्नि धधक रही थी, तो ग्रीक देशभक्तों में भी अपने देश में स्वराज्य स्थापित करने की आशा प्रबल हो उठी। उनका प्रधान नेता इप्सिलान्टी बड़े आवेश में कहने लगा—'हेलन भाइयो! वक्त आ गया है। अब हमें अपने धर्म और देश की स्वतन्त्रता के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये।' सारे ग्रीस में यही भाव हिलोरे मारने लगा। परिणाम यह हुआ, कि १८२१ में ग्रीस का स्वाधीनता-संग्राम प्रारम्भ हो गया।

ग्रीस की स्वतन्त्रता—१८२१ में जब लैबख नामक स्थान पर यूरोपियन मित्रमण्डल की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस हो रही थी, तब उन्हें यह चिन्ताजनक समाचार सुनने को मिला, कि एक अन्य देश ने न्याय्य और परमेश्वर के प्रतिनिधि सम्राट् के खिलाफ विद्रोह कर दिया है। मेटरनिख का मत था, कि ग्रीक विद्रोह को शान्त करने के लिये टर्की के सुलतान को सहायता दी जानी चाहिये। सुलतान ईसाई नहीं है, तो क्या हुआ। वह सम्राट् तो है। उस जमाने में जाति, नसल और धर्म आदि तत्त्व लोगों में एकानुभूति उत्पन्न नहीं करते थे। यूरोप भर के राजा अपने को भाई-भाई समझते थे, जहां तक लोगों के अधिकारों को कुचलने का प्रश्न हो। फ्रांस के कुलीन अपने देश के किसान व जुलाहे को उतना 'अपना' नहीं समझते थे, जितना कि प्रशिया व रूस के कुलीन जमींदारों को। इस अवस्था में यह सर्वथा स्वाभाविक ही था, कि मुसलमान सुलतान के विरुद्ध क्रिश्चियन ग्रीक प्रजा के विद्रोह को कुचलने के लिये मेटरनिख प्रस्ताव उपस्थित करता। परन्तु अन्य राजाओं ने उसका समर्थन नहीं किया। सुलतान की शक्ति बहुत काफी थी। वह भयंकर से भयंकर उपायों का प्रयोग कर ग्रीक विद्रोह को शान्त करने का प्रयत्न कर रहा था। इस विद्रोह ने यूरोप के उदार विचारकों को एक अच्छा अवसर दिया। जनता अपने अधिकारों के लिये कहीं

पर भी सघर्ष कर रही हो, उन्हे उसकी सफलता से हार्दिक खुशी होती थी। ग्रीस के लोग ईसाई धर्म को माननेवाले थे, और उनका सुलतान मुसलमान था। इस बात का इन उदार लोगो ने अच्छा उपयोग किया। मुसलमान अफसरो की तरफ से जो भयकर अत्याचार ग्रीस की ईसाई जनता पर किये जा रहे थे, उनके समाचारो को सुनकर यूरोप के ईसाई लोगो मे हलचल मच गई। क्रान्ति के समर्थक उदार लोगो ने आन्दोलन करना प्रारम्भ किया, कि ग्रीक लोगो के मामले मे हस्तक्षेप करना चाहिये, और मुसलमानो के पजे से अपने ईसाई भाइयो की रक्षा करनी चाहिये। ग्रीस के प्राचीन गौरवमय इतिहास को यूरोप निवासी अभी भूले नही थे। ग्रीस की प्राचीन सभ्यता का यूरोप पर भारी प्रभाव था। इस कारण यूरोप के लोगो को ग्रीस से स्वाभाविक सहानुभूति थी। वे उसकी सहायता करने के लिये तैयार हो गये। सब देशो से स्वयसेवक लोग अपने ईसाई भाइयो की सहायता करने के लिये ग्रीस पहुँचने लगे। इङ्गलैण्ड का प्रसिद्ध कवि लार्ड बायरन भी इस युद्ध मे स्वयसेवक के रूप में सम्मिलित हुआ। यूरोप भर मे ग्रीस की सहायता के लिये चन्दा एकत्रित किया गया। सब जगह से युवक सेना मे भर्ती हुए। परन्तु अब भी मेटरनिख अपनी महाशक्ति के साथ ग्रीक जनता के विद्रोह को शान्त करने की चिन्ता मे व्यग्र था। आखिर, वह इस बात में कामयाब हो गया, कि आस्ट्रिया और प्रशिया को किसी भी प्रकार से ग्रीस की सहायता करने से रोक रखे। पर अन्य देशो पर उसका जादू नही चला। जनता मे ग्रीस की सहायता के लिये जो आन्दोलन चल रहा था, वह बहुत प्रबल था। रूस, फ्रास और ब्रिटेन ने मेटरनिख की बातो पर कोई ध्यान नही दिया। वहा के लोग ग्रीस की सहायता करते रहे। कुछ समय बाद ही इङ्गलैण्ड को ध्यान आया, कि ग्रीस की स्वतन्त्रता का परिणाम यह होगा, कि टर्की की शक्ति निर्बल पड जायगी। अन्य बालकन जातिया भी ग्रीस का अनुसरण करेंगी ,और अन्ततोगत्वा टर्की की शक्ति का सर्वथा विनाश हो जायगा। इङ्गलैण्ड अपने पूर्वी साम्राज्य की रक्षा के लिये यह आवश्यक समझता था, कि टर्की का विनाश न होने दिया जाय। यूरोप और एशिया के बीच के मार्ग पर इस समय टर्की का अधिकार था। पर यदि टर्की की शक्ति कमजोर हो जाय और इस महत्त्वपूर्ण मार्ग पर रूस व किसी अन्य शक्तिशाली राज्य का कब्जा हो जाय, तो इङ्गलैण्ड के लिये बहुत बडी समस्या उत्पन्न हो जाती थी। अत इङ्गलैण्ड का कल्याण इसी में था, कि टर्की को नष्ट होने से बचाया जाय। टर्की से इङ्गलैण्ड को किसी प्रकार का खतरा नही था। आखिर, इस विचार से इङ्गलैण्ड ने ग्रीस की सहायता बन्द कर दी। परन्तु रूस और फ्रास निरन्तर उसकी सहायता करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ, कि ग्रीस को अपने मनोरथ मे सफलता प्राप्त हुई। एड्रियानोपोल की सन्धि में (१८२) ग्रीस की स्वतन्त्रता स्वीकृत कर ली गई।

अब ग्रीस में एक स्वाधीन राज्य की स्थापना हो गई। उसका शासन करने के लिये बवेरिया के राजकुमार ओटो को—जिसकी आयु १८ वर्ष की थी, राजगद्दी पर बिठाया गया, और शासन-विधान का निर्माण कर वैध राजसत्ता स्थापित कर दी गई। यूरोप भर के उदार लोग इस बात से बहुत अधिक प्रसन्न हुए। क्रान्ति की भावनाओं के प्रारम्भ होने के बाद ग्रीस पहला राज्य था, जिसने लड कर विदेशी शासन के विरुद्ध स्वतन्त्रता प्राप्त की थी।

अन्य बाल्कन जातियो में भी ग्रीस के उदाहरण ने असाधारण साहस का सचार किया।

वे सब स्वाधीनता के लिये कोशिश करने लगी। रूस इस प्रयत्न मे उनका प्रधान सहायक था। यद्यपि जनता से उसे कोई सहानुभूति नही थी, पर बालकन राज्यो की स्वतन्त्रता से टर्की की शक्ति कमजोर हो जाती थी, और इस प्रकार वह इस क्षेत्र मे अपने प्रभाव को बढा सकता था। दूसरी ओर ग्रेट ब्रिटेन इन बाल्कन जातियो की स्वातन्त्र्य-भावना का प्रधान विरोधी था। ब्रिटेन को जनता की स्वतन्त्रता मे विशेष विरोध नही था—परन्तु टर्की के निर्बल होने से उसे अपनी हानि प्रतीत होती थी। रूस और ब्रिटेन की इन भावनाओ ने बालकन प्रायद्वीप की समस्या को कितना जटिल बना दिया, इस बात का उल्लेख आगे चलकर किया जायगा। यहा इतना लिखना पर्याप्त है, कि क्रान्ति की लहर सम्पूर्ण बालकन प्रायद्वीप में स्वतन्त्रता के लिये उत्कट आकाक्षा का प्रादुर्भाव कर रही थी।

वारहवा अध्याय

क्रान्ति की दूसरी लहर

१ फ्रान्स की द्वितीय राज्यक्रान्ति

चार्ल्स दशम का शासन—सन् १८३० मे फ्रास मे द्वितीय राज्यक्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। १७८९ की राज्यक्रान्ति ने जिन नवीन भावनाओ को जन्म दिया था, वे निरन्तर अपना कार्य कर रही थी। वीएना की काग्रेस ने इन भावनाओ को कुचलने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। वूर्वों राजवश का पुनरुद्धार करके वीएना के राजनीतिज्ञो ने फ्रास मे पुरान जमाने को फिर से वापस ले आने के लिये कोई भी कसर उठा नही रखी थी। पर नई प्रवृत्तियो को नष्ट कर सकना उनकी शक्ति के बाहर था। अठारहवे लुई के शासन से लोग वहुत अधिक असन्तुष्ट नही थे। उसने शक्ति भर जनता की परवाह करने का प्रयत्न किया था। पर चार्ल्स दसवा वहुत ही स्वेच्छाचारी तथा उद्धत राजा था। वह मच्चे अर्थों मे राजा वनना चाहता था। वैध राजसत्ता उसकी दृष्टि मे कोई अर्थ नही रखती थी। परिणाम यह हुआ, कि क्रान्ति की भावनाएँ फिर प्रवल हो गईं। चार्ल्स के शासन से जनता वहुत असतुष्ट थी। इसलिये क्रान्ति की प्रवृत्तिया निरन्तर जोर पकडने लगी। इसी कारण १८३० में फ्रास में द्वितीय राज्यक्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ।

चार्ल्स दसवा जनता के अधिकारो का घोर शत्रु था। वह पहले कट्टर राजसत्तावादी दल का नेता रह चुका था। अठारहवे लुई की समझौते की नीति को देखकर वह गुस्से मे दात पीसा करता था। वह कहा करता था, कि इङ्गलैण्ड के राजा के समान 'वैध राजा' होने की अपेक्षा तो लकडिया चीरना कही अधिक अच्छा है। १८२४ मे जव वह फ्रास की राजगद्दी पर वैठा, तव उसने निश्चय किया, कि मै ईश्वर की इच्छा के अनुसार राज्य करूँगा, जनता की इच्छा से नही। वह पूर्णरूप से सोलहवें लुई के समान स्वेच्छाचारी राजा होना चाहता था। उसका दृढ सकल्प था, कि मै क्रान्ति की सव भावनाओ को पूरी तरह से कुचल कर वास्तविक राजा की तरह फ्रास का शासन करूँगा। राजगद्दी पर वैठते ही चार्ल्स ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। लेख, भाषण, और प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली गई। कुलीन जमीदारो को हरजाने के तौर पर ६० करोड रुपये दिये गये। पादरियो को फिर से गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कराया गया। शिक्षा का कार्य चर्च के सुपुर्द कर दिया गया। चार्ल्स ने निःसकोच रूप से पुराने जमाने को स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। इस नीति का परिणाम यह हुआ, कि फ्रास मे विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड हो गई। उदार विचारो के लोग जोर पकडने लग, और रिपब्लिक और क्रान्ति के पक्षपातियो को अपनी शक्ति वढाने का उत्तम अवसर प्राप्त हो गया। १८३० के राष्ट्र-प्रतिनिधि सभा के निर्वाचन मे उन लोगो की

सख्या बहुत अधिक बढ़ गई, जो नवीन प्रवृत्तियों के पक्षपाती थे, और चार्ल्स दशम की नीति का विरोध करते थे। निर्वाचन के परिणाम को सुनकर चार्ल्स को बहुत क्रोध आया। २६ जुलाई, सन् १८३० के दिन उसने चार विशेष कानून जारी किये। इन कानूनो द्वारा निम्नलिखित व्यवस्थाएं की गई थी—(१) प्रेस की स्वाधीनता का अपहरण किया गया। (२) नई राष्ट्र-प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर दिया गया। (३) निर्वाचन का अधिकार किनको हो, इस सम्बन्ध मे नये नियम जारी किये गये। इन नियमो मे वोट का अधिकार बहुत कम लोगो को रह गया। तीन चौथाई लोग वोट के अधिकार म वचित कर दिये गये। (४) राष्ट्र-प्रतिनिधि सभा का नया निर्वाचन करने के लिये हुकुम जारी किया गया ।

क्रान्ति का सूत्रपात—चार्ल्स दशम को स्वप्न मे भी ख्याल नही था, कि उसके इन विशेष कानूनो का क्या परिणाम होगा। वह तो मजे मे शिकार खेलने मे अपना वक्त गुजार रहा था। परन्तु इन कानूनो के प्रकाशित होते ही फ्रास भर में विद्रोह की ज्वालाएं प्रदीप्त हो गईं। बोनापार्टिस्ट, रिपब्लिकन, वैध राजसत्तावादी—सब दल राजा की स्वेच्छाचारिता का विरोध करने के लिये एक हो गये। स्वाधीनता के जयजयकारो से पेरिस गूज उठा। पुराने सिपाही, विद्यार्थी, मजदूर—सब भड़क उठे। पेरिस की गलियो मे एक बार फिर किलाबन्दी की जाने लगी। पत्थर, ईंट, तख्ते, पुरानी मेज कुर्सियां—जो कुछ भी मिला, इकट्ठा कर लिया गया, और उससे मोर्चाबन्दी की जाने लगी। १७८९ और १७९२ के दिन एकबार फिर दृष्टिगोचर होने लगे। सारे पेरिस मे सनसनी फैल गई। लफायत के नेतृत्व मे पेरिस के उदार लोग खुल्लम-खुल्ला विद्रोह के लिये निकल पडे। पेरिस विद्रोहियो के कब्जे में आ गया। राजा की सेनाओ ने उनका मुकाबला किया। पर वे जनता की शक्ति का सामना नही कर सकी। तीन दिन तक लगातार गलियो मे लडाई होती रही। सेना की सहानुभूति विद्रोहियो के साथ थी। बहुत से सिपाही तो स्पष्ट रूप से विद्रोह मे हिस्सा ले रहे थे। प्रथम राज्यक्रान्ति ने जो भावनाए उत्पन्न की थी, वीएना की काग्रेस ने उन्हें केवल दबा दिया था। अवसर पाते ही ये एक बार फिर फूट पडी। आखिर, चार्ल्स की पराजय हुई। उसे जनता की इच्छा के सम्मुख सिर झुकाना पडा। अपने दस वर्ष के पोते को राजगद्दी पर बिठाकर वह स्वय इङ्गलैण्ड भाग गया। स्वेच्छाचारी राजसत्ता के पुनरुद्धार के लिये जो प्रयत्न उसने प्रारम्भ किया था, वह शीघ्र ही विफल हो गया।

लुई फिलिप—क्रान्तिकारियो के सम्मुख अब यह समस्या पेश आई, कि शासन की क्या व्यवस्था करें। रिपब्लिकन दल का मत था, कि अब रिपब्लिक की स्थापना की जानी चाहिये। क्रान्ति के वास्तविक सचालक इसी दल के थे। मजदूर, व्यवसायी और विद्यार्थी इस दल मे बहुसख्या मे सम्मिलित थे। ये सब रिपब्लिक के लिये उत्सुक थे। परन्तु मध्यश्रेणी के लोग—जिनका नेता थीयर्स था, वैध राजसत्ता के पक्षपाती थे। लफायत ने मध्यस्थ का कार्य किया, और दोनो दलो मे समझौता करा दिया। आखिर, रिपब्लिकन दल के लोग भी वैध राजसत्ता की स्थापना के लिये राजी हो गये। ७ अगस्त, १८३० को राष्ट्र प्रतिनिधि सभा मे यह विषय पेश हुआ, और निश्चय किया गया कि लुई फिलिप को फ्रास की राजगद्दी पर बिठाया जाय। लुई फिलिप बूर्बो राजवश की एक शाखा

ओर्लियनिस्ट वश का था, और अपने विचारो मे बहुत उदार था। लोग उसे बहुत चाहते थे। १८३० की क्रान्ति पूर्णरूप से सफल हुई। जनता ने स्वय अपना राजा चुना। जनता के अधिकारो की यह स्पष्टविजय थी। फ्रास का नया राजा अपनी युवावस्था मे जैकोबिन दल का भी सदस्य रह चुका था। उसने आतककारी सेना मे सम्मिलित होकर क्रान्ति के विरोधियो से अनेक लडाइया भी लडी थी। 'आतक के राज्य' में जब फ्रेंच राज्यक्रान्ति ने बहुत उग्र रूप धारण किया, तब लुई फिलिप उसका विरोधी हो गया था, और फ्रास से भाग गया था। वीएना की काग्रेस के बाद जब भागे हुए लोग अपने देश वापस आये, तब वह भी फ्रास लौट आया। प्रतिक्रिया के काल मे भी वह लोकतन्त्र शासन का पक्षपाती रहा, और यही कारण है, जो जनता उसे बहुत चाहती थी। वह सामान्य लोगो की तरह रहता था। सादे रहन-सहन की वजह से भी लोग उसके पक्षपाती थे। १८३० की राज्यक्रान्ति के बाद फ्रास मे रिपब्लिक की स्थापना नही हुई, परन्तु जनता ने अपनी इच्छा से—अपनी सम्मति से यह निश्चय किया, कि उनका शासक कौन हो। इस प्रकार, १८३० की क्रान्ति सब प्रकार से सफल हुई।

नई व्यवस्था—राष्ट्र प्रतिनिधि सभा द्वारा जब लुई फिलिप को राजा चुन लिया गया, तो उसके ९८ सदस्यो के हस्ताक्षरो से एक उद्घोषणापत्र प्रकाशित किया गया। इसमे कहा गया था—'फ्रासीसी भाइयो! फ्रास अब स्वतन्त्र है। एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन अपना सिर ऊँचा उठा रहा था, पर पेरिस की जनता ने उसे पददलित कर दिया है। अब फिर व्यवस्था और स्वतन्त्रता की स्थापना हो गई है। लुई फिलिप हमारे अधिकारो की रक्षा करेगा, क्योकि वह अपने अधिकार हमसे ही प्राप्त करेगा।' नये शासन-विधान मे प्रेस की स्वतन्त्रता को स्वीकार किया गया। लोग स्वतन्त्रता से सभा कर सके, इस अधिकार को माना गया। उन सब लोगो को वोट का अधिकार दिया गया, जिनकी आयु पच्चीस साल से अधिक हो, और जो अपनी जायदाद पर कम से कम १२० रु० वार्षिक कर देते हो, या यदि वे कोई पेशा करनेवाले हो, तो कम से कम ६० रु० वार्षिक टैक्स देते हो। इस प्रकार जब मध्यश्रेणी के लोगो को वोट का अधिकार प्राप्त हुआ। पर सर्वसाधारण जनता को—किसानो और मजदूरो को इस नये शासनविधान ने कोई भी अधिकार नही दिया। ६० रु० वार्षिक टैक्स देनेवाले लोगो की सख्या उस समय फ्रास में अधिक नही थी। पर अब नये मताधिकार के अनुसार वोटरो की सख्या दुगने के लगभग हो गई थी, और समय को दृष्टि मे रखते हुए यह कोई मामूली बात नही थी। इस नये शासन-विधान के अनुसार यह भी निश्चय किया गया, कि रोमन कैथोलिक धर्म का राज्य के साथ कोई सम्बन्ध न रहे, सब लोगो को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो, और शिक्षणालय भी चर्च के अधीन न रहे। इस प्रकार अठारहवे लुई और दसवे चार्ल्स के समय में क्रान्ति की भावनाओ के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया हुई थी, उसे बहुत हद तक १८३० की राज्यक्रान्ति द्वारा दूर कर दिया गया।

लुई फिलिप का विरोध—लुई फिलिप के मुख्य पक्षपाती मध्यश्रेणी के लोग थे। पर उसके विरोधियो की सख्या भी कम नही थी। कुलीन श्रेणी के लोग उसकी सत्ता को स्वीकृत करने के लिये तैयार न थे। वे बूर्बो राजवश के किसी कुमार को फ्रास की राजगद्दी पर देखना चाहते थे। साथ ही, बोनापार्टिस्ट दल और रिपब्लिकन दल भी उसके शासन को स्वीकृत करने के लिये उद्यत न थे। बोनापार्टिस्ट दल 'रोम के

बादशाह' को फ्रांस का राज्य देना चाहता था, और रिपब्लिकन लोग रिपब्लिक के आदर्श को पूर्ण करना चाहते थे। यद्यपि बहुत से रिपब्लिकन लोगों ने समझौते के तौर पर लुई फिलिप को राजा मान लिया था, पर उनकी वास्तविक आकांक्षा रिपब्लिक स्थापित करने की ही थी। मजदूर, किसान, कारीगर और सामान्य स्थिति के अन्य लोग नये शासन से असन्तुष्ट थे। इन लोगों के बड़े भाग को वोट का अधिकार भी प्राप्त नहीं हुआ था, अतः शासन पर इनका कोई प्रभाव नहीं था। उनमें असन्तोष फैलने लगा। लोग कहने लगे—चार्ल्स दशम के स्वेच्छाचारी शासन का स्थान फ्रांस के अमीरों के स्वेच्छाचारी शासन ने ले लिया है। वास्तविक लोकतन्त्र का फ्रांस में सर्वथा अभाव है। परिणाम यह हुआ कि अनेक गुप्त समितियां संगठित की गई, और मजदूर लोग अपनी हालत को अच्छा करने के लिये आन्दोलन करने लगे। काम करने के घंटे कम होने चाहिये, वेतन बढ़ने चाहिये, कारखानों की दशा को अधिक स्वास्थ्यप्रद बनाना चाहिये, कारखानों में काम करनेवाली स्त्रियों और बच्चों पर सख्ती नहीं की जानी चाहिये, तथा उनके लिये विशेष सुविधाएं और नियम होने चाहिये—इस प्रकार की मांगें मजदूरों की तरफ से पेश की जाने लगीं। मजदूर कहते थे—क्रान्ति से हमें क्या मिला है? चार्ल्स दशम के शासन का अन्त हुआ, तो हमें क्या लाभ पहुँचा। क्रान्ति हमने की, और उसका लाभ ले गये मध्यश्रेणी के लोग। अब आवश्यकता इस बात की है, कि क्रान्ति को पूर्ण किया जाय। देश के शासन में जन-साधारण का हाथ हो, और मजदूरों और किसानों को भी वोट का अधिकार प्राप्त हो। इतना ही नहीं, उनकी दशा को उन्नत करने के लिये राज्य की तरफ से प्रयत्न भी किया जाय।

परन्तु फ्रांस की सरकार इस आन्दोलन को कुचलने के लिये तुली हुई थी। ऐसे कानून पास किये गये, जिनसे मजदूर अपने को संगठित न कर सकें। संगठन के बिना मजदूर अपनी उन्नति कदापि नहीं कर सकते थे, और फ्रांस की उस सरकार ने जिसका प्रादुर्भाव १८३० की राज्यक्रान्ति द्वारा हुआ था, इन्हीं संगठनों को गैर-कानूनी कर दिया था। मजदूरों ने अपनी दशा को सुधारने के लिये हड़तालें कीं। राज्य ने अपनी शक्ति का प्रयोग कर इन्हें तोड़ डाला। राज्य की इस नीति का परिणाम यह हुआ, कि मजदूर लोग विद्रोह के लिये तैयार हो गये। लियों के रेशम के कारखानों में काम करनेवाले मजदूर काले झण्डे लेकर निकल पड़े। विद्रोह हो गया। मजदूर लोगों की मांग थी, कि मनुष्य मात्र को वोट का अधिकार दिया जाय। इतना ही नहीं, राजनीतिक क्रान्ति के साथ-साथ वे सामाजिक क्रान्ति भी चाहते थे। उनकी मांग थी, कि आर्थिक उत्पत्ति के मुनाफे का हिस्सेदार मजदूरोंको भी बनाया जाना चाहिये। वे केवल राजनीतिक अधिकारों से ही सन्तुष्ट नहीं थे। लुई ब्लां आदि अनेक लेखक इस काल में आर्थिक विषमता की समस्या को लोगों के सम्मुख उपस्थित कर रहे थे। सम्भवतः, इतिहास में प्रथम बार जनता यह अनुभव करने लगी थी, कि राजनीतिक स्वतन्त्रता और समानता के साथ-साथ आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता की भी समाज में शान्ति और सन्तोष के लिये आवश्यकता है।

इस आर्थिक असन्तोष के अतिरिक्त रिपब्लिक के पक्षपाती यह भी अनुभव करने लगे थे, कि १८३० की राज्यक्रान्ति वस्तुतः सफल नहीं हुई। लुई फिलिप को राजगद्दी पर बिठाना स्वीकृत कर हम ने भारी भूल की है। नये शासन में सर्वसाधारण जनता

की क्या दशा थी ? अधिकाश लोगो को वोट तक का अधिकार प्राप्त नही था । मजदूरो की शिकायतो का कोई अन्त नही था। क्या इस शासन को स्वराज्य व लोकतन्त्र कहा जा सकता था ? कभी नही। रिपब्लिकन लोग कहते थे—सर्वसाधारण जनता को शिक्षित करना चाहिये। अमीर गरीब का भेद न करके सब लोगो को समान रूप से राजनीतिक अधिकार प्राप्त होने चाहिये । इस मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ, कि अनेक सभाए सगठित की गई, और बहुतसी गुप्त समितिया बनाई गई । अखबारो मे आन्दोलन होने लगा, नवीन शासन का मजाक किया जाने लगा। तानो और कार्टूनो से लुई फिलिप ओर उसके मन्त्रियो की मजाक उडाई जाने लगी।

लुई फिलिप को चाहिये था, कि असन्तोष के वास्तविक कारणो को समझकर इस आन्दोलन को शान्त करता। पर उसने शक्ति के प्रयोग का निश्चय किया। पुराने ढङ्ग के स्वेच्छाचारी राजाओ का अनुसरण कर उसने आन्दोलन को कुचलने की कोशिश की। उद्घोषणा की गई, कि सब सभाएँ व सगठन अपनी नियमावलियो को सरकार के सम्मुख पेश करें, और सरकारी अनुमति के बिना कोई सगठन कायम न रह सके। लोगो को स्वतन्त्रता से सभाएँ करने का जो अधिकार प्राप्त था, उसे छीन लिया गया। रिपब्लिकन सभाओ और गुप्त समितियो को भग कर दिया गया। रिपब्लिकन समाचार-पत्रो को बन्द कर दिया गया, और उनके सम्पादक कैद करलिये गये। राज्य की आलोचनाकरना, सम्पत्ति के वैयक्तिक अधिकार का विरोध करना या राजसत्ता के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार के शासन-विधान का पक्ष लेना अपराध बना दिये गये। जो लोग इन कानूनो को तोडे, उन्हें दण्ड देने के लिये विशेष न्यायालयो की रचना की गई। लुई फिलिप ने उदार और लोकसत्ता के पक्षपाती होने का ढोग छोडकर पूर्णरूप से एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी ढग से शासन करना प्रारम्भ कर दिया।

वस्तुत, १८३० की राज्यक्रान्ति असफल हो गई थी। जनता की इच्छा और अनुमति से जो फिलिप राजगद्दी पर बैठा था, वहभी जनता पर ही अत्याचार करने लगा। उसे कतल करने के लिये छ वार कोशिश की गई, पर वह बचता गया। आखिर १८४८ की राज्यक्रान्ति ने उसके स्वेच्छाचारी शासन का अन्त किया।

१८३० की राज्यक्रान्ति नई प्रवृत्तियो की सामयिक रूप से विजय थी। बार बार असफल हो कर भी क्रान्ति की प्रवृत्तिया निरन्तर अधिक अधिक प्रबल होती जाती थीं। पर पुराने जमाने को एकदम पलट सकना उनकी शक्ति के बाहर था। यही कारण है, कि एक बार कुछ समय के लिये सफल होकर भी वे शीघ्र ही फिर परास्त कर दी गईं।

२ बेल्जियम की स्वतन्त्रता

क्रांति का प्रसार—फ्रास की द्वितीय राज्यक्रान्ति केवल अपने देश तक ही सीमित नहीं रही। एक ऐतिहासिक ने लिखा है, कि जिस प्रकार तालाब में पत्थर फेकने से उसकी लहरे एक स्थान से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण तालाब को व्याप्त कर लेती है, इसी प्रकार जब फ्रास में राज्यक्रान्ति होती थी, तो उसका प्रभाव सम्पूर्ण यूरोप मे व्याप्त हो जाता था। फ्रास की प्रथम राज्यक्रान्ति ने यूरोप के अधिकाश देशो मे कुलीन श्रेणि के विशेषाधिकारो को

नष्ट कर दिया था। राष्ट्रीयता और लोकतन्त्र की आवाज यूरोप भर में गूंजा दी थी। १८३० की इस दूसरी क्रान्ति का प्रभाव भी बहुत व्यापक हुआ। यूरोप भर में एक प्रकार की सनसनी सी फैल गई। सब देशों की जनता में असाधारण रूप से साहस और उत्साह का सचार हो गया। वीएना की काग्रेस ने जिस प्रकार अस्वाभाविक रूप से यूरोप का पुन सगठन किया था, उसके विरुद्ध सर्वत्र विद्रोह प्रारम्भ हो गये। नया जमाना पुराने जमाने को पलट देने के लिये एक भारी कोशिश करने को सन्नद्ध हो गया।

बेल्जियम में क्रान्ति—१८३० की क्रान्ति का प्रभाव सबसे पहले बेल्जियम में प्रगट हुआ। वीएना की काग्रेस ने बेल्जियम को हालैण्ड के साथ मिला दिया था। भाषा, धर्म, नसल, हित आदि सब दृष्टियों से बेल्जियम के लोग डच लोगों से भिन्न थे। डच लोग प्रोटेस्टेन्ट धर्म को माननेवाले थे, बेल्जियन लोग रोमन कैथोलिक थे। डच लोगों की भाषा और नसल बेल्जियन लोगों से सर्वथा पृथक् थी। बहुसख्यक डच लोग किसान थे, दूध दही उत्पन्न करना उनका मुख्य व्यवसाय था। उनका हित इस बात में था, कि मुक्तद्वार-वाणिज्य की नीति का अनुसरण किया जाय। इसके विपरीत, बेल्जियम व्यवसाय-प्रधान देश था। पक्का माल तैयार करना वहा के लोगों का प्रधान पेशा था। बेल्जियम के विविध नगर खानों तथा वस्त्र-व्यवसाय के केन्द्र बन चुके थे। उनका मुख्य लाभ इसमें था, कि सरक्षण की नीति का प्रयोग किया जाय। इसके अतिरिक्त, डच लोग फ्रास से घृणा करते थे, बेल्जियन लोग फ्रास के मित्र थे। बेल्जियम और हालैण्ड एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थे। राष्ट्रीयता और जनता की इच्छा की सर्वथा उपेक्षा कर वीएना की काग्रेस द्वारा उन्हे एक साथ मिला दिया गया था। हालैण्ड का राजा विलियम प्रथम बेल्जियन लोगों पर अत्याचार करने मे जरा भी सकोच नही करता था। उनकी राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलने के लिये और उनके आर्थिक हितों को हानि पहुँचाने के लिये जो कुछ भी बन सका, उसने किया। व्यापारियों और व्यवसायियों पर भारी टैक्स लगाये गये। शासन के लिये बेल्जियम मे भी डच आफिसर नियत किये गये, और डच कानून वहा जारी किये गये। प्रेस की स्वाधीनता नष्ट की गई। स्कूलों का निरीक्षण करने के लिये प्रोटेस्टेण्ट निरीक्षक रखे गये, यद्यपि बेल्जियम के विद्यार्थी और शिक्षक सभी रोमन कैथोलिक थे। हालैण्ड और बेल्जियम की पार्लियामेट एक थी। यद्यपि बेल्जियम की आबादी हालैण्ड की अपेक्षा दुगने के लगभग थी, पर पार्लियामेण्ट मे इन दोनों के प्रतिनिधियों की सख्या एक बराबर थी। मन्त्रिमण्डल मे बेल्जियम के लोग बहुत कम होते थे। १८३० मे इस राज्य के मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की सख्या सात थी। उनमे से केवल एक मन्त्री बेल्जियम का था। इन बातों का यह परिणाम था कि बेल्जियन लोग अनुभव करते थे, कि उनके साथ अधीनस्थ देश का सा व्यवहार किया जा रहा है, और डच लोग अपने लाभ के लिये उनके हितों का विघात कर रहे हैं। उनमे स्वतन्त्रता की भावनाएँ निरन्तर प्रबल होती जाती थी। बेल्जियन लोगों मे अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिये आन्दोलन प्रचण्ड होता जाता था।

सफलता—१८३० में जब फ्रास मे राज्यक्रान्ति हुई, तब बेल्जियन लोगों में भी अपनी आकाक्षाओं को पूर्ण करने के लिये उत्साह का सचार हुआ। १८ नवम्बर के दिन बेल्जि-

यम मे विद्रोह हो गया। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता उद्घोषित कर दी गई। नवीन शासन-विधान का निर्माण किया गया, और लिओपोल्ड प्रथम के नाम से एक जर्मन राजकुमार को राजगद्दी पर विठाकर वैध राजसत्ता की स्थापना कर दी गई। चार अक्टूबर को बेल्जियम की स्वतन्त्र सरकार ने उद्घोषणा की, कि "बेल्जियम का प्रदेश शक्ति के प्रयोग से हालैण्ड से पृथक् कर लिया गया है, और अब उसे पृथक् व स्वतन्त्र राज्य के रूप मे परिवर्तित किया जाता है।" जुलाई १८३१ मे लिओपोल्ड का राज्याभिषेक बडी धूमधाम के साथ बेल्जियम की राजधानी ब्रसेल्स मे किया गया। इस प्रकार बेल्जियम हालैण्ड की अधीनता से मुक्त हुआ। अन्य यूरोपियन राज्यो ने उसकी स्वतन्त्रता को स्वीकृत कर लिया। इसके कुछ समय बाद १८३९ मे ग्रेट ब्रिटेन, फ्रास, आस्ट्रिया, रूस और प्रशिया ने बेल्जियम की स्वाधीनता को स्वीकार करने के साथ साथ यह भी स्वीकृत किया, कि हम सब उसे उदासीन राज्य समझेगे। १९१४ तक बेल्जियम की यह उदासीनता कायम रही। किसी राज्य ने इसे नष्ट करने का प्रयत्न नही किया। पर १९१४ के यूरोपीय महायुद्ध के प्रारम्भ मे जर्मनी ने १८३९ के समझौते को 'कागज का टुकडा' कहकर बेल्जियम पर आक्रमण किया, और इस अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि की उपेक्षा की। १८३० से १९१४ तक बेल्जियम पूर्ण रूप से स्वाधीन रहा और 'उदासीन राज्य' होने के कारण यूरोप के युद्धो से बचा रहा।

बेल्जियम की उदासीनता—१८३९ मे ग्रेट ब्रिटेन, फ्रास, आस्ट्रिया, रूस और प्रशिया ने बेल्जियम को एक उदासीन राज्य के रूप मे स्वीकृत किया था। यह बात उन्नीसवी सदी के यूरोपियन इतिहास मे बहुत महत्त्व रखती है। अत इस सम्बन्ध मे अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है। नवम्बर, १८३० मे जब बेल्जियम ने हालैण्ड के विरुद्ध विद्रोह कर अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की घोषणा की, तो बेल्जियम के नेताओ का विचार यह था, कि फ्रास के साथ उनके देश का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो। इसीलिये वे फ्रास के राजवश के एक राजकुमार को बेल्जियम की राजगद्दी पर बिठाना चाहते थे। भाषा, धर्म, और जाति की दृष्टियो से बेल्जियम और फ्रास एक दूसरे से बहुत समीप थे। अत यह विचार अस्वाभाविक नही था। पर ग्रेट ब्रिटेन नही चाहता था, कि फ्रास का बेल्जियम पर किसी भी प्रकार का प्रभाव कायम हो। इससे फ्रास की शक्ति बहुत अधिक बढ जाती। इस समय ब्रिटेन का परराष्ट्र सचिव पामर्स्टन था। वह यह तो चाहता था, कि बेल्जियम की राष्ट्रीय आकाक्षा पूर्ण हो, और वह एक स्वतन्त्र राज्य के रूप मे परिवर्तित हो जाय। पर उसका फ्रास के प्रभाव मे आना उसे असह्य था। ब्रिटेन के हस्तक्षेप का ही यह परिणाम हुआ, कि बेल्जियम की राजगद्दी लिओपोल्ड प्रथम (जो कि एक जर्मन राजकुमार था) को दी गई। आस्ट्रिया, रूस और प्रशिया तो इस बात के लिये भी तैयार नही थे, कि बेल्जियम की स्वाधीनता को स्वीकार करे। वीएना की कांग्रेस द्वारा जिन सिद्धान्तो के अनुसार यूरोप का पुन निर्माण किया गया था, बेल्जियम की स्वतन्त्र सत्ता उनके विरुद्ध थी। वे तो यह चाहते थे, कि बेल्जियम के मामले मे हस्तक्षेप किया जाय, और उनके विरुद्ध हालैण्ड के राजवश की सहायता की जाय। पर इसी बीच मे क्रान्ति की लहर पोलैण्ड को भी प्रभावित कर रही थी। रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया शीघ्र ही पोलैण्ड के मामले मे उलझ गये, और बेल्जियम पर विशेष ध्यान नही दे सके। इस स्थिति मे बेल्जियम के मामले का

निर्णय फ्रास और ब्रिटेन के हाथ मे आ गया। फ्रास बेल्जियम पर अपना प्रभाव न बढा सके, इसी उद्देश्य से पामर्स्टन ने उसे एक उदासीन राज्य के रूप में परिवर्तित करने का प्रस्ताव उठाया। फ्रास इस के पक्ष मे नही था। वह बेल्जियम मे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध समझता था। बेल्जियम के लोग भी यही अनुभूति रखते थे। पर १८३१ तक पोलैण्ड का विद्रोह समाप्त हो चुका था, और रूस, प्रशिया व आस्ट्रिया को बेल्जियम के मामले में हस्तक्षेप करने की फुरसत मिल गई थी। उधर फ्रास का नया राजा लुई फिलिप शान्ति लिये उत्सुक था। अत वह बेल्जियम को एक उदासीन राज्य के रूप म स्वीकृत करने और उसकी पृथक् स्वाधीन सत्ता को कायम रखने के लिये सहमत हो गया। इसी कारण, १८३९ मे ब्रिटेन, फ्रास, रूस, प्रशिया, आस्ट्रिया और हालैण्ड ने बेल्जियम की उदासीनता को स्वीकार किया था।

३ पोलैण्ड का अगभग और १८३० की क्रान्ति का उस पर प्रभाव

पोलैण्ड—रूस, प्रशिया ओर आस्ट्रिया ने पोलैण्ड के विविध प्रदेशो का किस प्रकार अपने अधीन कर लिया था, इसका सक्षेप के साथ उल्लेख पहले किया जा चुका है। १८३० में पोलैण्ड नाम के किसी राज्य की यूरोप मे सत्ता नही थी। पोल जाति के सब लोग इन तीन शक्तिशाली पडोसी राज्यो के अधीन थे। परन्तु पोल लोगो मे राष्ट्रीय भावनाओ का अभाव नही था। वे लोग अपनी एकता और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये आन्दोलन कर रहे थे। १८३० मे जब फ्रास और बेल्जियम मे राज्यक्रान्तिया हुई, तो उनका प्रभाव पोलैण्ड पर भी पडा।

इस प्रकरण में पोलैण्ड के बटवारे के सम्बन्ध मे कुछ अधिक विस्तार के साथ उल्लेख करना उपयोगी होगा, क्योकि पोलैण्ड की समस्या को भलीभाति समझ लेना यूरोप के आधुनिक इतिहास के परिज्ञान के लिये बहुत आवश्यक है।

मध्यकाल में पोलैण्ड की दशा—मध्यकाल मे पोलैण्ड यूरोप के प्रमुख शक्तिशाली व विशाल राज्यो में गिना जाता था। क्षेत्रफल की दृष्टि से वह रूस के बाद यूरोप का सबसे बडा राज्य था। पश्चिमी प्रशिया और लिथुएनिया के प्रदेश उसके अन्तर्गत थे। पोल लोगो के अतिरिक्त जर्मन और रूसी लोग भी उसमे बडी अच्छी सख्या मे निवास करते थे। पोल लोग रोमन कैथोलिक धर्म के अनुयायी थे, जर्मन लोग प्रोटैस्टेण्ट धर्म का और रूसी लोग ग्रीक चर्च का अनुसरण करते थे। नसल, धर्म, भाषा और जाति की भिन्नता के कारण पोलैण्ड में राष्ट्रीय दृष्टि से एकता का अभाव था। मध्यकाल में यूरोप के अन्य राज्यो मे जिस प्रकार सामन्त-पद्धति के कारण केन्द्रीय शासन निर्बल व अव्यवस्थित रहता था, वही दशा पोलैण्ड मे भी थी। ब्रिटेन, फ्रास, स्पेन, प्रशिया, रूस आदि मे सतरहवी और अठारहवी सदियो में जिस प्रकार सामन्त-पद्धति का ह्रास होकर शक्तिशाली केन्द्रीय शासन की स्थापना हुई, वैसे पोलैण्ड मे नही हुई। अठारहवी सदी के मध्यभाग में भी पोलैण्ड मे सामन्त-पद्धति का जोर था। वहा सामन्तो और जागीरदारो की सख्या लाखो मे थी। इनमें से बहुसख्यक जागीरदार गरीब व छोटे-छोटे थे। पर उन्हें कुलीन श्रेणी के सब अधिकार

प्राप्त थे, और वे अपने विशेषाधिकारो का प्रयोग नि सकोच रूप से किया करते थे। पोलैण्ड का शासन एक राजसभा के अधीन था, जिसके सदस्य इन कुलीन सामन्तो व जागीरदारो द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। राजसभा के प्रत्येक निर्णय के लिये यह आवश्यक था, कि वह सर्वसम्मति से किया जाय। यदि एक सदस्य भी किसी नीति, कानून व प्रस्ताव के विरोध मे हो, तो वह उसे वीटो कर सकता था। इस दशा मे पोलैण्ड की सरकार किसी भी महत्त्वपूर्ण निर्णय पर पहुँच सकने मे असमर्थ रहती थी। पोलैण्ड मे को ईवशक्रमानुगत राजा नही होता था। राजा की मृत्यु होने पर जब कभी राजसिहासन खाली हो जाता था, तो कुलीन सामन्त व जागीरदार राजसभा मे एकत्रित हो नये राजा का निर्वाचन करते थे। ये निर्वाचन शान्ति के साथ नही हो सकते थे। पड़ौस के अन्य यूरोपियन राज्य राजा के निर्वाचन मे दिलचस्पी रखते थे, और वे अपने उम्मीदवारो को पोलैण्ड का राजा बनाने के लिये शक्ति, रिश्वत व अन्य सब प्रकार के उचित अनुचित उपायो का अनुसरण करने मे जरा भी सकोच नही करते थे।

इस दशा मे यदि पोलैण्ड अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को कायम रखने मे असमर्थ हो, तो यह सर्वथा स्वाभाविक था। पोलैण्ड की सीमाएँ रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया के साथ लगती थी। ये तीनो राज्य अठारहवी सदी मे अच्छे शक्तिशाली व सुसगठित थे। ये न केवल पोलैण्ड मे राजा के चुनाव के अवसर पर उसके आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप करते थे, अपितु विविध सामन्तो व जागीरदारो को अपने साथ मिलाकर उन पर अपना प्रभाव कायम करने मे भी प्रयत्नशील रहते थे। १७६३ मे पोलैण्ड के राजा आगस्टस तृतीय की मृत्यु हो गई। नया राजा कौन हो, इसके लिये रूस की साम्राज्ञी कैथराइन तृतीय ने एक उम्मीदवार का समर्थन किया। प्रशिया के राजा ने भी इस सम्बन्ध मे रूस का साथ दिया और इन दोनो शक्तिशाली राज्यो के समर्थन मे स्टेनिस्लास द्वितीय पोलैण्ड के राजसिहासन पर आरूढ हो गया।

पोलैण्ड का प्रथम अगभग—पर स्टेनिस्लास द्वितीय एक योग्य व्यक्ति था। उसने अनुभव किया, कि जब तक पोलैण्ड की शासन-व्यवस्था मे सुधार नही किया जायगा, राज्य-कार्य सुचारु रूप से नही चल सकेगा। अत उसने प्रस्ताव किया, कि राजसभा के निर्णयो के लिये सर्वसम्मति का जो नियम है, किसी भी सदस्य को वीटो का जो अधिकार है, उसे रद्द किया जाय। पोलैण्ड के लोग शायद इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते, पर रूस और प्रशिया ने इसका विरोध किया। उनका कहना था, कि पोलैण्ड मे जो व्यवस्था सदियो से चली आ रही है, और जिसके कारण पोलैण्ड के कुलीन लोगो की स्वतन्त्रता अब तक सुरक्षित रही है, उसे इस ढग से नष्ट नही करना चाहिये। रूस और प्रशिया के उकसाने से पोलैण्ड के अनेक जागीरदार और सामन्त स्टेनिस्लास द्वितीय का विरोध करने के लिये उठ खडे हुए, और वहा गृहकलह का प्रारम्भ हो गया। रूस की सेनाओ ने इस गृहकलह मे स्वच्छन्दतापूर्वक भाग लिया।

रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया ने इस स्थिति से लाभ उठाया और उन्होने आपस मे मिलकर यह निर्णय किया, कि पोलैण्ड का अग-भग कर उसके सुविस्तृत प्रदेशो मे से तीन प्रदेशो को अलग कर उन्हे अपने अधीन कर लिया जाय। पश्चिमी प्रशिया का प्रदेश प्रशिया को

मिला, उत्तरी पोलैण्ड का एक अच्छा बड़ा प्रदेश (लिथुएनिया का पूर्वी भाग) रूस ने प्राप्त किया, और गेलेसिया का प्रदेश आस्ट्रिया को दे दिया गया। इन तीन शक्तिशाली राज्यों के सम्मुख पोलैण्ड सर्वथा असहाय था। रूसी सेनाएं वारसा तक पहुंच गई थी। इस स्थिति में पोलैण्ड की राजसभा के सम्मुख इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग न था, कि वे अपने देश के अंग-भंग को स्वीकृत कर ले। इस प्रथम अंग-भंग (१७७२) द्वारा पोलैण्ड का चौथाई प्रदेश उसकी अधीनता से मुक्त हो गया।

पोलैण्ड का दूसरा अंगभंग—१७७२ के अंगभंग द्वारा पोलैण्ड के लोगो के आत्म-सम्मान को बहुत धक्का लगा। उन्होंने अनुभव किया, कि उन्हे अपने घर को संभालने के लिये कटिबद्ध होने की आवश्यकता है। इसीलिये स्टेनिस्लास द्वितीय के नेतृत्व मे उन्होंने अपने शासन मे अनेक सुधार किये। १७९१ मे उन्होंने एक नये शासन-विधान को स्वीकृत किया, जिसके अनुसार राजा को निर्वाचित करने की प्रथा का अन्त कर राजा के पद को वंशक्रमानुगत बना दिया गया, और इङ्गलैण्ड के ढंग पर पार्लियामेंट की स्थापना की गई। इस युग मे फ्रांस मे प्रथम राज्यक्रान्ति हो रही थी, और सारा यूरोप क्रान्तिकारी व प्रगतिशील भावनाओ से परिपूर्ण हो रहा था। पोलैण्ड के लोगो ने प्रयत्न किया, कि वे भी समय के अनुसार अपने को परिवर्त्तित करे और अपने देश मे अव्यवस्थित और निर्बल राजसत्ता व सामन्त पद्धति को दूर कर एक सुव्यवस्थित केन्द्रीय राजसत्ता (जो पार्लियामेन्ट के अधीन होकर शासन करे) की स्थापना करे। इसीलिये उन्होंने यह भी स्वीकृत किया, कि सामन्तो व जागीरदारो को जो वीटो का अधिकार है, उसे नष्ट कर दिया जाय।

पर पोलैण्ड के जागीरदार इन सुधारो से सन्तुष्ट नही थे। वे अपने परम्परागत अधिकारो को इस ढंग से छिनता देखकर बहुत उद्विग्न हुए। उन्होंने सहायता के लिये रूस की साम्राज्ञी कैथेराइन से अपील की। रूस तो ऐसी स्थिति से लाभ उठाने के लिये सदा उद्यत रहता ही था। रूसी सेनाएँ पोलैण्ड मे प्रविष्ट हो गई। पोलैण्ड मे जो लोग सुधार के पक्षपाती थे, उन्हें 'क्रान्तिकारी' कहकर बदनाम किया गया। प्रशिया भी इस दशा में चुप नही रह सकता था। उसने भी अपनी सेनाएँ पोल 'क्रान्ति' को कुचलने के लिये भेज दी। रूस और प्रशिया की शक्तिशाली सेनाओ के सम्मुख पोलैण्ड असहाय था। एक बार फिर (१७९३) पोलैण्ड का अंगभंग किया गया। पोलैण्ड के सब पूर्वी प्रदेश रूस ने ले लिये, और उसके उत्तर पश्चिमी प्रदेशो पर (जिनमें डान्ट्सिग का महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह भी सम्मिलित था) प्रशिया ने अपना अधिकार कर लिया।

पोलैण्ड का तीसरा अंगभंग—पर पोल जनता मे अपनी स्वतन्त्रता की भावना अभी नष्ट नही हुई थी। यद्यपि पार्लियामेन्ट ने विवश होकर रूस और प्रशिया के सम्मुख सिर झुका दिया था, पर इस समय पोल लोगो मे एक देशभक्त नेता का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने अपनी मातृभूमि के गौरव की रक्षा के लिये विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। इस नेता का नाम कोस्किउस्को था। १७७६ में यह वाशिंगटन के नेतृत्व मे अमेरिकन स्वाधीनता के लिये युद्ध कर चुका था, और देशप्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावनाएँ इसमे कूट-कूट कर भरी हुई थी। उसके सुयोग्य नेतृत्व मे पोल विद्रोह (१७९४) ने अच्छी सफलता प्राप्त की। पर रूस की साम्राज्ञी कैथेराइन इस विद्रोह को कुचलने के लिये तैयार थी। रूसी सेनाएँ पोलैण्ड

मे सर्वत्र छा गईं, वारसा पर उनका अधिकार हो गया। इसी अवसर पर आस्ट्रिया भी पोलैण्ड के स्वातन्त्र्य-युद्ध को कुचलने के लिये अग्रसर हुआ। रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया की सम्मिलित शक्ति के सम्मुख पोल देशभक्त सर्वथा असहाय थे। पोलैण्ड के राजा को अपनी राजगद्दी को छोडने के लिये विवश होना पडा, और १७९३ के अग-भग के बाद जो कतिपय प्रदेश पोलैण्ड के स्वतन्त्र राज्य के रूप मे विद्यमान थे, उन्हे भी इन तीन पडोसी राज्यो ने आपस मे बाट लिया। इस तीसरे बटवारे (१७९५) मे पश्चिमी गेलेसिया और दक्षिणी मैसोविआ के प्रदेश आस्ट्रिया ने प्राप्त किये, पश्चिमी मैसोविआ प्रशिया को मिला, और शेष सब प्रदेश रूस ने अपने अधिकार मे कर लिये।

१८३० की राज्यक्रान्ति का प्रभाव—१७९५ के बाद पोलैण्ड नाम का कोई राज्य यूरोप मे नही रहा था। वीएना की काग्रेस मे पोल लोगो की राष्ट्रीय आकाक्षाओ की ओर कोई ध्यान नही दिया गया था, और पोल लोग तीन भागो मे विभक्त होकर तीन विदेशी राज्यो के अधीन थे। इस दशा मे जब १८३० मे क्रान्ति की लहर एक बार फिर यूरोप मे प्रबल हुई, तो पोलैण्ड भी उसके प्रभाव से नही बच सका। पोलैण्ड का मुख्य भाग रूस के अधीन था। वहा के लोग विद्रोह के लिये तैयार हो गये। रूसी अफसरो को कतल कर दिया गया, या बाहर निकाल दिया गया। फ्रास, जर्मनी और ब्रिटेन के लोग पोल राष्ट्रीय भावनाओ के साथ सहानुभूति रखते थे। परन्तु उनको यह साहस नही हुआ, कि रूस के विरोध मे पोल लोगो की सहायता कर सके। साल भर तक रूस और पोलैण्ड मे लडाई जारी रही। पोल लोगो के लिये रूस का मुकाबला कर सकना सुगम कार्य नही था। आखिर, वे परास्त हो गए। हजारो पोल देशभक्तो को प्राणदण्ड दिया गया, हजारो को देश निकाला देकर साइबेरिया भेज दिया गया। पोल विद्रोह को बुरी तरह कुचला गया। बहुत से लोगो ने भाग कर पश्चिमी यूरोप व अमेरिका मे शरण ली। वहा वे अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न करते रहे। पर बीसवी सदी के प्रथम यूरोपीय महायुद्ध (१९१४-१८) मे पूर्व उनकी आकाक्षा पूर्ण न हो सकी।

४ अन्य राज्यो पर राज्यक्रान्ति का प्रभाव

जर्मनी—जर्मनी के विविध राज्य भी १८३० की क्रान्ति की लहरो मे अछूते नही बच सके। स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय एकता के भाव सम्पूर्ण जर्मनी मे प्रबल हो उठे। लोग इस बात के लिये आतुर हो गये, कि जर्मनी को भी राष्ट्रीय दृष्टि से सगठित करना चाहिये और विविध जर्मन राज्यो का अन्त कर एक शक्तिशाली जर्मन राष्ट्र का निर्माण होना चाहिये। विविध जर्मन राज्यो मे प्रशिया और आस्ट्रिया का शासन इतना शक्तिशाली और सतर्क था, कि वहा की जनता विद्रोह के लिये हिम्मत नही कर सकी। परन्तु जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यो मे अनेक स्थानो पर विद्रोह हुए। ब्रुन्स्विक की जनता ने अपने राजा चार्ल्स द्वितीय को राज्यच्युत कर नवीन शासन-विधान का निर्माण किया, और वैध राजसत्ता की स्थापना की। सैक्सनी मे विद्रोह हुआ, और राजा को बाधित किया गया, कि जनता द्वारा निर्मित शासन-विधान और सुधारो को स्वीकृत करे। हैनोवर मे भी नवीन शासन की स्थापना की गई। हसे कैसल का वह राजा, जो लोगो को कोडे मारा करता था और निमन

रोटी के व्यवसाय को अपने अधिकार मे किया हुआ था, इस बात के लिये बाधित किया गया, कि अपने राज्य मे शासन-विधान की स्थापना करे। हेम्बेख नामक स्थान पर तीस हजार लोग इकट्ठे हुए। स्वतन्त्रता के गीत गाये जाने लगे। लोग कहने लगे—'जर्मनी के सयुक्त राज्य' का सगठन होना चाहिए, यूरोप मे सर्वत्र रिपब्लिक की स्थापना की जानी चाहिये। एक वक्ता यहा तक आगे बढ गया, कि उसने कहा—'ईश्वर की कृपा पर आश्रित सर्वोत्तम राज्य भी मानव जाति का दुश्मन होता है।' फ्राकफोर्ट मे विद्यार्थियो की सभा को भग करने के लिये पुलिस को गोली चलानी पडी। विश्वविद्यालयो मे विद्यार्थियो की सभाए कायम हो गई। सब जगह राष्ट्रीय गीत गाये जाने लगे। मातृभूमि की एकता और स्वतन्त्रता के लिये सम्पूर्ण जर्मनी मे आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। परन्तु यह ध्यान मे रखना चाहिए, कि यह आन्दोलन सगठित नही था। सारे जर्मनी मे स्वतन्त्रता और एकता के लिये भावना तो उत्पन्न हो गई थी, परन्तु विविध लोगो की आकाक्षाओ का एक सूत्र मे सगठन नही हुआ था। यही कारण है, कि १८३० की क्रान्ति की लहर जर्मनी मे कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नही ला सकी। मैटरनिख ने इस आन्दोलन को कुचलने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। वह क्षण भर के लिये भी यह नही सह सकता था, कि उसके अपने लोगो मे—जर्मन लोगो मे नई भावना का सचार हो जाय। उस समय में आस्ट्रिया जर्मनी से पृथक् नही था। मैटरनिख की पूरी शक्ति स्वतन्त्रता और एकता की प्रवृत्तियो को नष्ट करने में लगी हुई थी। जर्मन राज्य-सघ की राजसभा मे नवीन प्रवृत्तियो के विरुद्ध कानून पेश किये गये। उनको स्वीकृत कराने में मैटरनिख को विशेष तकलीफ नही हुई। नये कानूनो का परिणाम यह हुआ, कि सर्वत्र देशभक्तो और सुधार के पक्षपातियो पर भयकर अत्याचार किये गये। अनेक देशभक्त नेता गिरफ्तार कर लिये गये। बहुतो को देश निकाला दिया गया। नवीन शासन-विधान नष्ट कर दिय गये। शासन-विधान के लिये अग्रेजी मे शब्द है—कान्स्टिट्यूशन। इसका एक और अर्थ होता है, वह है शरीर का सगठन। एक बार की बात है, कि आस्ट्रिया के राजा फ्रासिस से किसी सरदार ने कहा—'आपका कान्स्टिट्यशन (शरीर का सगठन) बहुत उत्तम है।' फ्रासिस इस बात पर बहुत नाराज हुआ। उसने क्रोध में आकर कहा—"तुम क्या कहते हो? याद रखो, फिर कभी यह शब्द मेरे सम्मुख न बोलना। कहो, आपका शारीरिक स्वास्थ्य बहुत उतम है, या आपके शरीर की रचना बहुत अच्छी है, पर इस 'कान्स्टिट्यूशन' शब्द का प्रयोग कभी मत करो। मेरे यहा कोई कान्स्टिट्यूशन न अब है, और न भविष्य मे कभी होगा। शैतान के सिवा अन्य किसी के पास कान्स्टिट्यूशन नही होता और न किसी को इसकी आवश्यकता ही है।" इसमे सन्देह नही कि उस समय के जर्मन शासको मे कान्स्टिट्यूशन के लिये इसी ढग की घृणा विद्यमान थी। मैटरनिख कहता था, सब मुसीबतो की जड यह है, कि थोडे से लोग खतरनाक प्रतिनिधिसत्तात्मक शासन के लिये आन्दोलन करते है। जर्मनी में मैटरनिख को पूर्ण सफलता हुई। सर्वत्र विद्रोह शान्त कर दिये गये। देश-भक्तो की आकाक्षाओ को कुचल दिया गया। पर यह नही समझना चाहिये, कि स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय एकता के भाव सदा के लिये नष्ट हो गये। कुछ ही समय बाद जर्मनी एक सगठित राष्ट्र के रूप मे परिवर्तित हो गया, और उसमें लोकतन्त्र शासन स्थापित होने

मे भी वहुत देर नही लगी। यह सव किस प्रकार सम्पन्न हुआ, इस पर हम यथास्थान आगे चलकर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेगे।

इटली—१८३० की क्रान्ति ने इटली पर भी प्रभाव डाला। वीएना की कांग्रेस ने इटली को अनेक राज्यो म विभक्त कर दिया था। पर इटालियन देशभक्त अपने देश को एक सूत्र मे संगठित करने तथा स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये उत्सुक थे। १८३० की लहर ने उनमे नई आशा और उत्साह का सचार किया। इटली के लोगो को आशा थी, कि स्पेन और फ्रास उसकी सहायता करेगे। कुछ लोगो का खयाल था, कि नैपोलियन के लड़के को स्वतन्त्र इटली की राजगद्दी पर विठा कर सम्पूर्ण देश को संगठित किया जा सकता है। इटली मे गुप्त समितियो की कमी नही थी। लोगो मे स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न हो चुकी थी। वे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा मे थे। १८३० मे जव फ्रास, बेल्जियम, जर्मनी और पोलैण्ड—सव जगह क्रान्ति की अग्नि धधक रही थी, इटालियन लोगो ने भी विद्रोह का झण्डा खडा किया। मोडेना के लोगो ने अपने ड्यूक को वाहर निकाल दिया। परमा की शासिका नैपोलियन की रानी मेरिया लुइसा थी। परमा के लोगो ने उसे अपने पितृगृह आस्ट्रिया भाग जाने के लिये विवश किया। पोप के राज्य मे भी विद्रोह हुआ। पो से लेकर टाइवर नदी तक सव जगह राष्ट्रीय तिरंगे झण्डे के नीचे लोग विद्रोह के लिये तैयार हो गये। इस विकट समय मे इटली के विविध राजाओ को एक स्थान से ही सहायता की आशा थी, और वह था मैटरनिख। वह सदा 'ईश्वर के प्रतिनिधि' राजाओ की सहायता के लिये उद्यत रहता था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के इस सुवर्णावसर को वह कव अपने हाथ मे जाने दे सकता था। आस्ट्रियन सेनाएँ इटली भेज दी गईं। आस्ट्रिया की मंझी हुई सेनाओ का मुकावला करने की हिम्मत इटालियन देशभक्तो मे नही थी। वे परास्त हो गये। पुराने राजाओ का पुनरुद्धार किया गया। १८३० की क्रान्ति की लहर मे इटालियन लोगो ने जो कुछ भी प्राप्त किया था, उस सवको मटियामेट कर दिया गया। मैटरनिख क्षण भर के लिये भी यह नही सह सकता था, कि आस्ट्रिया के पडोस मे ही लोग 'स्वतन्त्रता' और 'राष्ट्रीयता' की वातें करें। उत्तरी इटली के अनेक प्रदेशो पर आस्ट्रिया का आधिपत्य भी था। इन 'भयकर' प्रवृत्तियो के होते हुए यह प्रभाव व आधिपत्य किस प्रकार कायम रह सकता था ?

स्पेन—१८३० की क्रान्ति का प्रभाव स्पेन पर भी पडा। उदार विचार के लोग फिर जनता के अधिकारो को प्राप्त करने के लिये कोशिश करने लगे। परन्तु उन्हे सफलता नहीं हुई। फर्डिनैण्ड ने क्रूरता और अत्याचार का आश्रय लिया। क्रान्ति की भावनाओ से अपने देश को वचाने के लिये उसने सव प्रकार के उपायो का प्रयोग किया। परिणाम यह हुआ, कि कुछ समय के लिये क्रान्ति तथा सुधार की भावनाएं दव गईं। १८३० मे ये भावनायें फिर वलवती हुई। उस समय जनता को नवीन शासन-विधान की स्थापना मे सफलता हुई, और स्पेन का शासन 'वैध राजसत्ता' के रूप मे परिवर्तित हो गया।

स्विट्जरलैण्ड—स्विट्जरलैण्ड के विविध प्रान्तो (कैण्टन) पर भी १८३० की क्रान्ति का असर हुआ। प्राय सभी प्रान्तो मे लोग अपने शासन-विधान मे सुधार करने के लिये तत्पर हुए। अव तक स्विट्जरलैण्ड के विविध प्रान्तो मे जो शासन-विधान प्रचलित थे,

उनमे सर्वसाधारण जनता का बहुत कम हाथ था। सम्पूर्ण शक्ति कुछ कुलीन परिवारों के पास थी। इनका शासन बहुत ही संकीर्ण, दोषपूर्ण तथा निन्दनीय था। १८३० में जनता ने कोशिश की, कि इस अवस्था मे सुधार किया जाय। सब प्रान्तो मे शासन-विधानो म सुधार किया गया। केवल प्रान्तीय शासन मे ही नही, अपितु केन्द्रीय सरकार में भी सुधार के लिये आन्दोलन हुआ। स्थान-स्थान पर सभाये की गई। आखिर, केन्द्रीय सरकार को भी जनताके सम्मुख झुकना पडा। उसमे भी अनेक परिवर्तन किये गये। यद्यपि १८३० की क्रान्ति की लहर ने स्विट्जरलैण्ड के शासन मे अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये, परन्तु अभी वह पूर्ण रूप से लोकतन्त्र के सिद्धान्तो के अनुसार नही बन सका। इसके लिये अभी और अधिक आन्दोलन की आवश्यकता थी। १८४८ मे जब फ्रास मे तीसरी राज्यक्रान्ति हुई और एक नई तथा अधिक प्रबल क्रान्ति की लहर का प्रारम्भ हुआ—उस समय स्विस लोग अपने उद्देश्य मे सफल हुए, और स्विट्जरलैण्ड का शासन पूर्णतया लोकतन्त्र सिद्धान्तो पर आश्रित हो गया।

ग्रेट ब्रिटेन—ग्रेट ब्रिटेन भी क्रान्ति के प्रभावो से नही बच सका। १८३० में ग्रेट ब्रिटेन में टोरी (अनुदार) दल का प्रभुत्व था। इस कारण सर्व-साधारण जनता बहुत असन्तुष्ट थी। फ्रास की राज्यक्रान्ति के समाचारो से उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नही रहा, और ब्रिटिश लोग भी अपने अधिकारो के लिये संघर्ष करने का प्रयत्न करने लगे। टोरी दल का प्रधान नेता विलिङ्गटन का ड्यूक, जो मैटरनिख का पक्का दोस्त था और उस समय मे इङ्गलैण्ड का प्रधान मन्त्री था, जनता के अधिकारो से जरा भी सहानुभूति नही रखता था। उसने स्पष्ट उद्घोषित कर दिया, कि पार्लियामेन्ट के निर्वाचन के लिये वोट देने का अधिकार और अधिक विस्तृत नही किया जा सकता। उस समय इङ्गलैण्ड मे वोट देने का अधिकार बहुत कम लोगो को प्राप्त था और निर्वाचनके ढग मे भी बहुतसे दोष थे। जनता इनमें सुधार चाहती थी। पर टोरी पार्टी इससे सहमत नही थी। परिणाम यह हुआ, कि विलिङ्गटन के ड्यूक की निराशाजनक उद्घोषणा से लोग क्रुद्ध हो गये, और टोरी पार्टी बदनाम हो हो गई। पार्लियामेट मे ह्विग (लिबरल) पार्टी का प्राबल्य हो गया, और नये प्रधान मन्त्री लार्ड जान रसल ने प्रथम सुधार बिल पेश किया। पर यह बिल पास नही हो सका। इस पर ह्विग प्रधानमन्त्री ने पार्लियामेट को बर्खास्त कर नये चुनाव कराने का निश्चय किया। नवीन निर्वाचन में ह्विग दल की सख्या बहुत अधिक बढ गई। लोकसभा मे द्वितीय सुधार बिल सुगमता से पास हो गया, परन्तु लार्ड सभा ने उसे अस्वीकृत कर दिया। जनता सुधार के साथ थी, पर लार्ड लोग उसे क्रिया मे परिणत नही होने देते थे। जबतक कि दोनो सभाये प्रस्तावित सुधारो को पास न कर दे, तब तक वे स्वीकृत नही समझे जा सकते थे। परिणाम यह हुआ, कि जनता में आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। बडी-बडी सभाये की गई, जुलूस निकाले गये। कई स्थानो पर दगे भी हो गये। लोग वैध उपायो से अपनी बात को मन वाने मे असमर्थ रहे थे, अत उन्होने शक्ति प्रदर्शित करने का निश्चय किया। आखिर, सुधार के विरोधी लार्ड लोगो को जनता की इच्छा के सम्मुख सिर झुकाना पडा। १८३२ का सुधार-बिल दोनो सभाओ मे पास हो गया। इस से जनता को बहुत बडे परिमाण मे अधिकार प्राप्त हुए, और ग्रेट ब्रिटेन का शासन बहुत अशो में 'लोकतन्त्र' हो गया। स्पेन्सर वालपुल

ने १८३२ के सुधारो को सबसे बडी क्रान्ति के नाम से पुकारा है। इन सुधारो के कारण ब्रिटेन मे नई प्रवृत्तिया बहुत हद तक सफल हो गईं।

अमेरिका—१८३० की क्रान्ति की लहर केवल यूरोप तक ही सीमित नही रही। विशाल अटलान्टिक महासागर को पार कर अमेरिका मे भी उसने अपना प्रभाव प्रदर्शित किया। अमेरिका मे कुलीन श्रेणी का अभाव था। कोई ऐसे लोग नही थे, जिन्हे अपने जन्म की वजह से विशेषाधिकार प्राप्त हो। पर वहा की आर्थिक दशा ने ऐसे लोगो की एक श्रेणी उत्पन्न कर दी थी, जो बहुत ही अधिक धनी और समृद्धिशाली थे। अमेरिका की विस्तृत उपजाऊ जमीनो पर गुलामो के श्रम से खेती की जाती थी। इन जमीनो के मालिक गुलामो की कमाई को लूटकर असाधारण रूप से अमीर हो गये थे। इसके अतिरिक्त खानो तथा कल कारखानो के मालिक भी वहा बहुत समृद्ध थे। ये लोग स्वाभाविक रूप से सर्वसाधारण जनता के अधिकारो को पसन्द नही करते थे। १८३० की क्रान्ति की लहर ने सुधार के पक्षपातियो मे नवीन उत्साह का सचार किया, और दासप्रथा के विरुद्ध आन्दोलन प्रबल हो गया। सयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी प्रदेशो मे एक हजार के लगभग दासप्रथा विरोधी सभाओ का सगठन किया गया। इन सभाओ की माग थी, कि दासप्रथा को एकदम नष्ट कर दिया जाय। इस आन्दोलन के अतिरिक्त गरीबो ओर मामूली लोगो की दशा में सुधार करने के लिये भी इस समय में बहुत प्रयत्न किया गया। कारखानो मे काम करने वाले बच्चो और स्त्रियो के सम्बन्ध में विशेष कानून बनाये गये। कर्ज को अदा न कर सकने पर कैद मे डाल देने के नियम को उडाया गया।

मित्रमण्डल का अन्त—हम पहले लिख चुके है, कि क्रान्ति की प्रवृत्तियो के खिलाफ जिस प्रतिक्रिया के काल का प्रारम्भ वीएना की काग्रेस द्वारा हुआ था, वह देर तक स्थिर नही रह सका। शीघ्र ही नई प्रवृत्तिया प्रबल हो गईं और पुराने जमाने को परास्त करने के लिये सघर्ष करने लगी। १८३० की क्रान्ति की लहर ने अनेक देशो मे पुरानी भावनाओ को नष्ट कर दिया। अनेक देशो में इस नई लहर को असफलता भी हुई। परन्तु इसमे सन्देह नही, कि ससार अब धीरे-धीरे नई रोशनी से प्रकाशित होता जाता था। नई प्रवृत्तियो को कुचलने तथा पुराने जमाने को स्थिर रखने के लिये यूरोपियन राज्यो ने जिस 'मित्रमण्डल' का निर्माण किया था, १८३० की क्रान्ति की लहर से उसे भयकर धक्का लगा। ग्रेट ब्रिटेन और फ्रास उससे पूर्णतया पृथक् हो गये। मैटरनिख का प्रभाव कम हो गया। उसने रूस और प्रशिया के साथ मिलकर राजा के दैवी अधिकारो की रक्षा के लिये एक नवीन सघ का निर्माण किया। पर ब्रिटेन और फ्रास उसमें सम्मिलित नही हुए। १८३० की क्रान्ति नें ब्रिटेन मे टोरी दल के प्रभुत्व को नष्ट कर दिया था। फ्रास मे तो जनता की इच्छा ने एक नवीन शासन का स्थापन हुआ ही था। इस दशा मे यह कैसे सम्भव हो सकता था, कि ये दोनो राज्य मैटरनिख का साथ दे सकें। निस्सन्देह, १८३० की क्रान्ति की यह सबसे भारी विजय थी। मैटरनिख तथा उसके साथी जिस प्रकार यूरोप को चलाना चाहते थे, १८३० की क्रान्ति ने सिद्ध कर दिया कि उसमें उन्हे कदापि सफलता नही हो सकती।

तेरहवा अध्याय

औद्योगिक क्रांति

१ आर्थिक परिवर्तन

फ्रास की राज्यक्रान्ति के साथ यूरोप मे एक नवीन युग का प्रारम्भ हुआ था। उन्नीसवी सदी मे इस नवयुग का निरन्तर विकास होता रहा। पर राजनीतिक क्रान्तियो ने यूरोप के आधुनिक इतिहास मे जितने परिवर्तन किये है, उससे कही अधिक परिवर्तन व्यावसायिक क्रान्ति द्वारा हुए है। सर्वसाधारण जनता के जीवन में परिवर्तन व उन्नति करनेवाली जो शक्तिया उन्नीसवी सदी मे काम कर रही थी, उन्हे हम चार भागो में बाट सकते है—(१) व्यावसायिक क्रान्ति, (२) राष्ट्रीय भावना का प्रादुर्भाव, (३) वैध शासनो का विकास, और (४) साम्यवाद की लहर।

इनमें से व्यावसायिक (औद्योगिक) क्रान्ति का महत्त्व बहुत अधिक है, क्योकि उसके कारण सर्वसाधारण जनता के जीवन मे बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है।

२ कृषि की उन्नति

पिछली डेढ सदी में पाश्चात्य ससार की आर्थिक दशा मे जो असाधारण उन्नति हुई है, उसका मुख्य श्रेय व्यावसायिक क्रान्ति को ही है। पर उसके लिये मैदान तैयार करने मे व्यापारिक क्रान्ति और कृषि की उन्नति का बडा हाथ था। व्यापारिक क्रान्ति का उल्लेख हम पहले कर चुके है। उसके द्वारा व्यावसायिक क्रान्ति के लिये किस प्रकार मैदान तैयार हुआ, इस विषय पर भी पहले प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ हम कृषि सम्बन्धी उन्नति पर सक्षेप में विचार करेगे।

अब से कुछ समय पूर्व ससार के प्राय सभी देश 'कृषि-प्रधान' थे। जनता का बडा भाग कृषि-कार्य से ही अपना निर्वाह करता था। व्यवसायो की अधिक उन्नति नहीं हुई थी। लोगो की आजीविका का मुख्य साधन खेती ही थी। आर्थिक उन्नति के क्षेत्र मे जिस देश ने सम्पूर्ण ससार का नेतृत्व किया, वह इङ्गलैण्ड है। उसी के उदाहरण को लीजिये। अठारहवी सदी मे इङ्गलैण्ड भी एक कृषि-प्रधान देश ही था। वहा की जनता का बहुत बडा भाग देहातो मे निवास करता था। गावो की भूमि दो प्रकार की होती थी, खेती के काम में आनेवाली और चरागाह के रूप में प्रयुक्त होनेवाली। किसानो के खेत एक स्थान पर नही होते थे। यदि एक खेत गाव के दक्षिण में था, तो दूसरा उत्तर में। खेत बहुत छोटे-छोटे तथा बिखरे हुए होते थे। एक खेत से दूसरे खेत को जाने में किसान का बहुत सा समय नष्ट हो जाता था। साथ ही बहुत सी जमीन रास्तो और पगडण्डियो मे खराब

हुई रहती थी। आधुनिक समय के वडे और इकट्ठे खेतो का उस समय तक इङ्गलैण्ड मे अभाव था। जमीन की पैदावार को कायम रखने के लिय आजकल के तरीको का आविष्कार भी उस समय मे नही हुआ था। हर तीसरे साल खतो को खाली छोडना पडता था, ताकि उनकी उपज-शक्ति नष्ट होने से वची रहे। भिन्न-भिन्न किसम की फसलो को वारी-वारी से वोते रहने पर जमीनकी उपज-शक्ति को कायम रखा जा सकता है, इसका ज्ञान उस समय के अग्रेज किसानो को नही था। खेती के लिये पुराने जमाने के वही औजार काम मे आते थे। हल, फावडा और दराती से वढकर कोई अन्य औजार अठारहवी सदी के इङ्गलैण्ड के किसानो के पास नही था। खेती के लिये काम मे आनेवाली जमीन के अतिरिक्त जो अन्य जमीन खाली पडी रहती थी, वह चरागाह के काम मे आती थी, उसमे गाव भर के पशु स्वच्छन्द रूप से चर सकते थे। जलाने के लिये ईंधन भी इसी जमीन से एकत्रित किया जाता था। चरागाह को साफ रखने तथा पशुओ को वीमारी से वचाने का कोई प्रयत्न उससमय नही किया जाता था। परिणाम यह था, कि पशु वहुत कमजोर तथा दुवले पतले होते थे। इङ्गलैण्ड की आवादी भी उस समय वहुत कम थी। अठारहवी सदी के अन्त में इङ्गलैण्ड के निवासियो की सख्या केवल९० लाख के लगभग थी। शहरो का विकास तव वहुत कम हुआ था। शहर सख्या मे थे ही वहुत कम, और जो थे भी, वे छोटे-छोटे और निहायत गन्दे होते थे। आवागमन के साधनो की उस समय वडी दुर्दशा थी। सडक प्राय कच्ची और टूटी फूटी थी। डाकुओ की वहुतायत के कारण इन पर आना जाना भी आशका और भय से शून्य नही था।

अठारहवी सदी के अन्त मे इस दशा में परिवर्तन आना प्रारम्भ हुआ। इङ्गलैण्ड मे कृषि-सम्वन्धी जो उन्नति हुई, उस पर हम दो दृष्टियो से विचार कर सकते है—(१) कृषि के तरीको मे सुधार, और (२) खेतो के स्वरूप में परिवर्तन।

कृषि के तरीको मे सुधार करने वाला पहला अग्रेज वैज्ञानिक टल (१६७४-१७४१) नाम का महानुभाव था। इसने अनेक ऐसे आविष्कार किये, जिनमे कृषि की पद्धति मे वहुत उन्नति हुई। वार वार खेत को जोतकर यदि मिट्टी को विलकुल वारीक कर दिया जाय, तो पैदावार वहुत वढाई जा सकती है, इस सिद्धान्त का पहले पहल इसी ने पता किया। साथ ही, वीज वोने के ऐसे क्रियात्मक उपायो का, जिनसे वीज खेत में समान रूप से वोये जा सके, कही कम या अधिक न पडे, परिज्ञान भी पहले पहल इसी ने दिया था। इसीलिये श्री टल के विपय में कहा जाता था, कि जिस जमीन में कोई अन्य आदमी एक दाना पैदा कर सकता है, वहा वह दो दाने पैदा करके दिखा सकता था।

टल के प्रसिद्ध अनुयायी श्री टाउनशैन्ड (१६७४-१७३८) ने भी कृषि के तरीको मे अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार किये। उसकी अपनी जागीर पहले विल्कुल उजाड तथा दलदलो से परिपूर्ण थी। पर टाउनशैन्ड ने उस निकम्मी तथा ऊसर जमीन को लहलहाते खेत के रूप मे परिवर्तित कर दिखाया। वारी-वारी से भिन्न-भिन्न फसलो को वोकर जमीन की उपज-शक्ति को निरन्तर कायम रखा जा सकता है, इस उसूल का परिज्ञान टाउनशैन्ड ने ही कराया। अनेकविध खादो के उपयोग से जमीन की उपज को वढाने के महत्त्व परीक्षण भी इसी समय में किये गये। साथ ही पशुओ की तरक्की पर भी ध्यान दिया गया। रावर्ट

बेकवल (१७२५-१७६५) ने पशुओं की नसल को उन्नत करने के लिये अनेक परीक्षण किये। इस समय तक इङ्गलैण्ड के पशु बहुत ही पतले दुबले व कमजोर होते थे। उनके शरीर पर हड्डियां नजर आती थीं। पर बेकवल के प्रयत्न से इस दशा में सुधार शुरू हुआ। पशुओं के मांस को भोज्य पदार्थ के रूप में प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। कृषि के उपकरणों में भी उन्नति की गई। बैलों से चलनेवाले लकड़ी के हलों के स्थान पर घोड़ों से चलनेवाले लोहे के भारी हलों का आविष्कार हुआ। अनाज को भूसे से अलग करने के लिये भी मशीनों का निर्माण किया गया। इस मशीन का आविष्कारक एण्ड्रू माकवेल नाम का एक सज्जन था। इस समय के अंग्रेज किसान कितने अन्ध-विश्वासी तथा अपरिवर्तन-वादी थे, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है, कि वे लोग लोहे के नये हल को इस्तेमाल करने से इसलिये घबराते थे, क्योंकि उनके विचार में इनसे जमीन में जहर घुस जाता था। नये हल के समान ज्यादा अच्छी किस्म की दरांतियों व फावड़ों का भी इस समय आविष्कार हुआ। बीजों को चुनने की तरफ भी लोगों का ध्यान गया। बोने के लिये बढ़िया बीजों की आवश्यकता है, इस पर विशेष जोर दिया जाने लगा।

खेती के लिये इन नये आविष्कारों का प्रचार करने की भी कोशिश की गई। आर्थर यंग के आन्दोलन से सन् १७९३ में ब्रिटिश सरकार ने कृषि का एक पृथक् भाग खोल दिया। इसका काम ही यह था, कि किसानों में खेती के नये तरीकों का प्रचार करे। इसके कुछ समय बाद सन् १८३६ में रायल एग्रिकल्चरल सोसायटी की स्थापना की गई।

कृषि सम्बन्धी ये सब सुधार तब तक विशेष लाभदायक नहीं हो सकते थे, जब तक कि खेतों के स्वरूप में परिवर्तन न हो। खेतों के छोटे-छोटे व बिखरे हुए होने के कारण किसी किसान के लिये यह सम्भव नहीं था, कि वह खेती के उन्नत साधनों का प्रयोग कर सके। साथ ही नये सुधारों के लिये पूंजी की भी जरूरत होती थी। खेती के उन्नत तरीके तभी काम में लाये जा सकते थे, जब कि खेतों को एकत्र कर एक बड़े फार्म का रूप दिया जावे। इस उद्देश्य से ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा बहुत से ऐसे कानून पास किये गये, जिनसे खेतों के विविध स्वामियों के दावों पर विचार करके उनकी जमीन को एक स्थान पर एकत्र करने की व्यवस्था की गई। सरकार की ओर से इस काम के लिये अनेक कमिश्नर नियत किये गये। वे सब जगह जाकर इस बात की जांच करते थे, कि किस खेत पर किस किसान का हक है, और उस किसान की सारी जमीन को किस प्रकार एक जगह इकट्ठा किया जा सकता सन् १७०० से १८३९ तक इङ्गलैण्ड में खेतों को एकत्र करने के लिये जो विविध कानून है। पास हुए, उनकी संख्या ४००० से भी अधिक थी। यह काम कितना महत्त्वपूर्ण था, इसका अनुमान इसी एक बात से किया जा सकता है। पर खेतों के एकत्र किये जाने से बहुत से छोटे-छोटे किसान बेरोजगार हो गये, और वे आजीविका की खोज में शहरों की तरफ आकृष्ट हुए। शहरों में इस समय व्यावसायिक क्रान्ति प्रारम्भ हो चुकी थी, नये-नये उद्योग-धन्धों का विकास हो रहा था। ये किसान अब श्रमिक के रूप में शहरों में जाकर बस जाने के लिये प्रवृत्त हुए।

३ वैज्ञानिक आविष्कार

जिन वैज्ञानिक आविष्कारों ने यूरोप में व्यावसायिक क्रान्ति का सूत्रपात किया, उन्हें हम तीन भागों में बांट सकते हैं। (१) ऐसे नवीन यान्त्रिक आविष्कार जिनसे मानव श्रम की बचत हो। (२) जल, कोयला, भाप और बिजली—ये सब यान्त्रिक शक्ति के काम आ सकते हैं, इस बात का पता लगाना। (३) रसायन-शास्त्र की नई प्रक्रियाओं का परिज्ञान। हम इन पर क्रमश विचार करेंगे।

यान्त्रिक आविष्कार—नवीन यान्त्रिक आविष्कार किस प्रकार मानव श्रम में बचत करने में सहायक हो रहे थे, इसका एक उत्तम उदाहरण वस्त्र-व्यवसाय है। कपडा बनाने के लिये पहले रूई को सूत के रूप में कातना होता है, और बाद में सूत को बुनकर कपडा तैयार किया जाता है। अठारहवीं सदी के मध्य तक यूरोप में सूत कातने के दो ही साधन थे, तकली और चरखा। पर इन दोनों उपकरणों से मनुष्य एक समय में एक ही सूत कात सकता था। सन् १७६७ में जेम्स हरग्रीव नाम के एक अंग्रेज कारीगर ने एक ऐसे चरखे का आविष्कार किया, जिससे आठ व दस सूत एक साथ काते जा सकते थे। इसका अभिप्राय यह हुआ, कि इस नये चरखे से एक कारीगर आठ या दस कारीगरों का काम कर सकता था। एक साल बाद, सन् १७६८ में रिचर्ड आर्कराइट नामक अन्य अंगरेज शिल्पी ने एक ऐसी मशीन का आविष्कार किया, जिसमें बेलनों द्वारा सूत काता जाता था, और ये बेलन यान्त्रिक शक्ति द्वारा चलते थे। धीरे-धीरे सूत कातने के उपकरणों में उन्नति होती गई, और अठारहवीं सदी की समाप्ति से पूर्व इङ्गलैण्ड में ऐसी मशीनें काम करने लगीं, जिनसे एक साथ दो सौ सूत काते जाते थे। ये मशीनें यान्त्रिक शक्ति से चलती थीं, और इनका सचालन करने के लिये एक या दो से अधिक कारीगरों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। जो काम पहले सौ कारीगर करते थे, वह अब एक कारीगर करने लगा। इससे आर्थिक उत्पत्ति में मानव-श्रम की कितनी बचत हुई, यह सहज में ही भलीभांति समझा जा सकता है।

सूत कातने के नये उपकरणों के साथ-साथ कपडा बुनने के उपकरणों में भी उन्नति का होना आवश्यक था। नई मशीनों द्वारा सूत भारी तादाद में तैयार होने लगा था। जुलाहे लोग अपने पुराने तरीकों से सूत की इतनी भारी मात्रा को कपडे के रूप में परिवर्तित करने में असमर्थ थे। आवश्यकता आविष्कार की जननी कही गई है। अब अनेक शिल्पियों ने कपडा बुनने की खड्डियों में भी सुधार शुरू किये। १७८५ में डा० कार्टराइट नाम के शिल्पी ने एक ऐसी खड्डी का आविष्कार किया, जो जल की शक्ति से चलती थी, और जिसमें ताना-बाना अपने आप बुना जाता था। इस नई खड्डी से १५ वर्ष की आयु का एक लडका उतना कपडा तैयार कर लेता था, जितना कि पुरानी खड्डी से दस कुशल कारीगर कर पाते थे। धीरे-धीरे डा० कार्टराइट की खड्डी में सुधार होते गये, और इन नई मशीनों की लोकप्रियता किस प्रकार बढती गई, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है, कि सन् १८३३ में एक लाख के लगभग ये नई खड्डियां इङ्गलैण्ड में प्रयुक्त हो रही थीं।

सूत कातने और बुनने के इन नये उपकरणों के कारण इङ्गलैण्ड ने कपडा बहुत बडी

मात्रा मे तैयार होने लगा। रूई इङ्गलैण्ड मे पैदा नही होती थी। वस्त्र व्यवसाय के लिये इङ्गलैण्ड को रूई बाहर से मँगानी पड़ती है। सन् १७६८ तक, इङ्गलैण्ड बाहर से जो रूई कपडा बनाने के लिये मगाता था, उसकी मात्रा पचास हजार मन से अधिक नही होती थी। धीरे-धीरे बाहर से आनेवाली रूई की मात्रा बढ़ती गई, और सन् १८४१ मे इङ्गलैण्ड में जो रूई बाहर से आई, उसकी मात्रा ६५ लाख मन हो गई। ७५ वर्ष के लगभग समय में इङ्गलैण्ड मे रूई की खपत सौ गुना से भी अधिक बढ गई। यह सब यान्त्रिक उपकरणो का ही परिणाम था। सन् १८१५ मे राबर्ट आवन नाम का वस्त्र व्यवसायी अभिमान के साथ यह कहा करता था, कि उसके अपने एक कारखाने मे दो हजार कारीगर जितना कपडा तैयार करते है, पुराने तरीको से सारे स्काटलैण्ड के सब जुलाहे मिलकर भी उतना कपडा तैयार नही कर सकते थे। राबर्ट आवन की यह गर्वोक्ति सत्य पर आश्रित थी। पिछले चालीस वर्षो मे जो नये यान्त्रिक आविष्कार हुए थे, उन्होने मानव-श्रम मे भारी बचत कर दी थी, और आर्थिक उत्पत्ति पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढा दी थी।

मशीनो की उन्नति के लिये यह आवश्यक था, कि उन्हे बनाने के लिये किसी ऐसी धातु का प्रयोग किया जाय, जो मजबूत और चिरस्थायी हो। औजार बनाने के लिये बहुत पुराने जमाने से लोहे का उपयोग किया जाया करता था। पर लोहा बहुत कम मात्रा मे उपलब्ध होता था, और लोहे को साफ करके उसे मजबूत बनाने के साधन भी बहुत ही असन्तोषजनक थे। अठारहवी सदी में, जिस समय आर्कराइट और हरग्रीव जैसे शिल्पी चरखे और करघे की उन्नति मे लगे थे, उसी समय कतिपय अन्य शिल्पी लोहे की उन्नति के नये साधनो की खोज मे जुटे हुए थे। लोहे को तैयार करने मे पहले लकडी का कोयला प्रयुक्त होता था। सन् १७५० में पत्थर का कोयला प्रकाश में आया, और उसकी तेज गरमी से लोहे की कच्ची धात का पिघलाने व साफ करने का काम बहुत सुगम हो गया। धीरे-धीरे नई किस्म की भट्टिया तैयार होने लगी और साफ व मजबूत लोहा भारी मात्रा मे बनने लगा। मशीनो की उन्नति में इस लोहे ने बहुत सहायता पहुचाई।

नई यान्त्रिक शक्ति—पर नई मशीनो के आविष्कार ही पर्याप्त नही थे। जब तक नई मशीनो को चलाने के लिय नई यान्त्रिक शक्ति का आविष्कार न हो, उनसे पूरा लाभ नही उठाया जा सकता था। वायु और जल—इन दो प्राकृतिक शक्तियो का मनुष्य को प्राचीन काल से परिज्ञान था। अपने श्रम के अतिरिक्त मनुष्य देर से इनका भी उपयोग करना जानता था। पवनचक्की और पनचक्की मध्यकाल मे भी प्रयुक्त होती थी। पर इनका उपयोग और क्षेत्र बहुत सीमित थे। मनुष्य जहा चाहे वहा और जिस प्रकार से चाहे, इन शक्तियो का उपयोग नही कर सकता था। अठारहवी सदी में भाप की शक्ति का आविष्कार हुआ, और पत्थर के कोयले से उत्पन्न तीव्र अग्नि और जल के सयोग से जो भाप प्रचुर मात्रा मे उत्पन्न होती है, उसे काबू कर मनुष्य एक नई यान्त्रिक शक्ति को हस्तगत कर सकता है, यह ज्ञात हुआ। भाप की इस शक्ति को प्रयुक्त करनेवाले उपकरण को 'स्टीम इजन' कहते है। इसका सबसे पहले आविष्कार न्यूकामन नाम के शिल्पी ने किया था। बाद में जैम्स वाट ने उसमें बहुत सुधार किया। वस्त्र व्यवसाय मे सबसे पहले सन् १७८५मे स्टीम इजन का प्रयोग किया गया। अठारहवी सदी के अन्त तक इगलैड में हजारो की सख्या

मे स्टीम इजन प्रयुक्त होने लगे—और व्यवसाय के क्षेत्र मे उनका प्रचार बहुत अधिक बढ गया। मध्यकाल मे मनुष्य सब श्रम अपने हाथ व पैर से करता था। बैल व घोडे की जो शक्ति उसे उपलब्ध थी, वह भी जीवित शक्ति होने के कारण अपनी एक सीमा रखती थी। पर अब लोहे के बने इजन के रूप मे मनुष्य के हाथ में एक ऐसा दानव आ गया, जिससे वह गुलाम के तौर पर काम ले सकता था, और जो चेतन शरीरके समान श्रान्ति और क्लान्ति का शिकार सुगमता से नही हो जाता था। स्टीम इजन के आविष्कार से भारी और बडी मशीनो का सचालन सम्भव हुआ और उस के कारण आर्थिक उत्पत्ति मे बहुत वृद्धि हुई।

स्टीम इजन के आविष्कार से आवागमन के साधनो मे भी बहुत उन्नति हुई। नदियो और समुद्र मे नौकाएँ पहले भी चलती थी, पर वे चप्पुओ और पाल के द्वारा चलाई जाती थी। सन् १८०२ मे नौकाओ में भी स्टीम इजन स्थापित किया गया, और ऐसी नौकाओ व जहाजो का निर्माण प्रारम्भ हुआ, जो चप्पुओ व पाल से न चल कर इजन द्वारा चलते थे। धीरे-धीरे जहाजो के आकार में भी वृद्धि शुरु हुई। लाखो मन बोझ के विशाल जहाज समुद्र के वक्षस्थल को चीरते हुए तेज गति से दौडने लगे। पर यह सब केवल इसलिये सम्भव हो सका, क्योकि उन्हें चलाने के लिये अब कपडे के पाल व चप्पुओ पर निर्भर रहने की आवश्यकता नही रही थी। अब उन्हे चलाने के लिये भाप की यान्त्रिक शक्ति मनुष्य के वश मे आ गई थी।

यदि भाप की शक्ति से जल मे जहाज चलाये जा सकते थे, तो उसी शक्ति का उपयोग स्थल में गाडिया चलाने के लिये क्यो नही किया जा सकता था? जिस प्रकार चप्पुओ व पाल का स्थान अब स्टीम इजन ले रहा था, उसी प्रकार घोडे व बैल का स्थान भी स्टीम इजन क्यो नही ले सकता था? सन् १८१४ में जार्ज स्टीवन्सन ने एक ऐसे लोकोमोटिव (स्वय सचालित होनेवाले इजन) का आविष्कार किया, जो लोहे की पटरी पर स्वय भाप की शक्ति से चल सकता था, और अपने साथ में बोझ से भरी हुई गाडियो को भी खीच सकता था। इस लोकोमोटिव का पहला उपयोग खान से कोयले को ढोकर नहर तक पहुँचाने के लिये किया गया। पर यह रेलगाडी के उस महान् आविष्कार का श्रीगणेश था, जिसने आगे चलकर मनुष्य के यातायात को बहुत सुगम कर दिया। सन् १८२५ मे इगलैण्ड में पहली रेलवे लाइन बनी। यह बारह मील लम्बी थी। पहली रेलगाडी की चाल भी अधिक से अधिक बारह मील प्रति घण्टा थी। इस गाडी को देखने के लिये लोगो मे इतनी उत्सुकता थी, कि जब पहले पहल यह रेलगाडी चलाई गई, तो भीड को पटरी से परे रखने के लिये कुछ घुडसवार इजन के आगे-आगे चलने के लिये नियत करने पडे। १८३० मे मचेस्टर और लिवरपूल के बीच मे बाकायदा रेल चलने लगी। उस समय सत्ताईस मील की इस लाइन को पार करने मे गाडी को डेढ घण्टे का समय लगता था। तेरह साल मे, सन् १८४३ तक इङ्गलैण्ड मे १८०० मील रेलवे लाइन बन गई थी। अब लन्दन से लिवरपूल पहुँचने मे केवल दस घण्टे लगते थे। रेल से पहले तेज घोडागाडियो द्वारा इसी मे एक सप्ताह लग जाता था। निःसन्देह, मनुष्य ने स्टीम इजन के आविष्कार द्वारा देश और काल पर भारी विजय प्राप्त कर ली थी।

रसायन शास्त्र—स्टीम इजन व नये यान्त्रिक उपकरणो के आविष्कार के साथ-साथ

अठारहवी सदी मे यूरोप मे रसायनशास्त्र की नई प्रक्रियाओं का भी परिज्ञान हो रहा था। रसायनशास्त्र बहुत पुराना विज्ञान है। मध्यकाल मे इसी की सहायता से वैज्ञानिक लोग उस पारस पत्थर की खोज मे लगे थे, जिसके स्पर्श मे लोहा सोना बन सके। अब वैज्ञानिकों ने पारस को पाने की आशा तो त्याग दी थी, पर उन्होने सचमुच अपने आविष्कारो मे उन प्रक्रियाओं को जान लिया था, जिनसे वे मानव के कल्याण व हित के लिये बहुत कुछ काम कर सकते थे। लोहे को मजबूत बनाने की प्रक्रिया का परिज्ञान इसका एक उदाहरण है। इस एक रासायनिक आविष्कार से व्यावसायिक क्रान्ति मे जितनी सहायता मिली, उसकी कल्पना सहज मे की जा सकती है।

नई मशीनो के आविष्कार, यान्त्रिक शक्ति के परिज्ञान और नई रासायनिक प्रक्रियाओ के परिचय ने मिलकर आर्थिक उत्पत्ति के क्षेत्र मे जिस नये युग का प्रारम्भ किया, उसके कारण मानव-समाज के व्यावसायिक सगठन में बड़ा भारी परिवर्तन आ गया। इसी को व्यावसायिक क्रान्ति कहते है। वस्तुत, मनुष्य के जीवन मे यह एक भारी क्रान्ति थी। इसका प्रभाव मनुष्य के हित व कल्याण के लिये उन क्रान्तियो से कही अधिक था, जिनके द्वारा मनुष्य ने राजा व चर्च के आधिपत्य का अन्त कर जनसाधारण के शासन का सूत्रपात किया था।

४ औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम

यूरोप मे औद्योगिक क्रान्ति ने मानव समाज के जीवन मे जो भारी परिवर्तन किया है, उस पर प्रकाश डालना आवश्यक है—

(१) **आर्थिक उत्पत्ति में वृद्धि**—यूरोप मे व्यावसायिक उन्नति का प्रारम्भ इङ्गलैण्ड से हुआ। वहा आर्थिक उत्पत्ति में इतनी वृद्धि हुई, कि जहा सन् १७८० मे इङ्गलैण्ड से बाहर जानेवाले माल की कीमत बीस करोड के लगभग थी, वहा १८१५ मे, केवल तेतीस वर्ष बाद, नब्बे करोड के लगभग का माल दूसरे देशो मे बिक्री के लिये जाने लगा। पिछली डेढ सदी में इङ्गलैण्ड में अकेले कपडे की पैदावार में ३०० गुना की वृद्धि हुई है। यदि ससार के सब स्त्री पुरुषो को सूत कातने और बुनने के काम मे लगा दिया जाय, तो वे जितना कपडा साल भर में तैयार कर सकेंगे, उससे कही अधिक कपडा अकेले इङ्गलैण्ड मे कपडे की मिलो द्वारा तैयार होता है।

केवल वस्त्र व्यवसाय मे ही नही, अन्य व्यवसायो मे भी मशीन के प्रयोग ने उत्पत्ति में भारी वृद्धि की है। उदाहरण के लिये पिन के व्यवसाय को लीजिये। इङ्गलैण्ड की एक साधारण फैक्टरी मे सत्तर लाख पिन एक दिन में तैयार होते है, और इतनी उत्पत्ति करने वाली मशीन को चलाने के लिये केवल तीन शिल्पियो की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार मशीन के कारण छापेखानो (प्रिंटिंग प्रेस) मे यह सम्भव है, कि एक घण्टे मे लाख व अधिक सख्या मे समाचारपत्रो की प्रतियां छापी जा सके। मध्यकाल मे भी यूरोप मे छापेखाने होते थे। पर मैटर को कम्पोज करना, स्याही लगाना व छापना—सब काम हाथ से होता था। परिणाम यह था, कि एक दिन मे कुछ सौ प्रतियां ही छापकर तैयार की जा सकती थी। पर यान्त्रिक शक्ति और मशीन के उपयोग के कारण अब मुद्रण-व्यवसाय

ने इतनी अधिक उन्नति कर ली है, कि लाखो की सख्या मे छपने वाले समाचार-पत्र प्रात-काल छपकर तैयार हो जाते है, और दिन निकलने तक पाठको के हाथ मे पहुँच जाते है।

(२) **गृह उद्योग का अन्त और विशाल कारखानो का प्रारम्भ**—व्यावसायिक क्रान्ति से पहले मध्यकाल मे गृह-उद्योग की पद्धति जारी थी। प्रत्येक कारीगर अपने घर पर काम करता था। उसका घर पर ही एक छोटा सा कारखाना होता था, जिसमे वह अपनी स्त्री व बच्चो तथा अन्तेवासियो (शागिर्दों) के साथ आर्थिक उत्पत्ति करता था। कुम्हार, जुलाहा, मोची, लुहार आदि सब व्यवसायी अपने-अपने घर पर काम करते थे। उनके काम करने के कोई घण्टे नियत नही होते थे। वे जब चाहते और जितने समय तक चाहते, काम करते और स्वय ही अपने माल को देहात की पैंठ मे या शहर की मण्डी मे बेच आते थे। कारीगरो का जीवन बड़ा सीधा, सरल और शान्तिमय था।

पर औद्योगिक क्रान्ति ने इस दशा को बदल दिया। नई मशीनो के मुकाबले मे गृह-उद्योगो के लिये ठहर सकना कठिन हो गया। गृह व्यवसायो का स्थान वे कारखाने (फैक्टरी) लेने लगे, जिनमे नई मशीने यान्त्रिक शक्ति द्वारा काम करती थी, और जिनमे श्रमी (मजदूर) व कारीगर की अपेक्षा मशीनो का महत्त्व अधिक था, और एक-एक कारखाने मे हजारो की सख्या मे श्रमी लोग एकत्र होकर मशीन की सहायता से आर्थिक उत्पत्ति करते थे। कारीगर अब स्वतन्त्र उत्पादक न रहकर भृति (मजदूरी) प्राप्त करनेवाला हो गया। उसकी स्थिति एक ऐसे गुलाम की हो गई, जिसने अपने स्वामी (कारखाने के मालिक) के आदेश के अनुसार कार्य करना है।

मशीन के उपयोग के कारण श्रम-विभाग का भी बहुत विकास हुआ। पहले आर्थिक उत्पत्ति की सब प्रक्रियाएँ कारीगर स्वय करता था। इस कारण यह गुंजाइश थी, कि वह अपनी प्रतिभा के अनुसार कला का प्रदर्शन कर सके। पर अब आर्थिक उत्पत्ति की प्रक्रिया अनेक छोटे-छोटे भागो में विभक्त हो गई, जिन्हे विविध मशीने सम्पन्न करती है, और मनुष्य का कार्य केवल यह देखना है, कि मशीन ठीक प्रकार से अपना कार्य कर रही है। श्रमी व शिल्पी की प्रतिभा व कला को प्रयुक्त होने का अवसर इन कारखानो मे नही रह गया है। वस्तुत, उसकी स्थिति भी एक मशीन की हो गई है, जिसे दूसरो की इच्छा के अनुसार गुलाम के रूप मे काम करना है।

(३) **पूजीपतियो का प्रभाव**—औद्योगिक क्रान्ति के कारण अब यह सम्भव नही रहा, कि कारीगर स्वतन्त्र रूप से आर्थिक उत्पत्ति कर सके। मध्यकाल मे उत्पत्ति के लिये किसी बडी पूजी की आवश्यकता नही होती थी। कारीगर को जिन औजारो व उपकरणो की आवश्यकता होती थी, वे सस्ते में खरीदे जा सकते थे, या कारीगर उन्हे स्वय बना लेता था। पर मशीनो के इस नये युग मे जो कीमती इजन व जटिल मशीने काम मे आने लगी, उन्हें हर कोई सुगमता से नही प्राप्त कर सकता था। उनके लिये पूजी की आवश्यकता होती थी। जिन लोगो के पास रुपया था, वे स्वय शिल्पी न होते हुए भी अपने धन के बल पर मशीन खरीद कर कारखाना कायम कर सकते थे, और सैकड़ो हजारो मजदूरो को नौकर रखकर आर्थिक उत्पत्ति का सचालन कर सकते थे। यह स्वाभाविक था कि इन नये पूजीपतियो का प्रभाव आर्थिक क्षेत्र मे बढता जाय, और धीरे-धीरे सब आर्थिक उत्पत्ति स्वतन्त्र

शिल्पियों के हाथ से निकलकर इन धनियों व पूंजीपतियों के हाथ में आ जाय। उन्नीसवीं सदी के शुरू से यह प्रक्रिया निरन्तर जोर पकड़ने लगी, और पूंजीपति श्रेणि सम्पूर्ण व्यवसायों को अपने हाथ मे करने लगी।

यह ठीक है, कि व्यावसायिक क्रान्ति से पूर्व भी यह पूंजीपति श्रेणि जोर पकडना शुरू कर चुकी थी। जब से दिग्दर्शक यन्त्र का आविष्कार हुआ, यूरोप का व्यापार एशिया व अफ्रीका मे बढने लगा। ऐसे व्यापारी प्रगट हुए, जो जहाजो पर बडी मात्रा मे माल लादकर बाहर ले जाते थे, और व्यापार द्वारा प्रचुर धन कमाते थे। पहले ये लोग स्वतन्त्र शिल्पियों से कपडा व अन्य माल खरीदा करते थे। पर धीरे-धीरे उन्होंने अनुभव किया, कि व्यापार की दृष्टि से यह अधिक अच्छा है, कि शिल्पियों को नौकर रखकर उनसे माल तैयार कराया जाय। ये बडे-बडे धनिक व्यापारी सैकडो हजारो की सख्या मे शिल्पियों को अपने पास नौकरी मे रखकर आर्थिक उत्पत्ति कराने लगे थे। इससे एक प्रकार के ऐसे कारखानो का प्रादुर्भाव हुआ था, जिनमे यान्त्रिक शक्ति के बिना पुराने किस्म के औजारो से ही काम होता था, पर जिनमे शिल्पियों की स्वतन्त्र सत्ता का ह्रास होकर धनिकों का प्रभाव बढता जाता था। पर जब नये वैज्ञानिक आविष्कारो के कारण यान्त्रिक शक्ति और नई मशीनो का जो प्रारम्भ हुआ, उसने तो इन 'कारखानों' के महत्त्व को बहुत अधिक बढा दिया। धनिक पूंजीपतियो के लिये यह सुगम हो गया, कि वे अपने रुपये से इजन व मशीन खरीद कर सम्पूर्ण व्यवसाय को अपने हाथ मे कर ले, और शिल्पियो को पूर्णतया अपना वशवर्ती बना ले।

व्यावसायिक क्रान्ति ने आर्थिक उत्पादको को दो श्रेणियो मे विभक्त कर दिया—पूंजीपति और मजदूर। धीरे-धीरे मजदूरो को अपनी दुर्दशा का ज्ञान हुआ, और उन्होंने अपने को सगठित कर अपनी दशा को उन्नत करने व अपने अधिकारो की माग के लिये सघर्ष प्रारम्भ किया। पूजीपतियो व मजदूरो का पारस्परिक सघर्ष व्यावसायिक उन्नति का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम है।

(४) **व्यावसायिक नगरो का विकास**—बडे-बडे कारखानों के विकास के कारण नगरो की आबादी बढने लगी। देहातो के गृह-व्यवसाय नष्ट होने लगे, और उनके कारीगर शहरो के कारखानो में मजदूरी करने के लिये आने लगे। जिन नगरो में बडे कारखानो के लिये सुविधाएँ थी, उनका बडी तेजी के साथ विकास हुआ। १७६० में लिवरपूल की आबादी चालीस हजार थी। १८४१ में वह बढकर दो लाख अठाइस हजार हो गई। इसी प्रकार, इसी काल में मान्चेस्टर की आबादी पैंतालीस हजार से बढकर तीन लाख हो गई। १७६० में लकाशायर की आबादी १,६६,००० थी। १९०१ मे वह बढकर ४,५००,००० तक पहुँच गई। सन् १८०० मे सारे यूरोप में केवल अठारह नगर ऐसे थे, जिनकी जनसख्या एक लाख से ऊपर थी। एक सदी बाद ऐसे नगरो की सख्या २०० से भी ऊपर पहुँच गई थी। व्यावसायिक नगरो का विकास व्यावसायिक क्रान्ति का एक बहुत महत्त्वपूर्ण परिणाम है। इन विशाल नगरो का जीवन देहातो व कसबो के सीधे-सादे सरल जीवन से बहुत ही भिन्न है। देहात के स्वतन्त्र वातावरण मे रहनेवाला किसान व शिल्पी अब इन महानगरियो के तग वायुमडल में निवास करने के लिये बाधित हुआ।

(५) **नया श्रेणिभेद**—मध्यकालीन यूरोप मे जागीरदार सामन्तो का प्रभाव सबसे अधिक था। सामन्त, पादरी और सर्वसाधारण जनता, जिसमे किसान व शिल्पी सब अन्तर्गत थे, ये तीन श्रेणिया उस समय मे विद्यमान थी। पर अब नया श्रेणिभेद उत्पन्न हुआ। कारखानो के मालिक पूजीपतियो का महत्त्व अब मध्यकाल के सामन्तो की अपेक्षा अधिक बढ गया। पूजीपति और मजदूर—ये दो श्रेणिया प्रधान रूप मे बन गई। मजदूर पूर्णतया पूजीपतियो पर आश्रित हो गये। सामाजिक दृष्टि से स्वतन्त्र होते हुए भी उनकी स्थिति गुलामो से अच्छी नही रही। पर पूजीपति और मजदूर इन दो श्रेणियो के साथ-साथ इस समय एक तीसरी श्रेणि का भी विकास होने लगा। इसे हम शिक्षित मध्यश्रेणि कह सकते है। कारखानो मे यान्त्रिक शक्ति और जटिल मशीनो का सचालन करने के लिये ऐसे शिक्षित शिल्पियो की आवश्यकता थी, जो विज्ञान मे विशारद हो। साथ ही, कारखानो का हिसाब रखने व्यापार की नीति का निर्माण करने व माल का प्रचार करने के लिये कुशल शिक्षित पुरुषो के बिना काम नही चल सकता था। मध्यश्रेणी के ये शिक्षित लोग स्वय पूजीपति न होते हुए भी समाज मे अतुल प्रभाव रखते थे। नये आर्थिक जीवन मे व्यापारी, महाजन, वकील आदि का महत्त्व बढने लगा, और इन सब से मिलकर एक तीसरी श्रेणी—शिक्षित मध्यश्रेणी—का विकास हुआ। धीरे-धीरे अपने प्रभाव की दृष्टि से इसका वही महत्त्व बनने लगा, जो मध्यकाल मे पादरियो का था। शिक्षा और ज्ञान के प्रवाह के कारण इस श्रेणी के लोगो के लिये समाज और सरकार—दोनो पर अपना प्रभाव बढा सकना बहुत सुगम था। प्रेस, समाचारपत्र, और पुस्तको के प्रचार के कारण यह श्रेणी अपने विचारो का प्रसार भी सुगमता से कर सकती थी। परिणाम यह हुआ, कि धीरे-धीरे समाज का नेतृत्व इसके हाथ मे आने लगा।

(६) **पारिवारिक जीवन पर असर**—व्यावसायिक क्रान्ति से पूर्व आर्थिक उत्पत्ति का कार्य प्रधानतया पुरुष करते थे। स्त्रिया घर का काम करती थी, और आर्थिक क्षेत्र मे भी अपने पुरुषवर्ग की सहायता करती थी। इससे सर्वसाधारण जनता मे भी पारिवारिक जीवन सुखमय तथा अक्षुण्ण बना रहता था। पर बडे कारखानो के प्रादुर्भाव के कारण जब शिल्पी लोग देहातो से शहरो मे मजदूरी की तलाश मे आने लगे, तो पारिवारिक जीवन पर इसका बडा प्रतिकूल प्रभाव पडा। शहरो मे रहने की जगह की कमी थी। मजदूरो के लिये सम्भव नही था, कि वे शहरो मे परिवार के योग्य स्थान प्राप्त कर सके। एक एक कोठरी मे अनेक मजदूर एक साथ निवास करते थे। उनके लिये अपनी स्त्री व बच्चो को साथ रख सकना कठिन था। परिणाम यह हुआ, कि पारिवारिक जीवन की शान्ति व सुख नष्ट होने लगा। साथ ही, आजीविका की तलाश मे बहुत सी स्त्रियो व बच्चो ने भी कारखानो मे मजदूरी करनी शुरू कर दी। मशीनो से चलनेवाले कारखानो मे काम करने के लिये शारीरिक शक्ति व शिल्पनैपुण्य की विशेष आवश्यकता नही थी। उनमें स्त्री व बच्चे भी सुगमता से काम कर सकते थे। पूजीपतियो को इसमें लाभ था, कि वे स्त्रियो व बालको को मजदूरी पर रखे, क्योकि उनकी मजदूरी की दर कम होती थी। पुरुष बेकार फिरने लगे और स्त्रियो व बच्चो को बडी सख्या मे कारखानो मे काम मिलने लगा। बच्चो के भविष्य के लिये यह बात बहुत हानिकारक थी। स्त्रियो के स्वास्थ्य पर भी इसका

बहुत प्रतिकूल असर पडता था। बाद मे ऐसे बहुत से कानून बनाये गये, जिनसे स्त्रिया व बच्चा को पूजीपतियो के लोभ का शिकार बनने से बचाने का उद्योग किया गया। पर इसमें सन्देह नही, कि शुरू मे व्यावसायिक क्रान्ति ने जहा पारिवारिक जीवन की सुख-शान्ति को नष्ट किया, वहा स्त्रियो व बच्चो के स्वास्थ्य व भविष्य पर भी बहुत प्रतिकूल प्रभाव डाला। वस्तुत, इस युग मे पूजीपतियो ने सब प्रकार से गरीबो की असहाय दशा का फायदा उठाया और गरीब व अमीर का भेद निरन्तर अधिक-अधिक बढता गया।

(७) **वैयक्तिक स्वतन्त्रता का सिद्धात**—इस युग मे पूजीपतियो की मनमानी का किसी भी प्रकार से विरोध कर सकना सुगम नही था। कारण यह, कि एक तरफ तो अभी स्वेच्छाचारी एकतन्त्र शासन विद्यमान थे, लोकतन्त्र शासन का भलीभाति विकास नही हुआ था, और दूसरी तरफ इस समय के विचारक "वैयक्तिक स्वतन्त्रता" के सिद्धान्त के अनुयायी थे। इस सिद्धान्त के अनुसार यह समझा जाता था, कि राज्य को व्यवसाय के क्षेत्र में किसी प्रकार का हस्तक्षेप या नियन्त्रण नही करना चाहिये। पूजीपति और मजदूर के पारस्परिक सम्बन्ध उनके स्वेच्छापूर्वक किये गये ठीके पर आश्रित है। किसी ने मजदूर को विवश नही किया, कि वह नाममात्र की मजदूरी पर दिन मे बारह व पन्द्रह घण्टे तक काम करे। यदि वह चाहे तो उसे पूरी स्वतन्त्रता है, कि वह नाकरी छोड दे। प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य का स्वय विधाता है, वह अपने भले-बुरे को स्वय भली भाति समझता है। यदि उसे खुला छोड दिया जाय, तो वह अपनी योग्यता और कार्यक्षमता के अनुरूप स्वय उचित स्थान प्राप्त कर लेगा। इसी प्रकार, वस्तुओ की कीमते उपलब्धि और माग के नियम पर आश्रित है। अर्थशास्त्र का यह नियम स्वय वस्तुओ की कीमत को ठीक करता रहता है। राज्य की ओर से इसमे हस्तक्षेप करना ठीक वैसा ही है, जैसे जल को नीचे की ओर बहने से रोकना।

इन विचारो का परिणाम क्रिया मे बहुत भयकर हुआ। इससे पूंजीपतियो को गरीब लोगो की असहाय दशा का अनुचित लाभ उठाने का सुवर्णीय अवसर हाथ लगा। उनके कारखानो में नौ वर्ष की आयु मे भी कम के बालक काम के लिये रखे जाते थे, और उन्हें बारह से पन्द्रह घण्टे तक प्रतिदिन काम करने के लिये विवश होना पडता था। इतने समय तक काम करने के बाद वे जिन मकानो मे विश्राम करने के लिये जाते थे, वे गन्दे और तग होते थे। एक-एक कमरे मे दर्जनो बच्चे, मर्द व स्त्रिया एक साथ रहने के लिये विवश होती थी।

बाद में वैयक्तिक स्वतन्त्रता के इस हास्यास्पद सिद्धान्त के विरुद्ध भी प्रतिक्रिया शुरू हुई। लोगो ने आन्दोलन शुरू किया, कि कारखानो पर सरकार का नियन्त्रण होना चाहिये, और यह नियन्त्रण सर्वसाधारण जनता के हित मे हो। इसके लिये वोट देने का अधिकार केवल अमीरो तक ही सीमित नही रहना चाहिये। मजदूरो के अपने सगठन भी अपने हितो की रक्षा के लिये बनने शुरू हुए, और धीधीरे-धीरे कारखानो की दशा में सुधारो का प्रारम्भ हुआ।

(८) **व्यापार का विस्तार**—व्यावसायिक क्रान्ति के कारण व्यापार का बहुत विस्तार हुआ। पहले लोग प्राय अपनी सभी आवश्यकताओ को स्वय पूरा करने का प्रयत्न करते थे। गाव प्राय आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होते थे। पर बडे-बडे कारखानो

के विकास के साथ-साथ भिन्न-भिन्न व्यवसायो के पृथक्-पृथक् केन्द्रो का विकास प्रारम्भ हुआ। मैन्चेस्टर और लकाशायर वस्त्र-व्यवसाय के लिये व शैफील्ड तथा बर्मिघम लोह-व्यवसाय के लिये प्रसिद्ध होने लगे। जब एक केन्द्र मे प्रधानतया एक ही व्यवसाय केन्द्रित हुआ, तो शहरो का पारस्परिक व्यापार बढना बिलकुल स्वाभाविक था। इसी प्रकार विविध देश अपनी स्वाभाविक परिस्थितियो के कारण पृथक् व्यवसायो मे विशेषता प्राप्त करने लगे। इस से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे भी बहुत वृद्धि होने लगी।

इसमें सन्देह नही, कि व्यावसायिक क्रान्ति के परिणाम अच्छे व बुरे—दोनो प्रकार के थे। इसके कारण शुरू मे गरीब शिल्पियो की बहुत दुर्दशा हुई। उन की स्थिति स्वतन्त्र व प्रतिष्ठित शिल्पी के बजाय पराश्रित मजदूर की हो गई। पर शहरो मे आने से वे ज्ञान के उस प्रकाश को भी धीरे-धीरे प्राप्त करने लगे, जिससे उन्हे अपनी स्थिति व अधिकारो का भलीभाति परिज्ञान हो गया। कुछ ही समय बाद वे अपने हितो व अधिकारो की रक्षा के लिये संघर्ष भी करने लग गये। अब न केवल उनकी आर्थिक स्थिति सतोषजनक है, पर साथ ही राज्य पर भी उनका अतुल प्रभाव है। राज्य के राजनीतिक जीवन मे उनका महत्त्व अब सबसे अधिक है। मानव समाज की उन्नति का ढग यही है, कि एक परिवर्तन पहले अपने कुपरिणाम भी उत्पन्न करता है, पर धीरे-धीरे बुराई का अन्त करके मनुष्य उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो जाता है।

५ अन्य देशो मे औद्योगिक क्रान्ति

व्यावसायिक क्रान्ति के क्षेत्र मे नेतृत्त्व इङ्गलैण्ड ने किया, पर अन्य यूरोपियन देश भी उसके प्रभाव से वचित नही रहे। फ्रास में राज्यक्रान्ति ने जिस नवजीवन को उत्पन्न किया था, उसके कारण वहा के लोगो ने यान्त्रिक शक्ति और नई मशीनो को अपनाने मे देर नही की। सन् १७८५ में कपडे का पहला बडा कारखाना फ्रास में खुला। इसके लिये सब मशीन इङ्गलैण्ड से मँगवाई गई थी। नैपोलियन ने वस्त्र व्यवसाय को उन्नत करने के लिये बड़ा उत्साह दिखाया। परिणाम यह हुआ, कि १८१५ तक फ्रास में भी चार लाख मन रूई प्रति वर्ष कपडे के रूप में परिवर्तित की जाने लगी। सन् १८३१ तक यह संख्या बढ़कर सोलह लाख मन तक पहुच गई। फ्रास मे भी वस्त्र व्यवसाय मे हजारो मजदूर काम करने लगे। १८३१ मे इस प्रकार के मजदूरो की संख्या ढाई लाख से ऊपर थी। रूई के अतिरिक्त, रेशम और ऊन के कपडो के व्यवसाय में भी फ्रास ने बहुत उन्नति की। लियो और लीट् के नगर रेशमी कपडो के लिये ससार भर मे प्रसिद्ध हो गये। साबुन, तेल, शराब, कागज, दरी, शीशा आदि अनेक व्यवसायो मे फ्रास इङ्गलण्ड से भी आगे बढ गया।

उन्नीसवी सदी के शुरू मे इङ्गलैण्ड और फ्रास, दो ही देश यूरोप मे व्यवसायिक दृष्टि से सब से अधिक उन्नत थे। यही कारण है, कि साम्राज्यवाद के क्षेत्र मे भी इन्ही दो देशो मे संघर्ष सब से प्रबल था। अफ्रीका, भारत व एशिया के अन्य देशो मे इङ्गलैण्ड और फ्रास अपना-अपना प्रभुत्व कायम करने के लिये प्रयत्नशील थे।

जर्मनी मे व्यावसायिक क्रान्ति का प्रारम्भ १८४५ के लगभग हुआ। इससे पहले वहा शिल्प उत्पत्ति प्राय मध्यकाल की शैली से ही होती थी। जर्मनी के इस अंश मे पिछड

बहुत प्रतिकूल असर पडता था। बाद मे ऐसे बहुत से कानून बनाये गये, जिनसे स्त्रियो व बच्चो को पूजीपतियो के लोभ का शिकार बनने से बचाने का उद्योग किया गया। पर इसमें सन्देह नही, कि शुरू मे व्यावसायिक क्रान्ति ने जहा पारिवारिक जीवन की सुख-शान्ति को नष्ट किया, वहा स्त्रियो व बच्चो के स्वास्थ्य व भविष्य पर भी बहुत प्रतिकूल प्रभाव डाला। वस्तुत, इस युग में पूजीपतियो ने सब प्रकार से गरीबो की असहाय दशा का फायदा उठाया और गरीब व अमीर का भेद निरन्तर अधिक-अधिक बढता गया।

(७) **वैयक्तिक स्वतन्त्रता का सिद्धांत**—इस युग मे पूजीपतियो की मनमानी का किसी भी प्रकार से विरोध कर सकना सुगम नही था। कारण यह, कि एक तरफ तो अभी स्वेच्छाचारी एकतन्त्र शासन विद्यमान थे, लोकतन्त्र शासन का भलीभाति विकास नही हुआ था, और दूसरी तरफ इस समय के विचारक "वैयक्तिक स्वतन्त्रता" के सिद्धान्त के अनुयायी थे। इस सिद्धान्त के अनुसार यह समझा जाता था, कि राज्य को व्यवसाय के क्षेत्र में किसी प्रकार का हस्तक्षेप या नियन्त्रण नही करना चाहिये। पूजीपति और मजदूर के पारस्परिक सम्बन्ध उनके स्वेच्छापूर्वक किये गये ठेके पर आश्रित है। किसी ने मजदूर को विवश नही किया, कि वह नाममात्र की मजदूरी पर दिन मे बारह व पन्द्रह घण्टे तक काम करे। यदि वह चाहे तो उसे पूरी स्वतन्त्रता है, कि वह नौकरी छोड दे। प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य का स्वय विधाता है, वह अपने भले-बुरे को स्वय भली भाति समझता है। यदि उसे खुला छोड दिया जाय, तो वह अपनी योग्यता और कार्यक्षमता के अनुरूप स्वय उचित स्थान प्राप्त कर लेगा। इसी प्रकार, वस्तुओ की कीमते उपलब्धि और माग के नियम पर आश्रित है। अर्थशास्त्र का यह नियम स्वय वस्तुओ की कीमत को ठीक करता रहता है। राज्य की ओर से इसमे हस्तक्षेप करना ठीक वैसा ही है, जैसे जल को नीचे की ओर बहने से रोकना।

इन विचारो का परिणाम क्रिया मे बहुत भयकर हुआ। इससे पूजीपतियो को गरीब लोगो की असहाय दशा का अनुचित लाभ उठाने का सुवर्णीय अवसर हाथ लगा। उनके कारखानो में नौ वर्ष की आयु मे भी कम के बालक काम के लिये रखे जाते थे, और उन्हें बारह से पन्द्रह घण्टे तक प्रतिदिन काम करने के लिये विवश होना पडता था। इतने समय तक काम करने के बाद वे जिन मकानो मे विश्राम करने के लिये जाते थे, वे गन्दे और तग होते थे। एक-एक कमरे मे दर्जनो बच्चे, मर्द व स्त्रिया एक साथ रहने के लिये विवश होती थी।

बाद मे वैयक्तिक स्वतन्त्रता के इस हास्यास्पद सिद्धान्त के विरुद्ध भी प्रतिक्रिया शुरू हुई। लोगो ने आन्दोलन शुरू किया, कि कारखानो पर सरकार का नियन्त्रण होना चाहिये, और यह नियन्त्रण सर्वसाधारण जनता के हित में हो। इसके लिये वोट देने का अधिकार केवल अमीरो तक ही सीमित नही रहना चाहिये। मजदूरो के अपने सगठन भी अपने हितो की रक्षा के लिये बनने शुरू हुए, और धीधीरे-धीरे कारखानो की दशा मे सुधारो का प्रारम्भ हुआ।

(८) **व्यापार का विस्तार**—व्यावसायिक क्रान्ति के कारण व्यापार का बहुत विस्तार हुआ। पहले लोग प्राय अपनी सभी आवश्यकताओ को स्वय पूरा करने का प्रयत्न करते थे। गाव प्राय आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होते थे। पर बडे-बडे कारखानो

के विकास के साथ-साथ भिन्न-भिन्न व्यवसायो के पृथक्-पृथक् केन्द्रो का विकास प्रारम्भ हुआ। मैन्चेस्टर और लंकाशायर वस्त्र-व्यवसाय के लिये व शैफील्ड तथा बर्मिंघम लोह-व्यवसाय के लिये प्रसिद्ध होने लगे। जब एक केन्द्र मे प्रधानतया एक ही व्यवसाय केन्द्रित हुआ, तो शहरो का पारस्परिक व्यापार बढना बिलकुल स्वाभाविक था। इसी प्रकार विविध देश अपनी स्वाभाविक परिस्थितियो के कारण पृथक् व्यवसायो मे विशेषता प्राप्त करने लगे। इस से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे भी बहुत वृद्धि होने लगी।

इसमें सन्देह नही, कि व्यावसायिक क्रान्ति के परिणाम अच्छे व बुरे—दोनो प्रकार के थे। इनके कारण शुरू मे गरीब शिल्पियो की बहुत दुर्दशा हुई। उन की स्थिति स्वतन्त्र व प्रतिष्ठित शिल्पी के बजाय पराश्रित मजदूर की हो गई। पर शहरो मे आने से वे ज्ञान के उस प्रकाश को भी धीरे-धीरे प्राप्त करने लगे, जिससे उन्हें अपनी स्थिति व अधिकारो का भलीभाति परिज्ञान हो गया। कुछ ही समय बाद वे अपने हितो व अधिकारो की रक्षा के लिये सघर्ष भी करने लग गये। अब न केवल उनकी आर्थिक स्थिति सतोषजनक है, पर साथ ही राज्य पर भी उनका अतुल प्रभाव है। राज्य के राजनीतिक जीवन मे उनका महत्त्व अब सबसे अधिक है। मानव समाज की उन्नति का ढग यही है, कि एक परिवर्तन पहले अपने कुपरिणाम भी उत्पन्न करता है, पर धीरे-धीरे बुराई का अन्त करके मनुष्य उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो जाता है।

५ अन्य देशो मे औद्योगिक क्रान्ति

व्यावसायिक क्रान्ति के क्षेत्र मे नेतृत्व इङ्गलैण्ड ने किया, पर अन्य यूरोपियन देश भी उनके प्रभाव से वचित नही रहे। फ्रास में राज्यक्रान्ति ने जिस नवजीवन को उत्पन्न किया था, उसके कारण वहा के लोगो ने यान्त्रिक शक्ति और नई मशीनो को अपनाने में देर नही की। सन् १७८५ में कपडे का पहला बडा कारखाना फ्रास में खुला। इसके लिये सब मशीन इङ्ग-लैण्ड से मँगवा गई थी। नैपोलियन ने वस्त्र व्यवसाय को उन्नत करने के लिये बडा उत्साह दिखाया। परिणाम यह हुआ, कि १८१५ तक फ्रास में भी चार लाख मन रुई प्रति वर्ष कपडे के रूप में परिवर्तित की जाने लगी। सन् १८३१ तक यह सख्या बढकर सोलह लाख मन तक पहुँच गई। फ्रास में भी वस्त्र व्यवसाय मे हजारो मजदूर काम करने लगे। १८३१ में इस प्रकार के मजदूरो की सख्या ढाई लाख से ऊपर थी। रुई के अतिरिक्त, रेशम और ऊन के कपडो के व्यवसाय में भी फ्रास ने बहुत उन्नति की। लियो और लील् के नगर रेशमी कपडो के लिये ससार भर मे प्रसिद्ध हो गये। साबुन, तेल, शराब, कागज, घडी, शीशा आदि अनेक व्यवसायो में फ्रास इङ्गलण्ड से भी आगे बढ गया।

उन्नीसवी सदी के शुरू में इङ्गलैण्ड और फ्रास, दो ही देश यूरोप में व्यवसायिक दृष्टि से सब अधिक उन्नत थे। यही कारण है, कि साम्राज्यवाद के क्षेत्र में भी इन्ही दो देशो में सघर्ष सब से प्रबल था। अफ्रीका, भारत व एशिया के अन्य देशो मे इङ्गलैण्ड और फ्रास अपना-अपना प्रभुत्त्व कायम करने के लिये प्रयत्नशील थे।

जर्मनी में व्यावसायिक क्रान्ति का प्रारम्भ १८४५ के लगभग हुआ। उससे पहले वहा आर्थिक उत्पत्ति प्राय मध्यकाल की शैली मे ही होती थी। जर्मनी के इस क्षेत्र में पिछड

जाने का प्रमुख कारण वहा राजनीतिक एकता का अभाव था। उन्नीसवी सदी के मध्य तक भी जर्मनी मे बहुत से छोटे-बडे राज्य थे, जो प्राय परस्पर लडते रहते थे। पर एक बार जब प्रिस बिस्मार्क के कर्तृत्व मे जर्मनी राजनीतिक दृष्टि से एक व शक्तिशाली हो गया, तो व्यावसायिक क्षेत्र मे उन्नति करने मे उसने असाधारण क्षमता प्रदर्शित की। उन्नीसवी सदी सदी के अन्त तक जर्मनी किसी भी प्रकार इङ्गलैण्ड व फ्रास से व्यावसायिक क्षेत्र मे कम नही रहा था।

बेल्जियम, डेनमार्क, हालैण्ड और स्वीडन अठारहवी सदी के अन्त में ही व्यावसायिक क्रान्ति के प्रभाव मे आने लगे थे। पर स्पेन, इटली, आस्ट्रिया और रूस उन्नीसवी सदी के अन्त तक इस महान् आर्थिक परिवर्तन के प्रभाव से प्राय अछूते ही बने रहे। इनमें उन्नीसवी सदी के अन्त व बीसवी सदी के प्रारम्भ मे व्यावसायिक क्रान्ति के चिह्न प्रकट होने शुरू हुए, और प्रथम यूरोपीय महायुद्ध (१९१४-१८) के प्रारम्भ तक भी इन देशो की व्यावसायिक दशा इङ्गलैण्ड, फ्रास और जर्मनी की अपेक्षा बहुत पिछडी हुई रही।

यूरोप मे मध्यकाल का अन्त होकर आधुनिक (माडर्न) युग के आने में जितना महत्त्वपूर्ण कार्य फ्रास की राज्यक्रान्ति व उससे उत्पन्न हुई क्रान्ति की लहर ने किया, उतना ही व उससे भी कही अधिक कार्य इस औद्योगिक क्रान्ति ने किया। विज्ञान का उपयोग शिल्प की उन्नति के लिये करके यूरोप के जनसमाज ने एक ऐसे युग का श्रीगणेश किया है, जिसके कारण मनुष्य प्रकृति की शक्तियो व भौतिक जगत् पर निरन्तर विजय प्राप्त करता जा रहा है, और इनको मानवसमाज के सुख, समृद्धि और उत्कर्ष के लिये प्रयुक्त करने मे समर्थ हो रहा है।

चौदहवा अध्याय

राष्ट्रीयता की भावना का विकास

१. राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव

मनुष्यो मे शुरू से यह प्रवृत्ति रही है, कि जिन लोगो की नसल, भाषा, धर्म, रीति-रिवाज और ऐतिहासिक परम्परा एक हो, वे परस्पर मिलकर एक सगठन मे सगठित हो। इस प्रकार के एक सदृश लोगो के समूह को जाति या कबीला कहते है। जब एक जाति किसी एक निश्चित भूखण्ड पर बस कर अपना एक राज्य बना लेती है, अपने को एक शासन मे सगठित कर लेती है, तब वह 'राष्ट्र' कहाने लगती है। इस प्रकार के राष्ट्र की यह स्वाभाविक आकाक्षा रहती है, कि वह अपनी पृथक् स्वतन्त्र सत्ता को कायम रखे, पडोसी राष्ट्रो व किसी शक्तिशाली सम्राट् द्वारा अपनी स्वतन्त्रता व पृथक् सत्ता पर आच न आने दे। जाति, राष्ट्र या राष्ट्रीयता की यह भावना मानव इतिहास की एक अत्यन्त प्रबल शक्ति है। प्राचीन ग्रीस व इटली के छोटे-छोटे विविध राज्य इसी प्रकार की जातियो द्वारा निर्मित हुए थे। उन्हे ठीक अर्थो मे राष्ट्र समझा जा सकता था। बाद में मैसिडोनियन और रोमन सम्राटो ने इन राष्ट्रो की स्वतन्त्रता का अन्त कर इन्हें अपने अधीन कर लिया। रोमन सम्राटो के विशाल साम्राज्य मे विविध भाषा बोलनेवाले अनेक नसलो के लोग निवास करते थे। रोमन लोगो ने अपने साम्राज्य में एकता स्थापित करने का प्रयत्न अवश्य किया, पर वे विविध जनसमूहो की राष्ट्रीय भावना को पूर्णतया नष्ट नही कर सके।

रोमन साम्राज्य के पतन के बाद, उसके भग्नावशेष पर जिन विविध राज्यो का निर्माण हुआ, उनकी तह में भी राष्ट्रीयता की भावना काम कर रही थी। इङ्गलैण्ड, फ्रास, स्पेन, और पोर्तुगाल इसके उदाहरण है। पर मध्यकालीन यूरोप की सामन्तपद्धति में यह सम्भव नही था, कि राज्य का आधार राष्ट्रीयता की भावना बनी रहती। इस युग के विविध महत्वाकाक्षी राजा अपने वशवर्ती सामन्तो की सहायता से अपनी शक्ति का विस्तार करने, अन्य राजाओ को अपने अधीन करने और दूसरे राजा के सामन्तो को अपना वशवर्ती बनाने में सदा तत्पर रहते थे। इस का परिणाम यह हुआ, कि आस्ट्रिया के सम्राट् इटली को और स्पेन के सम्राट् हालैण्ड को अपने अधीन करने में सफल हुए। शार्लमेगन, फिलिप द्वितीय आदि मध्यकाल के शक्तिशाली राजाओ के राज्यक्षेत्र का आधार राष्ट्रीयता न होकर उनकी अपनी शक्ति व विविध सामन्तो को वशवर्ती रखने की क्षमता ही थी।

फ्रास की राज्यक्रान्ति ने जिन नई शक्तियो व प्रवृत्तियो को जन्म दिया, राष्ट्रीयता की भावना उनमें प्रमुख है। जो लोग धर्म, भाषा, नसल, रीति-रिवाज और ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार एक है, उनका अपना पृथक् राज्य होना चाहिये, और इस राज्य मे

किसी स्वेच्छाचारी राजा का शासन न होकर सर्वसाधारण जनता का लोकमत के अनुसार शासन होना चाहिये, यह सिद्धान्त फ्रास की राज्यक्रान्ति की मुख्य देन है। इसी कारण जब सोलहवा लुई पेरिस से भाग निकला, तो एक फ्रासीसी ने कहा था, 'यदि राजा भाग गया, तो कोई बात नही। फ्रेंच राष्ट्र तो विद्यमान है।' रूसो का कहना था—'यह जनता ही होती है, जिससे वस्तुत राज्य का निर्माण होता है।' राष्ट्रीयता की भावना फ्रेंच राज्यक्रान्ति मे बडी प्रबलता से काम कर रही थी। यही कारण है, कि जब पुरानी एस्टेट्स जनरल को नया रूप दिया गया, तो उसका नाम 'राष्ट्रीय सभा' रखा गया। फ्रास के देहातो मे क्रान्ति के दिनो मे लोग कहा करते थे—हम नार्मान्डी या ब्रिटानी के निवासी नही है, अपितु फ्रास के निवासी है। 'राष्ट्र की जय हो' के नारो से उन दिनो का सम्पूर्ण फ्रास गूज उठा था। सारे यूरोप के स्वतन्त्र राजाओ की सम्मिलित शक्ति का मुकाबला फ्रास जो सफलता के साथ कर सका था, उसका आधारभूत कारण राष्ट्रीयता की यही भावना थी। नैपोलियन ने जो यूरोप भर के राजाओ को परास्त किया था, उसका कारण भी यही भावना थी। नैपोलियन जहा कही भी आक्रमण करता था, यही कहता था, कि मै जनता को, राष्ट्रो को स्वेच्छाचारी राजाओ के अत्याचारो से मुक्त कराने के लिये युद्ध कर रहा हूँ। वह आक्रान्त देशो की जनता से यही अपील करता था, कि वे स्वेच्छाचारी राजाओ के अत्याचारपूर्ण शासन के विरुद्ध विद्रोह कर राष्ट्रीय शासन की स्थापना करें। इसमें सन्देह नही, कि नैपोलियन के आक्रमणो ने यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना के प्रसार में बडी सहायता पहुँचाई। इटली, पोलैण्ड, जर्मनी, स्पेन आदि सब देशो में नैपोलियन द्वारा ही नवयुग का सन्देश पहुंचा। पर जब नैपोलियन ने अपने को सम्राट् उद्घोषित कर रोमन साम्राज्य की पुरानी परम्परा का पुनरुद्धार करने का प्रयत्न किया, तो यह नव-प्रसारित राष्ट्रीय भावना ही उसके मार्ग में सबसे बडी बाधक बनी। जिस युद्ध में नैपोलियन का पतन हुआ, वह 'राष्ट्रो का युद्ध' कहाता है। नि सन्देह, राष्ट्रीयता की भावना ने ही नैपोलियन के खिलाफ उस शक्ति को एकत्र किया था, जिसके सम्मुख वह विश्वविजयी वीर भी खडा नही रह सका। राष्ट्रीयता का जो सन्देश नैपोलियन ने दिया था, उसे यूरोप ने अपना लिया, यद्यपि इस सन्देश के वीर प्रसारक की सत्ता को यूरोप की नई प्रादुर्भूत राष्ट्रशक्ति ने सहन नही किया।

२ १८१५ के बाद राष्ट्रीयता की भावना

नैपोलियन के पतन के बाद यूरोप का पुन निर्माण करने के लिये जो राजनीतिज्ञ वीएना मे एकत्र हुए थे, उन्होने राष्ट्रीयता की भावना की पूर्णतया उपेक्षा की। इन राजनीतिज्ञो का प्रयत्न यह था, कि यूरोप के पुराने राजवशो की सत्ता व अधिकारो का पुनरुद्धार करे। वीएना की कांग्रेस द्वारा फ्रासकी राज्यक्रान्ति के सब चिह्नोको नष्ट कर पुराने यूरोप की स्थापना की गई। पर इतिहास में जो शक्ति एक बार उत्पन्न हो जाती है, उसे सदा के लिये दबा सकना सम्भव नही होता। १८१५ के बाद उन्नीसवी सदी का सम्पूर्ण यूरोपियन इतिहास वीएना की कांग्रेस की कृति के विरुद्ध प्रतिक्रिया व क्रान्ति की प्रवृत्तियों की सफलता के लिये किये गये सघर्ष का इतिहास है। राज्यक्रान्तियो द्वारा जनसाधारण

मे एक जागति उत्पन्न हो गई थी। इसी जनसाधारण ने राष्ट्रीय भावना को अपनाया, और यह अपना ध्येय बनाया, कि जो लोग राष्ट्रीय दृष्टि से एक है, उनका पृथक् सगठन हो, और इस स्वतन्त्र सगठन मे लोकमत के अनुसार शासन हो। उन्नीसवी सदी मे यूरोप में इटली, जर्मनी, बेल्जियम, ग्रीस आदि कितने ही राज्यो का पुन सगठन राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के अनुसार किया गया, और सर्वत्र देशभक्त लोग इसी सिद्धान्त की सफलता के लिये कार्य करते रहे।

नया साहित्य--उन्नीसवी सदी का यूरोप का इतिहास देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत है। वर्ड्सवर्थ जैसे कवि ने फ्रास की राज्यक्रान्ति को दृष्टि मे रखते हुए लिखा था—'प्रतीत होता है, मानवता ने एक बार फिर जन्म लिया है।' इस काल के सभी अग्रेज कवियो की रचनाए नई भावनाओ का प्रतिपादन करती है। शैली, कीट्स, बायरन, कालरिज आदि सभी प्रमुख अग्रेज कवियो की रचनाओ पर राष्ट्रीयता की भावना और नवयुग की छाप स्पष्ट रूप से विद्यमान है। उन्नीसवी सदी के प्रारम्भिक भाग मे जनता पर सर्वत्र जो अत्याचार हो रहे थे, शैली ने उनके विरुद्ध आवाज उठाई। बायरन अपने समय के सकुचित विचारो और सामाजिक बन्धनो का विरोधी था। शैली और बायरन—दोनो को कुछ समय के लिये अपने देश से बाहर भी रहना पडा था, और बायरन ने तो ग्रीस के स्वतन्त्रता-सग्राम मे हाथ भी बटाया था। उन्नीसवी सदी के इङ्गलिश साहित्य ने नई भावनाओ के प्रसार के लिये बहुत कार्य किया। इङ्गलैण्ड मे विविध राजनीतिक सुधारो द्वारा वास्तविक लोकतन्त्र शासन की जो स्थापना हुई, उसका बहुत कुछ श्रेय उस युग के साहित्य को दिया जा सकता है। न केवल इङ्गलैण्ड, अपितु फ्रास, जर्मनी, इटली आदि सभी देशो के साहित्यिक इस समय मे राष्ट्रीयता के अनुयायी थे। यह युग देश-प्रेम और राष्ट्र-भक्ति का था।

नैपोलियन के आक्रमणो के कारण जर्मनी का बडा भाग फ्रास की अधीनता या प्रभाव मे आ गया था। इस स्थिति में वहा भी अनेक ऐसे साहित्यिक व कवि उत्पन्न हुए, जिन्होने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना को प्रसारित करने का उद्योग किया। फीख्टे ने राष्ट्रीय भक्ति को मनुष्य का पवित्रतम कर्तव्य प्रतिपादित किया। फ्रीजर का कहना था, कि "जिस प्रकार आत्मा के लिये शरीर की सत्ता अनिवार्य है, वैसे ही मानव समाज के लिये राष्ट्रीय भावना अवश्यम्भावी है।" शैन्कनडार्फ, क्यूर्नर आदि कितने ही कवि व साहित्यिक इस युग मे जर्मनी मे उत्पन्न हुए, जिन्होने देशभक्ति और राष्ट्रीयता पर बहुत अधिक बल दिया। मैटरनिख ने इन लेखको की रचनाओ को अनैतिक कहा, और अनेक इस प्रकार की आज्ञाए प्रकाशित की, जिनका उद्देश्य इस नये साहित्य के प्रचार को रोक देना था। मैटरनिख के आदेश से अनेक लेखको को गिरफ्तार भी किया गया। पर मैटरनिख जैसे शक्तिशाली शासक के लिये भी यह सम्भव नही था, कि वह जर्मन राज्यो में विकसित होते हुए देश-प्रेम व स्वातन्त्र्य भावना को नष्ट कर सके। गैटे का कथन था, कि १७९२ में ससार के इतिहास मे एक नये युग का प्रादुर्भाव हुआ है। शिलर निरकुश शासन के विनाश और मानव समाज की उन्नति का कट्टर पक्षपाती था। प्रसिद्ध जर्मन विचारक हीगल कट्टर राष्ट्रवादी था। उसका विचार था, कि राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर आश्रित राज्यो द्वारा

ही संसार मे एकता स्थापित हो सकती है । जर्मनी के विविध राज्यो की पृथक् व सर्वोपरि सत्ता का अन्त कर प्रिंस बिस्मार्क जो एक शक्तिशाली सुसंगठित जर्मनी का निर्माण कर सका, उसका श्रेय उन जर्मन विचारको व साहित्यिको को ही दिया जाना चाहिये, जिन्होने कि अपने देश को राष्ट्रीय एकता के लिये तैयार कर दिया था।

इसी युग मे इटली मे भी अनेक ऐसे साहित्यिक उत्पन्न हुए, जो इटालियन राष्ट्र की एकता की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट कर रहे थे। मन्जोनी ने अपने उपन्यासो मे एकतन्त्र निरकुश शासन की निन्दा कर लोकतन्त्रवाद का समर्थन किया। कार्डुसी इटालियन एकता का प्रबल पक्षपाती था, और रोमन कैथोलिक चर्च की शक्ति को इटली की स्वतन्त्रता का शत्रु समझता था। मेजिनी ने इटली की राष्ट्रीय एकता और जनता के शासन की स्थापना के लिये विशेष रूप से उद्योग किया। आगे चलकर इटली जो एक सुसंगठित राज्य के रूप मे परिणत हो सका, उसमे इन साहित्यिको का बडा हाथ था।

उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध में फ्रास मे जिन लेखको, कवियो व साहित्यिको ने राष्ट्रीयता और लोकतन्त्रवाद का प्रबल रूप से समर्थन किया, उनमे विक्टर ह्यूगो, शातो ब्रिया, लामार्तीन और बालजाक के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

गुप्त समितियां—न केवल साहित्य द्वारा, अपितु गुप्त समितियो द्वारा भी इस युग मे राष्ट्रीयता और देशभक्ति का प्रचार किया जा रहा था। साहित्य के प्रचार पर इस समय की सरकारें अनेक प्रकार की पाबन्दिया लगाती थीं। परिणाम यह हुआ, कि इस भावना का प्रचार गुप्त समितियो द्वारा होने लगा। दक्षिणी इटली मे कार्बोनारी नाम की एक गुप्त समिति संगठित हुई, जिसका उद्देश्य 'राष्ट्रीय एकता' और 'राजनीतिक स्वतन्त्रता' की स्थापना करना था। १८२० में स्पेन, पोर्तुगाल और इटली मे जो क्रान्तिया हुई, उनमें इस समिति का बडा हाथ था। १८३० और १८४८ में फ्रास मे शुरू होकर क्रान्ति की जो लहरे यूरोप भर मे व्याप्त हुई, उनमे भी इस गुप्त समिति का कर्तृत्व बडे महत्त्व का था। १८३१ में मेजिनी ने 'युवक इटली' नामक समिति का संगठन किया। इसके सब सदस्य यह प्रण करते थे, कि वे इटली की राष्ट्रीय एकता और स्वतन्त्रता के लिये प्राणपण से प्रयत्न करेंगे। १८४८ की क्रान्ति के समय में इस समिति के सदस्यो ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया। मैजिनी अपनी राष्ट्रीय भावना को केवल इटली तक सीमित नही रखना चाहता था। उसकी यह योजना थी, कि 'युवक इटली' के समान ही 'युवक हंगरी', 'युवक पोलैण्ड' और 'युवक आयरलैण्ड' का संगठन करे, और इन देशो मे भी राष्ट्रीय एकता व स्वतन्त्रता की स्थापना हो। मैजिनी का स्वप्न था, कि सारे यूरोप मे राष्ट्रीय भावना फलीभूत हो, और राजाओ के स्वेच्छाचारी शासनो का अन्त होकर 'युवक यूरोप' का प्रादुर्भाव हो।

मैजिनी का यह स्वप्न आगे चलकर पूर्णभी हुआ। यूरोप के सभी देशो में राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के अनुसार राज्यो का निर्माण हुआ, और इन नये राष्ट्रो मे लोकतन्त्र सरकारो की स्थापना हुई। पर इसके लिये जनता को घोर संघर्ष करना पडा। उन्नीसवी सदी के यूरोप के इतिहास पर हम अगले अध्यायो मे जो प्रकाश डालेगे, उसमें इसी संघर्ष का वृत्तान्त होगा।

३ नये शासन-विधानों का निर्माण

उन्नीसवीं सदी के यूरोप के राजनीतिक इतिहास पर विचार करते हुए इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती, कि इस युग मे प्राय सब देशो मे नये शासन-विधानो का निर्माण किया गया। लार्ड मार्ले के अनुसार १८००से १८८०तक के अस्सी सालो मे यूरोप के विविध देशो में जो नये शासन-विधान बने, उनकी संख्या ३०० से भी ऊपर थी। ये शासन-विधान उन नई राजनीतिक भावनाओ के मूर्तरूप थे, जो इस समय यूरोप मे जोर पकड रही थी। जिन देशो मे क्रान्ति द्वारा नई सरकार की स्थापना होती थी, उनमे तो नये शासन-विधान का निर्माण होना ही था, पर अन्य देशो मे भी समझदार राजा लोग लोकमत की बढती हुई शक्ति को अनुभव कर रियायत के रूप मे शासन-विधान का निर्माण करते थे, ताकि जनता को आंशिक रूप मे सतुष्ट कर क्रान्ति से देश की रक्षा की जा सके। पर यह ध्यान मे रखना चाहिये, कि इन शासन-विधानो की सफलता इस बात पर निर्भर थी, कि जनता कितनी जागृत है, और उसमे नई प्रवृत्तिया कितना जोर पकड चुकी है।

राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के अनुसार राज्यो का निर्माण, निरकुश स्वेच्छाचारी राजसत्ता का अन्त और लोकतन्त्रवाद का विकास—ये तीन उन्नीसवी सदी के राजनीतिक इतिहास की प्रमुख शक्तिया थी। इस काल के इतिहास का अनुशीलन करते हुए इन्हे दृष्टि में रखना आवश्यक है।

आर्थिक क्षेत्र मे, इस युग मे जागीरदारो और सामन्तो की शक्ति का ह्रास होकर पूजीपतियो और शिक्षित मध्यश्रेणी का महत्त्व बढ रहा था। इस समय आर्थिक शक्तिके अतिरिक्त राजनीतिक शक्ति भी उनके हाथो मे आ रही थी। उन्नीसवी सदी के लोकतन्त्रवाद का अभिप्राय ही पूजीपति और मध्यश्रेणी के शासन से था। पर धीरे-धीरे सर्वसाधारण—किसान और मजदूर जनता भी अपने महत्त्व का अनुभव करने लगी थी। वोट के अधिकार के विस्तार से सर्वसाधारण लोग भी राजनीतिक शक्ति के प्रयोग मे हाथ बटाने लगे थे, और इस शक्ति का उपयोग कर वे अपने आर्थिक हितो की रक्षा मे तत्पर हो रहे थे। उन्नीसवी सदी के इतिहास के इस पहलू पर भी हम आगे चलकर यथास्थान अधिक विस्तार से प्रकाश डालेंगे।

पन्द्रहवां अध्याय

फ्रांस की तीसरी राज्यक्रान्ति

१ राजसत्ता का अन्त

१८४८ की क्रान्ति का महत्व---नई और पुरानी प्रवृत्तियों में जिस प्रकार यूरोप भर में संघर्ष चल रहा था, उस पर हम पहले प्रकाश डाल चुके हैं। फ्रांस की पहली राज्यक्रान्ति ने जिन नवीन भावनाओं को उत्पन्न किया था, वे भयंकर विरोध के होते हुए भी धीरे-धीरे सफलता प्राप्त कर रही थीं। मनुष्य जाति की दशा एक जीवित प्राणी के समान होती है। इस कारण उसमें आकस्मिक परिवर्तन नहीं हो जाते। क्रान्ति की प्रवृत्तियां भी एकदम मानव समाज को परिवर्तित नहीं कर सकती थीं। वे पुरानी प्रवृत्तियों से संघर्ष कर रही थीं, और धीरे-धीरे सफल होती जाती थीं। पहली राज्यक्रान्ति ने फ्रांस को बहुत कुछ बदल दिया था। उसमें लोकतन्त्रवाद और राष्ट्रीयता के विचार भलीभांति उत्पन्न हो गये थे। १८३० की दूसरी राज्यक्रान्ति ने इस सिद्धान्त को भलीभांति स्थापित कर दिया था, कि राजा चुनने का अधिकार जनता को है। देश का शासन किस ढंग से होना है, यह निश्चित करना भी जनता का कार्य है। अब १८४८ की तीसरी क्रान्ति ने फ्रांस को राजनैतिक दृष्टि से बहुत आगे बढ़ा दिया। इस क्रान्ति का प्रभाव केवल फ्रांस तक ही सीमित नहीं रहा। पहली और दूसरी क्रान्तियों के समान १८४८ की तीसरी राज्यक्रान्ति की लहरें भी यूरोप के बड़े भाग में व्याप्त हो गईं। १८३० की अपेक्षा १८४८ की क्रान्ति अधिक प्रबल तथा व्यापक थी। यूरोप भर में जो नई प्रवृत्तियां कार्य कर रही थीं, वे १८४८ में एकदम बड़े वेग के साथ फूट पड़ी थीं। यद्यपि क्रान्ति का प्रथम प्रस्फोट इटली में हुआ था, तो भी फ्रांस की क्रान्ति बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। इसीलिये हम सबसे पूर्व उसी का वर्णन करेंगे। उन्नीसवीं सदी में फ्रांस क्रान्तिकारी यूरोप का सबसे प्रमुख केन्द्र स्थान था।

लुई फिलिप के विरोधी दल---१८३० की क्रान्ति द्वारा फ्रांस की जनता ने स्वेच्छाचारी राजा चार्ल्स दशम को पदच्युत कर अपनी इच्छा से लुई फिलिप को राजगद्दी पर बिठाया था। शुरू शुरू में लुई फिलिप ने जनता की इच्छा के अनुसार शासन करने का प्रयत्न किया। पर उसे सफलता नहीं हुई। उसके विरोधियों की कमी नहीं थी। लुई फिलिप के विरोधियों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है। (१) बूर्बो वंश के पक्षपाती---ये लोग समझते थे, कि फ्रांस की राजगद्दी का वास्तविक स्वामी बूर्बो वंश का कोई व्यक्ति ही हो सकता है। चार्ल्स दशम का पौत्र अभी विद्यमान था। ये लोग उसे ही राजगद्दी का अधिकारी समझते थे, और उसे हेनरी पंचम कहते थे। इस दल में प्रधानतया कुलीन और पुरोहित श्रेणियों के लोग थे। संख्या में कम होते हुए भी इनका प्रभाव कम नहीं था।

(२) नैपोलियन के पक्षपाती—इन का मत था, कि फ्रांस की राजगद्दी पर नैपोलियन के वंशजों का अधिकार होना चाहिये। इनकी सम्मति में 'नैपोलियन' इस नाम में ही कोई ऐसा जादू था, जो फ्रांस की सब समस्याओं को बात की बात में हल कर सकता था। (३) रिपब्लिकन दल—लुई फिलिप के सबसे प्रबल विरोधी रिपब्लिकन दल के लोग थे। इनकी सम्मति में लुई फिलिप का शासन लोकसत्तावाद और क्रान्ति के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं था। ये १७९३ के क्रान्तिमय गौरवपूर्ण दिनों को याद करते थे, और चाहते थे, कि एक बार फिर उसी ढंग की क्रान्ति हो। फ्रांस में पूर्ण लोकतन्त्र रिपब्लिक की स्थापना इनका उद्देश्य था। इसके लिये उन्होंने अनेक गुप्त समितियों का भी संगठन किया था। बड़े नगरों में सर्वत्र इन समितियों की शाखाएं विद्यमान थीं।

इस समय फ्रेंच जनता का बड़ा भाग अपनी दशा से असंतुष्ट था। कल-कारखानों और खानों की उन्नति के साथ-साथ श्रमी लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती जाती थी। ये श्रमी शहरों में रहते थे, और देहात के लोगों के समान भोले-भाले नहीं थे। राजनीतिक और सामाजिक समस्याएं इनके लिये अज्ञेय रहस्य नहीं थीं। ये लोग कहते थे—हमने रिपब्लिक का जमाना देखा, नैपोलियन का शासन देखा, फिर बूर्बो सम्राटों का स्वेच्छाचार भी देखा, हमारी हालत तो किसी में भी अच्छी नहीं हुई। यदि फ्रांस में वैध राजसत्ता या रिपब्लिक भी स्थापित हो गई, तो हमें क्या ?' 'कोउ नृप होय हमें का हानी, चेरि छाडि नहिं होउब रानी', इस बात के तथ्य को ये लोग खूब अच्छी तरह अनुभव करते थे। वैध राजसत्ता या रिपब्लिक किसी ने भी इन श्रमियों या किसानों की दशा को सुधारने का प्रयत्न नहीं किया था। लुई फिलिप के शासन में मध्यश्रेणि के लोग बहुत असंतुष्ट नहीं थे। मध्यश्रेणि ने ही उसे राजगद्दी पर बिठाया था, और उन्हीं को वोट का अधिकार भी प्राप्त था। वे ही पार्लियामेंट के लिये सदस्य चुने जाते थे, टैक्सों का फैसला करते थे, और कानून बनाते थे। पर सर्वसाधारण लोग ? इन्हें वोट का अधिकार प्राप्त नहीं था, शासन में इनका कोई हाथ नहीं था। इनके लिये लुई फिलिप की पार्लियामेंट का शासन भी वैसा ही था, जैसा कि लुई सोलहवें या चार्ल्स दशम का। ये असंतुष्ट लोग हमेशा क्रान्ति के लिये उत्सुक रहते थे। क्रान्ति से इन्हें कोई हानि नहीं पहुँच सकती थी। इन्हें तो अव्यवस्था, परिवर्तन और क्रान्ति से लाभ ही लाभ था। रिपब्लिकन दल को इनका बड़ा भरोसा था। क्रान्ति शुरू होते ही ये लोग उसमें जी-जान से सम्मिलित हो सकते थे।

लुई फिलिप के शासन का अन्त करने में इन किसानों और मजदूरों का ही हाथ नहीं था, उदार विचारों के पढ़े लिखे समझदार लोग भी उसके विरुद्ध थे। धीरे-धीरे लुई फिलिप का शासन भी पुराने स्वेच्छाचारी एकतन्त्र ढंग की ओर झुकता जाता था। १८३० की क्रान्ति की लहर ने जब पोलैण्ड, जर्मनी और इटली में विद्रोह की अग्नि को भड़का दिया, तो उदार विचार के ये लोग उनकी सहायता करने के पक्ष में थे। वे आशा करते थे, कि लुई फिलिप—जिसने कि क्रान्ति के कारण ही राजगद्दी प्राप्त की है, अवश्य ही अन्य देशों के क्रान्तिकारियों से सहानुभूति रखेगा। पर उन्हें निराश होना पड़ा। लुई फिलिप ने अन्य देशों के क्रान्तिकारियों को सहायता पहुँचाने से साफ इनकार कर दिया। इसके अतिरिक्त, लुई फिलिप का प्रधानमन्त्री गुइजो प्रोटेस्टेण्ट धर्म को माननेवाला था। उस

समय के फ्रांस में धर्म पर्याप्त महत्त्व रखता था। फ्रांस की रोमन कैथोलिक जनता इस बात को नहीं सहन कर सकती थी, कि उनका प्रधानमन्त्री प्रोटेस्टेण्ट धर्म का अनुयायी हो। लुई फिलिप के पक्षपाती लोग बहुत कम थे। मध्यश्रेणी के अमीर लोग ही, जिनका पार्लियामेंट में प्राधान्य था और जो वैध राजसत्ता के नाम पर अपनी मनमानी करने में समर्थ हो रहे थे, उसके शासन के एकमात्र आधार थे।

विद्रोह का प्रारम्भ—रिपब्लिकन लोग लुई फिलिप के शासन का अन्त करने के लिये भरसक कोशिश कर रहे थे। उसको कत्ल करने के लिये भी छः बार प्रयत्न किया गया, पर सफलता नहीं हुई। कई स्थानों पर विद्रोह भी हुए, पर सरकार ने उन्हें सुगमता से शान्त कर दिया। राजा पर तरह-तरह के आक्षेप किये जाने लगे, अखबारों में उनका मजाक उड़ाया जाने लगा। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ, कि राजा ने अपने विरोधियों को कुचलने के लिये प्रचण्ड उपायों को प्रयुक्त करने का निश्चय किया। जासूसों की संख्या बढ़ा दी गई, गुप्त समितियों को तोड़ दिया गया, प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली गई, और लोगों को स्वतन्त्रतापूर्वक सभा करने से रोका गया। इन सब उपायों का परिणाम यह हुआ, कि जनता उत्तेजित हो गई, और आखिर १८४८ में एक बार फिर फ्रांस में विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड हो उठी, जिसके कारण लुई फिलिप के शासन का अन्त हो गया और रिपब्लिक स्थापित हुई।

२. क्रान्ति की प्रगति

क्रान्ति का सूत्रपात—यह क्रान्ति किस प्रकार हुई, इसका वर्णन करने की आवश्यकता है। १८४७ में सुधार के पक्षपाती उदार विचारों के लोगों ने फ्रांस भर में सभाएँ करने का निश्चय किया। इन सभाओं का उद्देश्य यह था, कि एक प्रार्थना-पत्र पर अधिक से अधिक लोगों के हस्ताक्षर करवाये जाएं और इस प्रार्थना-पत्र द्वारा राजा की सेवा में यह निवेदन किया जाए, कि देश को सुधारों की आवश्यकता है, और विशेष रूप से वोट के अधिकार को अधिक विस्तृत किया जाना चाहिये। इन सार्वजनिक सभाओं का परिणाम यह हुआ, कि सारे देश में राजनीतिक जागृति फैल गई, और सुधारों के लिये आंदोलन अत्यन्त प्रचण्ड हो गया। सरकार को यह आन्दोलन सह्य नहीं था। हुक्म जारी किया गया, कि कोई सभा सरकार की अनुमति के बिना न की जावे। पर जनता इस प्रकार की मनमानी आज्ञा को यूंही मान लेने वाली नहीं थी। २२ फरवरी, १८४८ को प्रसिद्ध अमेरिकन क्रान्तिकारी वाशिङ्गटन का जन्मदिन था। लोगों ने निश्चय किया, कि इस दिन पेरिस में एक भारी सहभोज का आयोजन किया जाए। एक जुलूस का भी संगठन किया गया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल और विद्यार्थी बड़े शौक से इस जुलूस की प्रतीक्षा कर रहे थे। पर लुई फिलिप की सरकार इस प्रदर्शन को कुचलने के लिये तुली हुई थी। उसने जुलूस और सहभोज—दोनों को रोक दिया। पर लोगों ने इस आज्ञा नहीं माना। जुलूस की सब तैयारियां हो चुकी थीं। २२ फरवरी को प्रातःकाल सरकार की आज्ञा का उल्लंघन कर बड़ी धूमधाम के साथ जुलूस निकाला गया। विद्यार्थी और मजदूर बड़े उत्साह के साथ जुलूस में शामिल हुए। 'सुधारों की जय' के नारों के साथ जुलूस ने पेरिस की गलियों में घूमना

आरम्भ किया। लोग समझ रहे थे, एक बड़ी बात हो रही है, राजाज्ञा का खुल्लम-खुल्ला उल्लघन किया जा रहा है। पर गरम से गरम रिपब्लिकन व साम्यवादी नेता को भी यह खयाल नही था, कि आज क्रान्ति हो जानेवाली है। क्रान्ति का किसी को स्वप्न मे भी ध्यान नही था। जोश मे भरे हुए लोग सरकारी हुक्म को तोड़ने के लिये निकल पडे थे। जब एक बार लोगो मे आज्ञा के उल्लघन करने का भाव प्रबल हो जाए, तो उसे काबू मे रख सकना असम्भव हो जाता है। अव्यवस्था और विद्रोह की शक्तियां बलवती हो गई। गुण्डो और बदमाशो का अपना काम करने का सुवर्णावसर हाथ लग गया, दूकाने लुटने लगी। बाजारो मे मोर्चाबन्दी शुरू हो गई। इस आकस्मिक तूफान मे राजा आश्चर्यचकित रह गया। इस दशा मे जनता को शान्त करने के लिये राजा को घोषणा करनी पड़ी, कि उनके मनोवाछित सुधार स्वीकृत कर लिये जावेगे।

लुई फिलिप का अन्त—सम्भवत, १८४८ की क्रान्ति यही पर समाप्त हो जाती। क्रान्तिकारियो के लिये यही पर्याप्त था। उन्होने राजा को जनता की इच्छा के सम्मुख झुकने के लिये विवश कर दिया था। वे वैध राजसत्ता मे सतुष्ट हो सकते थे। परन्तु इसी बीच में एक ऐसी घटना हो गई, जिसने बाईस फरवरी के प्रचण्ड आन्दोलन को एक भयकर क्रान्ति के रूप मे परिवर्तित कर दिया। उस समय मे फ्रास का प्रधान मन्त्री गुइजो था। लोग उससे बहुत असन्तुष्ट थे। तेईस फरवरी को बहुत से लोग उसके मकान के चारो तरफ इकट्ठे हो गये। सरकार को डर था, कि कही गुइजो के मकान पर हमला न हो जावे। गोली चलाने का हुक्म दिया गया। गोलियो की बौछार से तेईस आदमी मरकर गिर गये, और तीस के लगभग बुरी तरह घायल हुए। क्रान्ति के समय पुलिस प्राय इसी तरह की गलती किया करती है। भीड को तितर बितर करने के और भी तरीके थे, पर शक्ति के मद से मस्त हुई पुलिस ने निहत्थी जनता पर गोलियां चलाने में सकोच नही किया। गोला-बारी का समाचार सुनकर लोगो मे उत्तेजना फैल गई। मृत लोग शहीद बना दिये गये। बडी धूम-धाम से उनकी लाशो का जुलूस निकाला गया। लाशो को देखकर लोग भडक गये। पहले दिन तो 'सुधारो की जय' के नारे लगाये जा रहे थे। अब उनकी जगह पर 'रिपब्लिक की जय' के नारे शुरू हुए। गोलाबारी का जिम्मेवार राजा को ठहराया गया, और जनता राजसत्ता का ही अन्त कर देने के लिये उतावली हो उठी। बाईस फरवरी को लोग वैध राजसत्ता मे सतुष्ट थे। पर अगले दिन ? गोली चल चुकने के बाद ? राजसत्ता के अन्त और रिपब्लिक की स्थापना के अतिरिक्त अन्य कोई बात उन्हें सतुष्ट नही कर सकती थी।

चौबीस फरवरी को पेरिस भर में लडाई शुरू हो गई। बाजारो और गलियो में मोर्चा-बन्दी कर ली गई। कुल मिलाकर १५०० मोर्चे बनाये गये थे। दीवारो पर बडे-बडे इश्तिहार चिपकाये गये। उनमे लिखा था—"लुई फिलिप भी हमें उसी तरह कत्ल करना है, जैसे दसवा चार्ल्स करता था। लुई को भी चार्ल्स के पास भेज दो।" लोग हथियारो की ढूढ में निकल पडे। जो कुछ हाथ में आया, वही लेकर क्रान्ति के वीर राजसत्ता के अन्त और रिपब्लिक की स्थापना के लिये पेरिस की गलियो का चक्कर काटने लगे। राजा ने सिपा-हियो को हुक्म दिया—लोगो को गोली से उडा दो। पर सिपाहियो ने गोली चलाने से

इन्कार कर दिया। क्रान्ति की भावनाओं से सिपाही भी अछूते नहीं बचे थे। क्रान्तिकारियों की भीड ने तुइलरी के राजप्रासाद को घेर लिया। राजमहल की खिडकियों पर गोलियों की बौछार होने लगी। लुई फिलिप घबडा गया। अब राज्य को छोड कर भाग जाने के सिवा अन्य कोई मार्ग उसके सम्मुख न था। अपने पोते 'पेरिस के काउण्ट' को राजगद्दी पर बिठा कर उसने फ्रांस से भाग जाने का निश्चय किया। लुई ने अपना वेश बदल लिया, और अपने को 'मि० स्मिथ' बताकर वह ग्रेट ब्रिटेन पहुचने में सफल हो गया। प्रधानमन्त्री गिजो ने भी उसका अनुसरण किया। इस बीच में क्रान्तिकारियों की भीड राजप्रासाद को तोडने-फोडने में लगी हुई थी। महल के सम्पूर्ण साज सामान को लूट लिया गया। राजसिंहासन को आग लगा दी गई। लोग कहते थे—इस गद्दी की चिता जल रही है? फ्रांस में अब सदा के लिये रिपब्लिक ही कायम रहेगी।

सामयिक सरकार—राजसत्ता का अन्त हो गया। उसकी जगह अब नवीन सरकार के स्थापित करने की समस्या सम्मुख उपस्थित हुई। १८४८ की यह क्रान्ति अकस्मात् ही प्रादुर्भूत हो गई थी। लोग इसके लिये तैयार नहीं थे। इसलिये लुई फिलिप के फ्रांस छोड कर ग्रेट ब्रिटेन भाग जाने के बाद विविध दलों के लोग भावी सरकार का निर्माण करने के लिये विचार करने लगे। साम्यवादी रिपब्लिकन दल के नेता पूर्वी पेरिस के एक होटल में एकत्रित हुए। उनका खयाल साम्यवादी ढंग की रिपब्लिक स्थापित करने का था। साम्यवाद के लाल झण्डे को फहराते हुए उन्होंने उद्घोषित किया, कि फ्रांस में रिपब्लिक की स्थापना की जाती है। प्रत्येक नागरिक को हक है, कि वह मजदूरी प्राप्त कर सके। मजदूरों को अपने संघ बनाने का भी अधिकार है। इसी प्रकार से अन्य भी बहुत से साम्यवादी सिद्धान्तों को उद्घोषित किया गया। जब पूर्वी पेरिस में साम्यवादी लोग अपने ढंग की रिपब्लिक की उद्घोषणा कर रहे थे, उसी समय पेरिस के पश्चिमी भाग में सामान्य रिपब्लिकन दल के नेता पुरानी राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के भवन में एकत्रित हुए। उन लोगों ने भी राजसत्ता का अन्त करके रिपब्लिक के स्थापित होने की उद्घोषणा की। आखिर, दोनों दलों के लोगों की सम्मिलित बैठक हुई। इसमें सामयिक सरकार का निर्माण किया गया, और निश्चय हुआ, कि स्थिर रूप से रिपब्लिकन सरकार का संगठन करने और नवीन शासन-विधान का निर्माण करने के लिये एक राष्ट्रीय महासभा का निर्वाचन कराया जावे। इस महासभा के लिये प्रतिनिधि चुनने का अधिकार फ्रांस के प्रत्येक बालिग पुरुष को दिया गया। ५ मार्च १८४८ का दिन निर्वाचन के लिये निश्चित किया गया। इस सामयिक सरकार के प्रमुख सदस्य लामार्तीन, लुई ब्लां, लेदु रोला और अरागो थे।

साम्यवादी व्यवस्था—राष्ट्रीय महासभा के निर्वाचन और स्थायी सरकार की प्रतीक्षा किये बिना ही सामयिक सरकार ने सुधारों का कार्य प्रारम्भ कर दिया। सामयिक सरकार में साम्यवादी लोगों का बहुत जोर था, क्योंकि फ्रांस का प्रमुख साम्यवादी अर्थशास्त्री लुई ब्लां इस सरकार में 'सार्वजनिक कार्यसचिव' के पद पर नियत था। इस सरकार ने अपनी साम्यवादी योजनाओं को यथेष्ट रूप से क्रिया में परिणत किया। बेकार मजदूरों को काम दिलाने के लिये 'राष्ट्रीय कारखानों' की स्थापना की गई। जो आदमी चाहे, मजदूरों की 'राष्ट्रीय सेना' में भरती हो सकता था। राज्य के पास इन बेकार मजदूरों के लिये कोई काम न

था, पर इन्हें सन्तुष्ट करने के लिये ही नये-नये कार्यों की सृष्टि की गई। खाई खोदने और किले बनाने के लिये सवा रुपये रोज के हिसाब से प्रत्येक आदमी को मजदूरी दी जाने लगी। बहुत बड़ी संख्या में बेकार लोग राष्ट्रीय मजदूर सेना में भरती हुए। धीरे-धीरे इन सैनिकों की संख्या एक लाख से भी ऊपर पहुंच गई। सवा लाख से अधिक रुपया प्रतिदिन केवल पेरिस के बेकारों को सन्तुष्ट करने के लिये अनावश्यक कार्यों पर खर्च किया जाने लगा। राज्य के पास अनन्त धन नहीं था, पर बेकारों की संख्या अनन्त थी। 'राष्ट्रीय मजदूर सेना' सरकार के लिये एक समस्या बन रही थी। परन्तु सामयिक सरकार में साम्यवादी दल का जोर था। उसे असन्तुष्ट करने का साहस सरकार को नहीं हो सकता था। आखिर, समझदार रिपब्लिकन नेताओं ने एक कौशलपूर्ण चाल चली। उन्होंने प्रस्ताव किया, कि मजदूरों की दशा का सुधार करने के लिये एक पृथक् उपसमिति का निर्माण कर दिया जावे, जो विशेष रूप से इसी कार्य में लगी रहे। लुई ब्लां को इस उपसमिति का प्रधान बनाया गया। साम्यवादियों ने समझा, इस उपसमिति द्वारा हम अपने उद्देश्य को भलीभांति पूर्ण कर सकेंगे। पर यह उनकी भारी भूल थी। वस्तुतः, इस उपसमिति के कारण उनका प्रभाव सरकार में कम हो गया। वे मजदूरों के कार्य करने, सुन्दर-सुन्दर व्याख्यान देने और अपने उदात्त सिद्धान्तों की व्याख्या करने में संलग्न हो गये। अपनी योजनाओं को क्रिया में परिणत करने के लिये उन्हें धन की आवश्यकता थी, पर धन उनके पास नहीं था। धन सरकार की स्वीकृति के बिना नहीं मिल सकता था और सरकार में साम्यवादियों का प्रभाव कम हो गया था। वहां वे अपनी योजनाओं को स्वीकृत नहीं करा सकते थे।

मजदूर उपसमिति ने अपना कार्य बड़े जोर-शोर से प्रारम्भ किया। एक मार्च के दिन मजदूर पार्लियामेंट की योजना तैयार हुई। उसके लिये प्रत्येक व्यवसाय के प्रतिनिधि बुलाये गये। १० मार्च को मजदूर पार्लियामेंट का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। पार्लियामेंट के लिये वह भवन चुना गया, जिसमें पहले कुलीन सरदारों की सभा का अधिवेशन हुआ करता था। यह वही भवन था, जिसमें पहले अनेक बार मजदूरों के विरुद्ध अनेकविध कानूनों का निर्माण हुआ था। इसी भवन में कुलीनों के विशेष अधिकारों की रक्षा के लिये कितने ही प्रयत्न किये जा चुके थे। परन्तु १० मार्च, १८४८ के दिन इस शानदार भवन में मजदूरों की दशा को सुधारने के लिये उपाय सोचे जा रहे थे। कितना महान् और अद्भुत परिवर्तन था। लुई ब्लां अपने आवेग को न रोक सका। अपने प्रारम्भिक भाषण में उसने कहा— 'जिन आसनों पर पहले गोटे किनारियों से विभूषित कोट पहने हुए लोग विराजमान हुआ करते थे, आज उन पर मैं क्या देखता हूं? आज उन पर वे लोग बैठे हैं, जिनके कपड़े ईमानदार मेहनत के कारण चिथड़े-चिथड़े हो गये हैं।' मजदूर पार्लियामेंट ने अपना कार्य बड़े उत्साह से प्रारम्भ किया। सम्भवतः, यह पहला ही अवसर था, जब कि फ्रांस भर के मजदूरों के प्रतिनिधि अपनी समस्याओं पर विचार करने के लिये एक स्थान पर एकत्रित हुए थे। पर यह पार्लियामेन्ट बहुत कुछ नहीं कर सकी। इसके पास योजनायें तो बहुत थीं पर रुपये का सर्वथा अभाव था। लुई ब्लां चाहता था, कि मजदूरों की सहोद्योग समितियां कायम की जावें, जिनके सदस्य अपनी पैदावार के अपने आप मालिक हों। पर रुपये के अभाव में वह क्या करता? वह असहाय था।

३. फ्रास की द्वितीय रिपब्लिक

राष्ट्रीय महासभा—उधर राष्ट्रीय महासभा का निर्वाचन हो चुका था। चार मई को इस महासभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। महासभा के बहुसंख्यक सदस्य सामान्य रिपब्लिकन दल के थे। साम्यवादी दल के प्रतिनिधि बहुत कम थे। फ्रास के देहाती लोगो को साम्यवादी योजनाओं मे कोई सहानुभूति नही थी। साम्यवाद लोगो के लिये अभी एक नया सिद्धान्त था। उसका प्रचार अभी पेरिस के मजदूरो मे ही हुआ था। पेरिस के बाहर के सर्वसाधारण लोग उसे सर्वथा उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। यही कारण था, कि नवीन निर्वाचित राष्ट्रीय महासभा मे साम्यवादी लोगो की शक्ति बहुत कम थी। नवीन प्रतिनिधियो ने देश के लिये शासन-विधान तैयार करने से पूर्व 'राष्ट्रीय कारखानो' और 'राष्ट्रीय मजदूर सेना' के सम्बन्ध मे व्यवस्था करने का सकल्प किया। इन बेकार मजदूरो पर राज्य को प्रतिदिन सवा लाख के लगभग रुपये खर्च करने पड रहे थे। अनन्त काल तक इतना रुपया एक अनावश्यक कार्य पर खर्च करते रहना फ्रास की शक्ति से बाहर था। इसलिये राष्ट्रीय महासभा ने निश्चय किया, कि 'राष्ट्रीय कारखानो' को वन्द कर दिया जावे, और मजदूर सेना बर्खास्त कर दी जावे। इस निश्चय का परिणाम यह हुआ, कि लाख से अधिक आदमी एकदम वेकार हो गये। पेरिस के इन्ही लोगो ने १८४८ की राज्यक्रान्ति के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। राजसत्ता का अन्त कर रिपब्लिक की स्थापना करने में इनका वडा हाथ था। इन्होने अनुभव किया, कि सरकार ने हमसे विश्वासघात किया है। ये गरीव वेकार लोग अव भूखे मरने लगे थे। ये कहते थे, रिपब्लिक की स्थापना से हमें क्या लाभ हुआ ? लुई फिलिप के जमाने मे हमारी जो दशा थी, वही अव भी है। क्रान्ति के वाद हमे जो काम मिला था, वह भी अव सरकार ने हमसे छीन लिया। वस्तुत, इन लोगो के असन्तुष्ट होने के प्रवल कारण विद्यमान थे। इन्होन सरकार का मुकावला करने का निश्चय किया। यदि पहले इनकी सहायता से राजसत्ता का अन्त किया सकता था, तो अव रिपब्लिकन सरकार को भी ये अच्छा सवक सिखा सकते थ।

साम्यवादी क्रान्ति—वेकार मजदूरो ने विद्रोह कर दिया। पेरिस के उन मुहल्लो मे जहा मजदूरो की वस्तिया थी, मोर्चावन्दी कर ली गई। मजदूर लोग हथियार लेकर निकल पडे। तेईस जून से छब्बीस जून तक चार दिन निरन्तर पेरिस की गलियो मे लडाई जारी रही। चार दिनो मे दस हजार आदमी कतल हो गये। इस विद्रोह को शान्त करना सरकार के लिये सुगम कार्य न था। विद्रोह ने इतना प्रचण्ड रूप धारण कर लिया था, कि किसी एक व्यक्ति को एकाधिकारी (डिक्टेटर) वनाने की आवश्यकता अनुभव हुई। सेनापति कैविञ्आ को यह पद दिया गया, और उसने वडी क्रूरता से विद्रोह को शान्त किया। मजदूर लोग कुशल योद्धा नहीं थे, उन्हें हथियार चलाने का अच्छा अभ्यास नहीं था। इसके अतिरिक्त वे भूखे और नगे भी थे। सरकार की सधी हुई सेनाओ का मुकावला कर सकना उनके लिये आसान वात न थी। वे परास्त हो गये। सरकार ने उनसे भयकर वदला लिया। विना किसी मुकदमे के, चार हजार से अधिक आदमियो को देशनिकाला दे

दिया गया। अनेक मजदूर नताओ को बाजार के बीच म गोली से उडा दिया गया। ग्यारह हजार आदमी जेल मे डाल दिये गये। मजदूर दल के बत्तीस अखबारो को बन्द कर दिया गया। उनके सम्पादको और लेखको को कठोर सजाए दी गई। सम्भवत, इतिहास मे समाजवादी क्रान्ति का यह प्रथम विस्फोट था। बीसवी सदी मे इस ढग की अनेक क्रान्तिया रूस, चीन और पूर्वी यूरोप के अनेक देशो मे हुई, और उन्हे सफलता भी प्राप्त हुई। राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतन्त्रता की स्थापना के लिये यह पहला प्रयत्न था, जिसका सूत्रपात फ्रास मे हुआ। पर इस समय इसे सफलता नही प्राप्त हो सकी। मजदूर-विद्रोह शान्त हो गया, पर सरकार के इन अत्याचारो का परिणाम यह हुआ, कि गरीब मजदूर लोग रिपब्लिकन दल से सर्वथा विमुख हो गये। अब फ्रास की जनता दो भागो मे विभक्त हो गई—मध्य श्रेणी के लोग और सर्वसाधारण गरीब लोग। इस समय राजसत्ता मध्यश्रेणी के हाथो मे थी। वे गरीब मजदूरो को घृणा की दृष्टि से देखते थे। राज्यक्रान्ति ने एकतन्त्र राजसत्ता का तो अन्त कर दिया था, पर अभी शासनसूत्र सर्वसाधारण जनता के हाथ मे नही आया था। मनुष्य जाति ने लोकसत्ता की तरफ एक महत्वपूर्ण कदम तो उठाया था, पर लोकसत्ता का वास्तविक आदर्श उनकी पहुच से अभी काफी दूर था।

नया शासन-विधान—इस ढग से मजदूरो की समस्या का हल कर राष्ट्रीय महासभा नवीन शासन-विधान तैयार करने के कार्य मे व्यापृत हुई। प्रथम प्रश्न यह था, कि शासन का प्रकार क्या हो? महासभा मे कुछ लोग राजसत्ता के भी पक्षपाती थे। परन्तु उनकी सख्या बहुत कम थी। इसलिये यह बात तो सुगमता से ही निश्चित हो गई, कि शासन का प्रकार रिपब्लिकन रहेगा। साम्यवादी सिद्धान्तो का निराकरण करने के लिये यह बात भी उद्घोषित की गई, कि सम्पत्ति पर वैयक्तिक अधिकार अक्षुण्ण रखा जायगा। इसके अतिरिक्त, साम्यवाद का स्पष्ट रूप से भी विरोध किया गया। नवीन शासन-विधान मे कानून बनाने का कार्य एक राष्ट्रप्रतिनिधि सभा के सुपुर्द किया गया, जिसके सदस्यो की सख्या ७५० रखी गई। प्रतिनिधि सभा के सदस्य तीन वर्ष के लिए चुने जावें, यह व्यवस्था की गई। इस एक सभा को कानून बनाने के सम्पूर्ण अधिकार दे दिये गये। इसका नियन्त्रण करने के लिए किसी दूसरी सभा की रचना नही की गई। शासन-विभाग का अध्यक्ष राष्ट्रपति को बनाया गया, जिसे जनता के वोटो द्वारा चार वर्ष के लिये निर्वाचित किये जाने की व्यवस्था की गई। क्रान्ति के सिद्धान्तो की फिर से उद्घोषणा की गई। दास प्रथा को उडाया गया और यह निश्चय किया गया, कि राजनीतिक अपराधो के लिये किसी व्यक्ति को प्राणदण्ड न दिया जा सके।

राष्ट्रपति नेपोलियन—नवीन शासन-विधान चार नवम्बर को बनकर तैयार हुआ। अब प्रश्न यह था, कि राष्ट्रपति के पद पर किस व्यक्ति को निर्वाचित किया जावे। राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये १० दिसम्बर, १८४८ का दिन निश्चित किया गया। इस महत्वपूर्ण पद के लिये प्रमुख उम्मीदवार तीन व्यक्ति थे—लेद्रु रोला मजदूर दल का उम्मीदवार था। सेनापति कैविन्या रिपब्लिकन दल की तरफ से खडा हुआ था। यह वही सेनापति था, जिसने जुलाई के मजदूर-विद्रोह को बडी क्रूरता के साथ शान्त किया था। इनके

अतिरिक्त, रिपब्लिकन दल की ओर से ही एक अन्य भी उम्मीदवार था, जिसका नाम लुई नैपोलियन था। यह प्रसिद्ध विजेता नैपोलियन प्रथम का भतीजा था। निर्वाचन में लुई नैपोलियन को सफलता प्राप्त हुई। उस अकेले को ५४ लाख वोट मिले, जबकि उसके प्रतिद्वन्द्वियो को कुल मिलाकर केवल २० लाख वोट प्राप्त हुए थे। नैपोलियन के नाम में कुछ ऐसा जादू था, जो उसकी मृत्यु के एक सन्तति बाद भी उसके भतीजे की इस असाधारण सफलता में सहायक हुआ था। राष्ट्रपति निर्वाचित हो कर लुई नैपोलियन ने रिपब्लिक के प्रति भक्ति की शपथ ली, और उद्घोषित किया—"फ्रास ने जो कुछ इस समय स्थापित किया है, उसे गैर कानूनी तरीको से परिवर्तित करने की जो कोई आदमी कोशिश करेगा, उसे मैं देश का दुश्मन समझूगा।"

नैपोलियन ने स्वय किस प्रकार अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन किया, इस पर हम आगे चलकर प्रकाश डालेंगे। यहा इतना निर्देश कर देना पर्याप्त है, कि अपने सुप्रसिद्ध चचा की तरह उसने भी पहले रिपब्लिक के प्रधान की स्थिति में अपनी वैयक्तिक शक्ति का बढाना प्रारम्भ किया, और बाद मे वह धीरे-धीरे 'सम्राट्' के पद तक पहुच गया। १८४८ म वह राष्ट्रपति चुना गया था, और १८५२ मे वह सम्राट् बन गया। फ्रास की दूसरी रिपब्लिक पूरे चार वर्ष तक भी कायम नही रह सकी। इतने थोडे से समय मे ही रिपब्लिक का अत होकर राजसत्ता की स्थापना हो गई। वस्तुत, अभी तक भी फ्रास की जनता ने रिपब्लिक और लोकसत्तावाद के महत्व को पूर्णतया अनुभव नही किया था। पर वे लोग जो सदियो से राजकीय मामलो को एक ऐसी चीज समझते थे, जो कि उनकी पहुँच से बाहर है, जिससे उनका कोई सम्बन्ध नही है, वे अब एकदम कैसे बदल सकते थे। नैपोलियन सम्राट् बन गया, रिपब्लिकन दल की क्लबो में इस पर टीका टिप्पणी हो गई, कुछ अखबारो में चर्चा हो गई, पर सर्वसाधारण लोग ? उन्हे इससे क्या प्रयोजन था ?

पर इसमें सन्देह नही, कि १८४८ की राज्यक्राति ने फ्रास को लोकतन्त्र के मार्ग पर बहुत अधिक आगे बढा दिया। इसी क्राति मे पहले पहल राजनीतिक क्रान्ति के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक क्रान्तियो का भी सूत्रपात हुआ था। फ्रास मे कुछ समय तक साम्यवादी लोगो का जोर रहा। अन्य बहुत से अधिकारो की तरह मनुष्य का यह भी प्राकृतिक अधिकार है, कि वह अपनी रोजी कमाने के लिये मजदूरी प्राप्त कर सके—इस सिद्धान्त को पहली बार क्रिया मे परिणत किया गया। बेशक, इसके लिये किया गया प्रयत्न बुरी तरह से असफल हुआ। पर इसमे आश्चर्य की क्या बात है ? मनुष्य जाति इतनी पुरानी होते हुए भी हमेशा एक बालक की तरह रहती है, जिसे एक नई चीज सीखने के लिये बार-बार गिरना पडता है। राजनीतिक समानता और स्वतन्त्रता मनुष्य जाति के लिये नई बातें थी—इन्हे सीखने मे उसे कितनी देर लगी। अब तक भी फ्रास उसे पूर्णतया नही सीख सका था। फिर आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता व समानता का तो प्रश्न ही क्या था ? ये बाते तो लोगो के लिये एक असम्भव तथा अक्रियात्मक कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नही थी।

क्रान्ति की अन्य लहरो के समान १८४८ की राज्यक्रान्ति भी केवल फ्रास तक ही सीमित नही रही। फ्रास से एक प्रकार का ज्वालामुखी उठा था, जिसकी लपटो ने शीघ्र ही यूरोप के बडे भारी हिस्से को व्याप्त कर लिया।

सोलहवा अध्याय

क्रान्ति की तीसरी लहर

१ आस्ट्रियन साम्राज्य मे क्रान्ति का प्रारम्भ

मध्य यूरोप के सबसे प्राचीन तथा शानदार हाप्सबुर्ग राजवश के अधीन मुख्यतया तीन प्रदेश थे– आस्ट्रिया, हगरी और बोहेमिया। इनके अतिरिक्त इटली के कतिपय प्रदेश भी इसी राज्यवश के अधीन थे। १८४८ की राज्यक्रान्ति इन विस्तृत प्रदेशो पर दावानल के समान प्रकट हुई, और कुछ देर के लिये ऐसा प्रतीत होने लगा, कि हाप्सबुर्ग वश का प्राचीन वैभव अब खाक मे मिल जायगा, और आस्ट्रिया के साम्राज्य की समाप्ति हो जायगी।

आस्ट्रियन साम्राज्य का स्वरूप––आस्ट्रियन साम्राज्य मे क्रान्ति किस प्रकार हुई, इसका वर्णन करने से पूर्व यह स्पष्ट करना आवश्यक है, कि इस अद्भुत साम्राज्य का क्या स्वरूप था। आस्ट्रियन साम्राज्य मे किसी एक जाति व राष्ट्रीयता का निवास नही था, बहुत से राष्ट्र उसके अन्तर्गत थे। वीएना के पश्चिम के प्रदेश प्रधानतया जर्मन लोगो से आबाद थे। दक्षिण मे कार्निओला, स्टीरिया, कैरिन्थिया, और इस्ट्रिया के प्रदेशो मे स्लाव लोगो का निवास था। उत्तर मे (बोहेमिया और मोरेविया मे) चेक लोग बसते थे। रूस की सीमा के प्रदेशो मे पोल लोग आबाद थे। यह प्रदेश वस्तुत पौलैण्ड का ही एक भाग था। उस अभागे देश के टुकडे हो जाने के बाद यह आस्ट्रिया के हिस्से मे आ गया था। हगरी के राज्य मे–यह राज्य आस्ट्रिया के आधीन न होते हुए भी वहा के राजा के आधिपत्य में था––केवल हगेरियन या मग्यार लोगो का ही निवास नही था, उनके अतिरिक्त उसमें रूमानियन, क्रोटियन और सर्वियन लोग भी बसते थे। आल्प्स की पर्वतमाला के दक्षिण मे लोम्बार्डी और वेनेटिया के प्रदेश भी आस्ट्रियन सम्राट् के आधीन थे, यद्यपि इनमे इटालियन लोगो का निवास था। इस प्रकार आस्ट्रियन साम्राज्य मे जर्मन, चेक, स्लाव, हगेरियन, पोल, क्रोटियन, रूमानियन, सर्वियन और इटालियन इन विविध प्रकार के लोगो की सत्ता थी। इन सबकी भाषा पृथक्-पृथक् थी। न केवल भाषा, पर सस्कृति, सभ्यता, नसल, जाति, रहन-सहन और इतिहास––सब दृष्टियो से ये एक दूसरे से भिन्न थे। इन विविध जातियो का एक शासन में रह सकना बडी अद्भुत बात थी। पुराने जमाने में तो यह बात बिल्कुल मामूली थी, क्योकि उस समय लोगो मे राष्ट्रीयता का भाव ही उत्पन्न नही हुआ था। पर अब उन्नीसवी सदी मे, नैपोलियन के युद्धो के बाद यूरोपियन जनता में राष्ट्रीयता की नवीन भावना की अनुभूति उत्पन्न हो चुकी थी। अब इन विविध जातियो में स्वभाग्य-निर्णय का विचार प्रबल हो गया था।

और इनके लिये किसी विदेशी स्वेच्छाचारी शासन के अधीन रह सकना सम्भव नही रहा था। इन सब प्रदेशो, मे अब स्वतन्त्रता की भावना प्रादर्भुत हो चुकी थी। उदार विचारा के लोग सब स्थानो पर अपना कार्य कर रहे थे।

शासन का प्रकार—आस्ट्रियन साम्राज्य का शासन भी अदभुत प्रकार का था। आस्ट्रिया मे हाप्सबर्ग राजा फर्डिनन्ड प्रथम का एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन था। मन्त्री लोग केवल राजा के प्रति ही उत्तरदायी थे। राजा जिसे चाहता, मन्त्रिपद पर नियुक्त करता, जिसे चाहता बर्खास्त करता। कानून बनाने, नये टैक्स लगाने या राजकीय आमदनी को खर्च करने के लिये जनता की किसी भी प्रकार की अनुमति की आवश्यकता नही थी। अखबारो और पुस्तको पर पुलिस का कठोर निरीक्षण था। अध्यापक लोग शिक्षणालयो मे क्या पढाते है, थियेटरो मे क्या दृश्य दिखाये जाते है—इन सब बातो पर भी पुलिस कडी निगाह रखती थी। सरकार को फिकर रहती थी, कि कोई नया विचार आस्ट्रिया में प्रवेश न कर जाय। लोगो को देश से बाहर जाने-आने की स्वतन्त्रता नही थी। प्रत्येक यात्री के लिये पासपोर्ट लेना आवश्यक था। इन बाधाओ का परिणाम यह था, कि आस्ट्रिया के विद्वान् पश्चिमी यूरोप के ससर्ग से सर्वथा वचित थे। फ्रास और ब्रिटेन में जो नवीन विचार धाराए चल रही थी, आस्ट्रिया मे उनका प्रवेश रोक दिया गया था। मैटरनिख बडे अभिमान के साथ कहा करता था, कि वैज्ञानिक शैली आस्ट्रिया के विश्वविद्यालयो तक मे प्रविष्ट नही हो सकी है। मध्यकाल की प्राय सभी सस्थाए अभी तक भी आस्ट्रिया में विद्यमान थी। कुलीन जमीदारो के अधिकार अक्षुण्ण बने हुए थे। किसानो को कोई स्वतन्त्रता व अधिकार प्राप्त नही थे। जमीदार की अनुमति के बिना वे अपना गाव तक को नही छोड सकते थे। चर्च की अवस्था भी वही थी, जो राज्यक्रान्ति मे पूर्व फ्रास मे थी। राजकीय पदो पर केवल रोमन कैथोलिक ही नियत किये जा सकते थे। चर्च का प्रभाव असाधारण था।

हगरी आस्ट्रिया से पृथक् था। परन्तु आस्ट्रिया का राजा ही उसका भी राजा होता था। हगरी में अब तक मध्यकाल की सामन्तपद्धति विद्यमान थी। सम्पूर्ण शासन-शक्ति कुछ कुलीन जमीदारो के हाथ में थी। ये लोग मनमानी तरीके से देश का शासन करते थे। नाम को हगरी में पार्लियामेट विद्यमान थी, जिसमे दो सभाए होती थी। द्वितीय सभा में बडे जागीरदार सदस्य होते थे, और प्रथम सभा के लिए छोटे जागीरदार अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करते थे। हगरी की इस पार्लियामेट मे क्रोट, रूमानियन और स्लोवाक लोगो को प्रतिनिधित्व प्राप्त नही था। सर्वसाधारण हगेरियन लोग भी शासन सम्बन्धी सब अधिकारो से वचित थे। जनता भी कोई इच्छा रख सकती है, इस बात की कुलीन जागीरदारो को कल्पना तक नही थी। यह ध्यान मे रखना चाहिए, कि पोल, चैक और स्लाव लोगो के प्रदेश आस्ट्रिया के राज्य के अन्तर्गत थे, और क्रोटियन, रूमानियन, सर्वियन और स्लोवाक लोगो के प्रदेश हगरी के अधीन थे। इन दोनो राज्यो का निर्माण सर्वथा अस्वाभाविक तथा राष्ट्रीयता के सिद्धात के प्रतिकूल था। इनमे केवल राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का ही खून नही हो रहा था, अपितु लोकसत्तावाद का तो इनमे निशान तक भी नही था।

परन्तु विचार हवा की तरह होते है। कृत्रिम तरीको से उन्हे रोक सकना सम्भव

नही होता। फर्डिनन्ड और मैटरनिख के सब प्रयत्नो के बावजूद भी समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृभाव के विचार आस्ट्रियन साम्राज्य मे भी पहुँच चुके थे। वहा पर भी लोग स्वेच्छाचारी राजसत्ता का अन्त कर लोकतन्त्र शासन को स्थापित करने का स्वप्न ले रहे थ। यही कारण है, कि जब १८४८ मे क्राति की नई लहर प्रारम्भ हुई, तो आस्ट्रियन साम्राज्य की विविध जातियो मे भी साहस का सञ्चार हुआ। वे भी स्वेच्छाचारी शासन से मुक्त होने के लिए उत्सुक हो उठी।

मैटरनिख का पतन—जिस समय २२ फरवरी, सन् १८८८ की फ्रेञ्च राज्य-क्रान्ति का समाचार मैटरनिख ने सुना, तो वह बहुत चिन्तित हुआ। उसने कहा—"मै एक बूढा हकीम हूँ। मै अच्छी तरह जानता हूँ, कि साध्य और असाध्य रोगो मे क्या भेद होता है। यह बीमारी घातक है।" निस्सन्देह, मैटरनिख ठीक था। १३ मार्च, १८४८ को वीएना मे एक जुलूस निकाला गया। विद्यार्थी और मजदूर बहुत बडी सख्या मे इसमे सम्मिलित हुए। ये लोग 'मैटरनिख हाय-हाय' के नारे लगाते जाते थे। आखिर, जुलूस ने मैटरनिख के मकान को घेर लिया। मैटरनिख की उमर साठ साल से ऊपर थी, उसके बाल पक चुके थे। वह समय के रुख को खूब पहचानता था। उसने ताड लिया, कि अब पदत्याग करके आस्ट्रिया छोड जाने के सिवा अन्य कोई उपाय नही है। वह ग्रेट ब्रिटेन चला गया। उसका पुराना बूढा दोस्त वेलिङ्गटन का ड्यूक उसका स्वागत करने के लिए तैयार था। दोनो बूढे मित्रो ने अपनी आयु के शेष दिन शान्ति के साथ व्यतीत किये। दोनो ही अपने जमाने में लोकतन्त्र प्रवृत्तियो के कट्टर दुश्मन रह चुके थे। निस्सन्देह, जिन्दगी के शेष के दिनो को व्यतीत करते हुए ये पुराने मित्र 'घोर कलिकाल' को कोसा करते थे और उन सुन्दर दिनो की याद करते थे, जब उनकी इच्छा के प्रतिकूल एक पत्ता तक भी नही हिल सकता था।

मैटरनिख के प्रस्थान का उत्सव वीएना मे बडी धूम-धाम से मनाया गया। पुराने जमाने और स्वेच्छाचार के इस आधारस्तम्भ के पतन का समाचार सुनकर जनता को अपार प्रसन्नता हुई। अब राजा फर्डिनन्ड प्रथम शासन-सुधार करने के लिए बाधित हुआ। प्रेस पर से कठोर निरीक्षण हटा लिया गया। सामन्तपद्धति के अवशेषो को नष्ट किया गया। कुलीनो के विशेषाधिकार छीन लिये गये। नवीन शासन-विधान तैयार किया गया, और उसमें जनता को पर्याप्त अधिकार दिये गये। पर क्रान्तिकारी लोग इतने से ही सन्तुष्ट नही थे, वे पूर्ण लोकतन्त्र शासन स्थापित करने को उत्सुक थे। क्रान्तिकारियो के आन्दोलन से राजा घबरा गया। उसकी उमर पक चुकी थी, अग शिथिल हो गये थे। प्रचण्ड विरोध को सह सकने की शक्ति उसमे नही रही थी। वह वीएना से भागकर इन्सब्रुक चला गया, और क्रान्तिकारियो को राजधानी मे मनमानी करने का अवसर मिल गया।

नवीन शासन-विधान और क्रान्ति की विफलता—नवीन शासन-विधान तैयार करने के लिए राष्ट्रीय महासभा बुलाई गई। सब बालिग पुरुषो को इस महासभा के लिए प्रतिनिधि चुनने का हक दिया गया था। हगरी के अतिरिक्त आस्ट्रियन साम्राज्य के सम्पूर्ण प्रदेशो के प्रतिनिधि इस महासभा में सम्मिलित हुए। बाईस जुलाई, १८४८ को वीएना मे महासभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। महासभा मे उदार विचारो के सदस्यो का बहुमत

था। पर राजसत्ता को सर्वथा नष्ट कर देने के पक्ष में बहुत कम सदस्य थे। आखिर, बहस के बाद यह निश्चय किया गया, कि आस्ट्रिया मे वैध राजसत्ता की स्थापना की जावे। राजा को वापस लौट आने के लिए निमन्त्रण भेजा गया। अगस्त, १८१८ में वह अपनी राजधानी मे लौट आया। अभी नये शासन-विधान को तैयार करने का कार्य समाप्त नही हुआ था, कि हगरी, बोहेमिया, क्रोटिया और उत्तरी इटली मे क्रान्तियों के समाचार आने लगे। वीएना के लोग इन समाचारों को पढकर भडक गये। वे समझते थे, कि क्रान्ति को पूर्ण किया जाना चाहिये। ढीली-ढाली कार्यवाही मे कुछ न बनेगा। गलियो और बाजार मे मोर्चाबन्दी शुरु हो गई, और सर्वसाधारण जनता हथियार लेकर निकल पडी। युद्ध-सचिव को लैम्प के एक खम्भे से बाधकर कतल कर दिया गया। यह दशा देखकर राजा फर्डिनन्ड फिर भाग खडा हुआ। वीएना मे दुबारा क्रान्ति हो गई। राष्ट्रीय महासभा वैध राजसत्ता की स्थापना के लिये जो कार्य कर रही थी, वह बीच में ही रह गया।

यद्यपि राजा वीएना छोडकर भाग गया था, पर इस बार उसने अधिक साहस प्रदर्शित किया। उसने सेना को हुक्म दिया, कि विद्रोहियो को गोली से उडा दो। शाही फौज ने वीएना पर हमला किया। विद्रोहियों और फौज मे बाकायदा लडाई हुई। आखिर, युद्ध मे क्रान्तिकारी परास्त हुए। ३१ अक्टूबर को शाही सेना ने वीएना जीत लिया, और आस्ट्रिया की क्रान्ति असफल हो गई। जनता ने अपने अधिकारो के लिये जो सिर उठाया था, उसे बुरी तरह से कुचल दिया गया।

पर यह नही समझना चाहिये कि १८४८ की क्रान्ति मे आस्ट्रिया के क्रान्तिकारी पूर्णतया असफल रहे। मैटरनिख का अब सदा के लिये पतन हो गया था। यह कोई साधारण बात नही थी, क्रान्ति की यह भारी विजय थी। इतना ही नहीं, क्रान्ति को कुचलकर फर्डिनण्ड ने नवम्बर १८४८ मे जब दुबारा वीएना मे प्रवेश किया, तब उसे भी आवश्यकता अनुभव हुई, कि शासन-विधान की उद्घोषणा की जाय। निस्सन्देह, यह शासन-विधान जनता और क्रान्तिकारियो की इच्छा के अनुरूप नही था, पर इसके कारण कम से कम इतना तो हो ही गया था, कि आस्ट्रिया मे एक बाकायदा शासन-विधान की स्थापना हो गई थी।

हगरी में राज्यक्रान्ति—आस्ट्रियन साम्राज्य मे हगरी की क्या स्थिति थी, इस बात पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। हगरी मे दो आन्दोलन चल रहे थे। (१) आस्ट्रिया के राजा की अधीनता से मुक्त होकर अपना पृथक् व स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया जाए, और (२) लोकतन्त्र शासन की स्थापना की जाय। हगेरियन स्वाधीनता के आन्दोलन के प्रमुख नेता कॉस्सुथ और डीक थे। सरकार भरसक कोशिश कर रही थी, कि इस आन्दोलन को कुचल दिया जावे। शासनसुधार के पक्ष मे व्याख्यान देना भी वहा जुर्म समझा जाता था। प्रेस के ऊपर कडा निरीक्षण था। पुस्तकों, अखबारो या पर्चो द्वारा किसी भी प्रकार राजनीतिक आन्दोलन नही किया जा सकता था। प्रसिद्ध हगेरियन नेता कॉस्सुथ को इसलिये जेल की सजा दी गई, क्योकि उसने हस्तलिखित रूप से नवीन राजनीतिक विचारो को फैलाने का प्रयत्न किया था। पर सरकार के अत्याचारो के बावजूद भी हगरी मे स्वाधीनता का आन्दोलन निरन्तर उन्नति करता गया। जिस समय

मार्च, १८४८ मे पहली बार वीएना मे विद्रोह हुआ, तो हगेरियन लोगो मे भी उत्साह उत्पन्न हुआ, और उन्होने विद्रोह करने का सकल्प किया। इस दशा मे आस्ट्रिया के सम्राट् को शासन-सुधार की माग को स्वीकार करने के लिये बाधित होना पडा। हगरी के लिये एक पृथक् मन्त्रिमण्डल की रचना की गई। कॉस्सुथ और डीक उसके सदस्य बनाये गये। इतना ही नही, सामन्तपद्धति को नष्ट किया गया और कुलीनो के विशेषाधिकार छीन लिये गये। सब लोग कानून की दृष्टि मे एक समान कर दिये गये, इस प्रकार हगरी से मध्यकाल का अन्त हुआ, और क्रान्ति के सिद्धान्त क्रिया मे परिणत किये गये। अब हगरी की सरकार आस्ट्रिया से सर्वथा पृथक् हो गई, यद्यपि दोनो देशो का राजा एक ही रहा। नवीन शासन-विधान मे भाषण, लेखन और मुद्रण की स्वतन्त्रता को स्वीकार किया गया। सब लोगो को यह अधिकार दिया गया, कि वे अपने विश्वासो के अनुसार धर्म का अनुसरण कर सके। राजकीय इमारतो पर हगरी का अपना राष्ट्रीय झडा फहराने लगा, और हगरी की राष्ट्रीय आकाक्षाएं पूरी हुई। क्रान्ति की जो लहर वीएना मे असफल हो गई थी, वह हगरी मे बहुत कुछ सफल हो गई। वहा न केवल उदार शासन व वैध राजसत्ता का प्रारम्भ हुआ, अपितु हगरी की सरकार आस्ट्रिया से सर्वथा पृथक् भी हो गई।

क्रान्ति की विफलता—परन्तु हगरी के राज्य मे अनेक ऐसी जातिया भी निवास करती थी, जो हगेरियन लोगो मे सर्वथा भिन्न थी। क्रोटियन, रुमानियन और सर्वियन लोगो को हगरी की स्वतन्त्रता मे कोई भी लाभ न था। नये शासन-विधान मे इन्हें कोई भी अधिकार नही मिले थे। क्रान्ति की लहर ने इन पर भी असर डाला था। य भी अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये आन्दोलन कर रहे थे। क्रान्ति के इस काल मे इन जातियो ने भी अनेक विद्रोह किये। आस्ट्रियन सरकार इनकी सहायता कर रही थी। हगरी की स्वाधीनता से आस्ट्रिया को बहुत नुकसान पहुँचा था। इसलिये आस्ट्रियन सरकार का ख्याल था, कि विद्रोहियो की सहायता करने से हगरी की हानि होगी। आस्ट्रिया की इस कार्यवाही का परिणाम यह हुआ, कि हगरी ने आस्ट्रिया से पूर्णतया सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। अब तक आस्ट्रियन राजा ही हगरी का भी सम्राट् होता था। अब हगेरियन लोगो ने अपने को पूर्णतया स्वाधीन उद्घोषित कर रिपब्लिक की स्थापना की, और कास्सुथ को अपना राष्ट्रपति निर्वाचित किया। इस पर आस्ट्रिया ने हगरी के विरुद्ध बाकायदा युद्ध की उद्घोषणा कर दी। रूस ने भी आस्ट्रिया का साथ दिया। इन दो शक्तिशाली राज्यो का मुकाबला कर सकने की सामर्थ्य हगरी में नही थी। वह परास्त हुआ, और कॉस्सुथ टर्की भाग गया। यहा से वह ग्रेट ब्रिटन और अमेरिका गया। उसने भरसक कोशिश की, कि ये देश हगरी की सहायता करे। पर वह सफल नही हो सका। अपने देश की स्वाधीनता के लिये कोशिश करते-करते १८९४ मे इटली उसकी मृत्यु होगई। कास्सुथ तो हगरी छोडकर टर्की भाग जाने मे समर्थ हुआ था, पर अन्य बहुत से नेता पकड लिये गये थे। उन्हे प्राणदण्ड दिया गया, और हगरी फिर आस्ट्रिया के अधीन हो गया। वहा स्वाधीन शासन को नष्ट कर फिर से आस्ट्रियन शासन की स्थापना की गई। १८४८ मे हगरी में क्रान्ति सफल हो गई थी, पर एक वर्ष बाद ही पुराना जमाना फिर विजयी हो गया। हगरी की स्वाधीन रिपब्लिक कुछ मास तक ही जीवित रह सकी। शीघ्र

ही वहा फिर आस्ट्रिया का आधिपत्य कायम हो गया।

चैक क्रान्ति—१८४८ की क्रान्ति की लहर ने बोहेमिया पर भी प्रभाव डाला। १५ मार्च के दिन चैक देशभक्त बहुत बडी सख्या मे प्राग मे एकत्रित हुए। उन लोगो ने निश्चित किया, कि एक विशाल प्रार्थनापत्र तैयार किया जाय, और उसमें राजनीतिक अधिकारो और शासन-सुधार के लिये सम्राट से प्रार्थना की जाय। प्रार्थनापत्र तैयार कर, के चैक नेताओं की एक मण्डली ने सम्राट् की सेवा में प्रस्थान किया। फर्डिनन्ड क्रान्तियो से घबराया हुआ था। उसने चैक लोगो के प्रार्थनापत्र को स्वीकृत कर लिया। परन्तु बोहेमिया की स्वाधीनता की समस्या बहुत जटिल थी। बोहेमिया मे केवल चैक लोग ही नही बसते थे, जर्मन लोगो की सख्या भी वहा कम नही थी। ये जर्मन लोग बोहेमिया की स्वतन्त्रता का विरोध करते थे। वे समझते थे, कि यदि बोहेमिया स्वतत्र हो जायगा, तो चैक लोग हमे कुचल देगे। जर्मन लोगो के विरोध पर विचार करने तथा स्वतन्त्र चैक राज्य का सगठन करने के लिये प्राग मे एक विशाल महासभा बुलाई गई। बोहेमिया भर से चैक तथा उनसे सम्बद्ध मोरेवियन, रुथेनियन, सर्वियन और क्रोटियन आदि जातियो के प्रतिनिधि इस महासभा मे सम्मिलित हुए। अभी इस महासभा ने अपना कार्य समाप्त नहीं किया था, कि कुछ जोशीले नौजवानो ने प्राग मे स्थित आस्ट्रियन सेनापति विन्डिशग्रेट्श के खिलाफ आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। वे उसके विरुद्ध नारे लगाने लगे। लोगो को जोश आ गया। चैक जनता भडक उठी, विद्रोह हो गया। प्राग की गलियो मे लडाई प्रारम्भ हो गई। विन्डिशग्रेट्श के मकान पर हमला कर दिया गया। अब विन्डिशग्रेट्श को मौका मिला। उसने विद्रोह को शान्त करने के लिये भयकर उपाय प्रयुक्त किये। शहर पर गोलाबारी की गई। विद्रोह को दबा दिया गया। बोहेमिया मे क्रान्तिकारियो से बुरी तरह बदला लिया गया। जो शासन-सुधार किये गये थे, उन्हे भी वापस ले लिया गया। क्रान्ति असफल हो गई।

इस प्रकार हाप्सबुर्ग सम्राट् के सभी प्रदेशो मे—आस्ट्रिया, हगरी और बोहेमिया में १८४८ में क्रान्तिया हुई। पर कही पर भी वे पूर्णतया सफल न हो सकी। एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन ही सम्पूर्ण आस्ट्रियन साम्राज्य मे कायम रहा। पर इतना निश्चित है, कि १८४८ की इस क्रान्ति की लहर ने सम्पूर्ण आस्ट्रियन साम्राज्य में सामन्तपद्धति तथा अन्य मध्यकालीन सस्थाओ को जबर्दस्त धक्का पहुँचाया। जनता में क्रान्ति की भावना प्रादुर्भूत हो चुकी थी, और नये युग के अभ्युदय की स्वाभाविक प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी।

२. जर्मनी मे क्रान्ति का प्रभाव

जर्मन आन्दोलन का स्वरूप—उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध मे जर्मनी एक राज्य नही था। इस काल में जर्मनी में अनेक राज्य थे, जिनमे प्रमुख प्रशिया था। यद्यपि विविध जर्मन राज्य एक सघ में सगठित थे, पर यह राज्यसघ बहुत ही ढीलाढाला तथा अपूर्ण था। क्रान्ति की लहर जर्मनी म दो प्रकार से प्रभाव डाल रही थी। जर्मन देशभक्त एक तरफ तो अपने-अपने राज्यो मे स्वेच्छाचारी राजसत्ता का अन्त कर जनता का शासन

स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे, दूसरी तरफ उनकी आकाक्षा सम्पूर्ण जर्मनी को दृढ सगठन मे सगठित करने की भी थी। 'जर्मनी एक राष्ट्र है,' 'जर्मनी हमारी मातृभूमि है', यह भावना प्रादुर्भूत हो गई थी, और जर्मन नवयुवक अपने देश की राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता के लिये उतावले हो रहे थे। १८४८ से पूर्व ही जर्मनी मे नवीन विचारो का प्रवेश हो चुका था। परन्तु फ्रास की तृतीय राज्यक्रान्ति द्वारा जब सम्पूर्ण यूरोप मे नवीन उत्साह और साहस का सचार हुआ, तो जर्मनी भी उसके पभाव से वचित नही रह सका।

प्रशिया में क्रान्ति—अस्ट्रियन प्रधानमन्त्री मेटरनिख के पतन का समाचार वर्लिन मे तेरह मार्च, १८४८ के दिन पहुँचा। अब लोगो की खुशी का ठिकाना नही रहा। मेटरनिख स्वेच्छाचारी एकतन्त्र शासन का आधार-स्तम्भ था। उसके टूट जाने के समाचार से जर्मन क्रान्तिकारियो का उत्साह द्विगुणित हो गया। लोग इकट्ठे हो गये। जुलूस वन गया। भीड राजमहल के चारो ओर एकत्रित हो गई। रिपब्लिकन लोगो मे वडा जोश था। वे हमले के लिये जनता को भडका रहे थे। प्रशिया के राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने हुक्म दिया कि राजप्रसाद मे लोगो को हटा दिया जाए। इसपर पुलिस ने गोली चला दी। कुछ लोग मारे गये। अब क्या था? जनता जोश मे आ गई। रिपब्लिकन लोग हथियार लेकर निकल पडे। सारे शहर मे विद्रोहाग्नि भडक उठी। लडाई प्रारम्भ हो गई। राजा ने जव गदर का समाचार सुना, तो घवरा गया। उसने प्रतिज्ञा की, कि जनता की सम्पूर्ण शिकायते दूर कर दी जायेंगी, और वह स्वय जर्मनी को एक सूत्र में सगठित करने के लिए यत्न करेगा। इस पर जनता शान्त हो गई। विद्रोह मे जो लोग मारे गये थे, उनकी सख्या दो सौ थी। ये सव शहीद वन गये। सारे वर्लिन शहर मे शहीदो का जुलूस निकाला गया। जव जुलूस राजप्रासाद के सम्मुख पहुचा, तो लोगो ने राजा से कहा—"आओ, अपनी फौजो की करतूत देख जाओ।" राजा महल के एक झरोखे पर प्रकट हुआ। जनता फिर उत्तेजित हो गई। उन्होने क्रोध से चिल्लाकर कहा—'अपनी टोपी उतार लो' राजा क्या करता? उस वेचारे ने अपनी टोपी उतार दी। लोग इतने पर भी सतुष्ट नही हुए। उन्होने फिर चिल्लाकर कहा—'नीचे आओ।' प्रशिया का राजा नीचे उतर आया। जनता के सम्मुख वह असहाय था। उसे मजवूर किया गया, कि शहीदो के सम्मुख सिर झुकाये, उनके प्रति सम्मान प्रकट करे। इतना ही नही, राजा की तरफ से यह आज्ञा भी प्रकाशित की गई, कि 'शहीदो' के कतल के लिये सारे शहर में शोक मनाया जावे। २८ मई, १८४८ को प्रशिया का नया शासन-विधान वनाने के लिय वर्लिन में सविधान परिषद् का आयोजन किया गया। परिषद् ने प्रशिया के लिये वैध राजसत्ता के सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर सविधान तैयार किया। पर कुलीन जागीरदारो के विरोध के कारण यह सविधान क्रिया में परिणत नही हो सका। वाद में १८५० मे राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने स्वय अपने राज्य के लिये एक सविधान घोषित किया, जिसमें राजा के अधिकारो को कायम रखते हुए पार्लियामेंट की व्यवस्था की गई।

अन्यत्र क्रान्ति—प्रशिया के अतिरिक्त अन्य जर्मन राज्यो मे भी क्रान्ति के चिन्ह प्रकट हुए। १८४८ के मार्च और एप्रिल—इन दो महीनो में जर्मनी के अधिकाश राज्यो में क्रान्तिया हुई। प्राय सर्वत्र एकतन्त्र शासनो का अन्त कर वैध राजसत्ता की स्थापना

की गई, और विविध जर्मन राज्यों में नवीन शासन-विधान तैयार किये गये। एकदम सम्पूर्ण जर्मनी मे जागृति सी उत्पन्न हो गई।

फ्रांकफोर्ट की राष्ट्रीय महासभा—नवीन विचार के लोग इतने से ही सन्तुष्ट नहीं थे। वे जनता के अधिकारों के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिये भी उत्सुक थे। इस उद्देश्य से सम्पूर्ण जर्मनी के उदार नेताओं ने फ्रांकफोर्ट नामक नगर मे एक राष्ट्रीय महासभा का सगठन किया। इसमे कुल मिलाकर ५६८ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। १७ मई, १८४८ को फान गागर्न नामक राष्ट्रीय नेता के सभापतित्व मे महासभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। अपने प्रारम्भिक भाषण मे फान गागर्न ने उद्घोषित किया, कि हम लोग सम्पूर्ण जर्मनी के लिये एक शासन विधान का निर्माण करने के लिये यहा एकत्रित हुए है। राज्य की स्वामित्व शक्ति वस्तुत जनता म निहित है, और हम लोगो ने जर्मनी के भाग्यनिर्णय का अधिकार जनता से ही प्राप्त किया है। महासभा मे मुख्यतया दो दल थ, एक दल वैध और लोकतन्त्र राजसत्ता का पक्षपाती था, और दूसरा दल रिपब्लिक की स्थापना करना चाहता था। शासन-विधान का स्वरूप क्या हो, जनता के आधारभूत अधिकार कौन से निश्चित किये जावे—इन बातो की बहस मे असाधारण देर लग गई। यह विलम्ब जर्मनी में नवीन प्रवृत्तियो की सफलता के लिये बहुत घातक था। क्रान्ति का जोश ठडा पड रहा था। ज्यो-ज्यो देर होती जाती थी, लोगो की दृष्टि मे फ्रांकफोर्ट की राष्ट्रीय महासभा का महत्व भी कम होता जाता था। इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य भी प्रश्न थे, जिनका निर्णय कर सकना बहुत कठिन था। अब तक जर्मन राज्यसघ मे आस्ट्रिया भी सम्मिलित था। पर आस्ट्रियन राज्य मे बहुत से ऐसे प्रदेश भी अन्तर्गत थे, जिनके निवासी जर्मन जाति के नही थे। जर्मन राज्यसघ मे उन प्रदेशो को सम्मिलित करना फ्रांकफोर्ट मे एकत्रित देशभक्तो को समुचित प्रतीत नही होता था। अत उन्होने यह निर्णय किया, कि नवीन जर्मन राज्यसघ मे आस्ट्रिया के केवल उसी प्रदेश को सम्मिलित किया जाए, जिसमे जर्मन लोग बसते है। यह निर्णय राष्ट्रीयता की दृष्टि से ठीक था, पर साथ ही अक्रियात्मक भी था। आस्ट्रिया का कुछ हिस्सा जर्मन राज्यसघ मे सम्मिलित हो, और शेष न हो—यह व्यवस्था कभी क्रिया मे नही आ सकती थी। आस्ट्रिया का राजा भी इससे कभी सन्तुष्ट नही हो सकता था। एक अन्य प्रश्न यह था, कि सगठित जर्मनी का सम्राट् कौन हो? अधिकाश लोग राजसत्ता के पक्षपाती थे, रिपब्लिक का पक्ष प्रबल नही था। अत यह भी निर्णय करना आवश्यक था, कि सम्राट् के पद पर किसे अधिष्ठित किया जावे। इस ऊँचे पद के लिये दो उम्मीदवार थे—प्रशिया का राजा और आस्ट्रिया का सम्राट्। आस्ट्रिया को नाराज कर आखिर यह फैसला किया गया, कि प्रशिया के राजा को जर्मन राज्यसघ का सम्राट् बनाया जावे। परन्तु जब यह निर्णय प्रशिया के राजा के सम्मुख पेश किया गया, तो वह सन्तुष्ट नही हुआ। उसने क्रोध मे भर कर कहा—"मै असली राजमुकुट चाहता हूँ, फ्रास मे लूई फिलिप की तरह गन्दी नाली मे उठाकर मुकुट को सिर पर रख लेना मुझे पसन्द नही है।" प्रशिया का राजा नही चाहता था, कि जनता के वोटो से, जनता की इच्छा से इस बात का फैसला हो कि उसे सम्राट् बनाया जाए। वह अपने बाहुबल से सम्राट् बनना चाहता था। मध्यकाल की यही

गौरवमयी परम्परा थी।

असफलता—प्रशिया का राजा यदि जर्मनी का सम्राट् पद स्वीकार करने से इनकार कर देता, तो कोई बडी बात न होती। पर उसने क्रान्ति तथा नई प्रवृत्तियो का खुल्लमखुला विरोध करना भी प्रारम्भ कर दिया। पिछले दिनो प्रशिया मे जो नवीन सुधार किये गये थे, वे सब वापस ले लिये गये। अन्य जर्मन राज्यो ने भी प्रशिया का अनुकरण किया। सभी जगह क्रान्ति को कुचलने का प्रयत्न प्रारम्भ हो गया।

प्रतिक्रिया का प्रारम्भ—फ्राकफोर्ट की राष्ट्रीय महासभा परेशान थी। बना बनाया खेल बिगड रहा था। साल भर की मेहनत व्यर्थ जा रही थी। क्रान्तिकारियो के सम्मुख अब कोई मार्ग न था। जर्मनी मे लोकसत्तावाद तथा राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने मे उन्हे भारी असफलता हो रही थी। निराश होकर उन्होने विद्रोह का आश्रय लेने का निश्चय किया। अनेक स्थानो पर गदर हुए। पर प्रशिया की सेना उन्हे कुचल देने के लिये उद्यत थी। सेना ने बुरी तरह से विद्रोहो को शान्त किया। इतना ही नही, प्रशियन सरकार ने हुक्म दिया, कि राष्ट्रीय महासभा से प्रशियन प्रतिनिधि वापस चले आवे। अन्य अनेक राज्यो ने प्रशियाका अनुसरण किया। अब केवल १०५ प्रतिनिधि ही महासभा मे शेष रह गये। इन लोगो ने फ्राकफोर्ट को छोड कर स्टुटगार्ट मे अपना कार्य प्रारम्भ किया। पर वहा भी वे आराम से नही बैठ सके। वुर्टम्बर्ग के राजा ने अपनी सेना को हुक्म दिया कि "राष्ट्रीय महासभा" को भग कर दे। १८ जून, १८४८ को 'महासभा' के अवशिष्ट प्रतिनिधियो को भी तितर-बितर कर दिया गया। जर्मनी की जो नवीन प्रवृत्तिया फ्राकफोर्ट की राष्ट्रीय महासभा के रूप मे सगठित होकर प्रकट हुई थी, उन्हे बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हो रही थी। पर पुराना जमाना अभी बहुत प्रबल था, अन्त मे वही विजयी हुआ। प्रशिया का एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन आखिर इन प्रवृत्तियो को नष्ट करने मे पूर्णतया सफल हो गया।

१८४८ की क्रान्ति की लहर के बाद भी सम्पूर्ण जर्मनी मे एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन ही कायम रहे। राष्ट्रीय एकता की तरफ जो पग बढाया गया था, वह भी सफल नही हुआ। पर इसमे सन्देह नही, कि नई प्रवृत्तियो की भावी सफलता के लिये मैदान अवश्य तैयार हो गया। यह नही समझना चाहिये, कि सन् १८४८ की क्राति जर्मनी मे सर्वथा असफल रही, या फ्राकफोर्ट की राष्ट्रीय महासभा ने कोई कार्य नही किया। हम देखेंगे कि कुछ समय बाद ही जर्मनी राष्ट्रीय दृष्टि से एक हो गया, और स्वाधीनता तथा लोकतन्त्र शासन की ओर भी पर्याप्त रूप मे अग्रसर हुआ। यह सब इतनी सुगमता से न हो सकता, यदि १८४८ की घटनाएँ उसके लिये मार्ग साफ न कर देती।

३. इटली मे क्राति की लहर

सम्पूर्ण इटली में क्रातियां—यह बात पहले स्पष्ट की जा चुकी है, कि वीएना की कांग्रेस के बाद उत्तरी इटली के अधिकाश भाग पर आस्ट्रिया का आधिपत्य था। इटालियन लोग न केवल स्वाधीनता के लिये प्रयत्न कर रहे थे, अपितु राष्ट्रीय एकता की स्थापना भी उनका प्रधान उद्देश्य था। मैटरनिख के पतन के बाद इटालियन देश-

भक्तो मे अपूर्व साहस का सचार हुआ। सबसे पहिले, मिलान में विद्रोह हुआ। मिलान नगरी से आस्ट्रियन सेना को परास्त कर बाहर निकाल दिया गया। धीरे-धीरे सम्पूर्ण लॉम्बार्डी आस्ट्रियन सेनाओ तथा कर्मचारियो से खाली हो गया। मिलान का अनुसरण वेनिस ने किया। वेनेटियन लोग भी विद्रोह के लिये सन्नद्ध हो गये। एक बार फिर वेनिस की प्राचीन रिपब्लिक का उद्धार हुआ। सार्डिनिया के राजा चार्ल्स एल्बर्ट ने मिलान और वेनिस के विद्रोहो मे क्रान्तिकारियो की सहायता की। क्रान्ति केवल उत्तरी इटली तक ही सीमित नही रही। धीरे-धीरे सम्पूर्ण इटली विद्रोहाग्नि मे उद्दीप्त हो गया। नेपल्स, रोम, टस्कनी और पीडमोन्ट—सब स्थानो पर जनता ने विद्रोह किये। नवीन शासन-विधानो की स्थापना की गई, और सर्वत्र वैध राजसत्ता के सिद्धान्त की विजय दृष्टिगोचर होने लगी। इतना ही नही, राष्ट्रीय एकता के लिये भी उद्योग किया गया और सार्डिनिया के राजा को सगठित इटालियन राष्ट्र का नेता मान लिया गया। पोप पायस दशम और नेपल्स का बूर्बो वशी राजा भी राष्ट्रीय भावना की लहर मे बहकर सार्डिनिया के राजा को इटली का नेता मानने के लिये उद्यत हो गये। कुछ देर के लिये ऐसा नजर आने लगा, कि इटली की सब राष्ट्रीय महत्वाकाक्षाए पूर्ण होकर ही रहेगी।

आस्ट्रिया के साथ युद्ध—परन्तु अभी उपयुक्त समय नही आया था। पुराना जमाना अभी बहुत प्रबल था। आस्ट्रियन सेनाएँ कुछ देर के लिये परास्त अवश्य हो गई थी, पर उत्तरी इटली मे सदा के लिये उन्हे खदेड सकना सुगम कार्य नही था। आस्ट्रियन सेनापति राडेट्स्की क्वाड्रिलेटरल नामक स्थान पर आश्रय लेकर इटालियन विद्रोह को शान्त करने की तैयारियाँ कर रहा था। यदि इटालियन लोग परस्पर मिलकर उसका मुकाबला करते, तो उनकी सफलता निश्चित थी। पर उनमे वास्तविक एकता अभी उत्पन्न नही हुई थी। सार्डिनिया का राजा चार्ल्स एल्बर्ट अकेला आस्ट्रिया को परास्त नही कर सकता था। यद्यपि कुछ समय के लिये ऐसा प्रतीत होने लगा था, कि इटली में राष्ट्रीय एकता की स्थापना हो गई है, पर आस्ट्रिया के साथ युद्ध प्रारम्भ होते ही वह क्षणिक एकता काफूर की तरह उड गई। पोप पायस दशम ने कहा—हमारा काम शान्ति स्थापित करना है, युद्ध नही। आस्ट्रिया रोमन कैथोलिक चर्च का सबसे पक्का मित्र है, हम उससे किसी भी दशा मे लडाई नही कर सकते। नेपल्स के राजा ने भी पीठ फेर ली। टस्कनी ने भी सहायता करने से इनकार कर दिया। अब आस्ट्रिया की शक्तिशाली सेनाओ का मुकाबला करनेवाले रह गये—सार्डिनिया, लॉम्बार्डी, वेनेटिया, परमा और मोडना। इनके लिये आस्ट्रिया का मुकाबला कर सकना सुगम नही था। चार्ल्स एल्बर्ट के नेतृत्व में उन्होने बडी वीरता से आस्ट्रिया का मुकाबला किया। पर वे परास्त हो गये और एल्बर्ट को सन्धि करने के लिये बाधित होना पडा।

रोम में क्रान्ति—इस बीच मे क्रान्ति की प्रवृत्ति इटली मे निरन्तर प्रबल होती जाती थी। इसी प्रवृत्ति से फ्लोरेन्स में रिपब्लिक की स्थापना हुई। खास रोम में भी विद्रोह हुआ। पोप का शासनाधिकारी रोस्सी कतल कर दिया गया। पायस दशम भाग खडा हुआ। उसे नेपल्स के राजा के यहा शरण लेने के लिये बाधित होना पडा। १८४९ के फरवरी मास में रोम मे राष्ट्रीय महासभा बुलाई गई, और पोप के शासन का अन्त कर रिपब्लिक की

उद्घोषणा कर दी गई।

असफलता—उधर सार्डिनिया के राजा और आस्ट्रिया मे सन्धि देर तक कायम न रह सकी। मार्च, १८४९ मे फिर युद्ध आरम्भ हो गया। पर यह युद्ध देर तक जारी न रहा। पाच दिन मे ही इसका फैसला हो गया। तेईस मार्च के दिन नोवारा के रणक्षेत्र मे एल्वर्ट की बुरी तरह से पराजय हुई। उसने निराश होकर अपने लडके विक्टर एमेनुअल द्वितीय के पक्ष मे राजगद्दी का परित्याग कर दिया। भविष्य मे यही विक्टर एमेनुअल द्वितीय इटली की राष्ट्रीय एकता का सस्थापक वना। पर अव कुछ समय के लिये राष्ट्रीय एकता तथा स्वाधीनता के सब प्रयत्न असफल हो गये। विजयी आस्ट्रियन सेनाओ ने सम्पूर्ण इटली मे क्रान्ति का विनाश किया। मिलान, वेनिस, फ्लारेन्स तथा रोम मे जिन नवीन रिपब्लिकन राज्यो की स्थापना हुई थी, उन सब को नष्ट कर पुराने एकतन्त्र शासनो को स्थापित किया गया। रोम, टस्कनी और वेनिस मे पुराने शासनो का पुनरुद्धार हुआ। अनेक राज्यो के नवीन शासन-विधानो को नष्ट कर दिया गया। पर आस्ट्रिया की सम्पूर्ण शक्ति विक्टर एमेनुअल द्वितीय के राज्य से नवीन शासनविधान को नष्ट न कर सकी। सार्डिनिया और पीडमौन्ट के इस नये राजा ने नवीन शासन-विधान को कायम रखा। इस राजा ने न केवल नवीन शासन-विधान को नष्ट नही किया, पर साथ ही इटली भर के उदार विचारो के लोगो को अपने दरवार मे आश्रय भी प्रदान किया। सार्डीनिया का दरवार उदार तथा नवीन प्रवृत्तियो का एक महत्वपूर्ण आश्रयस्थान वन गया। इटालियन देशभक्त आशा करते थे, कि यही राजा उनके देश का उद्धार करेगा। निस्सन्देह, वे निराश नही हुए। किस प्रकार विक्टर एमेनुअल द्वितीय ने उनकी आशाओ को पूर्ण किया, इस पर हम आगे चलकर प्रकाश डालेगे।

क्या १८४८ की क्रान्ति इटली मे असफल हो गई थी? यदि ऊपर से देखा जाए, तो वह सफल नही हुई। पर यदि गम्भीर दृष्टि से विचार करे, तो उसने इटली की भावी राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये मार्ग तैयार कर दिया था, और यह कोई कम वात न थी।

८ अन्य देशो पर क्राति का प्रभाव

इगलैण्ड में चार्टिस्ट आन्दोलन—यूरोप का शायद ही कोई देश ऐसा रहा हो, जिस पर १८४८ की क्रान्ति की लहर ने प्रभाव न डाला हो। इगलैण्ड मे शासन-सुधार के लिये जो आन्दोलन चल रहा था, १८४८ में उसे वहुत वल मिला। १८३२ मे जो सुधार किये गये थे, उनसे केवल मध्य-श्रेणि के लोगो को ही अधिकार प्राप्त हुए थे। सर्व-साधारण जनता—किसानो और मजदूरो को उनसे कोई भी लाभ नही पहुँचा था। इसलिये १८४८ से पूर्व ही वहा और अधिक शासन-सुधार के लिये आन्दोलन प्रवल हो रहा था। १८३८ में 'चार्टिस्ट आन्दोलन' के नाम से एक नवीन आन्दोलन इगलैण्ड मे प्रारम्भ हुआ था। इस समय फ्रान्सिस प्लेस ने सुप्रसिद्ध मेग्ना चार्टा के अनुकरण मे एक नवीन चार्टर तैयार किया। इस चार्टर में मुख्यरूप से निम्नलिखित वातो की माग की गई थी—वोट देने का अधिकार सव वालिग पुरुषो को दिया जाय। वोट गुप्त पर्चियो (वेलट) द्वारा दिये जावें। पार्लियामेंट के चुनाव के लिये देश को ऐसे निर्वाचक-मण्डलो मे

विभक्त किया जावे, जिनमे एक-एक प्रतिनिधि निर्वाचित हो। 'हाउस आफ कामन्स' का सदस्य बनने के लिये सम्पत्ति की शर्त उडा दी जाय, और सदस्यो को निश्चित वेतन दिया जाय। १८३९ मे श्रमी लोगो की एक पार्लियामेन्ट लण्डन मे हुई। इसमे भी एक प्रार्थनापत्र तैयार किया गया, जिस पर बारह लाख लोगो के हस्ताक्षर कराये गये। इस प्रार्थनापत्र मे देश की पार्लियामेन्ट मे प्रार्थना की गई थी, कि चार्टर की मागो को स्वीकृत किया जावे। प्रार्थनापत्र को स्वीकृत करने का प्रश्न तो दूर रहा, हाउस आफ कामन्स ने उस पर विचार तक नही किया। परिणाम यह हुआ कि सार्वजनिक सभाओ और अखबारो द्वारा चार्टर का आन्दोलन निरन्तर जारी रहा। १८४२ मे एक अन्य प्रार्थनापत्र तैयार हुआ, जिस पर तीस लाख आदमियो के हस्ताक्षर कराये गये थे। पर इससे भी कोई लाभ नही हुआ।

विशाल प्रार्थनापत्र—यह स्थिति थी, जब १८४८ मे फ्रास मे राज्यक्रान्ति की नवीन लहर प्रारम्भ हुई। इगलैण्ड मे चार्टिस्ट लोग पहले से ही शासन-सुधार के लिये आन्दोलन कर रहे थे। उनका सगठन बहुत दृढ था। सब मिलाकर ५०० के लगभग चार्टिस्ट सोसा-यटिया इगलैण्ड मे स्थापित थी। इनके सदस्यो की सख्या भी पचास हजार के लगभग थी। यूरोप की क्रान्तियो का समाचार सुनकर इनके उत्साह का ठिकाना न रहा। ये लोग भी कुछ कर दिखाने को उतावले हो उठे। सर्वत्र बडी-बडी सभाओ की आयोजना की गई। आन्दोलन ने अत्यन्त प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। १० एप्रिल, १८४८ को लन्डन मे एक बहुत बडी सभा बुलाई गई। इसमे पाच लाख के लगभग आदमी सम्मिलित हुए। एक तीसरा प्रार्थनापत्र तैयार किया गया, और उसपर साठ लाख आदमियो के हस्ताक्षर कराये गये। इतने लोगो के हस्ताक्षर करा सकना सुगम बात न थी। सारे देश मे प्रचण्ड आन्दो-लन हो रहा था। लोग समझते थे, पता नही क्या होनेवाला है। एक बहुत बडे जुलूस की योजना बनायी गई। पर उस समय के प्रधानमन्त्री वेलिङ्गटन के ड्यूक ने उनकी अनुमति नही दी। सरकार की ओर से अतिरिक्त पुलिस सगठित की गई। नये सिपाही भर्ती किये गये। इन सिपाहियो की सख्या एक लाख सत्तर हजार थी। सरकार की इस भारी ताकत का मुकाबला कर सकना चार्टिस्ट लोगो के लिये कठिन था। वे घबरा गये। जुलूस नही निकल सका। पर तीसरा प्रार्थनापत्र पार्लियामेन्ट के सम्मुख पेश किया गया। यह प्रार्थना-पत्र साठ लाख दस्तखतो के कारण इतना बडा हो गया था, कि इसे ढोने के लिये छ गाडियो की जरूरत हुई थी।

असफलता—विवेचना के बाद मालूम हुआ कि प्रार्थनापत्र मे बहुत से हस्ताक्षर जाली थे। इससे चार्टिस्ट लोग बहुत बदनाम हो गये। उनका आन्दोलन मन्द पड गया। चार्टिस्ट आन्दोलन एक बुलबुले की तरह उठा था, और बुलबुले की तरह ही वह फट भी गया। पर इसमें सन्देह नही, कि १८४८ मे इगलैण्ड मे भी क्रान्ति का भारी तूफान उठ खडा हुआ था। यद्यपि सरकार के मजबूत हाथो ने उसे शान्त कर दिया, पर चार्टिस्ट लोगो की जो मागे थी, उनका पूर्ण होना अवश्यम्भावी था। कुछ वर्षो बाद ही वे सब क्रिया मे परिणत हो गईं। इगलैंड के शासन-विधान के विकास पर हम एक पृथक् अध्याय में विशेष रूप से प्रकाश डालेंगे।

हालैण्ड मे शासन सुधार—क्रान्ति की लहर ने हालैण्ड पर भी प्रभाव डाला। जनता की माग थी, कि शासन सुधार किया जावे। हालैण्ड के राजा विलियम द्वितीय को लोकमत के सम्मुख सिर झुकाने के लिये बाधित होना पडा। एक कमीशन नियत किया गया, जिसे शासन मे सुधार करने का कार्य सुपुर्द किया गया। इस कमीशन ने जो नवीन शासन-विधान तैयार किया, उसने हालैण्ड के एकतन्त्र शासन को वैध राजसत्ता के रूप मे परिवर्तित कर दिया। इस नये शासन-विधान को जनता से स्वीकृत कराने के लिये राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन बुलाया गया। महासभा ने नये शासन-विधान को स्वीकृत कर लिया, और नवम्बर, १८४८ मे वह क्रिया मे भी परिणत कर दिया गया। नवीन शासन-विधान मे मन्त्रिमण्डल को राष्ट्रप्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया, धार्मिक विश्वासो और पूजा-पाठ की सब लोगो को स्वतन्त्रता दी गई, और जनता के जन्मसिद्ध अधिकार उद्घोषित किये गये। परिणाम यह हुआ, कि हालैण्ड का शासन भी एक लोकतन्त्र वैध राजसत्ता के रूप मे परिवर्तित हो गया।

स्विट्जरलैण्ड—हालैण्ड की तरह स्विट्जरलैण्ड के शासन-विधान में भी १८४८ मे अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। इससे पूर्व वहा पर जो शासन-विधान विद्यमान था, वह १८१५ मे बना था। स्विट्जरलैण्ड के विविध प्रदेशो (कैन्टनो) मे शासनसूत्र कुछ अमीर लोगो के हाथ मे था। जनता इस दशा से असन्तुष्ट थी। उदार विचारो के लोग उसको परिवर्तित करने के लिये आन्दोलन कर रहे थे। यही नही, वहा धार्मिक प्रश्न भी बडा विकट था। रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट लोगो मे सख्त विरोध था। लूसर्न, उरी और जुग—इन तीन कैन्टनो ने, जिनमें कि रोमन कैथोलिक लोगो की बहुसख्या थी, शेष देश से पृथक् होकर अपने लिये एक कैथोलिक सघ का सगठन कर लिया था। उदार और राष्ट्रीय विचारो के लोग इससे बहुत चिन्तित थे। आखिर, कैथोलिक सघ को युद्ध द्वारा परास्त किया गया, और १८४८ में समस्त देश को नये सिरे से सगठित कर नवीन शासन-विधान की स्थापना की गई। स्विट्जरलैण्ड मे जो शासन-विधान वर्तमान समय मे प्रचलित है, उसका प्रधान ढाचा १८४८ के क्रान्तिकारी साल मे ही तैयार किया गया था।

डेन्मार्क—१८४८ की क्रान्ति की लहर ने डेन्मार्क पर भी प्रभाव डाला। वहा पर भी शासन-सुधार किये गये, और राजसत्ता को अनेक अशो मे लोकमत के अधीन कर दिया गया।

अन्य देशो पर प्रभाव—स्पेन, पोलैण्ड और आयरलैण्ड भी क्रान्ति की लहर से अछूते नही बचे। पोलैण्ड मे अनेक स्थानो पर विद्रोह हुए, पर ये विद्रोह मामूली किस्म के थे। उनसे लोगो की स्थिति पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा। आयरलैण्ड मे भी विद्रोह हुआ, पर इगलिश लोगो ने उसे बडी सुगमता से शान्त कर दिया।

इतना ही नही, क्रान्ति की लहर ने अटलाटिक सागर को पार कर अमेरिका पर भी असर डाला। वहा दास-प्रथा को अन्त करने के लिए जो आन्दोलन चल रहा था, क्रान्ति की लहर से उसे बहुत बल मिला।

१८४८ में क्रान्ति की जो लहर उठी थी, वह सम्पूर्ण यूरोप पर एक प्रचण्ड तूफान के रूप में व्याप्त हो गई थी। सारा यूरोप उससे एक भयकर भूकम्प के समान हिल गया

था। शक्तिशाली सम्राटों के राजसिंहासन डावाडोल हो गये थे, और सदियों के दृढ़मूल विशेषाधिकारों और विषमताओं को उसमें भारी आघात पहुँचा था। परन्तु फिर भी प्राय सभी देशों में क्रान्ति असफल रही। पुराने जमाने की सस्थाएँ और स्वेच्छाचारी राजशक्ति क्रान्ति को कुचलने में समर्थ रही। उस समय के लोग इससे क्या परिणाम निकालते थे ? वे समझते थे, कुछ बिगड़े दिमाग हमेशा व्यवस्था और शान्ति को भग करने लिए उत्सुक रहते हैं। दुनिया तो हमेशा से ऐसी ही चली आ रही है, कुछ लोगो को शासन करना है, दूसरो को शासन में रहना है। बड़े लोग हमेशा बड़े ही रहेगे। गरीब मजदूर उनका मुकाबला कैसे कर सकते है ? पाचो उंगलिया क्या कभी बराबर हो सकती है ? निस्सन्देह, १८४८ की घटनाओं ने अन्ततोगत्वा इन विचारों को सत्य सिद्ध कर दिया था। परन्तु वास्तविकता क्या थी ? अब एक सदी गुजर जाने के बाद हम क्या देखते है ? १८४८ के क्रान्तिकारी जो कुछ चाहते थे, वह सब कुछ तो क्रिया मे परिणत हो ही चुका है, पर दुनिया अब उससे भी बहुत आगे बढ गई है। १८४८ के क्रान्तिकारी विचार आज अनेक अशो मे पिछडे हुए लोगो के खयाल प्रतीत होते है। मानव उन्नति का यही क्रम है। १८४८ की क्रान्ति की लहर ने असफल होकर भी लोगो मे एक नवीन दृष्टि, नवीन कल्पना और नवीन भावना को उत्पन्न कर दिया था। क्रान्ति का उद्दिष्ट स्थान अभी बहुत दूर था। वहा एक दौड मे नही पहुचा जा सकता था। पर उसके लिए हाथ-पैर हिलाना तो अनिवार्य ही था। १८४८ मे एक बार जनता ने पूरी कोशिश के साथ उस ओर भागने की कोशिश की। पर उसके हाथ-पैर पुराने जमाने की जजीरो में जकडे हुए थे। १७९३ और १८३० की तरह इस बार भी जनता की सम्पूर्ण शक्ति इन जजीरो को तोडने मे ही खर्च हो गई। पर क्या इन जजीरो को तोड फेंकना और जरा देर के लिए हाथ-पैरो को खुले तौर पर हिला-डुला सकना साधारण बात थी ? नही, क्रान्ति की यह कोई मामूली सफलता नहीं थी।

सतरहवा अध्याय

नैपोलियन तृतीय का शासन

१ सम्राट् नैपोलियन तृतीय का अभ्युदय

लुई नैपोलियन का प्रारम्भिक जीवन—१८४८ की राज्यक्रान्ति के बाद लुई नैपोलियन बोनापार्ट किस प्रकार फ्रेंच रिपब्लिक का राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। लुई नैपोलियन का जन्म सन् १८०८ मे टुइलरी के राजप्रासाद मे हुआ था। उसका शैशवकाल बहुत ही सुख और वैभव के साथ व्यतीत हुआ था। उस समय फ्रास का भाग्यविधाता नैपोलियन बोनापार्ट था। बोनापार्ट परिवार के सब व्यक्ति ऊँचे से ऊँचे राजकीय सम्मान प्राप्त कर रहे थे। लुई नैपोलियन का लालन-पालन भी राजकुमारो के समान हुआ। पर उसके सुख-वैभव के ये दिन देर तक न रहे। वाटर्ल् के रणक्षेत्र मे परास्त हो जाने के कारण जब नैपोलियन का पतन हुआ, और पुराने बूर्बो राजवश के आधिपत्य का पुनरुद्धार किया गया—तब बोनापार्ट परिवार के व्यक्ति अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त हो गये। १८१६ मे जब लुई नैपोलियन की आयु केवल आठ वर्ष की थी, उसे फ्रास छोडकर विदेशो में चले जाना पडा। उसके यौवन का अधिकाश भाग स्विट्जरलैण्ड और जर्मनी में व्यतीत हुआ। अभी नैपोलियन बोनापार्ट का पुत्र "रोम का बादशाह" जीवित था। नैपोलियन के सम्पूर्ण भक्त उसी को अपना नेता मानते थे। 'नैपोलियन' इस नाम में एक अद्भुत जादू था। बहुत से लोग इस प्रकार के थे, जो फ्रास में फिर से नैपोलियन का आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। वे सब "रोम के बादशाह" को ही अपना नेता मानते थे। पर १८३२ मे जब नैपोलियन द्वितीय या "रोम के बादशाह" की मृत्यु हो गई, तो नैपोलियन-दल का नेता लुई नैपोलियन बना। १८३२ के बाद सोलह वर्ष तक वह निरन्तर फ्रास का भाग्यविधाता बनने के लिये षड्यन्त्र करता रहा। वह बडा उत्तम लेखक था। अपने लेखो मे वह सदा यही प्रदर्शित करता था, कि मैं क्रान्ति का प्रबल पक्षपाती हूँ। नैपोलियन के नाम मे एक अद्भुत जादू तो था ही, उसके अतिरिक्त लुई नैपोलियन के क्रान्तिकारी विचारो ने उसे और भी अधिक लोकप्रिय बना दिया था। १८४० में नैपोलियन प्रथम के भौतिक अवशेष सेन्ट हेलेना से पेरिस लाये गये। उस समय सम्पूर्ण फ्रास मे असाधारण रूप से उत्साह तथा जोश का सचार हुआ। जनता वीरो की हमेशा पूजा करती है। नैपोलियन के गौरवमय कृत्यो को फ्रेंच लोग कैसे भुला सकते थे। उन्होंने अपने राष्ट्रीय वीर की अस्थियो के प्रति असाधारण सम्मान और श्रद्धा का प्रदर्शन किया। इस दशा में लुई नैपोलियन का महत्व और भी अधिक बढ गया। प्रथम नैपोलियन की महत्ता से उसके भतीजे ने भी लाभ उठाया। लुई नैपोलियन

भी वीरो की तरह पुजने लगा। परिणाम यह हुआ कि अपने राज्य-शासन की रक्षा के लिये उस समय के राजा लुई फिलिप ने यह आवश्यक समझा, कि लुई नैपोलियन को जेल मे डाल दिया जाए। कैद होने से लुई नैपोलियन की लोकप्रियता और भी अधिक बढ गई। लोग उसे शहीद समझने लगे। १८४६ मे वेश बदल कर वह जेल मे भाग निकला और इगलैण्ड जा पहुचा।

द्वितीय फ्रेंच रिपब्लिक का राष्ट्रपति— इङ्गलण्ड जाकर वह उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करता रहा। १८४८ मे जब फ्रास मे राज्यक्राति हुई, तो लुई नैपोलियन अपने देश वापस लौट आया और क्रातिकारियो मे सम्मिलित हो गया। राष्ट्रीय महासभा मे वह चार स्थानो से प्रतिनिधि चुना गया था, यह उसकी लोकप्रियता का अच्छा प्रमाण है। राष्ट्रपति पद के लिये वह भी उम्मीदवार खडा हुआ। नैपोलियन दल तो उसका समर्थक था ही, रिपब्लिकन दल के बहुत से लोग भी उसी के पक्ष मे थे। परिणाम यह हुआ, कि निर्वाचन मे उसे असाधारण सफलता मिली। अपने सुप्रसिद्ध चचा नैपोलियन बोनापार्ट की तरह वह भी फ्रेच रिपब्लिक का राष्ट्रपति बन गया।

२ दिसम्बर, १८५१ का षड्यन्त्र—राष्ट्रपति बनकर नैपोलियन तृतीय ने अपनी वैयक्तिक स्थिति को सुदृढ बनाने का यत्न किया। इसके लिये आवश्यक था, विविध राजनीतिक दलो को सन्तुष्ट किया जाए। फ्रास की अधिकाश जनता रोमन कैथोलिक धर्म को माननेवाली थी। इसलिये जब रोम मे पोप के विरुद्ध जनता ने विद्रोह किया, तो लुई नैपोलियन ने पोप की सहायता की। इसके अतिरिक्त, कैथोलिक लोगो को सन्तुष्ट करने के लिये ही उसने शिक्षा का कार्य भी पादरियो के सुपुर्द कर दिया। उस समय फ्रास मे मजदूरो का बहुत जोर हो रहा था, अत उन्हे सन्तुष्ट किये विना भी कार्य नही चल सकता था। मजदूरो को खुश करने के लिये लुई नैपोलियन ने अनेक नये कानूनो का निर्माण किया। वृद्धावस्था मे मजदूरो के लिये पेन्शिन तक की व्यवस्था की गई। मध्य श्रेणी के लोगो को सन्तुष्ट करने के लिये व्यापार और व्यवसाय के सरक्षण को दृष्टि मे रखकर अनेक नई व्यवस्थाएँ की गई। इस प्रकार, अपनी स्थिति को मजबूत करके लुई नैपोलियन ने शासन-विधान मे ऐसे परिवर्तन कराने का उद्योग प्रारम्भ किया, जिनसे कि वह दुवारा फिर राष्ट्रपति निर्वाचित हो सके। परन्तु राष्ट्रप्रतिनिधि सभा ने इसे स्वीकृत नही किया। जब नैपोलियन ने देखा, कि अन्य कोई उपाय नही रहा है, तब उसने कानून का उल्लघन कर षड्यन्त्र करने का निश्चय किया। २ दिसम्बर, १८५१ के दिन प्रात काल जब लोग सोकर उठे, तो उन्होने देखा कि पेरिस की सब गलियो मे दीवारो पर वडे-वडे इश्तिहार लगे हुए है, जिनमें कि नैपोलियन तृतीय ने उद्घोषणा की है, कि राष्ट्र-प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त किया जाता है, और भविष्य मे वोट देने का अधिकार सब बालिग पुरुषो को दे दिया जायगा। राष्ट्रप्रतिनिधि सभा ने एक कानून द्वारा वोट के अधिकार को बहुत सीमित कर दिया था। जो लोग टैक्स देते थे, वे ही वोट का हक रखते थे। इस कानून से सर्वसाधारण जनता मे बहुत असन्तोष था। नैपोलियन ने इसी असतोष से लाभ उठाया, और सब लोगो को वोट का अधिकार देकर जनता की सहानुभूति को प्राप्त कर लिया। सार्वजनिक मताधिकार की उद्घोषणा के अनन्तर नैपोलियन ने जनता से य

आवेदन किया, कि नवीन शासन-विधान को तैयार करने का कार्य मेरे सुपुर्द कर दिया जावे।

इस इश्तिहार के साथ ही गिरफ्तारियों का सिलसिला भी प्रारम्भ कर दिया गया। सत्ताईस हजार के लगभग रिपब्लिकन नेताओं को गिरफ्तार किया गया, या देशनिकाला दे दिया गया। इस कार्यवाही से जब पेरिस में विद्रोह हुआ, तो सेना की सहायता ली गई। विद्रोहियों पर निर्दयता से गोलाबारी की गई। १५० से भी अधिक आदमी गोली से उडा दिये गये। नैपोलियन तृतीय का षड्यन्त्र सफल हो गया। सेना पहिले से ही उसके काबू में थी। कोई आदमी उसका विरोध नहीं कर सका। जिसने उसके विरुद्ध आवाज उठाई, उसे कुचल दिया गया।

इसके बाद नैपोलियन ने जनता के सम्मुख निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया—"फ्रेंच जनता की इच्छा है कि लुई नैपोलियन बोनापार्ट का शासन कायम रहे। अतः जनता उन्हें अधिकार देती है कि २ दिसम्बर, १८५१ की उद्घोषणा के आधार पर एक नवीन शासन-विधान का निर्माण करे।" इक्कीस वर्ष से अधिक आयु के प्रत्येक फ्रेंच पुरुष को इस प्रस्ताव के पक्ष या विपक्ष में वोट देने का अधिकार दिया गया। ७७ लाख ४० हजार वोट प्रस्ताव के पक्ष में आये, और ६ लाख ४६ हजार विरोध में। इस वोट का परिणाम यह हुआ, कि लुई नैपोलियन बोनापार्ट फ्रांस का एकमात्र भाग्यविधाता बन गया।

नवीन शासन-विधान का निर्माण—जनवरी, १८५२ में नवीन शासन-विधान तैयार हो गया। इसके अनुसार नैपोलियन को चार वर्ष के स्थान पर दस वर्ष के लिये राष्ट्रपति नियत किया गया। उसे यह भी अधिकार दिया गया कि वह अपना मन्त्रिमन्डल स्वयं नियत करे। व्यवस्थापन विभाग में तीन सभाएँ रखी गईं—(१) राज्य-परिषद्—इसके सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाए, और यह कानूनों का मसविदा तैयार करने का काम करे। (२) व्यवस्थापिका सभा—इसके सदस्यों की संख्या २५० हो, और इन्हें निर्वाचित करने के लिये सम्पूर्ण बालिग पुरुषों को वोट का अधिकार प्राप्त हो। यह सभा प्रस्तावित कानूनों पर बहस करे, और उन पर अपना मत निश्चित करे। (३) सीनेट—इसके सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा जन्म भर के लिये की जाए, और इसका कार्य इस बात का खयाल रखना हो, कि कोई कानून शासन-विधान के विरुद्ध स्वीकृति न हो सके। इस नये शासन विधान द्वारा वास्तविक राज्यशक्ति राष्ट्रपति के हाथों में दे दी गई थी। तीन सभाओं में से दो के सदस्यों की नियुक्ति उसी के अधीन थी। अब लुई नैपोलियन को अपनी मनमानी करने का पूर्ण अवसर था। दस साल के लिये उसकी गद्दी सुरक्षित थी। मन्त्रियों को उसने नियत करना था, और अधिकांश व्यवस्थापक भी उसने ही नियत करने थे। अब वह फ्रांस का एकमात्र भाग्य-विधाता बन गया था।

सम्राट् नैपोलियन तृतीय—परन्तु नैपोलियन तृतीय इतने से ही सन्तुष्ट नहीं था। अभी एक कसर बाकी थी। अभी वह सम्राट् नहीं बना था। उसकी माता बचपन से ही उसे कहा करती थी—जिस नाम के साथ बोनापार्ट लगा होता है, वह संसार में कोई असाधारण काम कर दिखाने के लिए उत्पन्न होता है। लुई नैपोलियन अपने चचा का अनुकरण करने के लिए उत्सुक था। वह राष्ट्रपति न रहकर सम्राट् बनना चाहता था। वास्तविक शासन शक्ति उसके हाथ में आ ही चुकी थी। अब केवल एक कदम और शेष था।

उसके लिए भी उपयुक्त अवसर प्राप्त होने मे देर नही लगी।

१८५२ मे शासन-सूत्र को अपने हाथो मे लेकर लुई नैपोलियन ने सम्पूर्ण फ्रास की यात्रा की। सब जगह उसका बडी धूमधाम के साथ स्वागत हुआ। अनेक समाचार-पत्रो के सवाददाता उसके साथ थे। यात्रा के समाचार बडे जोर शोर से अखबारो में छप रहे थे। उसके पक्षपाती सवाददाता बडे विस्तार से इन सवादो को अखबारो मे प्रकाशित करवा रहे थे, कि किस प्रकार स्थान-स्थान पर लुई नैपोलियन का स्वागत हो रहा है, किस प्रकार जनता 'सम्राट् की जय' के नारो के साथ उसका अभिनन्दन कर रही है। वस्तुत, 'नैपोलियन बोनापार्ट' इस नाम मे ही कोई ऐसा जादू था, जिससे कि वह जहा कही भी पहुँचता था, लोग उसके दर्शनो के लिये एकत्रित हो जाते थे। असली नैपोलियन अब नही था, पर उसकी छाया मौजूद थी। इस यात्रा के बाद १ दिसम्बर, १८५२ को नैपोलियन ने सीनेट के सम्मुख भाषण करते हुए कहा, कि जनता की वास्तविक इच्छा यह है कि मुझे सम्राट् नियुक्त किया जावे। सीनेट मे यह प्रस्ताव स्वीकृत होने मे देर नही लगी। इसके बाद सम्पूर्ण फ्रेंच जनता की सम्मति इस प्रस्ताव पर ली गई। अस्सी लाख से अधिक वोट प्रस्ताव के पक्ष मे आये। नैपोलियन की हार्दिक आकाक्षा पूर्ण हो गई। फ्रास मे रिपब्लिक के स्थान पर एक बार फिर राजसत्ता की स्थापना हो गई।

२. सम्राट् नैपोलियन का शासन

शासन विषयक सघर्ष—नैपोलियन तृतीय ने १८५२ से १८७० तक राज्य किया। वह एक षड्यन्त्र द्वारा सम्राट् बना था। पर इस से जनता में विशेष असन्तोष नही हुआ। देहात के लोग इससे सन्तुष्ट थे। राजसत्ता के प्रति भक्ति की भावना अभी उनमें विद्यमान थी। नैपोलियन के कुल के प्रति भी उनमे आदर था। मध्य श्रेणि के व्यवसायी व व्यापारी लोग भी नैपोलियन के पक्षपाती थे। साम्यवाद मजदूर-वर्ग मे जिस ढग से जोर पकड रहा था, मध्य श्रेणि के पूजीपति लोग उससे बहुत चिन्तित थे। उन्हे अनुभव होता था, कि लोकतन्त्र रिपब्लिक द्वारा साम्यवाद की प्रवृत्ति को बल मिलता है। अत उनका अपना हित इसी मे है, कि राजसत्ता कायम रहे, और नैपोलियन तृतीय का अबाधित शासन स्थिर हो। रोमन कैथोलिक जनता उसके पक्ष मे थी, क्योकि वह फ्रास के बाहर भी कैथोलिक चर्च की सहायता के लिये सदा उद्यत रहता था। नैपोलियन चाहता था, कि फ्रास की राजगद्दी उसके अपने वश मे स्थिर रहे। इसीलिये उसने १८५३ मे स्पेन की एक कुलीन कुमारी यूजेनी के साथ विवाह किया। इससे उसे एक सन्तान भी हुई, जो इतिहास मे 'प्रिंस इम्पीरियल' के नाम से प्रसिद्ध है। नैपोलियन तृतीय और साम्राज्ञी यूजेनी इस बात के लिये उत्सुक थे, कि यह प्रिंस इम्पीरियल उनके बाद फ्रास का सम्राट् बने।

पर नैपोलियन तृतीय के विरोधी भी कम न थे। बूर्बो और ओर्लियन वशो के पक्षपातियो का अभी फ्रास में अभाव नही था। बूर्बो वश का कुमार काउंट द शाम्बोर इस समय आस्ट्रिया में निवास कर रहा था, और वहा रहते हुए अपने राजकुल के अतीत वैभव का पुनरुद्धार करने के प्रयत्न मे था। पर फ्रास मे बूर्बो वश के पक्षपातियो की सख्या

अधिक नही थी। बहुसख्यक कुलीन लोग लुई फिलिप के ओर्लियन वश का फिर से उद्धार करनेके पक्ष मे थे। पर नैपोलियन तृतीय के सबमे प्रबल विरोधी रिपब्लिकन दल के लोग थे। षड्यन्त्र द्वारा नैपोलियन सम्राट् तो बन गया था, पर रिपब्लिकन लोग उसका विरोध करने के लिये तुले हुए थे। पेरिस और अन्य बडे नगरो मे इस दल के लाखो अनुयायी थे। इस युग के अनेक फ्रेंच साहित्यिक, विचारक और ऐतिहासिक भी रिपब्लिक के पक्षपाती थे। इनमें थीयर्स, लुई ब्लां, विक्टर ह्यूगो और ज्यार्ज सां के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। ये लोग अपने साहित्य द्वारा नैपोलियन का विरोध और रिपब्लिक का समर्थन करने मे तत्पर थे।

सम्राट् बनकर जो नया शासन-विधान नैपोलियन ने जारी किया, उसके अनुसार पहला चुनाव सन् १८५७ मे हुआ। इसमे रिपब्लिकन दल के केवल पाच प्रतिनिधि व्यवस्थापिका सभा मे निर्वाचित हुए। इनका नेता ओलिविए था। ये पाच सदस्य व्यवस्थापिका सभा मे नैपोलियन का विरोध करने के लिये प्रयत्नशील थे।

इसमे सन्देह नही, कि नैपोलियन तृतीय के शासनकाल मे फ्रास मे शान्ति और समृद्धि कायम रही। उसके आन्तरिक शासन पर हम इसी प्रकरण में आगे प्रकाश डालेंगे। पर विदेशी नीति मे नैपोलियन को अधिक सफलता नही हुई। उसने फ्रास को अनेक ऐसे युद्धो में फसा दिया, जिनके कारण जनता मे बहुत असन्तोष हुआ। विदेशी युद्धो में फ्रास के धन और जन की बहुत हानि हुई, और राष्ट्रीय दृष्टि से भी फ्रास को उनसे कोई विशेष लाभ नही हुआ। नैपोलियन की इस विदेशी नीति और युद्धो पर हम आगे चलकर प्रकाश डालेंगे। यहा इतना निर्देश कर देना पर्याप्त है, कि इन युद्धो के कारण रिपब्लिकन दल का जोर बढने लगा, और १८६३ के निर्वाचन मे इस दल के सदस्यो की सख्या ५ से बढकर ३५ हो गई। इस निर्वाचन में नैपोलियन के विरोधियो को बीस लाख से भी अधिक वोट प्राप्त हुए थे। इस समय व्यवस्थापिका सभा मे विरोधी दल का नेता थीयर्स था। वह चाहता था, कि फ्रास मे इगलैण्ड के समान वैध राजसत्ता की स्थापना हो, नागरिको के अधिकार सुरक्षित रहे, और मन्त्रिमण्डल सम्राट् के प्रति उत्तरदायी न होकर व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी हो।

फ्रास के रिपब्लिकन दल और लोकतन्त्र के पक्षपाती अन्य दल शासन-सुधार के लिए आन्दोलन में तत्पर थे। नैपोलियन ने भरसक कोशिश की, कि ये दल सफल न हो। उसने प्रेस की स्वतन्त्रता पर अनेक बाधाएँ उपस्थित की। पर लोकतन्त्रकी भावना इससे दबी नही। १८६९ के निर्वाचन मे नैपोलियन के विरोधियो को और अधिक सफलता मिली। उन्हें तीस लाख से भी अधिक वोट मिले। इस दशा में नैपोलियन अधिक समय तक लोकमत की उपेक्षा नही कर सका। विवश होकर, १८७० में उसने शासन सम्बन्धी अनेक सुधार किये। इनके अनुसार यह व्यवस्था की गई कि मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी हो। ओलिविए को प्रधानमन्त्री के पद पर नियत किया गया। यह भी व्यवस्था की गई, कि राज्य की तीन सभाओ में से अन्यतम सीनेट की स्थिति वही बना दी जाए, जो इगलैण्ड में हाउस आफ लार्ड्स की थी। सीनेट के सदस्यो को मनोनीत करने का कार्य अब भी सम्राट् के हाथ मे ही रखा गया, पर अब सीनेट सब प्रस्तावो और कानूनो

पर उसी ढग से विचार कर सकती थी, जैसे कि व्यवस्थापिका सभा करती थी। ओलिविए के परामर्श से इन नये शासन-सुधारो पर भी लोकमत लिया गया। ७३,५८,००० वोट सुधारो के पक्ष मे आये, और १५,७१,००० विरोध मे। पेरिस ओर अन्य बडे नगरो के लोगो ने सुधार के विरोध मे वोट दिये थे। इन नगरो मे ऐसे राजनीतिक दलो का जोर था, जो लोकतन्त्र रिपब्लिक के अतिरिक्त किसी अन्य व्यवस्था मे सन्तुष्ट नही हो सकते थे।

पर फ्रास मे देर तक नये शासन सुधारो के अनुसार शासन नही हो सका। शीघ्र ही फ्रास म एक वार फिर राज्यक्रान्ति हो गई। नैपोलियन तृतीय को अपना राजसिंहासन छोडना पडा, और रिपब्लिक की स्थापना हुई।

आन्तरिक शासन—नैपोलियन तृतीय के शासन मे फ्रास की अच्छी उन्नति हुई। अनेक नये बैंक खुले। व्यापार और व्यवसाय वहुत बढे। रेल, सडक, नहर आदि के निर्माण मे वहुत से मजदूरो को कार्य मिला। जगलो के विकास के लिये विशेष उद्योग किया गया। वहुत से नये जगल लगवाये गये। नदियो पर वहुत से नये पुल बनवाये गये। अनेक सार्वजनिक इमारते खडी की गई। दलदलो को सुखाने की योजना बनायी गई। पेरिस को सुन्दर तथा समृद्ध बनाने के लिये अनेक उद्योग किये गये। अनेक पार्को और उद्यानो की सृष्टि की गई। कृषि की उन्नति के लिये विशेष रूप से प्रयत्न किया गया। कृषि-सम्बन्धी शिक्षा का प्रसार करने के लिये देहातो मे प्रारम्भिक कृषि विद्यालय स्थापित किये गये। अच्छे फल, अनाज और पशुओ के लिये विविध पारितोषिको की व्यवस्था की गई। लोगो मे खेती सम्बन्धी जानकारी को बढाने के लिये अनेक कृषि-सभाओ का सगठन किया गया। इन सब प्रयत्नो का परिणाम यह हुआ, कि खेती ने वहुत तरक्की की, जिसके कारण किसानो की हालत सुधरने लगी। उनके झोपडे मनुष्यो के रहने लायक अच्छे नये मकानो में परिवर्तित हो गये। इस युग में फ्रास कृषि के क्षेत्र मे कितना उन्नत था, इसका अनुमान इस वात से किया जा सकता है, कि १८६० मे वहा २३,५०,००,००० वुशल गेहूँ उत्पन्न हुआ था। इसी साल रूस मे २२,७०,००,००० वुशल और अमेरिका मे १८,२०,००,००० गेहूं पैदा हुआ था। फ्रास, रूस और अमेरिका के क्षेत्रफल को दृष्टि मे रखकर इस युग में फ्रास की कृषि सम्बन्धी समृद्धि को भलीभाति समझा जा सकता है।

मजदूरो की दशा सुधारने के लिये भी अनेक नियम वनाये गये। श्रमियो को अपने सघ वनाने का अधिकार है, यह वात कानून द्वारा स्वीकृत की गई। इससे पूर्व श्रमियो को अपने सघ तक वनाने का अधिकार प्राप्त न था। श्रमी लोग हडताल कर सकते है, यह अधिकार भी अव स्वीकृत किया गया। कारखानो मे काम करते हुए अगर कोई मजदूर घायल हो जाए या मर जाए, तो उसके परिवारवालो की सहायता की उत्तरदायिता राज्य ने अपने ऊपर ले ली। मजदूरो की भी सहोद्योग समितियो को सगठित करने का प्रयत्न किया गया।

व्यापार और व्यवसाय की उन्नति के लिये भी प्रयत्न किया गया। सडको और रेलवे की उन्नति ने व्यापार मे वहुत सहायता पहुँचाई। वैको के प्रसार से व्यवसाय के लिये पूजी प्राप्त कर सकना सुगम हो गया। डाकखानो का विस्तार किया गया। फ्रास से वाहर जाने वाले निर्यात माल की मात्रा अव एक अरव रुपये से भी ऊपर पहुँच गई। पेरिस के व्यापारी

इस काल को 'व्यापार का सुवर्णीय युग' के नाम से पुकारते थे। यह कहना तो कठिन है, कि इस उन्नति का श्रेय नैपोलियन तृतीय को ही दिया जाना चाहिये। पर इसमें सन्देह नही, कि उसके शासन मे फ्रास मे जो शान्ति और व्यवस्था विद्यमान थी, उसने इस आर्थिक उन्नति और समृद्धि मे बहुत सहायता पहुँचाई। अठारहवी सदी मे जिस व्यावसायिक क्रांति का इगलैण्ड मे प्रारम्भ हुआ था, उन्नीसवी सदी के शुरु मे वह फ्रास मे भी प्रवेश कर गई थी। उसके कारण अब फ्रास के व्यवसायी और व्यापारी आर्थिक उन्नति मे तत्पर थे। नैपोलियन तृतीय का व्यवस्थित शासन उनके प्रयत्न मे सहायक अवश्य था।

यद्यपि फ्रास आर्थिक दृष्टि से उन्नति कर रहा था, पर राजनीतिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से वह बहुत पीछे रह गया था। लोगो को लिखने, बोलने और मुद्रण की स्वतन्त्रता नही थी। अखबारो पर कडी निगाह रखी जाती थी। विश्वविद्यालय के अध्यापको को नैपोलियन के प्रति भक्ति की शपथ लेनी पडती थी। इतिहास और दर्शनशास्त्र का अध्ययन नैपोलियन को पसन्द नही था। अनेक विश्वविद्यालयो मे इनका अध्ययन ही बन्द कर दिया गया था। अध्यापको को आज्ञा दी गई थी, कि वे अपनी दाढी को मुडा कर रखे, ताकि उनकी "शकलो से भी अराजकता का कोई निशान प्रकट न हो सके।" गुप्तचरो की कोई सीमा नही रही थी। लोगो का कोई भी कार्य गुप्तचरो की आख से नही बच पाता था। सरकार और सम्राट् की आलोचना करना भारी अपराध था। दो हजार से अधिक लोगो को केवल इसी अपराध मे कैद किया गया था, क्योकि उन्होने सरकार की आलोचना की थी।

इसमे सन्देह नही, कि नैपोलियन ततीय कुशल और बुद्धिमान् शासक था। अपनी नीति-कुशलता और बुद्धिमत्ता से वह पर्याप्त सफलता के साथ शासन करने मे समर्थ हुआ। उसके पतन के प्रधान कारण वे वैदेशिक युद्ध थे, जिनका हम अभी उल्लेख करेंगे।

३ साम्राज्य विस्तार

फ्रास मे जिस ढग से व्यवसायिक उन्नति इस युग मे हो रही थी, उसका निदर्शन ऊपर किया जा चुका है। फ्रेंच पूजीपति अनुभव करते थे, कि उनके लिये यह आवश्यक है, कि फ्रास के भी अपने उपनिवेश हो, उनका भी अपना साम्राज्य हो, जहा से फ्रेंच व्यवसायी कच्चा माल सस्ते दाम पर प्राप्त कर सके, और जहा फ्रास का तैयार माल निश्चिन्तता के साथ बिक सके। साम्राज्यवाद के प्रथम सघर्ष मे फ्रास ब्रिटेन द्वारा परास्त हो चुका था। भारत के साम्राज्यविस्तार के प्रयत्न मे फ्रेच लोगो के मुकाबले मे इगलिश लोग सफल हुए थे। उत्तरी अमेरिका मे कनाडा भी फ्रास के हाथ से निकलकर अग्रेजो के हाथ मे चला गया था। पर फ्रेच लोग इससे निराश नही हुए। १८३० मे उन्होने अल्जीरिया पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया था। अटलाण्टिक महासागर मे स्थित न्यू कैलिडोनिया भी लगभग इसी समय फ्रास के अधिकार मे आ गया था। १८५८ में फ्रास ने पूर्वी एशिया मे कोचीन-चायना और अनाम पर अपना अधिकार स्थापित किया। १८६० मे चीन की राजसत्ता की निर्बलता से लाभ उठाकर अन्य यूरोपियन देशो के समान फ्रास

ने भी चीन के साथ व्यापार के लिये अनेक सुविधाए प्राप्त कर ली, और समुद्रतट के साथ के अच्छे बडे चीनी प्रदेश पर व्यापारिक आधिपत्य कायम कर लिया। १८६३ में कम्बोडिया का सुविस्तृत प्रदेश फ्रास के सरक्षण मे आ गया। अफ्रीका और एशियामे यूरोप के विविध देश किस ढग से अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहे थे, इस सम्बन्ध में हम एक पृथक् अध्याय मे अधिक विस्तार के साथ लिखेगे। पर यहा यह बता देना आवश्यक है, कि नैपोलियन तृतीय के शासनकाल मे ही फ्रास ने कम्बोडिया, कोचीन-चायना, अनाम आदि मे अपने प्रभुत्व की स्थापना की थी।

मैक्सिको पर प्रभुत्त्व स्थापित करने का असफल प्रयत्न—यह हम पहले लिख चुके है, कि शुरू मे मैक्सिको स्पेन के साम्राज्य के अन्तर्गत था। १८२३ ई० मे वह स्पेन की अधीनता से स्वतन्त्र हुआ था, और वहा लोकतन्त्र रिपब्लिक की स्थापना की गई थी। पर मेक्सिको के लोग अपने देश मे सुव्यवस्थित शासन स्थापित करने मे असफल रहे थे। वहा की सरकार अनेक विदेशी पूजीपतियो की कर्जदार थी, जिनमे स्पेन, फ्रास और ब्रिटेन प्रमुख थे। इस विदेशी कर्ज को अदा कर सकना मेक्सिको की सरकार के लिये सुगम न था। कर्ज की रकम को अदा कर सकना तो दूर रहा, १८६१ मे यह स्थिति थी, कि दो साल का सूद भी मेक्सिकन सरकार अदा नही कर पाई थी। इस दशा मे फ्रास, स्पेन और ब्रिटेन के पूँजीपतियो ने अपनी-अपनी सरकारो से सहायता की अपील की। नैपोलियन तृतीय ने सोचा, मेक्सिको की इस दुर्दशा का उपयोग अपने साम्राज्य-विस्तार के लिये किया जा सकता है। उन दिनो सयुक्त राज्य अमेरिका मे दासप्रथा को नष्ट करने के प्रश्न पर गृह-कलह चल रहा था। अमेरिकन राष्ट्रपति मुनरो ने जिस 'मुनरो सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया था, वह इस समय प्रयुक्त नही किया सकता था, क्योकि सयुक्तराज्य अमेरिका की अपनी स्थिति ही इस समय डावाडोल थी। इस दशा मे नैपोलियन तृतीय ने स्पेन और ब्रिटेन की सरकार को इस बात के लिये प्रेरित किया, कि वे अपनी सेनाए मेक्सिको भेजे, ताकि वहा की सरकार पर कर्ज की अदायगी के लिये जोर डाला जा सके। स्पेन और ब्रिटेन इसके लिये तैयार हो गये। पर उन्होने इस कार्य मे देर तक फ्रास की सहायता नही की, और अकेले फ्रास ने ही अपनी एक सेना को मेक्सिको पर कब्जा करने के लिये भेज दिया। १८६२ मे नैपोलियन द्वारा भेजे गये तीस हजार सैनिकोने मेक्सिको पर आक्रमण किया। मेक्सिको जीत लिया गया, और १८६३मे फ्रास का मेक्सिको पर कब्जा हो गया। नैपोलियन ने प्रस्ताव किया, कि आस्ट्रिया के सम्राट् के भाई मैक्स-मिलियन को मेक्सिको का सम्राट् बनाया जाय। इससे उसे आशा थी, कि आस्ट्रिया जैसे शक्तिशाली राज्य की सहानुभूति उसे प्राप्त हो जायगी, और वह सुगमता से मेक्सिको को अपने प्रभाव में ला सकेगा। मैक्समिलियन ने मेक्सिको का सम्राट् बनना स्वीकार कर लिया, और फ्रेंच सेनाओ की सहायता से उसे सम्राट् पद पर अधिष्ठित भी कर दिया गया।

पर इस बीच मे सयुक्तराज्य अमेरिका के गृह कलह का अन्त हो चुका था। यह राज्य इस बात को नही सह सकता था, कि अमेरिकन महाद्वीप में यूरोपियन राज्य इस ढग से हस्तक्षेप करें। अमेरिका ने मुनरो-सिद्धान्त की दुहाई देकर मैक्समिलियन और फ्रास का

विरोध किया, और उसके प्रोत्साहन से मेक्सिको में विद्रोह हो गया। सम्राट् मैक्समिलियन विद्रोहियों की गोली का शिकार हुआ, और फ्रेंच सेनाओं को मेक्सिको छोडकर वापस लौट आने के लिये (फरवरी, १८६७) विवश होना पडा। सम्राट् नैपोलियन तृतीय की यह भारी असफलता थी। अमेरिकन महाद्वीप में फ्रास के साम्राज्यविस्तार का जो प्रयत्न नैपोलियन तृतय ने किया था, वह असफल हो गया था।

४ विदेशी युद्ध और पतन

जिन विदेशी युद्धो के कारण नैपोलियन तृतीय का पतन हुआ, उनका विशद रूप से वर्णन अगले अध्यायो मे किया जायगा। वे सब युद्ध इटली, आस्ट्रिया और जर्मनी के साथ सबध रखते है, और उनका विवरण इन देशो के इतिहास मे देना अधिक उपयुक्त रहेगा। पर इस प्रकरण मे भी उनका अत्यन्त सक्षेप के साथ उल्लेख कर देना अनुचित नही है।

नैपोलियन तृतीय की महत्त्वाकाक्षा थी, कि अपने चचा का अनुकरण कर यूरोप के विदेशी मामलो मे भी हस्तक्षेप करे। १८५४–५६ के क्रीमियन युद्ध मे उसने रूस के विरुद्ध टर्की की सहायता की। इस युद्ध मे फ्रास के ७५ हजार सैनिक मारे गये, और सवा अरब रुपये खर्च हुए। पर फ्रास को इससे लाभ क्या हुआ ? कुछ नही, यद्यपि नैपोलियन यह गर्व अवश्य कर सकता था, कि शान्तिपरिषद् का अधिवेशन उसकी छत्रछाया मे पेरिस मे हो रहा है। १८५९ मे जव उत्तरी इटली ने आस्ट्रियन शासन के विरुद्ध विद्रोह किया, तव नैपोलियन ने इस शर्त पर इटली की सहायता करना स्वीकृत किया, कि नीस और सेवाय के प्रदेश फ्रास को दिये जायगे। ये दोनो प्रदेश उसे मिल गये, पर युद्ध की समाप्ति के पूर्व ही नैपोलियन युद्ध से अलग हो गया, और इसका परिणाम यह हुआ कि इटली और आस्ट्रिया दोनो ही उसके विरुद्ध हो गये। नैपोलियन तृतीय का मुख्य युद्ध प्रशिया के साथ हुआ। १८७० के इस फ्रेंको-प्रशियन युद्ध का वर्णन हम आगे चलकर विस्तार से करेंगे। यहा इतना लिखना पर्याप्त है, कि विस्मार्क के नेतृत्व मे प्रशिया जर्मनी को जिस ढग से सगठित कर रहा था, वह नैपोलियन को विलकुल भी सह्य नही था। र्‌हाइन नदी के समीपवर्ती प्रदेशो पर प्रशिया जैसे शक्तिशाली राज्य का प्रभाव स्थापित हो जाए, यह वात नैपोलियन की दृष्टि में फ्रास के लिये घातक थी। वह युद्ध के लिये उपयुक्त अवसर ढूढ रहा था। जव किसी काम को करने के लिये इरादा वन चुका हो, तो उसके लिये वहाना ढूढने मे देर नही लगती। नैपोलियन प्रशिया की वढती हुई शक्ति को नष्ट करने के लिये तुला हुआ था। इसके लिये उसे शीघ्र ही उपयुक्त अवसर प्राप्त हो गया।

स्पेन की स्वेच्छाचारी साम्राज्ञी इसावेला के विरुद्ध जनता ने विद्रोह कर उसे राज्यच्युत कर दिया था। स्पेनिश लोगो के सम्मुख प्रश्न यह था, कि अव राजगद्दी पर किसे विठाया जाय ? आखिर, उन्होने प्रशिया के राजा के भाई लियोपोल्ड को इस पद के लिये स्वीकृत किया। ज्योही नैपोलियन ने इस समाचार को सुना, वह आगवबूला हो गया। प्रशिया और स्पेन—दो शक्तिशाली राज्यो की राजगद्दियो पर होहेन्ट्सोलर्न राजवश का शासन हो, यह वात नैपोलियन कैसे सह सकता था ? उसने इस प्रस्ताव का सख्त

विरोध किया। उसने उद्घोषणा की, कि फ्रांस इस बात को कभी भी सहन नहीं करेगा। नैपोलियन के विरोध का यह परिणाम हुआ, कि लियोपोल्ड ने स्वयमेव राजगद्दी की उम्मीदवारी का परित्याग कर दिया। पर नैपोलियन तो युद्ध के लिये तुला हुआ था। उसने उद्घोषित किया, कि लियोपोल्ड की ओरसे उम्मीदवारी का परित्याग कर देना ही मुझे सन्तुष्ट करने के लिये पर्याप्त नहीं है। प्रशिया को प्रतिज्ञा करनी चाहिये, कि भविष्य में भी कभी होहन्ट्सोलर्न वंश का कोई कुमार स्पेन की राजगद्दी का उम्मीदवार नहीं होगा। निस्सन्देह, नैपोलियन की यह ज्यादती थी। पर वह तो प्रशिया की शक्ति को नष्ट करने के लिये युद्ध का अवसर ढूंढने को उत्सुक था। यह अवसर उसे प्राप्त हो गया। प्रशिया और फ्रांस—दोनों देशों में युद्ध की तैयारी होने लगी। प्रशिया युद्धनीति में बहुत अधिक उन्नति कर चुका था। उसकी सेनाएँ बहुत ही रणकुशल तथा सधी हुई थीं। फ्रांस उनका मुकाबला नहीं कर सकता था। २ दिसम्बर, १८७० को सीडन के रणक्षेत्र में नैपोलियन तृतीय की बुरी तरह पराजय हुई। दो दिन बाद इस भयंकर पराजय का समाचार पेरिस पहुंचा। लोगों में सनसनी फैल गई। पार्लियामेण्ट का भवन उत्सुक जनता द्वारा घेर लिया गया। 'रिपब्लिक की जय' के नारों से आकाश गूंज उठा। व्यवस्थापिका सभा में प्रस्ताव पेश किया गया, कि नैपोलियन और उसके वंश को राज्यच्युत किया जावे। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। गेम्बेटा नाम के रिपब्लिकन नेता के नेतृत्व में लोग एकत्रित हुए, और तीसरी बार फ्रांस में रिपब्लिक की स्थापना की गई।

इस बीच में नैपोलियन तृतीय फ्रांस से भागकर ग्रेट ब्रिटेन पहुंच गया था। उसका शेष जीवन वहीं पर व्यतीत हुआ।

नैपोलियन तृतीय के पतन के क्या कारण थे? उसका शासन एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी था। लोकतन्त्र शासन का ढोंग कायम होते हुए भी यह सर्वथा स्पष्ट था, कि फ्रांस में जनता का शासन न होकर एक व्यक्ति का शासन है। समय को देखते हुए यह बात देर तक सहन नहीं की जा सकती थी। यही कारण है, कि लोगों में असन्तोष के चिह्न प्रकट होने शुरू हो गये थे। इसके अतिरिक्त, नैपोलियन तृतीय ने अपनी वैदेशिक नीति में भी भारी भूलें की थीं। इन्हीं भूलों का परिणाम था, कि फ्रेंको-प्रशियन युद्ध में अन्य कोई भी देश उसकी सहायता के लिए अग्रसर नहीं हुआ था।

अठारहवा अध्याय

इटली की स्वाधीनता

१ स्वाधीनता के लिए संघर्ष

नैपोलियन प्रथम के युद्धो के बाद इटली मे राष्ट्रीय एकता की अनुभूति उत्पन्न हो चुकी थी। रोम के प्राचीन गौरव की स्मृति लोग अभी भूले न थे। किसी समय इटली ने सभ्य ससार पर पर हुकूमत की थी। विद्या, विज्ञान, कला, सगीत, धर्म आदि सब क्षेत्रो में ससार इटली का सिक्का मानता था। इटालियन देशभक्त अपने इतिहास से भलीभाति परिचित थ। वे एक बार फिर अपने देश को ससार का शिरोमणि देखने को उत्सुक थे। नैपोलियन ने जब सम्पूर्ण इटली को जीतकर एक "इटालियन राज्य" की स्थापना की थी, तब इस विदेशी शासन से अन्य हानिया चाहे कितनी ही क्यो न हुई हो, पर यह लाभ अवश्य हुआ था, कि इटालियन लोग भलीभाति अनुभव करने लग गये थे, कि हम सब एक देश के वासी है, और हम सबको एक राष्ट्र मे ही सगठित रहना चाहिये। नैपोलियन के पतन के बाद प्रतिक्रिया का काल प्रारम्भ हुआ। वीएना की काग्रेस द्वारा यूरोप की जिस प्रकार पुन व्यवस्था की गई, उसमे जनता की इच्छा और राष्ट्रीय भावनाओ पर जरा भी ध्यान नही दिया गया। इटली के विविध राज्यो मे पुराने राजवशो का पुनरुद्धार किया गया। उत्तरी इटली के अधिकाश प्रदेश पर (लोम्बार्डी और वेनेटिया पर) आस्ट्रिया का शासन स्थापित किया गया। १८२०, १८३० और १८४८ मे यूरोप मे क्रान्ति की जो लहरे चली, उन सब ने इटली पर प्रभाव डाला। स्थान स्थान पर विद्रोह हुए। पर देशभक्त अपने प्रयत्नो मे सफल न हो सके। विशेषतया, १८४८ की क्रान्ति की असफलता के कारण इटली मे बहुत मुर्दानगी छा गई थी। हजारो देशभक्त कैद मे पडे सड रहे थे, सैकडो तलवार के घाट उतार दिये थे। जो किसी प्रकार मृत्यु व जेल से बच सके थे, वे विदेशो मे भागकर अपनी जान बचा रहे थे। विदेशो में रहकर उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते रहने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग उनके सम्मुख शेष न रहा था। १८४८ की क्रान्ति ने इटली मे भयकर रूप धारण कर लिया था। उसकी असफलता के बाद वहा प्रतिक्रिया भी उतनी ही भयकर हुई थी।

इटली के विविध राज्य—वीएना की काग्रेस (१८१५) के बाद इटली मे जो विविध राज्य विद्यमान थे, उनका निदर्शन आवश्यक है। दक्षिणी इटली मे नेपल्स के राज्य का शासन बूर्बो वश के हाथ मे था। नैपोलियन प्रथम के पतन के बाद जब इटली मे वहा के पुराने विविध राजवशो का पुनरुद्धार हुआ, तो नेपल्स का शासन बूर्बो राजवश के फर्डिनेन्ड के सुपुर्द किया गया। फर्डिनेन्ड मेटरनिख का कट्टर अनुयायी था, और अपने राज्य मे

उसी के सिद्धान्तो का अनुसरण कर रहा था। मध्य इटली मे पोप का शासन था। पोप के शासन-सम्बन्धी सिद्धान्त मध्ययुग के थे, और वह न केवल धार्मिक स्वतन्त्रता को, अपितु राजनीतिक स्वातन्त्र्य को भी सहन नही करता था। उत्तरी इटली मे लोम्बार्डी और वेनेटिया के प्रदेश सीधे आस्ट्रिया के अधीन थे। उत्तरी इटली मे परमा, मोडेना, टस्कनी और लूक्का के रूप मे चार अन्य राज्य विद्यमान थे, जिनमे आस्ट्रिया के हाप्सबुर्ग वश की पृथक्-पृथक् शाखाओ का शासन था। ये सब राजा आस्ट्रिया के सम्राट् के हाथो मे कठपुतली के समान थे। पीडमोण्ट और सार्डिनिया एक राजा के शासन मे थे और इनका राजा भी स्वेच्छाचारी निरकुश रूप मे ही शासन कार्य का सचालन करता था। सिसली का द्वीप नेपल्स के राजा के हाथो मे था। १८१५ के बाद इटली के देशभक्तो के सम्मुख तीन प्रमुख समस्याए थी—(१) इटली के जो प्रदेश आस्ट्रिया के विदेशी शासन मे है, उन्हे स्वाधीन करना, (२) इटली के शासन को लोकतन्त्रवाद के अनुकूल बनाना, और (३) इटली की राष्ट्रीय एकता को स्थापित करना।

स्वाधीनता के लिये विविध सघर्ष—१८१५ के बाद यूरोप के विविध देशो मे स्वाधीनता और राष्ट्रीयता के लिये जो सघर्ष हुए, उनका उल्लेख पहले अध्यायो मे किया जा चुका है। इटली भी इन आन्दोलनो से अछूता नही बचा था। कार्बोनारी आदि अनेक गुप्त समितिया इटली मे सगठित थी, जिनमे सम्मिलित देशभक्त अपने देश मे स्वाधीनता की स्थापना के लिये प्रयत्नशील थे। इन्ही के प्रयत्न से १८२० मे नेपल्स मे विद्रोह हुआ था, और वहा के राजा फर्डिनेन्ड को वैध राजसत्ता की स्थापना के लिये वचनबद्ध होना पडा था। १८२१ में पीडमौन्ड मे विद्रोह हुआ, और वहा के युवराज (जो आगे चलकर चार्ल्स एल्वर्ट के नाम से पीडमौन्ट का राजा बना) ने विद्रोहियो के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की। पर इटालियन स्वाधीनता के ये सघर्ष सफल नही हो सके। मेटरनिख की प्रेरणा और सहायता से शीघ्र ही इन्हे दबा दिया गया। बहुत से इटालियन देशभक्त इस समय अपनी मातृभूमि को छोडकर विदेशो में आश्रय लेने के लिये विवश हुए। इसी समय मेजिनी के हृदय मे यह विचार उत्पन्न हुआ, कि आल्प्स की पर्वतमाला से लेकर समुद्र पर्यन्त एक विशाल व सुसगठित इटालियन राष्ट्र का निर्माण होना चाहिये। यही मेजिनी आगे चलकर इटली का प्रसिद्ध नेता बना, और इसके सम्बन्ध मे इसी अध्याय मे आगे अधिक विस्तार के साथ लिखा जायगा।

१८३० की क्रान्ति की लहर ने इटली पर बहुत प्रभाव डाला। अनेक स्थानो पर विद्रोह हुए, पर इस अवसर पर भी देशभक्तो को अपने प्रयत्नो मे सफलता नही हुई। १८३१ मे मेजिनी ने 'युवक इटली' नाम से एक नई समिति की स्थापना की। इटालियन देशभक्तो के प्रयत्न जिस प्रकार असफल हो रहे थे, मेजिनी उससे निराश नही हुआ। वह कहता था—"नये विचार तभी फलते-फूलते है, जब शहीदो के खून से उनका सिंचन किया जाय।" १८३० की क्रान्ति की लहर के असफल होने के बाद भी इटली की विविध गुप्त समितियां अपने कार्य मे तत्पर रही। १८४४ मे बान्दीरा बन्धुओ ने आस्ट्रियन नौसेना की नौकरी का परित्याग कर विद्रोह का झण्डा खडा किया। नेपल्स की सेनाओ ने इन सबको गिरफ्तार कर लिया और नौ विद्रोहियो को गोली से उडा दिया गया। मरते समय भी उनकी जबान

से "इटली चिरजीवी हो' यह ध्वनि गज रही थी।

इटली के अन्य सब राज्यो के राजा तो मेटरनिख के पदचिन्हो पर चल रहे थे, पर पीडमौन्ट की स्थिति कुछ भिन्न थी। १८३१ मे वहा के राजसिंहासन पर चार्ल्स एल्वर्ट आरूढ हुआ था। १८२१ के विद्रोह मे उसने देशभक्तो के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की थी। राजा बनने के बाद भी वह इटालियन राष्ट्रीयता और लोकतन्त्रवाद के विचारो के प्रति सहानुभूति रखता रहा। आगे चलकर इटली मे जो राष्ट्रीय एकता स्थापित हुई, उसका केन्द्र पीडमौन्ट ही बना। १८४८ की क्रान्ति की लहर ने इटली पर बहुत प्रभाव डाला। उसके विविध राज्यो मे जिस प्रकार अनेक क्रान्तिया हुई, और वे सफल नही हो सकी, इसका उल्लेख हम पहले कर चुके है। पर इटली के देशभक्त और क्रान्तिकारी अपने प्रयत्नो मे असफल होकर भी निराश नही हुए थे। परस्पर एकमत न होते हुए भी वे अपने-अपने ढग से देश की राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता के लिये उद्योग मे लगे थे।

रिपब्लिकन दल—इटली को किस प्रकार स्वाधीन किया जावे, इस विषय मे सब देशभक्त आपस मे एकमत नही थे। एक दल रिपब्लिक का पक्षपाती था। ये लोग राजसत्ता से तग आ चुके थे। नेपल्स आदि के विविध राज्यो के राजाओ ने पिछले दिनो मे शासनसुधार की प्रतिज्ञाएँ करके किस प्रकार उनका उल्लघन किया था—इस बात की कटु स्मृति इनके सम्मुख थी। रिपब्लिकन दल के लोग समझते थे, कि सम्पूर्ण राजवशो और राजगद्दियो का अन्त कर इटली भर मे एक रिपब्लिक स्थापित किये बिना देश का उद्धार नही हो सकता। इस दल का प्रधान बडा नेता मेजिनी था। मेजिनी का जन्म सन् १८०५ मे हुआ था। उसका पिता डाक्टर था, और वह फ्रेंच राज्यक्रान्ति का बडा पक्षपाती था। बचपन में ही मेजिनी ने अपने पिता से फ्रेंच राज्यक्रान्ति और रिपब्लिकन शासन की गौरवमय कथाओ का श्रवण किया था। उसके हृदय मे शुरू से ही क्रान्तिकारी भाव प्रबल हो गये थे। उस समय इटली मे फ्रास के क्रान्तिमय इतिहास का पढना भी भयकर अपराध था। पर मेजिनी के पिता ने अपने पुस्तकालय मे चिकित्सासम्बन्धी ग्रन्थो के पीछे फ्रास की क्रान्ति के साथ सम्बन्ध रखने वाली पुस्तके छिपा रखी थी। मेजिनी इन्हे छिप-छिपकर पढा करता था। क्रान्तिकारी साहित्य के पढने से मेजिनी के हृदय मे अपने देश को स्वाधीन कराने तथा वहा की रिपब्लिक स्थापित करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गई थी। इसीलिये वह इटली की क्रान्तिकारी गुप्त सस्था 'कार्बोनारी' का सदस्य बन गया। यह सस्था १८१५ मे स्थापित हुई थी, और इसका उद्देश्य एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कर लोकतन्त्र की स्थापना करना था। कार्बोनारी की शाखाएँ यूरोप भर मे व्याप्त थी, और इसके सदस्यो की सख्या लाखो तक पहुची हुई थी। १८३० मे मेजिनी गिरफ्तार हो गया और सेवोना के किले मे बद कर दिया गया। यहा रहते हुए उसने गुप्तलिपि मे अपने साथी क्रान्तिकारियो से पत्रव्यवहार प्रारम्भ किया और जेल मे बन्द रहते हुए भी क्रान्ति के लिये प्रयत्न करना बन्द नही किया। सेवोना की कैद में ही मेजिनी ने अनुभव किया, कि कार्बोनारी जैसी गुप्त समितियो से देश का उद्धार नही हो सकता। यदि वस्तुत इटली की उन्नति अभीष्ट हो, तो जनता में और विशेषतया नवयुवको मे ऊँचे विचारो और नवीन आदर्शों का सचार करना चाहिये। जब तक लोगो मे नवीन विचारो का भलीभाति प्रचार नही होगा, और इटली के

नवयुवक अपने देश की स्वतन्त्रता और एकता के लिये तीव्र आकाक्षा अनुभव नही लगेगे, स्वाधीनता का स्वप्न लेना सर्वथा निरर्थक है। इसी उद्देश्य से जेल से मुक्त के बाद उसने 'युवक इटली' नामक एक नवीन सस्था का सगठन किया। इसमे सन्देह कि इस सस्था से इटली मे बहुत जागृति हुई। लोग नवीन युग की कल्पना करने और पराधीनता के बन्धनो को तोडकर स्वाधीन व सगठित इटालियन राष्ट्र के नि के लिये जनता मे प्रबल उत्सुकता उत्पन्न हुई। मेजिनी के अनुयायी रिपब्लिक के पाती थे। राजाओ मे उन्हे कोई विश्वास नही था। छोटे-छोटे राज्यो का अन्त वे एक शक्तिशाली इटालियन राष्ट्र की स्थापना करना चाहते थे।

पोप का पक्षपाती दल—इटालियन देशभक्तो का दूसरा दल पोप के नेतृत्व मे द सगठन करना चाहता था। इस दल के लोग रोमन कैथोलिक धर्म के कट्टर अनुयायी उनका ख्याल था, कि सम्पूर्ण इटली मे केवल एक ही ऐसा व्यक्ति है, जिसके असा प्रभाव और अद्भुत सामर्थ्य के कारण सम्पूर्ण देश की बिखरी हुई शक्तियो को एक सगठित किया जा सकता है। यह व्यक्ति है पोप। इस दल का प्रधान नेता जि नामक महानुभाव था।

वैध राजसत्तावादी दल—परन्तु इटली का भविष्य इन दोनो दलो के हाथ मे नही इनके अतिरिक्त एक तीसरा दल भी था, जो सार्डिनिया और पीडमाण्ट के राजा वि एमेनुअल द्वितीय के नेतृत्व में सम्पूर्ण इटली को सगठित करना चाहता था। यह नव राजा बहुत प्रतिभाशाली, उन्नत विचारो का तथा साहसी व्यक्ति था। १८४८ मे सार्डि और पीडमौन्ट के पहले राजा चार्ल्स एल्बर्ट ने आस्ट्रिया के साथ जिस प्रकार लडाई लडी और जिस तरह इटालियन देश-भक्तो का साथ दिया था, उससे लोगो को प्रबल आ गई थी कि भविष्य में भी देश का उद्धार इसी राजवश द्वारा हो सकता है। ए उत्तराधिकारी विक्टर एमेनुअल द्वितीय ने वैध राजसत्ता के सिद्धान्तो को स्वीकार लिया था, और उसने अपने राज्य मे नवीन सिद्धान्तो पर आश्रित शासन-विधान स्थापना भी कर दी थी। इसका परिणाम यह था, कि उदार विचारो के लोग उसे मानते थे।

कावूर—इस दल का प्रधान नेता कावूर था। उसका जन्म सन् १८१० मे हुआ वह पीडमौन्ट का रहनेवाला था। इटली मे उस समय जो उदार आन्दोलन चल र उनका कावूर पर बचपन मे ही प्रभाव पडा था। क्रान्तिकारियो के ससर्ग मे आक एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन का कट्टर विरोधी बन गया था। अपना सासारिक जीवन एक सेनानायक के रूप मे प्रारम्भ किया, पर शीघ्र ही सैनिक जीवन से तग आ उसने उसका परित्याग कर दिया। इसके बाद उसने अपना अधिकाश समय राजनी और आर्थिक प्रश्नो के अध्ययन मे व्यतीत किया। इसी उद्देश्य से उसने ग्रेट ब्रिटेन, और जर्मनी की यात्रा की। इन देशो से जब वह वापस आया, तो वह अपने देश के उ के लिये भावी कार्यक्रम का निश्चय कर चुका था। यही कारण था, कि पुलिस उसे स की दृष्टि देखती थी, और हमेशा उस पर कडी निगाह रखती थी। ब्रिटिश शासन सबसे अधिक पसन्द था। रिपब्लिक उसे पसन्द नही आती थी। वह कहता था,

होना चाहिये, पर उसकी शक्ति को सीमित करने के लिये निश्चित शासन-विधान और व्यवस्थापिका सभाएँ भी होनी चाहिये । धीरे-धीरे कावूर का प्रभाव बढ़ता गया और १८४८ की क्रान्ति के समय जब पीडमोन्ट में राष्ट्रीय महासभा का संगठन हुआ, तो लोगों ने अनुभव किया कि कावूर मामूली आदमी नहीं है, उसमें राष्ट्र का संचालन करने के लिये आवश्यक सब गुण विद्यमान हैं । पीडमोन्ट और सार्डिनिया के लिये जो नवीन शासन-विधान १८४८ में बना था, उसके निर्माण में कावूर का बड़ा हाथ था । इसमें संदेह नहीं, कि न केवल सर्वसाधारण जनता पर राजा व राजदरबार के लोग भी धीरे-धीरे यह अनुभव करने लग गये कि कावूर ही एक ऐसा व्यक्ति है जो इटली की समस्याओं को सुलझा सकता है ।

समस्याएँ—१८५२ में कावूर को पीडमोन्ट और सार्डिनिया के सम्मिलित राज्य का प्रधानमन्त्री बनाया गया । उस समय उसकी आयु केवल बयालीस वर्ष की थी । विक्टर एमेनुअल द्वितीय को कावूर पर पूरा भरोसा था । योग्य राजा को योग्य मन्त्री मिल गया था । प्रधान मन्त्री के पद पर आते ही कावूर ने अनुभव किया, कि इटली का उद्धार करने के लिये निम्नलिखित समस्याओं को हल किये बिना कार्य न चलेगा—

(१) इटली की एकता और स्वाधीनता के लिये उत्तरी इटली से आस्ट्रिया के आधिपत्य को नष्ट करना अवश्यम्भावी है । इस कार्य का नेतृत्व पीडमोन्ट को ही ग्रहण करना होगा । पर पीडमोन्ट अकेला इसे नहीं कर सकता । इस कार्य के लिये एक तरफ तो सम्पूर्ण इटालियन राज्यों का सहयोग प्राप्त करना चाहिये, और दूसरी तरफ विदेशी सहायता के लिये भी उद्योग करना चाहिये ।

(२) आस्ट्रिया को पराजित करने के लिये अन्य इटालियन राज्यों का सहयोग किस प्रकार प्राप्त किया जाए, इस समस्या को हल कर सकना सुगम नहीं था । यद्यपि इटली में राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के लिये आन्दोलन चल रहे थे, पर इन आन्दोलनकर्त्ताओं में एकता नहीं थी । सबके कार्यक्रम भिन्न-भिन्न थे । साथ ही, विविध राजाओं को एक उद्देश्य से संगठित कर सकना तो उस समय सर्वथा असम्भव ही प्रतीत होता था ।

(३) आस्ट्रिया यूरोप का अत्यन्त प्रभावशाली तथा प्रबल राज्य था । उसके विरुद्ध अन्य राष्ट्रों की सहायता प्राप्त कर सकना पीडमोन्ट जैसे मामूली राज्य के लिये सुगम कार्य नहीं था । साथ ही, विविध राजाओं में जनता की भावनाओं के विरुद्ध एक होकर मुकाबला करने की प्रवृत्ति भी अब तक नष्ट नहीं हुई थी ।

पीडमोन्ट की उन्नति—इन सब कठिनाइयों का सामना कावूर ने बड़ी योग्यता और नीतिकुशलता के साथ किया । अपने राज्य को उन्नत किये बिना किसी भी कार्य में सफलता नहीं हो सकती थी, अतः सबसे पहले पीडमोन्ट की उन्नति पर ध्यान दिया गया । व्यापार और व्यवसाय की उन्नति करने के लिये विशेष रूप से प्रयत्न किये गये । मुक्त द्वार वाणिज्य की नीति का अवलम्बन कर विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन दिया गया । कारखानों को राष्ट्रीय सहायता दी गई । रेलवे का विस्तार किया गया । दलदलों और ऊजड़ प्रदेशों को हरे-भरे खेतों के रूप में परिवर्तित किया गया । शिक्षा की उन्नति की गई । पीडमोन्ट की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हुई । देखते-देखते पीडमोन्ट कहीं का कहीं पहुँच गया । राष्ट्रीय शक्ति और सहायता से देश बात की बात में उन्नति कर जाते हैं । राज्य क्या है ?

मनुष्यो का अपने हित के लिये सामूहिक प्रयत्न ही तो है। अठारहवी सदी तक प्राय सम्पूर्ण ससार मे राज्य थोडे से शासको के वैयक्तिक सुख के साधनमात्र होते थे। पर उन्नीसवी सदी मे जब राज्यों के स्वरूप मे परिवर्तन हुआ, शासको ने अपनी शक्ति का प्रयोग सचमुच मनुष्यो की सामूहिक उन्नति के लिये करना प्रारम्भ किया, तो सर्वतोमुखी समृद्धि मे जिस वेग से सहायता मिली, उसका वर्णन कर सकना असम्भव है। कावूर के प्रयत्न से पीडमौन्ट थोडे ही समय मे बहुत उन्नति कर गया।

सम्पूर्ण इटालियन जनता का सहयोग—पर केवल पीडमौन्ट की अपनी उन्नति से कुछ नही हो सकता था। उसकी कुल आबादी पचास लाख से अधिक नही थी। इतना छोटा सा राज्य आस्ट्रिया को परास्त नही कर सकता था। अत राष्ट्रीय एकता के इस महान् कार्य के लिये सम्पूर्ण इटली के सहयोग की आवश्यकता थी। राजाओ से यह सहयोग प्राप्त नही हो सकता था, और न कावूर ने उसके लिये प्रयत्न ही किया। उसने क्रान्तिकारियो के अन्य दलो के साथ बातचीत की, और उन्हे पीडमौन्ट के राजा को केन्द्र बनाकर अपने देश का उद्धार करने के लिये तैयार किया। मेजिनी जैसे रिपब्लिकन तथा गेरिबाल्डी जैसे क्रान्तिकारी उसकी सहायता के लिये उद्यत हो गये। यदि राजा और शासकवर्ग देशोद्धार के पवित्र कार्य मे कावूर के साथ सम्मिलित नही हुए, तो क्या हानि थी ? जनता उससे हार्दिक सहानुभूति थी, क्रान्तिकारी दलो का सहयोग उसे प्राप्त था। कावूर की उद्देश्यपूर्ति के लिये यही बहुत काफी था। कार्बोनारी, युवक इटली आदि सब संस्थाओ ने उसका साथ दिया। इटली के सब देशभक्त तथा विचारशील लोग उसके साथ हो गये। कट्टर रोमन कैथोलिक लोगो को अपने पक्ष मे करना कठिन था। कावूर ने उनका खुल कर विरोध किया। अपने राज्य पीडमौन्ट से तो उसने जेसुअट सम्पदाय के लोगो को वहिष्कृत तक कर दिया। इस प्रकार यदि विविध इटालियन राजाओ और शासको का नही, तो कम से कम बहुसंख्यक जनता का सहयोग प्राप्त करने मे वह अवश्य सफल हुआ।

विदेशी सहायता—विदेशी सहायता प्राप्त कर सकना अधिक कठिन था। पर कावूर ने इस कार्य मे भी असाधारण सफलता प्राप्त की। वह भलीभाति समझता था, कि आस्ट्रिया के विरुद्ध यदि किसी अन्य देश की सहायता प्राप्त की जा सकती ह, तो वह देश फ्रास है। वह कहा करता था—'हम चाहे पसद करे या न करे, पर यह निश्चित है कि हमारा भाग्य फ्रास पर आश्रित है। शीघ्र ही यूरोप के रगमच पर जो नाटक खेला जायगा, उसमें हम फ्रास के साथ होगे।' फ्रास से मैत्री स्थापित करने के लिये वह बहुत उत्सुक था, और इसके लिये उपयुक्त अवसर प्राप्त करने मे उसे देर न लगी। १८५४ मे प्रसिद्ध क्रीमियन युद्ध प्रारम्भ हुआ। इसमे फ्रास, टर्की और ब्रिटेन एक ओर थे, और रूस दूसरी ओर। १८५५ मे कावूर ने क्रीमियन युद्ध में फ्रास का साथ दिया, और अपने १७ हजार सैनिक क्रीमिया के रणक्षेत्र मे भेज दिये। क्रीमियन युद्ध की समाप्ति पर सन्धि के लिये पेरिस मे जो परिषद् हुई, उसमे पीडमौन्ट की तरफ से कावूर भी सम्मिलित हुआ। यूरोपियन राज्यो से परिचय प्राप्त करने, फ्रास से मित्रता करने और इटालियन स्वाधीनता के दावे को अन्य लोगो के सम्मुख पेश करने का यह सुवर्णावसर था। कावूर ने इसका भलीभाति उपयोग किया। उसने सन्धि परिषद् में एकत्रित राजनीतिज्ञो को अच्छी तरह

यह समझाने का प्रयत्न किया, कि उत्तरी इटली पर आस्ट्रिया का कब्जा यूरोप की शान्ति के लये बहुत भयकर बात है। जब तक इटली स्वाधीन नही होगा, यूरोप मे शान्ति कायम नही रह सकती। पेरिस की सन्धि परिषद् मे कावूर को अच्छी सफलता मिली। पीडमोन्ट जैसे छोटे मे राज्य का प्रतिनिधि यूरोप के अच्छे राजनीतिज्ञो मे गिना जाने लगा।

नैपोलियन तृतीय से समझौता—इस समय फ्रास का सम्राट् नैपोलियन तृतीय था। सम्राट् बनने मे पूर्व वह इटली मे रह चुका था, और कार्बानारी सभा का सदस्य भी था। १८३० की क्रान्ति मे वह क्रान्तिकारी स्वय सेवक के रूप म पोप के विरुद्ध लड चुका था। इटालियन स्वाधीनता के आन्दोलन म उसे सहानुभूति थी। साथ ही, वह यह भी समझता था, कि फ्रास की राजगद्दी मैने षड्यन्त्र द्वारा हस्तगत की है। लोग मेरे सम्राट्-पद को उसी दशा मे सहन करेगे, जब कि मै अपने चचा की तरह गौरवमय विजयो से जनता को चकाचौध कर दूगा। यदि इटली को स्वाधीन करने के लिये आस्ट्रिया मे युद्ध उद्घोषित कर दिया जाए, तो निस्सन्देह फ्रेच लोग उसे पसन्द करेगे। एक बार फिर फ्रेच सेनाएँ उत्तरी इटली मे प्रवेश करेगी। नेपालियन के बाहुबल के सम्मुख आस्ट्रिया परास्त हो जायगा। इतिहास अपने को दोहरायगा। इटली मे जो नवीन शासन कायम होगा, वह निस्सन्देह फ्रास का आधिपत्य स्वीकृत करेगा। नैपोलियन तृतीय की इन महत्त्वाकाक्षाओ को किस प्रकार इटली के लाभ के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है, इस बात को कावूर खूब समझता था। पेरिस की सन्धि-परिषद् के समय इन दोनो राजनीतिज्ञो मे बातचीत की। आखिर दोनो मे समझौता हो गया। नैपोलियन ने कहा, यदि आस्ट्रिया से युद्ध शुरु करने के लिये तुम कोई बहाना ढूढ लो, तो मै दो लाख फ्रेच सैनिको के साथ तुम्हारी सहायता करने के लिये तैयार हूँ। दोनो राजनीतिज्ञो ने स्वीकार किया कि यदि उत्तरी इटली से आस्ट्रियन शासन का अन्त हो जाए, तो नीस और सेवाय के प्रदेश—ये फ्रास और इटली थे—फ्रास को दे दिये जायेंगे, और आस्ट्रिया की अधीनता से मुक्त हुए लोम्बार्डी और वेनेटिया के प्रदेशो पर पीडमौन्ट का कब्जा रहेगा, और उत्तरी इटली के अन्य प्रदेशो के पीडमौन्ट द्वारा हस्तगत कर लेने मे भी फ्रास को कोई आपत्ति न होगी।

इस प्रकार विदेशी सहायता भी प्राप्त हो गई। कावूर के सम्मुख जो विकट समस्याएँ विद्यमान थी, सब हल हो गईं। अब केवल उद्देश्य को पूर्ण करना शेष था।

२ स्वाधीनता सग्राम का प्रारम्भ

बारूद तैयार हो गया था, अब उसे केवल तीली दिखाने की जरूरत थी। कावूर युद्ध के लिये बहाना ढूढ रहा था। उधर आस्ट्रिया भी लडाई के लिये अवसर देख रहा था। पीडमान्ट की उन्नति उसे शूल की तरह चुभ रही थी। कावूर की चालो से भी वह सर्वथा अपरिचित न था। आस्ट्रियन राजनीतिज्ञ समझते थे, जितनी देर होगी, उतना ही हमारा नुकसान है, उतनी ही पीडमोन्ट की शक्ति बढती जायगी। इस दशा मे युद्ध शुरू होने मे क्या देर हो सकती थी? आखिर, युद्ध शुरु हो गया।

युद्ध का प्रारम्भ—कावूर के इशारे से लोम्बार्डी और वेनेटिया मे विद्रोह हो रहे थे। आस्ट्रिया इनसे बहुत तग आ गया था। उधर पीडमौन्ट मे प्रशिया के ढग पर बडे

जोर शोर से सैनिक सगठन किया जा रहा था। आस्ट्रिया को समझ नही पडता था, कि उसके अपने साम्राज्य मे निरन्तर विद्रोहो को किस प्रकार शान्त किया जाय ? कावूर के आदमी अपना कार्य कर रहे थे। उनकी सहायता के कारण लोम्बार्डी और वेनेटिया के क्रान्तिकारियो की हिम्मत बढती जाती थी। आखिर, आस्ट्रिया ने पीडमोन्ट को नोटिस दिया, कि तीन दिन के अन्दर-अन्दर नई भर्ती हुई सेनाओ को बर्खास्त कर दिया जाय। कावूर तो युद्ध चाहता ही था। उसने आस्ट्रियन नोटिस की कोई परवाह नही की। २१ अप्रिल, १८५९ के दिन आस्ट्रिया और पीडमान्ट मे युद्ध प्रारम्भ हो गया।

कावूर सब तैयारी पहले ही कर चुका था। समग्र इटली देशभक्ति और राष्ट्रीयता के भावो मे प्रदीप्त हो गया। सर्वत्र स्वयसेवक भर्ती होने लगे। स्वाधीनता की लहर ने सम्पूर्ण देश को व्याप्त कर लिया। यूरोप के अन्य देशो की सहानुभूति भी पीडमोन्ट के साथ थी। आस्ट्रिया जैसे शक्तिशाली राज्य का पीडमोन्ट जैसे तुच्छ राज्य पर आक्रमण किसी को भी पसन्द नही था। फ्रास तो पहले से ही तैयार बैठा था। झट नैपोलियन की सेनाएं इटली पहुँच गई। कावूर ने पीडमोन्ट की पार्लियामेन्ट मे भाषण देते हुए कहा—अब अगली पार्लियामेन्ट सारे इटली की होगी, केवल पीडमोन्ट की नही। निस्सन्देह, वह ठीक था।

यह युद्ध केवल दो मास तक जारी रहा। मजन्टा और साल्फेरिनो के युद्धो मे आस्ट्रियन सेनाएँ बुरी तरह से परास्त हुई। विक्टर एमेनुअल द्वितीय ने बडी धूमधाम के साथ लोम्बार्डी की राजधानी मिलान मे प्रवेश किया। टस्कनी, पर्मा और मोडेना के राज्यो मे हाप्सबुर्ग वश के विविध राजाओ को राज्यच्युत कर दिया गया। पोप के राज्य के उत्तरी प्रदेशो ने भी उद्घोषित किया, कि हम पोप के अधीन न रहेगे। ये सब प्रदेश पीडमोन्ट के राज्य मे सम्मिलित होना चाहते थे। जनता की यही इच्छा थी।

नैपोलियन तृतीय का युद्ध से पृथक् होना—इटालियन स्वाधीनता का यह सग्राम इस प्रकार पूर्ण सफलता के साथ चल रहा था, कि सम्पूर्ण यूरोप ने बडे ही आश्चर्य के साथ यह सवाद सुना, कि नैपोलियन तृतीय आस्ट्रिया के साथ सन्धि करने को उद्यत है। बात यह थी, कि पीडमोन्ट की असाधारण सफलता से नैपोलियन घबरा गया था। वह समझता था, कि यदि इटालियन लोग इसी प्रकार सफल होते रहे, तो इटली अत्यन्त शक्तिशाली राज्य बन जायगा, और उसे फ्रास की सरक्षा की कोई आवश्यकता नही रहेगी। इटली की राष्ट्रीय एकता से फ्रास को कोई लाभ न था। अपने पडोस मे एक शक्तिशाली स्वतन्त्र राज्य की स्थापना नैपोलियन को पसन्द न थी। इसके अतिरिक्त, युद्ध कितना भयकर होता है, इसका नैपोलियन तृतीय को कोई अनुभव न था। उसके चाचा को युद्ध मे वास्तविक आनन्द आता था, पर नैपोलियन तृतीय मे साहस और वीरता का अभाव था। वह समझता था, कि आस्ट्रियन लोगोको वेनेटिया से बाहर निकालने में कमसे कम तीन लाख सैनिको की आवश्यकता होगी। इतने सैनिको को जुटा सकने की नैपोलियन को कोई आशा नही थी। साथ ही, इस बात की भी खबर थी, कि प्रशिया आस्ट्रिया की सहायता के लिये तैयारी कर रहा है, और स्वाभाविक रूप से प्रशिया फ्रास पर ही आक्रमण करेगा। इन सब कारणो से नैपोलियन ने यही उचित समझा, कि झटपट आस्ट्रिया से सन्धि कर ली जाए। उसने पीडमोन्ट को सूचना तक देने की आवश्यकता नही समझी।

ज्यूरिच की सन्धि—नैपोलियन के इस प्रकार युद्ध से पृथक् हो जाने का परिणाम यह हुआ, कि पीडमौन्ट को भी आस्ट्रिया से सन्धि करने के लिये विवश होना पड़ा। यद्यपि कावूर की इच्छा थी, कि अकेले ही युद्ध को जारी रखा जाए, पर राजा विक्टर एमेनुअल इससे सहमत नहीं था। वह भलीभांति अनुभव करता था, कि फ्रांस की सहायता के बिना आस्ट्रिया को परास्त कर सकना असम्भव है। इस दशा में इटली और आस्ट्रिया के युद्ध की समाप्ति हो गई, और १० नवम्बर, १८५९ के दिन ज्यूरिच नामक स्थान पर दोनों राज्यों ने परस्पर सन्धि कर ली। इस सन्धि द्वारा लोम्बार्डी का प्रदेश पीडमौन्ट को प्राप्त हुआ। वेनेटिया आस्ट्रिया के ही अधीन रहा। नीस और सेवाय फ्रांस को मिले, और परमा, मोडेना तथा टस्कनी को पीडमौन्ट ने अपने कब्जे में कर लिया। ज्यूरिच की सन्धि से इटालियन देशभक्तों की वास्तविक आकांक्षा पूर्ण नहीं हो सकी। वेनेटिया का आस्ट्रिया के अधीन रहना उन्हें शूल की तरह चुभ रहा था। इस के अतिरिक्त, मध्य तथा दक्षिणी इटली अभी राष्ट्रीय एकता के सूत्र में सम्बद्ध नहीं हुए थे। वहां अनेक पृथक राज्य अब भी विद्यमान रहे। राष्ट्रीय संगठन के आदर्श को पूर्ण करने के लिये अभी एक प्रयत्न की और आवश्यकता थी। इसे सम्पन्न होने में भी बहुत देर नहीं लगी। राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता की जिस प्रचण्ड भावना को १८५९ में असाधारण सफलता प्राप्त हुई थी, वही भविष्य में भी काम आई। शीघ्र ही, इटली एक संगठित व स्वतन्त्र राष्ट्र बन गया।

३ राष्ट्रीय एकता की स्थापना

आस्ट्रिया परास्त हो गया था। उत्तरी इटली के अधिकांश प्रदेशों पर विक्टर एमेनुअल द्वितीय का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। इस समय शेष इटली को पीडमौन्ट के साथ सम्मिलित करने के लिये जो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उसमें किसी विदेशी शक्ति की सहायता प्राप्त नहीं की गई। वह इटालियन राष्ट्रीयता की अपनी कृति थी। सम्पूर्ण इटली की राष्ट्रीय एकता में पुराने राजवंश जो बाधा डाल रहे थे, उसे जनता ने अपने ही प्रयत्न से नष्ट कर दिया। इस नवीन आन्दोलन का नेता प्रधान नेता गेरीवाल्डी था।

गेरीवाल्डी—गेरीवाल्डी का जन्म नीस नामक स्थान पर सन् १८०७ में हुआ था। उसे नाविकता की शिक्षा प्राप्त हुई थी। उसकी प्रवृत्तियां शुरू से ही रिपब्लिकन थीं। मेजिनी के साथ मिलकर वह सम्पूर्ण इटली में एक रिपब्लिक स्थापित करने के लिये उद्योग कर रहा था। इसी अपराध में सरकार की उस पर कोप-दृष्टि हो गई, और उसे दक्षिणी अमेरिका भाग जाने के लिये बाधित होना पड़ा। वहां पर भी वह शान्त नहीं बैठ सका। उन दिनों दक्षिणी अमरिका में लेटिन-अमेरिकन लोग स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये कोशिश कर रहे थे। गेरीवाल्डी उनमें सम्मिलित हो गया। दस वर्ष तक वह निरन्तर अमेरिकन स्वाधीनता-संग्राम में युद्ध करता रहा। इसके बाद वह अपने देश वापस लौट आया। स्वतन्त्रता के लिये जहां कहीं भी प्रयत्न हो रहा हो, गेरीवाल्डी सर्वत्र सहायता करने को उद्यत था। १८४७ में इटली में यह लहर बड़ी तीव्र थी, कि पोप पायस दशम के नेतृत्व में इटली की राष्ट्रीय एकता स्थापित की जाए। गेरीवाल्डी इससे सहमत नहीं था, पर सच्चे सिपाही के समान उसे यह सोचने की आवश्यकता नहीं थी, कि उसकी अपनी सम्मति क्या है। उसके

क्रान्तिकारी गैरीबाल्डी

लिये इतनी बात ही पर्याप्त थी, कि इटली की स्वाधीनता तथा राष्ट्रीय एकता के लिये प्रयत्न हो रहा है। वह उसमें सम्मिलित हो गया। अगले वर्ष १८४८ में इटली में क्रान्ति हुई।

पीडमौन्ट के नेतृत्व मे इटालियन लोग आस्ट्रिया को परास्त करने के लिय सन्नद्ध हो गये। गेरीवाल्डी ने इस युद्ध के लिये ३००० स्वयसेवक एकत्रित किये। परन्तु १८४८ की क्रान्ति सफल नही हो सकी। क्रान्तिकारियो पर भयकर अत्याचार किये गये। गेरीवाल्डी फिर अपना देश छोडकर अमेरिका चला गया। इस बार उसने न्यूयार्क मे कारोबार शुरू किया। कारोबार मे उसे अच्छी सफलता मिली। काफी धन कमाकर वह फिर इटली वापस आया, और अपने देश के समीप ही कपरेरा नाम का एक टापू खरीद कर उसमे आराम मे रहने लगा। पर गेरीवाल्डी को अब भी शान्ति नही थी, वह इटली के आन्दोलनो का बडे ध्यान से अध्ययन कर रहा था। १८५९ मे कावूर की नीतिनिपुणता मे जब आस्ट्रिया के साथ युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब गेरीवाल्डी उसमे सम्मिलित हो गया। लोम्बार्डी मे आस्ट्रियन सेनाओ को बाहर निकालने मे उसने बडा महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।

सिसली पर आक्रमण—पर गेरीवाल्डी का वास्तविक कार्य १८६० मे शुरू होता है। इस समय इटालियन देशभक्तो के सम्मुख सबसे बडी समस्या दक्षिणी इटली को अपने साथ सम्मिलित करने की थी। दक्षिणी इटली मे—नेपल्स और सिसली मे—बूर्बो वश का एक पुराने ढग का राजा राज्य करता था, जो राष्ट्रीय एकता, स्वाधीनता, शासन-सुधार आदि सम्पूर्ण नवीन भावनाओ का कट्टर विरोधी था। नेपल्स के इस राजा को परास्त करना कावूर के सम्मुख सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था। आखिर, गेरीवाल्डी ने यह कार्य अपने हाथ मे लिया। एक हजार स्वयसेवको के साथ उसने सिसली मे प्रवेश किया। ये स्वयसेवक लाल कुरते पहनते थे, इनका वेश बहुत सादा होता था। इतिहास मे ये लोग 'लाल कुडती' के नाम मे प्रसिद्ध है। मई, १८६० मे अपनी 'लाल कुडती' सेना के साथ गेरीवाल्डी सिसली पहुच गया। सिसली की जनसख्या तीस लाख मे कम न थी। पर गेरीवाल्डी का मुकाबला करनेवाला वहा कौन था? जनता की सहानुभूति उसके साथ थी, बात की बात में सिसली गेरीवाल्डी के अधीन हो गया।

नेपल्स की अधीनता—गेरीवाल्डी ने उद्घोषित किया, कि मै विक्टर एमेनुअल द्वितीय की तरफ मे सिसली का शासन अपने हाथो मे लेता हूँ। सिसली की जनता ने उसका साथ दिया। विक्टर एमेनुअल द्वितीय के अधीन होकर उन्हे हार्दिक प्रसन्नता थी। जनता में राष्ट्रीय एकता की जो भावना उत्पन्न हो चुकी थी, वस्तुत वह अपना कार्य कर रही थी। गेरीवाल्डी तो उसमे निमित्तमात्र था। सिसली मे रहते हुए गेरीवाल्डी के स्वयसेवको की सख्या एक हजार से बढकर चार हजार तक पहुँच गई। इस सेना को लेकर उसने नेपल्स की ओर प्रस्थान किया। वहा पचास हजार देशभक्त उसके आगमन की बडी उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे। नेपल्स पर हमला किया गया। बूर्बो राजा फ्रासिस द्वितीय उसका मुकाबला नही कर सका। नेपल्स जीत लिया गया, और फ्रासिस द्वितीय देश छोडकर भाग गया। गेरीवाल्डी नेपल्स का भी शासक बन गया।

राष्ट्रीय एकता की स्थापना—गेरीवाल्डी की इच्छा थी, कि अब रोम पर आक्रमण कर उसे भी अपने अधीन कर लिया जाए। यदि वह रोम पर आक्रमण करता, तो उसे अवश्य ही सफलता प्राप्त हो जाती। पर कठिनता यह थी, कि फ्रास इस बात को सहन करने के लिये तैयार नही था। फ्रेंच लोग रोमन कैथोलिक धर्म को मानने वाले थे। वे पोप

की राजधानी का इस प्रकार 'अपमान' कभी सहन न कर सकते, और नैपोलियन तृतीय को इटालियन एकता के मार्ग में रोड़े अटकाने का एक उत्तम अवसर हाथ लग जाता। इसलिये रोम पर आक्रमण करने का विचार छोड़ दिया गया, और विक्टर एमेनुअल द्वितीय ने रोम को छोड़कर पोप के अन्य सब प्रदेशों को अपने हस्तगत कर लिया। रोम पर पोप का स्वामित्व अक्षुण्ण रहा। परन्तु नेपल्स, सिसली और पोप का राज्य (रोम को छोड़कर) अब विक्टर एमेनअल द्वितीय के अधीन हो चुके थे। मध्य और दक्षिणी इटली के प्रदेश भी अब राष्ट्रीय एकता के सूत्र में संगठित हो गये थे।

कावूर की मृत्यु—१८ फरवरी, १८६१ के दिन इटली की राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। महासभा के लिये टूरिन नगर चुना गया था। इटली की स्वाभाविक राजधानी रोम अभी तक पोप के अधीन थी। इसलिये वहां अधिवेशन नहीं किया जा सकता था। १७ मार्च को राष्ट्रीय महासभा ने विक्टर एमेनुअल द्वितीय को इटली का राजा स्वीकृत किया। इस प्रकार इटली की राष्ट्रीय एकता स्थापित हुई, और कावूर का स्वप्न पूर्ण हो गया। अपने कार्य को पूरा कर १८६१ में कावूर की मृत्यु हो गई। वह कार्यभार से बहुत अधिक श्रान्त हो चुका था, पर अपनी आकांक्षा के पूर्ण हो जाने से उसके हृदय में वास्तविक प्रसन्नता थी।

इटली की राष्ट्रीय एकता के पूर्ण होने में अभी दो कमियां शेष थीं। वेनेटिया अभी तक भी आस्ट्रिया के अधीन था और रोम पर पोप का शासन था। इटालियन देशभक्त इन दोनों प्रदेशों के अभाव में अपने राष्ट्र को पूर्ण नहीं समझते थे। परन्तु इन्हें प्राप्त करने के लिये भी शीघ्र ही अवसर उपस्थित हुए, और इटालियन राजनीतिज्ञों ने उनका बड़ी कुशलता से प्रयोग किया।

वेनेटिया की प्राप्ति—१८६६ में आस्ट्रिया और प्रशिया में युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध में इटली ने प्रशिया की सहायता की। इटली और प्रशिया दोनों ने एक साथ आस्ट्रिया पर आक्रमण किया। इटली को परास्त कर सकना आस्ट्रिया के लिये कठिन नहीं था। शीघ्र ही, उसकी सेनाएँ पराजित होकर लौट आईं। पर आखिरकार युद्ध में प्रशिया की विजय हुई और आस्ट्रिया परास्त हुआ। सन्धि परिषद् में इटली भी विजयी प्रशिया के साथ सम्मिलित हुआ, और अपनी हार्दिक मनोकामना—वेनेटिया की प्राप्ति—को पूर्ण करने में समर्थ हुआ। आस्ट्रिया के विरुद्ध प्रशिया की सहायता करने का यह अच्छा और न्याय्य इनाम था। दो छोटे-छोटे प्रदेश और थे, जो वेनेटिया के साथ ही आस्ट्रिया के अधीन थे—ट्रेन्ट और ट्रिएस्त। इटली की कोशिश थी, कि इन्हें भी इस अवसर पर प्राप्त कर ले। पर इसमें उसे सफलता नहीं हुई। १९१८ तक ये प्रदेश आस्ट्रिया के ही अधीन बने रहे। राष्ट्रीय इटली को यह बात कांटे की तरह चुभती रही। आखिर, १९१४-१८ के यूरोपीय महायुद्ध की समाप्ति पर जब आस्ट्रिया परास्त हुआ, तब इटली इन प्रदेशों को भी अपने साथ सम्मिलित करने में सफल हुआ।

रोम की प्राप्ति—रोम को अपने साथ मिलाने का अवसर १८७० में उपस्थित हुआ। फ्रांस की सहायता से पोप रोम में अपने अधिकार को अक्षुण्ण बना सकने में समर्थ था। नैपोलियन तृतीय की ओर से भेजी हुई एक फ्रेंच सेना हमेशा रोम में मौजूद रहती थी, और

इटालियन देशभक्तों के सब प्रयत्नों का मुकाबला करती रहती थी। १८७० में फ्रांस और प्रशिया में युद्ध शुरू हुआ। प्रशिया का मुकाबला करने के लिये नैपोलियन को बाधित होना पड़ा, कि अपनी सेनाओं को रोम में वापस बुला ले। अब पोप क्या कर सकता था? विक्टर एमेनुअल द्वितीय ने चाहा, कि पोप से किसी प्रकार का समझौता हो जाए। पर वह तैयार नहीं हुआ। इस पर एक इटालियन सेना ने रोम पर आक्रमण कर दिया। रोमन जनता की सहानुभूति भी आक्रान्ताओं के साथ थी। पोप भागकर अपने एक राजप्रासाद में जा छिपा, और रोम पर इटालियन सेना का कब्जा हो गया। रोम-निवासियों से इस प्रश्न पर सम्मति ली गई, कि वे इटली के साथ सम्मिलित होना चाहते हैं या नहीं? एक लाख तीस हजार वोट पक्ष में आये, और पन्द्रह सौ वोट विरोध में। पोप ने बार-बार अपने कैथोलिक भक्तों और अनुयायियों का अपनी सहायता के लिये आवाहन किया, बार-बार फतवे (बुल) निकाले, पर किसी का कुछ प्रभाव न हुआ। इटली की अधिकांश जनता कैथोलिक धर्म को माननेवाली थी। पर उसने पोप के फतवों पर कोई ध्यान नहीं दिया। तीन सदी पहले पोप की उँगली के इशारे पर सारा यूरोप युद्ध के लिये तैयार हो सकता था। पर अब जमाना बदल चुका था। धर्म का स्थान अब राष्ट्रीयता ने ले लिया था।

यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि सगठित इटली की नवीन राजधानी रोम को बनाया जाय। १८७१ में राजा, दरबार और पार्लियामेन्ट—सब रोम में चले आये। रोम में पार्लियामेन्ट का उद्घाटन करते हुए विक्टर एमेनुअल ने कहा—हमारी राष्ट्रीय एकता स्थापित हो गई है अब हमारा कार्य अपने राष्ट्र को महान् तथा समृद्ध बनाना है। वस्तुत इटली के सम्मुख अब यही कार्य था। इसमें उसे असाधारण सफलता हुई। शीघ्र ही इटली यूरोप के प्रमुख राज्यों में गिना जाने लगा।

पोप की स्थिति—इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व यह बताना आवश्यक है, कि रोम के अधिगत हो जाने के बाद पोप की क्या स्थिति रह गई। एक हजार वर्ष के लगभग से रोम पर पोप का अबाधित प्रभुत्व था। पर अब उसका यह आधिपत्य नष्ट हो गया। १८७१ के मई मास में इटली की पार्लियामेंट ने एक कानून पास किया, जिसमें यह उद्घोषित किया गया, कि पोप को धार्मिक मामलों में पूर्ण स्वाधीनता रहेगी, और उसके व्यक्तित्व को राजा के समान पवित्र समझा जायगा। वह स्वतन्त्र राजाओं के समान शान-शौकत से रह सकेगा, और उसे यह भी अधिकार होगा, कि विदेशों में अपने दूत भेजे और विदेशी दूत उसके दरबार में आवे। अपने राजप्रासाद तथा उसके चारों ओर के छोटे से प्रदेश में वह स्वतन्त्र राजा के समान रहेगा, और इटालियन सरकार का कोई कर्मचारी उसके 'राज्य' में प्रवेश नहीं कर सकेगा। यह भी व्यवस्था की गई, कि इटालियन राज्यकोष से पोप को प्रतिवर्ष उन्नीस लाख रुपये पेंशन के तौर पर दिये जाया करेंगे। पर पोप इन व्यवस्थाओं से सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने न केवल पेंशन लेने से इन्कार किया, पर साथ ही एक उद्घोषणा प्रकाशित की, जिसमें कि इटालियन सरकार के कार्यों का विरोध किया गया और रोम पर अपना अधिकार साबित किया गया। परन्तु पोप की इन उद्घोषणाओं की ओर ध्यान देनेवाला अब कोई न रहा था।

उन्नीसवां अध्याय

जर्मनी का संगठन

१. राष्ट्रीयता एकता का प्रादुर्भाव

राष्ट्रीयता की भावना—जर्मनी मे राष्ट्रीयता की भावना को उत्पन्न करने के लिये जो विविध तत्त्व कार्य कर रहे थे, उन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। फ्रेंच राज्यक्रान्ति के समय क्रान्ति की नवीन प्रवृत्तियों ने जर्मनी पर बहुत प्रभाव डाला था। विशेषतया, नैपोलियन की विजयो के अनन्तर विविध जर्मन राज्यो मे एकता की आवश्यकता अनुभव होने लग गई थी। कतिपय राज्यो को मिलाकर नैपोलियन ने जिस संघ का निर्माण किया था, उसके कारण जर्मन लोगो को एक संगठन मे रहने का अभ्यास भी प्रारम्भ हो गया था। १८१५ मे वीएना की कांग्रेस मे स्टाइन जैसे जर्मन देशभक्तो ने इस बात पर बहुत जोर दिया था, कि विविध जर्मन राज्यो को एक सूत्र मे संगठित किया जाए। उस समय जर्मन जनता की माग पर कोई ध्यान नही दिया गया। विविध राजवंशो का पुनरुद्धार किया गया और राजवंशो तथा कुलीन श्रेणी के हितो को दृष्टि मे रखकर राज्यो की नई व्यवस्था की गई। देशभक्तो की इच्छाओ की उपेक्षा कर वीएना मे जिस जर्मन राज्यसंघ का निर्माण किया गया था, उसमे कुल मिलाकर ३८ राज्य सम्मिलित थे। पर इन राज्यो का संगठन सुदृढ नही था। प्रत्येक राजा पूर्णतया स्वतन्त्र था। जर्मन राज्य सँघ की एक राजसभा बनायी गई थी, जिसके अधिवशन फ्रांकफोर्ट में होते थे। पर इस सभा के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित नही होते थे, राजा ही उन्हे मनोनीत करते थे। राजसभा मे कोई प्रस्ताव तब तक स्वीकृत नही समझा जाता था, जब तक कि सम्पूर्ण प्रतिनिधि उससे सहमत न हो। यदि किसी एक राज्य का प्रतिनिधि भी किसी प्रस्ताव के विरोध में हो, तो उसे अस्वीकृत समझा जाता था। इस व्यवस्था का परिणाम यह था, कि सुधार व उन्नति की कोई भी बात फ्रांकफोर्ट की राजसभा मे पास न हो सकती थी। राजा लोग जर्मनी की राष्ट्रीय एकता और जनता के अधिकार—दोनो के विरोधी थे। परन्तु जनता में स्वाधीनता और राष्ट्रीयता की प्रवृत्तिया काम कर रही थी। गुप्त समितिया इन सिद्धान्तो के प्रचार मे विशेषरूप से तत्पर थी। विश्वविद्यालयो में रात दिन इनकी चर्चा रहती थी। विद्यार्थियो के दिमागो मे नये विचार घर कर गये थे। संगीत, कविता, व्याख्यान, नाटक—आदि साधनो स्वाधीनता और राष्ट्रीयता का प्रचार किया जा रहा था। यही कारण है, कि १८३० और १८४८ मे जर्मनी भी मे अनेक स्थानो पर क्रान्तिया हुईं। यद्यपि ये क्रान्तिया कही भी पूर्णतया सफल नही हो सकीं, तथापि इनसे इतना लाभ अवश्य हुआ कि जनता मे जागृति उत्पन्न हो गई। विशेपतया, १८४८ मे फ्रांकफोर्ट मे राजसभा की सर्वथा उपेक्षा कर जिस राष्ट्रीय

महासभा की स्थापना की गई थी, उसने राष्ट्रीय एकता के लिये मैदान तैयार करने मे बहुत सहायता पहुचाई। एक बार जर्मन लोगो ने अच्छी तरह अनुभव कर लिया, कि हम सब एक है, और हमारे राष्ट्र को शीघ्र ही सगठित होना चाहिये। राजाओ के विरोध से फ्राकफोर्ट की महासभा सफल न हो सकी। पर उसने जो कार्य किया था, वह व्यर्थ नही गया।

आर्थिक दृष्टि से एकता की आवश्यकता—राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति के अतिरिक्त कुछ आर्थिक कारण भी थे, जो जर्मनी को एक राष्ट्र बनाने के लिये काम कर रहे थे। जर्मनी के सब राज्य अपने को एक दूसरे मे सर्वथा पृथक् समझते थे। इसका परिणाम यह था, कि सबके व्यापारिक कानून पृथक्-पृथक् थे। सबमे आयात और निर्यात माल पर कर लिये जाते थे। इसका असर व्यापार पर क्या होता था, इसे एक उदाहरण द्वारा सुगमता मे समझा जा सकता है। फल्डा और आल्टनबुर्ग के बीच की दूरी केवल १२५ मील है। यदि कोई व्यापारी अपना माल लेकर फल्डा से आल्टनबुर्ग जाता था, तो उसे ३४ राजकीय सीमाओ को पार करना पडता था। औसत मे प्रत्येक चार मील चल चुकने के अनन्तर उसे नवीन राजकीय सीमा से गुजरना होता था, और वहा चुगी आदि तरह-तरह की दिक्कतो का सामना करना पडता था। व्यापारी लोग इस से बहुत तग थे। १८१० मे व्यापारियो की एक सभा ने फ्राकफोर्ट की राजसभा से शिकायत की थी, कि हैम्बुर्ग से आस्ट्रिया या बर्लिन से स्विट्जरलैण्ड तक जाने के लिये दस राज्या को पार करना पडता है, और उस व्यापारी को, जिसने एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाना हो, दस विविध व्यापारी कानूनो तथा चुगी के कायदो का अनुशीलन करना होता है। जर्मन व्यापारियो के लिये यह कितनी कठिन समस्या थी, इसका अनुमान सहज मे किया जा सकता है।

व्यापार-सघ—इसी का परिणाम हुआ, कि १८३४ मे अनेक जर्मन राज्यो ने परस्पर मिलकर व्यापारिक प्रयोजनो के लिये एक व्यापार-सघ (ट्शालफेराइन) का सगठन किया। इसमें १७ राज्य सम्मिलित हुए। इन राज्यो में आन्तरिक व्यापारी माल पर कोई चुगी नही लगती थी, पर जब विदेशो से कोई माल इस सघ मे प्रविष्ट होना था, तब उस पर चुगी ली जाती थी। धीरे-धीरे अन्य जर्मन राज्य भी इस सघ मे सम्मिलित हो गये। वे भलीभाति अनुभव करते थे, कि व्यापारी दृष्टि से जर्मन राज्यो का हित इसी बात मे है, कि मिलकर एक सघ का निर्माण कर ले। व्यापार-सघ ने जर्मनी की राष्ट्रीय एकता मे बहुत सहायता पहुँचाई। आर्थिक हित मानवीय मामलो मे बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। जब आर्थिक दृष्टि से जर्मन लोगो को एकता अवश्यम्भावी प्रतीत हो रही थी, तब राजनीतिक तथा राष्ट्रीय एकता की उपयोगिता का अनुभव करना बहुत कठिन न था।

प्रशिया की महत्त्वाकाक्षा—यह पहले प्रदर्शित किया जा चुका है, कि १८१५ मे बने जर्मन राज्यसघ मे दो राज्य सबसे प्रमुख थे—आस्ट्रिया और प्रशिया। अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिये इन दोनो मे सघर्ष चल रहा था। प्रशिया के अधिकाश निवासी जर्मन जाति के थे। आस्ट्रिया के राज्य मे जर्मन लोगो की कमी नही थी, पर हाप्सबुर्ग वश के आस्ट्रियन प्रदेशो मे बहुत से लोग चैक, स्लाव आदि गैर-जर्मन जातियो के भी थे। यही कारण था, कि राष्ट्रीय दृष्टि से सगठित जर्मन राज्य में आस्ट्रिया का प्राधान्य नही हो

सकता था। इसलिये आस्ट्रिया चाहता था, कि जर्मनी का संगठन बहुत ही कमजोर तथा ढीला-ढाला रहे। जर्मनी में राष्ट्रीयता की भावना विकसित हो जाने पर गैर-जर्मन जातियों द्वारा आबाद आस्ट्रिया उसमें कभी भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं कर सकेगा, इस बात को प्रशिया खूब समझता था। जर्मनी में आस्ट्रिया ने जो सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया हुआ था, उसे नष्ट करने का एक अच्छा और सरल उपाय यह था, कि प्रशिया जर्मन राष्ट्रीयता का पक्षपोषण करे। प्रशिया ने इसी उपाय का प्रयोग किया। प्रशिया के उत्कर्ष के लिये जो विविध राजनीतिज्ञ और नेता कार्य कर रहे थे, उन्होंने जर्मनी की राष्ट्रीय भावनाओं का साथ दिया। व्यापार-संघ का निर्माण प्रशिया के नेतृत्व में ही हुआ था। आस्ट्रिया इस संघ को घृणा की दृष्टि से देखता था, और वह इसमें सम्मिलित तक न हुआ था। प्रशिया इस व्यापार-संघ का प्रमुख प्रवर्तक था। फ्रांकफोर्ट की राजसभा के रूप में आस्ट्रिया के नेतृत्व में जिस जर्मन राज्यसंघ का निर्माण हुआ था, जर्मन जनता उसके सर्वथा विरुद्ध थी। परन्तु प्रशिया के नेतृत्व में संगठित व्यापार-संघ की उपयोगिता में किसी भी देशभक्त को सन्देह नहीं था।

प्रशिया की सेना—सैनिक दृष्टि से प्रशिया जिस प्रकार असाधारण उन्नति कर रहा था, उस पर भी कुछ प्रकाश डालने की आवश्यकता है। नेपोलियन के युद्धों में प्रशिया जिस प्रकार फ्रांस द्वारा पराजित हुआ था, उससे प्रशियन नेता बहुत उद्विग्न थे। इसलिये टिलसिट की सन्धि के बाद उन्होंने सेना के पुनः संगठन का उपक्रम किया। शार्नहोर्स्ट की प्रेरणा से प्रशिया में बाधित सैनिक सेवा की पद्धति जारी की गई। प्रत्येक पुरुष के लिये आवश्यक था, कि वह सैनिक शिक्षा प्राप्त करे और कुछ निश्चित समय तक सेना में काम करे। निश्चित समय के समाप्त हो जाने पर उसे इजाजत थी, कि वह अपनी इच्छा से कोई स्वतन्त्र कार्य कर सके। पर निश्चित समय के बाद भी आवश्यकता पड़ने पर उसे सैनिक सेवा के लिये बुलाया जा सकता था। इस पद्धति से देश के सम्पूर्ण युवक सेना में भर्ती रहते थे, और सेवाकाल के समाप्त हो जाने पर भी आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सेना में भर्ती किया जा सकता था। इस प्रकार देश के सैनिक कार्य के योग्य आयु के सम्पूर्ण पुरुष प्रशियन सेना में सम्मिलित होने के लिये उद्यत रहते थे। इस पद्धति का परिणाम यह हुआ, कि प्रशियन सेना यूरोप भर में सबसे आगे बढ़ गई। आगे चलकर अन्य देशों ने भी प्रशिया का अनुसरण किया, और अपने यहाँ बाधित सैनिक सेवा की प्रणाली का प्रारम्भ किया। प्रशिया की यह अद्वितीय सेना न केवल अपने देश के लिये युद्ध करने को सदा उद्यत रहती थी, पर प्रशिया के नेतृत्व में इसे जर्मनी के संगठन के लिये भी प्रयुक्त किया जा सकता था। बेशक, यह प्रशियन सेना बहुत ही पुराने ढंग के आदर्शों से संचालित होती थी, पर इसमें सन्देह नहीं, कि जर्मन देशभक्त अपने देश की राष्ट्रीय एकता के लिये इस पर भरोसा कर सकते थे।

समस्याएं—१८६० में इटली में राष्ट्रीय एकता की स्थापना हो जाने से जर्मन लोगों में भी उत्साह का संचार हुआ। इटालियन संगठन का कार्य पीडमौन्ट के राजा विक्टर एमेनुअल द्वितीय के नेतृत्व में हुआ था। इससे जर्मन लोगों में यह विचार और भी प्रबल हो गया, कि जर्मनी की राष्ट्रीय एकता भी प्रशिया के नेतृत्व में अधिक सुगमता से सम्पादित की

जा सकती है। इस समय जर्मन लोगो के सम्मुख दो मुख्य कार्य थे—

(१) आस्ट्रिया के प्रभुत्त्व से छुटकारा पाना, और (२) विशुद्ध जर्मन राज्यो का प्रशिया की सरक्षा मे सुदृढ सगठन का स्थापित करना।

ये दोनो कार्य जर्मनी मे किस प्रकार किये गये, इस पर हमे अब विचार करना है।

२. बिस्मार्क का अभ्युदय

विलियम प्रथम का राज्यारोहण—सन् १८६१ मे प्रशिया की राजगद्दी पर विलियम प्रथम आरूढ हुआ। राज्यारोहण के समय उसकी आयु ६३ वर्ष की थी। अपनी युवावस्था मे वह प्रशियन सेना मे शामिल होकर नैपोलियन प्रथम के विरुद्ध लडाई लड चुका था। उसका सम्पूर्ण जीवन सैनिक के रूप में ही व्यतीत हुआ था। सैनिक जीवन का उसे बडा शौक था। उसे विश्वास था, कि प्रशिया का भाग्य सेना पर ही आश्रित है। राजा के दैवी अधिकार मे उसे जरा भी सन्देह नही था। वह समझता था, कि प्रशिया के लिये सर्वोत्तम शासन एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजा का ही हो सकता है। परन्तु साथ ही वह यह भी समझता था कि राजा को जनता का लाभ चाहनेवाला, परिश्रमी, दयालु, ईमानदार और बुद्धिमान होना चाहिये। निस्सन्देह, उसमे ये सब गुण विद्यमान थे। वह अपने राज्य मे एक लोकोपकारी पर जबर्दस्त राजा के समान शासन करना चाहता था। इसम सन्देह नही कि अपने उद्देश्य मे उसे सफलता भी प्राप्त हुई। प्रशिया को उन्नत तथा शक्तिशाली बनाने में विलियम प्रथम ने असाधारण क्षमता से कार्य किया।

सैनिक सुधार—सेना को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिये विलियम प्रथम चाहता था, कि बाधित सैनिक सेवा की पद्धति मे कुछ सुधार किये जावे। उसका प्रस्ताव था, कि प्रत्येक आदमी को तीन वर्ष तक आवश्यक रूप से सैनिक सेवा करनी चाहिये। इससे पूर्व बाधित सैनिक सेवा का काल केवल दो वर्ष का था। सैनिक सेवा के बाद दो वर्षो तक प्रत्येक आदमी को इस समय सेना मे भर्ती के लिये तैयार रहना होता था, यद्यपि छावनी में रहने की आवश्यकता नही होती थी। विलियम इस काल को भी दो वर्ष के स्थान पर चार वर्ष कर देना चाहता था। इस प्रकार उसकी योजना के अनुसार प्रत्येक आदमी को अपनी युवावस्था के सात वर्ष सैनिक सेवा के लिये अर्पित करने पडते थे। विलियम प्रथम का खयाल था, कि उसकी योजना के अनुसार साढे चार लाख प्रशियन सैनिक हमेशा युद्ध के लिये तैयार रहेगे, और उनके अतिरिक्त जितने भी सैनिको की आवश्यकता होगी, भर्ती कर सकना कठिन नही होगा। इस सेना का मुकाबला यूरोप का कोई भी देश न कर सकेगा। इस परिवर्तन का प्रस्ताव प्रशिया की लोकसभा (लाण्डटाग) में पेश किया गया। परन्तु वहा वह स्वीकृत न हो सका। परिणाम यह हुआ, कि विलियम ने अपनी सहायता के लिये प्रधानमन्त्री के पद पर बिस्मार्क को नियत किया। बिस्मार्क ने जनता की इच्छा की परवाह न कर, लोकसभा तक की उपेक्षा करके विलियम की योजना को क्रिया मे परिणत किया। प्रशिया के नेतृत्व मे जर्मनी के सगठन का मुख्य श्रेय इस बिस्मार्क को ही प्राप्त है। अपने समय मे यूरोप का कोई भी राजनीतिज्ञ बिस्मार्क का मुकाबला नही कर सकता था। यह बिस्मार्क कौन था? इसका परिचय देना आवश्यक है। उन्नीसवी सदी मे यूरोप

ने जो अनेक अत्यन्त प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ उत्पन्न किये, बिस्मार्क उनमे से एक था।

प्रिंस बिस्मार्क—बिस्मार्क का जन्म उस समय मे हुआ था, जब वीएना की कांग्रेस के अधिवेशन हो रहे थे। प्रधानमन्त्री बनने के समय उसकी आयु ४७ वर्ष की थी। वह प्रशिया के एक प्रसिद्ध कुलीन जागीरदार घराने मे उत्पन्न हुआ था। प्रशिया के कुलीन जागीरदार—जो इतिहास मे 'जुन्कर' के नाम से प्रसिद्ध है—जनता के अधिकारो के कट्टर विरोधी थे। जनता भी अपना शासन अपने आप कर सकती है, यह बात उनकी समझ म ही न आती थी। बिस्मार्क के अपने विचार भी इसी ढग के थे। वह प्रशियन जुन्करो का अच्छा प्रतिनिधि था। जिस समय वह विश्वविद्यालय म पढता था, उसे पढाई लिखाई का जरा भी ध्यान नही रहता था। वह सदा शराब पीने और कुश्ती लडने मे रत रहता था। शिक्षा समाप्त कर वह सरकारी नौकरी मे प्रविष्ट हुआ। पर नियन्त्रण उसे वहा भी सह्य न था। नियन्त्रण का उल्लघन करने के अपराध पर उसे नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया। इसके बाद उसने अपनी जागीरदारी मे आराम से रहना प्रारम्भ किया। १८४७ मे वह प्रशियन राजसभा का (डीट) का सदस्य निर्वाचित हुआ। उदार विचारो के विरोध मे पुराने ढग के कुलीन लोगो का जो दल राजसभा में था, बिस्मार्क उसमे सम्मिलित हो गया, और शीघ्र ही उसने इस दल मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। वह 'शासन-विधान' को 'रद्दी कागज का टुकडा' नाम से सम्बोधन किया करता था। वह कहा करता था, क्या यह 'रद्दी कागज का टुकडा' परमेश्वर द्वारा नियत किये गये राजा और उसकी प्रजा के बीच मे मध्यस्थ का कार्य कर सकता है? उसका कहना था कि उदार विचारो के लोग बेवकूफ है। यदि उन्हें काबू में न रखा जायगा, तो राज्य तबाह हो जायगा। १८४८ मे प्रशिया म जब विद्रोह हुआ, तो बिस्मार्क ने राजसत्ता की रक्षा के लिये किसानो की एक फौज सगठित की। बर्लिन के विद्रोह को कुचलने मे इस फौज ने खूब काम किया। राजा को अपनी रक्षा करने की जितनी परवाह स्वय थी, उससे कही अधिक बिस्मार्क को थी। फ्राकफोर्ट की राष्ट्रीय महासभा की असफलता का समाचार जब बिस्मार्क ने सुना, तो उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। वह खुशी से नाच उठा। मैटरनिख और वेलिङ्गटन की तरह बिस्मार्क भी नई प्रवृत्तियो का कट्टर विरोधी था। उससे एक सन्तति पूर्व यूरोप के प्राय सभी राजनीतिज्ञ उसी की तरह के थे। पर अब उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में जमाना बदल चुका था, और इसीलिये बिस्मार्क के ये विचार बहुत अद्भुत तथा पुराने ढग के मालूम होते थे। यह नही समझना चाहिये, कि बिस्मार्क कोई असाधारण रूप से पुराने ढग का आदमी था। वीएना की कांग्रेस मे यूरोप भर के जो प्रतिनिधि एकत्रित हुए थे, वे सब उसी के ढग के थे। पर अब इतने समय के बाद बिस्मार्क के ये विचार बहुत भद्दे, असामयिक और अनुचित प्रतीत होते थे।

फ्राकफोर्ट की राष्ट्रीय महासभा की असफलता के अनन्तर १८५१ मे फिर से जर्मन राज्यसघ की पुरानी राजसभा का उद्धार किया गया। विलियम प्रथम ने बिस्मार्क को इस राजसभा मे प्रशिया का प्रतिनिधि नियत किया। आठ वर्ष तक वह इस सभा का सदस्य रहा। राष्ट्रीय एकता की भावना इस समय जर्मनी मे प्रादुर्भूत हो चुकी थी। फ्राकफोर्ट की राजसभा चाहे कितने ही पुराने ढग के लोगो की सभा क्यो न हो, पर राष्ट्रीयता की गूज इसमें

समय-समय पर सुनाई दे ही जाती थी। यही राजसभा एक ऐसी सगठित सस्था थी, जिसमे सम्पूर्ण जर्मनी के प्रतिनिधि एकत्रित होते थे, और जहा राष्ट्रीय एकता के प्रश्नो पर विचार होता रहता था। विस्मार्क को इस सभा मे जर्मन एकता की समस्या का अनुशीलन करने का अच्छा अवसर मिला। यहा उसका यह विश्वास वहुत दृढ हो गया, कि जर्मनी मे राष्ट्रीय एकता की स्थापना प्रशिया द्वारा ही की जा सकती हे। इस विश्वास को क्रिया मे परिणत करने की प्रवल आकाक्षा भी उसमें यही उत्पन्न हुई।

१८५९ में विस्मार्क को रूस मे प्रशियन राजदूत के पद पर नियत किया गया। यहा उसे रूसी भाषा सीखने और जार से मित्रता करने का अच्छा अवसर हाथ लगा। १८६२ में उसे फ्रास मे राजदूत वनाया गया। इन पदो पर कार्य करने के कारण विस्मार्क यूरोपियन राजनीति का अनुभवी पण्डित वन गया था। वडे-वडे राजनीतिज्ञो से उसने परिचय प्राप्त कर लिया था, ओर वह अच्छी तरह जान गया था कि राजनीति की शतरज किस प्रकार खेली जाती हे।

प्रधान मन्त्री विस्मार्क—१८६२ मे ही, जव कि विलियम प्रथम प्रशियन लोकसभा द्वारा अपने सैनिक सुधार सम्वन्धी प्रस्तावो को स्वीकृत कराने मे असमर्थ हुआ, उसने पुराने ढग के विचारो के कट्टर पक्षपाती और स्वेच्छाचारी राजसत्ता के प्रवल समर्थक विस्मार्क को प्रधानमन्त्री के सर्वोच्च राजकीय पद पर नियत किया। पहले विस्मार्क ने कोशिश की, कि अपनी नीति-चतुरता मे लोक-सभा में सैनिक सुधार के मसविदे को स्वीकृत करा लिया जाए। पर इस कार्य मे उसे असफलता हुई। आखिर, उसने स्वेच्छाचार का आश्रय लिया और लोकसभा की सर्वथा उपेक्षा कर शासन करना उसने अपना ध्येय वना लिया। राजा उसके साथ था। व्यवस्थापन विभाग की अन्यतम सभा—राजसभा भी, जिसमें कि कुलीन जागीरदार 'जुन्करों' का प्राधान्य था, उसके साथ थी। फिर उसे किस वात की परवाह हो सकती थी ? देश के शासन-विधान की उसने सर्वथा उपेक्षा की। लोकसभा उसके बजट को पास नही करती थी। इससे विस्मार्क का क्या विगडता था ? वह कहता था, राज्य की आवश्यकता हे, कि टैक्स वसूल होने चाहिये। 'राज्य की आवश्यकता' के नाम पर उसने किसी भी प्रकार की मनमानी करने में सकोच नही किया। लोकसभा ने सैनिक सुधार विल को पास नही किया था। पर विस्मार्क को इस वात की क्या चिन्ता थी। वह कहता था, राज्य की आवश्यकता है, अत सैनिक सगठन में सुधार होना ही चाहिये। इसी नाम पर लोकसभा के विरोध की उपेक्षा कर, उसने सेना में मनोवाछित सुधार किये। उसके स्वेच्छाचार से राजा, रानी और राजकुमार तक भी सव घवरा गये। वे डरते थे, कि विस्मार्क की नीति से कही विद्रोह न हो जाए। पर विस्मार्क उन्हे समझता था—विद्रोह से क्या डरना हे ? रणक्षेत्र में मृत्यु हुई, या फासी के तख्ते पर। दोनो प्रकार की मृत्यु एक समान रूप से सम्मानास्पद है। विस्मार्क की इस हिम्मत का ही नतीजा था, कि राजा विलियम प्रथम जनता की उपेक्षा करने के लिये तैयार हो गया। विस्मार्क इतना सख्त और साहसी था, कि खुले तौर पर उसका किसी के लिये भी विरोध कर सकना सम्भव नही था। सव लोग उस से डरते थे।

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये विस्मार्क का विश्वास था, कि सेना को शक्तिशाली

बनाना चाहिये। वह कहा करता था—इस समय के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का निर्णय व्याख्यानों और प्रस्तावों द्वारा नहीं होगा, उनका हल करने के लिये तो खून बहानेकी आवश्यकता होगी। इसी कारण सेना को मजबूत करने के लिये उसने लोकसभा की जरा भी परवाह नहीं की। उसके राजनैतिक उद्देश्यों का परिगणन इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) प्रशिया की सैनिक शक्ति को अद्वितीय और अजेय बनाना चाहिये।

(२) सैनिक बल का प्रयोग कर प्रशिया का विस्तार किया जाए, और राजनीतिक शक्ति में वृद्धि की जाए।

(३) युद्ध द्वारा आस्ट्रिया को जर्मन राज्यसंघ से बाहर निकालना चाहिये।

(४) आस्ट्रिया को बहिष्कृत कर प्रशिया के नेतृत्व में सम्पूर्ण जर्मन राज्यों का नवीन और सुदृढ संगठन स्थापित करना चाहिये।

(५) इसके अनन्तर, सैनिक शक्ति में अद्वितीय जर्मनी को सम्पूर्ण यूरोप की प्रमुख शक्ति बना देना चाहिये।

बिस्मार्क ने इन उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये जिस प्रकार प्रयत्न किया, इस पर हम क्रमश विचार करेंगे।

३ डेन्मार्क के साथ युद्ध

लोकसभा के बहुमत की सर्वथा उपेक्षा कर बिस्मार्क ने वाधित सैनिक सेवा की पद्धति को अधिक विस्तृत किया। रून और मोल्टके जैसे सुयोग्य सेनापतियों की अधीनता में प्रशियन सेना ने बडी उन्नति की। शीघ्र ही प्रशियन सेना यूरोप भर में सबसे अधिक शक्तिशाली हो गई। अब बिस्मार्क ने अनुभव किया, कि अपने कार्यक्रम को क्रिया में परिणत करने का उपयुक्त समय आ गया है।

हाल्स्टाइन और श्लेस्विग की समस्या—अपनी शक्ति को प्रदर्शित करने का पहला अवसर डेन्मार्क के साथ युद्ध में उपस्थित हुआ। जर्मनी और डेन्मार्क के बीच में दो प्रदेश थे, जो सदियों से डेन्मार्क के राजा के अधीन चले आते थे। इनके नाम हैं—श्लेस्विग और हॉल्स्टाइन। हॉल्स्टाइन की प्राय सम्पूर्ण जनता जर्मन जाति की थी। श्लेस्विग में आधे जर्मन बसते थे, और आधे डेन। ये दोनों प्रदेश डेन्मार्क के राजा के अधीन अवश्य थे, पर ये डेन्मार्क के हिस्से नहीं थे। डेन्मार्क और इनका राजा ही एक था, अन्य किसी प्रकार की एकता इनमें न थी। शासन इनका डेन्मार्क से पृथक् था। हॉल्स्टाइन जर्मन राज्य-संघ में भी सम्मिलित था, और इसके राजा की हैसियत से डेन्मार्क का राजा भी उपर्युक्त संघ में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार रखता था। उन्नीसवीं सदी में यूरोप के अन्य देशों के समान डेन्मार्क में भी राष्ट्रीयता की लहर चल रही थी, और डेन लोग अपनी राष्ट्रीय उन्नति के लिये प्रयत्न कर रहे थे। राष्ट्रवादी डेन देशभक्त लोगों की आकांक्षा थी, कि हॉल्स्टाइन और श्लेस्विग के प्रदेशों को भी डेन्मार्क में सम्मिलित कर लिया जाय, ताकि उनके देश की शक्ति अधिक बढ सके। पर जर्मन लोग इसके विरोध में थे। न केवल इन प्रदेशों के जर्मन निवासी, पर साथ ही जर्मनी के लोग भी डेन देशभक्तों की इस आकांक्षा का विरोध कर रहे थे। १८६३ में डेन्मार्क के राजा क्रिश्चियन दशम ने अपने देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव में आकर

उद्घोषणा की, कि श्लेश्विग को डेन्मार्क मे सम्मिलित कर लिया गया है, ओर इस कारण अब शासन-विधान मे आवश्यक परिवर्तन किये जावेगे। जर्मन लोग इस उद्घोषणा को नही सह सकते थे। प्रशिया ने इसका विरोध किया। बिस्मार्क ने सोचा, कि डेन्मार्क से लडाई शुरू करने का यह अच्छा मौका है, और इस युद्ध से प्रशिया को बहुत लाभ होगा। श्लेश्विग और हॉल्स्टाइन के महत्त्वपूर्ण प्रदेशो को हडपने का इस से अच्छा अवसर फिर हाथ न आयगा। उसने आस्ट्रिया को इन प्रदेशो की समस्या का निपटारा करने मे सहायता देने के लिये आमन्त्रित किया।

आस्ट्रिया चाहता था, कि विजित प्रदेशो का बटवारा किस प्रकार किया जायगा, इसका फैसला पहले ही कर लिया जाय। पर बिस्मार्क ने कहा, कि यह बात बाद मे निश्चित की जा सकेगी। आस्ट्रिया इसके लिये तैयार हो गया, और दोनो राज्यो की तरफ से सम्मिलित रूप से डेन्मार्क को अन्तिम सूचना दी गई, कि शीघ्र ही नवीन शासन-विधान का अन्त कर श्लेश्विग के प्रदेश को डेन्मार्क से पृथक् कर दिया जाय। पर क्रिश्चियन दशम इसे स्वीकृत करने के लिये उद्यत न हुआ। आखिर, प्रशिया और आस्ट्रिया की सम्मिलित सेनाओ ने १८६४ में डेन्मार्क पर आक्रमण कर दिया। युद्ध मे डेन्मार्क परास्त हो गया, ओर उसके राजा को न केवल श्लेश्विग और हॉल्स्टाइन, पर साथ ही लायनबुर्ग के प्रदेश को भी विजेताओ के सुपुर्द कर देने के लिये बाधित होना पडा। प्रशिया और आस्ट्रिया जैसे शक्तिशाली राज्यो के सम्मुख डेन्मार्क की हसियत ही क्या थी? उसकी बुरी तरह से पराजय हुई।

सन्धि—परन्तु लूट के माल के बँटवारे पर विजेताओ मे मतभेद हो गया। बिस्मार्क की इच्छा थी, कि तीनो प्रदेशो को प्रशिया मे मिला लिया जाए। आस्ट्रिया चाहता था, कि इन्हे जर्मन राज्यसघ मे स्वतन्त्र रूप से सम्मिलित किया जावे। आखिर, दोनो मे सन्धि हो गई। बिस्मार्क अनुभव करता था, कि अभी आस्ट्रिया से युद्ध करने का समय नही आया है, अत सन्धि कर लेने मे ही उसे फायदा नजर आता था। सन्धि के द्वारा विजित प्रदेशो की जो व्यवस्था हुई, वह इस प्रकार थी—(१) लायनबुर्ग को प्रशिया ने खरीद लिया। इसका मूल्य आस्ट्रिया को दिया गया। (२) श्लेश्विग प्रशिया को प्राप्त हुआ। प्रशिया इसे प्राप्त करने को बहुत उत्सुक था। कील का प्रसिद्ध बन्दरगाह इसी प्रदेश मे ही स्थित था। (३) हॉल्स्टाइन पर आस्ट्रिया ने अपना कब्जा जमा लिया।

इस सन्धि से आस्ट्रिया और प्रशिया—दोनो को एक बराबर लाभ हुआ। पर बिस्मार्क इसे केवल क्षणिक समझौता मात्र ही समझता रहा था। आस्ट्रिया को परास्त करने के लिये वह उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा मे था। यह अवसर भी उसे शीघ्र ही मिल गया।

८ आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध और उत्तरी जर्मन राज्यसघ का निर्माण

युद्ध की तैयारी—बिस्मार्क के सम्मुख अगला कार्य यह था, कि आस्ट्रिया को परास्त कर उसे जर्मन राज्यसघ से बहिष्कृत करे। पर यह कार्य डेन्मार्क जैसे छोटे से राज्य को परास्त कर देने के समान सुगम नहा था। आस्ट्रिया यूरोप के सब से अधिक शक्तिशाली और प्राचीन राज्यो में से एक था। उसके साथ युद्ध यूरोप के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता था। अत बिस्मार्क ने पहले यह उचित समझा, कि अन्य

राज्यो की नब्ज देख ले। ग्रेट ब्रिटेन आस्ट्रियन युद्ध मे किसी प्रकार से हस्तक्षेप करेगा, इसकी कोई सम्भावना न थी। रूस के जार एलेक्जेण्डर द्वितीय से बिस्मार्क पहले ही मित्रता कर चुका था। फ्रास का क्या रुख होगा, यह अनिश्चित था। अत बिस्मार्क स्वय फ्रास के सम्राट् नैपोलियन ततीय से मिलने के लिये गया। नैपोलियन को राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की बडी धुन थी। कम से कम वह प्रदर्शित तो यही करता था। अत बिस्मार्क ने उसे समझाया, कि हम लोग जर्मनी मे राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने के लिये प्रयत्न कर रहे है। आस्ट्रिया इस प्रयत्न मे सबसे बडा विघ्न है। अत इस विघ्न को दूर करने के शुभ कार्य मे नैपोलियन को प्रशिया की सहायता करनी चाहिये। बिस्मार्क ने केवल शुष्क सिद्धान्तो की ही विवेचना नही की। उसने नैपोलियन को ठोस लालच भी दिया। जिस प्रकार कावूर ने आस्ट्रिया के विरुद्ध फ्रास की सहायता प्राप्त करने के लिये नीस और सेवाय के प्रदेश पेश किये थे, इसी प्रकार बिस्मार्क ने बेल्जियम और राइन की घाटी के कुछ प्रदेशो को प्रदान करने का जिक्र किया। बिस्मार्क को केवल यही अभीष्ट था, कि फ्रास आस्ट्रिया के साथ न मिल जाए। युद्ध मे नैपोलियन की सहायता प्राप्त कर सकना उसे असम्भव प्रतीत होता था। आखिर, नैपोलियन उदासीन रहने के लिये तैयार हो गया। उसने सोचा, कि प्रशिया और आस्ट्रिया आपस मे लडकर निर्बल हो जायेगे, और फ्रास के लिये उत्तर दिशा मे भी अपने साम्राज्य का विस्तार कर सकना सुगम हो जायगा। इस विचार से नैपोलियन ने यही निश्चय किया, कि आस्ट्रिया को सहायता न दी जाए। इटली मे राष्ट्रीय एकता स्थापित हुए भी अभी अधिक समय नही हुआ था। नवीन इटालियन राज्य वेनेटिया को आस्ट्रिया की अधीनता से मुक्त कराने के लिये उत्सुक था। अत बिस्मार्क के लिये यह बहुत सुगम था, कि इटली की सहायता आस्ट्रिया के विरोध मे प्राप्त कर सके। उसने इटली से समझौता किया, कि आस्ट्रिया के परास्त हो जाने पर वेनेटिया उसे दे दिया जायगा और युद्ध शुरु होने पर इटली दक्षिण की तरफ से आस्ट्रिया पर आक्रमण करेगा।

युद्ध का प्रारम्भ—सब तैयारी हो चुकी थी, अब युद्ध के लिये कोई उपयुक्त अवसर ढूढना ही बाकी था। श्लेस्विग और हॉल्स्टाइन के प्रदेशो के बारे में प्रशिया और आस्ट्रिया मे जो सन्धि हुई थी, उसकी शर्तो के सम्बन्ध मे झगडे की कोई बात ढूढ निकाल सकना मुश्किल नही था। जून, १८६६ मे ऐसा मौका मिल गया, और प्रशिया ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर दिया। इस युद्ध मे अनेक जर्मन राज्यो ने आस्ट्रिया का साथ दिया।

सेडोवा का युद्ध—तीन जुलाई के दिन सेडोवा या क्युनिगग्रेट्ज के रणक्षेत्र मे बहुत बडी लडाई लडी गई, जिसमे आस्ट्रिया की पराजय हुई। सेडोवा के युद्ध के साथ ही आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध प्राय समाप्त हो गया। तीन सप्ताह से भी कम समय मे बिस्मार्क की सेनाओ ने इस बात का फैसला कर दिया, कि प्रशिया और आस्ट्रिया मे से किसे जर्मनी का नेतृत्व करना है। इसके बाद एक-एक करके उन जर्मन राज्यो पर हमला किया गया, जिन्होने आस्ट्रिया का साथ दिया था। उन सबको बुरी तरह से परास्त किया गया। आस्ट्रिया की सेनाएँ इतनी बुरी तरह से परास्त हो गई थी, कि विलियम प्रथम और उसके अनेक सेनापतियो की यह इच्छा थी, कि आस्ट्रिया की राजधानी वीएना पर हमला कर दिया जाय। पर बिस्मार्क ने इसका विरोध किया। वह इसे जर्मन-सगठन के महत्त्वपूर्ण कार्य मे व्यर्थ की बाधा सम-

प्रिस विस्मार्क (१८१५-१८९८)

वना था। उसके विरोध के कारण वीएना पर आक्रमण करने का विचार छोड दिया गया।

सन्धि—२३ अगस्त, १८६६ के दिन प्राग मे आस्ट्रिया और प्रशिया मे सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार (१) १८१५ मे वीएना की काग्रेस द्वारा आस्ट्रिया के नेतृत्व मे जो जर्मन राज्यसघ वना था, उसे वर्खास्त कर दिया गया, (२) श्लेश्विग और हाल्स्टाइन—दोनो प्रदेश प्रशिया को दिये गये, (३) वेनेटिया इटली को दिया गया और (४) आस्ट्रिया को हरजाना देने के लिये मजबूर किया गया।

प्रशिया का विस्तार—इतना ही नहीं, आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध से प्रशिया को अन्य भी अनेक लाभ हुए। हेनोवर, हेस्से-कैसल, नास्सो और फ्रांकफोर्ट—इन चार राज्यों को प्रशिया ने अपने साथ सम्मिलित कर लिया। इन राज्यों ने गत युद्ध में आस्ट्रिया की सहायता की थी। अत इनकी पृथक् सत्ता का अन्त कर प्रशिया के साथ मिला लेने में बिस्मार्क को कुछ भी अनौचित्य नजर न आता था। लायनबर्ग, श्लेस्विग और हाल्स्टाइन पर तो प्रशिया ने अपना अधिकार जमा ही लिया था। इस प्रकार अब आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध के परिणामस्वरूप प्रशिया को जो नवीन प्रदेश प्राप्त हुए, उनका क्षेत्रफल हालैण्ड से दुगना था। उनकी आबादी भी पचास लाख से अधिक थी। इन प्रदेशों की प्राप्ति से प्रशिया इतना बड़ा हो गया, कि सम्पूर्ण जर्मनी का दो-तिहाई प्रदेश और दो-तिहाई जनता उसके अधीन हो गई। अब प्रशिया की कुल आबादी ढाई करोड़ से भी अधिक थी। वह यूरोप के प्रमुख राज्यों में एक हो गया था। इस स्थिति में शेष जर्मन राज्यों को अपने साथ सगठित करना बहुत कठिन नहीं था। अन्य सब जर्मन राज्य मिलकर भी प्रशिया के सम्मुख सर्वथा नगण्य थे।

उत्तरी जर्मन राज्यसघ—अब अगला प्रश्न जर्मन राज्यों को नये सिरे से सगठित करने का था। प्रशिया की इच्छा थी, कि सम्पूर्ण जर्मन राज्यों को मिलाकर जर्मन राज्यसघ की रचना की जावे। पर अभी यह सम्भव नहीं था। दक्षिणी जर्मनी में चार राज्य थे, जो पर्याप्त शक्तिशाली थे। इनके नाम हैं, बवेरिया, बाडन, बुटम्बर्ग और हस्से डार्मस्टाट। बिस्मार्क भलीभाति अनुभव करता था, कि अभी इन राज्यों को उनकी इच्छा के अनुरूप जर्मन सघ में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। अत उसने यही उचित समझा, कि इन चार राज्यों को छोडकर शेष जर्मनी का सगठन बनाया जावे। यह सगठन 'उत्तरी जर्मन राज्यसघ' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें प्रशिया के अतिरिक्त इक्कीस अन्य छोटे-छोटे राज्य सम्मिलित थे। इस नवीन राज्यसघ का निर्माण करते हुए तीन बातों का खयाल रखा गया था—

(१) राज्यसघ के सम्पूर्ण निवासियों को शासन में अधिकार दिये जाए। इसके लिए यह व्यवस्था की गई, कि सघ की एक व्यवस्थापिका सभा के लिये सम्पूर्ण जनता को प्रत्यक्षरूप से अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार रहे।

(२) प्रशिया की महत्ता को कायम रखा जाए। इसके लिये प्रशिया के राजा को सम्पूर्ण राज्यसघ का अध्यक्ष बनाया गया, और व्यवस्थापन-विभाग में प्रशिया के प्रतिनिधियों की बहुसख्या कायम रखी गई।

(३) अन्य राज्यों को भी सघ में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त हो, इसके लिये एक सघ-सभा का निर्माण किया गया, जिसमें प्रत्येक राज्य का—चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो—कम से कम एक वोट रखा गया।

सगठन—उत्तरी जर्मन राज्यसघ का अध्यक्ष प्रशिया का राजा होता था। वह अपना प्रधानमन्त्री स्वय नियुक्त करता था। प्रधानमन्त्री व्यवस्थापन विभाग के प्रति उत्तरदायी नहीं होता था। व्यवस्थापन-विभाग में दो सभाए थीं—(१) सघसभा (बुन्डसराट)—इसमें सब राज्यों के राजाओं के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। प्रत्येक राज्य का कम से कम एक-एक प्रतिनिधि अवश्य होता था। (२) लोकसभा (रीषटाग)—सम्पूर्ण जनता

इसके लिये प्रतिनिधि निर्वाचित करती थी। वोट का अधिकार सब वालिग पुरुषो को दिया गया था। विस्मार्क जैसे पुराने विचारो के राजनीतिज्ञ के रहते हुए भी वोट का यह सुविस्तृत अधिकार वस्तुत आश्चर्यजनक है। असली बात यह है, कि इतिहास की प्रवृत्तियो को रोक सकना भी किसी व्यक्ति के लिये, चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यो न हो, कभी सम्भव नही होता। निस्सन्देह, विस्मार्क की शक्ति असाधारण थी। पर समय की लहर उससे भी अधिक प्रबल थी। जर्मन जनता अपने अधिकारो के लिये अनेक सघर्ष कर चुकी थी। अब उसकी उपेक्षा कर सकना सुगम कार्य न था।

उत्तरी जर्मन राज्यसघ की रचना इस ढग से की गई थी, कि बवेरिया आदि दक्षिणी राज्यो को सम्मिलित करने का जिस समय भी मौका आये, तो शासन-विधान का निर्माण नये सिरे से न करना पडे। उन्हे अपने अन्दर सम्मिलित करने की गुँजाइश पहले से ही रख ली गई थी। कुछ समय के बाद जब इसके लिये अवसर उपस्थित हुआ, तो किसी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के विना ही वे राज्य जर्मन सघ मे सम्मिलित कर लिये गये।

५ फ्रैंको-प्रशियन युद्ध और सगठित जर्मन साम्राज्य की स्थापना

कारण—नैपोलियन तृतीय का खयाल था, कि आस्ट्रिया और प्रशिया का युद्ध बहुत देर तक चलेगा। दोनो राज्य आपस मे लडकर कमजोर हो जायेंगे और फ्रास को अपनी शक्ति का विस्तार करने का अच्छा अवसर प्राप्त होगा। पर उसके सब सुख-स्वप्न मिट्टी मे मिल गये, जब कि सेडोवा की लडाई मे आस्ट्रिया परास्त हो गया, और प्रशिया की विजय हुई। प्रशिया दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति कर रहा था। उसकी सेना यूरोप में सबसे अधिक शक्तिशाली थी। उसके नेतृत्व मे अधिकाश जर्मन राज्यो का सगठन भी हो चुका था। नैपोलियन अपने पडोस मे इस प्रकार के शक्तिशाली राष्ट्र का प्रादुर्भाव सहन नही कर सकता था। वह चाहता था, कि इसे प्रारम्भ मे ही नष्ट कर दिया जाए। प्रशिया जिस प्रकार तेजी से उन्नति कर रहा था, उससे यह निश्चित था, कि वह शीघ्र ही फ्रास का भयकर प्रतिस्पर्धी वन जायगा। नैपोलियन इस वात को कब सहन कर सकता था? प्रशिया और फ्रास के हित आपस मे टकराते भी थे। बवेरिया, बाडन, वुर्टम्वर्ग और हैस्स-डार्मस्टाट—ये चार दक्षिणी जर्मन राज्य अभी तक जर्मन राज्यसघ मे सम्मिलित नही हुए थे। विस्मार्क इन्हे भी अपने सघ मे मिलाना चाहता था। पर नैपोलियन का हित इस बात में था, कि ये जर्मनसघ मे पृथक् रहे। वह इन्हे अपने प्रभाव मे रखने के लिये इच्छुक था। प्रथम नैपोलियन द्वारा स्थापित 'दक्षिणी जर्मन राज्यसघ' का स्वप्न लेकर वह भी इन राज्यो को अपने प्रभाव मे, और यदि हो सके, तो सरक्षा मे रखने को उत्सुक था। इसके अतिरिक्त नैपोलियन कुछ कर दिखाने के लिये भी उतावला हो रहा था। शासन-विधान की उपेक्षा कर षड्यन्त्र द्वारा वह सम्राट् पद पर पहुचा था। इस गौरवास्पद पद को कायम रखने के लिये शानदार विजयो की जरूरत थी। मैक्सिको मे अपना शासन स्थापित करने के प्रयत्न मे उसे भारी निराशा का सामना करना पडा था। फ्रेंच लोग इस बात से बहुत असन्तुष्ट थे। नैपोलियन का प्रभाव कम होता जा रहा था। अब वह चाहता था, कि नई विजयो द्वारा जनता के हृदय मे फिर से अपने प्रभाव को स्थापित करे। इसके अतिरिक्त,

नैपोलियन प्रशिया से विशेषरूप से नाराज भी था। आस्ट्रिया को परास्त कर प्रशिया का जिस ढग से उत्कर्ष हो रहा था, उसे फ्रांस अपने लिये अत्यन्त हानिकारक समझता था। सेडोवा के युद्ध मे जब आस्ट्रिया परास्त हुआ, तो फ्रास के मार्शल रादो ने कहा था—"सेडोवा मे वस्तुत फ्रास की पराजय हुई है।" प्रसिद्ध फ्रेंच राजनीतिज्ञ थीयर्स ने इस युद्ध का समाचार सुनकर कहा था—"जो कुछ हुआ है, वह फ्रास के लिये सबसे बडी विपत्ति है। पिछली चार सदियो मे फ्रास के लिये इतनी घोर विपत्ति की कोई घटना नही हुई थी।" नैपोलियन तृतीय भी आस्ट्रिया की पराजय से बहुत दुखी था। पर वह बाहर से यह कहकर सतोष प्रगट करता था, कि अभी तो जर्मन भाषा बोलनेवाले लोग या जर्मन राष्ट्र तीन भागो मे विभक्त है, दक्षिणी जर्मन राज्य अभी प्रशिया के नेतृत्व मे सगठित नही हुए है, और आस्ट्रियन-जर्मन भी अपनी पृथक् सत्ता रखते है। नैपोलियन तृतीय का कहना था, कि जर्मन राष्ट्र के और अधिक सगठन को किसी भी प्रकार सहन नही करना चाहिये। यदि सम्पूर्ण जर्मन लोग एक विशाल राष्ट्र के रूप मे सगठित हो गये, तो इससे यूरोप के राज्यो का शक्ति-समतुलन नष्ट हो जायगा। इसीलिये वह इस बात के लिये उत्सुक था, कि प्रशिया की बढती हुई शक्ति के मुकाबले मे फ्रास को भी अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया जाय।

इस दृष्टि से नैपोलियन तृतीय ने पहले यह उद्योग किया, कि प्रशिया को इस बात के लिये तैयार करले कि फ्रास अपनी सीमा का विस्तार राइन नदी तक कर सके। राइन नदी के दक्षिण व पश्चिम के जर्मन प्रदेशो को वह अपनी अधीनता मे लाने के लिये उत्सुक था। इन प्रदेशो का बडा भाग बवेरिया राज्य के अन्तर्गत था। यद्यपि बवेरिया प्रशिया के बढते हुए प्रभाव को सहन नही कर सकता था, पर जर्मन लोगो मे राष्ट्रीयता की भावना इतनी प्रबल हो चुकी थी, कि नैपोलियन को अपने इस उद्देश्य मे सफलता नही हुई। अब नैपोलियन ने यह प्रयत्न किया, कि बैल्जियम को जीत कर फ्रास के अन्तर्गत कर ले। बेल्जियम के लोग जाति मे फ्रेंच है, और फ्रेंच भाषा बोलते है। यह ऐतिहासिक घटनाओ का ही परिणाम था, कि बेल्जियम एक पृथक् राज्य के रूप मे विद्यमान था। अत नैपोलियन को यह सर्वथा उचित व सुगम प्रतीत होता था, कि वह उसे जीतकर फ्रास का अग बना ले। उसे आशा थी, कि प्रशिया इस कार्य मे उसका विरोध नही करेगा। पर बिस्मार्क कूटनीतिज्ञ था। वह अपने पडोसी राज्य फ्रास को शक्तिशाली नही बनने देना चाहता था। उसने नैपोलियन तृतीय का विरोध किया, और इस बात का आश्वासन देने से इनकार कर दिया, कि बेल्जियम पर फ्रेंच आक्रमण की दशा मे वह उदासीन रहेगा। जब १८७० मे फ्रास और प्रशिया मे युद्ध शुरू हुआ, तो इस बात का भय था, कि कही इङ्गलैण्ड फ्रास की सहायता न करे। बिस्मार्क की कूटनीति ने बेल्जियम की समस्या से लाभ उठाया, और नैपोलियन तृतीय ने उसकी उदासीन स्थिति की उपेक्षा कर उसे जीत लेने की योजना के सम्बन्ध मे प्रशिया से जो बातचीत की थी, उस सबको लण्डन के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'टाइम्स' मे प्रकाशित करा दिया। इङ्गलिश लोग अपने हितो को दृष्टि मे रखकर बेल्जियम की उदासीनता और पृथक् सत्ता को बहुत महत्त्व देते थे। वे नैपोलियन तृतीय के विरुद्ध हो गये, और यही कारण है, कि फ्रास और प्रशिया के

युद्ध (१८७१) मे इङ्गलैण्ड ने फ्रास की सहायता नही की, यद्यपि इङ्गलिश लोग भी प्रशिया के उत्कर्ष को यूरोप की शान्ति और शक्ति-समुत्तुलन के लिये हानिकारक समझते थे।

र्‌हाइन नदी के प्रदेशो और बेल्जियम के सबध मे निराश होकर नैपोलियन ने लुक्सम्बुर्ग की ओर ध्यान दिया। इस छोटे से राज्य की जनसख्या दो लाख थी, जो जाति और भाषा की दृष्टि से फ्रेच ही थी। हालैण्ड का वशक्रमानुगत राजा ही लुक्समबुर्ग का भी ग्राण्ड ड्यूक होता था। यह राज्य जर्मन राज्यसघ का सदस्य भी रहा था, और जर्मनी मे जो व्यापार-सघ बना था, उसमे भी सम्मिलित था। प्रशिया की एक सेना भी उसमे इस उद्देश्य से रहा करती थी, कि फ्रास उस पर आक्रमण न कर सके। नैपोलियन तृतीय ने विचार किया, कि लुक्समबुर्ग को हालैण्ड के राजा से खरीद लेना चाहिये, ताकि फ्रास की शक्ति और स्थिति का उत्कर्ष हो। ऐसा करके नैपोलियन तृतीय ससार के सम्मुख यह प्रदर्शित करना चाहता था, कि उसके नेतृत्व मे फ्रास का उत्कर्ष हो रहा है, और प्रशिया की बढती हुई शक्ति को समुत्तुलित करने मे वह भलीभाति समर्थ है। पर लुक्समबुर्ग की कीमत के सम्बन्ध मे हालैण्ड के राजा से समझौता नही हो सका। मामला यूरोप के अन्य देशो को भी ज्ञात हो गया, और प्रशिया ने इसका बहुत विरोध किया। र्‌हाइन के प्रदेशो और बेल्जियम के मामले मे निराश होकर नैपोलियन तृतीय प्रशिया और उसके प्रधान मन्त्री बिस्मार्क से इतना अधिक चिढ गया था, कि सम्भवत लुक्समबुर्ग के प्रश्न को लेकर ही फ्रास और प्रशिया मे युद्ध शुरू हो जाता। पर इङ्गलैण्ड और रूस के हस्तक्षेप के कारण इस समय उन मे समझौता हो गया। लुक्समबुर्ग की पृथक् सत्ता कायम रही, पर प्रशिया इस बात के लिये राजी हो गया, कि अपनी सेना को उस प्रदेश से हटा ले।

इसमें सन्देह नही, कि इस समय फ्रास और प्रशिया के सम्बन्ध बहुत कटु हो गये थे। दोनो ही युद्ध के द्वारा अपने विरोध का फैसला करने के लिये उत्सुक थे। प्रशियन सेनापति मोल्टके का कथन था—"युद्ध की अपेक्षा कौन सी बात अधिक अभिनन्दनीय है, आखिर युद्ध करना ही होगा।" फ्रास समझता था, कि प्रशिया के उत्कर्ष के कारण उसकी अपनी स्थिति बहुत नाजुक हो गई है। प्रशिया भी फ्रास को ही अपने मार्ग मे सबसे बडा बाधक समझता था। इन सब कारणो के साथ ही यह भी ध्यान मे रखना चाहिये, कि फ्रास और प्रशिया—दोनो राज्यो मे राष्ट्रीयता की भावना बडे तीव्र रूप मे व्याप्त हो रही थी। राष्ट्रीयता बहुत अच्छी चीज है, पर दुनिया की प्रत्येक अच्छी चीज की तरह इसकी भी अतिशय मात्रा नुकसान पहुँचाती है। राष्ट्रीयता सिखाती है, कि एक किस्म के लोग एक साथ निवास करे, साथ मिलकर अपनी उन्नति करे, किसी दूसरे किस्म के लोगो के अधीन न होकर अपनी इच्छा और आदर्शो के अनुसार अपनी उन्नति करे। यहा तक तो ठीक है। पर कुछ आगे और बढिये। यदि राष्ट्रीयता को बहुत आगे बढा दिया जाए, तो उसका मतलब यह भी हो जाता है, कि दुनिया मे हम ही हम रहे, और कोई जीने ही न पाए। फ्रास और प्रशिया दोनो इसी बीमारी के शिकार थे। पहले किसी जमाने में इन दोनो राज्यो की सरकारे राष्ट्रीयता के खिलाफ थी। पर अब समय बदल चुका था। अब शासक लोग स्वय अपने हित के लिये इस लोकप्रिय सिद्धान्त का उपयोग कर रहे थे। दोनो देशो के अख-बारो मे अपने राष्ट्र के विस्तार के लिये आन्दोलन चल रहा था। प्रशिया कहता था—

हमे नीचे दक्षिण की तरफ बढना चाहिये। फ्रास कहता था—हमे उत्तर मे र्हाइन नदी तक तो अवश्य ही पहुँचना चाहिये। फ्रेंच अखबार लिखते थे—बर्लिन पर चढ चलो। प्रशियन अखबार लिखते थे—पेरिस पर चढ चलो। इस दशा मे युद्ध शुरू होने मे कितनी देर लग सकती थी ?

स्पेन की राजगद्दी का मामला—दोनो देश युद्ध के लिये उतावले हो रहे थे। आखिर, उन्हे अपनी आकाक्षा पूर्ण करने का उपयुक्त अवसर मिल गया। १८६८ मे स्पेन की स्वेच्छाचारी साम्राज्ञी इसाबेला के विरुद्ध जनता ने विद्रोह कर उसे राज्यच्युत कर दिया था। अब प्रश्न यह था, कि स्पेन की राजगद्दी पर किसे बिठाया जाय। बिस्मार्क ने अपनी नीतिकुशलता से स्पेनिश नेताओ को इस बात के लिये तैयार कर लिया, कि वे प्रशिया के राजा विलियम प्रथम के कुटुम्बी लियोपोल्ड को अपना राजा निर्वाचित करे। नैपोलियन तृतीय इस बात को नही सह सका। पेरिस के अखबारनवीसो ने प्रशिया के विरुद्ध जहर उगलना प्रारम्भ किया। प्रशिया के होहेनट्शोलर्न वश के इस उत्कर्ष को वे भला कब सहन कर सकते थे ? उन्होने कहना शुरू किया, कि लियोपोल्ड के स्पेनिश राज्यसिहासन पर आरूढ हो जाने से स्पेन पर प्रशिया का प्रभुत्व स्थापित हो जायगा, और यह बात यूरोप की शान्ति के लिये खतरनाक होगी। फ्रास के विरोध का परिणाम यह हुआ, कि लियोपोल्ड ने स्वयमेव राजगद्दी की उम्मीदवारी का परित्याग कर दिया। पर नैपोलियन को इतने मे सन्तोष नही हुआ। वह तो युद्ध के लिये तुला हुआ था। उसने उद्घोषित किया, कि लियोपोल्ड की तरफ से राजा बनने के लिये उम्मीदवारी का परित्याग कर देना ही फ्रास के सन्तोष के लिये काफी नही है। प्रशिया की ओर से प्रामाणिक रूप से यह उद्घोषणा की जानी चाहिये, भविष्य मे भी होहेनट्शोलर्न वश का कोई कुमार स्पेन की राजगद्दी के लिये उम्मीदवार नही होगा। प्रशिया मे स्थित फ्रेंच राजदूत ने अपने सम्राट् की यह माग विलियम प्रथम के सम्मुख उपस्थित की। विलियम ने इसे स्वीकृत करने से इनकार कर दिया। बिस्मार्क ने जान बूझकर इस घटना को प्रशिया के समाचारपत्रो मे इस ढग से प्रकाशित करवाया, ताकि लोग समझें कि फ्रेंच राजदूत ने विलियम का अपमान किया है। प्रशियन लोग अपने राजा के अपमान का समाचार पढकर भडक गये। दोनो देश युद्ध के लिये पहले से ही तैयार बैठे थे। १९ जुलाई, सन् १८७० के दिन फ्रास की राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के सम्मुख प्रशिया के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। विरोध मे केवल १० वोट आये। उसी दिन युद्ध की उद्घोषणा कर दी गई। दोनो देश एक दूसरे पर आक्रमण करने के लिये सन्नद्ध हो गये।

युद्ध का प्रारम्भ—युद्ध शुरू हो गया। नैपोलियन को आशा थी, कि बवेरिया आदि दक्षिणी जर्मन राज्य उसकी सहायता करेंगे, पर उसे निराश होना पडा। जर्मनी मे राष्ट्रीयता की भावना बहुत प्रबल हो चुकी थी। सम्पूर्ण जर्मनी हथियार लेकर फ्रास के खिलाफ उठ खडा हुआ। बात की बात मे दस लाख जर्मन सैनिक र्हाइन नदी को पार कर फ्रास पर आक्रमण करने के लिये चल पडे।

सीडन का युद्ध—जर्मन सेनापतियो की योजना थी, कि मेट्ज और स्ट्रास्सबुर्ग के दुर्गों मे स्थित फ्रेंच सेना को परास्त कर पेरिस पर आक्रमण किया जायगा। इन दोनो दुर्गों

को घेर लिया गया, और फ्रास की आगे वढती हुई शक्तिशाली सेना का सीडन के रणक्षेत्र में मुकावला किया गया। १ सितम्वर, १८७० को सीडन मे फ्रास और जर्मनी का युद्ध हुआ, जिसमें फ्रास की वुरी तरह से पराजय हुई। सम्राट् नैपोलियन तृतीय अपने ७१ हजार सैनिको के साथ जर्मन लोगो के हाथ मे कैद हो गया।

पेरिस का आत्मसमर्पण—उधर मेट्ज और स्ट्रास्सवुर्ग के घेरे जारी थे। इन दुर्गों को जीतने की भी प्रतीक्षा न कर जर्मन सेनाओ ने पेरिस पर आक्रमण कर दिया। पेरिस घेर लिया गया। फ्रेंच लोगो ने वडी वीरता के साथ शत्रुओ का मुकावला किया। खाद्य पदार्थों की अत्यन्त कमी हो गई, पर इससे भी फ्रेच लोग घवराये नही। उन्होने कुत्ते, विल्ली, चूहे और पक्षी—सव खा लिये। और तो और रहा, चिडियाघर के जानवरो पर भी हाथ साफ कर दिया गया। इस दुरवस्था मे भी पेरिस के लोगो ने हिम्मत न हारी। सामयिक सरकार के नेता गैम्बेटा ने वैलून पर वैठकर पेरिस से प्रस्थान किया, और वोर्दियो पहुँचकर पेरिस की रक्षा के लिये सेना एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया। इस वीच मे २७ अक्टूवर को मेट्ज परास्त हो गया था, और वहा के १ लाख ७३ हजार लोगो ने आत्मसमर्पण कर दिया। कुछ दिनो वाद स्ट्रास्सवुर्ग भी जीत लिया गया। इस स्थिति मे पेरिस के लिये और अधिक मुकावला करना व्यर्थ था।

फ्राकफोर्ट की सधि—भूख और ठण्ड के कारण लोग तग आ गये थे। २८ जनवरी, १८७१ के दिन सामयिक सन्धि कर ली गई। फ्राकफोर्ट मे स्थायी सन्धि के लिये परिषद् की आयोजना की गई। आखिर, १० मई, १८७१ को दोनो देशो मे सन्धि हो गई, जो फ्राकफोर्ट की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी मुख्य शर्ते निम्नलिखित थी—

(१) फ्रास तीन अरव रुपया हर्जाने के तौर पर जर्मनी को दे।

(२) जव तक यह हरजाना वसूल न हो, तव तक जर्मन सेना उत्तरी फ्रास पर अपना कब्जा कायम रखे।

(३) आल्सेस और लारेन के प्रदेश जर्मनी को दे दिये जावे।

फ्रास के लिये ये शर्ते वहुत कठोर थी। विशेपतया, आल्सेस और लारेन के प्रदेशो का जर्मनी के साथ सम्मिलित किया जाना फ्रेच लोगो को वहुत असह्य था। इन प्रदेशो के वहुसख्यक निवासी फ्रेच जाति के थे। पुराने जमाने में ये पृथक् राज्य के रूप मे रहे थे, और पवित्र रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत समझे जाते थे। इस कारण जर्मनी इन पर अपना दावा समझता था। पर अव राष्ट्रीयता के युग में इन प्रदेशो के फ्रेंच लोगो का जर्मनी के अन्तर्गत किया जाना वहुत अनुचित तथा न्यायविरुद्ध अनुभव किया जा रहा था। आल्सेस और लारेन के फ्रेच निवासी भी किसी भी तरह जर्मन लोगो के साथ नही रहना चाहते थे। यही कारण है, कि आल्सेस और लारेन के वहुत से लोग अपने घरो का परित्याग कर इस समय फ्रास जा वसे।

फ्राकफोर्ट की सन्धि का ही परिणाम था, कि फ्रास और जर्मनी मे दुश्मनी की जड जम गई। हरजाना अदा करने के लिये फ्रेच लोगो को वडी-वडी कुरवानिया करनी पडी। उत्तरी फ्रास में जर्मन सेना मौजूद थी। उसकी सत्ता को फ्रेच लोग नही सह सकते थे। पर वे क्या करते? विवश थे। जव तक हरजाने की सम्पूर्ण रकम वसूल नही हो गई, यह

सेना फ्रास से न हटी।

जर्मन साम्राज्य की स्थापना—फ्रेको-जर्मन युद्ध अभी समाप्त भी न हुआ था, कि बिस्मार्क ने जर्मन सगठन को पूर्ण करने के लिये प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। दक्षिणी जर्मनी के चारो राज्यो से पृथक्-पृथक् सन्धि की गई। अन्य राज्यो की अपेक्षा उन्हे कुछ अधिक सुभीते दिये गये, जिनके कारण वे जर्मन राज्य-सघ मे सम्मिलित होनेके लिये तैयार हो गये। 'राज्य-सघ' का नाम बदलकर 'साम्राज्य' कर दिया गया, और इस नवीन जर्मन-साम्राज्य के अध्यक्ष को सम्राट् की पदवी दी गई। प्रशिया का राजा अब जर्मन सम्राट् भी बन गया। पेरिस के आत्मसमर्पण के दस दिन पूर्व १८ जनवरी, १८७१ को वर्साय के राजप्रासाद के शीशमहल मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उत्सव की आयोजना की गई। इस उत्सव मे जर्मनी के विविध राजा बडी शान से अपने-अपने आसनो पर बैठे थे। बीच मे एक ऊँची वेदी पर प्रशिया का राजा विलियम प्रथम विराजमान था। बवेरिया के राज-प्रतिनिधि ने खडे होकर अपने साथी राजाओ की तरफ से विलियम की सेवा मे साम्राज्य का राजमुकुट पेश किया। इसके अनतर बिस्मार्क ने जर्मन साम्राज्य के निर्माण का उद्घोषणा-पत्र पढ सुनाया। जिस राष्ट्रीय एकता के लिये जर्मन लोग इतने समय मे उत्सुक थे, आखिर प्रशिया के नेतृत्त्व मे और बिस्मार्क के प्रयत्न से वह सम्पन्न हो गई।

उत्तरी जर्मन राज्य-सघ के सगठन को ही कुछ परिवर्तित कर के जर्मन साम्राज्य का सगठन बनाया गया। यह नवीन सगठन १९१८ की जर्मन राज्यक्रान्ति तक कायम रहा। बिस्मार्क जर्मन साम्राज्य का प्रथम प्रधान मन्त्री बना। बिस्मार्क के जीवन की सबसे प्रधान महत्त्वाकाक्षा अब पूर्ण हो चुकी थी।

बिस्मार्क का कर्तृत्व—इसमे सन्देह नही, कि प्रिंस बिस्मार्क का जर्मनी के उत्कर्ष में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह उसी के कर्तृत्त्व का परिणाम था, कि जर्मनी एक राष्ट्र के रूप मे सगठित हो सका। अनेक छोटे-बडे राज्यो मे विभक्त होना जर्मनी की उन्नति मे सबसे बडी बाधा थी। श्लेश्विग और हालस्टाइन के जिन प्रदेशो को उसने डेन्मार्क से पृथक् कर प्रशिया मे सम्मिलित किया, वे वस्तुत जर्मन थे। र्‌हाइन के प्रदेशो को नैपोलियन तृतीय के शासन व प्रभाव मे आने देने मे बाधा डालकर भी उसने जर्मन राष्ट्रीयता की बडी सहायता की। आस्ट्रिया को पृथक् कर पहले उत्तरी जर्मन-सघ और फिर जर्मन साम्राज्य का सगठन कर उसने जर्मन राष्ट्र के विकास को पूर्ण किया। जर्मनी के लिये उसने वही महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जो सतरहवी सदी मे रिशिल्यू ने फ्रास के लिये किया था।

इसमें सन्देह नही, कि बिस्मार्क लोकतन्त्रवाद का विरोधी था। पर समय की गति को देखते हुए उसने जर्मन साम्राज्य मे पार्लियामेन्ट का निर्माण किया था, और वोट के अधिकार को भी बहुत विस्तृत किया था। बिस्मार्क कूटनीतिज्ञ, सफल शासक और सुयोग्य सेनानी था। उसके कर्तृत्त्व से जर्मनी की असाधारण उन्नति हुई।

बीसवा अध्याय

इंगलैण्ड में सुधार का काल

१ पुराना इगलैण्ड

फ्रास की राज्यक्राति से पूर्व इगलैण्ड यूरोप में सबसे अधिक उन्नत और प्रगतिशील देश माना जाता था। उदार विचारो के लोग उसकी शासनपद्धति को आदर्श समझते थे। फ्रास मान्तस्क्यू और वाल्टेयर जैसे उदार और क्रान्तिकारी विचारको ने इगलिश शासनपद्धति की वडी प्रशसा की थी, और यूरोप के अत्याचार-पीडित लोगो के सम्मुख उसी को आदर्श रूप मे पेश किया था। इगलैण्ड मे पार्लियामेन्ट की स्थापना हो चुकी थी। हाउस आफ कामन्स के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते थे। प्रत्येक कानून पार्लियामेन्ट द्वारा स्वीकृत होने पर ही लागू हो सकता था। कानून के अनुसार ठीक तरह से न्याय करने के लिये वाकायदा न्यायालयो का भी सगठन वहा हो चुका था। राजा की इगलैण्ड में सत्ता अवश्य थी, पर पार्लियामेन्ट और स्वतन्त्र न्यायालयो की सत्ता के कारण वह यूरोप के अन्य राजाओ के समान एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी नही था। उसकी शक्ति कानूनो द्वारा सीमित थी। इगलैण्ड मे वैध राजसत्ता की स्थापना का प्रारम्भ फ्रेंच राज्यक्रान्ति से लगभग एक सदी पहले से हो चुका था।

स्वेच्छाचारी राजसत्ता और उसके विरुद्ध सघर्ष—इगलिश लोगो ने इस उन्नत शासनविधान को कैसे और कव प्राप्त किया, इसकी कथा बहुत बडी है। उसे यहा लिखने की कोई आवश्यकता नही। मध्यकाल में इङ्गलैण्ड मे पार्लियामेन्ट विद्यमान थी। पर यह पार्लियामेन्ट वडे-वडे सामन्तो की सभा के अतिरिक्त कोई चीज न थी। राजा इसके कार्य में यथेष्ट रूप से हस्तक्षेप किया करता था। यह पलियामेट राजा के हाथ मे कठपुतली के समान होती थी। सत्रहवी सदी में इगलैण्ड में स्टुअर्ट वश के राजा राज्य करते थे। ये पूर्णरूप से स्वेच्छाचारी और एकतन्त्र थे। राजा के दैवी अधिकार मे इनका दृढ विश्वास था। स्टुअर्ट वश का पहला राजा जेम्स प्रथम कहा करता था—"ईश्वर क्या कर सकता है, इस पर आशका करना नास्तिकता और धर्मद्रोह है। इसी प्रकार राजा क्या कर सकता है, इस वात पर विचार करना या यह समझना कि राजा यह काम नही कर सकता, राजद्रोह और राजा का अपमान करना है।" जेम्स प्रथम और उसके उत्तराधिकारी स्टुअर्ट वशी राजा अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि समझते थे, और अपने ईश्वरविहित अधिकारो में जनता द्वारा किसी भी प्रकार की वाधा व नियन्त्रण को नही सह सकते थे। उनके स्वेच्छाचार का परिणाम यह हुआ, कि सन् १६४२ मे जनता ने विद्रोह कर दिया, और राजा और जनता में वाकायदा लडाई शुरू हो गई। इस युद्ध में राजा परास्त हुआ।

सेना फ्रास से न हटी।

जर्मन साम्राज्य की स्थापना—फ्रेको-जर्मन युद्ध अभी समाप्त भी न हुआ था, कि बिस्मार्क ने जर्मन सगठन को पूर्ण करने के लिये प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। दक्षिणी जर्मनी के चारो राज्यो से पृथक्-पृथक् सन्धि की गई। अन्य राज्यो की अपेक्षा उन्हे कुछ अधिक सुभीते दिये गये, जिनके कारण वे जर्मन राज्य-सघ मे सम्मिलित होनेके लिये तैयार हो गये। 'राज्य-सघ' का नाम बदलकर 'साम्राज्य' कर दिया गया, और इस नवीन जर्मन-साम्राज्य के अध्यक्ष को सम्राट् की पदवी दी गई। प्रशिया का राजा अब जर्मन सम्राट् भी बन गया। पेरिस के आत्मसमर्पण के दस दिन पूर्व १८ जनवरी, १८७१ को वर्साय के राजप्रासाद के शीशमहल मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उत्सव की आयोजना की गई। इस उत्सव मे जर्मनी के विविध राजा बडी शान से अपने-अपने आसनो पर बैठे थे। बीच मे एक ऊँची वेदी पर प्रशिया का राजा विलियम प्रथम विराजमान था। बवेरिया के राज-प्रतिनिधि ने खडे होकर अपने साथी राजाओ की तरफ से विलियम की सेवा मे साम्राज्य का राजमुकुट पेश किया। इसके अनतर बिस्मार्क ने जर्मन साम्राज्य के निर्माण का उद्घोषणा-पत्र पढ सुनाया। जिस राष्ट्रीय एकता के लिये जर्मन लोग इतने समय से उत्सुक थे, आखिर प्रशिया के नेतृत्त्व मे और बिस्मार्क के प्रयत्न से वह सम्पन्न हो गई।

उत्तरी जर्मन राज्य-सघ के सगठन को ही कुछ परिवर्तित कर के जर्मन साम्राज्य का सगठन बनाया गया। यह नवीन सगठन १९१८ की जर्मन राज्यक्रान्ति तक कायम रहा। बिस्मार्क जर्मन साम्राज्य का प्रथम प्रधान मन्त्री बना। बिस्मार्क के जीवन की सबसे प्रधान महत्त्वाकाक्षा अब पूर्ण हो चुकी थी।

बिस्मार्क का कर्तृत्व—इसमे सन्देह नही, कि प्रिंस बिस्मार्क का जर्मनी के उत्कर्ष में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह उसी के कर्तृत्त्व का परिणाम था, कि जर्मनी एक राष्ट्र के रूप में सगठित हो सका। अनेक छोटे-बडे राज्यो मे विभक्त होना जर्मनी की उन्नति मे सबसे बडी बाधा थी। श्लेस्विग और हालस्टाइन के जिन प्रदेशो को उसने डेन्मार्क से पृथक् कर प्रशिया मे सम्मिलित किया, वे वस्तुत जर्मन थे। र्‌हाइन के प्रदेशो को नैपोलियन तृतीय के शासन व प्रभाव मे आने देने मे बाधा डालकर भी उसने जर्मन राष्ट्रीयता की बडी सहायता की। आस्ट्रिया को पृथक् कर पहले उत्तरी जर्मन-सघ और फिर जर्मन साम्राज्य का सगठन कर उसने जर्मन राष्ट्र के विकास को पूर्ण किया। जर्मनी के लिये उसने वही महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जो सतरहवी सदी में रिशिल्यू ने फ्रास के लिये किया था।

इसमें सन्देह नही, कि बिस्मार्क लोकतन्त्रवाद का विरोधी था। पर समय की गति को देखते हुए उसने जर्मन साम्राज्य में पार्लियामेन्ट का निर्माण किया था, और वोट के अधिकार को भी बहुत विस्तृत किया था। बिस्मार्क कूटनीतिज्ञ, सफल शासक और सुयोग्य सेनानी था। उसके कर्तृत्त्व से जर्मनी की असाधारण उन्नति हुई।

बीसवा अध्याय

इंगलैण्ड में सुधार का काल

१ पुराना इगलैण्ड

फ्रास की राज्यक्राति से पूर्व इगलैण्ड यूरोप मे सबसे अधिक उन्नत और प्रगतिशील देश माना जाता था। उदार विचारो के लोग उसकी शासनपद्धति को आदर्श समझते थे। फ्रास मान्तस्क्यू और वाल्टेयर जैसे उदार और क्रान्तिकारी विचारको ने इगलिश शासनपद्धति की वडी प्रशसा की थी, और यूरोप के अत्याचार-पीडित लोगो के सम्मुख उसी को आदर्श रूप मे पेश किया था। इगलैण्ड मे पार्लियामेन्ट की स्थापना हो चुकी थी। हाउस आफ कामन्स के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते थे। प्रत्येक कानून पार्लियामेन्ट द्वारा स्वीकृत होने पर ही लागू हो सकता था। कानून के अनुसार ठीक तरह से न्याय करने के लिये वाकायदा न्यायालयो का भी सगठन वहा हो चुका था। राजा की इगलैण्ड मे सत्ता अवश्य थी, पर पार्लियामेन्ट और स्वतन्त्र न्यायालयो की सत्ता के कारण वह यूरोप के अन्य राजाओ के समान एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी नही था। उसकी शक्ति कानूनो द्वारा सीमित थी। इगलैण्ड मे वैध राजसत्ता की स्थापना का प्रारम्भ फ्रेंच राज्यक्रान्ति से लगभग एक सदी पहले से हो चुका था।

स्वेच्छाचारी राजसत्ता और उसके विरुद्ध सघर्ष—इगलिश लोगो ने इस उन्नत शासनविधान को कैसे और कव प्राप्त किया, इसकी कथा वहुत वडी है। उसे यहा लिखने की कोई आवश्यकता नही। मध्यकाल मे इङ्गलैण्ड में पार्लियामेन्ट विद्यमान थी। पर यह पार्लियामेन्ट वडे-वडे सामन्तो की सभा के अतिरिक्त कोई चीज न थी। राजा इसके कार्य मे यथेष्ट रूप से हस्तक्षेप किया करता था। यह पलियामेट राजा के हाथ में कठपुतली के समान होती थी। सत्रहवी सदी में इगलैण्ड में स्टुअर्ट वश के राजा राज्य करते थे। ये पूर्णरूप से स्वेच्छाचारी और एकतन्त्र थे। राजा के दैवी अधिकार मे इनका दृढ विश्वास था। स्टुअर्ट वश का पहला राजा जेम्स प्रथम कहा करता था—"ईश्वर क्या कर सकता है, इस पर आशका करना नास्तिकता और धर्मद्रोह है। इसी प्रकार राजा क्या कर सकता है, इस वात पर विचार करना या यह समझना कि राजा यह काम नही कर सकता, राजद्रोह और राजा का अपमान करना है।" जेम्स प्रथम और उसके उत्तराधिकारी स्टुअर्ट वशी राजा अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि समझते थे, और अपने ईश्वरविहित अधिकारो में जनता द्वारा किसी भी प्रकार की वाधा व नियन्त्रण को नही सह सकते थे। उनके स्वेच्छाचार का परिणाम यह हुआ, कि सन् १६४२ मे जनता ने विद्रोह कर दिया, और राजा और जनता में वाकायदा लडाई शुरू हो गई। इस युद्ध मे राजा परास्त हुआ।

उसे गिरफ्तार कर लिया गया, और सन् १६४९ मे उसे फासी पर चढा दिया गया। जनता द्वारा कतल किये जाने वाले इस राजा का नाम चार्ल्स प्रथम था, और यह जेम्स प्रथम के बाद इगलैण्ड का राजा बना था। चार्ल्स प्रथम को कतल कर इगलिश जनता ने रिपब्लिक की स्थापना की। क्रोमवेल इस रिपब्लिक का पहला राष्ट्रपति बना। पर अभी रिपब्लिकों का युग नही आया था। कुछ ही वर्षों बाद सन् १६६० मे रिपब्लिक की समाप्ति हो गई, और स्टुअर्ट वश का चार्ल्स द्वितीय फिर इगलैण्ड का राजा बन गया। चार्ल्स द्वितीय भी राजा के दैवी अधिकारो मे विश्वास रखता था, और राज्यकार्य मे जनता का किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप सहन नही कर सकता था। पर वह बुद्धिमान् और कार्यकुशल राजा था। उसने अपने शासनकाल में जनता को सतुष्ट करने के लिये अनेक कानून जारी किये। चार्ल्स द्वितीय की मृत्यु के बाद १६८५ मे उसका लडका जेम्स द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। उसने अपने पिता की नीति का परित्याग कर फिर स्वेच्छाचारी नीति का आश्रय लिया। परिणाम यह हुआ, कि १६८८ में जनता ने फिर विद्रोह कर दिया। जेम्स द्वितीय को राजगद्दी से च्युत कर विलियम तृतीय को इगलैण्ड की राजगद्दी सभालने के लिये निमन्त्रित किया गया। यह विलियम तृतीय नीदरलैण्ड (हालैण्ड) का राजा था, और इसकी धर्मपत्नी मेरी इगलैण्ड के राजवश की थी। जेम्स द्वितीय विलियम का मुकाबला नही कर सका। वह परास्त हो गया, और 'जनता की इच्छा से' विलियम तृतीय इगलैण्ड का राजा बना।

वैध राजसत्ता की स्थापना—इगलिश जनता की यह महान् विजय थी। विलियम तृतीय को जनता ने अपनी इच्छा से राजा बनाया था। इसलिये वह स्टुअर्ट वश के राजाओ के समान एकतन्त्र व स्वेच्छाचारी नही हो सकता था। राजा की शक्ति को सीमित करने के लिये पार्लियामेन्ट में इस समय एक विधान पेश किया गया, जिसे 'बिल आफ राइट्स' या 'अधिकार-विधान' कहते हैं। इसमें मुख्यता निम्नलिखित अधिकारो को प्रतिपादित किया गया था—राजा देश के किसी कानून का उल्लघन न कर सके। पार्लियामेन्ट की स्वीकृति के बिना राजा कोई नया टैक्स न लगा सके। पार्लियामेन्ट मे सदस्यो को भाषण देने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहे। क्रूरता से युक्त सजाए न दी जाएँ, सजा मे अत्यधिक जुरमाने भी न किये जाएँ। प्रत्येक नागरिक को अधिकार हो, कि वह राजा के सम्मुख अपने प्रार्थना-पत्र पेश कर सके। इसी प्रकार के अन्य भी बहुत से अधिकार इस 'बिल आफ राइट्स' द्वारा जनता को दिये गये। विलियम तृतीय ने इन्हे स्वीकृत किया, और जनता ने उसे अपना राजा माना।

जेम्स द्वितीय को राज्यच्युत कर और अपनी इच्छा से विलियम तृतीय को राजगद्दी पर बिठाकर इङ्गलिश जनता ने सचमुच बडा भारी काम कर दिखाया था। इसे ही इतिहास मे 'इङ्गलिश राज्यक्राति' कहते हैं। इस समय से (१६८८ से) इङ्गलैण्ड मे राजाओ के अपरिमित स्वेच्छाचार का सचमुच अन्त हो गया, और पार्लियामेन्ट की शक्ति निरन्तर बढने लगी। इसी बात को दृष्टि मे रखकर यूरोप के उदार विचारक और क्रान्तिकारी लोग इङ्गलिश शासन-पद्धति की बडी प्रशसा करते थे, और उसे अन्य यूरोपियन राज्यो के लिये अनुकरणीय और आदर्श समझते थे।

शासन-पद्धति के दोष—यह सब कुछ होते हुए भी उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ मे इङ्गलैण्ड की शासन-पद्धति लोकतन्त्र व जनता की इच्छा पर आश्रित नही थी। वहा पार्लियामेंट वेशक थी, पर उसके सदस्यो का चुनाव जिस ढग से होता था, उसमे बहुत से दोष थे। वोट का अधिकार भी बहुत कम लोगो को प्राप्त था। देश की आबादी मे निरन्तर परिवर्तन आते रहते है। अनेक नगर जो किसी जमाने मे वडे समृद्ध ओर आवाद थे, आगे चल कर उजड जाते है, और अनेक नवीन नगरो का विकास हो जाता है। इसलिये उचित यह है, कि समय-समय पर निर्वाचन-क्षेत्रो का नये सिरे से सगठन होता रहे। पर इङ्गलैण्ड मे पार्लियामेन्ट के चुनाव के लिये इस बात की कोई आवश्यकता नही समझी जाती थी। कई सदी पहले से जो निर्वाचन-क्षेत्र वहा चले आते थे, वे ही अब उन्नीसवी सदी मे भी विद्यमान थे। गैटन के निर्वाचन क्षेत्र मे पाच, आरफोर्ड मे वीस और मिडिलहर्स्ट मे तेरह वोटर थे। पर इन पुराने उजडे हुए नगरो से पार्लियामेन्ट के लिये बाकायदा प्रतिनिधि निर्वाचित होते थे। ओल्ड सेरम म अब कोई भी आबादी नही रही थी, डन्विच नगर तो समुद्र मे डूब चुका था, पर फिर भी इनकी ओर से निर्वाचित हुए प्रतिनिधि बाकायदा पार्लियामेन्ट मे पहुँचते थे। इस प्रकार के उजडे हुए नगरो की सख्या बहुत काफी थी। उनके प्रदेश जिन अमीर लार्डो की जमींदारी मे थे, वे ही अपनी तरफ से किन्ही महानुभावो को नामजद करके पार्लियामेन्ट में भेज देते थे। दूसरी ओर अनेक ऐसे नवीन नगरो का विकास हो गया था, जिनसे एक भी प्रतिनिधि निर्वाचित नही होता था। व्यावसायिक क्रान्ति के कारण अनेक विशाल नगर इस समय विकसित हो गये थे, जिनकी आबादी लाखो मे पहुँच रही थी। मान्चेस्टर, बर्मिंघम और लीड्स जैसे नये बसे हुए व्यवसाय-प्रधान नगरो का कोई भी प्रतिनिधि पार्लियामेन्ट मे नही पहुँचता था। लार्ड जॉन रसल ने इस दशा को दृष्टि मे रखकर एक भाषण मे कहा था, कि यदि कोई विदेशी यात्री हमारे देश मे आये तो उसे यह देखकर कितना आश्चर्य होगा, कि यहा हरियावल से पूर्ण अनेक मैदान जिनमे वनस्पतिया तो बहुत है, पर इन्सान का नामोनिशान भी नही है, पार्लियामेन्ट के लिये बाकायदा प्रतिनिधि चुनते है, और उन विशाल नगरो से जो व्यवसाय और व्यापार आदि के महत्त्वपूर्ण केन्द्र है, एक भी प्रतिनिधि निर्वाचित नही होता, यद्यपि पार्लियामेन्ट मनुष्यो के प्रतिनिधियो से बनती है, वनस्पतियो व हरियावल के प्रतिनिधियो से नही।

वोट का अधिकार भी बहुत कम लोगो को था। उस समय वोट देना नागरिकता के लिये कोई आवश्यक अधिकार नही माना जाता था। नगरो में केवल अमीर व्यापारियो को ही वोट का अधिकार प्राप्त था। व्यापारी लोग आपस मे मिलकर किसी व्यक्ति को पार्लियामेन्ट के लिये चुन देते थे। देहातो में वोट का अधिकार केवल उन लोगो को था, जिनके पास अपनी मिल्कियत मे ऐसी जमीन हो, जिसकी आमदनी कम से कम तीस रुपया वार्षिक हो। उस जमाने में तीस रुपया वार्षिक आमदनी की जागीर का मालिक होना कोई मामूली बात नही थी। देहातो मे ऐसे लोग बहुत कम थे, जो इतनी जमीन के स्वामी हो। इस दशा का परिणाम यह था, कि इङ्गलैण्ड मे बालिग पुरुषो की जितनी आबादी थी, (स्त्रियो और नाबालिग बच्चो को निकालकर) उसके केवल पाच फीसदी

लोगो को ही वोट देने का अधिकार मिला हुआ था। स्काटलैंड की कुल आबादी बीस लाख से ऊपर थी, पर उसमे वोट का अधिकार केवल तीन हजार आदमियो को था। बूट के ताल्लुके की आबादी १४ हजार थी, पर उसमें वोटर केवल २३ आदमी थे। अनेक ताल्लुको मे तो वोटरो की सख्या केवल एक-एक थी।

इतना ही नही, निर्वाचन मे रिश्वत भी खूब चलती थी। रिश्वत को बुरा नही समझा जाता था। वह खुले तौर पर ली दी जाती थी। हमारे पक्ष मे वोट दो और एक वूट के लिये हम कितनी कीमत प्रदान करेगे, इस बात का खुला विज्ञापन उम्मीदवारो की ओर से दिया जाया करता था। वोट खुले तौर पर डाले जाते थे। इसका परिणाम यह होता था, कि सर्वसाधारण वोटर स्वतन्त्रता के साथ वोट नही दे सकते थे। उन्हे इस बात का भय बना रहता था, कि उनका जमीदार कही उन पर नाराज न हो जाए।

इन सब बातो का परिणाम यह था, कि इङ्गलैण्ड में पार्लियामेंट और उसके प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल के होते हुए भी लोकतन्त्र शासन विद्यमान नही था। वहा की पार्लियामेन्ट की अन्यतम सभा हाउस आफ लार्ड्स तो बडे जागीरदारो और कुलीन श्रेणी के लोगो की सभा थी ही। दूसरी सभा हाउस आफ कामन्स पर भी उन्ही का प्रभुत्व था। वे जिसे चाहते, प्रतिनिधि चुनवा सकते थे। इस प्रकार हाउस आफ कामन्स भी नाम को ही जनता के प्रतिनिधियो की सभा थी। वस्तुत, कुलीन और जागीरदार श्रेणी के नामजद किये हुए सदस्यो का ही उसमे प्रभुत्व होता था।

२ शासन मे सुधार

सुधार के प्रयत्नो की विफलता—इङ्गलैण्ड की शासन-पद्धति मे जो दोष थे, उन्हे वहा के अनेक राजनीतिज्ञ अनुभव करते थे। अठारहवी सदी मे ही इन बुराइयो के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था। पार्लियामेन्ट के सम्मुख शासन-सुधार के लिये अनेक मसविदे भी पेश किये गये थे। १७७० मे लार्ड चैथम और उसके बाद उसके प्रसिद्ध पुत्र पिट ने शासन-सुधार सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित किये थे। पर अभी इन प्रस्तावो का कोई फैसला नही हुआ था, कि उधर फ्रास में राज्यक्रान्ति हो गई। कुछ ही दिनो मे क्रान्ति ने भयकर रूप धारण कर लिया, और यूरोप भर की सरकारे उसे कुचल डालने के लिये सन्नद्ध हो गईं। इङ्गलैण्ड ने भी राज्यक्रान्ति के विरुद्ध जिहाद शुरू किया। १८१५ तक इङ्गलैण्ड तथा अन्य यूरोपियन राज्य फ्रेंच राज्यक्रान्ति और नैपोलियन के विरुद्ध युद्ध करते रहे। इस समय इङ्गलैण्ड मे किसी भी सुधार-सबधी प्रस्ताव का स्वीकृत हो सकना असम्भव था। लोग कहते थे, यदि इङ्गलैण्ड मे भी जनता को अधिकार दिये जाएगे, तो उसका वही नतीजा होगा, जो फ्रास मे अब दृष्टिगोचर हो रहा है। १८१५ मे वीएना की कांग्रेस के बाद यूरोप भर में प्रतिक्रिया का काल शुरू हुआ। समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृभाव की नई प्रवृत्तियो का स्थान कुलीनो के विशेषाधिकारो और राजा के स्वेच्छाचारी एकतन्त्र शासन ने लिया। यूरोप के अनेक शक्तिशाली राजाओ ने मिलकर एक गुट का निर्माण किया, जिसका उद्देश्य ही क्रान्ति की प्रवृत्तियो और उदार विचारो को कुचलना था। इस समय सब जगह एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी शासन कायम हो रहे थे। इङ्गलैण्ड मे भी अनुदार

(टोरी) दल का प्रभुत्त्व था। इस दल के लोग शासन-सुधारो के खिलाफ थे। मेटरनिख का प्रसिद्ध मित्र ड्यूक आफ वैलिङ्गटन इस समय इङ्गलैण्ड का प्रधानमन्त्री था। उसके रहते रहते हुए सुधार की आशा ही कैसे की जा सकती थी। इसी लिये इस काल में सुधार के बजाय ऐसे कानून पास किये गये, जिनका उद्देश्य नवीन विचारो व नई प्रवृत्तियो को कुचलना था। सन् १८१९ मे ब्रिटिश पालियामेंट द्वारा 'सिक्स एक्ट्स (छ कानून)' पास किये गये, जिनसे जनता को स्वतन्त्र रूप से भाषण करने, लिखने और सार्वजनिक सभाए करने में अनेक रुकावटे डाली गई।

क्रान्ति की लहर—१८३० मे यूरोप मे क्रान्ति की दूसरी लहर शुरू हुई। फ्रास,, और इटली, स्पेन आदि विविध देशो मे क्रान्तिया हुई। इङ्गलैण्ड भी क्रान्तिकी इस लहर से अछूता नही रहा। नये विचारो के लोग पहले भी अपना कार्य कर रहे थे, अब उनमे नवजीवन आ गया। लोकमत सुधारो के पक्ष मे हो गया, और पालियामेन्ट मे उदार (ह्विग) दल के लोगो की शक्ति बढ गई। ड्यूक आफ वेलिङ्गटन को त्यागपत्र देना पडा, और उसके स्थान पर सुधारवादी उदार दल का प्रधान नेता लार्ड जॉन रसल प्रधान मन्त्री बना। १८३१ के मार्च मास मे रसल ने सुधार के लिये मसविदा पेश किया। हाउस आफ कामन्स मे इसका घोर विरोध हुआ। पर रसल इससे घबराया नही। वह जानता था, कि देश का लोकमत उसके साथ है। उसने हाउस आफ कामन्स को बर्खास्त कर दिया और नया निर्वाचन कराया। नये हाउस में उदार दल का बहुमत था। अब हाउस आफ कामन्स मे इस मसविदे के पास होने में देर नही लगी। पर हाउस आफ लार्ड्स मे इसे स्वीकृत करा सकना आसान बात न थी। वहा कुलीन जागीरदारो का प्रभुत्त्व था। वे लोग सुधारो के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने इसे अस्वीकृत कर दिया। अब एक नई समस्या उत्पन्न हुई। जनता सुधार चाहती थी, और लार्ड लोग उसके मार्ग मे रुकावट थे। आखिर, लार्ड रसल ने राजा को इस बात के लिये तैयार कर लिया, कि सुधारो के पक्षपाती इतने नये लार्ड बना दिये जावे, ताकि यह मसविदा हाउस आफ लार्ड्स मे पास हो सके। इस दशा मे अधिक विरोध निरर्थक था। जून, १८३२ में हाउस आफ लार्ड्स ने भी सुधार के मसविदे को स्वीकृत कर लिया।

१८३२ के सुधार—१८३२ के सुधार-विधान ने इङ्गलैण्ड की शासन-पद्धति के उन दोषो को दूर करने का प्रयत्न किया, जिनका हम पहले प्रकरण मे वर्णन कर चुके है। इस विधान द्वारा ५६ ऐसे नगरो से प्रतिनिधि भेजने का अधिकार छीन लिया गया, जिनकी आबादी दो हजार से भी कम थी। कुछ नगर ऐसे थे, जिनकी आबादी दो हजार से तो अधिक थी, पर चार हजार से कम थी। पहले उनसे भी दो-दो प्रतिनिधि निर्वाचित होते थे। अब उनसे एक-एक प्रतिनिधि भेजने की व्यवस्था की गई। ऐसे नगरो की संख्या ३२ थी। ३२ नये नगरो को दो-दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया। २० नये नगरो को एक-एक प्रतिनिधि भेजने का हक मिला। इसी तरह देहातो की भी नये सिरे से व्यवस्था की गई। आबादी के हिसाब से नये निर्वाचनमण्डलो का विभाग किया गया, और यह निर्णय हुआ कि समय-समय पर आबादी की दृष्टि से निर्वाचक-मण्डलो का पुन सगठन होता रहे। १८३२ के सुधार-विधान मे वोट के अधिकार में भी परिवर्तन किया गया। देहातो मे उन सब लोगो को वोट का अधिकार

मिला, जो ७५० रुपया वार्षिक लगान देते हों, या इतने लगान की भूमि के स्वामी हों। शहरों में वे सब लोग वोटर बना दिये गये, जो १५० रु० वार्षिक किराये के मकान में रहते हों, या इतने किराये के मकान के स्वामी हों। इस प्रकार वोट देने का अधिकार पहले की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तृत हो गया। पर यह ध्यान में रखना चाहिये, कि १८३२ के इन सुधारों द्वारा वोट का अधिकार बहुत कम लोगों को मिला था। हिसाब लगाया गया है कि उस समय इङ्गलैण्ड में कुल मिलाकर ६०,२३,७५२ बालिग पुरुष थे, जिनमें से केवल ८,३९,५१९ पुरुषों को ही वोट का अधिकार दिया था। सर्वसाधारण किसान व मजदूर इस अधिकार से सर्वथा वञ्चित रखे गये थे। उस जमाने में ७५० रु० वार्षिक लगान देना या शहरों में १५० रु० वार्षिक किराये के मकान में रहना कोई मामूली बात न थी। केवल उच्च मध्यश्रेणी के लोग ही इस सुधार-विधान से लाभ उठा सकते थे। सर्वसाधारण जनता—किसान और मजदूर लोग अब भी राजनीतिक अधिकारों से सर्वथा वञ्चित थे।

चार्टिस्ट आन्दोलन—सुधार-विधान अभी क्रिया रूप में परिणत होना शुरू भी नहीं हुआ था, कि उसके विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। किसान और मजदूर लोगों ने पुरुष-मात्र को मताधिकार प्राप्त हो, इसके लिये आन्दोलन शुरू कर दिया। स्थान-स्थान पर सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया गया। १८३८ में सर्वसाधारण जनता ने एक उद्घोषणा-पत्र (चार्टर) तैयार किया, जिसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित ७ मांगें पेश की गई थीं—(१) सब बालिग पुरुषों को वोट का अधिकार दिया जाय। (२) वोट खुले तौर पर न लिये जाएँ, अपितु पर्चियों द्वारा लिये जाया करें। (३) पार्लियामेन्ट का सदस्य होने के लिये सम्पत्ति की कोई शर्त न रखी जाए। (४) पार्लियामेन्ट के सदस्यों को निश्चित वेतन मिला करे। (५) पार्लियामेन्ट का निर्वाचन वार्षिक रूप में हो। (६) निर्वाचक-मण्डलों का फिर से संगठन किया जाए, और इसके लिये देश को नये व एक बराबर विभागों में विभक्त किया जाए।

वर्तमान समय में ये मांगें बहुत मामूली प्रतीत होती हैं। इङ्गलैण्ड में इस समय ये प्रायः स्वीकृत भी की जा चुकी हैं। पर उन्नीसवीं सदी के मध्यभाग में इन्हें बहुत क्रान्तिकारी समझा जाता था। चार्टिस्ट लोग इनके लिये घनघोर आन्दोलन कर रहे थे। स्थान-स्थान पर सभाएँ की जाती थीं। जुलूस निकाले जाते थे, जोशीली कविताएँ गाई जाती थीं, और गरमागरम वक्तृताएँ दी जाती थीं। सरकार इन मांगों को अत्यन्त खतरनाक समझती थी। उदार और अनुदार दोनों दलों के लोग इनके खिलाफ थे। वे अपनी सारी शक्ति से इस चार्टिस्ट आन्दोलन को कुचल डालने के लिये उत्सुक थे। सन् १८३९ में इस चार्टर पर लाखों मनुष्यों के हस्ताक्षर कराये गये, और उसे पार्लियामेन्ट की सेवा में उपस्थित किया गया। पर वहां उसके अस्वीकृत होने में देर नहीं लगी। अधिकांश सदस्य उसके विरोध में थे, और इसी कारण वह स्वीकृत न हो सका।

सन् १८४० में 'नैशनल चार्टर एसोशियेशन" की स्थापना हुई। इसकी शाखाएँ इङ्गलैण्ड के प्रायः सभी नगरों में कायम की गई। इस एसोशियेशन की तरफ से चार्टर के लिये प्रचण्ड आन्दोलन शुरू हुआ। कुछ लोग तो हिंसात्मक उपायों के भी पक्षपाती थे, और खुल्लमखुल्ला उनका प्रचार कर रहे थे। कई स्थानों पर दंगे भी हुए, पर पुलिस ने

उन्हें बडी सुगमता से शान्त कर दिया। सरकार ने जनता के आन्दोलन को शान्त करने के लिये इस समय बडा भारी प्रबन्ध किया हुआ था।

सन् १८४८ मे फ्रास मे फिर राज्यक्रान्ति हुई। फ्रास की क्रान्ति का प्रभाव अन्य देशो पर भी पडा। सारे यूरोप मे क्रान्ति की एक नई लहर व्याप्त हो गई। क्रान्ति की इस नई लहर ने चार्टिस्ट आन्दोलन मे नवजीवन का सचार किया। एक नया चार्टर तैयार किया गया और उस पर साठ लाख मनुष्यो के हस्ताक्षर कराये गये। इतने हस्ताक्षर प्राप्त करने के लिये सम्पूर्ण देश मे बडा भारी आन्दोलन किया गया था। इस विशाल चार्टर को हाउस आफ कामन्स की सेवा मे प्रस्तुत करने के लिये बहुत बडी तैयारी की गई। एक विशाल जुलूस निकालने की योजना बनाई गई, जिसमे पाच लाख मनुष्य शामिल हो। साठ लाख हस्ताक्षरो से युक्त यह चार्टर इतना बडा था, कि छ गाडियो पर आया था। सरकार को इस बात की आशका थी, कि इस जलूस के कारण शान्ति-रक्षा सम्भव न रहेगी। अत जुलूस को गैर-कानून उद्घोपित कर दिया गया और एक लाख सत्तर हजार सिपाही लण्डन के विविध स्थानो पर अमन और चैन की रक्षा के लिये नियुक्त कर दिये गये। पुलीस की इतनी तैयारी के कारण चार्टिस्ट लोग गडबड न कर सके। चार्टर को पार्लियामेंट के सम्मुख पेश किया गया, पर इस बार भी वह स्वीकृत न हो सका। जाच करने पर मालूम हुआ, कि उस पर बहुत से लोगो के हस्ताक्षर जाली थे। इस कारण चार्टिस्ट नेता बदनाम भी हो गये, और पुलीस की सतर्कता के कारण यह आन्दोलन कुछ ही समय मे शिथिल पड गया।

यद्यपि चार्टिस्ट आन्दोलन समाप्त हो गया, पर शासन-सुधार की भावना का अन्त नही हुआ। चार्टिस्ट आन्दोलन के समय जनता मे भारी कार्य हुआ था, चार्टर के सिद्धान्तो का भलीभाति प्रचार किया गया था। इसके कारण प्रत्येक राजनीतिक दल में कुछ न कुछ लोग सुधारो के पक्षपाती हो गये थे। परिणाम यह हुआ, कि समय-समय पर विविध नेता पार्लियामेन्ट के सम्मुख शासन-सुधार-सबधी मसविदे उपस्थित करने लगे। इन मसविदो का स्वीकृत हो सकना कोई साधारण बात नही थी, क्योकि पार्लियामेन्ट के बहु-संख्यक सदस्य अब भी सुधारो के विरोधी थे। पर इसमे सन्देह नही, कि इन मसविदो के कारण सुधार की माग निरन्तर अधिक-अधिक प्रबल होती जाती थी, और धीरे-धीरे पार्लियामेन्ट के प्राय सभी सदस्य यह स्वीकार करने लगे थे, कि कुछ न कुछ सुधार आवश्यक है।

सन् १८६५ मे पार्लियामेन्ट मे उदार दल का फिर बहुमत हो गया, और लार्ड रसल प्रधानमन्त्री बने। उनके मन्त्रिमण्डल के सबसे प्रभावशाली सदस्य श्रीयुत ग्लैडस्टन थे। ग्लैडस्टन ने सन् १८३२ के बाद के निर्वाचन मे पार्लियामेन्ट मे प्रवेश किया था। शुरू मे वे अनुदार दल के अनुयायी थे। पर धीरे-धीरे उनके विचारो मे परिवर्तन आने लगा, और वे सुधारो के पक्षपाती हो गये। उन्होने अनुदार-दल का परित्याग कर दिया, और वे शीघ्र ही उदारदल के एक महत्त्वपूर्ण सदस्य बन गये। श्रीयुत ग्लैडस्टन बहुत उच्चकोटि के वक्ता थे, और उनकी राजनीतिज्ञता का सिक्का सब लोग मानते थे। लार्ड रसल के प्रधानमन्त्री बनने पर ग्लैडस्टन ने सन् १८६६ में शासन-सुधार के लिये एक मसविदा पार्लियामेन्ट

के सम्मुख पेश किया। इसमे मताधिकार को पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत करने का प्रयत्न किया गया था। अनुदार दल तो इसके विरोध में था ही, पर उदार दल के भी बहुत से सदस्य इसके विपक्ष मे थे। उनकी सम्मति मे अभी इस मसविदे के लिये समय नही आया था। परिणाम यह हुआ, कि पार्लियामेन्ट मे यह स्वीकृत न हो सका, और लार्ड रसल के मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ा।

१८६७ का सुधार-विधान—अब अनुदार दल के नेता लार्ड डर्बी प्रधानमन्त्री बने। उनके मन्त्रिमण्डल के सबसे महत्त्वपूर्ण सदस्य श्रीयुत डिजरायली थे। लार्ड डर्बी हाउस आफ लार्ड्स मे थे, अत हाउस आफ कामन्स का नेतृत्व डिजरायली ही करते थे। डिजरायली उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे। अनुदारदल का मन्त्रिमण्डल होने के कारण जनता का स्वाभाविक रूप से खयाल था, कि यह सरकार सुधारो की विरोधी है, और इससे शासन सुधार सम्बन्धी कोई आशा रखना सर्वथा निरर्थक है। इसलिये सारे देश मे सुधार के लिये तीव्र आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। स्थान-स्थान पर सभाए सगठित की गई। पुरुषमात्र को वोट का अधिकार होना चाहिये, इसके लिये प्रस्ताव स्वीकृत किये जाने लगे। एक बार फिर सन् १८३२ के दृश्य दृष्टिगोचर होने लगे। सारे इङ्गलैण्ड मे एक प्रकार की हलचल सी मच गई। लोग सरकार की अवज्ञा तक करने के लिये उद्यत हो गये। लण्डन के हाईड पार्क मे तो दगो तक की नौबत आ गई। इस दशा को देखकर डिजरायली जैसे चाणाक्ष राजनीतिज्ञ ने यह भलीभाति अनुभव कर लिया, कि शासन-सुधार की माग बहुत प्रबल है, और उसे स्वीकृत किये विना काम नही चलेगा। सन् १८६७ मे, उसने स्वय शासन-सुधार सम्बन्धी एक मसविदा पार्लियामेन्ट के सम्मुख उपस्थित किया। पार्लियामेन्ट मे इसका घोर विरोध हुआ। उदार दल के लोग डिजरायली पर हँसते थे, और कहते थे कि अब वह उन्ही सुधारो को स्वय पेश कर रहा है, जिनका वह जन्म भर विरोध करता रहा है। अनुदार दल के बहुत से सदस्य सुधारो के विरोधी थे ही, वे भी डिजरायली के इस मत-परिवर्तन से बहुत क्रुद्ध हुए। पर आखिर डिजरायली का यह शासन-सुधार-सम्बन्धी मसविदा बहुमत से स्वीकृत हो गया।

सन् १८६७ के इस सुधार-विधान से वोट का अधिकार पहले की अपेक्षा बहुत विस्तृत हो गया। मतदाताओ की सख्या पहले की अपेक्षा प्राय दुगनी हो गई। इसके अनुसार शहरो में उन सब लोगो को वोट का अधिकार मिल गया, जिनके शहर की सीमा में अपने मकान हो, या जो कम से कम १५० रु० वार्षिक किराये के मकान मे रहते हो। देहातो मे उन सब लोगो को वोट का अधिकार दिया गया, जिनकी कम से कम ७५ रु० वार्षिक आमदनी की अपनी जायदाद हो, या जो कम से कम १८० रु० वार्षिक लगान देते हो। यद्यपि अब भी वोट के लिये सम्पत्ति की शर्त को कायम रखा गया था, पर इसमे सन्देह नही, कि पहले की अपेक्षा मतदाताओ की सख्या अब पर्याप्त बढ गई थी। इस विधान द्वारा इङ्गलैण्ड ने लोकतन्त्र शासन की ओर एक बहुत महत्त्वपूर्ण पग बढाया था। १८६७ के बाद भी शासन-सुधारो की यह प्रक्रिया जारी रही, और धीरे-धीरे इङ्गलैण्ड का शासन पूर्णतया लोकतन्त्रवाद के अनुसार हो गया।

इक्कीसवाँ अध्याय

आस्ट्रिया-हंगरी और रूस की प्रगति

(१) आस्ट्रिया-हगरी का सगठन

१८६१ के शासन सुधार—हाप्सवुर्ग राजवश द्वारा शासित प्रदेशो मे १८४८ की क्रान्ति की लहर किस प्रकार असफल हुई थी, इस वात पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। हगरी के देशभक्त कुछ समयके लिये अपना पृथक् स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर अन्त मे फिर आस्ट्रियन सरकार के अधीन रहने के लिये वाधित हुए थे। यही दशा वोहेमिया की थी। आस्ट्रिया मे दो दो वार राजा को वीएना छोडकर भागना पडा था। पर आखिरकार पुरानी प्रवृत्तिया सफल हुई, और हाप्सवुर्ग वश का स्वेच्छाचारी शासन सर्वत्र फिर से स्थापित हो गया। १८५९ मे जव इटालियन लोगो ने आस्ट्रिया की अधीनता से मुक्त होने के लिये युद्ध प्रारम्भ किया, और लोम्वार्डी का प्रदेश आस्ट्रियन आधिपत्य से निकल गया, तव सम्राट् फ्रासिस जोसफ की आखे खुली। इटली का अनुकरण कर अन्य भी अनेक स्थानो पर विद्रोह हुए,और सम्राट् ने गम्भीरता के साथ सुधार का कार्य प्रारम्भ किया। फ्रासिस जोसफ नवयुवक सम्राट् था। वह १८४८ की क्रान्ति के दिनो मे राजगद्दी पर आरूढ हुआ था। उसके चचा फर्डिनेन्ड ने क्रान्ति से घवराकर २ दिसम्वर, १८४८ को राजगद्दी छोड देने मे ही अपना कल्याण समझा था। फ्रासिस जोसफ ही वह सम्राट् था, जिसने क्रान्ति की ज्वालाओ को शान्त कर फिर से एकतन्त्र शासन की स्थापना की थी। अव उसने अनुभव किया, कि जनता को सन्तुष्ट रखने के लिये सुधार किये विना काम नही चलेगा। उसने मध्यकाल की वहुत सी वुराइयो को नष्ट कर अनेक सुधार किये, जिससे लोगो की शिकायते वहुत कुछ दूर हुई। सवसे महत्त्वपूर्ण वात यह थी, कि १८६१ मे सम्पूर्ण साम्राज्य—आस्ट्रिया, हगरी और वोहेमिया—के लिये एक शासन-विधान की रचना की गई। सवके शासन को वीएना मे केन्द्रित किया गया, और सम्पूर्ण साम्राज्य के लिये व्यवस्थापन का कार्य दो सभाओ के सुपुर्द हुआ, (१) कुलीन सरदारो की सभा—इसमे वश-क्रमानुगत कुलीन सरदार लोग सम्मिलित होते थे। इनके अतिरिक्त सम्राट् की तरफ से जिन्हे वडे ऊँचे खिताव दिये जाते थे, उन राजसम्मानित लोगो मे से भी कुछ को सरकार इस सभा का सदस्य मनोनीत करती थी। (२) दूसरी सभा सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधियो की थी। यद्यपि वोट का अधिकार वहुत विस्तृत नही था, पर फिर भी मध्य श्रेणि के प्रतिनिधि इस सभा मे सम्मिलित हो सकते थे। १८६१ में आस्ट्रियन साम्राज्य का शासन पूर्णतया एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी नही रहा था, वह एक प्रकार से वैध राजसत्ता वन गया था। इस अश मे आस्ट्रिया जर्मनी से पर्याप्त आगे था। यद्यपि लोकतन्त्रवाद का कुछ प्रवेश आस्ट्रिया मे हो गया था, पर

उसकी वास्तविक समस्या अभी हल नही हुई थी। आस्ट्रियन साम्राज्य मे कोई एक जाति निवास नही करती थी। आस्ट्रिया के असली जर्मन लोगो के अतिरिक्त उसमे अन्य भी बहुत सी जातियो का निवास था। ये सब अपने को स्वाधीन करने का प्रयत्न कर रही थी। यदि इन जातियो की दृष्टि से देखा जाय, तो १८६१ के सुधारो द्वारा स्थापित वैध राजसत्ता वास्तविक असतोष को दूर करने मे सर्वथा असमर्थ थी।

१८६६ के आन्दोलन—१८६६ मे सेडोवा के युद्ध मे पराजित हो जाने के अनन्तर आस्ट्रिया जर्मनी से पृथक् हो गया था। जर्मन राज्यसघ की जटिल समस्याओ से अब उसका कोई सम्बन्ध न रहा। अनेक सदियो से वह जर्मन लोगो का नेतृत्व कर रहा था। पर प्रशिया के अभ्युदय ने उस नेतृत्व का अन्त कर दिया, और आस्ट्रिया के ८० लाख के लगभग जर्मन लोग अपनी जाति के अन्य लोगो से पृथक् हो गये। १८६६ के बाद हाप्सबुर्ग राजवश का ध्यान पश्चिम की तरफ से हटकर पूर्व की तरफ जाना शुरू हुआ। आस्ट्रिया अब जर्मनी के स्थान पर बाल्कन प्रायद्वीप मे अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिये प्रयत्न करने लगा। १८६६ मे ही वेनेटिया का भी प्रदेश आस्ट्रिया की अधीनता से निकल गया था। सेडोवा की पराजय और वेनेटिया की स्वतन्त्रता के कारण आस्ट्रिया के विरुद्ध विद्रोह की प्रवृत्तिया फिर बलवती हो गई। विशेषतया हगेरियन लोगो ने १८६१ के शासन-विधान का घोर विरोध प्रारम्भ कर दिया। वे पहले भी इसके प्रति अपना असन्तोष प्रकट कर रहे थे। इसीलिये वे व्यवस्थापिका सभाओ मे सम्मिलित ही न होते थे। हगेरियन लोग स्वय तो नवीन शासन मे असहयोग कर ही रहे थे, साथ मे बोहेमियन, पोल और क्रोटियन आदि लोगो को भी अपना अनुसरण करने के लिये भडका रहे थे। १८६६ मे इस आन्दोलन ने बहुत प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। हगेरियन लोग कहते थे, कि हमारा देश सदा से एक पृथक् व स्वतन्त्र राज्य के रूप मे रहा है। आस्ट्रिया से हमारा सम्बन्ध केवल इतना था, कि दोनो राज्यो का राजा ही एक था। इसके अतिरिक्त अन्य कोई सम्बन्ध आस्ट्रिया और हगरी मे नही था। हगेरियन लोगो की माग यही थी, कि १८६१ के शासन-विधान का अन्त कर फिर से उनके पृथक् राज्य की स्थापना की जाए।

समझौता (ऑसग्लाइख)—अन्त मे सम्राट् फ्रासिस जोसफ हगेरियन देशभक्तो की माग को स्वीकृत करने के लिये बाधित हुआ, जिसके कारण १८६७ मे आस्ट्रिया और हगरी मे समझौता हो गया, और नवीन शासन-विधान की रचना की गई। इतिहास मे १८६७ का यह शासन-विधान 'समझौते' (ऑसग्लाइख) के नाम से प्रसिद्ध है। इस समझौते के अनुसार फ्रासिस जोसफ ने स्वीकार किया, कि मै दो पृथक् व स्वतन्त्र राज्यो का पृथक् रूप से राजा हूँ। ये राज्य निम्नलिखित है—

(१) आस्ट्रियन साम्राज्य—जिसमे कुल मिलाकर १७ प्रान्त सम्मिलित थे। असली आस्ट्रिया के अतिरिक्त बोहेमिया, मोरेविया, कैरिन्थिया, कर्निओला आदि प्रदेश इसमे ऐसे भी शामिल थे, जिसमे अनेक जर्मन-भिन्न जातिया निवास करती थी।

(२) हगरी का राज्य—इसमे भी हगेरियन लोगो के अतिरिक्त क्रोटियन और स्लावोनियन जातियो का निवास था।

आस्ट्रियन साम्राज्य की राजधानी वीएना थी, और हगरी की बुडापेस्ट। दोनो राज्यो

के शासन-विधान पृथक्-पृथक् थे। दोनो की व्यवस्थापिका सभाएं, और मन्त्रिमण्डल आदि भी सर्वथा पृथक् थे। परन्तु कुछ मामले ऐसे भी थे, जिनका शासन सम्मिलित रूप से होता था। विदेशो के साथ सम्बन्ध, सन्धि-विग्रह, सेना, तटकर आदि उभयनिष्ठ मामलो के लिये दोनो राज्य एक थे। इस सम्मिलित राज्य को आस्ट्रिया-हगरी कहते थे। आस्ट्रिया-हगरी की स्थल और जल सेना एक थी, मुद्रा-पद्धति एक थी, और तोल, माप आदि के मान एक थे। तट-कर की पद्धति भी सम्मिलित राज्य की एक ही थी। यह एक अद्भुत किस्म का सघ था। दो राज्य एक दूसरे से सर्वथा पृथक् होते हुए भी कुछ मामलो के लिये एक बने हुए थे।

सम्मिलित राज्य का शासन—इन सम्मिलित विषयो का शासन करने के लिये आस्ट्रिया-हगरी का उभयनिष्ठ राजा तीन मन्त्री नियत करता था—परराष्ट्र सचिव, युद्ध सचिव और अर्थ सचिव। ये तीनो मन्त्री एक अद्भुत प्रकार की सम्मिलित पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायी होते थे, जिसे कि "प्रतिनिधिमण्डल" (डैलीगेशन) कहते थे। इस प्रतिनिधिमण्डल का एक भाग आस्ट्रिया की व्यवस्थापिका सभा द्वारा निर्वाचित होता था, और हगरी की व्यवस्थापिका सभा दूसरे भाग के चुनती थी। प्रतिनिधिमण्डल मे कुल मिलाकर १२० सदस्य होते थे। ६० सदस्य आस्ट्रिया चुनता था, और ६० हगरी। प्रतिनिधिमण्डल का अधिवेशन एक बार वीएना मे होता था, और एक बार बुडापेस्ट मे। दोनो राजधानियो मे बारी-बारी से अधिवेशन होते थे, ताकि दोनो को समान रूप से महत्त्वपूर्ण समझा जाए। प्रतिनिधिमण्डल के दोनो भागो का अधिवेशन पृथक्-पृथक् होता था। आस्ट्रियन प्रतिनिधि-मण्डल अपना कार्य जर्मन भाषा में करता था, और हगेरियन प्रतिनिधिमण्डल हगेरियन भाषा मे। जब कभी दोनो भागो मे मतभेद हो जाता था, तो उनका सम्मिलित अधिवेशन किया जाता था। पर इस अधिवेशन मे बहस नही होती थी, केवल वोट ही लिये जाते थे। इस प्रकार आस्ट्रिया और हगरी अपनी स्थिति को एक बराबर रखते हुए अपने सम्मिलित विषयो का सचालन किया करते थे।

१८६७ के "समझौते" के बाद आस्ट्रिया और हगरी दोनो राज्यो का शासन पृथक् रूप से होता रहा। इनके शासन-विधानो का विस्तार से उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नही है। इतना निर्देश करना पर्याप्त होगा, कि आस्ट्रिया के व्यवस्थापन विभाग मे दो सभाए थी। एक सभा मे कुलीन जागीरदार लोग सम्मिलित थे, और दूसरी मे सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधि। पर वोट का अधिकार बहुत कम लोगो को था। मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापन विभाग के प्रति उत्तरदायी था। हगरी के शासन का ढाचा भी ठीक इसी प्रकार का था। वहा भी वोट का अधिकार बहुत कम लोगो को प्राप्त था। आस्ट्रिया और हगरी दोनो मे उत्तरदायित्वपूर्ण वैध शासन की स्थापना तो हो गई थी, पर वास्तविक जनता को अभी बहुत कम अधिकार प्राप्त थे। वोट का अधिकार जितना अधिक विस्तृत होगा, लोकतन्त्र शासन उतना ही पूर्ण होगा। पर इन राज्यो मे यह बात न थी। यही कारण है, कि उदार विचारो के लोग शासन-सुधार के लिये निरन्तर आन्दोलन करते रहे।

अल्पसख्यक जातियो की समस्या—परन्तु आस्ट्रिया-हगरी की वास्तविक समस्या लोकतन्त्र शासन स्थापित करने की नही थी। इस अद्भुत साम्राज्य मे जिन विविध जातियो

का निवास था, उनका जिक्र पहले अनेक बार किया जा चुका है। राष्ट्रीयता की भावना उन सब जातियो मे प्रादुर्भूत हो चुकी थी, और वे अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये आन्दोलन कर रही थी। हगरी की सफलता के कारण उनकी हिम्मत बहुत बढ गई थी। उनका असन्तोष बार-बार फूटकर प्रकट होता रहता था। उन्हें किस प्रकार सन्तुष्ट किया जाए, आस्ट्रियन सरकार के सम्मुख यह अत्यन्त विकट समस्या हमेशा उपस्थित रहती थी। इसका वास्तविक इलाज एक ही था, वह यह कि इनकी राष्ट्रीय भावनाओ को स्वीकृत कर लिया जाए और हगरी के समान इन्हे भी पृथक् राज्य के रूप मे परिवर्तित कर दिया जाए। पर हाप्सबुर्ग वशके सम्राट् तथा आस्ट्रिया के जर्मन निवासियो को यह बात कभी समझ मे नही आई। वे शक्ति के प्रयोग द्वारा इन जातियो को अपनी अधीनता मे रखने का प्रयास करते रहे। कुछ समय तक उन्हे सफलता भी प्राप्त होती रही, पर आखिर १९१४—१८ के महायुद्ध के समय इन्ही जातियो ने आस्ट्रिया-हगरी के साम्राज्य का विनाश कर दिया।

बोहेमिया में चैक स्वतन्त्रता का आन्दोलन—आस्ट्रियन साम्राज्य मे जो विविध जातिया बसती थी, उनमे सबसे अधिक उन्नतिशील बोहेमिया के चैक लोग थे। १८६८ मे उन्होने यह आन्दोलन करना आरम्भ किया, कि हमें भी हगरी के समान स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये। वे कहते थे, हम भी एक पृथक् राष्ट्र है, और आस्ट्रिया के साथ हमारा सम्बन्ध भी केवल इतना ही है, कि आस्ट्रिया का राजा ही हमारा भी राजा है। अत बोहेमिया को हगरी के समान ही एक पृथक् राज्य के रूप में स्वीकृत किया जाना चाहिये, और फ्रासिस जोसेफ का बोहेमिया की राजधानी प्राग मे भी पृथक् राज्याभिषेक होना चाहिये। यह आन्दोलन निरन्तर प्रचण्ड रूप धारण करता गया, और आखिर १८७१ मे फ्रासिस जोसेफ ने चैक लोगो के दावे को स्वीकृत कर लिया। परन्तु जर्मन (आस्ट्रियन) और हगेरियन लोग इस बात को न सह सके। उन्होने कहा—अन्य जातिया भी बोहेमिया का अनुसरण करेगी, और इस सिलसिले का अन्त कहा जाकर होगा? जर्मन और हगेरियन लोगो को इन विविध स्लाव जातियो से बडी तीव्र घृणा थी। वे इन्हे स्वतन्त्र नही देखना चाहते थे। इनके तीव्र विरोध के कारण फ्रासिस जोसेफ अपने वचन को पूर्ण नही कर सका। चैक आन्दोलन को क्रूरता से शान्त किया गया। पर इसमें सन्देह नही, कि सब प्रकार के अत्याचारो को सहते हुए भी चैक तथा अन्य लोग अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये निरन्तर प्रयत्न करते रहे। ये जातिया अवश्य ही अपने उद्देश्य मे सफल हो जाती, अगर इनमे आपस में विरोध और ईर्षा के भाव न होते। शोचनीय बात यह थी कि ये सब भी आपस मे एक न हो सकती थी। आस्ट्रियन सरकार इन्हे लडाती रहती थी। १९वी सदी मे राष्ट्रीयता की भावना के इतने प्रबल होते हुए भी हाप्सबुर्ग शासक अपने शासन मे जो इतने सफल हुए, उसका कारण राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा और विद्वेष के ये ही भाव थे। अन्यथा वे इन विविध जातियो पर कभी शासन न कर सकते। आस्ट्रियन सरकार ने चैक आदि विविध स्लाव जातियो के स्वाधीनता-आन्दोलन को ही कुचलने का प्रयत्न नही किया, उसकी यह भी प्रबलआकाक्षा थी, कि इन जातियो को पूर्णतया जर्मन (आस्ट्रियन) रग मे रँग दे। इसी उद्देश्य से १८६९ मे सम्पूर्ण साम्राज्य के शिक्षणालयो मे जर्मन भाषा का अध्ययन बाधित रूप से जारी किया गया। अन्य प्रकार से भी कोशिश की गई, कि स्लाव लोग जर्मन सभ्यता

का अनुसरण करने मे गौरव अनुभव करे। इन जातियो की धार्मिक भावनाओ को भी उपेक्षा की गई। ये प्राय कैथोलिक धर्म को माननेवाली थी, पर ऐसे कानून बनाये गये, जिनसे जो अधिकार कैथोलिक लोगो को प्राप्त थे, वे गैर-कैथोलिको को भी मिल गये। इसी प्रकार हगरी में भी स्लाव, रूमानियन आदि जातियो को दवाने तथा उनकी सभ्यता को नष्ट करने के लिये प्रयत्न किये गये। प्रत्येक शिक्षणालय मे हगेरियन भाषा को बाधित रूप से प्रचलित किया गया। जिलो और शहरो के पुराने नामो को बदलकर हगेरियन भाषा के नये नाम रखे गये। हगेरियन लोगो की सख्या कुल आबादी के आधे से भी कम थी, पर उनकी कोशिश यह थी, कि कोई गैर-हगेरियन व्यवस्थापिका सभामे निर्वाचित ही न हो सकें। इसी प्रयत्न का यह परिणाम था, कि व्यवस्थापिका सभा मे हगेरियन लोगो का हमेशा प्रभुत्त्व रहता था। वे जो कुछ चाहते थे, कर सकते थे।

परराष्ट्र नीति—अब आस्ट्रिया-हगरी की साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति जर्मनी या इटली के क्षेत्र में चरितार्थ नही हो सकती थी। जर्मन राज्यसघ मे अब उसके लिये कोई स्थान न था। इटली उसकी अधीनता से मुक्त हो चुका था, और अब यह सम्भव नही रहा था कि आस्ट्रिया उसे फिर से अपने अधीन कर सके। अब उसके सम्मुख एक ही मार्ग था। वह बाल्कन प्रायद्वीप में अपनी महत्त्वाकाक्षाओ को पूर्ण कर सकता था। वहा उसके विस्तार के लिये उपयुक्त क्षेत्र विद्यमान था। परन्तु उधर रूस भी इसी क्षेत्र मे अपने साम्राज्यवाद का जाल फैला रहा था। रूस विविध स्लाव जातियो को अपनी अधीनता और सरक्षा मे सगठित करना चाहता था। इस प्रकार बाल्कन प्रायद्वीप में आस्ट्रिया और रूस के स्वार्थ आपस मे टाकरा खाते थे।

(२) रूस मे नवयुग का प्रारम्भ

आधुनिक युग में रूस का महत्व—वर्तमान समय मे रूस ससार मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वह सयुक्तराज्य अमेरिका के समान ससार का सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य है, और विश्व के विविध राज्यो का नेतृत्त्व करने के लिये अमेरिका का प्रधान प्रतिद्वन्द्वी है। समाजवाद (कम्युनिज्म) के रूप में उसने जिस नई आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था का प्रारम्भ किया है, उसके कारण उसका महत्त्व बहुत अधिक बढ गया है। रूस न केवल स्वय एक विशाल देश है, पर रूसी लोग एक ऐसे सुविस्तृत राज्यसघ (यूनियन) का भी नेतृत्त्व करते हैं, जिसमे रूसी-भिन्न अनेक जातियो का समावेश है। इस रूसी सोवियट यूनियन का पुराना स्वरूप एक साम्राज्य के रूप मे था, जिसे अब एक विशाल सघ-रिपब्लिक के रूप मे परिवर्तित कर दिया गया है। यह रूसी रिपब्लिक न केवल पूर्वी यूरोप मे, अपितु एशिया मे भी अपने प्रभाव को विस्तृत करने के लिये प्रयत्नशील है। यही कारण है, कि इस समय ससार के विविध राज्यो मे रूस का महत्त्व बहुत अधिक बढ गया है। पर उन्नीसवी सदी के यूरोप के इतिहास मे रूस का इतना महत्त्व नही था। फ्रान्स, जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन इस युग मे रूस की अपेक्षा बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण थे। पर इसमे सन्देह नही, कि रूस की वर्तमान शक्ति और महत्त्व का सूत्रपात उन्नीसवी सदी मे ही शुरू हो चुका था, और इसीलिये यह आवश्यक है, कि हम रूस के इतिहास पर

कुछ अधिक विशद रूप से प्रकाश डाले।

रूस के उत्कर्ष का प्रारम्भ—अठारहवी सदी के अन्त मे रूस की क्या दशा थी, इसका उल्लेख हम संक्षिप्त रूप मे कर चुके है। १७६२ से १७९६ ई० तक रूस के राजसिंहासन पर जारीना कैथराइन द्वितीय विराजमान थी। अपने साम्राज्य का विस्तार करने के उद्देश्य से इसने पोलैण्ड का अंगभंग करने मे विशेष तत्परता दिखाई थी, और पोलैण्ड के प्राचीन राज्य के अच्छे बडे भाग को अपने अधीन कर लिया था। उन्नीसवी सदी के शुरू तक रूस यूरोप मे अच्छा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका था, और वहा की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे उसका अच्छा स्थान था।

पन्द्रहवी सदी तक रूस मे किसी एक शक्तिशाली राजा का व्यवस्थित शासन नही था। सारा देश अनेक छोटे-बडे राज्यो मे विभक्त था, और ये सब रूसी राजा चीन के मगोल सम्राट् की अधीनता स्वीकृत करते थे। पन्द्रहवी सदी मे जब मगोल साम्राज्य की शक्ति क्षीण होनी शुरू हुई, तो ये रूसी राज्य स्वतन्त्र हो गये। रूस के इन विविध राज्यो मे मास्को का राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली था। १५४७ ई० मे मास्को के राजा इवान (जो इतिहास मे भयकर इवान के नाम से प्रसिद्ध है) ने जार या सम्राट् की उपाधि धारण की, और अन्य रूसी राजाओ को अपनी अधीनता स्वीकृत करने के लिये विवश किया। पर सोलहवी सदी के ये जार सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से यूरोपीय लोगो की अपेक्षा चीन के अधिक समीप थे। सदियो तक चीन के मगोल सम्राटो की अधीनता मे रहने के कारण इन पर चीन का बहुत प्रभाव था। इनका दरबार चीन के ढग पर सगठित था, और रूसी सम्राट् व उसके दरबारी सिर पर पगडी बाधकर दरबार मे उपस्थित हुआ करते थे।

पीटर द ग्रेट—१६७२ ई० मे मास्को की राजगद्दी पर पीटर द ग्रेट आरूढ हुआ। इस समय तक पश्चिमी यूरोप के देश उन्नति की दौड मे शीघ्रता के साथ आगे बढने लग गये थे। यूरोपमे व्यापारिक क्रान्तिका सूत्रपात हो चुका था, और अमेरिका के विशाल महाद्वीप का भी यूरोपियन लोग पता कर चुके थे। अफ्रीका का चक्कर काटकर उन्होने एशिया के विविध देशो मे भी व्यापार के लिये आना-जाना शुरू कर दिया था। अमेरिका मे यूरोपियन लोगो के उपनिवेश भी बसने शुरू हो गये थे। एशिया और अमेरिका के व्यापार के कारण स्पेन, फ्रास, इङ्गलैण्ड आदि देश बहुत अधिक सम्पन्न और समृद्ध हो रहे थे। पीटर ने अनुभव किया, कि रूस उन्नति की दौड में यूरोप के अन्य राज्यो के मुकाबले मे बहुत पीछे रह गया है। १६९७ में उसने स्वय जर्मनी, हालैण्ड और इङ्गलैण्ड की यात्रा की। पीटर बहुत ही चाणाक्ष व्यक्ति था। उसने पश्चिमी यूरोप के इन देशो की व्यावसायिक और व्यापारिक उन्नति का भलीभाति अध्ययन किया, और यह निश्चय किया कि रूस की उन्नति के लिये वह भी कोई कसर नही उठा रखेगा। अपने देश को वापस जाते हुए वह जर्मनी से बहुत से शिल्पियो और वैज्ञानिको को भी अपने साथ ले गया, और वहा जाकर उसने उन सुधारो का प्रारम्भ किया, जो रूस की उन्नति मे बहुत अधिक सहायक हुए। उसने बहुत से रूसी विद्यार्थियो को इस उद्देश्य से हालैण्ड, इङ्गलैण्ड आदि भेजा, ताकि वे वहा जाकर शिल्प सीखे। विदेशियो को रूस मे बसने के लिये भी उसने प्रोत्साहित किया। वह रूसी

दरबार के मगोलियन रग ढग को जरा भी पसन्द नही करता था। इसलिये उसने स्वय पश्चिमी यूरोप के कुलीन व राजघराने के लोगोके समान रहना शुरु किया, ओर अपने अमीर उमराओ को भी इसी ढग से रहने के लिये प्रेरित किया। सत्रहवी सदी मे रूस की जलशक्ति न के बराबर थी। पीटर द ग्रेट अनुभव करता था, कि नाविक शक्ति के बिना रूस के लिये उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकना सम्भव नही होगा। अत उसने यत्न किया, कि जहा रूस रहन-सहन, शिल्प और ज्ञान के क्षेत्र मे पश्चिमी यूरोप के देशो का समकक्ष हो, वहा वह नाविक शक्ति मे भी उन्नति करे। इन उद्देश्यो को सम्मुख रखकर उसने अपने राज्य में अनेक सुधार किये। उसने अपनी प्रजा को प्रेरित किया, कि वे पगडी बाधना और लटकते हुए चोगे पहनना छोडकर यूरोपियन पोशाक को अपनावे, स्त्रिया जनानखाने मे रहने के बजाय समाज मे पुरुषो के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चले, ओर रूसी लोग नये युग के ज्ञान विज्ञान को अपनावे। उसने अपने शासन का पुन सगठन किया ओर सेना को नये ढग की शिक्षा प्रदान की। रूस की जलशक्ति के विकास के लिये पीटर ने बाल्टिक सागर के तट पर एक नये नगर की स्थापना की, जिसका नाम सेण्ट पीटर्सबुर्ग रखा गया। पीटर का प्रयत्न था, कि यह एक प्रथम श्रेणी का बन्दरगाह बने, ओर रूस की जलशक्ति इस नगर मे केन्द्रित रहे।

पीटर जिस ढग से रूस की शक्ति को बढाने का प्रयत्न कर रहा था, उसका यह परिणाम हुआ, कि स्वीडन उसके खिलाफ उठ खडा हुआ। उन दिनो स्वीडन की राजगद्दी पर चार्ल्स अष्टम विराजमान था, जो बडा प्रतापी और महत्त्वाकाक्षी राजा था। अपने पडोसी राज्यो से उसके अनेक युद्ध हुए। शुरु मे वह सर्वत्र विजयी रहा। डेनमार्क और पोलैण्ड को उसने परास्त किया। पर पीटर द ग्रेट के साथ युद्ध मे उसे सफलता नही हुई। १७०९ ई० में रूसी सेनाओ द्वारा वह बुरी तरह से परास्त हुआ, और टर्की के सुलतान के यहा आश्रय लेने के लिये विवश हुआ। चार्ल्स अष्टम का प्रयत्न था, कि तुर्क सुलतान को अपने साथ मिलाकर पीटर का मुकाबला करे। पर अपने उद्देश्य मे वह सफल नही हो सका, और रूस के साथ सघर्ष करते-करते १७१८ मे एक युद्ध मे उसकी मृत्यु हो गई। चार्ल्स की मृत्यु के बाद स्वीडन और रूस मे सन्धि हो गई, और इस सन्धि के परिणामस्वरूप बाल्टिक सागर के पूर्वी तट पर स्थित लिवोनिया, एस्थोनिया आदि अनेक प्रदेश (जो पहले स्वीडन के अधीन थे) रूस को प्राप्त हुए। इन प्रदेशो के प्राप्त हो जाने से रूस की पश्चिमी सीमा समुद्रतट तक पहुँच गई, और उसे अपनी जलशक्ति के विकास का अपूर्व अवसर प्राप्त हो गया। पर पीटर इतने से ही सतुष्ट नही हुआ। उसने कालासागर (ब्लैक सी) और कैस्पियन सागर की दिशा मे भी रूस के साम्राज्य को विस्तृत करने का प्रयत्न किया। १७२५ ई० तक पीटर ने रूस का शासन किया, और इसमे सन्देह नही, कि उसके सुदीर्घ शासनकाल (१६७२-१७२५) मे रूस यूरोप के अच्छे उन्नत और शक्तिशाली राज्यो मे गिना जाने लगा।

पीटर के उत्तराधिकारी—१७२५ ई० मे पीटर द ग्रेट की मृत्यु के बाद रूस के जो राजा हुए, वे प्रतापी व महत्त्वाकाक्षी नही थे। पर १७६२ मे उसकी राजगद्दी पर फिर एक सुयोग्य साम्राज्ञी आरूढ हुई, जिसका नाम जारीना कैथराइन द्वितीय था।

कैथराइन ने पीटर द ग्रेट के कार्य को अधिक पूर्णता के साथ सम्पन्न किया, और उसके शासनकाल में रूस ने बहुत उन्नति की। १७९५ ई० में जब फ्रांस में राज्यक्रान्ति बड़ी तेजी के साथ प्रगति कर रही थी, कैथराइन द्वितीय की मृत्यु हुई, और उसका लडका पाल रूस का सम्राट् बना। फ्रेंच क्रान्तिकारियों के विरुद्ध युद्ध करने के लिये जो गुट इस समय बन रहे थे, पाल भी उनमें शामिल हुआ। इसी पॉल का उत्तराधिकारी अलेक्जेण्डर प्रथम (१८०१-१८२५) था, जिसने कि नैपोलियन के साथ घनघोर संघर्ष किया था, और जिसके नेतृत्व में वीएना की कांग्रेस के बाद पवित्र मित्र-मण्डल का निर्माण हुआ था। उन्नीसवीं सदी में रूस के जिन एकतन्त्र स्वेच्छाचारी पर शक्तिशाली सम्राटों ने यूरोप की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भाग लिया, उनके सम्बन्ध में अब हम कुछ अधिक विस्तार के साथ परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

३. रूस में एकतन्त्र स्वेच्छाचारी सम्राटों का शासन

अलेक्जेण्डर प्रथम (१८०१-१८२५)—नैपोलियन के पतन में रूस के जार अलेक्जेण्डर प्रथम का बड़ा हाथ था। वीएना की कांग्रेस में यूरोप के जो महान् राजनीतिज्ञ इकट्ठे हुए थे, अलेक्जेण्डर उनमें बहुत ऊँचा स्थान रखता था, और 'पवित्र मित्रमण्डल' का विचार उसी के दिमाग से उत्पन्न हुआ था। इसमें सन्देह नहीं, कि शुरू में अलेक्जेण्डर उदार विचारों का पक्षपाती था। उसकी शिक्षा ला हार्प नामक उदार स्विस विद्वान् की संरक्षा में हुई थी, और फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने उस पर बहुत प्रभाव डाला था। शुरू में नैपोलियन का वह बड़ा आदर करता था। यदि अलेक्जेण्डर अपने विचारों को क्रिया में परिणत कर सकता, तो रूस अब से बहुत पहले एक उन्नत देश बन जाता। पर अलेक्जेण्डर में एक बड़ी कमजोरी थी। उसकी प्रकृति स्थिर नहीं थी। धीरे-धीरे उस पर मेटरनिख के जादू ने असर करना शुरू किया, और वह अपने उदार विचारों को सर्वथा भूल कर स्वेच्छाचारी शासन का बड़ा भारी पक्षपाती बन गया। सन् १८२० में अलेक्जेण्डर की फौज में एक मामूली सा विद्रोह हुआ। इससे वह इतना परेशान हुआ, कि उदार विचारों का प्रचण्ड विरोधी बन गया। उसका यह दृढ विश्वास हो गया, कि स्वतन्त्रता और उदार विचार धर्म, व्यवस्था और समाज के घोर शत्रु हैं, और संसार में शान्ति कायम रखने का एक मात्र उपाय यही है, कि स्वतन्त्रता के भावों को कुचलने के लिये कोई भी कसर बाकी न रखी जावे। इसके बाद से अलेक्जेण्डर क्रान्ति की भावनाओं को कुचलने में मेटरनिख का प्रधान सहायक हो गया।

रूस की समस्यायें—अलेक्जेण्डर के विशाल रूसी साम्राज्य में किसी एक जाति का निवास नहीं था। उसमें विविध भाषाओं को बोलनेवाले अनेक जातियों के लोग बसते थे। रूसी लोगों के अतिरिक्त उसमें मुख्यतया फिन, जर्मन, पोल, यहूदी, तार्तार, आर्मीनियन, ज्यार्जियन और मंगोलियन जातियां निवास करती थीं। इस प्रकार रूस में भी दो मुख्य समस्याएँ थीं। एक राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की और दूसरी लोकतन्त्र शासन स्थापित करने की। फिन, जर्मन, पोल आदि जातियों में राष्ट्रीय भावना उत्पन्न हो रही थी, और वे इस बात को अनुभव करने लगी थीं, कि रूसी लोग विदेशी हैं, और हमें विदेशियों के

शासन में नही रहना चाहिये। विशाल रूसी साम्राज्य में रूसी भाषा ही सर्वत्र प्रयुक्त होती थी। शिक्षणालयो में सब जगह रूसी भाषा पढाई जाती थी। इस बात को अन्य जातियो के लोग सहन नही कर सकते थे। फ्रास की राज्यक्रान्ति द्वारा राष्ट्रीय भावना की जो लहर शुरू हुई थी, वह रूसी साम्राज्य मे बसने वाली इन विविध जातियो पर भी प्रभाव डाल रही थी, और ये भी अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये हाथ पैर पटकने लगी थी। दूसरी समस्या लोकतन्त्र शासन स्थापित करने की थी। रूस का शासन पूर्णतया एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी था। राजा (जार) जो चाहता था, करता था। वह जिसे चाहता, मन्त्री व राजकर्मचारी बनाता, जिसे चाहता उसके पद से बर्खास्त कर देता। कोई लोक-सभा या प्रतिनिधि सभा उस समय रूस मे नही थी। रूस के बहुत से देशभक्त इस दुर्दशा का अनुभव कर रहे थे, और अपने देश मे भी लोकतन्त्र शासन स्थापित कर जनता को स्वतन्त्र कराने का स्वप्न ले रहे थे। जार ने इन नये उदार विचारो को कुचलने के लिये शक्ति भर कोशिश की। अखबारो पर कडी निगाह रखी गई। यूनिवर्सिटियो मे नवीन विज्ञानो का पढना रोक दिया गया। जो प्रोफेसर उदार व स्वतन्त्र विचारो के पक्षपाती थे, उन्हे निकाल दिया गया।

गुप्त समितियो का प्रारम्भ—पर इन सब उपायो के प्रयुक्त करने पर भी रूस के साम्राज्य में उदार विचारो का प्रवेश रुका नही। धीरे-धीरे रूस के अनेक स्थानो पर गुप्त समितियो का सगठन शुरू हुआ। जब रूसी देशभक्तो के लिये खुले तौर पर कार्य कर सकना सम्भव न रहा, तो उन्होंने गुप्त उपायो का आश्रय लिया और वे षड्यन्त्र तैयार करने में लग गये।

प्रथम विद्रोह—एक दिसम्बर, सन् १८२५ को अलेक्जेण्डर प्रथम (१८०१-१८२५) की मृत्यु हुई। क्रान्तिकारी गुप्त समितियो ने इस अवसर का पूर्णतया उपयोग किया। अलेक्जेण्डर के मरते ही उन्होने विद्रोह का झण्डा खडा कर दिया। अनेक स्थानो पर जनता ने विद्रोह किया। पर क्रान्तिकारियो की शक्ति अभी बहुत न्यून थी। उन्हे कुचलने मे जरा भी समय न लगा। अनेक क्रान्तिकारी नेताओ को प्राण दण्ड मिला, और जनता मे आतक जमाने के लिये अनेकविध उपायो को प्रयोग में लाया गया।

निकोलस प्रथम (१८२५–१८५५) और उसकी नीति—अलेक्जेण्डर के बाद उसका लडका निकोलस प्रथम रूसी साम्राज्य का जार (सम्राट्) बना। राजगद्दी पर बैठते ही जो विद्रोह हुआ था, उसके कारण निकोलस प्रथम की नीति बहुत कठोर तथा क्रूर हो गई थी। उसका यह दृढ विश्वास हो गया था, कि पश्चिमी यूरोप की स्वतन्त्रतायुक्त वायु का प्रवेश रूस मे किसी भी भाति नही होना चाहिये। इसके लिये उसने बडे कठोर उपायो का आश्रय लिया। उसने आज्ञा दी, कि कोई भी यात्री बाहर से रूस मे प्रवेश न कर सके। इसी तरह कोई भी रूसी नागरिक अनुमति के बिना देश से बाहर यात्रा, व्यापार, अध्ययन या अन्य किसी कार्य के लिये न जा सके। जो पुस्तके बाहर से रूस मे आती थी, उनके निरीक्षण का पूरा प्रबन्ध किया गया। जिनमे नवीन विचारो या विज्ञानो का आभास भी पाया जाता था, उन्हे रूस में प्रविष्ट न होने दिया जाता था। बहुत से गुप्तचर यूनि-वर्सिटी, अखबार, प्रेस, थियेटर आदि का निरीक्षण करने के लिये विशेष रूप मे नियत

किये गये, ताकि उनमे कही नवीन विचार प्रविष्ट न हो जाए। गुप्तचरो को इस बात का पूरा अधिकार दे दिया गया, कि वे जिस व्यक्ति को चाहे गिरफ्तार कर सके।

पोल विद्रोह (१८३०–३१)—निकोलस प्रथम ने अपने विशाल साम्राज्य में क्रान्ति की प्रवृत्तियो को कुचलने के लिये जो कुछ भी सम्भव था, किया। पर उसे पूर्णतया सफलता नही हुई। सन् १८३० मे जब फ्रास मे क्रान्ति की लहर एक बार फिर प्रारम्भ हुई, तो उसका असर रूस पर भी पडा। पोल लोगो ने वारसा मे विद्रोह कर दिया। रूसी कर्मचारी निकालकर बाहर कर दिये गये। वारसा पर क्रान्तिकारियो का कब्जा हो गया। सामयिक सरकार की स्थापना कर ली गई, और पोल लोगो ने २५ जनवरी, १८३१ को अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को उद्घोषित कर दिया। पर पोलैण्ड अपनी स्वाधीनता को देर तक कायम नही रख सका। शीघ्र ही रूसी सेनाओ ने उस पर आक्रमण कर दिया। पोल लोग शक्तिशाली रूसी सेना का मुकाबला नही कर सके। वे परास्त हो गये। पोल लोगो पर भयकर अत्याचार किये गये। ४५ हजार पोल परिवारो को अपने देश से बहिष्कृत कर कोकेशस के पहाडो पर केवल इसलिये भेज दिया गया, ताकि पोल लोगो मे अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का स्वप्न ही नष्ट हो जाए। नवीन भावनाओ ने जो दूसरा प्रयत्न रूस के विशाल साम्राज्य मे हुआ, वह भी निकोलस के हाथो द्वारा बुरी तरह कुचल दिया गया।

रूसी चर्च—जार के एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन में रूस का चर्च उसका प्रधान सहायक था। रूसी साम्राज्य मे ईसाई धर्म का प्रचार कोन्स्टेन्टिनोपल के पादरियो द्वारा हुआ था। मध्यकाल मे ईसाई धर्म के दो मुख्य सगठन थे। एक रोमन कैथोलिक चर्च, जिसका केन्द्र रोम मे था, दूसरा ग्रीक कैथोलिक चर्च, जिसका केन्द्र कोन्स्टेन्टिनोपल था। क्योकि रूस मे ईसाइयत का प्रचार कोन्स्टेन्टिनोपल के पादरियो द्वारा हुआ था, अत यह स्वाभाविक था, कि वह ग्रीक कैथोलिक चर्च के सगठन के अन्तर्गत रहे। कई सदियो तक यह अवस्था कायम रही, और रूस के ईसाई कोन्स्टेन्टिनोपल के पेट्रिआर्क को अपना धार्मिक नेता मानते रहे। जिस प्रकार रोमन कैथोलिक चर्च के मुखिया को पोप कहते थे, उसी तरह ग्रीक कैथोलिक चर्च के मुखिया को पेट्रिआर्क कहा जाता था। पन्द्रहवी सदी मे कोन्स्टेन्टिनोपल को तुर्क आक्रान्ताओ ने जीत लिया। तुर्क लोग मुसलमान थे। उस समय से ग्रीक कैथोलिक चर्च का केन्द्र कोन्स्टेन्टिनोपल नही रह सका। रूस के सम्राटो को खयाल आया, कि ग्रीक कैथोलिक चर्च मे जो स्थान पहले कोन्स्टेन्टिनोपल के पेट्रिआर्क का था, वह अब हमारा होना चाहिये। उस समय से रूस के जार ही वहा के चर्च के भी अधिपति हो गये। चर्च राज्य का ही एक अग बन गया। इस समय जब सम्पूर्ण यूरोप मे स्वतन्त्रता की लहर चल रही थी, और लोग धार्मिक मामलो मे भी अपने विचारो को स्वाधीन रखना चाहते थे, यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि रूसी लोगो मे भी धार्मिक स्वतन्त्रता के भाव उत्पन्न हो, और वे अपने को सरकारी चर्च की अधीनता से मुक्त करने का प्रयत्न करें। जार इस प्रवृत्ति को बडी चिन्ता की निगाह से देखता था। उसका विश्वास था, कि रूस मे एकता स्थापित रखने के लिये आवश्यक है, कि रूसी चर्च के प्रभुत्व को कायम रखा जाय और उसके सब मन्तव्यो को अक्षुण्ण रखा जाय। इसलिये निकोलस प्रथम ने रोमन कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट,

यहूदी आदि विधर्मियो पर कठोर अत्याचार किये । जो आदमी रूसी चर्च को छोडता था, उसे दण्ड दिया जाता था, और अनेक प्रकार से इस बात का प्रयत्न किया जाता था, कि सरकारी चर्च का प्राधान्य अक्षुण्ण रूप मे बना रहे और उसके विरुद्ध कोई विद्रोह न हो।

क्रीमियन युद्ध—निकोलस प्रथम ने जहा अपने साम्राज्य मे नवीन भावनाओ को कुचलने का पूरा प्रयत्न किया, वहा अपनी शक्ति को बढाने की तरफ भी पूरा ध्यान दिया। वह प्रबल साम्राज्यवादी था। उसने बालकन प्रायद्वीप की ईसाई जनता का पक्ष लेकर तुर्की साम्राज्य के मामलो मे हस्तक्षेप करना शुरू किया। उसकी नीति को ग्रेट ब्रिटेन न सह सका। परिणाम यह हुआ, कि दोनो राज्यो मे युद्ध शुरू हो गया, जो इतिहास मे क्रीमियन युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध पर हम अगले अध्याय मे प्रकाश डालेगे।

अभी क्रीमियन युद्ध समाप्त नही हुआ था, कि सन् १८५५ मे निकोलस प्रथम की मृत्यु हो गई।

४ रूस मे सुधारो का प्रारम्भ

अलेक्जण्डर द्वितीय—निकोलस प्रथम के बाद अलेक्जेण्डर द्वितीय रूस का सम्राट् बना। उसका शासनकाल १८५५ से १८८१ तक था। जब वह राजगद्दी पर बैठा, तो क्रीमियन युद्ध जारी था, और उसमे रूस की निरन्तर पराजय हो रही थी। लोग इस बात को बडी तीव्रता से अनुभव कर रहे थे, कि जारशाही का एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी शासन कितना विकृत और दोषपूर्ण है। सुधारो की आवश्यकता सर्वत्र अनुभव की जा रही थी। जार अलेक्जेण्डर द्वितीय भी अपने साम्राज्य की असली हालत मे अपरिचित न था। वह बहुत समझदार तथा चाणाक्ष व्यक्ति था। उसने इस बात को भली भाति समझ लिया, कि सुधारो के बिना रूस का उद्धार सम्भव नही है। उसने अपनी सहायता के लिये जो मन्त्री नियत किये, वे भी बुद्धिमान् और समय के अनुसार कार्य करनेवाले थे। यही कारण है, कि अलेक्जेण्डर द्वितीय के शासनकाल मे रूस मे बहुत से महत्त्वपूर्ण सुधार हुए, जिनके कारण देश की दशा में बहुत परिवर्तन आ गया।

दासप्रथा का अन्त—रूसी साम्राज्य मे सर्वसाधारण जनता की दशा बहुत शोचनीय थी। यूरोप के अन्य देशो मे इस समय तक दासप्रथा या भूमिदास प्रथा (सर्फडम) का अन्त हो चुका था। पर रूस के आधे के लगभग निवासी उन्नीसवी सदी मे भी इन प्रथाओ के शिकार थे। एक लेखक ने हिसाब लगाया है, कि सन् १८६० मे रूस मे भूमिदासो की सख्या चार करोड सत्तर लाख थी। रूस की सम्पूर्ण भूमि जार या अन्य कुलीन जागीरदारो की मल्कियत थी। इन जमीनो पर खेती का काम स्वतन्त्र किसान लोग नही करते थे। स्वतन्त्र किसान उस समय रूस मे थे ही नही। जमीदारो की जागीरे दो भागो मे बटी होती थी, एक जिसकी पैदावार पर जमीदार का हक होता था और दूसरी जिसकी पैदावार से किसान (जो स्वतन्त्र न होकर भूमिदास के रूप मे रहता था) अपना गुजारा करता था। जमीदार के हिस्सेवाली जमीन को किसान लोग बिलकुल मुफ्त मे जोतते बोते थे। सप्ताह मे तीन दिन उन्हें अपने जमीदार की जमीन की खेती पर लगाने पडते थे। इस श्रम के बदले में उन्हे कुछ भी उजरत नही दी जाती थी। किसान लोग अपने मालिक की

जमीन को छोडकर कही अन्यत्र नही जा सकते थे। रूस के किसानो की दशा दासो से कुछ ही अच्छी थी। वे अभी अर्धदास के रूप मे विद्यमान थे।

रूस के किसान अपनी इस दुर्दशा को सहन नहीं कर सकते थे। अनेक बार उन्होने विद्रोह किये, जिन्हे बडी क्रूरता के साथ कुचला गया। पर अत्याचारो से किसान-विद्रोह घटने के स्थान पर निरन्तर बढते ही जा रहे थे। अलेक्जेण्डर द्वितीय के समय में किसानो की समस्या इतना विकट रूप धारण कर चुकी थी, कि उसे बाधित होकर उनकी ओर ध्यान देना पडा था। इसी समय अमेरिका मे दास प्रथा का अन्त करने के लिये घोर आन्दोलन चल रहा था। १८६१ मे दास प्रथा के प्रश्न पर ही वहा गृह-कलह का प्रारम्भ हुआ, जिसके द्वारा अब्राहम लिन्कन ने इस घृणित प्रथा की समाप्ति की। रूस में अलेक्जेण्डर द्वितीय ने वही काय किया, जो अब्राहम लिन्कन ने अमेरिका मे किया था। तीन मार्च, १८६१ के दिन उसने एक उद्घोषणा प्रकाशित की, जिसके द्वारा किसानो को दासता से मुक्त कर दिया गया। इस उद्घोषणा द्वारा यह व्यवस्था की गई, कि जमीदारो की जमीनो का एक हिस्सा तो उनकी ही मल्कियत रहे, पर दूसरा हिस्सा उनकी मल्कियत मे न रहकर किसानो के पास चला जाए। इसके लिये जमींदारो को कीमत देने करने की व्यवस्था की गई, क्योकि जार जमीदारो को नाराज नही करना चाहता था। उस समय तो जमीन की कीमत सरकार की ओर से अदा कर दी गई, पर यह व्यवस्था की गई, कि इस कीमत को वार्षिक किस्तो मे किसानो से वसूल किया जाए। किसानो को अपनी जमीनो की माल-गुजारी तो देनी ही थी, अब उसके साथ मे जमीन की कीमत की वार्षिक किस्त और देनी पडी। इससे उन पर टैक्स का बोझ बहुत बढ गया। उन्हे अपनी स्वतन्त्रता की कीमत स्वय अदा करनी पडी। स्वतन्त्रता की यह कीमत किसानो के लिये बहुत महँगी पडी। वे टैक्सो के बोझ से बहुत बुरी तरह दब गये।

निहिलिज्म—इस समय रूस की सर्वसाधारण जनता मे बहुत से आन्दोलन चल रहे थे। यद्यपि जारशाही के कर्मचारी नये विचारो को रोकने के लिये जी जान से कोशिश मे लगे थे, पर नवीन विचार हवा की तरह होते हैं जिन्हें रोक सकना बहुत कठिन होता है। फ्रास में राज्यक्रान्ति से पहले जिस तरह अनेक सुधारक और विचारक जनता के विचारो में परिवर्तन ला रहे थे, उसी प्रकार अब रूस में भी अनेक लोग नये विचारो को फैलाने मे तत्पर थे। रूस मे इन नवीन विचारको को निहिलिस्ट कहते थे। निहिलिस्ट लोग रूस मे जहा कही भी अन्याय, अत्याचार और कुरीतियो को देखते थे, वही उसके खिलाफ आवाज उठाते थे। राज्य का स्वेच्छाचारी शासन, चर्च का धर्मान्ध स्वरूप और पुरानी प्रथाओ की अनुचित दासता उन्हे समान रूप से असह्य थी। वे रूस में नवयुग लाना चाहते थे। वे मनुष्यो को कहते थे, अपनी अकल से काम लो, और समाज की रचना बुद्धिपूर्वक सोच समझ कर करो।

शुरू-शुरू मे निहिलिस्ट आन्दोलन बिलकुल शान्तिमय था। पर जारशाही के कर्मचारी इस क्रान्तिकारी आन्दोलन को सहन नही कर सकते थे। उन्होने निहिलिस्ट नेताओ को गिरफ्तार करना शुरू किया। शीघ्र ही रूस की जेल निहिलिस्ट लोगो से भर गईं। बहुत से लोगो को साइबेरिया भी भेज दिया गया। जार और उसके कर्मचारी किसी भी

प्रकार के नवीन विचारो को सहन नही कर सकते थे। रूसी सरकार के इन अत्याचारो का यह परिणाम हुआ, कि शान्तिमय आन्दोलन सफल न हो सका। निराश होकर लोगो ने गुप्त उपायो का प्रयोग करना शुरू किया। रूस के बहुत से नवयुवको को अब यह विश्वास हो गया था, कि सरकारी आतक का मुकाबला आतक द्वारा ही करना चाहिये। जनता मे सुधार और लोकतन्त्र शासन के लिये कितनी उत्कट आकाक्षा विद्यमान है, इसे प्रदर्शित करने का एक ही उपाय लोगो के पास रह गया था, ओर वह यह कि वे खूनखराबी, हिसा और शारीरिक शक्ति का प्रयोग करे, और इस तरह सरकार तथा ससार का ध्यान अपनी ओर खीचे। रूस के सैकडो नवयुवक आतकवाद ओर खूनखराबी की ओर इस समय जो इतनी तेजी से खिचने लगे, उसका कारण यह नही था, कि उन्हे खून बहाने का शौक था या उन्हें मनुष्य जाति से घृणा थी। इसका एकमात्र कारण यह था, कि उनकी सम्मति में अपनी मातृभूमि को बन्धनो ओर अत्याचारो से मुक्त करने का अन्य कोई उपाय नही था। अपने देश की उन्नति के लिये वे बडी से बडी कुर्बानी कर रहे थे।

उधर सरकार क्रान्तिकारी लोगो पर भयकर अत्याचार कर रही थी, इधर क्रान्तिकारी भी चुप नही बैठे थे। जार को मारने के लिये अनेक प्रयत्न किये गये। जार की स्पेशल ट्रेन को उडाने की कोशिश की गई। सेण्ट पीटर्सबुर्ग के जिस प्रासाद मे जार रहता था, उसे एक क्रान्तिकारी ने बारूद से उडा दिया। यह क्रान्तिकारी तरखान के रूप मे राजप्रासाद में नौकरी करता था, और मौका पाकर उसने यह भयकर काण्ड किया था। पर जार को कतल करने के ये सब प्रयत्न व्यर्थ गये। क्रान्तिकारियो का सगठन बडा दृढ था। हथियार तैयार करने के उनके अपने कारखाने थे। वे अपने पृथक् गुप्तचर रखते थे। क्रान्तिकारी दल के प्रत्येक सदस्य को अपने नेताओ की आज्ञा का आख मीचकर पालन करना आवश्यक था। अपने दृढ सगठन के कारण उन्हे अनेक स्थानो पर सफलता भी हुई। कुछ ही समय में जार के छ उच्च पदाधिकारी और नो सरकारी गुप्तचर क्रान्तिकारियो द्वारा कतल कर दिये गये। इन कतलो के कारण रूस मे बडी हलचल मची। आखिर, जार को विवश होकर यह स्वीकृत करना पडा, कि शासन व्यवस्था मे सुधार किये बिना कार्य चल सकना असम्भव है। एक नवीन शासन-विधान तैयार किया गया, जिसमे जनता को अनेक महत्त्वपूर्ण अधिकार दिये गये। जार ने अभी इस नये शासन-विधान पर हस्ताक्षर किये ही थे, कि १३ मार्च, १८८१ के दिन क्रान्तिकारियो ने उसे भी कतल कर दिया।

अलेक्जेण्डर तृतीय—अलेक्जेण्डर द्वितीय की मृत्यु के बाद उसका लडका अलेक्जेण्डर तृतीय रूस का जार बना। उसका शासन काल १८८१ से १८९४ तक था। अलेक्जेण्डर द्वितीय के कतल मे वे सुधार, जिन पर उसने अपने कतल के कुछ घण्टे पहले ही हस्ताक्षर किये थे, ऐसे ही रखे रह गये। उन्हें क्रिया में परिणत नही किया गया। अलेक्जेण्डर तृतीय के शासन मे भी क्रान्तिकारियो को कुचलने के लिये भरपूर कोशिश की गई। जनता पर कठोर से कठोर अत्याचार किये गये। इस काल में रूस की जेले सदा राजनीतिक कैदियो से पूर्ण रहती थी। सैकडो हजारो क्रान्तिकारियो को साइबेरिया भेज दिया गया था। लोगो पर कोडे भी इस समय खुले तोर पर निर्दयता के साथ लगाये जाते थे। अलेक्जेण्डर तृतीय भी निकोल्स प्रथम का अनुयायी था। उसका मन्तव्य था, कि स्वतन्त्रता

और नई भावनाओ का एक ही परिणाम हो सकता है, और वह यह कि राष्ट्र का विनाश हो जाए।

उन्नीसवी सदी मे रूस के राजा और प्रजा मे यह भयकर सघर्ष निरन्तर जारी रहा। यदि रूस के शासक जनता के साथ कुछ भी सहानुभूति का बर्ताव करने और लोगो की मागो को निर्दयतापूर्वक न कुचलते, तो क्रान्तिकारी आतकवादी दल वहा इतना प्रबल कभी न होने पाता। रूस के नवयुवको के सम्मुख अपनी शिकायतो को पेश करने का जब अन्य कोई उपाय न रहा, तो उन्होने विवश होकर इन उपायो का अवलम्बन किया। उन्होने अपनी स्वतन्त्रता के लिये जो कष्ट उठाये, वे इतिहास में वस्तुत अद्वितीय है।

साहित्यिक जागृति—इस काल में रूस मे बहुत से ऐसे साहित्यसेवी और लेखक उत्पन्न हुए, जिन्होने देश मे नवीन भावनाओ का प्रसार करने मे बडी सहायता की। तुर्गनेव, पुशकिन, टालस्टाय और दोस्तोईवस्की इनमे सबसे मुख्य है। तुर्गनेव बडा भारी उपन्यास लेखक था। उसने अपने उपन्यासो में रूसी किसानो की दुर्दशा का जो मार्मिक वर्णन किया, उससे विचारशील लोगो का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ। किसानो को दासता से मुक्त करने के लिये जो कानून अलेग्जण्डर द्वितीय के समय मे बने, उनमे तुर्गनेव के उपन्यास बहुत सहायक हुए। पुशकिन बडा भारी कवि था। उसकी कविताओ ने रूस में नवजीवन का सचार किया। दोस्तोईवस्की क्रान्तिकारी दल का एक नेता था। उसे आजन्म साइबेरिया निवास का दण्ड मिला था। उसने अपने उपन्यासो मे रूस की आत्मा को ससार के सम्मुख रखा है। रूस की समस्याओ का जितना सुन्दर वर्णन उसके ग्रन्थों में मिलता है, उतना अन्यत्र मिलना कठिन है। लिओ टाल्सटाय अपने समय के सबसे बडे साहित्यसेवियो में एक था। सारा ससार उसकी प्रतिभा का सिक्का मानता है। उसने अपनी कहानियो और उपन्यासो में निष्क्रिय प्रतिरोध के सिद्धान्त का बडी प्रबलता के साथ प्रतिपादन किया है। अपने ग्रन्थो द्वारा एक नवीन विचारसरणी भी उसने जनता के सम्मुख रखी है।

यद्यपि रूस में अभी शासन-सुधार नही हुए थे, वहा की राजनीतिक सस्थाएँ अभी सोलहवी सदी से आगे नही बढी थी, पर इन लेखको और क्रान्तिकारियो के प्रयत्न से रूस की जनता मे जागृति उत्पन्न हो गई थी, और वहा नवयुग का सूत्रपात होने लगा था।

वाईसवाँ अध्याय

टर्की और बाल्कन प्रायद्वीप के विविध राज्य

१ उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ मे टर्की की दशा

पुरातन इतिवृत्त—मध्यकालीन इतिहास म पूर्वी यूरोप का बडा भाग तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत था। ओथमान (मृत्युकाल, १३२६ ई०) के नेतृत्व मे तुर्क जाति ने एशिया माइनर मे प्रवेश किया था। ओथमान के पश्चात् विविध तुर्क सुलतान अपने आधिपत्य को सीरिया, अरब और ईजिप्ट में विस्तृत करते रहे। १४५३ मे मुहम्मद द्वितीय ने पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी कोन्स्टेन्टिनोपल पर आक्रमण किया। पवित्र रोमन सम्राट् विधर्मी तुर्कों से अपनी राजधानी की रक्षा कर सकने मे असमर्थ रहे। कोन्स्टेन्टिनोपल परास्त हो गया, और यूरोप मे तुर्कों का प्रवेश शुरू हुआ। पन्द्रहवी सदी मे पूर्वी यूरोप मे आस्ट्रिया के हाब्सबुर्ग वशी सम्राट् और वेनिस की रिपब्लिक अत्यन्त प्रबल थे। दो शताब्दियो तक ये तुर्क आक्रान्ताओ के साथ निरन्तर सघर्ष मे व्यापृत रहे। इस काल मे बाल्कन प्रायद्वीप का बडा भाग तुर्कों की अधीनता मे आ गया। कुछ समय के लिये तो तुर्क साम्राज्य की पश्चिमी सीमा यूरोप के जर्मन प्रदेशों से आ लगी। १६८३ मे तुर्क सेनाओं ने वीएना पर भी आक्रमण किया, पर वे हाप्सबुर्ग वश की इस राजधानी को विजय नही कर सकी। पोलैण्ड के प्रतापी राजा जॉन सोविएस्की की सहायता से आस्ट्रियन सम्राट् ने वीएना में तुर्क लोगो को पराजित किया। १६८४ में आस्ट्रिया, पोलैण्ड ओर वेनिस ने मिल कर एक पवित्र-सघ का निर्माण किया, जिसका उद्देश्य विधर्मी तुर्कों से ईसाई यूरोप की रक्षा करना था। पन्द्रह वर्षो तक यह पवित्र-सघ तुर्कों के साथ निरन्तर सघर्ष करता रहा। १६९९ में रूस का प्रतापी सम्राट पीटर द ग्रेट भी इस सघ में शामिल हो गया, और इन चार शक्तिशाली राज्यो की सम्मिलित शक्ति का यह परिणाम हुआ, कि तुर्क लोग यूरोप में और अधिक आगे नही बढ सके।

अठारहवी सदी में तुर्क साम्राज्य की शक्ति क्षीण होनी शुरू हुई। १७७४ ई० मे रूस की सुप्रसिद्ध जारीना कैथेराइन द्वितीय ने काला सागर के तट पर स्थित क्रीमिया के अन्तरीप को और एजाफ के समुद्र तट पर विद्यमान प्रदेश को जीत लिया। ये प्रदेश पहले टर्की के अधीन थे। इनको विजय कर लेने का परिणाम यह हुआ, कि रूसी साम्राज्य की दक्षिणी सीमा काला सागर के साथ आ लगी, और रूस ने टर्की के मामलो मे हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया।

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में टर्की की दशा—१८१५ ई० मे नैपोलियन के पतन के समय यह स्थिति थी, कि क्षेत्रफल की दृष्टि से तुर्क साम्राज्य यूरोप मे रूस के बाद सब से

बडा था। उसकी उत्तरी सीमा नीस्टर नदी थी। मोल्डेविया और वलेचिया के प्रदेश उसके अन्तर्गत थे। इन्ही प्रदेशो से मिलकर आजकल का रूमानिया का राज्य बना है। इनके दक्षिण का सम्पूर्ण बाल्कन प्रायद्वीप तुर्की साम्राज्य के अन्तगत था। बोस्निया, हेर्जेगोविना, सर्विया,बल्गेरिया, अल्बेनिया, रूमानिया और ग्रीस—ये सब प्रदेश उसके अधीन थे। बाल्कन प्रायद्वीप मे केवल दो ही ऐसे छोटे-छोटे प्रदेश थे, जो उसके अधीन नही थे। डाल्मेटिया का समुद्रतट तथा मोन्टिनिग्रो का पहाडी राज्य, ये दो प्रदेश ही उस समय बाल्कन प्रायद्वीप में स्वतन्त्र थे। ये प्रदेश भी पहले टर्की के अधीन थे। पर अठारहवी सदी के शुरू मे डानीलो नामक पादरी के नेतृत्व में इन्होने तुर्क शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था, और रूस की सहायता से अपने पृथक् व स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये थे। टर्की ने इनकी पुन विजय के लिये अनेक प्रयत्न किये, पर अन्त मे विवश होकर १७११ में उसने इन की स्वतन्त्रता सत्ता को स्वीकार कर लिया। ईजियन सागर के विविध द्वीप भी टर्की के अधीन थे। यूरोप से बाहर एशिया माइनर, पेलेस्टाइन, मेसोपोटामिया, आर्मीनिया और अरब भी तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत थे। अफ्रीका मे ईजिप्ट से लेकर अल्जीरिया तक टर्की का आधिपत्य स्वीकृत किया जाता था।

साम्राज्य की विविध जातियां—इस विशाल साम्राज्य में किसी एक जाति का निवास नही था। केवल एशिया माइनर ही एक ऐसा प्रदेश था, जिसमे तुर्क जाति प्रचुर सख्या में वसती थी। साम्राज्य के शेष सब प्रदेशो मे तुर्क-भिन्न अन्य जातियो का निवास था। मध्यकाल में जब राष्ट्रीयता के भाव लोगो मे उत्पन्न हुए नही हुए थे, इन विविध प्रकार की जातियो का एक शासन मे रह सकना कोई असम्भव व असाधारण बात नही थी। पर अब उन्नीसवी सदी में, जब कि सर्वत्र राष्ट्रीयता का सिद्धान्त प्रसारित हो रहा था, टर्की का यह विशाल साम्राज्य बहुत ही अस्वाभाविक प्रतीत होता था। यही कारण है, कि उन्नीसवी सदी मे अनेक जातियो ने तुर्की शासन के विरुद्ध विद्रोह कर अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता को प्राप्त करने का उद्योग प्रारम्भ किया। आज वह समय आ चुका है, जब कि तुर्क साम्राज्य उसी प्रदेश तक सीमित रह गया है, जहा कि तुर्क जाति का ही प्रधानतया निवास है। पर यह दशा एकदम नही आ गई, इसके लिये एक सदी तक निरन्तर सघर्ष की आवश्यकता हुई। ससार के आधुनिक इतिहास में राष्ट्रीयता की यह विजय बहुत महत्त्वपूर्ण है।

उत्तरी अफ्रीका में प्रधानतया ऐसी जातिया निवास करती थी, जिनका मूल अरब व बर्बर कहा जा सकता है। अरब मे तो मुख्य रूप से अरब लोग ही बसते थे। पर कही-कही कुर्द और पर्शियन लोग भी विद्यमान थे। यही दशा अरब के उत्तर में विद्यमान उस उपजाऊ अर्द्धचन्द्राकार घाटी की भी थी, जिसमे कि प्राचीन काल में बैबिलोनियन, असीरियन और कैल्डियन साम्राज्यो का विकास हुआ था। सीरिया में यहूदी लोगो का प्राधान्य था। अरब और एशिया माइनर के बीच में स्थित टौरस पर्वत माला के पहाडी प्रदेशो म आर्मीनियन और कुर्द जातियो का निवास था। एशिया माइनर मे तुर्कों के अतिरिक्त आर्मीनियन तथा ग्रीक लोग भी पर्याप्त सख्या मे रहते थे।

यह तो हुई एशिया और अफ्रीका में विद्यमान तुर्की साम्राज्य की बात। अधिक जटिल समस्या तुर्की साम्राज्य के यूरोपियन प्रदेशो की थी। वहा अनेक जातिया निवास करती

थी, जो नसल, भाषा, सभ्यता, संस्कृति, धर्म आदि सब दृष्टियो से एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थी, और जिनकी तुर्क शासको के साथ तो कोई समता थी ही नही। इनमे अल्बेनियन, ग्रीक, यूगोस्लाव या सर्व, वलगर और रूमानियन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थे।

अल्बेनियन जाति का निवास ग्रीस के उत्तर-पश्चिम मे स्थित पहाडी प्रदेशो में था। १८९३ मे इनकी कुल आवादी १५ लाख के लगभग थी। ये लोग वडे शूरवीर, लडाके तथा स्वतन्त्र प्रकृति के थे। सभ्यता की दृष्टि से ये पश्चिमी यूरोप के लोगो से वहुत पीछे थे। ये अपने छोटे-छोटे गावो मे वसते तथा कृषि द्वारा अपने जीवन का यापन करते थे। इनके विविध परिवारो तथा ग्रामो मे निरन्तर लडाई जारी रहती थी। ये लोग उन्नीसवी सदी मे भी प्राय जङ्गली तथा पिछडी हुई दशा मे ही थे।

ग्रीक लोगो की आवादी ९० लाख के लगभग थी। वर्तमान ग्रीक लोग प्राचीन ग्रीको के सीधे वशज नही कहला सकते। ग्रीस मे अनेक जातियो के परस्पर मिश्रण की प्रक्रिया वहुत होती रही है, और वहा के वर्तमान निवासी इन विविध जातियो के मिश्रण के ही परिणाम हैं। उन्नीसवी सदी मे ग्रीक लोग प्रर्याप्त उन्नत तथा सभ्य थे। वे शहरो में निवास करते थे, और व्यापार द्वारा अपनी आजीविका कमाते थे। पश्चिमी यूरोप मे जो नई प्रवृत्तिया उत्पन्न हो रही थी, उनसे भी वे अच्छी तरह परिचित थे, और इस कारण अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये भी उत्सुक थे।

रूमानियन जाति के लोगो की सख्या १ करोड २० लाख थी। वे मोल्डेविया, वेलेचिया और ट्रासिलवेनिया मे निवास करते थे। सभ्यता की दृष्टि से ये वहुत पिछडे हुए थे। उनका अच्छा वडा भाग अभी पशु-पालन द्वारा ही जीवन व्यतीत करता था।

वाल्कन प्रायद्वीप मे निवास करनेवाली जातियो में युगो-स्लाव या सर्व लोग अन्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। पूर्वी यूरोप मे स्लाव जातियो का वहुत महत्व था। सर्व लोग विशाल स्लाव जाति की ही दक्षिणी शाखा थे। यूरोप भर के स्लाव के लोगो में एक प्रकार की एकानुभूति का भाव विद्यमान था। उस भावना से लाभ उठाकर ये भी अपने जातीय गौरव की स्थापना तथा टर्की की अधीनता से मुक्त होने के लिये प्रयत्न करते रहते थे। इस समय मे युगो-स्लाव लोगो की सख्या ८० लाख के लगभग थी।

वल्गर लोग प्रधानतया वल्गेरिया में निवास करते थे। अनेक ऐतिहासिको का विचार है, कि ये लोग तुर्को की तरह मध्य एशिया से ही आये थे। इस समय मे उनकी आवादी ५५ लाख के लगभग थी।

तुर्क लोग प्राय सम्पूर्ण वाल्कन प्रायद्वीप मे वसे हुए थे। पर इन प्रदेशो में उनकी आवादी वहुत अधिक नही थी। तुर्क लोग शासको के रूप में अपने साम्राज्य के सव प्रदेशो मे रहते थे। शासित जातियो से वे कोई सम्वन्ध नही रखते थे, उन्हे वे नीची निगाह से देखते थे। परन्तु उनमें एक विशेषता थी। जो कोई आदमी इस्लाम को स्वीकृत कर लेता था, तथा तुर्की भाषा को अपना लेता था, उसे वे अपने समान समझने लगते थे। तुर्की साम्राज्य मे विद्यमान सव मुसलमान व तुर्क भाषा-भाषी लोग तुर्क समझे जाते थे। यही कारण है, कि वर्तमान समय में जिन लोगो को तुर्क कहा जाता है, उनमे से वहुत कम ऐसे है, जो वस्तुत तूरानियन जाति के हो। अधिकाश लोग ऐसे है, जिन्होने तुर्की

धर्म तथा सभ्यता को स्वीकार कर लिया है।

केवल जातियो की दृष्टि मे ही तुर्की साम्राज्य मे अनेक विविधताओ तथा भेदो की सत्ता नही थी, साथ ही उसमे धार्मिक भेदो की भी कमी न थी। तुर्क लोग सुन्नी मुसलमान थे। पर शिया, वहाबी आदि विविध मुस्लिम सम्प्रदायो को मानने वाले अनेक लोग भी तुर्की साम्राज्य मे बसते थे। मुसलमान जनता मे भी धार्मिक एकता न थी। मुसलमानो के अतिरिक्त यहूदी तथा ईसाई धर्मों को मानने वाले विविध लोग भी तुर्की साम्राज्य मे निवास करते थे। ईसाइयो मे मुख्य भेद तीन थे—रोमन कैथोलिक, ग्रीक कैथोलिक और ज्यौर्जियन (आर्मीनियन)। इन तीनो ईसाई सम्प्रदायो के अनुयायी तुर्की साम्राज्य मे बहुत बडी सख्या मे निवास करते थे। तुर्क लोग इन्हें काफिर समझते थे, और घृणा की दृष्टि से देखते थे।

तुर्क साम्राज्य की समस्याए—इस विवरण मे भलीभाति समझा जा सकता है, कि तुर्की साम्राज्य कितना अस्वाभाविक और राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के विपरीत था। यूरोप मे आस्ट्रिया और तुर्की—ये दो साम्राज्य इस प्रकार के थे, जो नई प्रवृत्तियो की दृष्टि मे बहुत अनुचित और अस्वाभाविक थे। यही कारण है, कि ससार के आधुनिक इतिहास मे इनका विनाश करके अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की स्थापना करने के लिये विविध जातिया निरन्तर प्रयत्न करती रही। आस्ट्रिया की तरह टर्की मे भी केवल राष्ट्रीयता की ही समस्या न थी। राजा का एकसत्तात्मक अधिकार वहा के शासन का आधारभूत सिद्धान्त था। लोकतन्त्र प्रवृत्तिया इस स्वेच्छाचारी शासन को कभी सहन नही कर सकती थी। टर्की का शासन किस ढग से होता था, यह बताने की विशेष आवश्यकता नही है। मध्यकाल मे सम्पूर्ण यूरोप में जिस ढग के एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन विद्यमान थे, वैसा ही शासन टर्की में भी था। भेद केवल इतना था, कि टर्की का शासक सम्राट् व सुलतान होने के साथ-साथ इस्लाम का धार्मिक नेता व खलीफा भी होता था। इस कारण उसकी स्थिति और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती थी। टर्की मे शासन इतना विकृत हो चुका था, कि राज्य के प्रधान पद नीलाम किये जाते थे। जो सबसे अधिक कीमत देता था, वही राजकीय पद प्राप्त कर लेता था। इस प्रकार भारी रकम सुलतान को प्रदान कर जो लोग राजकीय पदाधिकारी बनते थे, वे स्वाभाविकरूप से अपने पद को निजी आमदनी बढाने का साधन मात्र समझते थे। परिणाम यह था, कि टर्की का शासन बहुत ही विकृत हो गया था।

शासन में सुधार करने तथा टर्की की उन्नति के लिये कई सुलतानो ने उन्नीसवी सदी में प्रयत्न प्रारम्भ किया। सलीम तृतीय (१७८९-१८०७) और महमूद द्वितीय (१८०८-१८३९) इनमे प्रमुख है। विशेषतया महमूद द्वितीय ने अपने सम्पूर्ण जीवन को टर्की की उन्नति और शासन-सुधार मे खपा दिया, पर इसका कोई विशेष परिणाम नही हुआ। टर्की पुराने जमाने और धार्मिक सकीर्णता के दलदल मे इतना अधिक फसा हुआ था, कि उसके अपने सुलतान के प्रयत्न भी प्राय निरर्थक ही रहे।

तुर्की साम्राज्य मे जो नई प्रवृत्तिया कार्य कर रही थी, उन्हे हम दो भागो मे बाट सकते है—(१) विविध जातिया अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये उद्योग कर रही थी,

और (२) तुर्क लोगो मे अनेक दल इस प्रकार के सगठित हो रहे थे, जो नई रोशनी से परिचित थे, और जो अपने देश से पुराने जमाने का अन्त कर नवीन युग की स्थापना करने को उत्सुक थे। ये दोनो कार्य इस समय सम्पन्न हो चुके है। ये किस प्रकार सम्पन्न हुए, यही हमें प्रदर्शित करना है।

२ बाल्कन राज्यो मे राष्ट्रीय जागृति का प्रादुर्भाव

राष्ट्रीय भावना—अठारहवी सदी मे ही बाल्कन राज्यो मे राष्ट्रीय जागृति का प्रारम्भ हो चुका था। यद्यपि इस प्रायद्वीप में सदियो तक तुर्कों का शासन कायम रहा था, तथापि विविध जातियो मे एकता उत्पन्न नही हुई थी। बाल्कन प्रायद्वीप अनेक पर्वत-मालाओ से आच्छादित है। इन पहाडियो के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना जाना बहुत सुगम नही है, और इसी कारण विविध प्रदेशो मे बसी हुई विविध जातियो मे परस्पर एकता का प्रादुर्भूत हो सकना भी सरल बात न थी। तुर्की शासन इन विविध जातियो को तुर्क सभ्यता और सस्कृति सिखाकर अपने अन्दर मिश्रित कर लेने मे भी असफल रहा था। अब जब कि उन्नीसवी सदी मे तुर्की शासन क्षीण हो रहा था, अव्य-वस्था की प्रवृत्ति बढ रही थी, इन विविध जातियो में अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना का प्रादुर्भूत होना सर्वथा स्वाभाविक था। पश्चिमी यूरोप मे राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति उत्पन्न हो चुकी थी। फ्रेंच राज्यक्रान्ति तथा नैपोलियन के युद्धो से यूरोप राष्ट्रीयता की लहर से आप्लावित हो रहा था। बाल्कन राज्यो पर भी उसका प्रभाव पडना अनिवार्य था। पश्चिमी यूरोपियन जातियो का अनुसरण कर बाल्कन जातिया भी अपने राष्ट्रीय राज्यो का स्वप्न लेने लग गई थी। उनकी इस आकाक्षा को उसकाने मे अनेक यूरोपियन राज्य–विशेषतया रूस सहायता प्रदान कर रहे थे। क्रीमिया की विजय के बाद रूस की सीमा काला सागर से आ लगी थी, और वहा के महत्त्वाकाक्षी सम्राट् इस प्रयत्न मे थे, कि टर्की की निर्बलता और बाल्कन जातियो की राष्ट्रीय भावना से लाभ उठाकर इस क्षेत्र मे अपने प्रभाव का विस्तार करें। आस्ट्रिया की शक्ति भी जर्मनी में क्षीण हो रही थी, और उसके सम्राट् यह अनुभव करते थे, कि उनकी शक्ति के विस्तार का उपयुक्त क्षेत्र बाल्कन प्रायद्वीप ही हो सकता है। रूस और आस्ट्रिया, इन दोनो राज्यो का हित इस बात मे था, कि टर्की कमजोर हो जाए, और बाल्कन प्रायद्वीप की लूट द्वारा वे अपना राज्य-विस्तार कर सकें। तुर्क साम्राज्य के विविध प्रदेशो में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की जो भावना विकसित हो रही थी, उसके कारणो को सक्षेप मे इस प्रकार लिख सकते है—(१) बाल्कन प्रायद्वीप की भौगोलिक परिस्थितिया, जो पृथक्त्व की भावना को प्रोत्साहित करती थी। (२) तुर्क शासको की इस उद्देश्य मे विफलता, कि वे ईसाई लोगो को इस्लाम मे दीक्षित कर सकें। (३) तुर्क सम्राटो की निर्बलता। (४) रूस आदि विदेशी राज्यो द्वारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना के लिये प्रोत्साहन।

सर्ब विद्रोह—ये कारण थे, जिनसे बाल्कन राज्यो मे राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये सघर्ष प्रारम्भ हुआ। १८०४ में युगोस्लाव व सर्ब लोगो ने विद्रोह किया। इस विद्रोह का नेता ज्यार्ज पट्रोविच था। यह सर्बियन विद्रोह निरन्तर अधिक-अधिक गम्भीर रूप धारण

करता गया। विद्रोही लोग बेलग्रेड (सर्बिया का मुख्य नगर) के सूबेदार मुस्तफा पाशा को कतल करने मे समर्थ हुए। तुर्की सरकार ने जो सेनाएँ विद्रोह को शान्त करने के लिये भेजी, उन्हे परास्त कर दिया गया। रूस ने सर्व लोगो की सहायता की। ज्यार्ज पेट्रोविख के नेतृत्व मे सामयिक सर्वियन सरकार भी सगठित कर ली गई। १८१२ तक यह विद्रोह व स्वाधीनता-सग्राम जारी रहा। पर आखिरकार, तुर्की सरकार विद्रोह को शान्त करने मे सफल हुई। ज्यार्ज पेट्रोविख ने आस्ट्रिया भागकर अपने प्राण बचाये, और सर्व लोग फिर से तुर्क शासको के काबू मे आ गये।

१८१२ के विद्रोह मे असफल होकर भी सर्व लोगो मे राष्ट्रीय स्वाधीनता का आन्दोलन बन्द नही हुआ। १८१५ मे फिर विद्रोहाग्नि प्रचड हो उठी। इस बार मिलोश नाम का एक सर्व सरदार इस विद्रोह का नेता बना। मिलोश बहुत योग्य व्यक्ति था। वह न केवल अच्छा योद्धा था, पर साथ ही राजनीतिक दाव पेच में भी दक्ष था। कुलीन श्रेणी का होने के कारण सर्वसाधारण लोगो मे उसका प्रभाव भी बहुत अधिक था। १८१७ मे मिलोश को अपने प्रयत्न में सफलता हुई। वह तुर्की सुल्तान से यह मनवाने मे समर्थ हुआ, कि सर्वियन लोगो को स्थानीय मामलो मे स्वतन्त्रता दी जाए, वे हथियार रख सके और कुछ हद तक अपना शासन भी अपने आप कर सके। इसके बाद भी स्वाधीनता का आन्दोलन जारी रहा। पर सर्विया की सफलता का वास्तविक प्रारम्भ उस समय हुआ, जब कि रूस ने खुल्लमखुल्ला सर्ब आन्दोलन का पक्षपोषण प्रारम्भ किया। १८२६ मे रूस के सम्राट् ने तुर्की सुलतान को विवश किया, कि वह अपनी विद्रोही सर्ब प्रजा से समझौता करले। रूस मे स्लाव लोग बहुत बडी सख्या मे निवास करते है, सर्वियन लोग भी स्लाव जाति के ही है। इस जाति-सम्बन्ध के नाते तथा अपनी साम्राज्य-विस्तार विषयक आकाक्षाओ को पूर्ण करने के लिये रूस सर्वियन आन्दोलन से पूर्ण सहानुभूति रखता था। रूस के सम्राट् के जोर देने पर सुलतान को विवश होना पडा, और आखिर वह इस बात के लिये तैयार हो गया, कि सर्विया को टर्की की अधीनता मे स्वतन्त्र तथा पृथक् राज्य के रूप में स्वीकृत कर लिया जाय। इस प्रकार सर्वियन स्वतन्त्रता की नीव पडी। १८२६ से सर्विया एक पृथक् राज्य के रूप मे परिवर्तित हो गया। यद्यपि सर्विया द्वारा टर्की की अधीनता स्वीकृति की गई थी, और उसे भेंट भी वार्षिक रूप से दी जाती थी, तो भी सर्विया की यह स्वाधीनता कम महत्वपूर्ण नही थी। कुछ समय बाद मिलोश को नवीन सर्वियन राज्य का राजा निर्वाचित किया गया, और यह निश्चित हुआ कि सर्विया की राजगद्दी मिलोश के वश मे ही स्थिर रहे। १८२९ से सर्विया वस्तुत एक स्वतन्त्र राज्य बन गया था। यद्यपि बेलग्रेड तथा अन्य बडे शहरो मे तुर्की फौज अब भी रहती थी, तो भी सर्वियन लोगो को अपनी राष्ट्रीय आकाक्षाओ को पूर्ण करने का उपयुक्त अवसर प्राप्त हो गया था और वे स्वाधीन राष्ट्र के रूप मे अपना विकास करने लग गये थे।

ग्रीस की स्वतन्त्रता—सर्विया की तरह ग्रीस में भी राष्ट्रीय स्वाधीनता की आकाक्षा प्रादुर्भूत हो चुकी थी। ग्रीक लोग काफी सभ्य तथा उन्नत थे। वे नगरो मे निवास करते थे, और व्यापार उनका प्रधान पेशा था। समुद्र तट के अत्यन्त विस्तृत होने के कारण भी ग्रीस को अनेक लाभ प्राप्त थे। ग्रीस का प्राचीन गौरव भी लोगो के सम्मुख था।

प्लेटो, आरिस्टॉटल और परिक्लीज की पवित्र भूमि इस समय तुर्कों द्वारा पदाक्रान्त हो रही थी। न केवल ग्रीस के निवासी, अपितु अन्य यूरोपियन लोग भी इस दशा को अत्यन्त शोचनीय समझते थे। राष्ट्रीयता की जो लहर पश्चिमी यूरोप मे सर्वत्र व्याप्त हो रही थी, वह अब ग्रीस मे भी प्रविष्ट हुई, और वहा के निवासी भी अपने देश की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए आतुर हो उठे। १८२१ मे ग्रीक स्वतन्त्रता-सग्राम प्रारम्भ हुआ। मोरिया (प्राचीन पेलोपोनिसस) में विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड हो गई। पादरियो ने भी क्रान्तिकारिया का साथ दिया। ईसाई पादरी तुर्कों को काफिर समझते थे। उनके विरुद्ध खूब घृणा का प्रचार किया गया। हजारो मुसलमान पुरुष, स्त्री और बच्चो को कतल कर दिया गया। उधर तुर्क लोगो ने भी अत्याचार करने मे कसर न छोडी। कोन्स्टेन्टिनोपल मे स्थित ग्रीक कैथोलिक चर्च के नेता (पेट्रिआर्क) को कतल कर दिया गया। सर्वत्र ग्रीक प्रजा पर भयकर अत्याचार होने लगे। पर ग्रीक विद्रोह शान्त न हो सका। २७ जनवरी, १८२२ के दिन ग्रीक लोगो ने अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता का बाकायदा ऐलान कर दिया। दोनो तरफ से निरन्तर लडाई जारी रही। ग्रीक लोगो ने बडी वीरता के साथ तुर्कों का सामना किया। यूरोप के अन्य राज्य इस स्वाधीनना-सग्राम को उपेक्षा की दृष्टि से न देख सके। यद्यपि मैटरनिख आदि पुराने जमाने के पक्षपातियो की सहानुभूति सुलतान के साथ थी, पर यूरोप भर के उदार तथा नये विचारो के लोग ग्रीक विद्रोह का समाचार सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता अनुभव कर रहे थे। ग्रीक लोगो की सहायता करने के लिए अनेक राज्यो में आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। विशेषतया दार्शनिको, कवियो और साहित्यिक लोगो को ग्रीस के साथ बडी सहानुभूति थी। वे प्लेटो और सुकरात की जन्मभूमि का इस प्रकार म्लेच्छ तुर्कों द्वारा अपमानित होना नही देख सकते थे। परिणाम यह हुआ, कि जगह-जगह पर ग्रीक स्वतन्त्रता-युद्ध को सहायता पहुँचाने के लिए स्वयसेवक भर्ती किये जाने लगे। इङ्गलैण्ड का प्रसिद्ध कवि लार्ड बायरन स्वय-सेवक के रूप में ग्रीक लोगो की सहायता करने के लिए आगे बढा। १८२७ मे यूरोप के अनेक देशो मे ग्रीस के पक्ष में लोकमत इतना प्रबल हो गया, कि इङ्गलैण्ड, फ्रास और रूस की सरकारो ने सम्मिलित रूप से सुलतान से अनुरोध किया, कि ग्रीस की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया जाय। इन राज्यो का कहना था, कि ग्रीस तथा उसके समीपवर्ती द्वीपो मे जो अराजकता मची हुई है, उससे यूरोप के व्यापार को बहुत नुकसान पहुँच रहा है, अत ग्रीक लोगो को सतुष्ट कर शीघ्र ही शान्ति तथा व्यवस्था की स्थापना करनी चाहिए। टर्की का सुलतान इन बाह्य राज्यों के हस्तक्षेप को सहन न कर सका, और उसने उनकी जरा भी परवाह न की। परिणाम यह हुआ, कि इन तीनो राज्यो के सम्मिलित जहाजी बेडे ने सुल्तान की शक्ति का मुकाबला किया। अक्टूबर, १८२७ मे नैवेरिनो नामक स्थान पर सुलतान का जहाजी वेडा परास्त हो गया। उधर रूसी सेना उत्तर की तरफ से आक्रमण करती हुई कान्स्टेन्टिनोपल तक पहुँच गई थी। इस दशा मे भी सुलतान सन्धि करने के लिए उद्यत न हुआ। उसने काफिरो के विरुद्ध जिहाद की घोषणा की। इस पर रूसी सरकार ने टर्की से बाकायदा लडाई शुरू कर दी। मोल्डेविया और वेलेचिया के प्रदेशो मे जो रूमानियन लोग थे, उनमें भी राष्ट्रीय स्वाधीनता की आकाक्षा विद्यमान थी। वे भी

बहुत पहले से अपने को स्वतन्त्र कराने का प्रयत्न कर रहे थे। अब रूस ने उद्घोषित किया, कि हम न केवल ग्रीस को उसके स्वातन्त्र्य-युद्ध में सहायता प्रदान करेंगे, पर साथ ही मोल्डेविया और वेलेचिया को भी तुर्की शासन से मुक्त कराके रहेंगे। रूमानियन लोग भी अपनी स्वाधीनता का यह उत्तम अवसर प्राप्त कर टर्की के विरुद्ध विद्रोह करने को उद्यत हो गये। इस स्थिति में सन्धि कर लेने के अतिरिक्त सुलतान के सम्मुख अन्य कोई मार्ग शेष न रहा। वह सन्धि के लिये तैयार हो गया। १८२९ में एड्रियानोपल में सन्धि कर ली गई। इसके अनुसार, ग्रीक तथा रूमानियन लोगों की स्वाधीनता को स्वीकृत किया गया। रूस ने इस युद्ध में सबसे महत्वपूर्ण भाग लिया था, उसे तुर्की समुद्र में अनेक व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त हुईं। रूस के लिये काला सागर (ब्लैक सी) से भूमध्यसागर तक पहुँचने का मार्ग, जो टर्की के प्रभाव तथा अधीनता में था, अत्यन्त महत्व रखता था। उसमें अनेक सुविधाएं प्राप्त कर वह अपने उद्देश्य में बहुत कुछ सफल हो गया।

यद्यपि ग्रीक लोगों की स्वाधीनता को एड्रियानोपल की सन्धि द्वारा १८२९ में ही स्वीकृत कर लिया गया था, पर ग्रीस की सीमाएं क्या निश्चित की जाएं और टर्की के साथ उसका क्या सम्बन्ध रहे, यह निश्चित होने में कुछ समय लगा। आखिर, १८३२ में ग्रीस को पूर्ण रूप से स्वाधीन मान लिया गया। अब टर्की का उस पर कोई आधिपत्य न रहा। पहले ग्रीक लोगों की इच्छा थी, कि वे अपने देश में रिपब्लिक की स्थापना करें। राष्ट्रपति भी निर्वाचित कर लिया गया था। पर पारस्परिक मतभेदों तथा दलबन्दियों के कारण ग्रीक लोग रिपब्लिक न बना सके। अन्त में यह निश्चय हुआ, कि राजसत्ता की स्थापना की जाय। बवेरिया के राजकुमार ओटो को राजगद्दी अर्पित की गई, और ग्रीस एक स्वतन्त्र राजसत्तात्मक राज्य के रूप में परिवर्तित हो गया।

एड्रियानोपल की सन्धि द्वारा ही रूमानियन लोगों की स्वाधीनता को भी स्वीकृत किया गया था। उनके प्रदेशों का भी एक पृथक् राज्य बना दिया गया, जो कि रूमानिया के नाम से प्रसिद्ध है। टर्की के साथ इसका केवल इतना सम्बन्ध रखा गया, कि रूमानिया को प्रतिवर्ष एक निश्चित धनराशि भेंट के रूप में टर्की को देनी होती थी।

३ बाल्कन प्रायद्वीप में अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का प्रारम्भ

अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के कारण—ग्रीस के तुर्की साम्राज्य से निकल जाने पर टर्की की शक्ति बहुत कुछ क्षीण हो गई थी। अन्य यूरोपियन राज्यों ने समझा, कि अपनी शक्ति का विस्तार करने का यह सुवर्णावसर है। उन्होंने बाल्कन प्रायद्वीप में अपना प्रभाव कायम करने के लिये संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। इस संघर्ष को ठीक-ठीक समझने के लिये पहले कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) रूस का उत्तरी समुद्र उत्तरी ध्रुव के बहुत समीप है, और वहां अत्यधिक ठण्ड पड़ती है। अतः शीत ऋतु में वह जम जाता है, और सामुद्रिक आवागमन का मार्ग बन्द हो जाता है। रूस के पास सामुद्रिक आवागमन का केवल एक ही मार्ग ऐसा है, जो सारे साल खुला रहता है, वह है काला सागर (Black Sea) से डार्डेनल्स और बोस्पोरस के जलडमरूमध्यों में गुजरकर ईगियन सागर में आना और फिर वहां से भूमध्यसागर में

पहुँच जाना। डार्डेनल्स और बोस्पोरस के जलडमरूमध्यों के दोनो तरफ के प्रदेशो पर किसका राज्य है, यह बात रूस के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि इन प्रदेशो पर कोई शक्तिशाली राजा राज्य करता हो, और वह रूस का विरोध करने के लिये उतारू हो जाए, तो रूस के व्यापार को बहुत नुकसान पहुँच सकता है। साथ ही रूस के जंगी जहाजों के बेडे के लिये भी यही एकमात्र मार्ग है। यदि इस मार्ग से अन्य देशो के जंगी बेडे भी स्वतन्त्रतापूर्वक आ जा सके, तो यह बात रूस के लिये अत्यन्त खतरनाक हो हो सकती है। इन बातो को सम्मुख रखकर यह सुगमता से समझा जा सकता है, कि रूस का हित इस बात मे था, कि या तो टर्की का सुलतान उसके प्रभाव को स्वीकृत करे और उसे इस मार्ग मे पूर्ण रूप से सुविधाएँ प्रदान करे, और या टर्की की शक्ति क्षीण हो जाए, और बाल्कन प्रायद्वीप मे जो विविध स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो, वे रूस को अपना सरक्षक माने। रूस के लिये यह दूसरा उपाय अधिक सम्भव तथा क्रियात्मक था। कारण यह कि बाल्कन प्रायद्वीप मे अनेक इस प्रकार की जातिया निवास करती थी, जो जातीय दृष्टि से रूस की जातियो से मिलती जुलती थी। साथ ही, इस प्रायद्वीप के लोगो का धर्म भी रूसी लोगो के धर्म के समान था। ईसाइयत का जो सम्प्रदाय रूस के अधिकाश भाग मे प्रचलित था, वही बाल्कन प्रायद्वीप मे भी विद्यमान था। टर्की के मुसलमान शासको के विरुद्ध बाल्कन प्रायद्वीप की ईसाई प्रजा का पक्ष लेकर रूस सुगमता से उन्हे अपने प्रभाव तथा सरक्षा मे ला सकता था।

(२) एशिया में इस समय जो विविध यूरोपियन राज्य अपना साम्राज्य बना रहे थे, उनमे रूस और ग्रेट ब्रिटेन प्रमुख थे। ब्रिटेन भारतवर्ष कोअप नी अधीनता में ला चुका था। रूस प्रशान्त महासागर तक उत्तरी एशिया मे अपना अधिकार स्थापित कर चुका था। अनेक स्थानो पर इन दोनो साम्राज्यो की सीमाए मिलती भी थी। दोनो को एक दूसरे से भय था।

इसके अतिरिक्त, ब्रिटेन के लिये अपने पूर्वी साम्राज्य तक पहुँचने का मार्ग स्वेज के स्थलडमरूमध्य के सिवा अन्य कोई न था।[1] इस मार्ग के आसपास के प्रदेशो पर किसका राज्य है, यह बात ब्रिटेन के लिये अत्यन्त महत्व रखती थी। यदि रूस टर्की की शक्ति को नष्ट कर बाल्कन प्रायद्वीप पर अपना प्रभाव कायम कर ले, तो वह स्वेज व इस मार्ग के बहुत नजदीक तक पहुँच जाता था। एशियाई साम्राज्य के अपने सबसे शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी का अपने एक मात्र मार्ग के इतने समीप पहुँच जाना ब्रिटेन को कभी

---

१ स्वेज की नहर १८६९ में बनकर तैयार हुई थी। पर स्वेज का मार्ग उससे पहले भी प्रयोग में आता था। उस समय ग्रेट ब्रिटेन तथा अन्य यूरोपियन राज्यो के जहाज पहले एलेक्जेन्ड्रिया पहुँचते थे। वहाँ उनका माल-असबाब उतार दिया जाता था। उसे काफिलो द्वारा स्थलमार्ग से स्वेज पहुचाया जाता था। वहाँ अन्य जहाज तैयार रहते थे। उन पर सब माल लाद दिया जाता था और फिर ये नये जहाज पूर्व में भारत आदि की तरफ आते थे। १८६९ के बाद स्वेज की नहर के कारण यूरोप से पूर्व की तरफ जहाजो का सीधा आना-जाना प्रारम्भ हो गया।

सह्य नही हो सकता था। टर्की की ताकत बहुत कम थी। ब्रिटेन को उससे कोई डर नही था। अत उसका हित इसी बात मे था, कि टर्की नष्ट न होने पाए, और उसकी थोडी बहुत शक्ति कायम रहे, ताकि रूस बाल्कन प्रायद्वीप पर अपना प्रभाव न जमा सके। इस प्रकार यह स्पष्ट है, कि बाल्कन राज्यो और टर्की के सम्बन्ध मे रूस और ब्रिटेन की नीति एक दूसरे मे सर्वथा विरुद्ध थी। वे परस्पर टक्कर खाती थी।

(३) रूस और ग्रेट ब्रिटेन के इन परस्पर-विरुद्ध हितो के अतिरिक्त एक और बात है, जिस पर हमे दृष्टि रखनी चाहिये। टर्की के सुल्तान का प्रधान सामन्त राजा ईजिप्ट का पाशा था। वह बहुत शक्तिशाली तथा महत्वाकाक्षी था। टर्की की शक्ति को क्षीण होते देखकर वह भी अपने को स्वतन्त्र करने तथा अपने राज्य को बढाने के प्रयत्न मे था। यूरोपियन राज्यो के सम्मुख यह भी समस्या थी, कि वे टर्की को सहायता दें या ईजिप्ट को। फ्रास किस प्रकार उत्तरी अफीका मे साम्राज्य विस्तार के लिये प्रयत्नशील था, इसका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा। ईजिप्ट के पाशा की क्या स्थिति हो, यह बात उसके लिये अत्यन्त महत्व की थी। ब्रिटेन भी इसकी उपेक्षा नही कर सकता था। इस दशा मे विविध यूरोपियन राज्य परस्पर जो दाव-पेंच चल रहे थे, उन्होने बाल्कन प्रायद्वीप सम्बन्धी इस अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष को और भी पेचीदा बना दिया था।

ईजिप्ट से युद्ध—ग्रीस के स्वातन्त्र्य-युद्ध की समाप्ति पर १८३२ मे ईजिप्ट के शक्तिशाली पाशा मोहम्मद अली ने अपने अधिपति सुलतान महमूद द्वितीय के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर दिया। सीरिया और पेलेस्टाइन को अपने अधीन कर ईजिप्शियन सेना एशिया माइनर में प्रवेश करने लगी। अब सुलतान को चिन्ता हुई। उसने ब्रिटेन, फ्रास और रूस से सहायता की प्रार्थना की। ब्रिटेन और फ्रास ने इस पर कोई ध्यान नही दिया। पर रूस इस अवसर पर टर्की की सहायता के लिये आगे बढा। इस समय तक रूस का यह खयाल था, कि तुर्की सुलतान से मित्रता स्थापित कर उसे अपने प्रभाव मे लाया जा सकता है। रूसी सेनाओ ने कोन्स्टेन्टिनोपल की तरफ प्रस्थान किया। जब यह समाचार ब्रिटेन और फ्रास ने सुना, तो वे घबरा गये। रूस की इस बढती हुई शक्ति तथा प्रभाव को वे सहन नही कर सकते थे। उन्होने हस्तक्षेप किया, और टर्की तथा ईजिप्ट मे समझौता कराने का उद्योग प्रारम्भ हुआ। एशिया माइनर के दक्षिण-पूर्वी प्रदेश तथा सीरिया पर ईजिप्सियन पाशा की सूबेदारी (जिसका अभिप्राय उसका स्वतन्त्र शासन था) स्थापित की गई, और इस प्रकार उसे सतुष्ट किया गया। रूस ने टर्की की सहायता करने के लिये हाथ बढाया था, अत उसे दो अत्यन्त महत्वपूर्ण सुविधाएँ प्राप्त हुई (१) बोस्पोरस और डार्डेनल्स के जल-डमरूमध्यो के बीच से रूस के जगी जहाज स्वतन्त्रतापूर्वक आ जा सके, और अन्य किसी राज्य को यह अधिकार प्राप्त न हो। (२) जब टर्की पर कोई शत्रु आक्रमण करे, तो रूस उसकी सहायता करे। यह सन्धि रूस के लिये बहुत लाभदायक थी। रूस टर्की का एक प्रकार से सरक्षक बन गया था, और काला सागर का समुद्र-तट केवल उसीके जगी जहाजो के लिये सुरक्षित रह गया था। रूस यही दो बाते चाहता था, दोनो अब उसे पूर्ण रूप से प्राप्त हो गई थी।

जब यूरोप के अन्य राज्यो को इस सन्धि का पता लगा, तो उनके रोष की सीमा

न रही। अखबारो मे गरम लेख निकलने लगे। ग्रेट ब्रिटेन और फ्रास इस सन्धि का विरोध करने के लिये आपे से बाहर हो गये। रूस का विरोध करने के लिये जगी जाहजो का एक बेडा तुर्की समुद्र मे भेज दिया गया। उधर रूस भी लडाई की तैयारी करने लगा, और युद्ध के वादल आकाश मे मडराने लगे। ऐसा प्रतीत होता था, कि अव लडाई हुए विना न रहेगी। पर कुछ समय के लिये लडाई की घडी टल गई। अन्दर-अन्दर आग धधक रही थी, पर अभी वह सुलग कर ज्वालाओ के रूप मे प्रगट नही हुई।

ईजिप्ट से दूसरा युद्ध—१८३३ मे ईजिप्ट के पाशा और तुर्की सुलतान मे परस्पर सन्धि हो गई थी। पर यह सन्धि देर तक कायम न रह सकी। सुलतान इस वात से वहुत दुखी था, कि सीरिया का प्रदेश उसके हाथ से निकलकर पाशा के पास चला गया था। उसने लडाई के लिए तैयारी की। १८३९ मे टर्की ने ईजिप्ट के खिलाफ युद्ध उद्-घोपित कर दिया। परन्तु इस वार उसकी और भी वुरी तरह से पराजय हुई। यदि यूरोपियन राज्य हस्तक्षेप न करते, तो शायद टर्की वचता भी नही। पर ग्रेट ब्रिटेन इस कमजोर राज्य का विनाश नही सह सकता था। उसका अपना हित इस वात मे था, कि टर्की की सत्ता कायम रहे। यूरोपियन राज्यो के हस्तक्षेप के कारण टर्की की रक्षा तो हो गई, पर अव प्रश्न यह उत्पन्न हुआ, कि सन्धि किस प्रकार की जाय। फ्रास ईजिप्ट के पक्ष मे था, और ग्रेट ब्रिटेन टर्की के। रूस तो १८३३ की सन्धि के अनुसार टर्की का सरक्षक ही वना हुआ था। अव जो १८४० मे नई सन्धि हुई, उसमे रूस को उन विशेपाधिकारो का परित्याग करना पडा, जो उसने १८३३ मे प्राप्त किये थे। वोस्पोरस और डार्डेनल्स के जल-डमरूमध्यो मे जगी जहाजो को ले जाने का एकाधिकार अव उसके पास नही रह गया, और टर्की पर से उसकी सरक्षता भी नष्ट हो गई। १८४० की सन्धि द्वारा ईजिप्ट के पाशा की शक्ति को सीमित किया गया, और यूरोपियन राज्यो ने टर्की की रक्षा मे ही अपना हित समझा।

अन्तरीप सम्वन्धी समझौता (१८४१)—सन् १८४० की सन्धि के अनुसार टर्की की स्थिति वहुत कुछ सभल गई थी। ईजिप्ट के सामन्त राजा मोहम्मद अली ने अपने अधिपति टर्की के सुलतान के विरुद्ध जो युद्ध शुरू किया था, वह अव समाप्त हो गया था। फ्रास इससे असतुष्ट था। वह टर्की के खिलाफ ईजिप्ट का सहायक था। अव वह इस वात के लिए उत्सुक था, कि १८४० की सन्धि (जो लण्डन मे होने के कारण लण्डन की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है) क्रिया में परिणत न होने पाए। उसने फिर मोहम्मद अली को टर्की के विरुद्ध उकसाया। फ्रास मे नई सेनाएँ सगठित की गईं। ब्रिटेन इस स्थिति मे शान्त नही रह सकता था। वह ईजिप्ट के विरुद्ध टर्की की सहायता करने को उद्यत था। ऐसा प्रतीत होता था, कि एक वार फिर टर्की के प्रश्न पर युद्ध का प्रारम्भ होना अवश्यम्भावी है। पर यूरोप के राजनीतिज्ञो ने इस वार अधिक समझदारी से काम लिया। आखिर, फ्रास और इङ्गलैण्ड मे समझौता हो गया, जो अन्तरीप सम्वन्धी समझौते (स्ट्रेट्स कन्वेन्शन) के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस समझौते में फ्रास और इङ्गलैण्ड के अतिरिक्त आस्ट्रिया, प्रशिया और रूस भी सम्मिलित हुए। इसके अनुसार टर्की ने इस वात को स्वीकार किया, कि मोहम्मद अली पाशा न केवल ईजिप्ट का

वंशक्रमानुगत रूप से स्वामी रहेगा, पर साथ ही सीरिया के जिन प्रदेशों पर उसका प्रभुत्व है, उन पर भी उसका तथा उसके वंशजों का स्वामित्व कायम रहेगा। साथ ही, यह भी स्वीकृत किया गया, कि बोस्पोरस और डार्डेनल्स के जलडमरूमध्यों को टर्की के अतिरिक्त अन्य किसी राज्य के जंगी जहाज प्रयुक्त नहीं कर सकेंगे।

राजनीतिक दाव पेंच—१८४० से १८७३ तक टर्की और बाल्कन प्रायद्वीप के मामलों में इसी प्रकार राजनीतिक दाव पेंच जारी रहे। रूस चाहता था, कि टर्की पर अपना आधिपत्य कायम करे। पहले वह मित्रता की नीति से टर्की को अपने काबू में करना चाहता था। १८३२-३३ के युद्ध में ईजिप्ट के खिलाफ टर्की की सहायता उसने इसीलिए की थी, कि इससे वह टर्की का संरक्षक बन सकेगा। सामयिक तौर पर उसे अपने उद्देश्य में सफलता भी हुई थी। पर उसके बाद जो घटनाएं हुईं, उनसे वह भली भांति समझ गया कि इस नीति द्वारा उसे सफलता नहीं मिल सकती। अब उसने नई नीति का अनुसरण करना शुरू किया। उसने सोचा, यदि टर्की के साम्राज्य को नष्ट कर अपने कब्जे में कर लिया जाय, तो ठीक रहेगा। परन्तु इस उद्देश्य में ग्रेट ब्रिटेन उसका सबसे बड़ा विरोधी था। अतः रूसी सम्राट् ने विचार किया, कि तुर्की साम्राज्य को नष्ट कर यदि उसका एक हिस्सा ब्रिटेन को प्रदान कर दिया जाय तो सम्भवतः काम चल जायगा। ब्रिटेन यही तो चाहता है, कि स्वेज के मार्ग पर उसका कब्जा रहे। यदि ईजिप्ट तथा स्वेज के प्रदेश उसे मिल जाए, तो उसे लाभ ही लाभ है। रूस अपने लिये ब्रिटेन से यही मनवाना चाहता था, कि कोन्स्टेन्टिनोपल पर कब्जा करने का उसे अधिकार रहे, और बाल्कन प्रायद्वीप के विविध क्रिश्चियन राज्य (जो कि तुर्की साम्राज्य के नष्ट होने पर स्वतन्त्र रूप से स्थापित कर दिये जायेंगे) उसकी संरक्षा में रहे। रूस समझता था, कि इस सौदे में ब्रिटेन को भी पूरा लाभ है, वह इसके लिये तैयार हो जायगा और यदि रूस तथा ब्रिटेन टर्की के मामले में एकमत हो जाएं, तो अन्य किसी यूरोपियन राज्य की हिम्मत न होगी, कि उनकी सम्मिलित नीति का विरोध कर सके।

इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर १८४४ में रूसी सम्राट् ने इङ्गलैण्ड की यात्रा की। पर वहां विदेशी राजनीति के पंडितों ने उसके विचार का स्वागत नहीं किया। १८५३ में यही विचार फिर ब्रिटिश राजदूत के सम्मुख सेण्ट पीटर्सबुर्ग में उपस्थित किया गया। पर इस बार भी ब्रिटेन ने रूस की योजना से असहमति प्रकट की। बात यह थी, कि ब्रिटेन एशिया के साम्राज्य में अपना सबसे बड़ा प्रतिस्पर्धी रूस को ही समझता था। वही रूस यदि कोन्स्टेन्टिनोपल पर कब्जा कर बाल्कन प्रायद्वीप पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर ले, तो उसकी शक्ति की सीमा ही न रहेगी। स्थल में तो रूस बहुत अधिक शक्ति रखता ही था, अब जल में भी उसे अपने शक्ति-विस्तार का सुवर्णावसर प्राप्त हो जायगा। ईजिप्ट और स्वेज पर यदि ब्रिटेन का कब्जा कायम हो भी जाता, तो उसे विशेष लाभ न था। अपने पड़ोस में ही शक्तिशाली रूस का होना उसके लिए एक भयंकर खतरा था। ब्रिटेन रूस की शक्ति को इस प्रकार बढ़ते हुए कभी न देख सकता था। यही कारण है, जिससे उसने रूसी योजना को अस्वीकृत कर दिया। अब रूस के सम्मुख एक ही मार्ग था,

वह यह कि ब्रिटेन का विरोध कर वह टर्की पर अपना कब्जा कायम करने का प्रयत्न करे। डार्डेनल्स और वोस्पोरस के जलडमरूमध्य तथा उनके समीपवर्ती प्रदेश उसके लिए कितने महत्त्वपूर्ण थे, यह पहले प्रदर्शित किया जा चुका है। रूस जिस तरह भी सम्भव हो, उन्हे अपनी अधीनता मे लाना चाहता था। युद्ध द्वारा अपनी शक्ति परीक्षा के सिवा अव उसके सम्मुख अन्य कोई उपाय न था।

४. क्रीमियन युद्ध

युद्ध का सूत्रपात—ब्रिटेन की ओर से निराश होकर रूस टर्की के विरुद्ध युद्ध उद्घोपित करने के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा मे था। ऐसा अवसर १८५३ मे उपस्थित हो गया। ईसाइयो के पवित्र स्थान पेलेस्टाइन और जेरुसलम अनेक सदियो से टर्की साम्राज्य के अन्तर्गत थे। यूरोप भर के ईसाई यात्री वहा तीर्थयात्रा के लिए जाया करते थे। इसके सिवा, इन प्रदेशो की अधिकाश आवादी ईसाई धर्म को मानने वाली थी। तुर्क सुलतान उनसे जिस प्रकार का व्यवहार करता है, इस सम्बन्ध मे शिकायतो का अवसर सदा विद्यमान रहता था। १८५३ मे जेरुसलम के ईसाई यात्रियो की अनेक शिकायते रूस के सम्राट् के कानो तक पहुँची। रूस का सम्राट् अपने को तुर्की साम्राज्य की ईसाई प्रजा का स्वाभाविक सरक्षक समझता था। उसने समझा, टर्की के खिलाफ लडाई शुरू करने का यह अच्छा मौका है। मार्च, १८५३ में उसने सुलतान के नाम एक अन्तिम सूचना (अल्टिमेटम) जारी की, जिसमे यह माग की गई कि सुलतान रूसी सम्राट् को ईसाई प्रजा का सरक्षक स्वीकृत कर ले।

रूसी सम्राट् के इस कार्य को ग्रेट ब्रिटेन कभी नही सह सकता था। उस समय टर्की मे ब्रिटिश राजदूत के पद पर लार्ड स्ट्रेटफोर्ड विद्यमान था। उसने सुलतान को प्रेरित किया, कि वह रूस की माग को स्वीकृत न करे। परिणाम यह हुआ, कि रूसी राजदूत ने टर्की से प्रस्थान कर दिया। ब्रिटेन तो रूस के विरुद्ध टर्की की सहायता करने को तैयार था ही, उधर फ्रास ने भी टर्की का पक्ष लिया। फ्रास का अधिपति इस समय नैपोलियन तृतीय था। उसने उद्घोपित किया, कि सुलतान से जो सन्धिया पहले हो चुकी है, उनके अनुसार टर्की की कैथोलिक प्रजा का सरक्षक फ्रास है। रूस को कोई अधिकार नही है, कि वह ईसाइयो के मामले में हस्तक्षेप कर सके। रूसी राजदूत के टर्की से चले आने पर भी कुछ महीने तक समझौते के लिए वातचीत जारी रही। परन्तु सुलह के प्रयत्नो में सफलता नही हो सकी। आखिर, १८५४ में युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसमे फ्रास और ब्रिटेन रूस के विरुद्ध टर्की की सहायता कर रहे थे। इतिहास में यह युद्ध 'क्रीमियन युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। काला सागर में एक अन्तरीप है, जिसका नाम क्रीमिया है। यह युद्ध प्रधानतया क्रीमियन अन्तरीप मे ही लडा गया था, इसीलिए इसे क्रीमियन युद्ध कहते है।

क्रीमिया का युद्ध—यह क्रीमियन युद्ध दो वर्ष तक जारी रहा। दोनो पक्षो को बहुत भारी नुकसान उठाना पडा। ५ लाख से अधिक आदमियो का इस युद्ध मे सहार हुआ। अरबो रुपये नष्ट हुए। इतने जन और धन का सहार करके भी ब्रिटिश तथा

फ्रेंच लोग रूस को बहुत नुकसान नहीं पहुंचा सके। क्रीमियन अन्तरीप के दक्षिण भाग मे स्थित सेबेस्टपोल के घेरे मे ही उनकी अत्यधिक शक्ति व्यय हो गई। इस दशा में युद्ध को जारी रखना उन्हे बहुत उपयोगी प्रतीत नहीं होता था। उधर रूस भी युद्ध से तग आ गया था। उसे यह भी खतरा था, कि कहीं आस्ट्रिया भी शत्रुओं के साथ सम्मिलित न हो जाए। आस्ट्रियन सरकार भी बाल्कन प्रायद्वीप में अपनी शक्ति विस्तृत करना चाहती थी। उसकी इस आकाक्षा मे रूस सबसे बडी रुकावट था। आस्ट्रिया ने समझा, उसे परास्त करने का यह अच्छा मौका है। यदि आस्ट्रिया भी रूस के विरुद्ध युद्ध उद्घोपित कर देता, तो टर्की का पक्ष बहुत प्रबल हो जाता। इस दशा मे रूस ने भी यही उपयुक्त समझा, कि सन्धि कर लेने मे ही अपना हित है।

पेरिस की सन्धि—३० मार्च, १८५६ को सन्धि हो गई। यह इतिहास मे पेरिस की सन्धि के नाम से मशहूर है। सन्धि की मुख्य शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) तुर्की साम्राज्य की स्वतन्त्रता को विविध राज्यो ने सामूहिक रूप से स्वीकृत किया। (२) सबने इस बात को स्वीकृत किया, कि तुर्की साम्राज्य के आन्तरिक मामलो में कोई हस्तक्षेप न करे। (३) काला सागर को युद्ध की दृष्टि से उदासीन माना गया, और यह व्यवस्था की गई कि कोई भी राज्य वहा पर अपने जङ्गी जहाजों का बेडा न रख सके, और न ही उसके तट पर युद्ध के लिये सामान जुटा सके। (४) रूमानिया और सर्बिया में रूस अपना संरक्षा का अधिकार मानता था। उसने इस अधिकार का परित्याग किया, और सब राज्यो ने इन दोनो देशो की स्वतन्त्रता को कायम रखने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। (५) बस्सेरेबिया का प्रदेश माल्डेविया (रूमानिया) को दिया गया। यह प्रदेश डेन्यूब नदी के मुहाने पर स्थित था, और पहले रूस के अधिकार में था। इस प्रकार इस सन्धि में रूस को बहुत नीचा देखना पडा, और ब्रिटेन की नीति को पूर्ण सफलता मिली। टर्की के साम्राज्य को कायम रखकर रूस की महत्त्वाकाक्षाओ पर अंकुश रखा जा सकता है, ब्रिटेन के इस विचार को पूर्णरूप से सफलता प्राप्त हुई।

तेईसवा अध्याय

संयुक्त राज्य अमेरिका

१ अमेरिका का प्रसार

सयुक्त राज्य अमेरिका का वर्तमान युग में महत्त्व—ससार के आधुनिक इतिहास मे सयुक्त राज्य अमेरिका का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह विश्व के दो सबसे अधिक शक्तिशाली राज्यो मे से एक है, और राज्यो के उस समुदाय का नेतृत्व करता है, जो सम्पत्ति पर वैयक्तिक स्वत्त्व के अधिकार को स्वीकृत करते हुए लोकतन्त्र शासन का अनुसरण करते है। इस दशा मे यूरोप के आधुनिक इतिहास को लिखते हुए हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है, कि इस अत्यन्त शक्तिशाली राज्य के इतिवृत्त पर भी हम सक्षेप के साथ प्रकाश डाले, क्योकि अमेरिका की शक्ति के विकास को स्पष्ट किये बिना यूरोप के आधुनिक इतिहास को भलीभाति स्पष्ट नही किया जा सकता।

स्वाधीनता की प्राप्ति—अमेरिका में ब्रिटिश लोगो के उपनिवेश किस प्रकार बसने शुरु हुए, और सन् १७७६ मे उन्होने ब्रिटेन के विरुद्ध विद्रोह कर किस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्त की, इसका उल्लेख हम पहले कर चुके है। स्वाधीन होने के बाद इन उपनिवेशो ने अपने को एक सघराज्य (सयुक्तराज्य) में सगठित किया था। १७७६ में अमेरिका के इन उपनिवेशो की कुल सख्या तेरह थी, और ये अटलाटिक महासागर के तट पर बसे हुए थे। इन राज्यो की अपनी-अपनी पृथक् सरकारे थी, और आन्तरिक मामलो में ये सर्वथा स्वतन्त्र थे। पर अपने सर्वमान्य हितो की रक्षा के लिये इन्होने अपने को एक सघ मे सगठित कर लिया था। राज्यो और उनके सघ के शासन-विधान लोकतन्त्रवाद के अनुसार बनाये गये थे।

पश्चिम की ओर प्रसार—१७९० में सयुक्तराज्य अमेरिका की कुल आबादी चालीस लाख के लगभग थी। इसमे सात लाख नीग्रो थे, और शेष तैतीस लाख ब्रिटिश व अन्य यूरोपियन जातियो के गौराङ्ग लोग थे। इस समय अमेरिका की सबसे बडी नगरी फिलेडेल्फिया थी, और उसकी जनसख्या बयालीस हजार के लगभग थी। न्यूयार्क में उस समय केवल तेतीस हजार मनुष्यो का निवास था। उन्नीसवी सदी के शुरू होने पर सयुक्तराज्य अमेरिका की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होनी शुरु हुई। प्रशान्त महासागर और अटलाटिक महासागर के बीच में जो विशाल भूखण्ड है, उसका बडा भाग अबतक प्राय खाली पडा था। अमेरिकन बस्तिया इसके पूर्वी तट के साथ-साथ ही विकसित हुई थी। अब इन अमेरिकन लोगो ने पश्चिम की ओर आगे बढकर नई बस्तियो का विकास शुरु किया। १७८७ में कुछ साहसी लोग मिसिसिपी नदी के उत्तर-

पश्चिमी प्रदेश मे जाकर बसने लगे, और वहा उन्होने मिचिगन के राज्य का विकास किया। १८०३ मे मिसिसिपी नदी के पश्चिम मे लुइसियाना के प्रदेश को आबाद करना शुरू किया गया, और वहा इलिनीय, मिसूरी आदि अनेक नये राज्यों का विकास हुआ। ये प्रदेश कृषि के लिये बहुत उपयुक्त थे, और इनमे अमेरिका के श्वेताङ्ग लोग नीग्रो गुलामो के श्रम से बडे-बडे खेतो के निर्माण मे तत्पर थे। अटलाण्टिक महासागर के तटवर्ती दक्षिणी प्रदेश कपास की खेती के लिये अत्यन्त उपयुक्त थे। व्यावसायिक क्रान्ति का असर अमेरिका पर भी पड रहा था, और वहा भी सूत कातने तथा कपडे बुनने के लिये नये कारखानो का निर्माण हो रहा था। इन कारखानो मे कपास की माग बहुत अधिक थी, और कपास की खेती के लिये उपयुक्त भूमि का बडे-बडे खेतो मे परिवर्तित किया जा रहा था, जिनमे नीग्रो लोग गुलाम के रूप मे बडी सख्या मे काम करते थे। पश्चिम की ओर जो अमेरिकन लोग निरन्तर आगे बढ रहे थे, उसमे एक हेतु यह भी था, कि सुदूर पश्चिम के प्रदेश जगलो से आच्छादित थे, और इन जगलो मे ऐसे बहुत से जन्तु प्रचुर सख्या मे रहते थे, जिनकी फर (खाल) बहुत कीमती होती थी। इन जन्तुओ का शिकार कर इनकी फर को खूब ऊँची कीमत पर बेचकर रुपया कमाने के आकर्षण मे बहुत से साहसी अमेरिकन लोग पश्चिम की ओर आगे बढने लगे, और धीरे-धीरे वे प्रशान्त महासागर तक पहुच गये। इस विशाल भूखण्ड मे आवागमन की सुविधा के लिये नये मार्गों का भी निर्माण किया गया। अमेरिका में नई बस्तिया बसाकर समृद्ध होने का अच्छा अवसर है, यह बात जब यूरोप के लोगो को ज्ञात हुई, तो वहा से बहुत से लोग अपनी मातृभूमि को सदा के लिये नमस्कार कर अमेरिका मे बस जाने के लिये प्रेरित हुए। १८१८ के बाद उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध मे यूरोप के प्राय सभी राज्यो मे लोकतन्त्र-वाद और राष्ट्रीयता की प्रवृत्तिया निर्बल हो रही थी, और मैटरनिख के नेतृत्व मे राजा व कुलीन श्रेणियो के लोग स्वेच्छाचारी व निरकुश शासन की स्थापना के लिये प्रयत्नशील थे। इस दशा मे मध्यश्रेणी के साहसी लोगो ने इसी बात मे अपना हित समझा, कि वे अमेरिका जाकर अपने भाग्य को आजमावे। इटली, हालैण्ड, फ्रास, ब्रिटेन, बाल्कन प्राय-द्वीप, और ग्रीस आदि सब जगह से लोग अमेरिका मे जाकर बसने लगे, और नई बस्तियो के लिये जन व धन की कमी नही रही। इस समय मे सयुक्तराज्य अमेरिका कितनी तेजी से उन्नति कर रहा था, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है, कि जहा १७९० मे उसकी जनसख्या केवल चालीस लाख थी, १८१२ मे वह बढकर साढे बहत्तर लाख हो गई थी। चालीस साल बाद १८५२ में यह जनसख्या दो करोड तीस लाख तक पहुच गई थी। १७९० से १८५२ तक केवल ६२ सालो मे इस देश की जनसख्या मे छ गुना की वृद्धि हो गई थी। ज्यो-ज्यो अमेरिकन बस्तियो का पश्चिम और दक्षिण की ओर प्रसार होता जाता था, नये राज्यो का भी सगठन होता जाता था, और ये नये राज्य अमेरिका के केन्द्रीय सघ मे सम्मिलित कर लिये जाते थे। १८१६ मे इण्डियाना को, १८१७ मे मिसिसिपी के राज्य को, १८१८ मे इलिनौय को, १८१९ मे एलेबामा को, १८२० मे मेन को और १८२१ में मिसूरी को सयुक्तराज्य अमेरिका के सघ मे सम्मिलत किया गया। यह प्रक्रिया इसी ढग से बाद मे भी जारी रही।

राष्ट्रीय एकता का अभाव—सयुक्तराज्य अमेरिका के निवासी दो प्रकार के थे, गौराङ्ग और नीग्रो। देश की जनसख्या की वृद्धि के साथ-साथ नीग्रो लोगो की आवादी भी निरन्तर वढती जाती थी। इन नीग्रो लोगो की वहुसख्या गुलाम थी। कपास, ईख, आदि की खेती जिस प्रकार अमेरिका की खाली पडी हुई उपजाऊ जमीन पर वडे परिमाण मे शुरू हुई थी, उससे इन नीग्रो गुलामो की माग वहुत वढ गई थी। गौराङ्ग लोग इन्हे घृणा की दृष्टि मे देखते थे और इन्हे नागरिकता का कोई भी अधिकार देने के लिये तैयार नही थे। यह वात अमेरिका मे राष्ट्रीय एकता के विकास मे वहुत वाधक थी। साथ ही, यद्यपि अमेरिका के विविध राज्य एक सघ मे सगठित थे, पर इनके निवासियो मे एकानुभूति का प्राय अभाव था। विर्जिनिया के निवासी अपने को विर्जिनियन समझते थे अमेरिकन नही। यही वात न्यूयार्क, पेनसिलवेनिया, मेन, न्यू इङ्गलैंड, ज्योर्जिया, मैंस्सेच्युएट्स आदि अन्य राज्यो के निवासियो के सम्वन्ध मे भी कही जा सकती है। एक सघ-सरकार और एक राष्ट्रीय झण्डे के रहते हुए भी विविध अमेरिकन राज्यो मे एकता की भावना भलीभाति विकसित नही हुई थी। यही कारण है, कि कनाडा की सीमा पर उत्पन्न हुई कतिपय ममस्याओ के कारण जव १८१२ मे सयुक्तराज्य अमेरिका को ब्रिटेन के साथ युद्ध करने की आवश्यकता हुई, तो अनेक अमेरिकन राज्यो ने इस युद्ध के लिये अपनी सेनाएँ भेजने से इनकार कर दिया। उन्नीसवी सदी के मध्य तक भी अमेरिकन सघ के अन्तर्गत राज्य यह मानते थे, कि राज्य की प्रभुत्त्वशक्ति उनमे निहित है, सघ राज्य प्रभुत्त्व-शक्ति-सम्पन्न (सौविरन) नही है। यही कारण है, कि सघ सरकार द्वारा जारी किये हुए कानूनो व आदेशो को स्वीकार करने से भी वह अनेक वार इनकार कर देते थे।

२. गृह-युद्ध

दासप्रथा की समस्या—उन्नीसवी सदी मे यूरोप मे दासप्रथा के विरुद्ध भावना उत्पन्न हो चुकी थी। ससार के सभ्य लोग यह अनुभव करने लगे थे, कि दासप्रथा मानव सभ्यता के प्रतिकूल है, और किसी मनुष्य को गुलाम वना कर रखना समुचित नही। इसी कारण वीएना की काग्रेस (१८१४) मे दासप्रथा के विरुद्ध भी एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था, और यूरोप के अनेक राज्य इस प्रथा को नष्ट करने के लिये आवश्यक कार्रवाई कर रहे थे। अमेरिकन सघ-सरकार भी यह निश्चय कर चुकी थी, कि १८०८ के वाद नये नीग्रो गुलाम अफ्रीका से अमेरिका में नही लाये जा सकेंगे। पर यह वात अमेरिका के उन राज्यो लिये हितकर नही थी, जो कृपिप्रधान थे। इस समय अमेरिका के विविध राज्य आर्थिक दृष्टि से दो दिशाओ मे उन्नति कर रहे थे—(१) उत्तरी राज्य व्यवसाय और व्यापार के क्षेत्र में विशेप रूप मे प्रगति कर रहे थे। इन राज्यो मे वहुत से कल कारखाने स्थापित हो चुके थे, जिनमे सूती कपडे, जूते, ऊनी वस्त्र, चमडे का सामान व लकडी की वस्तुएँ वडे परिणाम मे वन रही थी। इन कारखानो मे मशीन की सहायता से कार्य होता था, और इनमे आर्थिक उत्पत्ति के लिए गुलामो का विशेप उपयोग नही था। अत इन राज्यो के निवासियो के लिये यह सम्भव था, कि वे अपने क्षेत्र मे दासप्रथा का

अन्त कर देना हानिकारक न समझे । (२) दक्षिणी राज्यो का आर्थिक जीवन कृषि पर आश्रित था। इनकी आमदनी का प्रधान साधन कपास, ईख आदि की खेती थी, जो इनमें बहुत बडे परिणाम मे होती थी। खेती के लिये उपयुक्त व यान्त्रिक शक्ति से सचालित होने वाले यन्त्रो का विकास उस समय तक नही हुआ था। अत इन राज्यो के किसान अपनी खेती के लिये गुलामो के श्रम पर ही निर्भर करते थे। उन्हे यह समझ मे नही आता था कि दासप्रथा का अन्त हो जाने के बाद वे अपना कृषिकार्य किस प्रकार सम्पन्न कर सकेगे।

दासप्रथा नष्ट की जाय या नही, इस प्रश्न पर उत्तर और दक्षिण के राज्यो मे मत-भेद निरन्तर बढता गया। १८३० के बाद यह मतभेद कलह का रूप धारण करने लगा, और १८६० के बाद दासप्रथा की समस्या अमेरिकन राजनीति का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न बन गई। अटलान्टिक महासागर और मिसिसिपी नदी के बीच के सब दक्षिणी प्रदेशो मे लोग दासप्रथा को एक स्वाभाविक व आवश्यक बात समझते थे। इन प्रदेशो मे आधे के लगभग आबादी गुलामोकी थी, और गोराङ्ग किसानोकी खेती इन गुलामो पर ही आश्रित थी। बहुसख्यक गुलामो को अमेरिका मे आबाद हुए एक सदी से अधिक समय हो चुका था, वे अग्रेजी भाषा बोलते थे, ईसाई धर्म का अनुसरण करते थे, और पाश्चात्य रहन-सहन को अपना चुके थे। पर उनकी स्थिति पूर्णतया दासो की थी, और उन्हे नागरिक स्वतन्त्रता का कोई भी अधिकार प्राप्त नही था। दक्षिणी राज्यो के गोराङ्ग निवासियो को इसमे कोई भी आपत्तिजनक बात प्रतीत नही होती थी। वहा के सब राजनीतिक नेता, विचारक व पादरी लोग इस प्रथा को सर्वथा उचित व स्वाभाविक समझते थे, और नीग्रो लोगो के लिये भी लाभदायक बताते थे। इसके विपरीत उत्तरी राज्यो का कथन था, कि यह प्रथा जहा मानव सभ्यता के लिये लज्जा की बात है, वहा दक्षिणी राज्यो की आर्थिक उन्नति मे भी बाधक है। इसका परिणाम यह हुआ, कि उत्तर मे एक नये दल का सगठन हुआ, जो मानवता के इस कलक को मिटा देने के लिये अग्रसर हुआ। इस दल का प्रधान नेता विलियम लायड गैरिसन नाम का एक युवक था, जो अपने समाचार पत्र लिबरेटर द्वारा दासप्रथा का तीव्र विरोध करने मे तत्पर था। इस दल के लोग दास-प्रथा के विरुद्ध केवल प्रचार ही नही कर रहे थे, अपितु साथ ही दासो को इस बात के लिये उकसाने में भी तत्पर थे, कि वे अपने मालिको के पास से भागकर स्वतन्त्रता प्राप्त कर लें। जो दास भागकर उत्तरी राज्यो मे पहुँचने मे समर्थ होते थे, यह दल उनकी पूरी तरह से सहायता करता था। १८३० से १८६० तक अकेले ओहयो राज्य मे चालीस हजार से भी अधिक गुलाम लोग भागकर उत्तर मे पहुंचे, और इस दल ने उनको आश्रय देने में कोई भी कसर उठा नही रखी। दासप्रथा विरोधी दल की शाखाएं सब जगह स्थापित की गई थी। १८४० मे इस दल की २००० के लगभग शाखाएँ अमेरिका के विविध नगरो व गामो मे खुल चुकी थी, और उनके सदस्यो की सख्या भी दो लाख के लगभग हो गई थी।

१८४८ मे कैलिफोर्निया के प्रदेश मे सोने की खाने उपलब्ध हुई। सुवर्ण की प्राप्ति द्वारा समृद्ध होने के आकर्षण से हजारो आदमी इस नये प्रदेश मे जाकर बसने शुरू हुए। १८४९ मे कैलिफोर्निया की जनसख्या अस्सी हजार से ऊपर पहुंच गई। जब कैलिफोर्निया

को सयुक्तराज्य अमेरिका में सम्मिलित करने का प्रश्न उत्पन्न हुआ, तो दासप्रथा की समस्या ने वडा विकट रूप धारण किया। दासप्रथा के विरोधी कहते थे, कि इस नये राज्य मे इस घृणित प्रथा को प्रविष्ट नही होने देना चाहिये। ऐसा प्रतीत होता था, कि कैलिफोर्निया के प्रश्न पर अमेरिका मे गृहकलह का प्रारम्भ हुए विना नही रहेगा। पर देश के नेताओ की बुद्धिमत्ता के कारण यह प्रश्न अधिक गम्भीर रूप धारण नही कर सका। कैलिफोर्निया के प्रश्न पर १८५० मे समझौता हो गया, और दासप्रथा का प्रश्न भी कुछ समय के लिये दव गया।

इस समय अमेरिका के विचारशील लोगो मे दासप्रथा के विरुद्ध भावना निरन्तर वढ रही थी। अनेक लेखक ऐसे साहित्य के निर्माण मे तत्पर थे, जो इस घृणित प्रथा के प्रति जनता का ध्यान आकृष्ट कर रहा था। १८५२ मे "टाम काका की कुटिया' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसकी तीन लाख प्रतिया एक साल से भी कम समय मे विक गई। इस एक पुस्तक ने अमेरिका मे दासप्रथा के विरुद्ध भावना को उत्पन्न करने मे जो कार्य किया, वह हजारो सभाओ, व्याख्यानो व पुस्तिकाओ द्वारा भी नही हुआ था। दासप्रथा के विरोध मे जो लोग इस समय विशेष रूप से कार्य कर रहे थे, उन मे अब्राहम लिकन का नाम विशेष रूप से उलेखनीय है।

विद्रोह का प्रारम्भ—१८६० मे सयुक्तराज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का नया चुनाव होना था। लिकन राष्ट्रपति पद के लिये उम्मीदवार था। वह सफल हुआ, और उसके राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाने पर दासप्रथा की समस्या ने अत्यन्त विकट रूप धारण कर लिया। दासप्रथा के पक्षपाती राज्यो को अव यह विश्वास हो गया, कि राष्ट्रपति लिकन इस प्रथा को नष्ट करने के लिये सव प्रकार के उपायो को प्रयोग में लायेगा। २० दिसम्बर, १८६० को दक्षिणी कैरोलिना के राज्य मे एक कान्वेन्शन हुआ, जिसने यह घोषणा की, कि वह अमेरिकन सघसे पृथक् होता है, और सघराज्य से उसका अव कोई सम्वन्ध नही है। १ फरवरी, १८६१ को छ अन्य राज्यो ने भी विद्रोह का झडा खडा किया। इन्होने न केवल सयुक्तराज्य अमेरिका से अपने पृथक् हो जाने की घोषणा की, अपितु साथ ही यह भी उद्घोषित किया, कि हम अपना एक नया सघ वनाते है। इस सघ का एक सविधान भी तैयार कर लिया गया, और इसके राष्ट्रपति पद पर श्री डेविस को निर्वाचित कर दिया गया।

युद्ध का सूत्रपात—९ जनवरी, १८६१ को अमेरिकन सघराज्य का एक जहाज दक्षिणी कैरोलिना के समुद्र तट पर पहुचा। वहा उस पर हमला किया गया। अव ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी, कि युद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से इस विवाद को समाप्त कर सकना सम्भव प्रतीत नही होता था। राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित हो जाने के वाद अब्राहम लिकन ने स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की थी, कि सयुक्तराज्य अमेरिका के रूप मे जो सघ स्थापित किया गया था, वह अखण्डनीय और शाश्वत है, उसकी अखण्डनीयता को किसी भी प्रकार नष्ट नही होने दिया जायगा। लिकन ने विद्रोही राज्यो को वश मे लाने के लिये एक स्वय-सेवक सेना का सगठन किया। विद्रोही राज्यो ने भी अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये सेना एकत्र की, और दोनो पक्षो में युद्ध का प्रारम्भ हो गया।

गृह युद्ध—दासप्रथा के विरोधी उत्तरी राज्यो की कुल जनसख्या इस समय २,२०,००,००० थी ; उनमे ७५ लाख सैनिक इस युद्ध के लिये एकत्र किये गये। दासप्रथा के पक्षपाती दक्षिणी राज्यो की कुल आवादी इस समय ९०,००,००० थी, जिनमें से ३५,००,००० व्यक्ति गुलाम थे। उन्होने भी बारह लाख से अधिक सैनिक युद्ध के लिये भरती किये। १८६१ मे उत्तरी और दक्षिणी राज्यो मे बाकायदा युद्ध शुरू हो गया, जो चार साल के लगभग तक जारी रहा। उत्तरी राज्य न केवल सैनिको की सख्या की दृष्टि से लाभ मे थे, अपितु व्यावसायिक उन्नति के कारण उनके पास युद्ध के साधनो की भी प्रचुरता थी। अत युद्ध मे उनकी विजय हुई। दक्षिणी राज्यो को इस बात के लिये विवश किया गया कि वे सघ से पृथक् न हो सके, और उसके अग बनकर ही रहें। इस युद्ध मे कुल मिलाकर ६,१८,००० आदमी काम आये। उत्तरी राज्यो के ३,६०,००० सैनिक नष्ट हुए, और दक्षिणी राज्यो के २,५८,०००। युद्ध के कारण दोनो पक्षो का जो व्यय हुआ, वह पन्द्रह अरब रुपये से भी अधिक था। इतने धन और जन की हानि के बाद अमेरिका मे यह बात तय हुई कि सघ की एकता को कायम रखना है, और अमेरिकन राष्ट्रीयता विविध राज्यों की पृथक् भावना से अधिक ऊचा स्थान रखती है।

अमेरिका के इतिहास मे इस गृह-युद्ध को दो नामो से लिखा जाता है। उत्तरी राज्यो में इसे 'महान् विद्रोह' कहा जाता था, और दक्षिणी राज्यो मे 'राज्यो का युद्ध।' अब भी अमेरिकन ऐतिहासिक इसे प्राय इन्ही नामो से लिखते है। पर हमने इसे गृह-युद्ध का नाम दिया है, क्योकि यह सयुक्त राज्य अमेरिका की घरेलू लडाई थी, जिसमे अन्ततोगत्वा इस बात का अन्तिम रूप मे निर्णय हो गया, कि इस देश में राज्य की प्रभुत्व-शक्ति सघ सरकार में निहित है, न कि उसके अन्तर्गत विविध राज्यो मे। जब सघ सरकार दासप्रथा का अन्त करना चाहती है, तो किसी राज्य की सरकार को यह अधिकार नही है, कि वह उसके विरोध में खडी हो सके, या अपने राज्य को सघ से पृथक् कर सके।

दासप्रथा का अन्त—१८६३ में राष्ट्रपति लिंकन ने एक घोषणा प्रकाशित की, जिसके अनुसार सब दासो को स्वतन्त्र कर दिया गया। शुरू में यह व्यवस्था की गई थी, कि गुलामो को स्वतन्त्र करते हुए उनके मालिको को राज्य की ओर से हरजाना दिया जाय। कोलम्बिया के प्रदेश मे जब सबसे पहले ३००० गुलामो को स्वतन्त्र किया गया, तो उनके मालिको को प्रति गुलाम १००९ रुपया हरजाने के रूप में दिया गया था। पर बाद मे हरजाने की व्यवस्था को हटा दिया गया। दक्षिणी राज्यो के लोग विद्रोही थे, अत सघ सरकार ने यह उचित समझा, कि उनकी सम्पत्ति को जब्त कर लिया जाय, और क्योकि गुलाम भी उनकी सम्पत्ति के अग थे, अत उन्हें भी जब्त करके स्वतन्त्र कर दिया गया, और इसके लिये उनके मालिको को कोई हरजाना देने की आवश्यकता नही समझी गई।

गृह-युद्ध में यूरोपियन राज्यो का रुख—अमेरिका के इस गृह-युद्ध मे यूरोप के प्राय सभी राज्य उदासीन रहे। ग्रेट ब्रिटेन इस युद्ध से लाभ उठाने को उत्सुक था। वहा की सरकार ने दक्षिणी राज्यो के नये सघ को स्वीकार भी कर लिया था, और वह उन्हे

युद्ध मे सहायता देने के लिये भी उद्यत थी। इसी प्रकार फ्रास का राजा नैपोलियन तृतीय भी इस युद्ध से लाभ उठाकर अमेरिकन महाद्वीप मे मैक्सिको की विजय के लिये योजना बना रहा था। पर इन दोनो राज्यो मे ऐसे लोगो की कमी नही थी, जो दास-प्रथा को नष्ट करने के लिये राष्ट्रपति लिंकन के उद्योग से सहानुभूति रखते थे। दासो को स्वतन्त्रता प्रदान करने के सम्बन्ध मे जो घोषणा लिंकन ने १८६३ मे प्रकाशित की थी, उसके कारण यूरोप का लोकमत उत्तरी राज्यो के बहुत अनुकूल हो गया था। यूरोप के प्राय सभी राज्य इस समय तक दासप्रथा को नष्ट कर चुके थे। १८६१ मे रूस तक ने इस प्रथा का अन्त कर दिया था। इस दशा मे दासप्रथा के पक्षपाती दक्षिणी राज्यो का पक्ष लेकर किसी भी यूरोपियन राज्य का अमेरिकन गृहयुद्ध मे सम्मिलित हो सकना सुगम बात न थी। इस कारण यूरोपियन राज्य इस युद्ध मे उदासीन ही रहे।

नीग्रो जाति से व्यवहार—गृहयुद्ध की समाप्ति पर अमेरिका की सघ-सरकार ने ऐसे अनेक कानून पास किये, जिनका उद्देश्य नीग्रो लोगो को स्वाधीनता और समानता प्रदान करना था। १८६८ मे सविधान मे सशोधन करके नीग्रो लोगो को भी नागरिकता के अधिकार दिये गये। १८७० में एक अन्य कानून द्वारा नीग्रो लोगो को भी वोट का अधिकार प्रदान किया गया। पर स्वतन्त्र हुए गुलामो को अपना निर्वाह करने के लिए सहायता की आवश्यकता थी, अत १८६५ मे ही एक नये राजकीय विभाग की स्थापना कर दी गई थी, जिसका नाम था, 'स्वतन्त्र हुए मनुष्यो का विभाग' (फ्रीड मैन्स ब्यूरो)। इस प्रकार अमेरिका में नीग्रो जाति के लोगो को समान समझने और उनके साथ समता का व्यवहार करने का प्रयत्न किया जा रहा था। पर दक्षिणी राज्यो में इनके प्रति जो विद्वेष का भाव विद्यमान था, उसे एकदम नष्ट नही किया जा सकता था। इसी लिए कू-क्लक्स-क्लान सस्था की वहा स्थापना हुई, जो नीग्रो लोगो पर अनेक प्रकार से अत्याचार करना ही अपना कर्तव्य समझती थी। साथ ही इन राज्यो में ऐसे भी अनेक कानून स्वीकृत किये गये, जिनके कारण नीग्रो लोगो को सामाजिक व सार्वजनिक जीवन म हीन व नीच समझा जाता रहा। होटलो, शिक्षणालयो, सिनेमाघरो व अन्य सार्वजनिक स्थानो पर उनके साथ भिन्न व्यवहार होता रहा, और अब बीसवी सदी के मध्य भाग मे भी अमेरिका मे नीग्रो लोगो के प्रति अनुचित व्यवहार जारी है।

३ उन्नीसवी सदी मे अमेरिका की उन्नति

उन्नीसवी सदी के मध्यभाग तक सयुक्तराज्य अमेरिका आर्थिक दृष्टि से बहुत उन्नत नही हुआ था। नगरो की दशा अभी बहुत पिछडी हुई थी। उस समय तक अमेरिका के नगरो मे गन्द पानी को बाहर निकालने के लिये न नालिया बनी थी, न उनकी सडको व गलियो मे रोशनी की समुचित व्यवस्था थी, और न सडकें ही पक्की बनी थी। शहरो में पहरे के लिए पुलिस का भी ठीक इन्तजाम नही था। १८५७ में न्यूयार्क नगर मे सबसे पहले ऐसी पुलिस तैनात की गई, जो बाकायदा वरदी पहनती थी। इस समय वाशिंगटन नगरी की यह दशा थी, कि उसकी सडको पर सूअर, गौवें व साड खुले तौर पर फिरा करते थे और लोगो के पीने के लिए ताजा जल मिलने का भी कोई सतोषजनक प्रबन्ध नही

था। शहरों मे जो गाडिया चलती थी, उनमे घोडे जुतते थे। यद्यपि शहरों की दशा इतनी पिछडी हुई थी, पर उनकी आबादी मे निरन्तर वृद्धि हो रही थी। नये शहरो का भी विकास हो रहा था। जो बस्तिया पहले छोटे-छोटे गावो के रूप मे थी, वे अब शीघ्रता से बडे नगरो का रूप धारण कर रही थी। यूरोप से लोग बहुत बडी सख्या मे अमेरिका मे बसने के लिए आ रहे थे। १८४८ के बाद जब यूरोप में एक बार फिर क्रान्ति की प्रवृत्तिया असफल हुई, और अनेक राज्यो मे राजाओ का स्वेच्छाचारी शासन स्थापित हुआ, तो बहुत से यूरोपियन लोग अपने देशो की राजनीतिक दशा से असतुष्ट हो कर सुदूर अमेरिका मे जा बसने के लिए प्रेरित हुए। १८४५ से १८५५ तक के दस सालो मे अकेले आयर्लैंड से दस लाख से भी अधिक नर-नारी अमेरिका जाकर आबाद हुए। इस समय मे आयरिश लोग ब्रिटेन के विदेशी शासन से बहुत असतुष्ट थे, और बडी सख्या मे अपनी मातृभूमि का परित्याग कर अमरिका जा रहे थे। इसी प्रकार इटली, ग्रीस, बोहेमिया आदि देशो से भी लाखो की सख्या मे स्त्री-पुरुष प्रति वर्ष अमेरिका जाकर आबाद होते थे। एशिया मे चीन और जापान से भी हजारो व्यक्ति हर साल अमेरिका जाया करते थे।

अमेरिका मे जाकर इन विदेशी लोगो के लिए कार्य प्राप्त कर सकना कठिन नही था। इस समय अमेरिका के विशाल भूखण्ड की आर्थिक दशा बडी तेजी के साथ उन्नत हो रही थी। १८५९ मे वहा मिट्टी के तेल के कुओ का खोदा जाना शुरू हुआ। अमेरिका मे तेल के विशाल व विस्तृत क्षेत्र विद्यमान थे, जिनमे कुओ का निर्माण कर मिट्टी का तेल निकाला जाना शुरु हुआ, और उसे साफ कर ससार के विविध प्रदेशो मे भेजा जाने लगा। कोयला, लोहा, सोना आदि की खाने भी इसी समय खोदी जानी शुरु हुईं। कृषि के लिये यान्त्रिक उपकरणो का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, और अमेरिका की कपास बहुत बडे परिणाम मे ब्रिटेन आदि देशो मे जाने लगी। १८६० से १९१० तक पचास वर्षो में अमेरिका में खेतो की सख्या तिगुनी हो गई। १९१० में जिस भूमि पर अमेरिका में खेती की जाती थी, उसका विस्तार ६३,५०,००,००० एकड था। यह विशाल भूमि प्रति वर्ष ६३,५०,००,००० बुशल गेहूँ, २,८८,६०,००,००० बुशल मक्की और १,१६,९०,००० गाठे कपास की उत्पन्न करती थी। ईख आदि की खेती इससे पृथक् थी। अमेरिका मे पशुपालन के व्यवसाय ने भी इस युग मे असाधारण उन्नति की। पश्चिमी अमेरिका के सुविस्तृत चरागाहो मे जो करोडो पशु पाले जाते थे, उनका उपयोग जहा दूध, मक्खन आदि के लिए था, वहा साथ ही मास के लिए भी उनका प्रयोग होता था। जिस प्रकार इस समय कृषि के क्षेत्र मे अमेरिका ने असाधारण उन्नति की, वैसे ही व्यापार और व्यवसाय के क्षेत्र में भी उसने अद्भुत कर्तृत्व का प्रदर्शन किया। विशेषतया, उत्तर और पूर्व के राज्यो मे कल कारखानो का बडी तेजी से विकास हुआ। खानो और तैल-कूपो के विकास के कारण कल कारखानो के विकास मे बहुत सहायता मिली, और लोहा, फौलाद और सूती ऊनी व रेशमी वस्त्र आदि के व्यवसायो के विकास के कारण देश के आर्थिक जीवन मे एक क्रान्ति सी उपस्थित हो गई। कृषि और व्यवसाय की उन्नति से अमेरिका के ग्रामो और नगरो के स्वरूप में भारी परिवर्तन आना शुरू हुआ, और

कुछ ही समय मे न्यूयार्क, वाशिगटन, शिकागो आदि नगरो के स्वरूप आमूल चूल रूप से परिवर्तित हो गये। वैज्ञानिक आविष्कारो ने इस परिवर्तन मे भारी सहायता की। रेलवे लाइनो के निर्माण से एक प्रदेश मे दूसरे प्रदेशो मे आना-जाना वहुत सुगम हो गया, और देश के आन्तरिक व वाह्य व्यापार मे वहुत सुविधा हो गई। डायनमो द्वारा विजली उत्पन्न करने के सिद्धान्त का परिज्ञान १८३१ मे ही हो चुका था। १८४८ मे विजली के खम्बे अमेरिका मे यत्र-तत्र दिखाई देने लगे थे, ओर विजली की तारो का सर्वत्र जाल सा विछना शुरू हो गया था। १८७६ मे टैलीफोन यन्त्र का आविष्कार हुआ, और इससे व्यापार व्यवसाय की उन्नति मे वहुत सहायता मिली।

इसमे सन्देह नही, कि उन्नीसवी सदी के अन्त तक सयुक्त राज्य अमेरिका उन्नति क मार्ग पर वहुत अधिक आगे वढ गया था, और वह ससार के अत्यधिक उन्नत देशो मे गिना जाने लगा था। गृहयुद्ध के वाद उन्नीसवी सदी मे अमेरिका ने कितनी तेजी के साथ उन्नति की, इसका अनुमान इससे किया जा सकता है, कि १८६० मे जहा अमेरिका की सम्पूर्ण राष्ट्रीय सम्पत्ति १६,००,००,००,००० डालर थी, वहा १९१८ तक वह वढ कर ३,५०,००,००,००,००० डालर हो गई थी। इस काल मे प्रतिवर्ष उत्पन्न होने वाले कोयले मे ९७ गुना की, लोहे मे ७१ गुना की, गेहूँ में ९ गुना की, कपास मे ६ गुना की और मक्का मे ५ गुना की वृद्धि हुई। अमेरिका मे पूर्व से पश्चिम तक जाने वाली रेलवे का पहले पहल निर्माण १८६९ मे हुआ था। पचास साल वाद १९१९ तक अमेरिका मे रेलवे लाइन का इतना अधिक विस्तार हो था, कि वहा की रेलवे लाइन सारी पृथ्वी को दस वार घेर सकती थी।

आर्थिक उत्कर्ष के साथ-साथ अमेरिका की जनसख्या में भी निरन्तर वृद्धि होती गई। हम पहले लिख चुके है, कि अठारहवी सदी के अन्त में, इस देश की कुल आवादी चालीस लाख के लगभग थी। एक सदी वाद उन्नीसवी सदी के अन्त तक यह जनसख्या दस करोड के लगभग तक पहुँच गई थी। इस प्रकार तेजी से वढती हुई आवादी को पाल सकना अमेरिका के लिये इसी कारण सम्भव था, क्योकि वहा कृषि और व्यवसाय के लिये अपार क्षेत्र विद्यमान था।

४ सयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीति

जिस समय अमेरिकन उपनिवेशो ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह कर स्वतन्त्रता प्राप्त की, तव (१७७६ में) उनकी सख्या केवल तेरह थी। १८२९ तक सयुक्त-राज्य अमेरिका के अन्तर्गत राज्यो की सख्या वढकर छब्बीस तक पहुच गई थी। ज्यो-ज्यो प्रशान्त महासागर की तरफ पश्चिम में वस्तिया वसती गईं, इन राज्यो की सख्या भी वढती गई। इस समय इन राज्यों की सख्या ४८ है। १९१२ ई० तक पूरे ४८ राज्य अमेरिका के सघ मे सम्मिलित हो चुके थे। इन सव राज्यो का क्षेत्रफल अखण्ड भारत के दुगने के लगभग है, यद्यपि उसकी जनसख्या भारत की अपेक्षा तिहाई से भी कुछ कम है।

साम्राज्य विस्तार—पर अमेरिकन लोगो को अपने इस विशाल भूखण्ड मे भी सतोष नही था। यद्यपि इस सुविस्तृत देश में उन्हें खेती, व्यवसाय आदि के विकास का अपरिमित

अवसर था, तथापि वे साम्राज्य विस्तार के लिये प्रवृत्त थे। १८६७ में अमेरिका ने रूस से अलास्का के प्रदेश को क्रय कर लिया। अलास्का का प्रदेश उत्तरी प्रशान्त महासागर में स्थित है, और इसे अधिगत कर लेने से अमेरिका को एक ऐसा भूखण्ड प्राप्त हो गया, जो उसके अपने क्षेत्र से बाहर है। कुछ समय बाद उसने समोआ के द्वीप पर अपना अधिकार स्थापित किया। १८९८ में हवाई द्वीप अमेरिका के प्रभुत्व में आ गया। इसी समय प्रशान्त महासागर में स्थित मिडवे और वेक सदृश छोटे द्वीपों पर भी अमेरिका ने कब्जा किया। स्पेन और अमेरिका के युद्ध के बाद (१८९८) क्यूबा पर अमेरिका का प्रभुत्व स्थापित हुआ, और पोर्टो रीको उसके हाथ में आ गया। स्पेन और अमेरिका के इसी युद्ध के बाद फिलिपीन, द्वीपसमूह स्पेन की अधीनता से मुक्त होकर अमेरिका के साम्राज्य के अन्तर्गत हुआ। इस द्वीप समूह में ३१४१ द्वीप सम्मिलित हैं, और इनकी जनसंख्या एक करोड़ से अधिक है। फिलिप्पीन के लोग अमेरिका के शासन से बहुत असन्तुष्ट थे। इसलिये उन्होंने १९०० में विद्रोह किया, पर यह सफल नहीं हो सका, और अमेरिकन शासकों ने इसे बुरी तरह से कुचल दिया। १९१७ में वर्जिन द्वीप को अमेरिका ने डेन्मार्क से प्राप्त किया, और इस प्रकार अमेरिका का साम्राज्य निरन्तर उन्नति करता गया। चीन में भी अमेरिका ने व्यापार आदि की अनेक सुविधाएं व विशेष अधिकार प्राप्त किये।

पनामा कैनाल का निर्माण—उन्नीसवीं सदी से संयुक्त राज्य अमेरिका इस बात के लिये बहुत उत्सुक था, कि मध्य अमेरिका में एक ऐसी नहर का निर्माण करे, जिससे कि अटलाण्टिक सागर से प्रशान्त महासागर को जाने के लिये दक्षिणी अमेरिका का चक्कर काटने की आवश्यकता न रहे। ऐसी नहर के न होने से अमेरिकन जहाजों को पूर्व से पश्चिम की ओर जाने के लिये दक्षिणी अमेरिकन महाद्वीप का चक्कर काटना अनिवार्य था, और इसमें समय व धन का व्यर्थ अपव्यय होता था। मैक्सिको के दक्षिण में पनामा के निचले सिरे पर जहा उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकन महाद्वीप आपस मे मिलते हैं, स्थल इतना कम चौडा है, कि उसके बीच में एक नहर का निर्माण करने से प्रशान्त और अटलाण्टिक सागरों को सुगमता से मिलाया जा सकता है। १८८१ में फ्रेंच पनामा कम्पनी ने नहर बनाने के कार्य को अपने हाथ में लिया। पर आठ साल के निरन्तर प्रयत्न के बाद भी इसमें उसे सफलता नहीं हुई। इसी बीच में १८९८ में स्पेन और अमेरिका का युद्ध हुआ, जिसमें अमेरिकन लोगों ने इस नहर के निर्माण की आवश्यकता को और भी अधिक तीव्रता के साथ अनुभव किया। १९०३ में पनामा में एक स्वतन्त्र रिपब्लिक की स्थापना हो गई थी, और इस नई रिपब्लिक को सयुक्त राज्य अमेरिका की सहायता व सरक्षा प्राप्त थी। पनामा ने उस स्थान को सयुक्त राज्य अमेरिका को स्थिर रूप से पट्टे पर देना स्वीकार कर लिया, जहा पर कि नहर का निर्माण किया जाना था। यह प्रदेश लम्बाई में दस मील था। १९०४ में पनामा कैनाल का निर्माण प्रारम्भ हुआ और १९१४ में यह कार्य पूर्ण हो गया। यद्यपि इसमें कुल मिलाकर एक अरब के लगभग रुपये का व्यय हुआ, पर इस नहर के निर्माण के कारण न्यूयार्क से जलमार्ग द्वारा सनफ्रांसिस्को जाने की दूरी में ७८०० मील की कमी हो गई। अब इस नहर से हजारों जहाज प्रतिवर्ष आते जाते हैं। अमेरिका के लिये इसका उतना ही महत्त्व है, जितना कि एशिया और यूरोप के लिये स्वेज कैनाल का है।

पैन अमेरिकन आन्दोलन—इस इतिहास मे हम अनेक वार मुनरो-सिद्धान्त का उल्लेख कर चुके है। मध्य और दक्षिणी अमेरिका के अनेक राज्य पहले स्पेन के साम्राज्य के अन्तर्गत थे। उन्होने स्पेन की अधीनता से मुक्त होकर स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। वीएना की काग्रेस (१८१४) के वाद जव यूरोप के अनेक स्वेच्छाचारी राजाओ ने क्रान्ति की प्रवृत्तियो को कुचलने के उद्देश्य से होली एलायन्स (पवित्र मित्रमण्डल) का निर्माण किया, तो सयुक्त राज्य अमेरिका को यह डर लगा, कि कही यूरोप के ये निरकुश राजा अमेरिकन राज्यो की स्वाधीनता मे भी स्पेन के राजा का पक्ष लेकर हस्तक्षेप न करे। इसलिये १८२३ में सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, कि पुरानी दुनिया (यूरोप) के शासक नई दुनिया (अमेरिका) के मामलो मे किसी भी प्रकार हस्तक्षेप न करें। वीसवी सदी के शुरु मे राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने इस मुनरो सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए यह प्रतिपादित किया था, कि अमेरिकन महाद्वीप मे यूरोप के हस्तक्षेप को रोकने के लिये यह आवश्यक है, कि सयुक्त राज्य अमेरिका इस महाद्वीप के अन्य राज्या की रक्षा का भार अपने ऊपर ले। इसके विना मनरो सिद्धान्त को क्रिया में परिणत कर सकना सम्भव नही है। इसी नीति का अनुसरण कर सयुक्तराज्य अमेरिका ने मध्य व दक्षिणी अमेरिकन महाद्वीप के अनेक छोटे पर स्वतन्त्र राज्यो पर अपना सरक्षण व नियन्त्रण स्थापित करना प्रारम्भ किया। पनामा कैनाल का प्रदेश और पोर्टो रीको तो सीधे उसके अधिकार मे थे ही, क्यूवा पर भी उसका आधिपत्य स्थापित था। अव सातो दोमिन्गो और हैयती के राज्यो पर भी सयुक्त राज्य अमेरिका ने अपना सरक्षण कायम कर लिया। निकारगुआ और हान्डूरस के स्वतन्त्र राज्यो की आर्थिक नीति पर भी अमेरिका ने अपना आर्थिक नियन्त्रण स्थापित किया, और इस प्रकार अनेक स्वतन्त्र राज्य उसके प्रभाव में आ गये। इस प्रक्रिया द्वारा उस आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ, जिसे 'पैन-अमेरिकन' कहा जाता है, और जिसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे सम्पूर्ण अमरीकन महाद्वीप के राज्यो का सयुक्तराज्य अमेरिका के नेतृत्व मे एक सूत्र में सगठित करना है।

अमेरिका और यूरोप—सयुक्तराज्य अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का आधारभूत सिद्धान्त यह था, कि यूरोप के देश अमेरिकन महाद्वीप के मामलो में हस्तक्षेप न करे, और विदेशी मामलो में अमेरिकन महाद्वीप के विविध राज्य सयुक्तराज्य के नेतृत्व को स्वीकार करे। इस सिद्धान्त का यह परिणाम हुआ, कि यूरोप के शक्तिशाली राज्य अमेरिका मे अपने प्रभाव का विस्तार करने के प्रलोभन मे वचते रहे। जिन दिनो अमेरिका मे गृहयुद्ध जारी था, फ्रास के राजा नैपोलियन तृतीय ने मैक्सिको मे अपने साम्राज्य का विस्तार करने का उद्योग किया। नैपोलियन तृतीय के इस प्रयत्न के सम्वन्ध में हम पहले लिख चुके है। उसे आशा थी, कि गृहयुद्ध में दक्षिणी राज्यो की विजय होगी, और सयुक्त राज्य अमेरिका की शक्ति क्षीण हो जायगी। इसी आशा से उसने मैक्सिको में अपनी सेनाएँ भेजी थी। हम पहले वता चुके है, कि नैपोलियन को अपने प्रयत्न मे सफलता नही हुई, और वह मैक्सिको को अपनी अधीनता मे लाने में असमर्थ रहा। उन्नीसवी सदी के अन्त मे (१८९५ में) वेनेजुला की सीमा के प्रश्न पर ब्रिटेन और अमेरिका में वहुत विवाद उठ खडा हुआ। पर अमेरिका ने मुनरो सिद्धान्त की दुहाई देकर ब्रिटेन को इस वात के लिये

विवश किया, कि इस झगड़े का निबटारा पंच-निर्णय द्वारा किया जाय। इस अवसर पर संयुक्तराज्य अमेरिका के सेक्रेटरी आफ स्टेट श्री ओल्नेने स्पष्ट रूप में घोषणा की थी, कि "इस अमेरिकन महाद्वीप पर आज संयुक्तराज्य अमेरिका की प्रभुता प्रायः निर्विवाद है।" अमेरिका अपनी इस नीति में सदा सफल रहा, और स्पेन के साम्राज्य के पतन के बाद कोई यूरोपियन राज्य अमेरिकन महाद्वीप में हस्तक्षेप नहीं कर सका।

मनरो सिद्धान्त के कारण जिस प्रकार यूरोपियन राज्यों ने अमेरिकन महाद्वीप के मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया, वैसे ही संयुक्तराज्य अमेरिका भी यूरोप की राजनीति से अपने को पृथक् रखता रहा। मानवता के नाम पर उसने कतिपय अवसरों पर यूरोप के राज्यों को अपने विचारों से अवश्य अवगत किया और उनकी कतिपय नीतियों का प्रतिवाद भी किया, पर यूरोप के झगड़ों से वह प्रायः अलग ही रहता रहा। पृथक् रहने की नीति का सबसे पहले उल्लंघन १९१४-१८ के महायुद्ध में हुआ, जब कि संयुक्तराज्य अमेरिका ने जर्मनी के विरुद्ध मित्रराष्ट्रों के पक्ष में शामिल होना स्वीकार किया। इस महायुद्ध के बाद अमेरिका अपने को यूरोप की राजनीति से पृथक् नहीं रख सका है। नई वैज्ञानिक उन्नति के कारण मनुष्य ने देश और काल पर ऐसी असाधारण विजय प्राप्त कर ली है, और संसार के विविध देश एक दूसरे के इतने समीप आ गये हैं, कि अब अमेरिका के लिये यह सम्भव नहीं रहा है, कि वह अपने को यूरोप व एशिया की राजनीति से पूर्णतया पृथक् रख सके।

चौबीसवाँ अध्याय

साम्यवाद की नई लहर

१ सामाजिक सगठन सम्बन्धी नये विचार

सन् १७५० से १८५० तक, एक शताब्दी के काल में यूरोप मे विज्ञान, शिल्प और व्यवसाय के क्षेत्र में जो भारी प्रगति हुई थी, उसका सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह था, कि मध्यकाल के जागीरदारो की अपेक्षा पूजीपतियो का महत्त्व अधिक बढ गया था । इनके पास धन, वैभव और शक्ति—सब कुछ थे । इनके अतिरिक्त डाक्टर, वकील, इन्जीनियर, व्यापारी, प्रोफेसर, सम्पादक, दूकानदार आदि के रूप मे जो एक शिक्षित मध्यश्रेणि विकसित हो गई थी, वह धन मे पूजीपतियो की अपेक्षा हीन होती हुई भी बुद्धि और ज्ञान में उनकी अपेक्षा किसी प्रकार भी कम न थी । शिक्षा और ज्ञान के विस्तार के साथ इस श्रेणी ने यह विचार करना प्रारम्भ कर दिया था, कि क्या समाज मे पूजीपतियो का प्रभुत्व और मजदूरो की गरीबी व असहायपन उचित और न्याय्य है । साथ ही, मजदूर श्रेणी के लोग भी शहरो मे निवास करने के कारण अब शिक्षा से सर्वथा वचित नही रहे थे । धीरे-धीरे वे अपने अधिकारो व दुर्दशा का अनुभव करने लगे थे, और यह सोचने लगे थे, कि क्या समाज का वर्तमान सगठन न्याय और औचित्य पर आश्रित है ।

फ्रास की राज्यक्रान्ति के बाद यूरोप मे राष्ट्रीयता की भावना के साथ-साथ लोकतन्त्र-वाद की लहर भी जोर पकड रही थी । राज्य में किसी एक व्यक्ति या श्रेणी का प्रभुत्व न होकर साधारण जनता का शासन होना चाहिये, यह विचार प्राय सबको स्वीकार्य था । पर सर्वसाधारण जनता की समस्या केवल वोट का अधिकार मिल जाने मे ही हल नही हो जाती । राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतन्त्रता भी होनी चाहिये, और यदि राजनीतिक दृष्टि से सब नागरिक समान है, तो आर्थिक दृष्टि से भी उनकी विषमता नष्ट होनी चाहिये, ये विचार धीरे-धीरे सिर उठाने लगे थे । स्वेच्छाचार और एकतन्त्र शासन के विरुद्ध जो लहर फ्रास में शुरू हुई थी, वह केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नही रह सकती थी । यह स्वाभाविक था, कि पूजीपतियो के एकाधिपत्य के विरुद्ध भी आवाज बुलन्द हो, और लोग एक नये सामाजिक सगठन का स्वप्न देखने लगें । वस्तुत , फ्रास की राज्यक्रान्ति एक लहर के समान थी, जो सब विघ्न बाधाओ का मुकाबला करते हुए निरन्तर आगे बढती जाती है । उसने जिन प्रवृत्तियो को जन्म दिया था, वे केवल राज-नीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नही रह सकती थी । यदि स्वाधीनता, समानता और भ्रातृभाव के सिद्धान्त राजनीतिक क्षेत्र में सही है, तो आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रो मे भी उनका प्रयोग होना ही चाहिये। यही कारण है, कि अठारहवी सदी के अन्त में

साम्यवादी विचारों को और अधिक बल मिला। १८४८ की क्रान्ति के समय विचारकों ने आर्थिक क्षेत्र में भी क्रान्ति का उद्योग किया था। १७८९, १८३० और १८४८ की क्रान्तियों के अवसर पर भी नोयल बावेफ आदि कतिपय क्रान्तिकारियों ने इस बात का प्रबल रूप से प्रयत्न किया था, कि साम्यवादी रिपब्लिक की स्थापना की जाय।

२ साम्यवाद का प्रारम्भ

नोयल बावेफ—साम्यवाद का प्रारम्भ अठारहवीं सदी में ही हो चुका था। १७९८ में नोयल बावेफ नामक एक लेखक ने लिखा था—"जब मैं देखता हूँ, कि गरीबों के तन पर न कपड़े है, और न पैरों मे जूते, गरीब लोग ही कपड़े और जूते बनाते हैं, पर उन्हे ही य इस्तेमाल के लिये नहीं मिलते, और जब मै उन लोगो का खयाल करता हूँ, जो स्वय कुछ भी काम नही करते, पर उनके पास किसी भी चीज की कमी नही, तो मेरा यह विश्वास दृढ हो जाता है, कि राज्य अब भी जनसाधारण के विरुद्ध कुछ लोगो का षड्यन्त्र मात्र है।" नोयल बावेफ ने ये उद्गार तब प्रकट किये थे, जब बूर्बो राजवश के एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन का फ्रास मे अन्त हो चुका था, और राष्ट्रीय लोकतन्त्र शासन की स्थापना हो गई थी। नोयल बावेफ का खयाल था, कि सम्पूर्ण सम्पत्ति राष्ट्र की हो जानी चाहिये, और समाज से विषमता और गरीबी का अन्त होना चाहिये। इस दशा को लाने का उपाय यह है, कि जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो, तो उसकी सब सम्पत्ति पर राष्ट्र का स्वामित्व स्थापित कर लिया जाय। नोयल बावेफ ने अपने समाचार-पत्र द्वारा इन विचारो का खूब प्रचार किया। उसके विचार दूर-दूर तक फैल गये। अपने साम्यवादी विचारो को क्रिया में परिणत करने के लिये नोयल बावेफ ने षड्यन्त्र का भी आश्रय लिया। उसने एक गुप्त समिति सगठित की, जिसका नाम "समान लोगो की साजिश" था। जैकोबिन दल के अनेक सदस्य इसमें सम्मिलित थे। यह साम्यवादी व्यवस्था को स्थापित करने के लिये सब तैयारी कर चुकी थी, कि पुलीस को इसके षड्यन्त्र का पता चल गया। इसके प्रमुख नेता पकड लिये गये, और १७९६ मे नोयल बावेफ भी गिरफ्तार कर लिया गया। अगले साल अपने अनेक साथियो के साथ उसे मृत्युदण्ड मिला। फ्रास की लोकतन्त्र सरकार उसके विचारो को शान्ति और व्यवस्था के लिये खतरनाक समझती थी। निःसन्देह, नोयल बावेफ फ्रेंच साम्यवाद का पिता था।

सा सिमो—नोयल बावेफ को मौत के घाट उतार दिया गया, पर उसकी मृत्यु के साथ उसके विचारो की समाप्ति नही हो गई। धीरे-धीरे इङ्गलैण्ड और फ्रास के विविध विचारको ने उसी की विचारसरणी का अनुसरण कर लेख व ग्रन्थ लिखने शुरू किये, और साम्यवाद के विचार निरन्तर जोर पकडते गये। इस युग के अन्य साम्यवादी विचारको में हेनरी सा सिमो (१७६०-१८२५) बहुत प्रसिद्ध है। उसका विचार था, कि भूमि और पूंजी पर व्यक्तियो का स्वामित्व न होकर उन्हे राष्ट्र की सम्पत्ति होना चाहिये। विरासत की प्रथा को उठाकर सब सम्पत्ति पर राष्ट्र का स्वामित्व स्थापित किया जा सकता है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी शक्ति व क्षमता के अनुसार काम करना चाहिये, और उसे अपनी आवश्यकता के अनुसार वेतन मिलना चाहिये, यह उसका मन्तव्य था। अपने विचारो

का प्रचार करने के लिये उसने अनेक ग्रन्थो की रचना की, जिनमे 'नई क्रिश्चिएनिटी' सबसे प्रसिद्ध है। सा सिमो स्वय एक समृद्ध व्यक्ति था, पर अपने विचारो को क्रिया मे परिणत करने के उद्देश्य से उसने जो अनेक परीक्षण किये, उनमें उसकी सब सम्पत्ति नष्ट हो गई। चालीस वर्ष की आयु मे उसे पचास रुपये मासिक वेतन पर नौकरी करने के लिये विवश होना पडा। वस्तुत, सा सिमो एक विचारक मात्र था। उसमे यह क्षमता नही थी, कि अपने विचारो को क्रिया मे परिणत करने के लिये एक नये आन्दोलन को जन्म दे सके। पर इसमे सन्देह नही, कि उसके विचारो ने फ्रास मे साम्यवाद के प्रादुर्भाव मे बहुत सहायता पहुँचाई।

फूरियर—फूरियर (१७७२-१८३७) नाम के एक अन्य फ्रेंच विचारक ने साम्यवाद को क्रियात्मक रूप देने के लिये एक योजना भी प्रस्तुत की थी। उसका खयाल था, कि ऐसे छोटे-छोटे समाज बनाने चाहिये, जिनमे से प्रत्येक मे १८०० के लगभग सदस्य हो। ये सब सदस्य मिलकर आर्थिक उत्पत्ति करे। सब एक साथ स्वतन्त्र, सुखी और शान्तिमय जीवन व्यतीत करे। सब को अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार एक निश्चित राशि प्रतिमास दी जाय। यह राशि देने के बाद जो कुछ बचे, उसे इस अनुपात से पूजी, श्रम और विशेष योग्यता-सम्पन्न व्यक्तियो मे बाट दिया जाय, कि जिनकी पूजी लगी है, उन्हें शेष बचत का $\frac{1}{3}$ भाग, श्रमियो को $\frac{5}{12}$ भाग और विशेष योग्यता प्रदर्शित करनेवाले व्यक्तियो को $\frac{1}{4}$ भाग मिल जाय। फूरियर की योजना को लोगो ने बहुत पसन्द किया। वर्साय के समीप इस प्रकार के समाज की स्थापना भी १८३२ मे कर दी गई, पर उसे सफलता नही मिली। बाद मे फ्रास और अमेरिका मे अन्य भी अनेक समाज उसकी योजना के अनुसार स्थापित किये गये। पर वे भी ज्यादा समय तक कायम नही रह सके।

राबर्ट ओवन—इङ्गलैण्ड में साम्यवाद का प्रारम्भ राबर्ट ओवन (१७७१-१८५९) द्वारा हुआ था। वह स्वय एक धनिक व्यक्ति था, और स्काटलैण्ड में अनेक कपडो की मिलो में हिस्सेदार था। उसने अपनी मिलो में मजदूरो के साथ न्याय करने का प्रयत्न किया। उन्हे मुनासिब दर से मजदूरी दी गई, उनके निवास के लिये साफ सुथरे घर बनाये गये, उनके बच्चो के लिये पाठशालाये खोली गई, और कारखानो में काम करने की हालत भी मजदूरो के अनुकूल सुखद बनायी गई। राबर्ट ओवन ने यह व्यवस्था की, कि उसकी मिलो में पूजी पर पाच फी सदी से अधिक मुनाफा न लिया जाय। इतना मुनाफा देने के बाद जो रकम बचे, उस सब को मजदूरो की दशा सुधारने में खर्च कर दिया जाय। इसके कारण न्यू लनर्क, जहा राबर्ट ओवन की मिले विद्यमान थी, एक आदर्श नगर बन गया। कहते हैं कि तीन साल तक इस नगर में कोई वारदात नही हुई। शराबखोरी की आदत लोगो से दूर हो गई, और मजदूरो की दशा अत्यन्त सन्तोषजनक हो गई। इसमे सन्देह नही, कि राबर्ट ओवन एक क्रियात्मक सुधारक था। उसने व्यावसायिक क्रान्ति के कारण उत्पन्न हुई समस्याओ को दूर करने का सफल प्रयत्न किया, और इस कारण उसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई। उसने अपना तन, मन, धन मजदूरो की दशा को सुधारने मे लगाकर एक आदर्श समाज का निर्माण करने का उद्योग किया। उसका विचार था, कि न्यू लनर्क मे जिस प्रकार से एक आदर्श समाज का निर्माण हुआ है, वैसा ही अन्यत्र भी सब जगह हो,

और फिर विश्व भर के इस प्रकार के समाजों का एक संघ बना दिया जाय। इसी उद्देश्य से वह १८२५ में अमेरिका गया और इण्डियाना में न्यू हारमनी नामक प्रदेश में अपने विचारों के अनुसार एक नव समाज की स्थापना की। पर इसमें उसे सफलता नहीं हुई। आखिर, १८२८ में वह लण्डन वापस लौट आया, और शेष जीवन को वहां रहकर अपने विचारों के प्रचार में व्यतीत किया।

उसी समय यूरोप में कतिपय ऐसे विचारक उत्पन्न हुए, जो क्रिश्चियन सोशलिस्ट कहलाते हैं। इङ्गलैण्ड में इनका नेता चार्ल्स किंगस्ले था। किंगस्ले एक प्रसिद्ध साहित्यिक हुआ है, जिसने अपने उपन्यासों में उन बुराइयों का सजीव रूप से चित्रण किया है, जो व्यावसायिक जीवन में गलाकाट प्रतिस्पर्धा द्वारा उत्पन्न होती हैं। किंगस्ले का कथन था, कि यदि ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार समाज का निर्माण किया जाय, तो उसका स्वरूप साम्यवाद के अनुरूप ही होगा।

मजदूरों की दशा में सुधार का प्रयत्न—फ्रांस और इङ्गलैण्ड के ये साम्यवादी एक आदर्श समाज की कल्पना कर उसे जनता के सम्मुख उपस्थित कर रहे थे। शिक्षित मध्य-श्रेणी के विचारों पर इस कल्पना का बहुत असर हुआ। ये साम्यवादी विचारक कहते थे, कि आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप न करने की नीति ठीक नहीं है। इनके कारण पूंजीपतियों को मजदूर वर्ग के शोषण का अवसर मिलता है, क्योंकि गरीब मजदूर शक्तिशाली धनिकों का मुकाबला नहीं कर सकते। राज्य का यह कर्तव्य है, कि ऐसे कानून बनाये जायँ, जिनसे मजदूरों की दशा सुधरे और उन्हें निश्चित घण्टों से अधिक काम करने के लिये विवश न न किया जा सके। उनके निवास की उचित व्यवस्था हो, उनके बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध हो, और कारखानों की दशा मजदूरों के स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचानेवाली न हो। फूरियर और राबर्ट ओवन ने जिस प्रकार के समाज की कल्पना की, उसमें मजदूरों की दशा को सुधारने के लिये विशेष ध्यान दिया गया था। यह बात उस समय की शिक्षित मध्य श्रेणी को भी उचित जान पड़ी। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक (१८३० और उसके बाद) इङ्गलैण्ड और फ्रांस—दोनों देशों में राजनीतिक शक्ति मध्य-श्रेणी के हाथ में आ गई थी। १८३२ के सुधार कानून के अनुसार इङ्गलैण्ड में मध्यश्रेणी को वोट का अधिकार पूर्णरूप से प्राप्त हो गया था, और पार्लियामेन्ट में इस श्रेणी का प्रतिनिधित्व भी पर्याप्त संख्या में हो गया था। यही दशा फ्रांस में थी। इस मध्य श्रेणी को यह भलीभांति समझ में आता था, कि मजदूरों की दशा को सुधारने के लिये राज्य की ओर से कानून बनने चाहियें, और आर्थिक क्षेत्र में राज्य को हस्तक्षेप करना चाहिये। पर इस समय मजदूर श्रेणी में और भी अधिक उग्र विचार प्रचारित होने लग गये थे, और गरीब सर्वसाधारण जनता साम्यवाद के एक नये स्वरूप का स्वप्न देखने लगी थी।

लुई ब्लां—इस नई विचारधारा का प्रवर्तक लुई ब्लां (१८११-१८८२) था। इस फ्रेंच साम्यवादी का कहना था, कि राजनीतिक शक्ति मध्य-श्रेणी के हाथ से निकलकर सर्वसाधारण जनता के हाथों में आनी चाहिये, और वोट का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को मिलना चाहिये। राजनीतिक सुधारों का उद्देश्य केवल यह है, कि सामाजिक संगठन में परिवर्तन होना सम्भव हो सके। राजनीतिक शक्ति प्राप्त करके मजदूरों को चाहिये,

कि वे सरकार, न्यायालय, सेना और अन्य सरकारी विभागो पर अपना कब्जा कर ले, और इस प्रकार प्राप्त हुई शक्ति का उपयोग व्यवसाय और समाज के क्षेत्रो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने मे करे। इन परिवर्तनो का स्वरूप यह होना चाहिये, कि कारखानो पर व्यक्तियो का स्वामित्त्व समाप्त होकर राष्ट्र का स्वामित्त्व स्थापित हो जाय। शुरू मे राज्य के पास इतनी पूजी नही होगी, कि वह सारे व्यवसायो का स्वय मालिक हो सके। अत नागरिको को यह प्रेरणा करनी होगी, कि वे व्यवसायो मे पूजी लगावे। इसके लिये उन्हे सूद उचित दर से देना होगा। पर व्यवसायो का सचालन राज्य करेगा। ज्यो-ज्यो धीरे-धीरे कमाई से राज्य के पास काफी धन एकत्र हो जायगा, व्यक्तियो की पूजी की आवश्यकता नही रहेगी। उस दशा में राज्य व्यवसायो व कारखानो का पूर्णतया स्वामी हो जायगा, और मजदूर लोग स्वय व्यवसाय का सचालन करने लगेगे। कारखानो के विविध पदाधिकारियो का चुनाव भी मजदूर करेगे, और सच्चे अर्थो मे आर्थिक लोकतन्त्र शासन स्थापित हो सकेगा। शुरू–शुरू मे प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता व कार्यक्षमता के अनुसार मजदूरी मिलेगी, पर ज्यो-ज्यो शिक्षा बढेगी, और सब मजदूर अपनी उत्तरदायिता भलीभाति समझने लगेगे, मजदूरी की दर भी सबके लिये एक समान हो जायगी।

लुई ब्लां के विचारो का मजदूर समाज पर बहुत असर हुआ। उन्होने अनुभव किया, कि उनका उद्धार इन्ही विचारो से हो सकता है। हजारो की सख्या मे मजदूर लोग लुई ब्लां के अनुयायी हो गये, और वोट के अधिकार के लिये आन्दोलन करने लगे। उन्होने यह भी कहना शुरू कर दिया, कि वैयक्तिक सम्पत्ति चोर पाप है, और कारखानो पर राज्य का अपना प्रभुत्त्व होना चाहिये। १८४८ मे फ्रास मे फिर राज्यक्रान्ति हुई, जिसके कारण सब बालिग पुरुषो को वोट का अधिकार प्राप्त हो गया। सर्वसाधारण मजदूर जनता को वोट का अधिकार मिल जाने से सरकार पर उनका प्रभाव बहुत बढ गया, और नई सरकार ने स्पष्ट रूप से घोषणा की, कि मजदूरो की दशा मे सुधार व उन्नति करना उसका प्रमुख लक्ष्य है। लुई ब्लां को इस नयी सामयिक सरकार का सदस्य नियत किया गया, और योजना बनाई गई कि सरकारी रुपये से नये व्यवसाय जारी किये जावे, जिनमे कि बेकार मजदूरो को रोजी दी जा सके। पर अभी तक भी सरकार मे शिक्षित मध्य-श्रेणी का जोर था। मजदूरो को वोट का अधिकार मिल गया था, उनके कुछ प्रतिनिधि भी सरकार में आ गये थे, पर वास्तविक शक्ति अभी मध्य-श्रेणी के हाथो मे ही थी, और इस श्रेणी को यह क्रान्तिकारी परिवर्तन समझ मे नही आता था, कि राज्य की ओर से नये कारखाने केवल मजदूरो की भलाई की दृष्टि से स्थापित किये जाएं। इन लोगो ने लुई ब्लां की योजना को क्रियात्मक रूप मे परिणत नही होने दिया। परिणाम यह हुआ, कि मजदूरो मे असन्तोष बढ़ता गया, और आखिर पेरिस के निराश मजदूरो ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह को निर्दयता के साथ कुचल दिया गया। लुई ब्लां को आत्मरक्षा के लिये लण्डन भागना पडा। सर्वसाधारण जनता मे साम्यवाद की जो क्रान्तिकारी लहर शुरू हुई थी, उसका इस प्रकार से अन्त हुआ।

३. कार्ल मार्क्स

जर्मनी में साम्यवादी आन्दोलन—सन् १८५० तक इङ्गलैण्ड और फ्रांस में साम्यवाद का आन्दोलन बिल्कुल शिथिल पड़ गया था। पर शीघ्र ही जर्मनी में इसका पुनरुद्धार हुआ। जर्मनी में साम्यवादी आन्दोलन का प्रधान नेता कार्ल मार्क्स (१८१८-१८८३) था। इसे साम्यवाद का प्रधान व प्रमुख आचार्य माना जाता है। पर इससे पूर्व भी जर्मनी में साम्यवाद का बीजारोपण हो चुका था। १८३० की क्रान्ति की लहर के बाद व्यूस्नर ने एक गुप्त समिति की स्थापना की थी, जिसका नाम था—'मनुष्य के अधिकार'। इस समिति को यह विश्वास था, कि राजनीतिक क्रान्ति के साथ-साथ सामाजिक क्रान्ति होना भी आवश्यक है। इसकी ओर से एक घोषणापत्र प्रकाशित हुआ था, जिसका प्रथम वाक्य यह था—'झोपड़ियों में सुख शान्ति कायम हो और राजप्रासादों का विनाश हो'। १८३६ में पेरिस में काम करनेवाले जर्मन मजदूरों ने एक संस्था कायम की, जिसका नाम 'न्याय-संघ' था। इस संघ में सामाजिक व आर्थिक समस्याओं पर वाद-विवाद हुआ करता था, और सदस्य लोग यह सोचा करते थे, कि समाज का संगठन किस प्रकार परिवर्तित किया जाय, जिससे कि वह न्याय और औचित्य के अनुकूल बन सके। कार्ल मार्क्स और एन्जल्स इस संघ के प्रमुख सदस्यों में से थे। मजदूरों के अतिरिक्त पेरिस में शिक्षा पानेवाले जर्मन विद्यार्थी व अन्य शिक्षित लोग भी इस संघ के सदस्य बन गये थे। धीरे-धीरे यह संघ बहुत जोर पकड़ता गया। जर्मनी, ब्रिटेन, बेल्जियम और स्विट्जरलैण्ड में भी इसकी शाखाएँ कायम हुईं।

लास्सेल—पेरिस में रहते हुए जो जर्मन लोग साम्यवाद की लहर के प्रभाव में आये उनमें फर्डिनेन्ड लास्सेल (१८२५-१८६४) का नाम उल्लेखनीय है। लास्सेल जाति से यहूदी था, और स्वयं एक शिक्षित व समृद्ध व्यापारी था। पर लुई ब्लां के सम्पर्क में आकर वह साम्यवाद का अनुयायी हो गया था। १८४८ में जब क्रान्ति की लहर फिर शुरू हुई, तो लास्सेल ने मार्क्स और एन्जल्स के साथ मिलकर जर्मनी के व्यावसायिक केन्द्र र्‌हाइन नदी की घाटी में विद्रोह फैलाने का प्रयत्न किया। उसे गिरफ्तार कर लिया गया और छः मास की जेल हुई। साम्यवादी विद्रोह का यह प्रयत्न तो असफल हो गया, पर लास्सेल ने अपने शेष जीवन को साम्यवादी विचारों के प्रसार में लगा दिया। लास्सेल का कहना था, कि राज्य का काम केवल पुलीस का ही नहीं है। बाह्य और आभ्यन्तर शत्रुओं से देश की रक्षा करना राज्य का प्रथम कर्त्तव्य अवश्य है, पर उसके कर्त्तव्यों की इतिश्री यहीं पर नहीं हो जाती। राज्य का यह भी प्रधान कार्य है, कि अपने नागरिकों का अधिकतम कल्याण व हित सम्पादित करे। इसके लिये उसे समाज, कारखानों व सम्पूर्ण आर्थिक जीवन पर नियन्त्रण स्थापित करना होगा।

कार्ल मार्क्स का साम्यवादी घोषणा पत्र—कार्ल मार्क्स भी पेरिस में ही साम्यवादी आन्दोलन के प्रभाव में आया था। १८४८ के अन्तिम वर्ष में उसने एन्जल्स के साथ मिलकर एक साम्यवादी घोषणापत्र प्रकाशित किया, जिसमें मुख्यतया निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था—

(१) मानव-समाज अनेक श्रेणियो मे विभक्त है। इन श्रेणियो मे निरन्तर सघर्ष चलता रहता है। एक श्रेणी पहले सम्पत्ति कमाकर समृद्ध हो जाती है, और फिर राजनीतिक शक्ति भी अपने हाथ मे कर लेती है। पहले शक्ति जागीरदार सामन्तो के हाथ मे थी। व्यावसायिक क्रान्ति के कारण समाज में पूंजीपतियो का प्रभुत्व हो गया। राजनीतिक शक्ति भी इन पूंजीपति व्यवसायियो के हाथ मे आ गई। नगरो के विकास व समृद्धि के साथ-साथ शिक्षित मध्य श्रेणी का महत्त्व बढने लगा, और उन्होने आन्दोलन द्वारा राजनीतिक शक्ति को प्राप्त कर लिया। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी, जब तक कि मजदूर श्रेणी शिक्षित मध्य-श्रेणी के स्थान पर स्वय सब शक्ति प्राप्त नही कर लेगी। ठीक जिस प्रकार १७८९ मे पूंजीपति और मध्यश्रेणियो ने जागीरदार सामन्तो की सम्पत्ति व शक्ति को नष्ट किया, उसी प्रकार अब मजदूर श्रेणी के लोग मध्यश्रेणी की वैयक्तिक सम्पत्ति को नष्ट कर सारी सत्ता अपने हाथ मे कर लेगे।

(२) सच्चा साम्यवादी समाज तब बनेगा, जब कि विरासत की प्रथा नष्ट हो जायगी, पिता की मृत्यु के बाद उसका पुत्र पिता की सम्पत्ति को उत्तराधिकार मे नही प्राप्त कर सकेगा। सम्पूर्ण भूमि, कल-कारखाने, माल ढुलाई और यातायात के साधन, व आर्थिक उत्पत्ति के अन्य सब साधन राज्य की सम्पत्ति बन जायेगे और सम्पत्ति व्यक्तियो के स्वामित्व मे रहेगी ही नही। सब मनुष्यो को बाधित होकर श्रम करना होगा। श्रम किये बिना कोई मनुष्य आमदनी नही प्राप्त कर सकेगा। सबको बाधित रूप से व मुफ्त शिक्षा दी जायगी, ताकि सब को योग्यता प्राप्त करने का समान अवसर मिले। फिर अपनी-अपनी योग्यता व सामर्थ्य के अनुसार सबको श्रम करना होगा। कारखाने व खेत सब राज्य की सम्पत्ति होगे।

(३) इस नये साम्यवादी राज्य मे सब मजदूरो को, चाहे वे मानसिक व बौद्धिक श्रम करने वाले हो, और चाहे शारीरिक श्रम करनेवाले, अपने श्रम की पूरी-पूरी कीमत दी जायगी। क्योकि सब लोगो को योग्यता व शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर होगा, [illegible] सबको श्रम भी अपने सामर्थ्य के अनुरूप करना होगा। किसी को शिकायत का मौका नही होगा, और इसलिये समाज में श्रेणियो व वर्गो के सघर्ष का स्वय अन्त हो जायगा। समाज मे केवल एक ही श्रेणी रह जायगी—यह होगी मजदूर श्रेणी। यह होना परमावश्यक है, क्योकि मानव-समाज की उन्नति इसी प्रक्रिया मे हो रही है। यदि शान्तिपूर्वक यह परिवर्तन हो गया, तो अच्छा है। अन्यथा, शक्ति का उपयोग करके यह परिवर्तन लाना होगा। यह हुए बिना नही रह सकता, क्योकि इतिहास की सब घटनाएँ इसी की ओर निर्देश कर रही है।

(४) इस महत्त्वपूर्ण क्रान्ति के लिये विश्व भर के मजदूरो को आपस में मिलकर [illegible] जाना चाहिये। मजदूर श्रेणी के हितो को अन्य सब बातो के ऊपर रखना चाहिये। [illegible] मातृभूमि के हित की अपेक्षा भी मजदूर श्रेणी के हितो को अधिक महत्त्व देना इस [illegible] क्रान्ति के लिये आवश्यक है। इस समाजवादी क्रान्ति मे शासक श्रेणियां काप [illegible] साधारण जनता के पास खोने के लिये है ही क्या, सिवाय अपनी गुलामी की जजीरो [illegible] उन्हे तो सब कुछ प्राप्त ही होना है। सब देशो के किसानो और मजदूरो, आपस मे

मिलकर एक हो जाओ।

इस घोषणा-पत्र को प्रकाशित कर कार्ल मार्क्स अपने साथियों के साथ जर्मनी वापस लौट गया। उन दिनों क्रान्ति की लहर फ्रांस में शुरू होकर सारे यूरोप को व्याप्त कर रही थी। जर्मनी भी उसके असर से नहीं बचा था। मार्क्स की स्वाभाविक इच्छा थी कि इस क्रान्तिकारी काल में अपने देश में काम करे पर जर्मनी में क्रान्ति को विशेष सफलता नहीं मिली। मार्क्स पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया, और उसे देश-निकाला दिया गया। अब वह लण्डन आकर बस गया। वहाँ पर उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पूँजी' (कैपिटल) लिखकर पूर्ण की। यह पुस्तक साम्यवादियों की 'बाइबल' कही जाती है। साम्यवादी आन्दोलन के इतिहास में कार्ल मार्क्स द्वारा प्रकाशित उद्घोषणापत्र का बहुत ऊँचा स्थान है। यह माना जाता है, कि उसमें साम्यवाद का प्रामाणिक रूप से प्रतिपादन किया गया है। संसार की शायद ही कोई ऐसी भाषा हो, जिसमें इस उद्घोषणापत्र का अनुवाद न हुआ हो। इस उद्घोषणापत्र को अब तक भी साम्यवाद की आधारशिला के रूप में स्वीकार किया जाता है।

राबर्ट आवेन और लुई ब्लां जैसे पुराने साम्यवादियों से कार्ल मार्क्स का मत बहुत भिन्न है। मार्क्स के मतानुसार शक्ति सर्वसाधारण किसान मजदूर जनता के हाथ में आनी चाहिये। समाज में इस आधारभूत क्रान्ति को लाये बिना यदि व्यवसाय राज्य के अधीन हो जाए, तो उसका परिणाम यही होगा, कि वास्तविक शक्ति शिक्षित मध्य-श्रेणी के हाथ में बनी रहेगी, और सर्वसाधारण मजदूर जनता उनके द्वारा शासित होती रहेगी। आवश्यकता इस बात की है, कि किसान मजदूर जनता एक श्रेणी के रूप में संगठित हो जाय और फिर सारी शक्ति को मध्य-श्रेणी के हाथ से छीन कर अपने हाथ में कर ले। जब राज्यशक्ति जनता के हाथ में आ जायगी, भूमि व पूंजी पर व्यक्तियों का स्वामित्व न रहेगा, और सब लोग श्रमी की हैसियत से काम करने लगेंगे, तो स्वयं एक ऐसे वर्ग-विहीन समाज का निर्माण हो जायगा, जिसमें कोई किसी का शोषण नहीं कर सकेगा।

कार्ल मार्क्स की विचारधारा—साम्यवादी उद्घोषणा में कार्ल मार्क्स ने जिन विचारों का प्रतिपादन किया था, जहां वे साम्यवाद की आधारशिला हैं, वहां साथ ही उसके विविध ग्रन्थों में प्रतिपादित विचार आधुनिक युग के साम्यवादी विचारकों के लिये सर्वमान्य भी हैं। अतः उसके अन्य विचारों का भी यहां उल्लेख करना उपयोगी है। दार्शनिक क्षेत्र में प्रसिद्ध जर्मन विचारक हीगल ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था, कार्ल मार्क्स ने आर्थिक वा सामाजिक क्षेत्र में उनका अनुसरण किया। उसका कथन था, कि क्रिया के बाद प्रतिक्रिया होती है, और फिर उसके कारण सतुलन स्थापित होता है। इस समय पूंजीवाद का युग है, यह आवश्यक है, कि इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हो। इस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप जब संतुलन होगा, तो साम्यवादी व समाजवादी (कम्युनिस्ट) समाज की स्थापना होगी। अतः पूंजीवाद का विनाश और समाजवाद की स्थापना एक अवश्यम्भावी प्रक्रिया है।

कार्ल मार्क्स ने उस सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया, जिसे 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या का सिद्धान्त' कहा जाता है। इसके अनुसार मानव-समाज की विविध संस्थाएँ

व व्यवहार आर्थिक परिस्थितियो के परिणाम है। जिन्हे हम सत्य व सनातन सस्थाएँ समझते है, जिन्हे हम मनुष्य की प्रकृति का अग मानकर स्थिर व शाश्वत रूप से स्वीकार करते है, वे सब मनुष्य की आर्थिक दशा के विकास के साथ-साथ विकसित हुई है। आर्थिक परिस्थिति मे परिवर्तन आने पर उनमे भी परिवर्तन आ जाना अवश्यम्भावी है। अपने मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए कार्ल मार्क्स ने विशद रूप से प्रतिपादित किया, कि किस प्रकार सामन्तपद्धति के समय के जागीरदारो की शक्ति व सत्ता का ह्रास व्यावसायिक क्रान्ति के कारण, हुआ किस प्रकार पूजीपति श्रेणी का विकास हुआ और किस प्रकार सब आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक शक्ति इस पूजीपति श्रेणी के हाथो में आ गई। मनुष्य जाति का इतिहास वस्तुत विभिन्न आर्थिक श्रेणियो के पारस्परिक सघर्ष का इतिहास है। पूजीवाद के विकास द्वारा एक ऐसी नई श्रेणी का प्रादुर्भाव हो गया है, जो कारखानो मे मशीन के पुर्जों के समान कार्य करती है, जिसकी सख्या निरन्तर बढ रही है, और नगरो मे निवास के कारण जो शिक्षा, ज्ञान और सस्कृति के क्षेत्र मे निरन्तर उन्नति कर रही है। विशाल कल कारखानो के विकास के कारण उन लोगो की सख्या निरन्तर कम हो रही है, जो कि व्यवसायपति है। धीरे-धीरे सब व्यवसाय कतिपय स्वल्पसख्यक व्यक्तियो के स्वामित्व मे आते-जाते है, और जब कारखानो में काम करने वाले मजदूरो मे अपनी श्रेणी की पृथक्ता की भावना भलीभाति विकसित हो जायगी, तब इस श्रेणी के लिये व्यावसायिक जीवन पर अपना प्रभुत्त्व स्थापित कर लेने मे कोई भी कठिनाई नही रहेगी। पूंजीपति और मजदूर श्रेणियो मे यह सघर्ष अवश्यम्भावी है, क्योकि यह ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया के अनुरूप है। यह भी निश्चित है, कि इस सघर्ष में मजदूर श्रेणी की विजय होगी, क्योकि यह बात भी ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया के अनुसार है। अत कार्ल मार्क्स का कहना था, कि इस सघर्ष मे "मजदूरो को कुछ भी खोना नहीं है, सिवाय उन जजीरो के जिनमे वे बधे हुए है। उनके सम्मुख विजय का विशाल क्षेत्र खुला पडा है। अत ससार भर के मजदूरो, परस्पर मिलकर एक हो जाओ।"

कार्ल मार्क्स ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, वह अब बहुत कुछ क्रिया मे परिणत हो चुका है। रूस, चीन, चेकोस्लोवाकिया आदि में इसी के अनुसार क्रान्तिया हुई है। हिटलर और मुसोलिनी ने पूंजीपतियो और मजदूरो के हितो मे समन्वय व सामजस्य स्थापित करने का जो प्रयत्न किया, वह सफल नही हो सका।

कार्ल मार्क्स ने अपने इन विचारो को प्रसारित करने के लिये १८६४ मे 'मजदूरो के अन्तर्राष्ट्रीय सघ' की स्थापना की। शीघ्र ही इसकी शाखाएँ यूरोप मे सर्वत्र कायम हो गई। सन् १८६६ में जिनोवा मे इस सघ का प्रथम महासम्मेलन हुआ। फिर प्रतिवर्ष इसी प्रकार के वार्षिक सम्मेलन होने लगे। इनमे न केवल साम्यवादी सिद्धान्तो पर वाद-विवाद होते थे, पर उनका प्रचार करने के लिये क्रियात्मक उपायो पर भी विचार किया जाता था। फ्रास की राज्यक्रान्ति के समय साम्यवाद के जिस सिद्धान्त का बीजारोपण मात्र हुआ था, उन्नीसवी सदी के मध्यभाग मे वह यूरोप भर मे एक प्रबल शक्ति बनता जा रहा था।

मजदूरो की दशा में सुधार—समाज के नये सगठन की कल्पनाओ के कारण यूरोप

की शिक्षित जनता इस बात की आवश्यकता को स्वीकार करने लगी थी, कि गरीब मजदूर श्रेणी की अवस्था मे सुधार करने का प्रयत्न होना चाहिये। इसीलिए उन्नीसवी सदी मे इङ्गलैण्ड, फ्रास आदि देशो मे बहुत से ऐसे कानून पास हुए, जिनका उद्देश्य काम करनेवाले मजदूरो की दशा मे सुधार करना था। इन सुधारो की पीठ पर जो प्रेरक शक्ति थी, वह साम्यवादियो द्वारा प्रचारित वे विचारधाराएँ ही थी, जो सामाजिक विषमता और उससे उत्पन्न अन्याय को बडे विशद रूप मे जनता के सम्मुख रख रही थी।

नई प्रवृत्तियाँ--उन्नीसवी सदी के यूरोप मे जो शक्तिया मानव-समाज के सगठन और स्वरूप को परिवर्तित करने के लिये काम कर रही थी, उनका यहा एक बार फिर निर्देश कर देना उपयोगी है। (१) व्यावसायिक क्रान्ति--इसके द्वारा मनुष्य के आर्थिक जीवन मे भारी परिवर्तन आ रहा था। (२) राजनीतिक क्रान्ति--इसके द्वारा राष्ट्रीयता की भावना और लोकतन्त्र शासन की स्थापना की माग निरन्तर प्रबल हो रही थी। (३) नई विचार धाराए--शिक्षा और ज्ञान के प्रसार के कारण शिक्षित विचारको ने यह सोचना प्रारम्भ कर दिया था कि विषमता और अन्याय का अन्त कर किस प्रकार एक सुखी समाज की रचना की जाय। इस नये समाज की रचना किस प्रकार हो, इस सम्बन्ध मे विचारको मे भारी मतभेद थे, पर वर्तमान समाज को परिवर्तित करने की आवश्यकता के सम्बन्ध में सब विचारक एकमत थे।

मध्यकाल की सामन्तपद्धति मे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्ति कतिपय कुलीन जागीरदारो के हाथो मे थी। व्यावसायिक क्रान्ति के कारण समाज मे पूंजीपतियो व व्यवसायी श्रेणियो का महत्व बढने लगा। राज्यक्रान्ति की जो लहर अठारहवी सदी के अन्त मे यूरोप मे शुरू हुई, उसने राज्यशक्ति को जागीरदारो से छीनकर इस मध्य-श्रेणी के हाथ मे दे दिया। पर राजाओ के एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन के अन्त और कुलीन जागीरदार श्रेणी के प्रभाव व शक्ति के ह्रास से सर्वसाधारण जनता की दशा मे विशेष परिवर्तन नही आया। यही कारण है कि उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध मे जब ब्रिटेन में राज्यशासन का सचालन पार्लियामेन्ट द्वारा हो रहा था, और मन्त्रिमण्डल जनता द्वारा निर्वाचित पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायी था, तब भी वहा के कारखानो मे बच्चे और स्त्रिया दिन मे बारह व सोलह घण्टे प्रतिदिन तक कार्य करने के लिये विवश थी। उन्हे वोट का अधिकार प्राप्त नही था, और देश के शासन मे उनकी कोई आवाज नही थी। बालिग पुरुषो की बहुसख्या भी वोट के अधिकार से वचित थी। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे इस दशा में बहुत सुधार हुआ। वोट के अधिकार को सर्वत्र विस्तृत किया गया। बीसवी सदी में स्त्रियो को भी प्राय सर्वत्र वोट का अधिकार दिया गया। पर सर्व-साधारण मजदूर व किसान जनता की दशा मे इससे भी विशेष उन्नति नही हुई। इसमे सन्देह नही कि, सर्वसाधारण जनता को वोट का अधिकार मिल जाने से अनेक देशो की राजनीति मे मजदूर दल जोर पकडने लगा, और कतिपय राज्यो मे राज्यशक्ति भी इस दल के हाथ मे आ गई। पर साम्यवादी इतने से ही सन्तुष्ट नही है। वे राजनीतिक क्षेत्र के समान आर्थिक क्षेत्र में भी स्वाधीनता और समानता के सिद्धान्तो को क्रिया मे परिणत करने के लिये प्रयत्नशील है।

पच्चीसवाँ अध्याय

पुराना और नया साम्राज्यवाद

१ यूरोप का मध्यकालीन साम्राज्यवाद

पन्द्रहवी सदी तक यूरोप के लोग अपने महाद्वीप से वाहर के देशो से सर्वथा अपरिचित थे। उस समय आवागमन के साधनो मे जरा भी उन्नति नही हुई थी। महासमुद्र के पार आना-जाना वहुत कठिन था। दिग्दर्शक यन्त्र के भी आविष्कृत न होने के कारण सामुद्रिक व्यापार समुद्र-तट के साथ-साथ ही होता था। इस दशा मे यह वात कल्पित भी नही की जा सकती थी, कि कोई यूरोपियन देश समुद्र पार कर एशिया व अफ्रीका के किसी देश को अपने अधीन करे, और इस प्रकार अपने साम्राज्य का विस्तार करे। अमेरिका तो उस समय तक ज्ञात भी न हुआ था। इस प्रकार मध्यकाल मे यूरोपियन राज्यो के साम्राज्यवाद का अभिप्राय इतना ही था, कि वे एक दूसरे पर आक्रमण करे और यूरोप के अधिक से अधिक प्रदेश पर अपना शासन स्थापित करे। मध्यकालीन यूरोप मे अनेक ऐसे राजा हुए है, जिन्होने कि यूरोप के वहुत वडे भू-भाग पर शासन किया। उस समय मे साम्राज्यवाद का अभिप्राय यही था।

व्यापार के पुराने मार्ग—परन्तु पन्द्रहवी सदी के अन्तिम भाग मे एक नई प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई। यूरोप और एशिया का पारस्परिक व्यापार वहुत समय से चला आता था। मलक्का, जावा और सुमात्रा से मसाले और भारतवर्ष से हीरे, मोती, कीमती लकड़िया, चन्दन, मलमल आदि विविध वहुमूल्य वस्तुएँ प्रभूत परिमाण मे यूरोपियन देशो में आती थी। इस व्यापार के दो मार्ग वहुत प्रसिद्ध थे। भारतवर्ष मे कालीकट से चलता हुआ व्यापारिक माल मक्का पहुँचता था, और वहा ऊँटो के काफिलो पर लाद-कर इसे नील नदी पर पहुँचाया जाता था। नील नदी से होता हुआ यह माल कैरो और अलेक्जण्ड्रिया पहुँचता था, और वहा से इसे फिर वेनिस के जहाजो मे लादकर भूमध्य-सागर के वन्दरगाहो मे लाया जाता था। दूसरा रास्ता पर्शिया की खाडी से होकर जाता था। भारतवर्ष से कालीकट, गोआ और दिउ होता हुआ यह माल ओर्मुज पहुँचता था। वहा से यह दजला और फरात नदियो के मुहानो पर स्थित प्रसिद्ध नगर वगदाद मे आता था। वगदाद मे यह माल ऊँटो के काफलो पर लदता था, और इस प्रकार एशिया माइनर के पश्चिमी वन्दरगाहो—एन्टियोक, वेरुत आदि मे पहुँचा दिया जाता था। वहा से फिर इटालियन व्यापारी इस माल को भू-मध्यसागर द्वारा यूरोप के विविध देशो मे पहुँचा देते थे। इन व्यापारी मार्गो पर दृष्टिपात करने से यह वात स्पष्ट हो जायगी, कि मिस्र और एशिया माइनर पर जिस राज्यशक्ति का आधिपत्य है, यह वात उस व्या-

पार की सुरक्षितता के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। १४५३ में प्रसिद्ध तुर्क आक्रान्ता मुहम्मद द्वितीय ने कोन्स्टेन्टिनोपल को जीत लिया, और सम्पूर्ण एशिया माइनर पर अपना शासन कायम कर लिया। तुर्कों की इस विजय से पूर्व और पश्चिम के व्यापारी मार्ग सुरक्षित नहीं रहे। इससे पूर्व इन प्रदेशों पर अरब लोगों का शासन था। अरब लोग सभ्यता की दृष्टि से बहुत उन्नत थे और स्वयं व्यापारी थे। वे व्यापार का महत्त्व अच्छी तरह समझते थे, और उसमें किसी भी प्रकार की बाधा नहीं डालते थे। परन्तु तुर्क लोग अभी जंगली थे। सभ्यता की दृष्टि से उन्होंने विशेष उन्नति नहीं की थी। अरबों के सभ्य साम्राज्य पर उनके आक्रमण वही स्थिति रखते थे, जो कि भारत में गुप्त साम्राज्य पर हूणों के।

नये मार्गों की खोज—इन असभ्य तुर्कों की विजयों से व्यापार के ये महत्त्वपूर्ण मार्ग बहुत कुछ बन्द हो गये, और यूरोपियन राज्यों को यह चिन्ता हुई, कि व्यापार के लिये किसी नये मार्ग का आविष्कार करें। इस क्षेत्र में पोर्तुगाल और स्पेन ने विशेष तत्परता प्रदर्शित की। उनके प्रयत्न से भारत आदि पूर्वी देशों तक पहुंचने के लिये जिस नये मार्ग का यूरोप के लोगों को परिज्ञान हुआ, और किस प्रकार कोलम्बस ने अमेरिकन महाद्वीप का पता लगाया, इस विषय पर इस इतिहास में पहले प्रकाश डाला जा चुका है।

नई खोज के परिणाम—पन्द्रहवीं सदी के अन्तिम भाग में यह जो नवीन प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई थी, इसके दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणाम हुए। (१) कोलम्बस को अचानक ही जो विशाल भूमिखण्ड व महाद्वीप प्राप्त हो गया था, वह बहुमूल्य खनिज पदार्थों की दृष्टि से बहुत समृद्ध था। यूरोपियन देशों ने इस नवीन सम्पत्ति से लाभ उठाना प्रारम्भ किया। कोलम्बस को स्पेन के राजा ने भेजा था, इसलिये स्वाभाविक रूप से नवीन प्राप्त हुए प्रदेशों पर स्पेन का आधिपत्य कायम हुआ। अमेरिका की खानों से अनन्त सोना व चांदी स्पेन जाने लगी, और देखते-देखते स्पेन का वैभव दिन दूना रात चौगुना वृद्धि को प्राप्त होने लगा। स्पेन की होड़ में अन्य यूरोपियन राज्य भी अमेरिका के विशाल भूखण्ड में सोना चांदी की ढूंढ में फिरने लगे, और इन्हें इस नये महाद्वीप में अपने-अपने उपनिवेश बसाने की चिन्ता प्रारम्भ हुई। इस प्रकार यूरोपियन देशों में औपनिवेशिक प्रतिस्पर्धा का प्रारम्भ हुआ। यूरोप के लिये यह सर्वथा नई बात थी। (२) पोर्तुगीज लोगों ने सामुद्रिक व्यापार का जो नया मार्ग ढूंढा था, उससे पश्चिमी यूरोप के देशों ने एशिया में आना-जाना प्रारम्भ कर दिया। पहले वे व्यापार के उद्देश्य से ही भारतवर्ष, मोलक्को, चीन आदि पूर्वी देशों में आते-जाते थे। उन्होंने स्थान-स्थान पर अपनी व्यापारी कोठियां कायम कीं। सबसे पहले पोर्तुगाल और उसके बाद हालैण्ड, इङ्गलैण्ड और फ्रांस के व्यापारियों ने पूर्वी व्यापार पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। इस प्रयत्न के कारण विविध देशों में परस्पर संघर्ष का होना सर्वथा स्वाभाविक था। व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के कारण वे आपस में लड़ने लगे। साथ ही कुछ समय बाद इन व्यापारियों को यह भी अनुभव हुआ, कि जिन एशियाई देशों के साथ वे व्यापार करते हैं, उनकी राजनीतिक दशा इतनी खराब है, कि उन पर सुगमता से अपना शासन भी कायम किया जा सकता है। व्यापार के लिये भी यह राजनीतिक

आधिपत्य बहुत उपयोगी होगा। इस अनुभव का परिणाम यह हुआ, कि विविध यूरोपियन देश एशियाई राज्यो पर अपना प्रभुत्त्व स्थापित करने के लिये परस्पर संघर्ष करने लगे। यूरोप के इतिहास मे यह बिलकुल नई बात थी। एशिया मे अपने साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न, जिसका वास्तविक मूल व्यापारिक लाभ था, इसमे पूर्व यूरोपियन देशो ने नही किया था।

इस प्रकार यह ध्यान मे रखना चाहिये, कि फ्रांस की राज्यक्रान्ति से पूर्व मध्यकाल मे (पन्द्रहवी सदी से अठारहवी सदी तक) यूरोपियन साम्राज्यवाद के दो रूप थे—उपनिवेशो का विस्तार और पूर्वी देशो के साथ व्यापार। इन्ही बातो को सम्मुख रखकर विविध यूरोपियन देश अपने-अपने साम्राज्यो का निर्माण कर रहे थे।

मर्केन्टाइल सिस्टम—वर्तमान समय मे उपनिवेश विस्तार का जो लाभ समझा जाता है, इस पुराने काल मे वह लोगो की दृष्टि मे नही आया था। उस समय में उपनिवेश प्राप्ति के ये लाभ समझे जाते थे—(१) उपनिवेश से कच्चा माल यथेष्ट परिणाम में प्राप्त किया जा सकता है, अत अपने उपनिवेश होने से कच्चे माल के लिये किसी अन्य देश पर आश्रित होने की आवश्यकता नही रहेगी। उपनिवेश को जिस तैयार माल की जरूरत हो, उसे वह अपने मूल देश से (जिसका कि वह उपनिवेश है) ही प्राप्त किया करे। इस प्रकार अपने निर्यात माल के लिये भी सुरक्षित बाजार प्राप्त हो सकेगा। (२) उस समय मे यूरोप के लोग भी बहुत धर्मप्राण थे। ईसाइयत के प्रचार के लिये धर्म-प्रचारक सदा उत्सुक रहते थे। इन धर्म-प्रचारको को उपनिवेशो के असली निवासियो को ईसाई बनाने का सुवर्णावसर उपलब्ध होता था।

उपनिवेश विस्तार मे आधारभूत विचार यह कार्य कर रहा होता था, कि उपनिवेश अन्य किसी देश के साथ व्यापार न कर सके, उसे जिस माल की बाहर से जरूरत हो, उसे अपने मूल देश से ही मगावे। इससे मूल देश का विदेशी व्यापार बढता था, और उसे अपने निर्यात माल के लिये ऐसा बाजार प्राप्त हो जाता था, जहा कि वह यथेष्ट कीमत पर अपना माल बेच सकता था, क्योकि उसका प्रतिस्पर्धी वहा अन्य कोई नही होता था। इसी प्रकार, उपनिवेश अपना कच्चा माल केवल मूल देश को ही भेज सकते थे। उनका खरीदार केवल एक होता था, इसलिये वह यथेष्ट कीमत पर—जो कि बहुत कम होती थी, क्योकि खरीदार केवल एक ही था—कच्चे माल को खरीद सकता था। इस पद्धति से मूल देश बहुत लाभ उठाते थे। उपनिवेश आर्थिक लूट के साधनमात्र बने हुए थे। अनेक इस प्रकार के कानून बनाये गये थे, जिनसे कि उपनिवेश पूर्णतया मूल देश पर आश्रित रहे। इसी पद्धति को व्यापारिक पद्धति (मर्केन्टाइल सिस्टम) कहा जाता है।

मर्केन्टाइल सिस्टम का ह्रास—यह मर्केन्टाइल सिस्टम बहुत समय तक कायम नही रह सका। धीरे-धीरे इसमे क्षीणता आने लगी। इसकी क्षीणता के तीन मुख्य कारण थे—

(१) व्यावसायिक क्रान्ति—इङ्गलैण्ड मे अठारहवी सदी के अन्तिम भाग मे व्यावसायिक क्रान्ति प्रारम्भ हुई। उसके कारण बहुत बडे परिमाण मे माल तैयार होने लगा। बडे बडे कारखाने खुले, और उनके लिये कच्चे माल की जरूरत बहुत बढ गई। तैयार

माल की बिक्री के लिये भी उपनिवेशों के अतिरिक्त अन्य बाजारों की आवश्यकता अनुभव होने लगी। इङ्गलैण्ड का तैयार माल केवल उपनिवेशों में ही नहीं खप सकता था, और न उसके थोड़े से उपनिवेश कच्चे माल की मांग को ही पूरा कर सकते थे। इसलिये मर्केन्टाइल पद्धति की संकीर्ण मर्यादाएं टूटने लगीं, और लोग व्यापार को विस्तृत करने की फिकर करने लगे।

(२) व्यावसायिक क्रान्ति के कारण जो नई परिस्थिति उत्पन्न हुई थी, उसको दृष्टि में रखकर अनेक अर्थशास्त्रियों ने एक नये ढंग से विचार करना प्रारम्भ किया। वे कहते थे, कि आर्थिक क्षेत्र में भी उसी प्रकार से प्राकृतिक व स्वाभाविक नियम कार्य कर रहे हैं, जैसे कि भौतिक क्षेत्र में। भौतिक क्षेत्र में मनुष्य क्या करता है? स्वाभाविक नियमों का पता लगाता है, और उन्हें जानकर उनके अनुकूल ही अपना कार्य करता है। उन नियमों का उल्लंघन करने का प्रयत्न वह नहीं करता। यदि मनुष्य प्रकृति के इन नियमों में हस्तक्षेप करेगा, तो नुकसान ही उठावेगा। इसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में भी जो स्वाभाविक नियम कार्य कर रहे हैं, मनुष्य को चाहिये कि उनका पता लगाए, और फिर उन्हें जानकर उनके अनुसार ही कार्य करे, उनमें हस्तक्षेप न करे। इङ्गलैण्ड में आडम स्मिथ और फ्रांस में तूर्जो इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक थे। इनका कथन था, कि आर्थिक क्षेत्र में 'खुला छोड दो' 'जैसा होता है होने दो', 'हस्तक्षेप न करो' की नीति का अनुसरण करना ही मानव समाज के लिये हितकर है। इस सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर वे उन सब कानूनों का विरोध करते थे, जो कि 'मर्केन्टाइल पद्धति' को क्रिया में परिणत करने के लिये बनाये गये थे। ये विदेशी व्यापार पर किसी भी प्रकार का तट-कर लगाने के विरोधी थे, और मुक्त-द्वार वाणिज्य (फ्री ट्रेड) की नीति का समर्थन करते थे। इन अर्थशास्त्रियों के विरोध का परिणाम यह हुआ, कि लोग मर्केन्टाइल पद्धति से विमुख होने लगे।

(३) उपनिवेशों में जो लोग बसते थे, वे प्रायः मूल देश के निवासियों के ही वंशज होते थे। वे यह सहन नहीं कर सकते थे, कि उनका उपयोग दूसरों के लाभ के लिये किया जाए। मूल देश अपने लाभ के लिये उपनिवेशों का जिस ढंग से उपयोग करना चाहते थे, वह उपनिवेशवासियों को सह्य नहीं था। परिणाम यह हुआ, कि पहले ब्रिटेन के अमेरिकन उपनिवेशों ने विद्रोह किये, और उसके बाद स्पेन के दक्षिणी अमेरिकन उपनिवेशों ने। ये अपने विद्रोहों में सफल भी हुए। इनकी सफलता से मर्केन्टाइल पद्धति को बडा धक्का लगा। उपनिवेशों की स्वतन्त्रता को देखकर यूरोप के राजनीतिज्ञ सोचने लगे, कि उपनिवेश प्राप्ति के लिये इतने धन-जन का व्यय करना सर्वथा निरर्थक है। साथ ही, यूरोप में लोकतन्त्रवाद की जो नई लहर चल रही थी, वह इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करती थी, कि प्रत्येक राष्ट्र को स्वभाग्यनिर्णय का अधिकार होना चाहिये। उपनिवेश भी इस लहर से अछूते नहीं रहे थे। वे स्वभाग्यनिर्णय के सिद्धान्त को सम्मुख रखकर यह कदापि सहन नहीं कर सकते थे, कि मूल देश उनके मामलों में हस्तक्षेप करे या उनकी रीति नीति का संचालन करे। इस दशा में यूरोप के राजनीतिज्ञों को उपनिवेश रखने का कोई विशेष लाभ दृष्टिगोचर नहीं होता था।

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक 'मर्कन्टाइल पद्धति' पर आश्रित यूरोप के पुराने औपनिवेशिक साम्राज्य प्राय नष्ट हो गये थे। स्पेन का विशाल साम्राज्य अब पूर्णतया क्षीण हो चुका था। अमेरिका मे क्यूबा और पोर्टो रिको के अतिरिक्त अन्य कोई प्रदेश उसके अधीन नही रहा था। प्रशान्त महासागर मे स्थित फिलिप्पीन द्वीपसमूह तथा अफ्रीका के कुछ प्रदेश ही अभी तक भी उसके अधीन थे। अमेरिका मे न्यू आम्स्टर्डम का उपनिवेश तथा अफ्रीका मे केप कोलीनी भी हालैण्ड की अधीनता से निकल चुके थे। फ्रास का विशाल अमेरिकन साम्राज्य नष्ट हो गया था। ब्राजील पोर्तुगाल की अधीनता से मुक्त हो चुका था। सर्वत्र औपनिवेशिक साम्राज्यो का ह्रास हो गया था। इस अवस्था मे केवल एक ही देश था, जो कि एक भावी महान् साम्राज्य की नीव डाल रहा था, यह देश था ब्रिटेन। यद्यपि अमेरिकन उपनिवेशो की स्वाधीनता के कारण ब्रिटेन के औपनिवेशिक साम्राज्य को बहुत क्षति पहुँची थी, तथापि सामुद्रिक आधिपत्य के सघर्ष मे हालैण्ड और फ्रास को परास्त कर ब्रिटेन अब असाधारण उत्कर्ष को प्राप्त हो रहा था। पर ब्रिटेन का यह साम्राज्य मर्कन्टाइल पद्धति के पुराने सिद्धान्त पर आश्रित नही था। यूरोप का पुराना साम्राज्यवाद अब समाप्त हो चुका था, उसका स्थान अब साम्राज्यवाद के नवीन सिद्धान्तो ने ले लिया था। ये सिद्धान्त कौन से थे, इस पर हम अब विचार करेंगे।

२ नवीन साम्राज्यवाद का प्रारम्भ

नये साम्राज्यवाद का स्वरूप—उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे यूरोप मे नवीन साम्राज्यवाद का प्रारम्भ हुआ। इसका स्वरूप मुख्यतया राष्ट्रीय तथा आर्थिक था। राष्ट्रीयता की जो नवीन भावना यूरोपियन राज्यो मे उत्पन्न हुई थी, वह अब अत्यन्त प्रबल रूप धारण कर रही थी। यूरोपियन राज्य समझते थे, ससार मे हमी सर्वोत्कृष्ट है, और सारी पृथिवी हमारे ही भोग तथा उत्कर्ष के लिये बनायी गई है। इस भाव से प्रेरित होकर वे अपने अतिरिक्त अन्य किसी को ससार में जीने नही देना चाहते थे। साथ ही, साम्राज्यवाद के विकास में उनका उद्देश्य आर्थिक भी था। यूरोप मे कल-कारखानो के विकास से जो व्यावसायिक क्रान्ति हुई थी, उसके कारण प्रत्येक देश अपनी आवश्यकता से अधिक पदार्थ उत्पन्न करने मे समर्थ हो गया था। इन अतिरिक्त पदार्थो की बिक्री के लिये उन्हें बाजारो की आवश्यकता थी। इनकी ढूढ में यूरोपियन राज्य उन्नति की दौड मे पीछे रहे हुए अफ्रीकन तथा एशियाई देशो मे अपने-अपने 'प्रभाव-क्षेत्र' बनाने की फिकर करने लगे, और इसी प्रवृत्तिसे एक नये प्रकार का साम्राज्यवाद विकसित हुआ, जो अब तक जारी है। इसमे सन्देह नही, कि जिन कारणो से यह नये ढग का साम्राज्यवाद विकसित हुआ उनके नष्ट हो जाने पर यह स्वय ही नष्ट हो जायगा, और ससार के इतिहास मे एक नवीन युग का प्रारम्भ होगा। पर अभी तक राष्ट्रीय और आर्थिक साम्राज्यवाद का यह युग विद्यमान है। हमे इसके विकास के कारणो तथा स्वरूप पर गम्भीरता तथा ध्यान से विचार करना चाहिये।

कारण—इस नवीन साम्राज्यवाद के विकास के चार मुख्य कारण थे—(१)

व्यावसायिक क्रान्ति के कारण मानव समाज के आर्थिक सगठन मे बहुत बडा परिवर्तन हुआ था। मध्यकाल मे आर्थिक उत्पत्ति बहुत छोटे पैमाने पर हुआ करती थी। एक देश मे जो माल उत्पन्न होता था, वह उस देश के लिये भी पर्याप्त नही होता था। उस समय मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भी विशेष महत्व नही था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये न तो माल ही होता था, और न उसे एक देश से दूसरे देश में ले जाने के लिये समुचित साधन ही सुरक्षित रूप मे विद्यमान थे। परन्तु व्यावसायिक क्रान्ति के बाद आवश्यकता मे अधिक माल उत्पन्न होने लगा। भाप से चलने वाले जहाजो के बन जाने से सुदूरवर्ती देशो मे व्यापार करना भी बहुत आसान हो गया। रेलवे, तार, डाकखाना, टेलीफोन आदि के आविष्कार से मनुष्य ने देश और काल पर अभूतपूर्व विजय स्थापित की। ससार के सुदूरवर्ती देश अब एक दूसरे के बहुत समीप हो गये। लण्डन से भारतवर्ष जाना केवल तीन सप्ताह का कार्य रह गया। अन्तर्राष्ट्रीय बैंको की स्थापना तथा विदेशी हुण्डी के प्रचलन से रुपये का आवागमन भी बहुत सुगम हो गया। बीमा कम्पनियो की कृपा से व्यापार का खतरा भी दूर हो गया। इस दशा मे यूरोप के उन्नतिशील राज्य अपने माल के लिये नये बाजार ढूढने की फिकर करने लगे। प्रत्येक देश अधिक से अधिक माल तैयार करना चाहता था, और उसको बेचकर अधिक से अधिक मुनाफा उठाने की कोशिश करता था। इस अवस्था मे विविध देशो मे परस्पर प्रतिस्पर्धा का होना सर्वथा स्वाभाविक था। अपने माल को दूसरे के मुकाबले से बचाकर निश्चिन्तता के साथ बेचने का एक ही उपाय था, वह यह कि पिछडे हुए देशो मे, जहा पर अपना माल बेचना सुगम तथा सम्भव था, अपने प्रभाव-क्षेत्र कायम किये जाए, जिससे कि अपने सिवा कोई अन्य देश उनमे व्यापार की सुविधा न रख सके। ये प्रभावक्षेत्र जिस प्रकार भी सम्भव हो, अपने ऊपर आश्रित होते जाए। धीरे-धीरे यदि ये अपने सरक्षित राज्य बन जाए और फिर पूर्णतया अपने अधीन हो जाए, तो बहुत ही उत्तम हो। व्यापार के लिये यह प्रक्रिया अत्यन्त आवश्यक थी। इसके बिना विदेशी व्यापार सुरक्षित नही रह सकता था।

(२) मध्यकाल मे शासन शक्ति वशक्रमानुगत राजा तथा उसके कुलीन श्रेणी के दरबारियो के हाथ में थी। फ्रेंच राज्यक्रान्ति के बाद यह शासनशक्ति जनता के हाथो में आ गई, पर सम्पूर्ण जनता का शासन स्थापित न हो सका। शासनशक्ति मध्य श्रेणी के पास थी, जिसने कि व्यावसायिक क्रान्ति से लाभ उठाकर धन तथा स्थिति प्राप्त कर ली थी। वोट का अधिकार मध्यश्रेणी के लोगो को ही प्राप्त था। समाज मे जो लोग अमीर थे, व्यवसाय तथा व्यापार के कारण जिनका समाज मे सम्मान था, वे ही शासन का भी सचालन करते थे। अपने हितो का उन्हे खूब ध्यान था। शासनशक्ति प्राप्त कर अपने स्वार्थो को पूर्ण करने मे वे सदा तत्पर रहते थे। अपने व्यापारिक माल को दूसरे देशो मे खपाना तभी सम्भव था, जब कि अपने साम्राज्य का विस्तार किया जाए। साथ ही, मध्यश्रेणी के लोगो के पास पूंजी भी बहुत बडे परिणाम में सचित हो रही थी। यह पूजी व्यवसाय तथा व्यापार में मुनाफा उठाकर सचित की गई थी। इस विशाल पूजी को कही अच्छे सूद पर अथवा अच्छे मुनाफे की आशा

मे लगाना अत्यन्त आवश्यक था। यह भी तभी हो सकता था, जब कि विदेशो पर अपना आधिपत्य कायम किया जाए। इस प्रकार यह स्पष्ट है, कि मध्य श्रेणी के लोगो का, जो कि उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे विविध यूरोपियन राज्यो के शासन सूत्र के सचालक थे, यह निज स्वार्थ हो गया था, कि वे साम्राज्यवाद का अनुसरण करे। शासनशक्ति उनके हाथ मे थी ही, वे इस शक्ति का उपयोग कर अपने आर्थिक हित का साधन करने मे कटिबद्ध हो रहे थे।

(३) राष्ट्रीयता का उदय भी इस साम्राज्यवाद के विकास मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। राष्ट्रीयता के भावो से प्रेरित होकर यूरोप के विविध राज्य ससार मे अपनी शक्ति का विस्तार करने के लिए आतुर थे। नि सन्देह, राष्ट्रीयता बहुत अच्छी चीज है। प्रत्येक ऐसे जनसमाज को, जो धर्म, भाषा, सभ्यता, सस्कृति आदि की दृष्टि से एक हो, अपनी विशेषताओ को सामूहिक रूप से विकसित करने तथा उसके लिए अपना पृथक् सगठन बनाने का पूर्ण अधिकार है। इस हद तक राष्ट्रीयता किसी को नुकसान नही पहुँचा सकती। पर व्यक्तिवाद की अन्य सब प्रवृत्तियो की तरह राष्ट्रीयता मे भी एक हानि है। राष्ट्र इस बात को भूल जाते है, कि पृथ्वी पर अन्य लोगो को भी जीना है, सारे ससार का निर्माण उनके लिए ही नही किया गया है। राष्ट्रीयता के आवेश मे राज्य अन्य देशो के हितो और अधिकारो का ध्यान नही रखते। वे समझते है, कि ससार मे हमे अपना राज्य-विस्तार करने और अपना राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक उत्कर्ष स्थापित करने का अमर्यादित अधिकार है। इस वृत्ति का परिणाम साम्राज्यवाद होता है। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे यूरोप के सब प्रमुख राज्य राष्ट्रीयता रूपी देवता की उपासना मे तत्पर थे। वे अपने देश के उत्कर्ष के लिए ससार भर मे जहाँ कही भी अवसर प्राप्त हो, वहा दूसरे देशो को अपने अधीन करने तथा उनसे अपना हित-साधन करने के लिये प्रयत्नशील थे।

(४) उन्नीसवी सदी मे यूरोप की आबादी बडी तेजी के साथ बढ रही थी। १८०० मे ब्रिटेन की आबादी १,६०,००,००० थी, १९०० मे वह बढकर ४,१०,००,००० हो गई। इसी प्रकार इस एक शताब्दी मे जर्मनी की आबादी २,१०,००,००० से ५,६० ००,०००, तथा आस्ट्रिया-हगरी की २,३०,००,००० से ४,००,००,०००, इटली की १,८०,००,००० से ३,२०,००,०००, और रूस की ३,९०,००,००० से ११,१०,००,००० हो गई। इसी काल मे सम्पूर्ण यूरोप की आबादी १८,७३,००,००० से बढकर ४०,००, ००,००० हो गई। इस बढती हुई आबादी पर ध्यान देने की आवश्यकता है। पहले यूरोप मे आबादी कम होने से वहा जो अनाज तथा अन्य खाद्य सामग्री उत्पन्न होती थी, वह वहा के निवासियो के भरण-पोषण के लिये पर्याप्त होती थी। पर इतनी तीव्रता से बढती हुई आबादी यूरोप मे उत्पन्न भोजन सामग्री से अपना गुजारा नही चला सकती थी। इस अवस्था मे यूरोपियन लोगो के सम्मुख केवल दो मार्ग थे—एक यह कि बहुत से लोग दूसरे देशो मे जाकर बस जाए, एशिया, अफ्रीका तथा अमेरिका मे बहुत से प्रदेश इस समय खाली पडे थे, जिनमे अपने उपनिवेश बसाने का अभी मौका था। दूसरा उपाय यह था, कि यूरोपियन राज्य व्यवसायो की उन्नति मे विशेष रूप से ध्यान

जाए, और व्यावसायिक पदार्थों को दूसरे देशों मे वेचकर उसके बदले मे भोजन सामग्री अन्य देशों से प्राप्त करे। व्यावसायिक क्रान्ति इस समय तक हो चुकी थी, उसके कारण यूरोपियन देशों मे बहुत बडे परिणाम मे तैयार माल उत्पन्न हो रहा था। उसे वेचकर खाद्य सामग्री प्राप्त कर सकना बहुत सुगम था। यूरोपियन देशों ने इन दोनों उपायों का अवलम्बन किया। उपनिवेशों पर उन्होंने बहुत ध्यान दिया। उनकी उपयोगिता अब सब स्वीकार करने लगे। लाखों की सख्या मे यूरोपियन लोग अमेरिका, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया आदि मे जाकर बसने लगे। साथ ही, व्यावसायिक पदार्थों की उत्पत्ति बहुत बडे पैमाने पर शुरू की गई। इन तैयार माल के बदले मे यूरोपियन देश अन्य अन्य देशों से कच्चा माल प्राप्त करने लगे। यह प्रवृत्ति साम्राज्यवाद के विकास मे बहुत सहायक हुई। उपनिवेशों की कदर बढने से वे तो साम्राज्य के महत्वपूर्ण अग बने ही, साथ ही अपने तैयार माल को अन्यत्र खपाने के लिये स्थिर बाजारों की आवश्यकता भी अनुभव की गई। इसी से 'प्रभाव क्षेत्र' 'सरक्षित राज्य' तथा 'साम्राज्य' बनाने की प्रवृत्ति शुरू हुई। आर्थिक साम्राज्यवाद के विकास मे आबादी की यह वृद्धि एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण थी।

यूरोप के नये साम्राज्यवाद के विकास के कारणों की विवेचना समाप्त करने से पूर्व एक अन्य बात का भी सक्षिप्त रूप मे निर्देश कर देना अत्यन्त आवश्यक है। इस साम्राज्यवाद की सफलता में ईसाई पादरियों का धर्म प्रचार भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ईसाई लोगों मे शुरू से यह प्रवृत्ति रही है, कि विविध देशों मे अपने धर्म का प्रचार कर काफिर लोगो को नरक के गढे मे गिरने से बचाया जाए। रोमन कैथोलिक तथा प्राटेस्टेन्ट—ईसाई धर्म के दोनों मुख्य सम्प्रदाय इस कार्य मे बहुत उत्साह प्रदर्शित करते रहे है। सोलहवीं शताब्दी के शुरू में जब कि यूरोपियन लोगों ने महासमुद्रों के पार आना जाना शुरू किया, तब ईसाई पादरी भी अपने कार्य मे कटिबद्ध हो गये। वे अमेरिका, अफ्रीका, एशिया—सर्वत्र स्वच्छन्द रूप से विचरने लगे। उनके धार्मिक वेश को देखकर कोई उनपर सन्देह नहीं करता था। बहुत से ईसाई प्रचारक सचमुच ईमानदार थे, वे वस्तुत ईसाई धर्म के प्रचार के लिये ही प्रयत्न करते थे। पर ऐसे धर्म प्रचारकों की भी कमी नहीं थी, जो धर्म के आवरण मे अपने सामारिक हितों का सम्पादन किया करते थे। धार्मिक वेश का लाभ उठाकर ये दूसरो के गुप्त भेदो का सुगमता से पता लगा लेते थे, और अपने राज्यों को उनकी सूचना देते रहते थे। साम्राज्यवादी राष्ट्र तो इन धर्मप्रचारकों को अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने का साधन मात्र समझते थे। यदि अकस्मात् कोई पादरी किसी सुदूर देश मे मारा गया, तो इन साम्राज्यवादी देशों को अच्छा बहाना मिल जाता था। उनके घात के कोई भी कारण क्यों न हो, उसमे चाहे पादरी का अपना ही दोष क्यों न हो,—ये साम्राज्यवादी उस अभागे देश पर आक्रमण करने का अच्छा मौका प्राप्त कर लेते थे। एशिया तथा अफ्रीका के बहुत से देशों मे इन पादरियों को ही निमित्त बनाकर युद्ध आरम्भ किये गये। इस प्रकार ईसाई लोगो का धर्म प्रचार भी यूरोप के बढते हुए साम्राज्यवाद मे बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

३ ईसाई धर्म प्रचारक और साम्राज्यवाद

सास्कृतिक साम्राज्य——हमने पिछले प्रकरण मे यह जिक्र किया था, कि ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा भी यूरोपियन देशो के साम्राज्य विस्तार मे सहायता मिली थी। आधुनिक युग के इतिहास मे ईसाई धर्म का प्रचार एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। पाचवी सदी ई० पू० मे बौद्ध धर्म का देश-विदेश मे प्रसार शुरू हुआ था। कुछ सदियो के बाद महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अष्टागिक आर्यमार्ग चीन, जापान, कोरिया, तुर्किस्तान, लका, बर्मा, स्याम, मलाया, इन्डो-चायना, अफगानिस्तान आदि सर्वत्र फैल गया। बौद्ध धर्म के इस प्रसार के साथ-साथ भारतीय भाषा, सभ्यता, साहित्य, ज्ञान, रहन-सहन सस्कृति आदि का भी इन सुदूरवर्ती देशो मे प्रसार हुआ, और कतिपय शताब्दियों के लिए भारत का सास्कृतिक साम्राज्य ससार के बहुत बड़े भाग मे स्थापित हो गया। आठवी सदी मे इसी ढग से इस्लाम का प्रसार हुआ। इस्लाम का प्रादुर्भाव अरब मे हुआ था, अत उसके विदेशो मे प्रसार के साथ-साथ अरब सभ्यता और सस्कृति का भी विस्तार हुआ, और कुछ सदियो तक अरब लोग अपने विशाल सास्कृतिक साम्राज्य की स्थापना में समर्थ हुए।

ईसाई धर्म इस्लाम की अपेक्षा पुराना है। इसका प्रादुर्भाव पश्चिमी एशिया के अन्यतम प्रदेश पैलेस्टाइन मे हुआ था। यह प्रदेश प्राचीन समय मे रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत था। शुरू मे ईसाई प्रचारक रोमन साम्राज्य के विविध प्रदेशो मे अपने धर्म का प्रचार करते रहे। पाचवी सदी तक यूरोप के अनेक प्रदेशो को उन्होने ईसाई धर्म मे दीक्षित कर लिया था। मध्यकाल मे प्राय सम्पूर्ण यूरोप ईसाई धर्म का अनुयायी हो गया था, और रोम के पोप को अपना धर्मगुरु स्वीकार करता था। पर आधुनिक युग मे ईसाई धर्म का प्रचार यूरोप के बाहर अमेरिका, अफ्रीका, एशिया आदि सर्वत्र हुआ है। प्राय सभी देशो मे ईसाई प्रचारक अपने मिशन स्थापित कर बहुत से लोगो को अपने धर्म मे दीक्षित करने मे समर्थ हुए है। ईसाई धर्म के इस विस्तार से जहा यूरोप के राजनीतिक उत्कर्ष में सहायता मिली है, वहा साथ ही यूरोप की राजशक्ति ने ईसाई धर्म की उत्कृष्टता की भावना का प्रसार करने मे भी सहायता पहुँचाई है। वर्तमान युग मे यूरोप के ईसाई लोग ससार मे सर्वत्र अपना सास्कृतिक साम्राज्य स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील है। ईसाइयो का यह सास्कृतिक साम्राज्य आधुनिक इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

प्रारम्भिक ईसाई प्रचारक——मध्यकाल मे जब यूरोपियन लोगो मे नये प्रदेशो की खोज करने की प्रवृत्ति शुरू हुई, तो ईसाई धर्म प्रचारको ने भी उसमे हाथ बटाया। मार्को पोलो नामक यात्री जब पर्यटन करते हुए चीन गया, तो अनेक ईसाई मिशनरी भी उसके साथ थे। मगोल सम्राट् कुबले खा के दरबार मे जब मार्को पोलो उपस्थित हुआ, तो दो पादरी भी उसके साथ गये। चौदहवी सदी के शुरू मे अनेक ईसाई प्रचारक चीन की राजधानी पेकिंग गये, वहा उन्होने बाइबल का तातार भाषा मे अनुवाद किया, और अनेक तातार लोगो को ईसाई धर्म मे दीक्षित करके उन्हे धर्म प्रचार के लिये

तैयार किया। पन्द्रहवी सदी मे जब यूरोप के लोगो ने अमेरिकन महाद्वीप का पता लगाया, और स्पेनिश व पोर्तुगीज लोगो ने इस महाद्वीप मे अपनी बस्तिया बसानी शुरू की, तो ईसाई प्रचारको को भी वहा अपने कार्य का अवसर मिला। मेक्सिको और पेरू के असली निवासी सभ्यता की दृष्टि से अच्छे उन्नत थे। वे पक्के मकानो मे रहते थे, और मन्दिरो मे प्रतिष्ठित देवी देवताओ की पूजा किया करते थे। ईसाई मिशनरियो ने यत्न किया, कि उन्हे अपने धर्म मे दीक्षित करे। पर मेक्सिको और पेरू की अजटक सभ्यता के लोग ईसाई धर्म को स्वीकार करने के लिये उद्यत नही हुए। इस पर यूरोपियन लोगो ने उन पर घोर अत्याचार किये। १५२० मे उन्होने यह आज्ञा जारी की, कि अजटक लोग अपने धार्मिक विश्वासो के अनुसार पूजा पाठ न कर सकें। वहा पाच बिशपो की नियुक्ति की गई, और सारे प्रदेश को धार्मिक दृष्टि से इन बिशपो के अधीन कर दिया गया। ईसाई लोग अजटक जाति को अपने धर्म का अनुयायी नही बना सके, अत उन्होने उसे सर्वथा नष्ट कर देने के मार्ग का आश्रय लिया। बाद मे अमेरिका के आर्थिक जीवन को विकसित करने के लिए जो नीग्रो लोग अफ्रीका से गुलाम के रूप मे लाये गये, उन्हे भी ईसाई बनाया गया, और इसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिका मे बसने वाले यूरोपियन लोगो के साथ-साथ उनके नीग्रो गुलाम भी ईसाई धर्म के अनुयायी हो गये।

भारत मे पहले पहल जो यूरोपियन जाति अपने प्रभाव का विस्तार कर रही थी, वह पोर्तुगीज थी। उसने भी इस देश के निवासियो को बल प्रयोग द्वारा ईसाई धर्म मे दीक्षित करने का प्रयत्न किया। पोर्तुगीज लोग भारत के हिन्दुओ से वही बर्ताव करना चाहते थे, जो कि स्पेनिश लोगो ने अमेरिका की अजटक जाति के साथ किया था। उन्होने भारतीयो पर घोर अत्याचार किये। भारत के पश्चिमी समुद्रतट पर गोआ के समीप उनका पहले पहल प्रवेश हुआ था, वहा जनता को बलपूर्वक ईसाई बनाया गया। इस युग के ईसाई प्रचारको मे फ्रासिस क्सेवियर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने न केवल दक्षिणी भारत मे, अपितु समुद्र तट के साथ-साथ के प्रदेशो मे चीन और जापान तक ईसाई धर्म के प्रचार का उद्योग किया। सोलहवी सदी के अन्त तक ईसाई प्रचारको का एक जाल सा एशिया, अफ्रीका आर अमेरिका मे फैल गया था।

प्रोटस्टेन्ट धर्म का प्रचार—रोमन कैथोलिक चर्च के विरुद्ध विद्रोह करके लूथर आदि सुधारको के नेतृत्व मे जो अनेक प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय विकसित हुए थे, उनका उल्लेख इस इतिहास मे पहले किया जा चुका है। शुरू मे प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायो ने अपने धार्मिक विश्वासो का विदेश मे प्रचार करने के लिये कोई प्रयत्न नही किया। पर यूरोपियन राज्यो की सरकारे धार्मिक विषय में बहुत असहिष्णु थी। राजा जिस सम्प्रदाय का अनुयायी हो, प्रजा उसके अतिरिक्त किसी अन्य सम्प्रदाय का अनुसरण करे, यह उसे सह्य नही था। इगलैण्ड के राजाओ ने रोमन कैथोलिक चर्च के विरुद्ध विद्रोह कर राजकीय सरक्षा मे इगलिश चर्च की स्थापना की थी। पर इगलैण्ड मे ऐसे लोगो की कमी नही थी, जो पोप के आधिपत्य के समान चर्च पर राजा के आधिपत्य को भी बुरी बात समझते थे। ये प्रोटेस्टेन्ट लोग डिसेन्टर व प्यूरिटन कहाते थे। सत्रहवी और अठारहवी सदियो के स्वेच्छाचारी निरकुश इगलिश राजा अपने धार्मिक प्रभुत्व को न माननेवाले

इन प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायो को सहन करने के लिये तैयार नही थे। परिणाम यह हुआ, कि डिस्सेन्टर व प्यूरिटन लोग बहुत बडी सख्या मे अपनी मातृभूमि को सदा के लिये नमस्कार कर अटलाण्टिक महासागर के पार अमेरिका मे जा बसने के लिये विवश हुए। वहा इन्होने यह प्रयत्न किया, कि अमेरिका के मूल निवासियो को (यूरोप के लोगो के भारी भ्रम के कारण जो रेड इन्डियन कहाते है) अपने सम्प्रदायो मे दीक्षित करे। इसी प्रकार फ्रास के इयुजनॉत सम्प्रदाय के लोग व जर्मनी के प्रोटेस्टेन्ट (लूथर के अनुयायी) लोग भी अपनी मातृभूमि का परित्याग कर अमेरिका मे जा बसने और वहा के मूल निवासियो को ईसाई बनाने के लिये प्रयत्नशील हुए। इस युग मे हालैण्ड के पर्यटक सुदूर पूर्व मे जावा, मलक्का, फारमूसा, सीलोन आदि मे समुद्र द्वारा पहुँच रहे थे, और वहा अपने व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने मे तत्पर थे। इसी प्रकार कतिपय डच व जर्मन लोग अफ्रीका के अबीसीनिया आदि प्रदेशो का अवगाहन करने मे लगे थे। अनेक ईसाई प्रचारक भी इन लोगो के साथ इन देशो मे गये, और वहा उन्हे ईसा मसीह के धर्म का सन्देश देना प्रारम्भ किया। आस्ट्रिया का एक कुलीन जागीरदार, फॉन वेल्टस धर्म-प्रचारक बनकर डच गायना मे गया, और डेन्मार्क के राजा फ्रेडरिक चतुर्थ ने भारत मे ईसाई धर्म का प्रसार करने के लिये एक मिशन का स्थापना की। इस युग मे सारे यूरोप मे विधर्मियो को ईसाई बनाने के लिये अपूर्व उत्साह था। १७९५ में इगलैण्ड मे 'लण्डन मिशनरी सोसायटी' नाम से एक नई सस्था की स्थापना की गई। इस सोसायटी ने दो लाख रुपया एकत्र किया, और साउथ सी द्वीपो मे ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये मिशनरियो को भेजा। १७९२ और १८९२ के बीच के एक सदी के समय मे ग्रेट ब्रिटेन मे पैतीस मिशनरी सस्थाएँ इस उद्देश्य से कायम हुई, कि वे पृथिवी के विभिन्न प्रदेशो मे ईसाई धर्म के प्रसार का उद्योग करें। इन सस्थाओ के लिये करोडो रुपया यूरोप के विविध राज्यो मे एकत्र किया गया, और हजारो सुशिक्षित नवयुवक मिशनरी का कार्य करने के लिये अग्रसर हुए। इन सस्थाओ का स्वरूप अनेक प्रकार का था। कतिपय सस्थाएँ अफ्रीका, एशिया आदि के पिछडे हुए प्रदेशो मे चिकित्सालय खोलकर अपने कार्य का विस्तार करती थी। इनके मेडिकल मिशन चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा कर उन्हे अपने प्रभाव में लाने का उद्योग करते थे। कतिपय सस्थाओ ने पिछडे हुए प्रदेशो मे स्कूल व कालिज खोलकर विद्यार्थियो को अपने असर मे लाने का प्रयत्न किया। इसी प्रकार बाइबल सोसायटी नाम से अनेक सस्थाएँ स्थापित की गई, जो विदेशो मे बाइबल का प्रचार करने के लिये उद्योग करती थी।

साम्राज्यवाद में सहायता—यूरोप के लोग अच्छी तरह अनुभव करते थे, कि ईसाई धर्म का प्रचार उनके लिये अत्यन्त लाभदायक है। धर्म प्रचार के कार्य मे जो करोडो रुपया प्रतिवर्ष यूरोपियन लोग खर्च कर रहे थे, और जो हजारो नवयुवक अपने घरो का परित्याग कर विदेशो मे जा रहे थे, उसका उद्देश्य विशुद्ध रूप से धार्मिक नही था। यूरोपियन राज्य इस तथ्य को समझते थे, कि ईसाई धर्म का प्रचार यूरोप की सभ्यता व सस्कृति के प्रसार मे परम सहायक होगा। यूरोपियन सभ्यता की उत्कृष्टता की भावना जहा एशिया और अफ्रीका के देशो में उनके साम्राज्य को स्थिर

रूप से उनके अधीन रखने मे सहायक होगी, वहा साथ ही नये प्रदेशो को भी उनके प्रभाव मे लाने के लिये उपयोगी होगी। यूरोप के ये श्वेताग ईसाई प्रचारक एशिया और अफ्रीका के लोगो को अपने मे हीन समझते थे, और उनके साथ ममता का व्यवहार नही करते थे। इसीलिये कतिपय स्थानो पर जनता मे उनके विरुद्ध भावना प्रबल हो जाती थी, और कही-कही ईसाई प्रचारक कतल भी कर दिये जाते थे। ऐसी घटना यूरोपियन राज्यो के लिये अत्यन्त उत्तम अवसर उपस्थित कर देती थी, और इसे निमित्त बनाकर वे इन प्रदेशो को विजय कर लेने या उन्हे अपनी सरक्षा मे ले आने मे जरा भी सकोच नही करते थे। चीन आदि एशियाई राज्यो मे यूरोप के विविध देशो ने जो अपने प्रभाव का विस्तार किया, उसमे यह प्रक्रिया बहुत सहायक हुई।

एशिया व अफ्रीका मे कार्य करनेवाले ईसाई पादरी केवल धर्म प्रचार ही नही करते थे, साथ ही वे इस बात का भी सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करते थे, कि इन प्रदेशो मे आर्थिक उन्नति की किस हद तक गुंजाइश है। बहुसख्यक यूरोपियन पादरी सुशिक्षित होते थे, और उनके लिये यह जान सकना जरा भी कठिन नही था, कि उस प्रदेश के जगलो मे कौन सी कीमती वस्तुएँ उपलब्ध है, वहा किस चीज की खाने है, वहा से कौन सा कच्चा माल क्रय किया जा सकता है, और यूरोप का कौन सा माल वहा सुगमता से बिक सकता है। इन सब बातो का भलीभाति अनुशीलन कर वे यूरोप की पत्र पत्रिकाओ मे लेख लिखते थे, और उन्हे पढकर यूरोप के पूजीपति, व्यवसायी व व्यापारी लोग इन देशो की ओर आकृष्ट होते थे। वे वहा जाकर नई कम्पनिया खडी करते थे, और एशिया व अफ्रीका के लोगो को सस्ती मजदूरी पर रखकर खानो और व्यवसायो का विकास करते थे। यूरोप के लोगो ने जो चीन, अनाम, स्याम, इन्डोचायना, इन्डोनीसिया, अफ्रीका आदि मे अरबो रुपया विविध व्यवसायो मे लगाया, उसके लिये आवश्यक परिज्ञान उन्हे ईसाई मिशनरियो द्वारा ही प्राप्त हुआ था। यूरोप के आर्थिक व राजनीतिक साम्राज्य के विकास मे इन धर्म प्रचारको द्वारा बहुत सहायता मिली थी। यही कारण है, कि न केवल यूरोप के पूजीपति ही, अपितु वहा की सरकारे भी इन ईसाई मिशनो की दिल खोलकर सहायता करती थी।

हमे यहा यह भी स्वीकार करना होगा, कि ईसाई मिशन एशिया व अफ्रीका के निवासियो के लिये भी अनेक दृष्टियो से उपयोगी सिद्ध हुए। ईसाई धर्म तो सम्भवत हिन्दू धर्म, इस्लाम और बौद्ध धर्म से किसी भी प्रकार अधिक उत्कृष्ट नही था। पर यूरोप के प्रचारक जिस सभ्यता के प्रतिनिधि थे, वह ज्ञान-विज्ञान के असाधारण विकास के कारण अवश्य उत्कृष्ट थी। एशिया और अफ्रीका के लोगो ने इन यूरोपियन प्रचारको के सम्पर्क मे आकर यह अनुभव किया, कि वे उन्नति की दौड मे बहुत पीछे रह गये है। वे भी यूरोप से ज्ञान विज्ञान सीखकर उन्नति के लिये तत्पर हुए, और इस प्रकार एशिया तथा अफ्रीका मे विद्या का पुन जागरण प्रारम्भ हुआ। ससार के इतिहास मे यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

४ साम्राज्य निर्माण के लिये संघर्ष

ईसाई धर्म प्रचारक यूरोपियन राज्यो के साम्राज्य विस्तार के लिये केवल मैदान तैयार करने का ही काम करते थे। उनसे यूरोप के साम्राज्यवादियो को सहायता अवश्य मिलती थी, पर यूरोप के विविध देश जो नये-नये प्रदेशो को अधिगत करने के लिये प्रयत्नशील थे, उनके प्रेरक हेतु धार्मिक न होकर आर्थिक और राष्ट्रीय थे। पन्द्रवी सदी मे यूरोप के लोगो मे नये प्रदेशो की खोज करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। उस समय तक व्यवसायिक क्रान्ति शुरू नही हुई थी। पूर्वी देशो तक पहुचने के मार्ग पर तुर्क लोगो का आधिपत्य स्थापित हो जाने के कारण ही यूरोपियन लोग एशिया आने जाने का नया रास्ता ढूढ निकालने के लिये प्रवृत्त हुए थे। इस प्रयत्न मे उन्हे अमेरिका का परिज्ञान हुआ, और उसके कारण यूरोपियन लोगो को अपना प्रसार करने के लिये एक विशाल खण्ड प्राप्त हो गया। साथ ही अफ्रीका का चक्कर लगाकर जब वे भारत आदि पूर्वी देशो मे पहुचे, तो वहा अपने व्यापार को बढाने तथा व्यापार द्वारा धन कमाने का नया क्षेत्र भी उनके लिये खुल गया। यूरोप के आर्थिक जीवन मे ये बाते महान् परिवर्तन उत्पन्न कर रही थी। इन्ही के कारण यूरोप मे व्यापारिक क्रान्ति हुई, और आर्थिक जीवन मे मध्यकाल की आर्थिक श्रेणियो (गिल्ड) का स्थान धनपतियो द्वारा सचालित कारखाने (फैक्टरी) लेने लगे। अठारहवी सदी के अन्त मे इङ्गलैण्ड मे व्यावसायिक क्रान्ति हुई, और धीरे-धीरे फ्रास, बेल्जियम आदि अन्य देशो ने भी नये यान्त्रिक आविष्कारो का प्रयोग कर आर्थिक उत्पत्ति के तरीको मे परिवर्तन करना शुरू किया। व्यावसायिक क्रान्ति के कारण यूरोप मे विविध प्रकार का माल प्रचुर मात्रा मे तैयार होने लगा, और इस माल को पिछडे हुए देशो मे बेचकर धनी बनने के उद्देश्य से यूरोप के विविध देश अपने साम्राज्य-विस्तार के लिये प्रवृत्त हुए। पर साम्राज्य-विस्तार का पहला युग उन्नीसवी सदी के शुरू तक समाप्त हो गया था। अमेरिका के विशाल महाद्वीप मे जो विविध उपनिवेश इङ्गलैण्ड, फ्रास, स्पेन और पोर्तुगाल ने स्थापित किये थे, वे प्राय सब स्वतन्त्र हो गये थे। जो कतिपय प्रदेश यूरोपियन राज्यो के हाथो मे शेष रहे थे, वे भी स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्नशील थे, और इङ्गलैण्ड आदि देश अपनी पुरानी औपनिवेशिक नीति मे परिवर्तन कर उनमें आन्तरिक स्वतन्त्रता की स्थापना के लिये विवश हो रहे थे। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि का भी अभी विकास नही हुआ था, और फ्रास, हालैण्ड, बेल्जियम आदि ने एशिया और अफ्रीका में अपने जो विशाल साम्राज्य आगे चलकर स्थापित किये, उनका भी अभी प्रारम्भ नही हुआ था। यद्यपि ब्रिटेन भारत के बडे भाग को अपनी अधीनता मे ला चुका था, पर वहा भी उसकी स्थिति अभी पूर्णतया सुरक्षित नही हुई थी। स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है, कि साम्राज्य प्रसार की जो पहली लहर पन्द्रहवी सदी के अन्त मे शुरू हुई थी, उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ तक वह बहुत क्षीण हो गई थी।

द्वितीय व्यावसायिक क्रान्ति—इस दशा मे उन्नीसवी सदी के मध्यभाग मे दूसरी व्यावसायिक क्रान्ति हुई। वैज्ञानिक आविष्कारो द्वारा मनुष्य ने प्रकृति पर जो भारी

विजय स्थापित करनी शुरू की थी, उसमे अब असाधारण उन्नति हुई। बिजली की शक्ति का उपयोग यन्त्रो के सचालन के लिये किया जाने लगा। कच्ची धातु मे लोहे और फौलाद को तैयार करने के लिये अत्यन्त उन्नत साधनो का आविष्कार हुआ। भाप और बिजली की शक्ति से चलने वाली विशाल मशीनो द्वारा आर्थिक उत्पत्ति बहुत बडे परिमाण में होने लगी। रेल, तार और टेलीफोन के आविष्कार के कारण देश और काल पर आश्चर्यजनक विजय स्थापित हुई, और उसके कारण ससार के विविध देश एक दूसरे के बहुत समीप आ गये। भाप से चलने वाले विशाल जहाजो का निर्माण शुरू हुआ, और हजारो टन वजन के बडे-बडे जहाज महासमुद्रो की छाती को चीरते हुए पृथ्वी का चक्कर लगाने लगे। इस दशा मे यूरोप के देश अपने क्षेत्र को बहुत सकीर्ण व छोटा अनुभव करने लगे। उन्हे आवश्यकता प्रतीत हुई, कि वे अपना विस्तार करें। उनके विशालकाय कारखानो मे जो सब प्रकार का माल प्रचुर मात्रा मे तैयार होता था, उसे केवल अपने देश मे खपा सकना सम्भव नही था। ब्रिटन, फास आदि देश अनुभव करते थे, कि साम्राज्य विस्तार के बिना उनका काम नही चल सकता। द्वितीय व्यावसायिक क्रान्ति के कारण जो नई आर्थिक परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी, वह उन्हे विवश कर रही थी, कि वे पृथिवी के पिछडे हुए देशो को शीघ्र से शीघ्र अपने प्रभाव मे ले आवे। पहली व्यावसायिक क्रान्ति मे जहा स्टीम इजन का आविष्कार हुआ था, और इङ्गलैण्ड के धनपति लोग यान्त्रिक शक्ति का उपयोग कर कारखानो का निर्माण करने के लिये तत्पर हुए थे, वहा इस द्वितीय व्यावसायिक क्रान्ति द्वारा पाश्चात्य ससार के हाथ मे प्रकृति की ऐसी शक्तिया आ गई थी, जिनसे कि वे बहुत अधिक मात्रा मे आर्थिक उत्पत्ति कर सकते थे। वैज्ञानिक आविष्कारो के कारण उनके पास अब ऐसे अस्त्र शस्त्र भी आ गये थे, एशिया और अफ्रीका के पिछडे हुए देश जिनके मुकाबले मे नही ठहर सकते थे। यूरोप के साम्राज्यवाद की सफलता मे यह वैज्ञानिक उन्नति प्रधान हेतु थी।

उग्र राष्ट्रीयता—फास की राज्यक्रान्ति के बाद राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति को बहुत बल मिला, और यूरोप के विविध राज्यो का निर्माण राष्ट्रीयता के सिद्धात के अनुसार होने लगा। फास और ब्रिटेन तो पहले ही राष्ट्रीय दृष्टि से सगठित थे। उन्नीसवी सदी के मध्य-भाग में जर्मनी और इटली मे भी राष्ट्रीय एकता की स्थापना हुई। ये राष्ट्रीय राज्य यह अनुभव करने लगे, कि उनकी सभ्यता और सस्कृति अन्य सब देशो की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। उनमे यह भी विचार उत्पन्न हुआ, कि वे अपने प्रभाव क्षेत्र को विस्तृत कर न केवल अपनी राष्ट्रीय उन्नति में समर्थ होंगे, अपितु मानव सभ्यता के विकास मे भी इससे सहायता मिलेगी। ब्रिटिश लोग अनुभव करते थे, कि भारत मे उनका शासन भारतीयो के लिये हितकर है, और भारत, बरमा, सीलोन, अफ्रीका आदि के विविध प्रदेशो मे शासन स्थापित कर वे मानव समाज का बहुत हित व कल्याण कर रहे हैं। उनके शासन से इन पिछडे हुए देशो को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने का अपूर्व अवसर मिल रहा है। एक प्रसिद्ध ब्रिटिश राजनीतिज्ञ का कहना था, कि ससार की सभ्यता और इतिहास मे एग्लो-सैक्सन जाति को एक सर्वप्रमुख शक्ति बनकर रहना है, और यह बात प्रकृति का ही एक विधान है। फ्रेंच नेता समझते थे, कि उपनिवेश-विस्तार

फ्रास के लिये जीवन-मरण का प्रश्न है, इसके बिना फ्रास का जीवन ही सम्भव नही है। जर्मनी का विचार था, कि जर्मन लोगो को भी पृथिवी पर प्रमुख और उपयुक्त स्थान प्राप्त होना चाहिये। अमेरिकन राष्ट्रपति रूजवेल्ट का कहना था, कि ससार के इतिहास में अमेरिकन लोगो को महत्त्वपूर्ण हाथ बटाना है। पाश्चात्य ससार के सभी देश उन्नीसवी सदी मे यह समझने लगे थे, कि भगवान ने उन्हे सभ्यता के प्रसार और पिछडे हुए एशियन और अफ्रीकन लोगो को सभालने का पवित्र कार्य सुपुर्द किया है। श्वेताङ्ग लोग मानव समाज मे सर्वोत्कृष्ट स्थान रखते है, और उन्हे सारे ससार का नेतृत्व करना है, यह विचार यूरोप मे एक स्वयसिद्ध सत्य माना जाता था। यूरोपियन लोगो को विश्वास था कि न केवल उनकी सभ्यता सर्वोत्कृष्ट है, अपितु नसल की दृष्टि से भी वे और लोगो की अपेक्षा ऊचे है। इसीलिये वे ससार के विविध भागो पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना सर्वथा उचित और आवश्यक समझते थे।

आर्थिक और राष्ट्रीय हेतुओ से प्रेरित होकर यूरोप के विविध राज्य उन्नीसवी सदी के मध्यभाग में एक बार फिर साम्राज्य-विस्तार के लिये प्रवृत्त हुए। इस बार उनके विस्तार का क्षेत्र प्रधानतया एशिया और अफ्रीका मे था। उन्होने सारी पृथिवी का भलीभाति अवगाहन किया। अफ्रीका के सघन जगलो मे, उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव के दुर्गम प्रदेशो मे और महासमुद्रो के बीच मे स्थित छोटे बडे टापुओ मे यूरोप के साहसी लोग आने जाने शुरू हुए। बीसवी सदी के प्रारम्भ तक यह दशा आ गई थी, कि पृथिवी का शायद कोई भी प्रदेश ऐसा नही बच रहा था, जहा यूरोप के लोगो ने पदार्पण न किया हो। इन विविध प्रदेशो पर यूरोप का प्रभावक्षेत्र भी बडी तेजी से स्थापित हो रहा था। एशिया और अफ्रीका के जो प्रदेश यूरोप के साम्राज्यवाद के शिकार नही भी हुए थे, वे भी किसी न किसी रूप मे उनके प्रभाव मे आ गये थे। प्रत्येक यूरोपियन राज्य इस बात के लिये कटिबद्ध था, कि पृथिवी के अधिक से अधिक प्रदेश पर अपना साम्राज्य या प्रभावक्षेत्र कायम करे। यूरोप मे भी जो देश आपेक्षिक दृष्टि से पिछडे हुए थे, वे पश्चिमी यूरोप के उन्नत देशो की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के शिकार हो रहे थे।

छब्बीसवां अध्याय

ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार

१ ब्रिटिश साम्राज्य

संसार के इतिहास में अब तक जितने साम्राज्यों का विकास हुआ है, ब्रिटिश साम्राज्य सम्भवतः उनमें सबसे बड़ा है। साम्राज्य निर्माण के कार्य में ब्रिटिश लोगों को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है।

इस साम्राज्य के स्वरूप को ठीक प्रकार से समझने के लिये हम इसे चार भागों में विभक्त कर सकते हैं---(१) उपनिवेश---कनाडा, न्यू फाउण्डलैंड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और दक्षिणी अफ्रीका, (२) भारतीय साम्राज्य, (३) क्राउन कालोनी, (४) संरक्षित राज्य, तथा राष्ट्रसंघ द्वारा सौंपे गये राज्य। इनमें से जो १८७१ ईस्वी तक ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हो गये थे, उन पर हम इस अध्याय में प्रकाश डालेंगे।

२ औपनिवेशिक राज्य

क—कनाडा

कनाडा में ब्रिटिश शासन—कनाडा पहले फ्रेंच उपनिवेश था। पन्द्रहवीं सदी के अन्तिम भाग में जब कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगाया, तो अनेक यूरोपियन जातियों ने इस नवीन भूखण्ड पर अपने उपनिवेश बसाने प्रारम्भ किये। कनाडा में फ्रेंच लोग बसे, और यह प्रदेश सन् १७६३ तक उन्हीं लोगों के हाथ में रहा। सप्तवर्षीय युद्ध की समाप्ति पर सन् १७६३ में कनाडा ब्रिटिश लोगों के अधीन हो गया। ब्रिटेन के लिये कनाडा का शासन करना सुगम कार्य न था। वहां के निवासी भाषा, धर्म, जाति आदि की दृष्टि से ब्रिटिश लोगों से सर्वथा भिन्न थे। परन्तु धीरे-धीरे वहां ब्रिटिश लोगों की संख्या बढ़ने लगी। अठारहवीं सदी के अन्तिम भाग में जब अमेरिका के ब्रिटिश उपनिवेशों में (जो कि वर्तमान समय में संयुक्तराज्य अमेरिका के नाम से विख्यात है) विद्रोह हुए, तो बहुत से राजभक्त उपनिवेशवासी कनाडा में जाकर बस गये। सब अमेरिकन लोग राज्यक्रान्ति के समर्थक नहीं थे। बहुत से ऐसे भी थे, जो ब्रिटिश छत्रछाया में निवास करने में ही अपना कल्याण समझते थे। इसलिये जब अमेरिकन राज्यक्रान्ति सफल हो गई, तो ये लोग पड़ोस के ब्रिटिश उपनिवेश कनाडा में जाकर बस गये। इनके अतिरिक्त, ब्रिटेन से जाकर वहां बसने वाले लोगों की संख्या भी कम न थी। आबादी की वृद्धि तथा बेकारी के कारण बहुत से ब्रिटिश लोग प्रतिवर्ष अपनी मातृभूमि को छोड़कर बाहर चले जाते थे। पहले ये लोग

अमेरिका में आबाद हुआ करते थे। पर अब उसके स्वाधीन हो जाने के कारण इनका क्षेत्र बदल गया, और ये लोग कनाडा मे जाकर बसने लगे। इन नये निवासियो से अपर कनाडा, न्यू ब्रुन्स्विक, नोवा स्कोटिया, प्रिंस एडवर्ड आइलैण्ड तथा न्यूफाउण्डलैण्ड का विकास हुआ। ब्रिटिश लोग ब्रिटेन तथा सयुक्त राज्य अमेरिका से आते गये, और कनाडा के विशाल व विस्तृत प्रदेशो मे बसते गये। ये बिखरी हुई बस्तिया ही धीरे-धीरे बाकायदा सगठित उपनिवेशो के रूप मे परिणत हो गई। प्रत्येक उपनिवेश की अपनी-अपनी सरकार थी, और इनके शासक लोग ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते थे।

स्वाधीनता का आन्दोलन—शुरू-शुरू मे इन उपनिवेशो के शासन मे उपनिवेश-वासियो का कोई हाथ न था। सम्पूर्ण शासन ब्रिटिश सरकार द्वारा सचालित होता था। पर धीरे-धीरे लोकतन्त्रवाद के सिद्धान्तो का उनमे भी प्रवेश किया गया, और उपनिवेश-वासियो को शासन मे अधिकार दिये जाने लगे। पर कनाडा के निवासी इन साधारण सुधारो से सतुष्ट नही हो सकते थे। 'स्वभाग्य निर्णय' तथा 'लोकतन्त्र शासन' के सिद्धान्तो को क्रिया मे परिणत करने के लिये उनमे घोर आन्दोलन चल रहा था। इसीलिए १८३७ मे कनाडा मे विद्रोह हो गया। इस विद्रोह का स्वरूप प्राय वैसा ही था, जैसा कि लगभग आधी सदी पहले के अमेरिकन विद्रोह का था। पर भेद यही है, कि कनाडा की क्रान्ति सफल नहीं हो सकी। पर इसमे सन्देह नही, कि असफल होकर भी कनाडियन क्रान्ति ने ब्रिटिश शासको की आखे खोल दी। उन्हे अब आवश्यकता अनुभव हुई, कि वे कनाडा-वासियो की शिकायतो को सुने, और उनके असन्तोष को दूर करने का प्रयत्न करे।

लार्ड डर्हम के प्रस्ताव—इसी उद्देश्य को दृष्टि मे रखकर लार्ड डर्हम को कनाडियन समस्या का अध्ययन करने तथा उसका हल करने के उपायो को सुझाने के लिये नियत किया गया। लार्ड डर्हम ने पाच मास कनाडा मे व्यतीत किये, और सब बातो का भली भाति अनुशीलन कर वह इस परिणाम पर पहुचे, कि जब तक कनाडा के उपनिवेशो को अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाले सम्पूर्ण मामलो मे पूरा-पूरा अधिकार न दिया जायगा, तब तक उनकी समस्या का हल नहीं हो सकेगा। इसके लिये उसने प्रस्ताव किया कि (१) लोअर कनाडा और अपर कनाडा को मिलाकर एक सघ मे सगठित किया जाए, और कनाडा के इस सघ मे इस बात की गुन्जाइश रखी जाए कि अन्य समीपवर्ती उपनिवेश भी उसमे यथा समय सम्मिलित किये जा सके। (२) प्रत्येक उपनिवेश मे लोकतन्त्रवाद के अनुसार स्वराज्य की स्थापना की जाए और मन्त्रिमण्डल को व्यवस्थापिका सभा के उत्तरदायी बनाया जाए।

औपनिवेशिक स्वराज्य का प्रारम्भ—ब्रिटिश साम्राज्य के आधुनिक इतिहास मे लार्ड डर्हम की यह रिपोर्ट बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसे औपनिवेशिक स्वराज्य की आधारशिला माना जाता है। इस रिपोर्ट के अनुसार १८४० मे लोअर और अपर—दोनो कनाडाओ को मिलाकर एक कर दिया गया, तथा उनकी व्यवस्थापिका सभा का सगठन हुआ। मन्त्रिमण्डल को व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। ब्रिटिश सम्राट् के प्रतिनिधि रूप मे एक गवर्नर की व्यवस्था की गई, जिसे ब्रिटिश

सरकार नियत करती थी। कुछ समय पश्चात् अन्य उपनिवेशो मे (जो अमेरिका के उत्तर मे विद्यमान थे) भी इसी पद्धति का अनुसरण किया गया। नोवा स्कोटिया, न्यू ब्रुन्स्विक आदि अन्य उपनिवेशो मे भी कुछ ही वर्षो मे औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना हुई। धीरे-धीरे ये सब उपनिवेश कनाडा के सघ (फिडरेशन) मे सम्मिलित कर लिये गये, और कनाडा के आधुनिक उपनिवेश का प्रादुर्भाव हुआ। इस सघ मे सम्मिलित विविध उपनिवेशो व प्रान्तो मे अपनी-अपनी पृथक् व्यवस्थापिका सभाएँ तथा उनके प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल भी विद्यमान है, और साथ ही सघ की पृथक् केन्द्रीय पार्लियामेन्ट है, जो सम्पूर्ण सघ के साथ सम्बन्ध रखनेवाले विषयो का सञ्चालन करती है।

केन्द्रीय शासन—केन्द्रीय सरकार का सगठन निम्नलिखित प्रकार से है—पार्लियामेन्ट मे दो सभाएँ है, सीनेट और लोकसभा। सीनेट के सदस्य गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत किये जाते है, और वे जन्म भर सदस्य पद पर रहते है। लोकसभा के सदस्यो को जनता चुनती है। मन्त्रिमण्डल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी रहता है। गवर्नर जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश सरकार द्वारा की जाती है। यद्यपि उसे वीटो का अधिकार प्राप्त है, पर ब्रिटिश सम्राट् की तरह उसका यह प्रतिनिधि भी अपने इस अधिकार का प्राय उपयोग नही करता। विदेशी मामलो के अतिरिक्त अन्य सब विषयो मे कनाडा पूर्णतया स्वतन्त्र राज्य के समान है।

लार्ड डर्हम द्वारा प्रतिपादित नीति मे ब्रिटेन का अपने उपनिवेशो के प्रति रुख बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है। यदि अठारहवी सदी के अन्तिम भाग मे अमेरिकन उपनिवेशो के साथ भी ब्रिटेन यही बर्ताव करता, तो सम्भवत वे कभी ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक् न होते। औपनिवेशिक स्वराज्य के सिद्धान्त से जहा उपनिवेश क्रियात्मक दृष्टि से पूर्णतया स्वतन्त्र है, वहा वे ब्रिटिश साम्राज्य के महत्त्वपूर्ण अग भी है। इससे ब्रिटेन का उत्कर्ष बहुत बढ गया है।

कनाडा का विस्तार—कनाडा के लिये पश्चिम दिशा मे प्रशान्त महासागर की तरफ अपना विस्तार करने के लिये अनन्त क्षेत्र पडा हुआ है। कनाडा की सरकार का जितने प्रदेश पर अधिकार है, वह सम्पूर्ण यूरोप व सयुक्त राज्य अमेरिका की अपेक्षा भी बडा है। इस विशाल भूखण्ड के जङ्गलो को साफ कर वहा बसने के लिये अभी बहुत ज्यादा गुजायश है। लाखो मनुष्य प्रतिवर्ष यूरोप व अमेरिका से कनाडा पहुचते है, और इन शून्य प्रदेशो को आबाद करते है। कनाडा मे खनिज पदार्थो की भी कमी नही है। खानो से प्राप्त होनेवाले बहुमूल्य पदार्थों के लोभ से बहुत से मनुष्य हर साल कनाडा पहुचते है। आवागमन के साधनो के उन्नत हो जाने के कारण पश्चिमी कनाडा को आबाद करना भी सुगम हो गया है। चार सुदीर्घ रेलवे है, जो कनाडा को पूर्व से पश्चिम तक—अटलाण्टिक महासागर से प्रशान्त महासागर तक—मिलाती है। इनमे से कनाडियन पैसिफिक रेलवे का ही विस्तार बारह हजार मील है। इन रेलो का परिणाम यह हुआ है, कि पश्चिम के प्रदेश लगातार आबाद होते जाते है, और नये-नये प्रदेश एक राज्य का रूप धारण कर कनाडा के सघ में सम्मिलित होते जाते है। मनिटोबा १८७० मे

सघ मे सम्मिलित हुआ, ब्रिटिश कोलम्बिया १८७१ मे, प्रिस एडवर्ड आइलैण्ड १८७३ में, एल्वर्टा और सस्कचेवन १९०५ मे। कनाडा की आवादी भी वडे वेग से बढ रही है। १८१५ मे उसकी आवादी केवल पाच लाख थी, १९२५ मे एक सदी वाद वह बढकर नब्बे लाख हो गई थी।

न्यू फाउण्डलैण्ड—न्यू फाउण्डलैण्ड कनाडा के सघ के वहुत समीप स्थित है। पर अव तक वह कनाडा-सघ मे सम्मिलित नही हुआ है। वह एक स्वतन्त्र पृथक् उपनिवेश के रूप मे विकास कर रहा है। उसमे भी औपनिवेशिक स्वराज्य विद्यमान है, और वह भी अन्य उपनिवेशो के समान ही स्थिति रखता है।

ख—आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया अपने आप मे ही एक महाद्वीप है, जो अकेला सयुक्तराज्य अमेरिका व यूराप के प्राय वरावर है। जिस समय यूरोपियन लोगो ने इसमे प्रवेश किया, तव वहा कुछ मूल जातिया निवास करती थी, जो सभ्यता की दृष्टि से उन्नत न थी। यूरोपियन लोगो को उन्हे नष्ट करने मे तथा इस विशाल भूखण्ड पर यथेष्ट वस्तिया वसाने मे कोई विशेष दिक्कत नही हुई। आस्ट्रेलिया का अधिकाश भाग शीतोष्ण कटिवन्ध मे स्थित है, इसलिये वहा की जलवायु वहुत उत्तम तथा स्वास्थ्यप्रद है। उत्तरी आस्ट्रेलिया मे जल की कमी है, सिंचाई का यथोचित प्रवन्ध न होने के कारण अभी उसमे वस्तिया ज्यादा नही वस सकी है। पर दक्षिणी तथा पूर्वी आस्ट्रेलिया वहुत उपजाऊ है। वहा खेती वहुत हो सकती है। साथ ही, वहा वहुत से खनिज पदार्थ भी पाये जाते है। इसलिये इन प्रदेशो मे यूरोपियन लोग विशेष रूप से आवाद हुए है। आस्ट्रेलिया के दक्षिण मे समीप ही विद्यमान टस्मानिया का टापू भी अपने उत्तम जलवायु, उपजाऊ जमीन तथा खनिज पदार्थों की प्रचुरता के कारण वहुत प्रसिद्ध है। वहा भी पाश्चात्य लोग प्रचुर सख्या मे आवाद हुए है, और वह व्यापार तथा व्यवसाय का केन्द्र वन गया है।

आस्ट्रेलिया में यूरोपियन लोगो का प्रवेश—सोलहवी सदी मे जव पोर्तुगीज लोग मसाले के द्वीपो की ढूढ मे पूर्वी देशो की छानवीन कर रहे थे, तव उनके अनेक मल्लाह इस महाद्वीप मे भी पहुँचे थे। पर वे यहा पर वसे नही, और न ही उन्होने व्यापार के लिये यहा कोई कोठी ही वनाई। १६४२ में टस्मान नामक एक डच मल्लाह ने आस्ट्रेलिया के दक्षिण मे विद्यमान उस टापू का पता लगाया, जो आजकल उस ही के नाम से टस्मानिया कहाता है। इसी टस्मान ने आस्ट्रेलिया के पूर्व में विद्यमान एक विशाल द्वीप समूह का पता लगाया, जिसका नाम न्यूजीलैण्ड रखा गया। इस प्रकार यद्यपि इन द्वीपो का पता पहले-पहल डच लोगो ने लगाया, पर वे वहा पर वसे नही। कैप्टिन कुक नाम के एक अंगरेज मल्लाह ने अठारहवी सदी मे इन प्रदेशो के चक्कर लगाये, और उसी की यात्राओ के कारण इंगलिश लोगो का ध्यान इन द्वीपो की तरफ आकृष्ट हुआ। न्यूजीलैण्ड के तट का चक्कर काटकर १७६९-७० मे कैप्टिन कुक ने पश्चिम की तरफ आस्ट्रेलिया की ओर प्रस्थान किया। पहले-पहल आस्ट्रेलिया मे वह जिस स्थान पर पहुँचा, वहा की भूमि वहुत ही शस्य श्यामल तथा हरी-भरी थी। इसलिये उसने उसका नाम 'बोटनी बे'

(हरी-भरी खाड़ी) रखा। कैप्टिन कुक ने इस प्रदेश पर ब्रिटिश लोगो का झण्डा खड़ा किया और ब्रिटिश सम्राट् के नाम पर इस पर अधिकार कर लिया। ग्रेट ब्रिटेन के वेल्स प्रदेश से यह प्रदेश मिलता-जुलता है, यह समझकर इसका नाम 'न्यू साउथवेल्स' रखा गया।

ग्रेट ब्रिटेन ने इस प्रदेश का उपयोग सबसे पूर्व 'काला पानी' के रूप मे प्रारम्भ किया। १७८८ मे ७५० अभियुक्त अपना दण्ड भोगने के लिये वहा भेजे गये। आस्ट्रेलिया मे इगलिश लोगो की यह पहली बस्ती थी, जो अपराधी कैदियो से शुरू हुई। इसके बाद प्रतिवर्ष कैदी वहा भेजे जाने लगे, और न्यू साउथ वेल्स की आबादी निरन्तर बढती गई। कुछ समय बाद इगलिश लोगो ने अनुभव किया, कि ये प्रदेश भेड पालने के लिये बहुत उपयुक्त है, और यहा ऊन का व्यवसाय बहुत तरक्की कर सकता है। इस दृष्टि से १७०० मे बहुत सी भेडे इगलैण्ड से आस्ट्रेलिया भेजी गईं। कृषि और भेड पालकर ऊन एकत्रित करना—ये दो पेशे इस नई बस्ती मे खूब तरक्की करने लगे। जमीन बिलकुल नई थी, इसलिये बहुत उपजाऊ थी। परिणाम यह हुआ, कि आस्ट्रेलिया मे बसे हुए लोगो को खूब फायदा होने लगा। नफे से आकृष्ट होकर बहुत से स्वतन्त्र मनुष्य भी आस्ट्रेलिया जाने लगे, और कैदियो की बस्ती के साथ-साथ स्वतन्त्र लोगो की बस्ती भी वहा विकसित होने लगी। बोटनी बे के उत्तर मे एक स्थान था, जो बन्दरगाह बनाने के लिये बहुत उपयुक्त था। वहा सिडनी का बन्दरगाह विकसित हुआ। न्यू साउथ वेल्स के बाद टस्मानिया तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया मे भी कैदियो को भेजा जाना शुरू हुआ और इन कैदियो द्वारा ही वहा पर बस्तिया बसनी प्रारम्भ हुईं। १८५१ मे आस्ट्रेलिया मे अनेक स्थानो पर सोने की खान उपलब्ध हुईं, जिनसे आकृष्ट होकर हजारो मनुष्य प्रतिवर्ष ब्रिटेन से आस्ट्रेलिया पहुचने लगे। पूजीपति और मजदूर—दोनो ही प्रचुर सख्या मे वहा जाने शुरू हुए। सोने की खानो की वजह से आस्ट्रेलिया की बहुत शीघ्रता से तरक्की हुई। कैदियो की अपेक्षा स्वतन्त्र मनुष्य वहा बहुत अधिक बढ गये। इन स्वतन्त्र मनुष्यो ने इस बात का विरोध करना शुरू किया कि कैदी लोग उनके प्रदेशो मे बसाये जाए। इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ, कि आस्ट्रेलिया को 'काला पानी' के रूप मे प्रयुक्त करना बन्द कर दिया गया।

१७८८ मे आस्ट्रेलिया की आबादी केवल ७५० थी। बढते-बढते १९२१ मे वह ५५ लाख से ऊपर पहुँच गई थी। न्यू साउथ वेल्स, टस्मानिया और पश्चिमी आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त विक्टोरिया, क्वीन्सलैण्ड तथा दक्षिणी आस्ट्रेलिया—इन तीन उपनिवेशो का वहा और विकास हुआ। ये उपनिवेश कैदियो की बस्ती के रूप मे कभी प्रयुक्त नही हुए। इसमे कृषि, ऊन के व्यवसाय तथा सोने की खानो से आकृष्ट होकर स्वतन्त्र मनुष्य समय-समय पर बसते गये, और इसी के परिणामस्वरूप बाकायदा उपनिवेशो का विकास हो गया। पहले प्रत्येक उपनिवेश की सरकार अलग-अलग थी। कैदियो की बस्तियो में फौजी शासन होता था और स्वतन्त्र मनुष्यो पर ब्रिटेन द्वारा भेजे हुए गवर्नर शासन करते थे। पर बाद मे धीरे-धीरे इन आस्ट्रेलियन उपनिवेशो मे स्वराज्य का प्रारम्भ किया गया। कैदियो की बस्तियो से भी फौजी शासन उठा लिया गया। प्रत्येक उपनिवेश मे व्यवस्थापिका सभा और उसके प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल की स्थापना की गई।

सघराज्य का निर्माण—यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि समयान्तर मे इन उपनिवेशो मे—जिनके निवासियो की भाषा, जाति, धर्म, सभ्यता, सस्कृति सब एक थी, एक राज्य की स्थापना हो। इसीलिये एक आस्ट्रेलियन सघ (फिडरेशन) बनाने के लिए उन्नीसवी सदी के अन्तिम भाग मे आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। बहुत समय तक इस प्रश्न पर बहस होती रही। १८९१ मे सब उपनिवेशो के प्रतिनिधि एक राष्ट्रीय महासभा (कान्वेन्शन) के रूप मे एकत्रित हुए, और उन्होने आस्ट्रेलियन सघ के लिये शासन-व्यवस्था की रचना की। इस शासन विधान को जनता की सम्मति के लिये उपस्थित किया गया। जनता द्वारा स्वीकृत कराके इसे ब्रिटिश पार्लियामेट के सम्मुख पेश किया गया। कुछ परिवर्तनो के साथ यह वहा पास हो गया, और सन् १९०० मे स्वीकृत हुए ब्रिटिश पार्लियामेट के एक एक्ट द्वारा आस्ट्रेलियन सघ का निर्माण हुआ। आस्ट्रेलियन सघ म कुल मिलकर छ राज्य व उपनिवेश अन्तर्गत है—न्यू साउथ वेल्स, टस्मानिया, विक्टोरिया, क्वीन्सलैण्ड, दक्षिणी आस्ट्रेलिया और पश्चिमी आस्ट्रेलिया। इन राज्यो की अपनी-अपनी पृथक् सरकारे है। प्रत्येक राज्य मे अपनी अपनी व्यवस्थापिका सभाएँ और मन्त्रिमण्डल है।

ग—न्यूजीलैण्ड

न्यूजीलैण्ड का विकास—आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पूर्व मे १२०० मील की दूरी पर न्यूजीलैण्ड का उपनिवेश स्थित है। इसमे दो बडे तथा अन्य बहुत से छोटे-छोटे द्वीप है, जिन सबको मिलाकर न्यूजीलैण्ड का उपनिवेश कहते है। इस उपनिवेश का विस्तार ग्रेट ब्रिटेन से सवाये के लगभग है। उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ मे ही ब्रिटिश लोगो ने इस द्वीप मे जाना शुरू कर दिया था। १८१४ से बहुत से ईसाई मिशनरी न्यूजीलैण्ड के मूल निवासियो को अपने धर्म मे दीक्षित करने का भी उद्योग करने लगे थे। न्यूजीलैण्ड के मूल निवासी 'मओरी' लोग है, जो सभ्यता की दृष्टि से अफ्रीका के नीग्रो व आस्ट्रेलिया के मूल निवासियो के समान बहुत पिछडे हुए न थे। सर जार्ज ग्रे ने इनके सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा था—"बहुत अशो मे यह अत्यन्त ऊची जाति है। ये बडे उत्कृष्ट योद्धा है, ये बडे वाग्मी, समझदार, अभिमानी तथा सीधे लोग है। उन्होने मेरे साथ जो व्यवहार किया है, उससे उन्होने मेरे भावो तथा सहानुभूति को जीत लिया है।" इससे स्पष्ट है, कि इन 'मओरी' लोगो को अपने धर्म मे दीक्षित कर लेना या उन्हे सर्वथा नष्ट कर देना बहुत सुगम कार्य न था। 'मओरी' लोगो ने अग्रेजो से अनेक घनघोर युद्ध किये। आखिर, १८४० मे दोनो जातियो मे परस्पर सुलह हो गई। 'मओरी' लोगो ने महारानी विक्टोरिया को अपना अधिपति मानना स्वीकृत कर लिया। इसके बदले मे उनके निवास के लिये एक निश्चित प्रदेश अलग कर दिया गया, जिसमे वे स्वतन्त्रतापूर्वक वहा निवास कर सके। मओरी लोगो से निबटारा करके अग्रेजो ने न्यूजीलैण्ड के टापुओ मे अपनी बस्तिया बसानी प्रारम्भ की। इस कार्य के लिये ग्रेट ब्रिटेन मे एक कम्पनी बाकायदा बनाई गई थी, जिसका नाम था—'न्यूजीलैण्ड कम्पनी'। इसने इस द्वीप-समूह को आबाद करने का निरन्तर प्रयत्न किया।

ऊन के व्यवसाय के लिये भेडो को पालने की न्यूजीलैण्ड मे भी बहुत सुविधा थी। इससे आकृष्ट होकर बहुत से अंगरेज वहा जा बसे। साथ ही, कुछ वर्षो के बाद जब आस्ट्रेलिया की तरह न्यूजीलैण्ड मे भी सोने की खाने मिल गई, तब तो बहुत बडी सख्या मे अगरेज लोग वहा जाकर आबाद होने लगे। न्यूजीलैण्ड का बडी शीघ्रता से विकास हुआ, और रोजगार के लिये उपयुक्त स्थान ढूंढने की धुन मे अगरेजो ने 'मओरी' लोगो की बस्तियो मे भी हस्तक्षेप करना शुरू किया। परिणाम यह हुआ, कि १८६० और १८७१ मे 'मओरी' लोगो ने दो बार विद्रोह किये। इन्हे बडे भयकर रूप से कुचला गया। उसके बाद फिर कभी 'मओरी' विद्रोह नही हुए है।

सघ का शासन विधान—न्यूजीलैण्ड के विविध प्रदेशो मे जो बस्तिया बस रही थी, १८५१ मे उनकी सख्या छ थी—आकलैण्ड, वेलिंगटन, न्यू प्लाइमाउथ, (ये न्यूजीलैण्ड के उत्तरी द्वीप मे है), नेल्सन, आटागो और कैन्टरबरी (ये दक्षिणी द्वीप में है)। १८५२ मे इन सबको सगठित कर एक शासनविधान की व्यवस्था की गई। ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा स्वीकृत एक एक्ट के अनुसार इन छओ बस्तियो व राज्यो मे पृथक् स्थानीय स्वराज्य की स्थापना की गई, और साथ ही विविध बस्तियो को मिलाकर एक केन्द्रीय सघ का निर्माण किया गया। सघ की शासनव्यवस्था इस प्रकार बनाई गई—व्यवस्थापन विभाग मे दो सभाए रखी गई, कौन्सिल और प्रतिनिधि-सभा। कौंसिल के सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा नियत किये जाने और प्रतिनिधि सभा के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होने की व्यवस्था की गई। मन्त्रिमण्डल प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। गवर्नर-जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश सरकार द्वारा की जाने की व्यवस्था रखी गई।

एकात्मक (यूनिटरी) राज्य का निर्माण—यह पद्धति १८७५ तक जारी रही। पर न्यूजीलैण्ड मे बहुत से टापू है, और धीरे-धीरे इन टापुओ मे भी बस्तिया बसती गईं। इन सब मे प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना कर सकना कठिन था, और इतने सारे प्रान्तो के हो जाने से केन्द्रीय सरकार की शक्ति भी बहुत कम हो जाती थी। इसलिये १८७६ मे प्रान्तीय स्वराज्य का अन्त कर न्यूजीलैंड मे एक मजबूत केन्द्रीय लोकतन्त्र सरकार की स्थापना की गई।

घ—दक्षिणी अफ्रीका

प्रारम्भिक इतिहास—अफ्रीकन महाद्वीप के सबसे दक्षिणी सिरे पर एक अन्तरीप है, जिसे सदाशा का अन्तरीप (केप आफ गुड होप) कहते है। इस पर सबसे पहले डच लोगो ने अपना अधिकार किया था, और वे ही लोग यहा पर आबाद हुए थे। फ्रेंच राज्यक्रान्ति के अनन्तर हालैण्ड फ्रास के अधीन हो गया था, और नैपोलियन के फ्रेंच सम्राट् बन जाने पर यह देश उसके साम्राज्य का अग बन गया था। क्योकि हालैण्ड नैपोलियन के अधीन था, इसलिए इस अन्तरीप मे विद्यमान केप कालोनी (अन्तरीप-उपनिवेश) नामक डच उपनिवेश पर भी नैपोलियन का अधिकार था। नैपोलियन की शक्ति को नष्ट करने के लिए जब ब्रिटेन ने अनवरत रूप से सघर्ष प्रारम्भ किया, तब

यूरोप से हजारो मील की दूरी पर स्थित इस उपनिवेश पर नैपोलियन या हालैण्ड का अधिकार कायम न रह सका, और यह ग्रेट ब्रिटेन के कब्जे मे आ गया। वीएना की काग्रेस में (सन् १८१४) केप कोलोनी पर ब्रिटेन के अधिकार को स्वीकृत कर लिया गया। तब से यह प्रदेश ब्रिटेन के ही अधीन है। जिस समय केप कोलोनी ब्रिटेन के हाथ में आया, उस समय उसकी आबादी निम्नलिखित प्रकार से थी—(क) २७,००० गौर वर्ण के मनुष्य, जो प्राय सभी डच जाति के थे। (ख) ३०,००० नीग्रो तथा मलय जाति के गुलाम, (ग) १७,००,००० हॉटेन्टोन्ट जाति के लोग, जो उस प्रदेश के मूल निवासी थे। १८२० के बाद ब्रिटिश लोगो ने निरन्तर इस प्रदेश मे जाना तथा बसना प्रारम्भ किया। परन्तु गौरवर्ण के लोगो की अधिक सख्या डच जाति की ही रही। डच लोग प्राय किसान थे। वे अपनी भाषा, रीति-रिवाज तथा सभ्यता को किसी भी दशा मे छोडना नही चाहते थे। उनकी रक्षा के लिए वे मर मिटने को उद्यत रहते थे। केप कोलोनी के अपने अधिकार मे आ जाने पर ब्रिटिश शासको ने कोशिश की कि इगलिश भाषा, रीति-रिवाज तथा सस्थाओ को वहा पर प्रयोग में लाए। डच किसान, जो बोअर नाम से प्रसिद्ध है, इस बात को सहन नही कर सके। वे नही चाहते थे, कि उनके प्रदेश मे अग्रेजी भाषा उपयोग मे आए और इगलिश ढग से न्यायालयो का सगठन किया जाय। सन् १८३३ मे अग्रेजी सरकार ने निश्चय किया, कि दास-प्रथा का अन्त कर दिया जाय। बोअर लोग प्राय दासो द्वारा ही खेती का कार्य किया करते थे। दास-प्रथा का अन्त कर देने से उन्हे भारी नुकसान था। दासो को मुक्त कराने के लिए ४½ करोड के लगभग रुपये ब्रिटिश सरकार ने खर्च किये, पर बोअर लोगो की दृष्टि मे यह कीमत बहुत कम थी। वे इससे सतुष्ट नही हुए।

बोअर लोगो का महाप्रस्थान—ब्रिटिश शासको के इस व्यवहार से तग आकर बोअर लोगो ने निश्चय किया, कि केप कोलोनी को—जिसे कि उन्होने स्वय या उनके पूर्वजो ने पहले-पहल आबाद किया था, सदा के लिये छोड कर उत्तर मे अपने लिये नई बस्तिया बसाले। बोअर लोगो का यह 'महाप्रस्थान' १८३६ मे शुरू हुआ। अपने सब माल-असबाब को बडे-बडे छकडो पर (जिनमे बैल जुते होते थे) लादकर दस हजार बोअर लोग उत्तर की ओर चल पडे। केप कोलोनी के उत्तर मे उस समय भयकर जगल थे, जिनमे बहुत सी जगली जातिया निवास करती थी। बोअर लोगो ने इन जगलो को साफ किया, और दो नये उपनिवेश बसाये। ये नये उपनिवेश नैटाल तथा ओरेन्ज नदी की घाटी मे बसाये गये थे। कुछ समय तक बोअर लोग अपने नये प्रदेशो मे स्वतन्त्रता के साथ बसते रहे। ब्रिटिश लोगो ने उनमे हस्तक्षेप नही किया। पर यह दशा देर तक नही रह सकी। नैटाल समुद्र तट पर स्थित था। ब्रिटिश लोग नही चाहते थे, कि समुद्र-तट के ऐसे महत्वपूर्ण स्थान पर एक विदेशी राज्य कायम हो जाए। इसलिये उन्होने डर्बन (उस समय यह पोर्ट नैटाल कहाता था, और नैटाल प्रदेश का मुख्य नगर तथा बन्दरगाह था) पर आक्रमण करने के लिये एक सेना भेजी। १८४२ मे ब्रिटिश तथा डच सेनाओ मे युद्ध हुआ। डच सेना परास्त हो गई, और नैटाल ब्रिटिश लोगो के कब्जे में आ गया। अग्रेज लोग ओरेन्ज के स्वतन्त्र डच राज्य को भी अपने अधीन करना चाहते थे। १८४८

मे उन्होने उस पर भी आक्रमण किया, और डच लोगों को परास्त कर अपने अधिकार मे कर लिया।

बोअर लोग एक बडी विकट समस्या का सामना कर रहे थे। इँगलिश लोग उन्हें शान्ति से नही रहने देना चाहते थे। यदि ब्रिटिश शासक केवल अपना राज्य ही स्थापित करते, तो उन्हे कोई विशेष आपत्ति न भी होती, पर ब्रिटिश लोग अपनी भाषा, सस्कृति, गस्था आदि को प्रचलित किये बिना नही रह सकते थे, और बोअर लोगो के लिये यह सह सकना असम्भव था। परिणाम यह हुआ, कि एक बार फिर बोअर लोगो ने महाप्रस्थान शुरू किया। ओरेन्ज उपनिवेश के उत्तर मे वाल नदी के पार एक नया उपनिवेश बोअर लोगो द्वारा बसाया गया, जो अब ट्रासवाल के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रिटिश लोग सम्भवत इसमे भी हस्तक्षेप करते, पर उनकी सम्मति मे इसका कोई अधिक महत्व नहीं था। यह मुख्यतया पशुओं के लिये चरागाह का ही काम दे सकता था। इसलिये ब्रिटिश लोगो ने यही उपयुक्त समझा, कि इसे जीतकर अपने अधीन करने की तकलीफ न उठाई जाए। १८५२ मे ब्रिटिश तथा बोअर लोगो मे सन्धि हो गई, जिसके अनुसार अगरेजो ने ट्रासवाल मे बोअर लोगो की स्वाधीनता को स्वीकृत कर लिया, और साथ ही यह विश्वास दिलाया, कि इस प्रदेश मे बोअर लोग स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकेंगे, और ब्रिटिश लोग उसमे किसी प्रकार से हस्तक्षेप नही करेगे। दो वर्ष पश्चात् १८५४ मे ओरेन्ज उपनिवेश की भी स्वाधीनता स्वीकृत कर ली गई, और वह 'ओरेन्ज का स्वतन्त्र राज्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार अब दक्षिणी अफ्रीका में कुल चार उपनिवेश हो गये, जिनमे से दो—केप कोलोनी और नेटाल—अँगरेजो के अधीन थे, और शेष दो—ओरेन्ज का स्वतन्त्र राज्य तथा ट्रासवाल—बोअर लोगो के।

३ भारतवर्ष

यूरोप के विविध लोगो ने किस प्रकार भारत मे व्यापार का प्रारम्भ किया, इस देश की राजनीतिक दुरवस्था से लाभ उठाकर उन्होने किस प्रकार यहा अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न किया, और इस प्रयत्न मे किस प्रकार अन्त मे ब्रिटेन को सफलता हुई, इसका वृत्तान्त ससार के आधुनिक इतिहास मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पर भारतीय पाठको के लिये लिखे गये इस इतिहास मे इसका विवरण देना उपयोगी नही होगा। हमारे सब पाठक इस वृत्तान्त से भली-भाति परिचित ही होगे। पर यहा यह निदेश करना आवश्यक है, कि ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने भारत को विजय करने के लिये कोई सेनाएँ नही भेजी। जिस समय नये प्रदेशो की खोज के लिये व पूर्वी देशो के साथ व्यापार का विकास करने के लिये यूरोप के लोग प्रवृत्त हुए, तो इङ्गलैण्ड मे एक कम्पनी की स्थापना हुई, जिसका नाम ईस्ट इण्डिया कम्पनी था, और जिसका उद्देश्य भारत के साथ व्यापार करके समृद्ध होना था। इस कम्पनी के प्रतिनिधियो ने भारत के मुगल बादशाहो से व्यापार सम्बन्धी अनेक सुविधाएँ प्राप्त की, और समुद्र तट पर अनेक कोठिया स्थापित की, जो कम्पनी के व्यापार का केन्द्र होती थी। अग्रेजो के समान पोर्तुगीज, डच और फ्रेञ्च लोग भी भारत के साथ अपना इसी ढग का व्यापार विकसित

करने के लिये तत्पर थे।

औरङ्गजेब की साम्प्रदायिक नीति के कारण दिल्ली के मुगल बादशाहो की शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी। अठारहवी सदी के मुगल बादशाह बहुत निर्बल थे, और उनके शासन के विरुद्ध राजपूतो, मराठो और सिक्खो ने विद्रोह का झण्डा खडा कर दिया था। मुगल बादशाहत मे राष्ट्रीय अनुभूति का अभाव था। अत विविध प्रदेशो पर शासन करनेवाले सूबेदार लोग भी अवसर प्राप्त होने पर अपनी शक्ति बढाने व स्वतन्त्र राजाओ व नवाबो के समान शासन करने के लिये उद्यत रहते थे। मुगल बादशाहत की शक्ति के आधार उसके विविध सरदार, सूबेदार, सामन्त और सैनिक ही थे। यदि बादशाह निर्बल हो, तो इनमे स्वाभाविक रूप से स्वच्छन्द हो जाने की भावना जोर पकडने लगती थी। अनेक बडे सूबो के शासक वशक्रमानुगत रूप से अपने प्रदेशो का शासन करते थे, राज्य के अनेक उच्च पद भी वशक्रमानुगत रूप से चलते थे। उस समय भारत मे न राष्ट्रीयता की भावना थी, और न लोकतन्त्रवाद की सत्ता थी। इस दशा मे यूरोप की विविध व्यापारी कम्पनियो को इस देश के राजनीतिक मामलो मे हस्तक्षेप करने का अवसर मिल गया। यहा की राजनीतिक दुर्दशा से लाभ उठाकर अपनी राजनीतिक सत्ता इस देश मे स्थापित की जा सकती है, यह विचार सबसे पहले फ्रास के लोगो मे उत्पन्न हुआ था। ड्यूप्ले पहला यूरोपियन राजनीतिज्ञ था, जिसने भारत मे फ्रास का साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न लिया। पर फ्रेंच लोगो को अपने प्रयत्न मे सफलता नही मिल सकी। इसका एक प्रमुख कारण यह था, कि अठारहवी सदी मे फ्रास मे बूर्बो वश का निरकुश व स्वेच्छाचारी शासन था, और भारत मे फ्रेंच लोग व्यापार के विस्तार का जो प्रयत्न कर रहे थे, उसका सचालन फ्रास की इस निरकुश सरकार द्वारा ही होता था। इसके विपरीत, ब्रिटेन की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ब्रिटिश सरकार से के नियन्त्रण से प्राय स्वतन्त्र थी। अत उसके लिये यह अधिक सुगम था, कि वह समय और परिस्थिति के अनुसार स्वतन्त्रता के साथ कार्य कर सके। ड्यूप्ले के प्रधान इगलिश प्रतिद्वन्द्वी क्लाइव को यह आवश्यकता नही थी, कि वह अपने प्रत्येक कार्य के लिये सरकार की अनुमति ले। इसके विपरीत ड्यूप्ले को अपने कार्यो के लिये फ्रास की सरकार का मुँह ताकना पडता था, और इस युग की फ्रेंच सरकार सर्वथा विकृत और दुर्दशाग्रस्त थी। भारत के विविध राजाओ, नवाबो व सूबेदारो के पारस्परिक झगडो का लाभ उठाकर अन्त मे ब्रिटेन की ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस देश के बडे भाग मे अपना शासन स्थापित करने मे समर्थ हुई। उन्नीसवी सदी के मध्य भाग तक प्राय सम्पूर्ण भारत मे अग्रेजो का आधिपत्य स्थापित हो गया था, और इस देश के विविध राजा व नवाब उनकी अधीनता मे आ गये थे।

यद्यपि भारत मे राष्ट्रीय एकता की भावना का प्राय अभाव था, पर यहा की जनता इन विधर्मी और विदेशी शासको से सर्वथा असतुष्ट थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अफसर भारत मे अपने शासन को अपनी आर्थिक समृद्धि का साधनमात्र समझते थे। उनकी आर्थिक नीति का सचालन इसी उद्देश्य से होता था, कि कम्पनी की आमदनी मे निरन्तर वृद्धि हो। साथ ही, भारत के अग्रेजी शासक इस देश के धार्मिक विश्वासो व

पुरानी परम्पराओ की जरा भी परवाह नही करते थे। इस दशा का परिणाम यह हुआ, कि उनके शासन के विरुद्ध भावना इस देश मे निरन्तर जोर पकडती गई, और १८५७ में यह भावना एक राज्यक्रान्ति के रूप मे परिवर्तित हो गई। पर सन् ५७ की यह राज्य-क्रान्ति सफल नही हो सकी, अग्रेजलोग इसे कुचलने मे समर्थ हुए, और भारत मे अग्रेजी शासन की जडें और भी मजबूत हो गई। सन् ५७ की क्रान्ति के बाद भारत का शासन ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथो मे ले लिया। इस विशाल देश पर ब्रिटिश शासन स्थापित हो जाने के कारण ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार व शक्ति मे बहुत अधिक वृद्धि हुई।

४ क्राउन कोलोनी

कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, न्यूजीलैण्ड और न्यू फाउण्डलैण्ड सदृश औपनिवेशिक राज्यो और भारत के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से छोटे-छोटे प्रदेश ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत थे, जो क्राउन कोलोनी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमे से बहु-सख्यक प्रदेश अब तक भी ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत है। उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ में जब नैपोलियन यूरोप मे अपने आधिपत्य को स्थापित करने में व्यस्त था, समुद्र के क्षेत्र मे ब्रिटेन की शक्ति अजेय थी। यही कारण है, कि फ्रास द्वारा अधिगत अनेक प्रदेशो को इस अवसर से लाभ उठाकर ब्रिटेन ने अपने अधीन कर लिया था। क्योकि नैपोलियन के युद्धो के कारण हालैन्ड भी फ्रास के अधीन हो गया था, अत अनेक डच प्रदेश भी इस अवसर पर ब्रिटेन ने अपने अधीन कर लिये थे। वीएना की काग्रेस (१८१४) मे जब यूरोप की पुन व्यवस्था की गई, और नैपोलियन के साम्राज्य का नये सिरे से निब-टारा किया गया, तो इन विविध प्रदेशो को ब्रिटेन ने अपनी अधीनता मे रखा, और इस प्रकार वे विभिन्न प्रदेश ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हुए, जो अब क्राउन कोलोनी कहाते हैं। इसी समय मोरिशस का द्वीप ब्रिटेन ने फ्रास से प्राप्त किया, क्योकि भारत के सामुद्रिक मार्ग की दृष्टि से यह भी बहुत महत्वपूर्ण था। १८१९ मे सिगापुर ब्रिटेन की अधीनता मे आ गया। सुदूर पूर्व जाने के सामुद्रिक मार्ग के लिये यह प्रदेश भी अत्यन्त महत्व का था। १८३९ मे अदन पर ब्रिटेन का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

यहा हमारे लिये यह सम्भव नही है, कि ब्रिटेन के सब क्राउन कोलोनियो के सम्बन्ध मे उल्लेख कर सके। इस इतिहास मे केवल इतना निर्देश करना पर्याप्त होगा, कि ये कोलोनी एशिया, अमेरिका, अफ्रीका आदि सर्वत्र फैले हुए है। सुदूर पूर्व के बहुत से द्वीप ब्रिटेन के अधीन है। भारत के दक्षिण मे सीलोन (लका) की स्थिति १९४७ तक एक क्राउन कोलोनी के समान थी। अटलाण्टिक महासागर मे वेस्ट इन्डीज के अनेक द्वीप ब्रिटेन के आधिपत्य मे है, और भूमध्य सागर मे जिबराल्टर, माल्टा आदि अनेक प्रदेशो मे व द्वीपो पर ब्रिटेन का शासन स्थापित है। ब्रिटेन के सामुद्रिक आधिपत्य के लिये ये कोलोनी बहुत उपयोगी है। इन सबके शासन का प्रकार भी एक नही है। कुछ कोलोनी ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त हुए गवर्नर द्वारा शासित होते है, और उनके शासन मे जनता का कोई हाथ नही है। कुछ कोलोनी ऐसी भी है, जिनके शासन में जनता का सहयोग लिया जाता है।

सत्ताईसवा अध्याय

यूरोप का विस्तार

१ यूरोप और एशिया

एशिया का इतिहास बहुत पुराना है। ससार के प्राचीन इतिहास मे सभ्यता का श्रीगणेश इसी भूखण्ड मे हुआ था। इतिहास के किसी अज्ञात प्राचीन काल मे एशिया से ही अनेक जातियो ने जाकर यूरोप मे सभ्यता का विकास किया था। बाद मे भी एशिया और यूरोप का परस्पर सम्बन्ध कायम रहा। यूरोप अपनी सभ्यता के लिये अनेक अशो मे एशिया का ऋणी है। भारत, अरब और चीन के ससर्ग से समय-समय पर बहुत सी बाते यूरोप ने एशिया से सीखी। राजनीतिक दृष्टि से भी इन दो महाद्वीपो का सम्बन्ध बहुत पुराना है। यद्यपि आधुनिक युग मे एशिया के अधिकाश देश यूरोपियन लोगो के राजनीतिक प्रभाव मे रहे हैं, पर पहले यह बात नही थी। जब हम प्राचीन और मध्य-कालीन इतिहास पर दृष्टि डालते है, तो हमे ज्ञात होता है कि ईसा से कई सदी पूर्व से एशिया के लोग यूरोप पर आक्रमण कर वहा अपने राजनीतिक प्रभाव को स्थापित करने मे समर्थ रहे थे। पर्शियन, हूण, मगयार, तार्तार, अरब और तुर्क आक्रान्ताओ ने समय-समय पर यूरोप के ऊपर आक्रमण कर वहा अपना प्रभुत्व स्थापित किया था।

परन्तु सतरहवी सदी मे इस स्थिति मे परिवर्तन आना शुरू हुआ। धीरे-धीरे यूरोपियन जातियो ने व्यापार के लिये एशिया मे प्रवेश करना प्रारम्भ किया। यूरोप इस समय उन्नति के पथ पर आरूढ था। वहा विद्या की पुनर्जागृति हो चुकी थी और मानसिक व बौद्धिक स्वतन्त्रता की भावना लोगो में उत्पन्न हो गई थी। जनता ने अपनी बुद्धि से काम लेना प्रारम्भ कर दिया था। नये-नये आविष्कार हो रहे थे। व्यापारिक क्रान्ति ने लोगो के सम्मुख नये क्षेत्र, नई आकाक्षाएँ और नये मार्ग खोल दिये थे। कृषि तथा व्यवसाय के क्षेत्र मे जो क्रान्ति हो रही थी, वह यूरोपियन लोगो के जीवन और स्थिति मे बड़ा भारी परिवर्तन ला रही थी। यूरोपियन लोगो मे एक नव-जीवन का सचार हो रहा था। उधर दूसरी ओर एशिया की हालत उस समय अच्छी नही थी। एशिया के प्राय सभी देशो मे राजनीतिक शक्ति शिथिल हो गई थी, और जनता मे राष्ट्रीय जीवन का अभाव था। जिन परिस्थितियो और कारणो से यूरोप मे नवीन जीवन का प्रादुर्भाव हो रहा था, वे एशिया मे अभी प्रारम्भ नही हुए थे। इसका परिणाम यह हुआ, कि यूरोपियन लोग एशिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने मे समर्थ हो गये।

यह ध्यान मे रखना चाहिये कि एशिया के लोग अफ्रीका व अमेरिका के मूल-

निवासियो के समान असभ्य व अर्द्धसभ्य नही थे। एशिया की जनता सभ्यता की दृष्टि से बहुत उन्नत थी। यदि धर्म, साहित्य, कला और विचार आदि की दृष्टि से देखा जाय, तो एशिया के देश यूरोप से किसी भी अश में पीछे न थे। यही कारण है, कि यूरोपियन लोग एशिया मे उस ढग से अपना साम्राज्य-विस्तार नही कर सके, जिस तरह उन्होने अमेरिका व अफ्रीका मे किया। उन महाद्वीपो मे उन्होने वहा के मूल निवासियो को प्राय नष्ट कर देने का प्रयत्न किया। अमेरिका मे आज करोडो श्वेताग लोग बसते है, जो यूरोपियन जातियो के वशज है। वहा के मूल निवासी या तो नष्ट कर दिये गये है, और या पूर्ण रूप से यूरोपियन सभ्यता मे दीक्षित कर लिये गये है। यही प्रक्रिया अफ्रीका में हो रही है। पर एशिया मे श्वेताग लोगो की कुल आबादी दस लाख से अधिक नही है, जब कि एशिया के लोगो की सख्या एक अरब से भी अधिक है। यूरोपियन लोगो के लिये यह असम्भव है, कि वे एशियन लोगो को नष्ट कर सके व पूर्णतया अपनी सभ्यता मे दीक्षित कर सके। धीरे-धीरे एशियाई लोग उन नव विद्याओ व विज्ञानो को सीखते जाते है, जिनके कारण यूरोपियन लोग उन्हें अपनी अधीनता मे लाने में समर्थ हुए थे। अब वह समय भी आ गया है, जब कि एशिया मे यूरोप का आधिपत्य प्राय नष्ट हो गया है, और एशियाई लोग फिर अपनी सभ्यता व सस्कृति का स्वतन्त्र रूप से विकास करने म समर्थ हो रहे है। एशिया का यह पुन जागरण उन्नीसवी सदी के अन्तिम भाग मे प्रारम्भ हो गया था।

हम इस अध्याय में इस बात पर प्रकाश डालेगे, कि विविध एशियाई देशो मे यूरोपियन जातियो का प्रभुत्त्व किस प्रकार स्थापित हुआ। सयुक्त राज्य अमेरिका के एक शक्तिशाली व सुसगठित राज्य बन जाने पर वह भी एशिया मे अपने साम्राज्य के प्रसार मे तत्पर हुआ। यूरोप और अमेरिका के गौराग लोग एशिया मे जो अपना प्रभाव प्रसारित कर रहे थे, उसके मुख्य साधन निम्नलिखित थे—(१) पिछडी हुई जातियो द्वारा आबाद प्रदेशो का अवगाहन कर उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना। रूस ने साइबीरिया मे जो अपना साम्राज्य विस्तृत किया, वह इसी ढग से हुआ था। (२) ईसाई मिशनरियो द्वारा प्रचार। चीन मे यूरोपियन लोगो का प्रवेश इसी साधन द्वारा हुआ। (३) व्यापार द्वारा। भारत मे ब्रिटिश लोगो ने अपना प्रभुत्त्व व्यापार का आश्रय लेकर ही स्थापित किया। चीन, ईरान आदि देश भी व्यापार के प्रसार द्वारा ही यूरोपियन देशो के प्रभाव मे आये। (४) युद्ध द्वारा, विविध एशियाई देशो की राजनीतिक दुरवस्था से लाभ उठाकर यूरोपियन लोगो ने वहा अनेक युद्ध किये, और इन युद्धो मे विजयी होकर वे वहा अपना प्रभुत्त्व स्थापित करने मे समर्थ हुए।

एशिया मे गौराङ्ग लोगो की प्रभुत्त्व की स्थापना के विविध युगो को हम निम्नलिखित भागो मे विभक्त कर सकते है—

(१) रूसी साम्राज्य का उत्तरी एशिया मे प्रसार—यूराल पर्वत के पूर्व मे उत्तरी एशिया का जो विशाल प्रदेश साइबीरिया के नाम से प्रसिद्ध है, उस पर रूसी लोगो ने अपना प्रभुत्त्व सोलहवी सदी मे स्थापित करना शुरू किया था। सतरहवी सदी मे रूसी लोग सम्पूर्ण साइबीरिया को अपनी अधीनता मे ला चुके थे। इस युग मे ब्रिटिश, फ्रेच,

डच, पोर्तगीज आदि अन्य यूरोपियन लोग एशिया के विविध देशो से व्यापार का सम्बन्ध स्थापित करना तो शुरू कर चुके थे, पर उनका राजनीतिक प्रभुत्व अभी कही स्थापित नही हुआ था।

(२) अठारहवी सदी मे इङ्गलैण्ड और फ्रास भारत मे अपने साम्राज्य की स्थापना के लिये प्रवृत्त हुए।

(३) उन्नीसवी सदी मे चीन और पूर्वी एशिया के अन्य देशो पर यूरोप के राज्यो ने अपना प्रभुत्त्व स्थापित करना शुरू किया। इसी समय आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड व प्रशान्त और हिन्द महासागरो के विविध द्वीपो मे यूरोप के लोगो ने अपने उपनिवेशो का विकास किया, और अपने राजनीतिक प्रभुत्त्व को स्थापित किया।

बीसवी सदी के शुरू तक यह स्थिति आ गई थी, कि जापान के अतिरिक्त प्राय अन्य सब यूरोपियन देश किसी न किसी रूप मे यूरोप व अमेरिका के प्रभाव मे आ चुके थे। ईरान, तिब्बत, सिआम आदि जो देश राजनीतिक दृष्टि से अभी स्वतन्त्र थे, वे भी किसी न किसी रूप मे किसी न किसी यूरोपियन राज्य के प्रभाव मे थे।

२ रूस का एशिया मे प्रसार

पन्द्रहवी सदी तक रूस अनेक छोटे बडे राज्यो मे विभक्त था, और इनके राजा व सरदार प्राय आपस मे लडते थे। तेरहवी सदी मे चगेज खा (११६२-१२२७) ने अपने विशाल साम्राज्य की स्थापना की, जो पूर्व मे प्रशान्त महासागर से शुरू होकर पश्चिम मे कस्पियन सागर तक विस्तृत था। चगेज खा के उत्तराधिकारियो ने साम्राज्य विस्तार की प्रक्रिया को जारी रखा। चगेज खा का पौत्र बातू खा बडा प्रतापी और महत्त्वाकाक्षी था। १२३६ मे उसने यूराल नदी को पार कर रूस पर आक्रमण किया, और धीरे-धीरे रूस के सब राज्यो को विजय कर लिया। रूस के विविध राजा मगोल सम्राट् की अधीनता को स्वीकृत करते थे, और नियमित रूप से कर व उपहार आदि देकर उसे सतुष्ट रखते थे। पन्द्रहवी सदी तक रूस मगोल साम्राज्य के अधीन रहा। यद्यपि रूस के आन्तरिक शासन मे मगोल लोग हस्तक्षेप नही करते थे, और वहा के विविध राजाओ को यह अवसर था, कि वे अपने-अपने क्षेत्र मे स्वेच्छाचारपूर्वक शासन करते रहे, पर इसमे सन्देह नही, कि वे मगोल सम्राट् के वशवर्ती व अधीन थे। रूस के इन विविध राजाओ मे मास्को का राजा सबसे अधिक शक्तिशाली था, और चीन के मगोल दरबार मे उसकी विशेष प्रतिष्ठा थी। पन्द्रहवी सदी मे मगोल साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने लगी, और इस स्थिति से लाभ उठाकर १४८० मे मास्को के राजा ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। मगोल सम्राट् के जो प्रतिनिधि रूस से कर व उपहार वसूल करने के लिये नियुक्त थे, उन्हे समाप्त कर दिया गया, और रूस मगोल साम्राज्य की अधीनता से मुक्त हो गया। धीरे-धीरे सब रूसी राजाओ ने मास्को के राजा को अपना अधिपति स्वीकृत किया, और [illegible] मे इवान चतुर्थ ने जार या सम्राट् की उपाधि धारण की। इवान चतुर्थ के पूर्ववर्ती मास्को के राजा अन्य सब रूसी राजाओ को अपना सामन्त बना चुके थे, और इस प्रकार रूस मे एक सुसगठित व शक्तिशाली केन्द्रीय शासन की स्थापना हो गई थी।

मास्को के राजा केवल रूस मे अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित करके ही सतुष्ट नही हुए, साथ ही उन्होने साम्राज्य विस्तार के लिये भी प्रयत्न शुरु किया। यूराल के पूर्व में मगोल व तार्तार लोगो का शासन था। १५०१ ई० मे एक रूसी सेना ने यूराल को पार कर मगोल लोगो पर आक्रमण किया। एक सदी तक रूसी और तार्तार लोगो में निरन्तर युद्ध होते रहे। अन्त मे मगोल व तार्तार लोग परास्त हुए, और रूसी लोगो के लिए यूराल के पूर्व मे अपना प्रसार करने का मार्ग साफ हो गया। इस प्रकार एशिया मे उस विशाल रूसी साम्राज्य का विकास शुरु हुआ, जो ससार के इतिहास मे वस्तुत अद्भुत और अद्वितीय है।

रूसी साम्राज्य की विशालता—इससे पूर्व कि हम एशिया मे रूस के साम्राज्य-विस्तार का इतिहास लिखे, यह उल्लिखित करना उपयोगी होगा, कि यह साम्राज्य कितना विस्तृत व विशाल है। एशिया मे रूस का यह साम्राज्य पश्चिम से पूर्व तक ४,००० मील लम्बा है। इसकी चौडाई दक्षिण से उत्तर तक ३,००० मील के लगभग है। इसका कुल क्षेत्रफल ६३,३५,००० वर्गमील है। वर्तमान समय मे रूस के सोवियत यूनियन मे जितना भूखण्ड अन्तर्गत है, उसका तीन चौथाई एशिया मे है, और एशिया के ये प्रदेश राष्ट्रीयता (भाषा, जाति, नसल आदि) की दृष्टि से रूस से सर्वथा भिन्न है। एशिया की सम्पूर्ण भूमि का ४० फी सदी भाग रूसी साम्राज्य के अन्तर्गत है। भौगोलिक दृष्टि से एशियाई रूस को चार भागो मे विभक्त किया जा सकता है —

साइबीरिया—	४७,३०,०००	वर्गमील
काजकस्तान—	१०,५६,०००	वर्गमील
मध्य एशिया—	४,७८,०००	वर्गमील
ट्रास काकेशिया—	७१,०००	वर्गमील
सर्वयोग—	६३,३५,०००	वर्गमील

इतने विशाल भूखण्ड को रूस किस प्रकार अपनी अधीनता मे लाने मे समर्थ हुआ इसका विवरण यूरोप के आधुनिक इतिहास मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

साइबीरिया पर अधिकार—सोलहवी सदी मे तार्तार (मगोल) लोगो को परास्त कर चुकने के बाद रूसी लोगो के लिए पूर्व मे साइबीरिया मे अपना प्रसार करने का मार्ग खुल गया था। उस समय साइबीरिया मे किसी उन्नत सभ्यता का विकास नही हुआ था। इस प्रदेश मे आबादी बहुत कम थी, और इसके निवासी प्राय असभ्य और जगली थे। साइबीरिया मे अनेक ऐसे जन्तुओ का निवास था, जिनकी खाले (फर) बहुत कीमती होती थी। यूरोप के बाजारो मे ये फरे बहुत ऊँचे मूल्य पर बिकती थी। इनसे आकृष्ट होकर बहुत से रूसी शिकारी व व्यापारी साइबीरिया जाने लगे। साइबीरिया के मूल निवासियो को अपने वश मे लाने मे इन्हे कोई कठिनता नही हुई। सोलहवी सदी मे फरो के इस व्यापार ने अच्छी उन्नति की। इस युग में रूस से जो माल विदेशो मे विक्री के लिए जाता था, साइबीरिया की फरें उसमे सबसे प्रमुख स्थान रखती थी। राज्य की ओर से इन रूसी शिकारियो और व्यापारियो को प्रोत्साहन मिलता था। धीरे-धीरे ईसाई

प्रचारको ने भी साइबीरिया जाना शुरू किया। उनका प्रयत्न था, कि साइबीरिया के असभ्य लोगो को ईसाई धर्म मे दीक्षित कर लिया जाय। उन दिनो इस प्रदेश मे न सडके थी, और न कोई रास्ते ही थे। सारा प्रदेश झाडियो व जगलो से आच्छादित था। नदियो के साथ-साथ रूस के शिकारी, व्यापारी और पादरी आगे बढते थे, और अनुकूल स्थानो पर डेरे डालकर रहते थे। साइबीरिया मे रूस के इस प्रसार का स्वरूप प्राय वैसा ही था, जैसा कि सयुक्तराज्य अमेरिका मे ब्रिटिश व अन्य यूरोपियन लोगो का। अमेरिका मे ब्रिटिश व फ्रेंच लोगो की बस्तिया शुरू-शुरू मे अटलाण्टिक सागर के तटवर्ती प्रदेशो पर स्थापित हुई थी। धीरे-धीरे ये लोग पश्चिम की ओर आगे बढते गये, और समयान्तर मे हजारो मील की दूरी पार कर प्रशान्त महासागर तक पहुँच गये। ठीक इसी प्रकार रूसी लोग यूराल को पारकर पूर्व की ओर आगे बढते गये, और बाद मे प्रशान्त महासागर तक जा पहुँचे। सतरहवी सदी के शुरू तक (१६१८) रूसी लोगो की बस्तिया ओब नदी के तट पर ओब्दोरोस्क और बेरेजोव मे, और इर्तिश नदी के तट पर तोबोल्स्क और तारा मे स्थापित हो गई थी। इर्तिश नदी से आगे भी कुछ रूसी लोग पहुँच चुके थे, और इन्होने तोम्स्क और कुज्नेत्स्क मे अपनी बस्तिया कायम कर ली थी। तोम्स्क को अपना आधार बनाकर वे येनीसेई और अन्गारा नदियो की ओर आगे बढे। १६३० मे उन्होने याकुत्स्क को आबाद किया, और अगले बीस सालो मे (सतरहवी सदी के मध्य तक) रूसी लोग पूर्व मे आमूर नदी तक और प्रशान्त महासागर के तट पर ओखोत्स्क तक पहुँच गये। इन प्रदेशो मे जो विविध जातिया निवास करती थी, उन्हे जीतने मे रूसी लोगो को कोई कठिनता नही हुई। यूरोप मे लोग जिन अस्त्र शस्त्रो का सतरहवी सदी मे प्रयोग करते थे, उनके सम्मुख इन असभ्य जातियो के लिये ठहर सकना सम्भव नही था। ये परास्त हो गई, और साइबीरिया के इस सुविस्तृत प्रदेश पर रूस का आधिपत्य स्थापित हो गया। यद्यपि साइबीरिया मे रूस का प्रसार उन शिकारियो, व्यापारियो व पादरियो द्वारा हुआ था, जो धन कमाने व धर्म प्रचार के उद्देश्य से निरन्तर आगे बढ रहे थे, पर रूसी लोगो की इन नई बस्तियो पर रूसी सरकार का आधिपत्य होता था, और इस प्रकार साइबीरिया रूसी साम्राज्य के अन्तर्गत होता जाता था। शुरू मे रूसी लोग साइबीरिया के उन्ही प्रदेशो मे गये, जहा फर बहुतायत से मिलती थी। उनकी प्रारम्भिक बस्तिया फर व अन्य कीमती पदार्थों को एकत्र करने की केन्द्रमात्र थी। पर धीरे-धीरे रूसी लोगो ने यह भी अनुभव किया, कि साइबीरिया के अनेक प्रदेश खेती के लिए भी उपयुक्त है। अब तक साइबीरिया मे निवास करने वाले रूसी लोग अन्न के लिये रूस पर ही निर्भर रहते थे। पर अठारहवी सदी मे उन्होने वहा खेती भी प्रारम्भ की। १७१६ मे ओम्स्क मे और १७१८ मे सेमीपालातिन्स्क आबाद हुए। इन बस्तियो को आधार बना कर रूसी लोगो ने दक्षिणी साइबीरिया मे विस्तार शुरू किया। दक्षिण के ये प्रदेश खेती के लिये उपयुक्त थे। इस कारण धीरे-धीरे बहुत से रूसी किसान इन प्रदेशो मे बडे पैमाने पर खेती करने के लिये आने लगे। अठारहवी सदी के मध्यभाग मे साइबीरिया मे रूस के द्वितीय प्रसार का प्रारम्भ हुआ। इस समय रूसी लोग केवल फर व अन्य बहुमूल्य जाङ्गल पदार्थो की उपलब्धि के लिये ही साइबीरिया मे नही आ

रहे थे, अपितु खेती के विकास के लिये भी वे वहा बडी सख्या मे आबाद होने लगे थे।

दक्षिणी साइबीरिया मे आगे बढते हुए रूसी लोग आमूर नदी की दक्षिणी घाटी मे भी गये। यह प्रदेश कृषि के लिये बहुत उपयुक्त था। पर इस पर चीन का अधिकार स्वीकृत किया जाता था, और यहा चीनी किसान बहुत बडी सख्या मे आबाद थे। प्रशान्त महासागर के समीप के इस सुदूरवर्ती प्रदेश को चीन के मुकाबले मे अधिकृत कर सकना उस की शक्ति के बाहर था। परिणाम यह हुआ, कि यद्यपि रूसी लोग सत्रहवी सदी के मध्यभाग तक आमूर की घाटी मे पहुंच चुके थे, पर १६८९ मे वे इस प्रदेश को छोड देने के लिये विवश हुए। उन्नीसवी सदी के मध्यभाग (१८५८) मे रूसी लोगो ने चीन की राजनीतिक निर्बलता से लाभ उठाकर आमूर के क्षेत्र पर अपना अधिकार पुन स्थापित किया, और इस प्रकार रूस के लिये उत्तरी चीन और कोरिया में अपने आधिपत्य को विस्तृत करने के लिये मार्ग साफ हो गया। आमूर प्रदेश के रूस के हाथ मे आ जाने से प्रशान्त महासागर का ऐसा समुद्रतट भी उसको प्राप्त हो गया, जो नौकानयन की दृष्टि से साल के बारहो महीनो में अनुकूल परिस्थिति रखता है। इस प्रदेश में अपने आधिपत्य को दृढ करने व आर्थिक दृष्टि से उसे उन्नत करने के लिये रूस ने यहा अनेक रेलवे लाइनो का निर्माण किया।

ट्रॉस-कोकेशिया पर रूस का प्रभुत्व—अठारहवी सदी मे ट्रास-कोकेशिया का प्रदेश अनेक छोटे बडे राज्यो मे विभक्त था। पूर्वी ज्यार्जिया पर्शिया के अधीन था, और पश्चिमी ज्यार्जिया पर टर्की का प्रभुत्व था। इन प्रदेशो के विविध सरदार जहा पर्शिया और टर्की की अधीनता स्वीकृत करते थे, वहा आपस मे भी निरन्तर सघर्ष करते रहते थे। नादिरशाह ने पश्चिमी ज्यार्जिया पर भी आक्रमण किये थे, और उसके हमलो के कारण इस देश की बहुत दुर्दशा हुई थी। नादिरशाह की मृत्यु के बाद उसके विशाल साम्राज्य मे अव्यवस्था और अराजकता उत्पन्न हो गई, और इस स्थिति मे लाभ उठाकर हेरेक्लियस द्वितीय ने ज्यार्जिया मे अपने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। पर पर्शिया और टर्की ज्यार्जिया के स्वतन्त्र राज्य को सहने के लिये तैयार नही थे। उन्होने उस पर आक्रमण शुरू कर दिये। इस स्थिति मे ज्यार्जिया के राजाओ के सम्मुख एक ही मार्ग था, वह यह कि वे रूस को अपना सरक्षक स्वीकार करे, और उसकी सहायता से अपनी स्वतन्त्रता व पृथक् सत्ता की रक्षा करें। परिणामस्वरूप १७८३ मे ज्यार्जिया और रूस मे सन्धि हो गई, जिसके अनुसार रूस ने ज्यार्जिया की रक्षा करना स्वीकार किया। पर रूस के सरक्षण से भी ज्यार्जिया की समस्याओ का अन्त नही हो गया। १७९५ मे पर्शिया के शाह खा आगा मुहम्मद ने ज्यार्जिया पर आक्रमण किया, और वहा धन व जन का बुरी तरह से विनाश किया। इस दशा मे ज्यार्जिया के राजा ज्यार्ज सप्तम को अपनी रक्षा का केवल यही उपाय समझ आया, कि वह पूरी तरह से अपने को रूस के अधीन कर दे। १८०१ मे ज्यार्जिया का राज्य रूसी साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया। १८०२ मे रूसी सेनाओ ने ज्यार्जिया के अतिरिक्त ट्रासकोकेशिया के अन्य प्रदेशो पर भी आक्रमण शुरू किये। इन प्रदेशो मे विविध मगोल व तुर्क खान स्वतन्त्रता के साथ शासन करते थे। ये रूसी सेनाओ का मुकाबला नही कर सके, और १८०५ तक सम्पूर्ण

-कोकेशिया रूस के अधिकार म आ गया।

मध्य एशिया पर रूस का प्रभुत्व—अठारहवी सदी के मध्यभाग (१७६०) मे या के नादिरशाह ने मध्य एशिया पर अपना प्रभुत्त्व स्थापित किया था। जिस प्रकार रशाह ने भारत पर आक्रमण कर वहा अपना स्थायी शासन स्थापित करने का ग नही किया, वैसे ही मध्य एशिया मे भी उसने अपना शासन स्थायी रूप मे कायम किया। उसके आक्रमणो के कारण इस प्रदेश मे अराजकता छा गई, कोई राजशक्ति नही रही, और इस स्थिति से लाभ उठा कर वहा अनेक खान (सरदार) स्वतन्त्र मे शासन करने लगे। अठारहवी सदी के अन्त तक मध्य एशिया मे तीन खानो के स्थिर रूप मे स्थापित हो गये थे, जिनकी राजधानिया क्रमश वोखारा, खीवा और न्द थी। इन तीन राज्यो मे उजबेक, ताजिक, किरखिज और तुर्कमान आदि अनेक तयो का निवास था। मध्यएशिया के ये तीनो राज्य जहा आपस मे युद्ध करते रहते वहा साथ ही वे पडोस के अन्य राज्यो पर भी आक्रमण करते रहते थे। उन्नीसवी के प्रारम्भ तक कोकन्द के खान ने काजकस्तान के वडे भाग को जीतकर अपने न कर लिया था, और ताशकन्द का प्रसिद्ध नगर उसकी अधीनता मे आ गया। कोकन्द के खान वडे शक्तिशाली व समृद्ध थे। पामीर से शुरू कर सीर दरया और की पश्चिमी सीमा तक उनका राज्य विस्तृत था। पर मध्य एशिया के खानो का उत्कर्ष देर तक कायम नही रहा। उन्नीसवी सदी के मध्य भाग मे अपने साम्राज्य विस्तार करते हुए रूस ने उन पर आक्रमण शुरू कर दिया। कैस्पियन सागर के तट को ार वनाकर रूसी सेनाएँ मध्य एशिया मे निरन्तर आगे वढती गई। १८६० तक कन्द, समरकन्द आदि रूस की अधीनता मे आ गये थे। १८७३ मे खीवा और ८८ मे मर्व पर रूस का अधिकार कायम हो गया था। उन्नीसवी सदी के समाप्त होने र्व सम्पूर्ण मध्य एशिया पर रूस का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। इन प्रदेशो पर ने प्रभुत्व को स्थिर करने के लिये रूस ने अनेक रेलवे लाइनो का निर्माण किया। ८८ तक ट्रास-कैस्पियन रेलवे वनकर तैयार हो चुकी थी। १८९८ मे इस रेलवे की शाखा अफगानिस्तान की सीमा पर स्थित कुश्क तक मिला दी गई थी। १९०६ मध्य एशिया मे अन्यत्र भी रेलवे लाइनो का निर्माण किया गया। मध्य एशिया विजय के कारण रूस की सीमा पर्शिया, अफगानिस्तान, भारत और चीन से आ मिली और एशिया मे उसका राजनीतिक महत्त्व वहुत वढ गया था।

३ यूरोपियन जातियो का चीन मे प्रवेश

चीन और यूरोप का प्राचीन सवन्ध—चीन और यूरोप मे पारस्परिक सम्बन्ध त प्राचीन काल से था। रोमन साम्राज्य के वाजारो मे चीन का माल विका करता था। रोमन सम्राट् मार्कस ऑरिलियस ने एक दूत-मडल भी चीन के सम्राट की सेवा मे ा था। मध्यकाल मे अनेक ईसाई पादरियो ने चीन मे ईसाई मत का प्रचार करने का न किया। तेरहवी सदी मे वेनिस का प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो चीन के सम्राट् ाखान के राजदरवार मे आया था। उस समय इस प्रसिद्ध चीनी सम्राट् के दरवार

मे अन्य भी बहुत से विदेशी दूत, व्यापारी और पर्यटक विद्यमान थे। चीन के लोग विदेशियो से घृणा नही करते थे। वे उनका उत्साहपूर्वक स्वागत करते थे, और उनसे लाभ उठाते थे।

यूरोप के साथ व्यापार—पन्द्रहवी सदी के अन्त मे अफ्रीका का चक्कर काटकर पोर्तुगीज लोगो ने पूर्वी देशो मे पहुचने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। यह प्रयत्न किन परिस्थितियो मे और किन कारणो मे शुरू हुआ था, उसका उल्लेख हम पहले कर चुके है। सबसे पूर्व सन् १५१६ मे पोर्तुगीज व्यापारी चीन के बन्दरगाहो मे आये। उस समय चीन मे मिंग वश के सम्राटो का शासन था। ये सम्राट् विदेशियो को सन्देह की दृष्टि मे न देखकर उनका स्वागत करते थे। मिंग वशी सम्राटो मे प्रोत्साहन पाकर पोर्तुगीज व्यापारी अधिक-अधिक सख्या मे चीन आने-जाने लगे। ये लोग यूरोपियन वस्तुओ को चीन की मण्डियो मे बेचकर वहाँ मे चाय और रेशम खरीदते थे। चीन की चाय और रेशम आजकल की तरह उस समय भी प्रसिद्ध थे। सन् १५३७ मे पोर्तुगीज लोगो ने कैन्टन के समीप मकाओ नामक स्थान पर थोडी सी जमीन पट्टे पर ले ली, और वहा अपनी व्यापारिक कोठी का निर्माण किया। इसके बाद अन्य यूरोपियन जातियो ने भी चीन मे प्रवेश शुरू किया। पोर्तुगीजो के बाद डच और इगलिश व्यापारी भी वहा पर गये, और व्यापार करने लगे। चीनी लोग न केवल इनका विरोध नही करते थे, अपितु इनके सम्पर्क से लाभ उठाने का भी प्रयत्न करते थे। बहुत से यूरोपियन पादरी भी इस समय चीन मे ईसाई मत का प्रचार कर रहे थे। लाखो चीनी नर नारी ईसाई धर्म मे दीक्षित भी होते जा रहे थे। चीन मे धार्मिक सहिष्णुता बहुत पहले से विद्यमान थी। वहा के लोग विधर्मी ईसाई पादरियो को भी घृणा की दृष्टि से नही देखते थे।

सन् १५१६ से १७२४ तक यही दशा रही। इस बीच में चीन की राजनीतिक दशा मे बहुत परिवर्तन हो गया था। सतरहवी सदी मे माचू नामक एक मगोल जाति ने उत्तर ने की तरफ से चीन पर आक्रमण किया और मिंग वश के शासन को नष्ट कर अपना राज्य स्थापित कर लिया। पर यूरोपियन लोगो के प्रति पुरानी नीति ही अब भी जारी रही थी। धीरे-धीरे यूरोपियन लोग अपनी स्थिति का दुरुपयोग करने लगे। उन्होने चीन के राजनीतिक मामलो मे हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया। ईसाई पादरी भी धर्म-प्रचार करते हुए विशुद्ध धार्मिक दृष्टि को ही अपने सम्मुख नही रखते थे। वे धार्मिक क्षेत्र का उल्लघन कर राजनीतिक मामलो मे टाग अडाने मे भी सकोच नही करते थे। परिणाम यह हुआ कि चीनी सरकार ने यूरोपियन लोगो के लिये अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये। यूरोपियन लोगो के लिये केवल कैन्टन का बन्दरगाह ही खुला रहने दिया गया। अन्य सब बन्दरगाह उनके लिये बन्द हो गये। अब वे केवल कैन्टन मे ही व्यापार के लिये आ-जा सकते थे। उनके लिये चीन के आन्तरिक प्रदेशो मे प्रवेश पा सकना भी सम्भव नही रहा था।

अफीम युद्ध—पर यूरोपियन जातिया इस अवस्था को नही सह सकती थी। यद्यपि चीन के मामलो मे हस्तक्षेप करने का उन्हे कोई भी अधिकार नही था, पर वे अपनी शक्ति का प्रयोग कर जबरदस्ती उसके साथ व्यापार करने और उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील थी। इगलैण्ड इस कार्य मे सब का अगुआ बना।

ब्रिटिश लोग चीन मे अफीम का व्यापार किया करते थे। उस समय तक भारतवर्ष ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ मे आ चुका था। भारत मे अफीम बहुत बडे परिमाण मे उत्पन्न कराई जाती थी, और उसे चीन के एकमात्र खुले हुए बन्दरगाह कैन्टन मे ले जाकर बेचा जाता था। ब्रिटिश लोगो की कोशिश से चीनी लोगो को अफीम खाने की आदत पड गई थी, और चीन मे अफीम की बहुत खपत थी। अफीम के व्यापार मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी को डेढ करोड रुपये वार्षिक की आमदनी होती थी। धीरे-धीरे चीनी सरकार ने अनुभव किया, कि अफीम बहुत हानिकारक वस्तु है, और उसका प्रचार अपने देश मे रोकना चाहिये। इसलिये उन्होने चीन मे अफीम का प्रवेश कानून द्वारा बन्द कर दिया। पर ब्रिटिश व्यापारी धोखे से अफीम को चीन मे पहुचाते रहते थे। सन् १८३९ मे चीनी सरकार ने ब्रिटिश व्यापारियो की गतिविधि की देख-रेख करने के लिये एक खास कमिश्नर की नियुक्ति की। उसने ब्रिटिश व्यापारियो को हुकुम दिया, कि वे अपनी सारी अफीम सरकार के सुपुर्द कर दे। पर ब्रिटिश व्यापारी इसके लिये तैयार नही हुए। आखिर, चीनी सरकार की पुलीस ने कैन्टन के इन व्यापारियो को गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया। इङ्गलैण्ड इस बात को कब सह सकता था। उसके लिये यह राष्ट्रीय सम्मान का प्रश्न था। असली बात तो यह है, कि इङ्गलैण्ड चीन से युद्ध करने के लिये किसी बहाने की प्रतीक्षा कर रहा था। अब उसे उपयुक्त बहाना मिल गया। १८४० मे इङ्गलैण्ड ने चीन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यह युद्ध इतिहास मे 'अफीम युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। यह १८४२ तक जारी रहा। अन्त मे चीन को सन्धि करने के लिये विवश होना पडा। सन् १८४२ मे नानकिंग की सन्धि द्वारा इस अफीम युद्ध का अन्त हुआ। नानकिंग की सन्धि के अनुसार (१) कैन्टन के सिवाय चार अन्य बन्दरगाह भी, जिनके नाम अमोय, निंगयो, फूचो और शघाई है, विदेशी व्यापार के लिये खोल दिये गये, (२) हागकाग इङ्गलैण्ड को प्राप्त हुआ और (३) चीन को साढे छ करोड के लगभग रुपया हरजाने के तौर पर इङ्गलैण्ड को देना पडा।

तीन्त्सिन की सन्धि—नानकिंग की इस सन्धि से विदेशी लोग चीन में अधिकाधिक सख्या मे आने लगे। इङ्गलिश लोगो के अनुकरण मे अमेरिकन, फ्रेन्च, डच, बेल्जियम और जर्मन लोग भी चीन मे आने शुरू हुए। इन्होने भी चीनी सरकार से पृथक्-पृथक् सन्धिया की, और धर्म-प्रचार तथा व्यापार के निमित्त चीन मे प्रवेश प्रारम्भ किया। यूरोपियन लोग अपने प्रभुत्व को स्थापित करने के लिये धर्म-प्रचार को सब साधन बनाते थे। चीन मे यद्यपि इन पाश्चात्य देशो के पादरी ऊपर से धर्म-प्रचार कर रहे थे, पर वस्तुत वे अपने देशो के प्रभुत्व के लिये मार्ग साफ करने मे लगे थे। सन् १८५८ मे एक फ्रेन्च पादरी चीन मे मारा गया। फ्रास ने समझा कि यह चीन पर आक्रमण करने का अच्छा बहाना है। उसने इङ्गलैड की सहायता से चीन के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर दिया। इस युद्ध का अन्त तीन्त्सिन की सन्धि के द्वारा हुआ। तीन्त्सिन की सन्धि के अनुसार (१) छ अन्य बन्दरगाह विदेशियो के लिये खोले गये। (२) चीनी सरकार ने ईसाई पादरियो की रक्षा की उत्तरदायिता अपने ऊपर ले ली। (३) याङ्गत्से-कियाग नदी मे व्यापार करने का अधिकार विदेशियो को दिया गया, और (४) हर्जाने

के तौर पर एक बडी रकम फ्रास और ब्रिटेन को दी गई ।

चीन मे यूरोपियन प्रभुत्व का प्रसार—अब चीन विदेशियो के लिये पूर्णतया खुल गया था। वे स्वच्छन्दतापूर्वक उसके साथ व्यापार कर सकते थे। पर यदि विदेशी यूरोपियन लोग केवल व्यापार तक ही सीमित रहते, तो कोई हानि की बात न थी । पर वे चीन की निर्बलता मे लाभ उठाकर अपनी शक्ति का उपयोग कर रहे थे, और इस प्रकार के अधिकार प्राप्त करते जाते थे, जिन्हे किसी भी प्रकार न्याय्य तथा उचित नही समझा जा सकता। ये अधिकार निम्नलिखित थे—

(१) जिन बन्दरगाहो मे पाश्चात्य लोगो को व्यापार का अधिकार मिला था, वहा वे अपनी बस्तिया भी बसाते जाते थे। इन बस्तियो मे चीनी सरकार का कोई अधिकार नही रहता था। ये पूर्णतया यूरोपियन लोगो के शासन मे होती थी। इनके अपने न्यायालय अपनी पुलीस और अपनी सरकार होती थी। ये एक प्रकार से चीन मे विदेशियो के उपनिवेश होते थे, जिन पर चीनी सरकार का किसी भी प्रकार का हक नही होता था। चीन के राजनीतिक अपराधी उनमे उसी तरह आश्रय पा सकते थे, जैसे इङ्गलैंड व फ्रास मे। विदेशी लोग न केवल इन बस्तियो में ही चीनी सरकार की अधीनता स्वीकृत नही करते थे अपितु वे चीन मे जहा कही भी हो, अपने को चीनी सरकार के कानूनो से मुक्त मानते थे। उन्हे चीनी सरकार की जरा भी परवाह न होती थी।

(२) बन्दरगाहो की 'बस्तियो' में विदेशी सेनाएँ स्वच्छन्द रूप से रहती थी। विदेशी जगी जहाज बन्दरगाहो पर अड्डा डाले रहते थे, और चीनी समुद्र तट पर स्वच्छन्द रूप मे घूमते रहते थे। चीनी सरकार विदेशियो की इस जबर्दस्ती के सम्मुख असहाय थी।

(३) चीन को तटकर के सम्बन्ध मे स्वतन्त्रता नही थी। सन्धियो द्वारा पाश्चात्य लोगो ने चीन को मजबूर किया था, कि विदेशी माल पर पाच फी सदी से अधिक आयात-कर न लगा सके। इस आयात-कर को बढा सकना सन्धियो मे परिवर्त्तन किये बिना चीनी सरकार के लिये असम्भव था। आयात-कर के अभाव से चीन को दो भारी नुक-सान हो रहे थे। एक तो उसकी व्यावसायिक उन्नति सर्वथा रुकी हुई थी। यूरोपियन मुकाबले से अपने देश के व्यवसायो की रक्षा सरक्षण-कर की नीति का आश्रय लेकर ही की जा सकती थी। पर सरक्षण-कर लगाने के लिये चीनी सरकार स्वतन्त्र नही थी। दूसरी हानि यह थी, कि आयात-कर कम होने से सरकारी आमदनी बहुत कम रहती थी। आयात-कर राष्ट्रीय आय का बहुत महत्त्वपूर्ण साधन होता है। इस आय से वचित होकर चीनी सरकार अपना बजट पूरा करने के लिये कर्ज लेने को मजबूर होती थी। विदेशी लोग चीन को अपना कर्जदार बनाने के लिये विशेष रूप से उत्सुक थे। उसे बडी सुगमता से कर्ज मिल जाता था। धीरे-धीरे चीन अपने उत्तमर्ण देशो के काबू मे आता जा रहा था।

यूरोपियन लोगो को चीन में व्यापार करने की खुली छुट्टी मिल गई थी। बन्दरगाहो पर उनका पूरा कब्जा था। वे चीन मे जहा चाहें, स्वच्छन्दता से आ जा सकते थे। आर्थिक दृष्टि से भी चीन को उन्होने अपने काबू मे कर रखा था। पर यूरोपियन लोग इतने से ही सतुष्ट नही रह सकते थे। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में उन्होने चीन के अधिक से अधिक

प्रदेश पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये उद्योग प्रारम्भ किया। चीन बहुत विस्तृत तथा समृद्ध देश था। पर वहाकी सरकारकी हालत अच्छी नही थी। लोग भी शान्ति-प्रिय और भोले-भाले थे। यूरोपियन लोगो को और चाहिये ही क्या था? उन्होने समझा अच्छा शिकार है, इसे हाथ से नही जाने देना चाहिये। विविध यूरोपियन देशो ने चीन के विविध प्रदेशो पर अपना कब्जा करना शुरू कर दिया। इङ्गलैण्ड ने १८८५ मे बर्मा पर अधिकार कर लिया। इससे पहले बर्मा चीन की अधीनता स्वीकृत करता था। फ्रास अनाम, टोन्किन और कम्बोडिया के प्रदेशो मे अपना जाल फैला रहा था। सन् १८८३ मे चीन और फ्रास मे बाकायदा लडाई छिड गई। चीन परास्त हुआ, और ये सब प्रदेश फ्रास की सरक्षता मे आ गये। आगे चलकर ये ही 'फ्रेंच इण्डोचायना' के नाम से प्रसिद्ध हुए। उधर उत्तर की ओर मे रूस अपना पैर पसार रहा था। उसने आमूर नदी के प्रदेशो को हडप कर साइबीरिया मे मिला लिया।

४ दक्षिण-पूर्वी एशिया

पन्द्रहवी सदी के अन्त मे जब पोर्तुगीज लोगो ने अफ्रीकन महाद्वीप का चक्कर काटकर समुद्र के मार्ग से पूर्वी एशिया मे आना जाना शुरू किया, तो वे न केवल भारत आये, अपितु सुदूर पूर्व मे भी गये। १५११ मे उन्होने मलक्का पर अपना अधिकार कर लिया और मलाया, सियाम आदि के राजाओ के आपसी झगडो का लाभ उठाकर उनके आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप शुरू किया। १५२५ मे स्पेनिश लोग भी इस क्षेत्र मे प्रविष्ट हुए, और सोलहवी सदी के अन्त मे डच, ब्रिटिश और फ्रेंच लोगो ने भी सुदूर पूर्व के इन देशो में व्यापार के लिये आना शुरू किया। ब्रिटिश और फ्रेंच लोगो ने अठारहवी सदी मे भारत मे अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये सघर्ष प्रारम्भ कर दिया था, इस कारण वे दक्षिण-पूर्वी एशिया मे अपने आधिपत्य की स्थापना पर विशेष ध्यान नही दे सके। पर पोर्तुगीज, स्पेनिश और डच इन प्रदेशो मे अपनी व्यापारिक कोठियो को कायम करने और विविध राजाओ के पक्ष व विपक्ष मे लडकर उन्हे अपने प्रभाव मे लाने मे तत्पर रहे। फिलिप्पीन द्वीपसमूह पर स्पेन अपना प्रभुत्व स्थापित करने में समर्थ हुआ, और पोर्तुगीज लोगो के मुकाबले मे डच लोग सुदूर पूर्व को अपने प्रभाव मे लाने मे सफल हुए। अफ्रीकन महाद्वीप का दक्षिणी भाग (केप कोलोनी) डच लोगो के कब्जे मे था। उसे आधार बनाकर वे दक्षिणपूर्वी एशिया को अपने अधीन करने के लिये प्रयत्नशील थे। सतरहवी सदी मे जावा उनके अधीन हो गया था, और बैन्टम (१६१०) व बटेविया (१६१९) मे उन्होने अपनी प्रधान बस्तिया कायम कर ली थी। जावा को केन्द्र बनाकर डच लोगो ने पूर्वी एशिया के विविध द्वीपो (ईस्ट इन्डीज) पर अपने प्रभाव का विस्तार शुरू किया। उन्नीसवी सदी मे सुमात्रा, पश्चिमी बोर्नियो, बाली आदि द्वीपो पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने मे वे समर्थ हुए, और इस प्रकार पूर्वी एशिया मे उस विशाल डच साम्राज्य का विकास हुआ, जो आगे चलकर इन्डोनीसिया के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सुदूर पूर्व के सब द्वीप डच लोगो की अधीनता मे नही आसके। उनमे से कतिपय, पोर्तुगीज और ब्रिटिश लोगो के प्रभुत्व मे भी आये। यहा हमारे लिये यह सम्भव नही

है, कि इन विविध यूरोपियन राज्यो के पूर्वी एशिया मे प्रसार के सम्बन्ध मे अधिक लिख सके। ब्रिटेन के अधीनस्थ प्रदेशो मे सबसे महत्वपूर्ण मलाया प्रायद्वीप व उसके समीपवर्ती द्वीप थे। मलक्का पहले पोर्तुगीजो के हाथ मे था, बाद मे वह डच लोगो के अधीन हुआ, और १८२४ मे उस पर ब्रिटेन का अधिकार हो गया। १८१९ मे सिंगापुर ब्रिटेन को प्राप्त हुआ, और इसे केन्द्र बनाकर ब्रिटिश लोगो ने मलाया मे अपने प्रभाव का प्रसार शुरू किया। धीरे-धीरे सम्पूर्ण मलाया ब्रिटेन के प्रभुत्व मे आ गया। मलाया का एक भाग (स्ट्रेट सेटलमेन्ट) ब्रिटेन के सीधे शासन में था, शेष मलाया (फिडरेटेड मलाया राज्य और फिडरेशन के बाहर के मलाया राज्य) के विविध राजा (सुलतान) ब्रिटेन की अधीनता को स्वीकार करते थे। स्ट्रेट सेटलमेन्ट का केन्द्र सिंगापुर था, जो ब्रिटेन के पूर्वी साम्राज्य के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण बन्दरगाह है। मलाया पर अब तक भी ब्रिटेन का प्रभुत्व कायम है, यद्यपि वहा भी ब्रिटेन की स्थिति डावाडोल है।

इण्डो-चायना किस प्रकार फ्रास के अधिकार मे आया, इसका निर्देश पहले किया जा चुका है। इस राज्य का निर्माण कम्बोडिया, कोचीन-चायना, चम्पा, अनाम, टोन्किन और लेआस के प्रदेशो द्वारा हुआ है। चीन के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप करके उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे ये प्रदेश फ्रास ने अधिकृत किये, और वहा अपना साम्राज्य स्थापित किया।

५ यूरोपियन जातियो का अफ्रीका मे प्रवेश

अफ्रीका बहुत बडा महाद्वीप है। उसका क्षेत्रफल १,१४,९२,००० वर्गमील है। आकार मे वह पूरे यूरोप से तिगुना है। उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ तक यूरोप के सभ्य निवासियो को इस विशाल महाद्वीप के सम्बन्ध मे बहुत कम परिचय था। उत्तरी अफ्रीकन प्रदेशो के अतिरिक्त शेष अफ्रीका के विषय मे वे केवल समुद्र तट की ही जानकारी रखते थे। इस सुविस्तृत भूखण्ड मे कौनसी जातिया निवास करती है, इनमे कौनसे पहाड, नदिया व झीले है, इसकी भौगोलिक और प्राकृतिक दशा किस प्रकार की है—इन सब बातो का कुछ भी परिचय यूरोपियन लोगो को नही था। अफ्रीका के जगलो, पशुओ तथा अद्भुत निवासियो के विषय मे अनेक विचित्र गाथाएँ यूरोप मे अवश्य प्रचलित थी, पर उन लोगो ने इसमे प्रवेश कर इसका परिचय प्राप्त करने के लिये कोई विशेष उद्योग नही किया था।

अफ्रीका का उत्तर-पूर्वी कोना ईजिप्ट या मिसर कहलाता है। प्राचीन समय मे यह एक अत्यन्त उन्नत सभ्यता की रगभूमि था। केवल ईजिप्ट मे ही नही, उत्तरी अफ्रीका के अन्य भी कई प्रदेशो मे प्राचीन समय मे सभ्यता का विकास हुआ था। कार्थेज व्यापार का बडा भारी केन्द्र था, और ईसा से कई सदी पूर्व एक अत्यन्त विशाल और समृद्ध नगर बन चुका था। रोमन साम्राज्य के विस्तार के समय मे उत्तरी अफ्रीका उसके अन्तर्गत था। आगे चलकर सातवी सदी मे जब इस्लाम का उत्कर्ष हुआ, तो अरबो ने उत्तरी अफ्रीका के इन प्रदेशो को विजय कर लिया, और अपने अनेक राज्य वहा स्थापित किये। अरब लोग बडे साहसी और वीर थे। वे केवल उत्तरी अफ्रीका पर आधिपत्य

स्थापित करके ही सतुष्ट नही हुए, अपितु सहारा का मरुस्थल पार कर उन्होने मध्य तथा दक्षिण अफ्रीका मे भी प्रवेश करने का प्रयत्न किया। मध्य अफ्रीका के निवासियो के साथ उनका व्यापारिक सम्बन्ध विद्यमान था, ऊँटो के काफिलो पर सहारा को पारकर वे दक्षिणी प्रदेशो मे व्यापार के लिये आया जाया भी करते थे। इसी प्रकार अफ्रीका के पूर्वी तट पर उन्होने अनेक व्यापारिक केन्द्र कायम किये थे, और दक्षिण मे मैडागास्कर तक वे व्यापार के लिये आते जाते थे। अपने परिचित प्रदेशो का नकशा बनाने तथा उनकी भौगोलिक और प्राकृतिक दशा को लेखबद्ध करने का प्रयत्न भी अरब लोगो ने किया था। यूरोपियन लोगो को अफ्रीका के सम्बन्ध मे पहले पहल परिचय अरब लोगो द्वारा ही प्राप्त हुआ था। स्पेन अरब साम्राज्य के अधीन था, वहा के लोगो का अरबो के साथ घनिष्ट सम्बन्ध था। इसीलिये सबसे पहले स्पेन तथा उसके पडोसी पोर्तुगाल को अफ्रीका के विषय मे परिचय हुआ।

पन्द्रहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे जब यूरोपियन जातियो ने पूर्वी देशो तक पहुँचने के लिये नवीन मार्गों को ढूंढना प्रारम्भ किया, तो पोर्तुगीज लोगो मे अफ्रीका का चक्कर काटकर पूर्व मे जाने की कल्पना उत्पन्न हुई। पर इन पोर्तुगीज लोगो की दृष्टि मे अफ्रीका का कोई महत्त्व न था। उसमे प्रवेश कर उसके निवासियो का पता लगाना उनकी दृष्टि मे कोई उपयोग नही रखता था। भारत आदि पूर्वी देशो के साथ व्यापार इतना लाभदायक था, कि अफ्रीका मे प्रविष्ट होने की आवश्यकता ही पोर्तुगीज लोगो को अनुभव नही होती थी। पर धीरे-धीरे अफ्रीका का एक उपयोग यूरोपियन लोगो को ज्ञात हुआ। अमेरिका का इस समय तक पता लग चुका था। विविध यूरोपियन देश, जिनमे स्पेन सबसे प्रमुख था, वहा अपने उपनिवेश बसा रहे थे। इन नई बस्तियो के लिये गुलामो की जरूरत थी। अमेरिका के मूल निवासी गुलामी के लिये उपयुक्त न थे, इसलिये अमरीका के हबशियो को जहाजो पर लादकर अमेरिका ले जाया जाने लगा, और वहा उनकी बिक्री प्रारम्भ हुई। शीघ्र ही यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यापार बन गया, और बहुत से लोग गुलामो का क्रय-विक्रय कर धनी होने लगे। हालैण्ड, ब्रिटेन, फ्रान्स आदि विविध देशो ने इस घृणित व्यापार के लिये विविध अड्डे अफ्रीका मे बनाये हुए थे, और यूरोपियन लोग विविध उपायो से हबशियो को पकड कर उन्हें अमेरिका भेजा करते थे। उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ तक यूरोपियन लोगो की दृष्टि मे अफ्रीका का यही एकमात्र उपयोग था। इसी प्रकार अफ्रीका के पूर्वी तट पर अरब लोग भी गुलामो का व्यापार करते थे। उस समय के लोग इस व्यापार को घृणित नहीं समझते थे। आर्थिक दृष्टि से तो गुलामो के क्रय-विक्रय से प्रत्यक्ष लाभ था ही, पर धार्मिक दृष्टि से भी लोग इसे अच्छा समझते थे। उस समय ईसाई पादरी कहा करते थे, कि दास-प्रथा ईश्वर तथा धर्म द्वारा अनुज्ञात है, और हबशी लोग ईसाइयो की शरण मे आकर परलोक मे सुख तथा शान्ति प्राप्त करेंगे। यह व्यापार कितने बड़े पैमाने पर होता था, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है, कि सन् [illegible] मे अकेले ब्रिटेन के [illegible] जहाज इस व्यापार मे लगे हुए थे, और वे एक बार मे सैंतालीस हजार गुलामो को ढो सकते थे। [illegible] मे विविध देशो के गुलाम व्यापार के अड्डे इस प्रकार थे—हालैंड के [illegible], ब्रिटेन

के १८, पुर्तगाल के ८, डेनमार्क के ४ और फ्रास के ३। इन विविध अड्डो मे लाखो गुलाम प्रति वर्ष अमेरिका तथा यूरोप के विविध बाजारो मे विक्रय के लिए पहुचाये जाते थे।

अमेरिका और फ्रास की राज्यक्रान्तियो ने जिन नवीन विचार-धाराओ का प्रारम्भ किया, उनमे इस गुलाम व्यापार के विरुद्ध भी भावना उत्पन्न हुई। सन् १८०७ मे ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने गुलाम व्यापार के विरुद्ध प्रस्ताव स्वीकृत किया। इसी प्रकार का प्रस्ताव सन् १८१८ मे वीएना की द्वारा काग्रेस भी स्वीकृत किया गया। धीरे-धीरे इस घृणित प्रथा का अन्त होना प्रारम्भ हुआ, और इसके कारण यूरोपियन लोगो की दृष्टि मे अफ्रीका का उपयोग भी कम होने लगा। जब तक यूरोपियन लोग इसी व्यापार के लिए अफ्रीका आते जाते थे, अब इसके बन्द हो जाने पर उन्हे उसका कोई भी उपयोग प्रतीत नही होता था।

उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ मे सन् १८१५ में अफ्रीका की दशा निम्नलिखित प्रकार से थी—उत्तरी अफ्रीका के बडे भाग पर टर्की के सुलतान का आधिपत्य माना जाता था। ईजिप्ट, ट्रिपोली, ट्यूनिस और अल्जीरिया तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत समझे जाते थे, यद्यपि उनके शासक क्रियात्मक दृष्टि मे स्वतन्त्र थे। उत्तरी अफ्रीका में मोरक्को तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत नही था, वहा एक स्वतन्त्र सुलतान राज्य करता था। सेनेगल नदी के मुहाने पर (पश्चिमी तट पर) फ्रास का कब्जा था। पूर्वी तट पर मैडागास्कर द्वीप के ठीक सामने के कुछ प्रदेश पोर्तुगाल के कब्जे में थे। ब्रिटिश लोग केप कोलोनी पर कब्जा कर चुके थे, और अफ्रीका के पश्चिमी तट पर उनके अन्य भी कई छोटे-छोटे अड्डे विद्यमान थे। शेष सुविस्तृत अफ्रीका अभी यूरोपियन लोगो के लिए एक अपरिचित, अज्ञात और रहस्यमय भूखण्ड था। उसके सघन जगलो, विस्तृत झीलो और अद्भुत निवासियो के सम्बन्ध मे उन्हे कुछ भी परिचय नही था।

गुलाम व्यापार के दिनो में भी अनेक यूरोपियन लोग अफ्रीका के अन्दरूनी हिस्सो मे प्रवेश करने का प्रयत्न करते रहते थे। विशेषतया, रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट ईसाई पादरी अफ्रीका के हवशी निवासियो को सद्धर्म का सदेश पहुँचाने के लिए बहुत उत्सुक रहते थे। अनेक व्यापारी भी अफ्रीका मे मिलने वाले हाथी दात, आबनूस, गोद, रबड आदि कीमती पदार्थो को प्राप्त करने के लिए काफी दूर-दूर तक अन्दर चले जाते थे। इन पादरी तथा व्यापारी लोगो द्वारा अफ्रीका के सम्बन्ध मे बहुत सी अद्भुत बाते यूरोप मे फैल रही थी, और बहुत से साहसी लोग केवल ज्ञानवृद्धि की दृष्टि से भी इस विशाल महाद्वीप का आलोडन करने के लिए अग्रसर हो रहे थे। गुलाम व्यापार के बन्द हो जाने पर यह प्रवृत्ति और भी अधिक बढ गई। गुलामो के अतिरिक्त अन्य व्यापारिक वस्तुओ को अधिगत करने के लिए विविध साहसी व्यापारी अफ्रीका मे प्रवेश करने लगे। पादरियो के लिए अब यह सम्भव नही रहा था, कि हवशियो को गुलाम बनाकर उनकी आत्माओ का उद्धार कर सके। पर उन्हे इन 'पथभ्रष्ट' लोगो को मार्ग प्रदर्शित करने तथा 'सद्धर्म' मे लाने की उत्सुकता इतनी अधिक थी, कि वे उन्ही के घरो मे जाकर उन्हे ईसा का सन्देश सुनाने के लिए प्रयत्नशील होने लगे। सबसे बढकर साम्राज्यवाद

की भूख यूरोपियन लोगो को अफ्रीका मे प्रविष्ट होने के लिए प्रेरित कर रही थी।

यहा हमारे लिए यह सम्भव नही है, कि हम यूरोप के उन साहसी पुरुषो का विस्तृत विवरण दे सके, जिन्होने प्रकृति और मनुष्य—दोनो के भयकर प्रकोप की जरा भी परवाह न कर अफ्रीका के दुर्गम प्रदेशो का अवगाहन किया, और यूरोपियन जातियो के लिए इन पर अधिपत्य स्थापित करने का मार्ग साफ कर दिया। उनका वृत्तान्त उपन्यास से भी अधिक मनोरजक है उनके साहसिक कार्य पुरानी वीर गाथाओ को भी मात करते है। निस्सन्देह, ससार के इतिहास मे उनका स्थान बहुत ऊँचा है। पर हम इस इतिहास मे उनका केवल निर्देश ही कर सकते है। इगलैण्ड की 'रायल जियोग्राफिकल सोसायटी' के सरक्षण मे नील नदी का उद्गम स्थान ढूढने के लिए प्रयत्न शुरू किया गया, और इसके लिए ब्रिटिश लोग मध्य अफ्रीका मे बहुत दूर अन्दर तक प्रविष्ट हुए। सन् १८५८ मे भूमध्यरेखा के ठीक नीचे एक विशाल झील का पता लगाया गया, और इसका नाम 'विक्टोरिया नियान्जा' रखा गया। सन् १८६४ मे सर सेमुअल बार्कर ने विक्टोरिया नियान्जा के उत्तर-पश्चिम मे एक अन्य झील का पता लगाया, और उसका नाम 'एल्बर्ट नियान्जा' रखा। इसी समय लिविङ्गस्टोन नाम का एक अन्य साहसी मिशनरी अफ्रीका के मध्य भाग का अवगाहन कर रहा था। अफ्रीका की खोज करने वालो मे इस लिविङ्गस्टोन का प्रमुख स्थान है। सन् १८४० से १८७३ तक इसने अपना प्राय सारा समय इसी कार्य मे व्यतीत किया। सन् १८५१ मे वह पूर्व की तरफ से अफ्रीका मे प्रविष्ट हुआ, और पाच साल तक मध्य अफ्रीका के विविध प्रदेशो का अवगाहन करते हुए १८५६ मे वह पश्चिमी तट पर पहुँच गया। इसी तरह उसने अफ्रीका के अन्य प्रदेशो की भी यात्राएँ की। उसके यात्रा-वृत्तान्तो से सारे सभ्य ससार मे एक प्रकार की हलचल सी मच गई, और लोगो का ध्यान अफ्रीका की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। अफ्रीका के अवगाहको मे लिविङ्गस्टोन के बाद स्टेनली का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उसने लिविङ्गस्टोन की मृत्यु के दो वर्ष पूर्व सन् १८७१ मे अपना कार्य प्रारम्भ किया, और अफ्रीका के विविध प्रदेशो का खूब अच्छी तरह आलोडन किया। लिविङ्गस्टोन की मृत्यु अफ्रीका मे ही हो गई थी। पर स्टेनली १८९८ में सकुशल यूरोप वापस लौटने में समर्थ हुआ। उसके यात्राविवरणो ने अफ्रीका के प्रति यूरोपियन लोगो को और भी अधिक आकर्षित किया, और विविध यूरोपियन देश इस अद्भुत और विशाल भूखण्ड मे प्रवेश पाने तथा लाभ उठाने के लिए विशेष रूप से आतुर हो गए।

अफ्रीका मे प्रवेश पाने का प्रयत्न करने वाले यूरोपियन देशो मे बेल्जियम सबसे मुख्य था। उन दिनो बेल्जियम का राजा लिओपोल्ड द्वितीय था। वह बहुत ही चालाक और होशियार व्यक्ति था। स्टेनली की यात्राओ से वह बहुत प्रभावित हुआ, और उसने अफ्रीका मे प्रवेश कर उसे अपने प्रभाव में लाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। स्टेनली जाति से ब्रिटिश था, पर अग्रेजो ने उसकी तरफ विशेष ध्यान नही दिया। कारण यह कि केप कालोनी उन दिनो ब्रिटेन के अधीन था, और अग्रेज लोग वहा बोअर लोगो से उलझ रहे थे। बोअर और अग्रेज लोगो के इस सघर्ष का वृत्तान्त हम पहले लिख चुके है। स्टेनली की यात्राओ से प्रोत्साहित होकर लिओपोल्ड द्वितीय ने सन् १८७६ मे अपनी राजधानी

ब्रुसल्स में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया, और उसमें अफ्रीका का अवगाहन करने तथा वहां के निवासियों को सभ्यता तथा धर्म का पाठ पढ़ाने के उपायों पर विचार किया गया। इसी सम्मेलन में लिओपोल्ड ने अफ्रीका के अवगाहन के लिए एक 'अन्तर्राष्ट्रीय सभा' का संगठन किया। सन् १८७९ में स्टेनली ने इस सभा की संरक्षा में एक बार फिर अफ्रीका के लिए प्रस्थान किया, और वहां के विविध राजाओं से सन्धि कर उनके प्रदेशों को 'अन्तर्राष्ट्रीय सभा' के अधीन किया।

लियोपोल्ड की अन्तर्राष्ट्रीय सभा जिस तेजी से अफ्रीका के विविध प्रदेशों को अपनी संरक्षा में ला रही थी, उसे अन्य यूरोपियन राष्ट्र सहन नहीं कर सके। विशेषतया इंगलैण्ड और पोर्तुगाल ने उसका विरोध किया। इन देशों के प्रयत्न से अफ्रीका की परिस्थिति पर विचार करने के लिए एक अन्य अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस का आयोजन किया गया। इस कांग्रेस की बैठक नवम्बर, सन् १८८४ में बर्लिन में प्रारम्भ हुई। स्विट्जरलैण्ड के अतिरिक्त अन्य सब यूरोपियन राज्यों तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि इस कांग्रेस में सम्मिलित हुए थे। इस कांग्रेस ने कोन्गो नदी से सींचे जानेवाले प्रदेशों पर लियो-पोल्ड की 'अन्तर्राष्ट्रीय सभा' का अधिकार स्वीकृत किया, और इन्हें 'कोन्गो के स्वतन्त्र राज्य' के रूप में परिवर्तित कर दिया। कोन्गो के स्वतन्त्र राज्य का अधिपति लियोपोल्ड द्वितीय को स्वीकृत किया गया। पर यह ध्यान रहे, कि कोन्गो पर बेल्जियम का आधिपत्य नहीं माना गया था, उस पर लियोपोल्ड द्वितीय का वैयक्तिक रूप से अधिकार स्वीकृत किया गया था। साथ ही यह भी व्यवस्था की गई थी, कि इस राज्य में कोन्गो, नीगर तथा उनकी सहायक नदियों में नौकानयन की सबको स्वतन्त्रता रहे, और किसी राज्य को इसमें व्यापार आदि के लिए आने-जाने से न रोका जा सके।

कोन्गो के स्वतन्त्र राज्य में लियोपोल्ड द्वितीय का शासन बहुत क्रूर तथा अत्याचार-पूर्ण था। उसमें वहां के मूल निवासियों पर घोर अत्याचार किये जाते थे। लियोपोल्ड कोन्गो की जमीन पर अपना हक समझता था, और उस पर खेती करने के लिए वहां के निवासियों को जबर्दस्ती गुलाम बनाने का प्रयत्न कर रहा था। रेलवे का विस्तार करने और रबड़ एकत्रित करने आदि के लिए भी अफ्रीकन लोगों पर जबर्दस्ती की जा रही थी। बेल्जियन लोगों के अत्याचारों की कथाएँ सभ्य संसार के समाचारपत्रों में प्रकाशित हो रही थीं, और यूरोप तथा अमेरिका का लोकमत उनके बहुत विरुद्ध होता जाता था। इस दशा में कोन्गो के स्वतन्त्र राज्य के शासन में परिवर्तन किया जाना अवश्यम्भावी था। आखिर, सन् १९०८ में बेल्जियन की सरकार ने इस राज्य को बाकायदा अपने अधीन कर लिया और उसके सुशासन के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किया। सन् १९०८ में कोन्गो बेल्जि-यम की अधीनता में आ गया।

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में यूरोप के प्रायः सभी प्रमुख राज्य अफ्रीका की लूट में अपना-अपना हिस्सा प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो गये थे। इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, पोर्तुगाल आदि विविध राज्य इस बात के लिए उत्सुक थे, कि जितने भी प्रदेशों पर सम्भव हो, अपना आधिपत्य स्थापित करें। बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड द्वितीय ने जो उदाहरण उपस्थित किया था, सब देश पूर्ण उत्साह के साथ उसका अनुकरण करना

चाहते थे । अफ्रीका के वास्तविक निवासियों की क्या इच्छा है, उनका भी अपनी मातृ-भूमि पर कोई अधिकार है, इन प्रश्नों पर विचार करने की यूरोपियन देशों को कोई अभिलाषा नहीं थी । उनकी दृष्टि में अफ्रीका का विशाल भूखण्ड उनके निवास तथा शासन के लिए खुला पड़ा था । सन् १८९० में यूरोप के ये सभ्य देश अफ्रीका के टुकड़े कर उन्हें आपस में बांट लेने के लिए कटिबद्ध हो गये । जो अफ्रीका कुछ साल पहले तक एक अज्ञात व अपरिचित देश था, जिसमें भयंकर जीव-जन्तु व मनुष्य स्वच्छन्द रूप से जहां चाहें विचरते थे, अब यूरोपियन राज्यों में विभक्त होना शुरू हो गया ।

अठाईसवां अध्याय

विज्ञान, साहित्य और कला

१ वैज्ञानिक उन्नति

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय और उन्नीसवीं सदी में जो विविध राजा, सेनापति व राजनीतिक नेता यूरोप में हुए, उनका हमने इस इतिहास में विशद रूप में वर्णन किया है। साथ ही, हमने उन विचारकों का भी उल्लेख किया है, जिन्होंने मानव समाज के राजनीतिक और आर्थिक सगठन के सम्बन्ध में नये विचारों का प्रतिपादन किया था। इन नये विचारों के कारण मनुष्य जाति किस प्रकार उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हुई, इसका भी हम विवेचन कर चुके हैं। पर सम्भवत, मानव के हित और कल्याण के लिये जितना कार्य वैज्ञानिकों द्वारा हुआ है, उतना राजाओं, सेनापतियों, राजनीतिक नेताओं और विचारकों द्वारा नही हुआ। उन्नीसवीं सदी में यूरोप में बहुत से ऐसे वैज्ञानिक हुए, जिन्होंने अपने आविष्कारों द्वारा मनुष्यों के जीवन की परिस्थितियों में मौलिक परिवर्तन किये, और जिनके कारण बीसवीं सदी का मनुष्य ऐसा सुखी जीवन व्यतीत करने में समर्थ हो रहा है, जैसा कि शायद उसने पहले कभी नही बिताया था। विज्ञान के क्षेत्र मे उन्नति के कारण वर्तमान युग का मानव प्रकृति पर महान् विजय स्थापित कर सकने मे समर्थ हुआ है।

विकासवाद का सिद्धान्त—उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ तक यूरोपियन लोग यह मानते थे, कि पृथिवी पर मनुष्य को उत्पन्न हुए ६,००० साल के लगभग हुए हैं। ईश्वर ने सबसे पहले आदम और ईव को उत्पन्न किया, और इस जोड़े से सम्पूर्ण मनुष्य जाति की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार यूरोप के लोग यह मानते थे, कि सर्वशक्तिमान् भगवान् ने अपनी अद्भुत शक्ति का प्रयोगकर पृथिवी, सूर्य चन्द्र, तारा, नक्षत्र, ग्रह आदि सब सृष्टि का निर्माण किया, और पृथिवी पर वृक्ष, वनस्पति, जीव, जन्तु, मनुष्य आदि उत्पन्न किये। इन सबको बनाते हुए ईश्वर को छ दिन लगे। इन छ दिनों मे वह इतना थक गया, कि सातवें दिन (रविवार) उसने पूर्ण रूप से विश्राम किया। सृष्टि की उत्पत्ति का यह विवरण ईसाइयों के धर्मग्रन्थ बाइबल में दिया हुआ है, और इसे प्रमाण रूप से स्वीकार कर यूरोप के सब ईसाई यह विश्वास करते थे, कि ससार और मनुष्य की उत्पत्ति इस ढग से छ दिनों में ईश्वर द्वारा की गई थी। अठारहवीं सदी के अन्त तक यूरोप मे एक भी ऐसा विचारक उत्पन्न नही हुआ था, जो इन धार्मिक सिद्धान्त में किसी भी प्रकार का सन्देह प्रकट करे।

सबसे पहले जेम्स हटन नामक स्काच वैज्ञानिक ने १७९५ मे इस मन्तव्य के विरुद्ध आवाज उठाई। उसने कहा, पृथिवी का वैज्ञानिक रूप से अनुशीलन करके मुझे यह प्रतीत

जाता है, कि पृथिवी का निर्माण कब हुआ, इसका कोई चिह्न नहीं मिलता। ऐसा ज्ञात होता है, कि पृथिवी बहुत अधिक पुरानी है, और वह किसी एक निश्चित दिन न बनकर धीरे धीरे बनी है। हटन के इस मन्तव्य से उस युग के विद्वानों में बहुत खलबली मची, और उसके खिलाफ एक तूफान सा उठ खड़ा हुआ। १८३० में सर चार्ल्स लायल ने प्रतिपादित किया, कि पृथिवी का निर्माण अनन्त युगों में धीरे-धीरे विकास द्वारा हुआ है। जब पृथिवी सिकुड़नी शुरु हुई, तो इस सिकुड़न के कारण पहाड़ों का निर्माण हुआ। वर्षा और जल की बाढ़ द्वारा घाटियां बनीं। जल के कारण जब चट्टानों की मिट्टी घुलनी शुरू हुई, तो इस नरम मिट्टी से पृथिवी के जो भाग आच्छादित हो गये, उन पर वनस्पति व पौधों की उत्पत्ति होने लगी। जिस प्रक्रिया द्वारा पृथिवी अपने वर्तमान रूप में आई है, वह अब भी जारी है, और उससे पृथिवी के स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। १८६३ में लायल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मनुष्य की प्राचीनता' (एण्टिक्विटी आफ मैन) प्रकाशित की। इसमें उसने प्रतिपादित किया, कि पृथिवी की निचली सतहों में जो मानव अवशेष मिले हैं, उनसे यह स्वीकार करना होगा, कि अब से कम से कम एक लाख वर्ष पूर्व मनुष्य पृथिवी पर निवास करता था। फ्रेंच वैज्ञानिक ब्यूफों ने सबसे पहले इस सिद्धान्त की स्थापना की, कि न केवल पृथिवी, अपितु उस पर विद्यमान सब जीव-जन्तु भी विकास की प्रक्रिया द्वारा ही अपने वर्तमान रूप में आये हैं। जीवों की विविध नसलों का ध्यानपूर्वक अनुशीलन करके यह भलीभांति समझा जा सकता है, कि सब जीव-जन्तु एक ही प्रारम्भिक 'जीव' से विकसित हुए हैं। एक अन्य फ्रेंच विद्वान लमॅर्क ने ब्युफों के मन्तव्य की पुष्टि की, और यह सिद्ध किया, कि न केवल विविध जीव-जन्तु, अपितु मनुष्य भी विकास की प्रक्रिया का ही परिणाम है।

जीव-जन्तु अपितु मनुष्य भी विकास की इसी प्रक्रिया का परिणाम है। अन्य जन्तुओं से विकसित होते हुए ही मनुष्य ने अपने वर्तमान रूप को प्राप्त किया है।

ईसाई धर्म के धर्मशास्त्रियों ने विकासवाद का घोर विरोध किया। उनका खयाल था, कि इस सिद्धान्त से ईसाई धर्म को भारी आघात पहुंचेगा। पर वैज्ञानिक लोगों ने इसका स्वागत किया। ब्रिटेन में वालेस ने डार्विन के मत की पुष्टि में एक अत्यन्त उत्कृष्ट पुस्तक लिखी। हर्बर्ट स्पेन्सर ने विकासवाद का पोषण करते हुए यह प्रदर्शित किया, कि समाज-शास्त्र, आचरणशास्त्र और मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी यह सिद्धान्त भलीभांति लागू होता है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान हैकल ने विकासवाद की पुष्टि करते हुए प्रतिपादित किया, कि मनुष्य का विकास धीरे-धीरे हुआ है, और चिपांजी की दशा तक पहुंचते हुए उसे २६ भिन्न-भिन्न रूपों में से गुजरना पड़ा है। फ्रेंच विद्वान रेना ने धर्म के क्षेत्र में विकासवाद को प्रयुक्त किया, और प्रदर्शित किया कि प्रारम्भिक मनुष्य के धार्मिक विचार किस प्रकार धीरे-धीरे क्रिश्चियन सिद्धान्तों के रूप में विकसित हुए हैं। पादरियों के विरोध के बावजूद भी यह सिद्धान्त निरन्तर लोकप्रिय होता गया। पोप पायस दशम ने घोषित किया था, कि डार्विन का मत विकृत मन का परिणाम है। पर बाद में ईसाई धर्मशास्त्रियों ने भी इस मत का विरोध करना बन्द कर दिया। वर्तमान समय में प्रायः सभी वैज्ञानिक विकासवाद को स्वीकृत कर चुके हैं, और यह सिद्धान्त न केवल भौतिक विज्ञानों का अपितु सामाजिक विज्ञानों का भी आधार बन गया है।

रसायन शास्त्र—उन्नीसवीं सदी में रसायन शास्त्र ने भी बहुत उन्नति की। जान डाल्टन ने प्रतिपादित किया, कि प्रकृति के सब पदार्थ परमाणुओं द्वारा बने हुए हैं। जल उद्रजन और ओषजन के परमाणुओं द्वारा मिलकर बनता है। इसी प्रकार कार्बोनिक एसिड का निर्माण कार्बन और ओषजन के परमाणुओं द्वारा होता है। जान डाल्टन ने यह भी मालूम किया, कि विविध तत्वों के परमाणु किस अनुपात में मिलकर विविध पदार्थों को बनाते हैं, और उन तत्वों का वैज्ञानिक रूप में कितना बोझ होता है। स्वीडन के विद्वान बर्जेलियस और इटली के वैज्ञानिक आवोगार्दो ने इस परमाणु सिद्धान्त को और अधिक विकसित किया, और यह प्रतिपादित किया, कि परमाणु (एटम) और भी अधिक सूक्ष्म वस्तु से बने होते हैं, जो प्रोटोन कहाते हैं। वैज्ञानिकों ने प्रयत्न किया, कि उन तत्वों का पता करें, जिनके परमाणुओं द्वारा विविध पदार्थ निर्मित होते हैं। धीरे-धीरे उन्होंने ऐसे ९२ तत्वों का पता किया और इन तत्वों के परिज्ञान से रसायनशास्त्र के विकास में बहुत अधिक सहायता मिली।

रसायन शास्त्र के विकास के कारण वैज्ञानिकों ने बहुत से पदार्थों का कृत्रिम रूप में निर्माण किया। विविध प्रकार के रंग, आल्कोहल, खाद, सुगन्धि, चमड़ा, रबड़, औषधि आदि रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बनाये जाने लगे। मानव समाज के हित व कल्याण के लिये जो विविध प्रकार की वस्तुएं अपेक्षित हैं, विज्ञान की सहायता से उनका निर्माण शुरू हुआ। रासायनिक खादों की सहायता से जमीन की उपज-शक्ति बढ़ाई जाने लगी। खेत की मिट्टी का रासायनिक विश्लेषण करके यह मालूम किया जाने लगा, कि वह मिट्टी किस फसल के लिये अधिक उपयुक्त है; और एक विशेष प्रकार की फसल को पैदा

करने के लिये उसमे किस प्रकार का खाद डाला जाना चाहिये। शहरो मे पीने के पानी को शुद्ध व दोषरहित करने के लिये भी रसायनशास्त्र का उपयोग किया गया। कारखानो मे तैयार होनेवाले विविध प्रकार के माल को अधिक उत्तम व टिकाऊ बनाने के लिये रासायनिक प्रक्रियाओ की मदद ली जाने लगी।

विद्युत् शक्ति—अठारहवी सदी के अन्तिम भाग मे गल्वानी और वोल्टा नामक दो इटालियन वैज्ञानिको ने पहले-पहले बिजली की बैटरी का आविष्कार किया था। बिजली का परिचय इससे पहले भी यूरोपियन लोगो को था। रगड द्वारा बिजली को वे पैदा भी करते थे। पर बैटरी का निर्माण कर उससे उत्पन्न विद्युत्शक्ति क्रियात्मक रूप से उपयुक्त हो सकती है, इसका पहले-पहल परिज्ञान इन इटालियन वैज्ञानिको ने ही किया था। उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ मे अँम्पेअर् और अरगो नामक फ्रेंच वैज्ञानिको ने यह प्रदर्शित किया कि बिजली और चुम्बक का घनिष्ठ सम्बन्ध है, और बिजली द्वारा चुम्बक शक्ति को उत्पन्न किया जा सकता है। इस आविष्कार का यह परिणाम हुआ, कि टैलीग्राफ, टैलीफोन, वायरलैस (बेतार की तार) व बिजली के अन्य उपकरणो का सूत्रपात हुआ। इसी समय फेरेडे ने डायनमो का आविष्कार किया। डायनमो के आविष्कार से बिजली का प्रचुर परिमाण मे उत्पादन सम्भव हुआ, और रोशनी आदि के लिये उसका उपयोग किया जाने लगा। जब एक बार मनुष्य ने बैटरी और डायनमो द्वारा बिजली के उत्पादन के ढग को जान लिया, तो उसने अनेक इस प्रकार की मशीनो का निर्माण शुरू किया, जिनसे उसके जीवन का ढग ही बिलकुल बदल गया। शहरो की सडको और गलियो में बिजली की रोशनी दिखाई देने लगी, मकान तेज व चमकदार प्रकाश से जगमग हो गये, और घोडे के स्थान पर विद्युत्शक्ति से चलनेवाली गाडिया प्रयोग मे आने लगी। कारखानो में भी विद्युत्शक्ति का उपयोग होने लगा।

उन्नीसवी सदी के अन्त तक वैज्ञानिको ने यह भी मालूम किया, कि वस्तुत प्रकृति के सब तत्व एक है। जो पदार्थ हमे ठोस, द्रव या गैस रूप मे दृष्टिगोचर होते है, वस्तुत उनमे कोई तात्विक भेद नही है। कोई पदार्थ जो हमे ठोस, द्रव या गैस रूप मे उपलब्ध होता है, उसका कारण केवल यह है, कि उसे इन विविध रूपो मे आने के लिये उष्णता की कम या अधिक अपेक्षा होती है। इस परिज्ञान ने भौतिक विज्ञान की उन्नति मे बहुत सहायता दी, और अनेक नये यन्त्र व उपकरण आविष्कृत किये गये।

ज्योतिष--ज्योतिष शास्त्र बहुत प्राचीन है। पर उन्नीसवी सदी मे वैज्ञानिको ने दूरबीनो द्वारा नक्षत्र-मण्डल के सम्बन्ध मे बाकायदा और निश्चित रूप से परिज्ञान प्राप्त करना शुरू किया। विविध तारा, नक्षत्र आदि आकार में कितने विशाल है, पृथ्वी से वे कितनी दूरी पर स्थित है, इस सम्बन्ध मे नये-नये तथ्यो को मालूम किया जाने लगा। वैज्ञानिक उपकरणो की सहायता से ज्योतिषशास्त्र ने असाधारण उन्नति की।

चिकित्सा शास्त्र --१८३८ मे श्लाइडन और श्वान्न नामक दो जर्मन वैज्ञानिको ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, कि जिस प्रकार भौतिक जगत् के विविध पदार्थ छोटे-छोटे परमाणुओ द्वारा बने है, वैसे ही प्राणियो के शरीर भी छोटे-छोटे अवयवो से बने होते है। ये अवयव (जिन्हे सेल कहा जाता है) अपने आप मे जीवित सत्ताए है। जिस प्रकार मकान बहुत सी ईंटो से मिलकर बना होता है, वैसे ही प्राणियो के शरीर भी करोडो छोटे-छोटे अवयवो (सेल) से मिलकर बने होते है। मनुष्य के शरीर मे इन अवयवो की सख्या २,६०,००,००० होती है। इस अवयव-सिद्धान्त ने विविध बीमारियो के स्वरूप को समझने व उनकी चिकित्सा के नये तरीको के आविष्कार मे बहुत सहायता पहुचाई। प्राणिशास्त्र (बायलोजी) के आधार मे यही सिद्धान्त काम कर रहा है। १८६३ मे कीटाणु (बैक्टीरिया) का पता किया गया। ये कीटाणु विविध आकार के बहुत छोटे-छोटे जन्तु होते है, जिन्हे यदि एक कतार मे रखा जाय, तो एक इच लम्बाई में चार हजार कीटाणु आ जावेगे। इससे इनके अत्यन्त लघु आकार की कल्पना की जा सकती है। ये कीटाणु सर्वत्र व्याप्त है। वायु, जल, मिट्टी, वनस्पति आदि सर्वत्र वे विद्यमान है, और विविध रोगो के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। कीटाणु-सिद्धान्त का प्रधान प्रवर्तक पास्त्यूअर् था। वह फ्रास का निवासी था, और उसने अनेक परीक्षणो द्वारा यह प्रदर्शित किया, कि शराब, दही आदि के रूप में जो परिवर्तन पदार्थ मे आता है, उसका कारण ये कीटाणु ही है। साथ ही, विविध रोग इन कीटाणुओ द्वारा ही उत्पन्न होते है। पास्त्यूअर ने यह भी प्रदर्शित किया, कि इन कीटाणुओ का विनाश कर किस प्रकार रोगो की चिकित्सा भी की जा सकती है। हैजा, इन्फ्लुएन्जा, नमूनिया, टायफाइड, तपेदिक, जुखाम, मलेरिया आदि विविध बीमारियो मे किस प्रकार ये कीटाणु कारण होते है, वैज्ञानिको ने यह बात भी प्रदर्शित की, और इन कीटाणुओ का विनाश करने के लिये विविध चिकित्साओ का भी प्रारम्भ किया। पास्त्यूअर् ने स्वय पागल कुत्ते के काटने का इलाज इस सिद्धान्त के अनुसार आविष्कृत किया था। केवल रोगो की चिकित्सा के लिये ही नही, अपितु इन्हे रोकने के लिये भी कीटाणु सिद्धान्त को प्रयुक्त किया गया। थूक आदि द्वारा रोगो के कीटाणु फैलते है, इसलिये नगरो की म्युनिसिपैलिटियो ने इस बात का प्रचार

किया, कि लोग सड़कों व अन्य सार्वजनिक स्थानों पर थूकें नहीं। गले-सड़े फलों, अण्डों व इसी तरह की अन्य गन्दगी को सार्वजनिक स्थानों पर फेंकने से लोगों को रोका गया। मिठाई आदि भोज्य पदार्थ को भी विक्रेता लोग ढक कर रखें इसकी व्यवस्था की गई। स्वास्थ्य रक्षा के नियमों पर सरकारों ने विशेष रूप से ध्यान देना शुरू किया। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ, कि यूरोप में बीमारियों का फैलना बहुत कुछ रुक गया। उन्नीसवीं सदी के शुरू में चेचक एक ऐसा रोग था, जिससे बहुसंख्यक जनता बच नहीं पाती थी। पर बीसवीं सदी के शुरू तक यह रोग यूरोप में प्रायः समाप्त हो गया था। यही बात प्लेग, हैजा आदि अन्य छूत की बीमारियों के विषय में भी कही जा सकती है। यूरोपियन लोगों के स्वास्थ्य में जो यह असाधारण उन्नति हुई, उसका श्रेय मुख्यतया कीटाणुसिद्धान्त को ही है।

उन्नीसवीं सदी में शल्य चिकित्सा में भी बहुत उन्नति हुई। पहले शल्यक्रिया (आपरेशन) बहुत कष्टप्रद होते थे। यूरोप के लोगों को किसी ऐसी औषधि का ज्ञान नहीं था, जो सामयिक रूप से बीमार को बेहोश कर सके, और उसे शल्यक्रिया के कष्ट का अनुभव न होने पाए। १८४६ में डा० वैरन नामक अमेरिकन चिकित्सक ने एक ऐसी औषधि का आविष्कार किया, जिससे शल्यक्रिया पीडारहित रूप में की जा सकती थी। १८४७ में क्लोरोफार्म का आविष्कार हुआ। इन औषधियों के परिज्ञान से पूर्व शल्यक्रिया न केवल रोगी के लिये अपितु चिकित्सक के लिये भी अत्यन्त कष्टप्रद होती थी। इसी कारण आपरेशन बहुत कम किये जाते थे। बोस्टन के हास्पिटल में जहां १८४६ से पूर्व साल भर में केवल ३७ आपरेशन होते थे, वहां क्लोरोफार्म के आविष्कार के बाद इन आपरेशनों की संख्या बढ़कर ३७०० तक पहुंच गई। क्लोरोफार्म के ईजाद हो जाने से शल्यक्रिया अत्यन्त सरल हो गई है, और चिकित्सक निश्चिन्तता के साथ अपना कार्य कर सकता है। १८७६ में उन अनेक औषधियों और प्रक्रियाओं का आविष्कार हुआ, जिनमें शल्यक्रिया के उपकरणों, रुई, पट्टी आदि को कीटाणुरहित किया जाता है। इन आविष्कारों के कारण अब शल्यक्रिया खतरे से प्रायः विरहित हो गई है। एक्स-रे के कारण चिकित्सकों का कार्य और भी अधिक सुगम हो गया है।

आदि कितनी ही ऐसी वस्तुएँ तैयार करता है, जिनकी अठारहवीं सदी में कल्पना भी सम्भव नहीं थी।

(२) हमने इस इतिहास के एक पहले अध्याय में द्वितीय व्यावसायिक क्रान्ति का उल्लेख किया है। अठारहवीं सदी के अन्त में इङ्गलैण्ड में जो प्रथम व्यावसायिक क्रान्ति हुई थी, उसके कारण मध्यकाल की आर्थिक श्रेणियों (गिल्ड) का अन्त होकर फैक्टरियों का विकास हुआ था। पर उन्नीसवीं सदी के वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा आर्थिक उत्पत्ति के प्रकार में और अधिक अन्तर आया। भाप, तेल व बिजली से चलनेवाले विशाल कारखानों का विकास हुआ, और आर्थिक उत्पत्ति में छोटे परिमाण के उत्पादकों का स्थान बड़े बड़े पूंजीपति लेने लगे। जायन्ट स्टाक कम्पनियों का विकास हुआ, और बड़ी-बड़ी कम्पनियों का स्थान वे विशालकाय ट्रस्ट लेने लगे, जिन्होंने सम्पूर्ण व्यवसाय को ही अपने अधिकार में कर लिया। व्यवसायों का सञ्चालन व्यक्तियों के हाथों में न रहकर राज्य के अधीन होना चाहिये, यह विचार इसी कारण उत्पन्न हुआ, क्योंकि वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा आर्थिक उत्पत्ति के ढंग में ऐसे परिवर्तन हो गये थे, जिनसे उत्पादन का कार्य व्यक्तियों के हाथों में रह सकना सम्भव ही नहीं रहा था।

(३) देश और काल पर विजय स्थापित करने में वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा बहुत सहायता मिली। पन्द्रहवीं सदी के अन्त में अटलाण्टिक महासागर को पार करने में कोलम्बस को ७० दिन लगे थे। उन्नीसवीं सदी के शुरू में नैपोलियन के पास घोड़े से अधिक तेज चलने वाली कोई सवारी नहीं थी। १८१४ में वीएना की कांग्रेस में यूरोप के जो राजनीतिज्ञ एकत्र हुए थे, न उनके पास मोटरकारें थीं, और न उन्हें वीएना पहुंचाने के लिये रेलगाडियों की ही सत्ता थी। ये राजनीतिज्ञ आपस में विचार विनिमय करने के लिये न टेलीफोन प्रयुक्त कर सकते थे, और न वीएना की कांग्रेस के समाचारों को यूरोप के विभिन्न देशों में पहुंचाने के लिये तार व रेडियो ही विद्यमान थे। वीएना की कांग्रेस जिस राजप्रासाद में हो रही थी, उसमें बिजली की रोशनी की तो बात ही क्या, गैस की रोशनी भी नहीं थी। उसे प्रकाशित करने के लिये मोमबत्तियां ही प्रयोग में लाई जा रही थीं। पर उन्नीसवीं सदी का अन्त होने से पूर्व वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण यूरोप का जीवन कितना परिवर्तित हो गया था। यूरोप में सर्वत्र रेलवे लाइनों का जाल-सा बिछ गया था। टेलीग्राफ, टेलीफोन, वायरलैस आदि द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर समाचार को पहुंचा सकना सम्भव हो गया था, और बिजली की रोशनी से यूरोप के प्रायः सभी नगर जगमगाने लगे थे। रेलवे, भाप से चलनेवाले जहाज, टेलीग्राफ, टेलीफोन आदि के कारण संसार के विविध देश एक दूसरे के बहुत समीप आ गये थे, और मनुष्य देश और काल पर असाधारण विजय प्राप्त करने में समर्थ हुआ था।

(४) देश और काल पर विजय के कारण मनुष्य जाति ने अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग पर भी अग्रसर होना प्रारम्भ कर दिया था। फ्रांस, बेल्जियम, इटली आदि की राष्ट्रीय सीमाएँ मानव समाज की एकता में कृत्रिम रूप से बाधा उपस्थित करती हैं, यह विचार विकसित होने लगा था। इस विचार का विकास विशेष रूप से बीसवीं सदी में हुआ, और इस पर हम यथास्थान प्रकाश डालेंगे।

२. साहित्य

शिक्षा का प्रसार—उन्नीसवी सदी मे यूरोप में साहित्यिक क्षेत्र मे भी बहुत उन्नति हुई। प्रेस के आविष्कार के कारण इस समय पुस्तके व पत्र पत्रिकाएँ बहुत सुलभ हो गई थी। बडे-बडे कारखानो मे कागज भारी मात्रा मे बनता था, और उसका मूल्य बहुत कम होता था। इस प्रकार के प्रेस कायम हो गये थे, जो एक घण्टे मे हजारो प्रतिया छाप सकते थे। पुस्तके न केवल सुलभ थी, अपितु उनका मूल्य भी कम होता था। इस दशा मे शिक्षा का प्रसार बहुत तेजी के साथ हो रहा था। उन्नीसवी सदी के अन्त तक यूरोप मे शिक्षा का इतना अधिक प्रसार हो गया था, कि फ्रास मे निरक्षर लोग केवल १४ प्रतिशत रह गये थे। इस समय यूरोप के विविध देशो मे निरक्षर लोगो की सख्या इस प्रकार थी—ब्रिटेन ४ प्रतिशत, इटली ३७ प्रतिशत, हगरी ३३ प्रतिशत, आस्ट्रिया १४ प्रतिशत, बेल्जियम १३ प्रतिशत, बल्गेरिया ६० प्रतिशत, ग्रीस ५७ प्रतिशत, पोर्तुगाल ६९ प्रतिशत, रूमानिया ६० प्रतिशत, रूस ७० प्रतिशत, सर्बिया ७८ प्रतिशत और स्पेन ४६ प्रतिशत। इसमे सन्देह नही, कि यूरोप के अनेक देशो मे इस समय भी अशिक्षित लोग बहुत बडी सख्या मे विद्यमान थे, पर साथ ही यह भी स्वीकार करना होगा, कि उन्नीसवी सदी में यूरोप ने शिक्षा के क्षेत्र मे असाधारण उन्नति की थी। फ्रास की राज्यक्रान्ति के समय यूरोप का कोई भी देश ऐसा नही था, जिसमे शिक्षित लोग २० प्रतिशत से अधिक हो।

साहित्य—शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ इस समय यूरोप में साहित्य भी निरन्तर उन्नति कर रहा था। इङ्गलैण्ड मे महारानी विक्टोरिया का काल (१८३७ से १९०३) साहित्यिक दृष्टि से सुवर्णीय युग माना जाता है। फ्रास मे राज्यक्रान्ति द्वारा जो चेतना और शक्ति उत्पन्न हुई थी, उसने वहा के साहित्यिक जीवन को भी प्रभावित किया और उन्नीसवी सदी मे वहा अनेक ऐसे लेखक और विचारक उत्पन्न हुए, जिनका सिक्का सारा ससार मानता है। जर्मनी, रूस, स्पेन, स्वीडन आदि सर्वत्र उन्नीसवी सदी साहित्यिक प्रतिभा की सदी थी। गद्य, पद्य, नाटक, आलोचनात्मक साहित्य, इतिहास आदि सब प्रकार की पुस्तकें इस युग मे प्रकाशित हुई। मध्यकाल तक साहित्य का सबसे अधिक प्रचलित व लोकप्रिय प्रकार पद्य था। उस युग के साहित्यिक अपने विचारो व मनोभावो को प्रगट करने के लिये पद्य का ही आश्रय लेते थे। छपी हुई पुस्तकों के अभाव के कारण

बहुसंख्यक पाठक अवश्य परिचित होंगे। उन्नीसवीं सदी के इङ्गलिश साहित्य के ये उज्वल रत्न थे। डिकन्स ने अपने उपन्यासों में इङ्गलिश जनता के पीडित लोगों का बडा मार्मिक चित्र खींचा है। न्यायालयों में न्याय प्राप्त करने में जनता को किस प्रकार देर लगती है, जेल में कैदियों को कैसे घोर कष्ट उठाने पडते हैं, गरीबखानों में आश्रय प्राप्त गरीबों के साथ कैसा दुर्व्यवहार होता है, इन सब बातों पर डिकन्स ने बडे सुन्दर रूप में प्रकाश डाला है। डिकन्स के उपन्यासों का उन्नीसवीं सदी के सुधारक धर्मग्रन्थ के समान अनुशीलन करते थे। कार्लाइल ने अपनी कृतियों द्वारा जनता का ध्यान उन बुराइयों की तरफ आकृष्ट किया था, जो व्यावसायिक क्रान्ति के कारण इङ्गलैण्ड में उत्पन्न हो गई थीं। कार्लाइल अनुभव करता था, कि व्यावसायिक क्रान्ति के कारण जो भौतिक उन्नति यूरोप में हुई है, वह जनता के अध्यात्म को पूर्णतया कुचल रही है। रस्किन नये युग के परिवर्तनों को चिन्ता की दृष्टि से देखता था, और मनुष्यों का ध्यान पुराने युग के सरल व सुखमय जीवन की ओर आकृष्ट करता था। मैकाले फ्रेंच राज्यक्रान्ति द्वारा उत्पन्न हुई प्रवृत्तियों का कट्टर विरोधी था। पर भौतिक क्षेत्र में मनुष्य जो उन्नति कर रहा था, मैकाले उसका स्वागत करता था। उसका मत था, कि स्वतन्त्रता के साथ-साथ मनुष्य के लिये उपयोगिता और प्रगति की भी आवश्यकता है। मिसेज ब्रौनिङ्ग ने इङ्गलिश जनता का ध्यान कारखानों में काम करने वाले बालकों की दुर्दशा की ओर आकृष्ट किया था। इङ्गलैण्ड की फैक्टरियों में सुधार के लिये जो अनेक कानून बने, मिसेज ब्रौनिङ्ग की कविताएं उनमें बहुत सहायक हुई। थैकरे और ज्यार्ज ईलियट ने अपनी कृतियों में सम्पत्ति के परिग्रह की बुराइयों को प्रदर्शित किया। इङ्गलैण्ड के ये विविध साहित्यसेवी अपनी रचनाओं द्वारा जनता में अपने विचारों का प्रसार करने में बहुत सफल हुए, और इसमें सन्देह नहीं, कि इनसे जनता को विविध सामाजिक व राजनीतिक समस्याओं पर निष्पक्ष रूप से विचार कर सकने का अवसर मिला।

उन्नीसवीं सदी के फ्रेंच साहित्यिकों में ऑनारे द बाल्जाक, विक्टर ह्यू गो, अलग्जान्द्र ड्यूमा, मोपासा, ज्यार्ज सा और एमिल जोला सबसे प्रसिद्ध हैं। बाल्जाक ने बहुत से ऐसे उपन्यास लिखे, जिनमें कुलीन व उच्च श्रेणियों के विकृत जीवन, भोग विलास और मूर्खताका बडा सजीव चित्रण किया गया है। बाल्जाक साहित्यमें 'यथार्थवाद' का बडा पक्षपाती था, और उसके ग्रन्थों में कल्पना व भावुकता की अपेक्षा यथार्थता को अधिक महत्त्व दिया गया है। ड्यूमा, मोपासा और एमिल जोला आदि की कृतियां फ्रेंच साहित्य के अमूल्य रत्न हैं, और उनके अनुवाद संसार की प्रायः सभी उन्नत भाषाओंमें हो चुके हैं। उन्नीसवीं सदी में फ्रांस क्रान्ति के क्षेत्र में सम्पूर्ण यूरोप का नेतृत्व करता था। इन फ्रेंच साहित्यिकों ने भी साहित्य के क्षेत्र में यूरोप का नेतृत्व किया। इन्होंने अपने ग्रन्थों में समाज के विविध वर्गों के जो सजीव चित्र चित्रित किये, और जिस प्रकार अपने युग की समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किये, उससे जनता को विचार करने के लिये बहुत सामग्री उपलब्ध हुई।

इस युग के रूसी साहित्यिकों में गोगोल, तुर्गनेव, टाल्स्टाय, गोर्की और चैखोव के नाम विश्वविदित हैं। गोगोल ने अपने ग्रन्थों में रूस की कुलीन श्रेणी और विशेष-

नया शासकवर्ग के विकृत जीवन को चित्रित किया। साथ ही सर्वसाधारण रूसी जनता किस प्रकार अर्द्धदास का जीवन व्यतीत करती थी, और इन अर्द्धदासो का जीवन कितना दयनीय था, इसका बडा मार्मिक विवरण गोगोल के ग्रन्थो मे मिलता है। तुर्गनेव बहुत प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लेखक था। रूस मे जारशाही के विरुद्ध जो क्रान्तिकारी आन्दोलन चल रहे थे, उनका तुर्गनेव के ग्रन्थो मे बडा सजीव चित्रण है। मनुष्य मनुष्य के प्रति किस प्रकार का बीभत्स व्यवहार करता है, युद्ध कितनी भयकर चीज है, वह मनुष्य को किस प्रकार जगली पशुओ की अपेक्षा भी नीच बना देती है, इन बातो की ओर विचारशील जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिये टाल्स्टाय ने बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। गोर्की स्वय उग्र क्रान्तिकारी था। समाजवाद के प्रसार मे उसकी रचनाओ का बडा हाथ था। रूसी समाजवादियो (बोल्शेविको) के लिये गोर्की की पुस्तकें बहुत महत्वपूर्ण है, और उनसे इस क्रान्तिकारी सिद्धान्त के प्रचार में बहुत सहायता मिली है। चेखोव के ग्रन्थो मे रूस के बदलते हुए समाज का बडा सुन्दर चित्रण किया गया है, और साथ ही यह भी प्रदर्शित किया गया है, कि जागीरदार श्रेणि की आन्तरिक दशा कितनी हीन और विकृत थी।

उन्नीसवी सदी के जर्मन लेखको मे हाइन, मान्न और हाप्टमान्न के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। स्वीडन के साहित्यको में स्ट्रिन्डबर्ग और नार्वे के लेखको मे इब्सन विश्वप्रसिद्ध है। इसी प्रकार के अन्य बहुत से साहित्यिक इस युग में यूरोप के अन्य देशो मे भी उत्पन्न हुए, और उनकी कृतियो के कारण यूरोप के साहित्यिक क्षेत्र में एक नवयुग उपस्थित हो गया।

३. कला

बनने शुरू हुए, और इन सबको मिलाकर आर्केस्ट्रा (सम्मिलित वाद्य) का प्रारम्भ किया गया, जिसमे बहुत से वादक विविध प्रकार के वाद्यों का उपयोग कर एक सम्मिलित संगीत का प्रादुर्भाव करते हैं। पहले यूरोप के संगीत में वाद्य की अपेक्षा मानव वाणी का अधिक महत्त्व होता था, पर अब वाणी की मधुरता के साथ-साथ वाद्य उपकरणों की मधुर स्वरलहरी का भी महत्त्व बढ़ने लगा। उपकरणों के लिये भी संगीत की रचना की जाने लगी, और मानव वाणी की अपेक्षा किये बिना केवल वाद्य यन्त्रों की सहायता से उच्च कोटि के संगीत का सृजन प्रारम्भ हुआ। इस वाद्य संगीत के विकास में बीवर, वाग्नर और वर्दी ने प्रमुख भाग लिया। जिस प्रकार उन्नीसवीं सदी में राजनीतिक व साहित्यिक क्षेत्र में राष्ट्रीय भावना कार्य कर रही थी, वैसे ही संगीत में भी राष्ट्रीय प्रवृत्तियां विकसित हुईं। वाग्नर जर्मन राष्ट्रीयता का प्रबल समर्थक था, और वर्दी इटालियन राष्ट्रीयता का। इन दो संगीताचार्यों ने जर्मनी और इटली में राष्ट्रीय एकता की अनुभूति के लिये बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इनके संगीत जर्मनी और इटली के विविध राज्यों को समान रूप से प्रभावित करते थे। फ्रांस में बर्लिओज और रूस में पीटर शैकोव्स्की संगीत के सर्वप्रसिद्ध आचार्य हुए। संगीत की इस सर्वतोमुखी उन्नति ने यूरोप के जनसमाज के सुख, सन्तोष व आह्लाद के लिये बड़ा काम किया। संगीत एक ऐसी अभिव्यक्ति है, जो भाषा व जाति-भेद की विशेष अपेक्षा नहीं रखती। इसीलिये इन विश्व-प्रसिद्ध संगीताचार्यों का कार्य केवल उनके अपने देशों तक ही सीमित नहीं रहा। संसार के प्रायः सभी देशों पर उनकी कला का प्रभाव पड़ा।

चित्रकला—संगीत और साहित्य के समान चित्रकला भी मनोभावों को अभिव्यक्त करने का अत्यन्त उत्तम साधन है। उन्नीसवीं सदी में यूरोप में अनेक ऐसे चित्रकार उत्पन्न हुए, जिन्होंने इस क्षेत्र में असाधारण रूप से उन्नति की। यहां हमारे लिये यह संभव नहीं है, कि इनकी कला के सम्बन्ध में जरा भी विशद रूप से लिख सकें। इन कलाविदों के नाम का उल्लेख करना ही इस इतिहास के लिये पर्याप्त होगा। यूजेन दलाक्रोआ (फ्रांस) फ्रांसिस्को गोआ (स्पेन), जॉन कॉन्स्टेबल (इङ्गलैण्ड), कामिल कोरो (फ्रांस), गुस्ताव कूर्बेअर् (फ्रांस), औरी दामिए (फ्रांस) आदि कितने ही चित्रकार उन्नीसवीं सदी में यूरोप में हुए, जिन्होंने अपनी कला द्वारा नये विचारों व भावनाओं को अभिव्यक्त किया। इस क्षेत्र में फ्रांस यूरोप में सर्वप्रधान स्थान रखता है। क्लाद मोने, पॉल केजान् आदि कितने ही कलाकारों ने वहां चित्रकला सम्बन्धी नये सम्प्रदायों का प्रवर्तन किया। ये लोग मानते थे, कि जिस प्रकार भाषा और लिपि मानव भावनाओं को अभिव्यक्त करने के साधन हैं, वैसे ही चित्रकला का प्रयोजन भी मनोभावों और विचारों को प्रकट करना है। इस कार्य में इन्होंने असाधारण रूप से सफलता भी प्राप्त की।

स्थापत्य कला—उन्नीसवीं सदी में स्थापत्य कला में भी असाधारण उन्नति हुई। इस युग के सबसे प्रसिद्ध स्थपति चार थे—थार्वाल्ड्सन (डेन्मार्क), कैनोवा (इटली), आगुस्त रोदां (फ्रांस), और गॉडन्स (अमेरिका)। इन चारों में भी ऑगुस्त रोदां अपनी कला का सबसे बड़ा आचार्य था। उसका मन्तव्य था, कि उत्कृष्ट कला के लिये प्रतिमा के अवयवों का सुन्दर होना आवश्यक नहीं है। उत्कृष्ट कला वह है, जो प्रकृति के अनु-

कूल हो। प्रस्तर में वास्तविकता को चित्रित करना ही उसका उद्देश्य था। आधुनिक युग की स्थापत्य कला में रोदां का बहुत उच्च स्थान है, और वर्तमान समय के कितने ही कलाकार उसे अपना आदर्श मानते हैं।

४ विज्ञान और धर्म

उन्नीसवीं सदी में जब यूरोप में विकासवाद का सिद्धान्त विकसित हुआ, तो ईसाई धर्म-शास्त्रियों ने उसका घोर विरोध किया। उनका विचार था, कि विज्ञान के नाम से जिन नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जा रहा है, वे धर्म की जड़ पर कुठाराघात करते हैं। अतः किसी भी सद्धर्मी को उनपर विश्वास नहीं करना चाहिये। पर धीरे-धीरे प्रोटेस्टेन्ट लोगों ने विज्ञान के साथ समझौता करना शुरू किया। उनका कहना था, कि मनुष्य को सत्य की खोज के लिये प्रमाणवाद पर ही आश्रित नहीं रहना चाहिये, अपितु अपनी बुद्धि का उपयोग कर परीक्षणों द्वारा भी सत्य की खोज करनी चाहिये। प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव ही रोम के पोप के विरुद्ध विद्रोह करके हुआ था। अतः उनके लिये यह कठिन नहीं था, कि इन वैज्ञानिक सिद्धान्तों की सत्यता को भी वे स्वीकार कर लें। पर प्रोटेस्टेन्ट लोगों ने भी नये वैज्ञानिक तथ्यों को सुगमता के साथ स्वीकृत नहीं कर दिया। उनमें इस प्रश्न पर भारी विवाद हुआ, और कुछ प्रोटेस्टेन्ट पादरी तो इसी प्रश्न पर फिर रोमन कैथोलिक चर्च के अनुयायी हो गये। रोमन कैथोलिक लोग शुरू में तो वैज्ञानिक तथ्यों को किसी भी प्रकार स्वीकृत करनेके लिये तैयार नहीं हुए। पर बाद में उन्होंने भी जनता को यह कहकर समझाना शुरू किया, कि धर्म का सम्बन्ध तो भगवान और मनुष्य की आत्मा से है। विज्ञान द्वारा जो नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये जा रहे हैं, उनका सम्बन्ध भौतिक जगत् से है, और इस क्षेत्र में वैज्ञानिक आविष्कारों की मान्यता को स्वीकृत किया जा सकता है। इसी कारण पोप लिओ तेरहवें ने स्वयं एक वेधशाला का निर्माण कराया, जिसमें ज्योतिष सम्बन्धी तथ्यों की गवेषणा का प्रयत्न किया गया। उसने प्रसिद्ध फ्रेंच वैज्ञानिक पास्च्यूअर को उसकी खोजों के लिये बधाई भी दी। पर सब पोपों की विज्ञान के सम्बन्ध में यह वृत्ति नहीं थी। पायस दशम और बेनेडिक्ट पन्द्रहवें सदृश अनेक पोप नये वैज्ञानिक सिद्धान्तों को किसी भी प्रकार से स्वीकृत करने के लिये उद्यत नहीं हुए थे।

समाज के संगठन के सम्बन्ध में भी समाजवाद आदि जो नये विचार उन्नीसवीं सदी में विकसित हो रहे थे, क्रिश्चियन पादरी उनके भी सख्त खिलाफ थे। यही कारण है कि अनेक समाजवादी विचारकों ने धर्म और चर्च के विरुद्ध आवाज उठाई। पर बाद में ईसाई धर्माचार्य यह समझ कर सन्तोष करने लगे, कि धर्म का क्षेत्र मनुष्य और ईश्वर तक ही है। भौतिक जगत् के समान सामाजिक संगठन में भी मनुष्य अपनी बुद्धि का उपयोग कर नये विचारों का अनुसरण कर सकता है।

यद्यपि ईसाई धर्माचार्य समाज संगठन सम्बन्धी नये विचारों को स्वीकार करने के लिये उद्यत नहीं हुए, पर उन्होंने मानव समाज के दुःखों को दूर करने के लिये और इस प्रकार साधारण जनता को अपने प्रभाव में रखने के लिये अनेक नये प्रयत्न क

प्रारम्भ किया। इसी उद्देश्य से मुक्ति फौज (साल्वेशन आर्मी) सदृश धार्मिक संस्थाओं का संगठन किया गया, जिनका लक्ष्य रोग-पीड़ितों की सेवा करना, जेल में कैदियों का चरित्र-सुधार व उपदेश देना और गरीबों के कष्टों को दूर करना था। ईसाई धर्म के विविध चर्चों ने अब अपना ध्यान समाजसेवा के कार्य पर विशेष रूप से ध्यान देना प्रारम्भ किया। इसीलिये उन्होंने स्त्रियों और बच्चों की दशा को सुधारने, तलाक के विरुद्ध प्रचार करने, शराबखोरी को दूर करने और इसी प्रकार के अन्य कार्यों के लिये यत्न करना शुरू किया। इन सब प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ, कि विचार-स्वातन्त्र्य और बुद्धिवाद के इस वैज्ञानिक युग में भी चर्च का प्रभाव कायम रहा। यद्यपि यूरोप के बुद्धिजीवी लोग आजकल चर्च के धार्मिक मन्तव्यों में विश्वास नहीं रखते, पर वे उसके लोकोपकारी कार्यों की उपयोगिता को स्वीकार करते हैं।

चर्च भी अब समय की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर अपने मन्तव्यों और सिद्धान्तों में परिवर्तन करने के लिये तत्पर है। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में ईसाई चर्च लोकतन्त्रवाद का विरोधी था, पर अब वह मनुष्य मात्र की समता और मानव अधिकारों का समर्थक बन गया है। साम्यवादी आन्दोलनों का शुरू में चर्च ने बहुत विरोध किया, पर अब वह भी इस बात को स्वीकार करता है कि पूंजीपतियों को मजदूरों के प्रति समुचित बरताव करना चाहिये। विज्ञान के साथ उसका जो विरोध था, वह भी अब प्रायः समाप्त हो गया है, और ईसाई धर्माचार्य भी अब वैज्ञानिक खोज द्वारा सत्य के परिज्ञान की आवश्यकता को स्वीकार करने लग गये हैं। पर साथ ही यह भी सत्य है, कि अब सर्वसाधारण जनता पर चर्च का वह प्रभाव नहीं रह गया है, जो उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग तक था।

७. व्यापारिक क्रांति

पन्द्रहवीं सदी के अन्त मे नये प्रदेशो की खोज निकालने की जो प्रवृत्ति यूरोप मे शुरू हुई थी, उसका हम पहले जिक्र कर चुके है। उस प्रवृत्ति ने न केवल विशाल अमेरिकन महाद्वीप मे उपनिवेश बसाने का अवसर यूरोपियन देशो को प्रदान किया, अपितु अफ्रीका के विविध प्रदेशो को हस्तगत करने और एशिया के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बनाने के लिये भी उन्हे प्रेरित किया। उससे यूरोप के लोगो के सम्मुख व्यापार का एक विशाल क्षेत्र खुल गया और उससे लाभ उठाकर वे आर्थिक समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर होने लगे।

नये प्रदेशो के परिज्ञान के कारण यूरोप की आर्थिक दशा मे जो महत्वपूर्ण परिवर्तन आया, उसे व्यापारिक क्रान्ति के नाम से कहा जाता है।

व्यापारिक क्रांति का स्वरूप—पहले यूरोप के सामुद्रिक व्यापार का क्षेत्र भूमध्यसागर व अटलान्टिक महासागर के तटवर्ती प्रदेशो तक ही सीमित था। अब यूरोपियन नाविक अमेरिका, अफ्रीका और एशिया मे आने-जाने लगे। उसके व्यापारी सुदूरवर्ती इण्डोचायना, इण्डोनीसिया, भारत, अमेरिका और अफ्रीका आदि देशो के साथ व्यापार के लिये तत्पर हुए। जहाजो का आकार अधिक विशाल होने लगा। एज़टक और मय सभ्यताओ के विनाश द्वारा स्पेनिश लोगो को सोना और चादी अत्यधिक परिमाण मे लूट मे प्राप्त हुए। अमेरिका मे उन बहुमूल्य धातुओ की जो अनेक नई खाने खुली हुई थी, उनसे भी सोना चादी बहुत बडी मात्रा मे यूरोप पहुचने लगा। अफ्रीका और एशिया के साथ व्यापार के कारण भी यूरोपियन लोगो को बहुत अधिक आर्थिक लाभ हुआ। धन की वृद्धि से महाजनो की बहुत उन्नति हुई। बहुत से नये बैक खुले। बडे व्यापार के लिये अधिक पूजी की आवश्यकता होती थी। इसलिये जायन्ट स्टाक कम्पनियो का सगठन शुरू हुआ और करोडो रुपये की पूजी से नई-नई कम्पनिया खुलनी प्रारम्भ हुई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस प्रकार की कम्पनियो का एक अच्छा उदाहरण है। इन ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनियो के हिस्से बाजार मे खुले तौर पर बिकते थे और इस से स्टाक एक्सचेंज का भी प्रारम्भ हुआ, जो यूरोप के आर्थिक जीवन मे एक सर्वथा नई चीज थी। आर्थिक उत्पत्ति के लिये अभी यूरोप मे यान्त्रिक शक्ति का प्रयोग शुरू नही हुआ था। तैयार माल का उत्पादन पुराने तरीके से कारीगरो द्वारा ही किया जाता था, जो अपने घर पर बैठकर हाथ से सब काम करते थे। पर व्यापार का क्षेत्र और परिमाण अब पहले की अपेक्षा बहुत अधिक विशाल हो गया था।

व्यापार के सम्बन्ध में इस युग मे (१५०० से १७५० तक) जिस नीति का अनुसरण किया जाता था, उसे मर्केन्टाइल सिस्टम कहा जाता है। इस नीति के अनुसार यूरोप का प्रत्येक देश यह यत्न करता था, कि वह अधिक से अधिक मात्रा मे अपना माल और देशो को बेचे। आयात की अपेक्षा उसका निर्यात अधिक रहे, ताकि अपने माल के बदले में प्रचुर परिमाण में सोना चादी प्राप्त की जा सके। वह देश समृद्ध समझा जाता था, जो अपने माल की कीमत के रूप मे अन्य देशो से सिक्का (सोने या चादी का) प्राप्त कर सके। इसलिये इस युग मे प्रत्येक राज्य यह प्रयत्न करता था, कि अपने व्यवसाय को उन्नत करे

और उसका तैयार माल अन्यत्र विककर राज्य की समृद्धि मे सहायक हो। स्पेन, इङ्गलैण्ड, फ्रास आदि देश इसी नीति का अनुसरण कर इस युग मे धनी होने के लिये प्रयत्नशील थे।

व्यापारिक क्राति के परिणाम—(१) व्यापारिक क्रान्ति का सब से महत्त्व-पूर्ण परिणाम व्यावसायिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव था, जो अठारहवी सदी के अन्तिम भाग मे यूरोप मे शुरू हुई। अधिक से अधिक माल तैयार करने की की प्रवृत्ति ने यूरोप के शिल्पियो को इस बात के लिये प्रेरणा दी, कि वे उत्पादन के नये तरीको का अवलम्बन करे। हम इस व्यावसायिक क्रान्ति पर एक पृथक अध्याय मे प्रकाश डालेगे। पर यहा यह ध्यान मे रहना चाहिये, कि व्यवसायो के लिये नये साधनो के अवलम्बन के लिये जो प्रेरणा यूरोप के लोगो को प्राप्त हुई, उसका मूल कारण व्यापारिक क्रान्ति ही थी।

(२) सामाजिक क्षेत्र मे व्यापारिक क्रान्ति ने अनेक महत्त्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न किये। यूरोप के लोग दूर-दूर के देशो मे व्यापार के लिये आने-जाने लगे, उन्हे नये देशो व नये लोगो से परिचय हुआ। इससे उनकी दृष्टि अधिक विशाल हुई। वे अनेक नई वस्तुओ का अपने जीवन मे उपयोग करने लगे। चाय और काफी का प्रयोग उन्होने इसी युग मे शुरू किया। तमाखू से भी पहले पहल परिचय उन्हे इसी समय मे हुआ। अमेरिका और अफ्रीका के विशाल प्रदेशो मे बसने व व्यापार के लिये यूरोपियन लोग बडी सख्या मे जाने लगे। इससे यूरोप में जनसख्या घटने लगी। इस समय तक यूरोप के किसानो की दशा अर्द्ध-दास की सी थी। आबादी के कम होने से इस दशा मे अन्तर आने लगा और अफ्रीका के हब्शी गुलामो के कारण यूरोपियन किसानो को गुलामी से छुटकारा पाने मे सहायता मिली। मध्यश्रेणी के लोगो को व्यापार और व्यवसाय द्वारा समृद्ध होने का अनुपम अवसर प्राप्त हुआ और धीरे-धीरे उनका महत्त्व बढने लगा। अठारहवी सदी मे यूरोप में राज्यक्रान्ति की जो लहर प्रारम्भ हुई, उसका नेतृत्व मध्यश्रेणी के इन लोगो ने ही किया। मध्यश्रेणी मे जो आत्मसम्मान और अपने मह व की भावना प्रादुर्भूत हुई थी, उसका कारण यह व्यापारिक क्रान्ति ही थी।

(३) व्यापारिक क्रान्ति के राजनीतिक परिणाम और भी अधिक महत्त्वपूर्ण थे। व्यापार के विस्तार के कारण स्पेन, फ्रास, इङ्गलैण्ड, प्रशिया आदि राजकीय आमदनी में असाधारण रूप से वृद्धि हो रही थी। राज्यकोष मे अपार धन का सचय प्रारम्भ हो गया था। इस धन का उपयोग राजा लोग अपनी शक्ति को बढाने मे कर सकते थे। अब उन्हे यह आवश्यकता नही रही थी, कि वे अपनी शक्ति के लिये सामन्तो व अमीर उमराओ पर आश्रित हो। वे अपने धन के बल पर स्वय भृत (वेतन प्राप्त कर के काम करनेवाली) सेना का निर्माण कर सकते थे और उसका उपयोग देश मे शान्ति स्थापित रखने तथा अपने राज्य का विस्तार करने के लिये कर सकते थे। सामन्त पद्धति के ह्रास और केन्द्रीय सरकार की शक्ति की वृद्धि में इस स्थिति से बहुत सहायता मिली। मध्यश्रेणी के जिन लोगो की समृद्धि और शक्ति व्यापारिक क्रान्ति द्वारा बढ रही थी, वह सामन्तो और अमीर उमराओ की स्थिति के प्रबल विरोधी थे। उन्होने सामन्तो को वशवर्ती करने मे राजाओ की सहायता की। और जब इस मध्यश्रेणि ने अनुभव किया, कि राजाओ का शासन निरकुश और स्वेच्छाचारी है, तब वह उन के भी विरुद्ध उठ खडी हुई। इसी बात ने राज्य-

क्रान्तियों को जन्म दिया। मध्यश्रेणि की शक्ति का प्रादुर्भाव व्यापारिक क्रान्ति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणाम था। सुविस्तृत सामुद्रिक व्यापार के कारण व्यापारियों, समृद्ध व्यवसायियों, महाजनों आदि की जो नई एक श्रेणि इस समय यूरोप में उत्पन्न हो गई थी, उसने पहले राजाओं का साथ देकर सामन्तों व जागीरदारों की शक्ति का अन्त किया और फिर राजाओं की शक्ति को नियन्त्रित करने के लिये वैध राजसत्ता की स्थापना के लिये व लोकतन्त्रात्मक शासन को कायम करने के लिये राज्यक्रान्तियों का सूत्रपात किया।

आधुनिक युग के चिह्न—यूरोप के इतिहास में हम जिसे आधुनिक युग कहते हैं, उस के सूत्रपात में व्यापारिक क्रान्ति बहुत अधिक सहायक सिद्ध हुई। इस नये युग के चिह्न निम्नलिखित थे—(१) व्यावसायिक क्रान्ति—जिसके कारण यूरोप के आर्थिक जीवन में महान् परिवर्तन हो रहे थे, (२) राज्यक्रान्ति—जिसके कारण यूरोप का राजनीतिक जीवन एक सर्वथा नया स्वरूप ग्रहण कर रहा था, और (३) राष्ट्रीयता की भावना, जो लोकतन्त्रात्मक शासन का स्वाभाविक परिणाम थी। लोकतन्त्रवाद के प्रारम्भ से पहले भी व्यापारिक क्रान्ति के कारण जब प्रत्येक देश अपने को अधिक से अधिक समृद्ध बनाने के लिये प्रयत्नशील था, तब यह भावना प्रादुर्भूत होने लगी थी, कि विविध राज्य अपना पृथक व्यक्तित्व रखते हैं, और उनकी उन्नति में उस राज्य के सब निवासियों की भी उन्नति है। राष्ट्रीय भावना के विकास में यह विचार अत्यन्त महत्त्व का था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

तीसरा अध्याय

अठारहवीं सदी के अन्त में यूरोप की दशा

१ विविध राज्य

हमने यूरोप के इस आधुनिक इतिहास का प्रारम्भ फ्रास की राज्यक्रान्ति (१७८९) से किया है। इससे पहले का इतिहास भी हमने पिछले दो अध्यायों में सक्षेप के साथ दे दिया है। इसमें सन्देह नहीं, कि इससे यूरोप के आधुनिक इतिहास को समझने में सहायता मिलेगी। पर अब यह आवश्यक है, कि अठारहवीं सदी के अन्तिम भाग में यूरोप के विविध राज्यों की जो दशा थी, उसका सक्षिप्त रूप में दिग्दर्शन कराया जाय। १७८९ में यूरोप का नकशा वर्तमान यूरोप के नकशे से बहुत भिन्न था। उस समय यूरोप के प्रमुख राज्य निम्नलिखित थे।

(१) फ्रास—अठारहवीं सदी में यूरोप का सबसे अधिक शक्तिशाली व समृद्ध राज्य फ्रास था। उसके उत्कर्ष का प्रधान श्रेय तेरहवें लुई (१६१०-१६४३) के प्रधान मन्त्री रिशिल्यू को है, जिसने कि सामन्तों की शक्ति को नष्ट कर राज्य की केन्द्रीय सरकार की शक्ति को बढाने के लिये विशेषरूप से प्रयत्न किया था। रिशिल्यू के उद्योग का यह परिणाम था, कि फ्रास में सामन्तों और जागीरदारों के किलों का भूमिसात् कर दिया गया था और वे अपने-अपने प्रदेशों में स्वतन्त्र शासकों के तौर पर रहने के बजाय राजा के दरबार में दरबारी के रूप में निवास करने में अधिक गौरव अनुभव करने लगे थे। चौदहवें लुई (१६४३-१७१५) के समय में फ्रास के राजा की शक्ति और गौरव में और भी अधिक वृद्धि हुई। वर्साय में स्थित उसका राजप्रासाद और राजदरबार यूरोप के विविध राजाओं के लिये आदर्श के समान थे। उसके समय में फ्रास की आन्तरिक समस्याओं का पूर्णरूप से अन्त हो गया था और सारे देश में शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित हो गई थी। चौदहवा लुई राजा के दैवी अधिकार के सिद्धांत में विश्वास रखता था और अभिमान के साथ कहा करता था—"राज्य क्या है, मैं ही तो राज्य हूं।" वह निरकुश और स्वेच्छाचारी रूप से अपने राज्य का शासन करता था और कानून बनाने, टैक्सों की दर निर्धारित करने व अन्य राज्यकार्य के लिये लिये किसी पार्लियामेन्ट की आवश्यकता को स्वीकार नहीं करता था। उसने राज्य-विस्तार के लिये भी बहुत प्रयत्न किया। उसका विचार था, कि फ्रास की स्वाभाविक सीमा उत्तरपूर्व में र्‌हाइन नदी और दक्षिण पूर्व में आल्पस की पर्वतमाला है। बेल्जियम पर भी वह अपना अधिकार स्थापित करने के लिये उत्सुक था। यह देश उस समय स्पेन के अधीन था। लुई ने स्पेन के राजा चार्ल्स द्वितीय (१६६५-१७००) के साथ लडाई की घोषणा कर दी और बेल्जियम के अनेक

प्रदेशो पर अपना कब्जा कायम कर लिया। चौदहवे लुई की महत्वाकाक्षाओ के कारण यूरोप मे जो अनेक युद्ध हुए, उनका यहा उल्लेख करने की आवश्यकता नही है। इतना निर्देश कर देना पर्याप्त होगा, कि उसके समय मे फ्रास की असाधारण उन्नति हुई और फ्रास यूरोप की प्रधान राजनीतिक और सैनिक शक्ति बन गया।

चौदहवे लुई के बाद उसका प्रपौत्र पन्द्रहवे लुई (१७१५-१७७४) के नाम से फ्रास की राजगद्दी पर आरूढ हुआ। राजा के पद पर अभिषिक्त होने के समय उसकी आयु केवल पाच वर्ष की थी, वह स्वय राज्यकार्य को नही सभाल सकता था। उसका पालन-पोषण भोग-विलास और अहकार के वातावरण मे हुआ। दरबार मे अमीर उमरा की बन आई और राज्यकोष का धन पानी की तरह बहाया जाने लगा। राजा को अब भी दवी माना जाता था, उसके स्वेच्छाचार पर किसी भी प्रकार का अकुश नही था। पर शासन की क्षमता मे अब क्षीणता आ गई थी। पन्द्रहवे लुई का काल फ्रेंच राजसत्ता की शक्ति के ह्रास का समय था। इसी समय मे यूरोप मे सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६-१७६३) लडा गया, जिसमे मुख्यतया फ्रास और इङ्गलैण्ड साम्राज्य-विस्तार के क्षेत्र मे एक दूसरे के साथ सघर्ष मे लगे थे। भारत मे क्लाइव और डुप्ले का सघर्ष इसी समय हुआ और उत्तरी अमेरिका मे जो बहुत से उपनिवेश फ्रेंच लोगो ने बसाये थे, वे इसी युद्ध के परिणामस्वरूप फ्रास के हाथ से निकलकर ब्रिटेन के हाथ मे चले गये। सप्तवर्षीय युद्ध मे फ्रास को बहुत नुकसान उठाना पडा। साम्राज्य विस्तार के क्षेत्र मे वह इङ्गलैण्ड से बुरी तरह पराजित हुआ और उसका राज्यकोष इस युद्ध मे बहुत कुछ खाली हो गया। पर यूरोप मे फ्रास की स्थिति अभी अच्छी मजबूत बनी रही और उसके राजाओ के वैभव तथा भोगविलास में कोई अन्तर नही आया।

१७७४ में फ्रास की गद्दी पर सोलहवा लुई आरूढ हुआ। राज्यक्रान्ति इसी के शासन-काल मे हुई। इसके शासनकाल पर हम आगे अधिक विस्तार से विचार करेगे।

(२) आस्ट्रिया—यूरोप मे फ्रास का प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी आस्ट्रिया था, जिसके राजा हाप्सबुर्ग राजवश के थे। पवित्र रोमन सम्राट का गौरवपूर्ण पद इसी वश के राजाओ मे चला आता था। यद्यपि इस पद के कारण आस्ट्रिया के राजाओ की शक्ति में कोई वृद्धि नही होती थी, पर इसमे सन्देह नही कि इससे उनका गौरव और सम्मान बहुत अधिक था और वे पवित्र रोमन साम्राज्य के सम्पूर्ण क्षेत्र पर अपना एक प्रकार का प्रभुत्व अनुभव करते थे। आस्ट्रिया के हाप्सबुर्गवशी राजाओ के अपने शासन मे निम्नलिखित प्रदेश थे—(१) आस्ट्रिया, जिसकी राजधानी विएना थी, इसके निवासी जर्मन जाति के थे और जर्मनी के अन्य निवासियो से इनका कोई विशेष भेद नही था। (२) बोहेमिया और मोरेविया, इनके निवासी चेक जाति के थे। मध्यकाल मे इनका अपना पृथक् व स्वतन्त्र राज्य था, पर अब अठारहवी सदी मे ये हाप्सबुर्ग वश के राजाओ के अधीन थे। (३) हगरी, इसकी स्थिति एक पृथक राज्य के समान थी, यद्यपि इसका राजा वही होता था, जो कि आस्ट्रिया का राजा हो। हगरी के राज्य में केवल हगेरियन और मगयार लोगो का ही निवास नही था, अपितु रूमानियन, क्रोट और सर्व लोग भी उस में अच्छी बडी सख्या मे निवास करते थे। (४) मिलान, इटली के उत्तरी

प्रदेश मे आल्पस की पर्वतमाला के दक्षिण मे मिलान का राज्य था, जहा के निवासी इटालियन जाति के थे। आस्ट्रिया के हाप्सवुर्ग वश के राजा इन के भी शासक थे। (५) वेल्जियम, यह देश पहले (चार्ल्स द्वितीय के समय मे) स्पेन के अधीन था, फ्रास के चौदहवे लुई ने इसे अपने अधीन करने का प्रयत्न किया और वाद मे उटरेक्ट की सन्धि (१७१३) द्वारा इस पर आस्ट्रिया का अधिकार हो गया। वेल्जियम के निवासी जाति की दृष्टि से फ्रेंच थे।

इस प्रकार आस्ट्रिया के हाप्सवुर्ग सम्राट वहुत से ऐसे प्रदेशो के राजा थे, जो राष्ट्रीय दृष्टि से आस्ट्रिया के स्वाभाविक अग नही थे। आस्ट्रियन साम्राज्य-विस्तार की दृष्टि से वहुत विशाल था, पर विविध जातियो के लोगो से परिपूर्ण होने के कारण उसकी शक्ति सुदृढ नही थी। जव राष्ट्रीय भावना का यूरोप मे विकास हुआ, तो आस्ट्रिया के लिये मिलान, वेल्जियम, वोहेमिया आदि की सत्ता वहुत अधिक हानिकारक सिद्ध हुई।

अठारहवी सदी के यूरोपियन राजाओ मे यह प्रवृत्ति थी, कि वे अपने राज्यो मे एक केन्द्रीय सुदृढ शासन की स्थापना करें और अपनी प्रजा को एक सूत्र मे सगठित करने का प्रयत्न करें। सम्राट जोसेफ द्वितीय (१७६५-१७९०) ने आस्ट्रियन साम्राज्य मे भी इस नीति का अनुसरण किया। इसीलिये उसने अपने सव प्रदेशो मे जर्मन भाषा का प्रचार करने का उद्योग किया। जर्मन को राजभाषा के पद पर अधिष्ठित किया गया और सर्वत्र शासन कार्य जर्मन में किया जाने लगा। साम्राज्य को तेरह प्रान्तो मे विभक्त कर उन पर शासन करने के लिये सम्राट की ओर से सूवेदार नियत किये गये। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि वेल्जियम, मिलान, वोहेमिया आदि में वहुत असन्तोष हुआ, वहा राष्ट्रीय भावना को वल मिला और कई स्थानो पर विद्रोह भी हुए।

इस प्रकार, अठारहवी सदी के अन्तिम भाग में विशाल आस्ट्रियन साम्राज्य का सगठन वहुत शिथिल था, उसकी विशालता ही उसकी सवसे वडी निर्वलता थी और इसी कारण आस्ट्रिया यूरोप की राजनीति मे महत्वपूर्ण हिस्सा लेने मे वहुत सफलता नही प्राप्त कर सकता था।

(३) **जर्मनी**—पवित्र रोमन साम्राज्य मे जहा आस्ट्रिया सम्मिलित था, वहा साथ ही वे वहुत से राज्य भी अन्तर्गत थे, जिन्हे स्थूल रूप से जर्मनी कहा जाता था। अठारहवी सदी में जर्मनी किसी एक राज्य का नाम नही था। उस समय जर्मनी में कुल मिलाकर ३६० के लगभग राज्य अन्तर्गत थे। इनमे कोई राजनीतिक एकता नही थी। इनमें एकता केवल एक वात की थी, वह यह कि ये सव वीएना के हाप्सवुर्गवशी सम्राट (पवित्र रोमन सम्राट) की अधीनता स्वीकार करते थे, यद्यपि यह अधीनता केवल नाम मात्र की थी। जर्मनी के ३६० राज्यो मे से वहुतो का शासन अमीर उमराओ के अधीन था, जो अपना पद व राज्य सम्राट से प्राप्त करते थे। कुछ राज्यो का शासन चर्च के उच्च अधिकारियो के हाथ में था, जो अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र राजाओ के समान राज्य करते थे। जर्मनी के ३६० राज्यो में पचास ऐसे थे, जिनका क्षेत्र केवल किसी एक नगर तक सीमित था। इन नगर-राज्यो का शासन नगर-सभाएँ करती थी, जिनमें कतिपय वडे भूमिपति व व्यापारी सम्मिलित होते थे। नगर-राज्यो को इस ढग से अपना शासन

स्वय करने का अधिकार भी पवित्र रोमन सम्राट से सीधा प्राप्त होता था। जर्मन राज्या मे प्रशिया, बवेरिया, वरटमवर्ग, सैक्सनी और हैनोवर ही ऐसे राज्य थे, जिन्हे महत्व-पूर्ण कहा जा सकता था। इनमे भी प्रशिया की शक्ति और महत्त्व सबसे अधिक था। वहा के राजा होहेन्टसोल्लर्न वश के थे और अपनी शक्ति को बढाने के लिये निरन्तर उद्योग कर रहे थे। प्रशिया के राजाओ मे फ्रेडरिक दि ग्रेट (१७४०-१७८६) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने अपने प्रयत्ना से प्रशिया को एक अत्यन्त शक्तिशाली व समृद्ध राज्य बना दिया। उसकी सेना अत्यन्त सुसगठित और प्रबल थी। इसका उपयोग कर फ्रेडरिक ने अपने राज्य का खूब अच्छी तरह विस्तार किया। पवित्र रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत होने के कारण प्रशिया हाप्सबर्ग वश के सम्राट पद को स्वीकृत करता था, पर इस कारण उसने आस्ट्रिया के साथ युद्ध करने मे सकोच नही किया और फ्रेडरिक ने आस्ट्रिया के साथ अनेक लडाइया लडी। १७७२ मे उसने पोलैण्ड मे भी कुछ प्रदेश को विजय कर लिया और इस प्रकार पोलैण्ड के अगभग की उस प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ, जिस पर इस इतिहास मे हम यथास्थान विचार करेगे। फ्रेडरिक केवल विजेता ही नही था, अपितु साथ ही कुशल शासक और विद्वानो का आश्रयदाता भी था। अठारहवी सदी के यूरोपियन राजाओ मे उसका स्थान बहुत ऊचा था।

बहुत से राज्यो में विभक्त होने के कारण अठारहवी सदी मे जर्मनी का राजनीतिक दृष्टि से अधिक महत्व नही था। जर्मनी के विविध राजा एक दूसरे से ईर्षा रखते थे। उनके लिये यह तो सम्भव ही नही था, कि वे परस्पर मिलकर कार्य करे। इसके विपरीत, वे प्राय आपस मे लडते भी रहते थे। पवित्र रोमन सम्राट् की आज्ञा मे रहना तो दूर रहा, वे उसके साथ मुकाबले में आने में भी सकोच नही करते थे। इस स्थिति का यह परिणाम था, कि जर्मनी मे उस समय अव्यवस्था और अशान्ति छाई हुई थी। राष्ट्रीय एकता व देशभक्ति की भावना उस समय तक जर्मनी मे विकसित नही हुई थी।

(४) इटली—जर्मनी के समान इटली भी अठारहवी सदी मे अनेक छोटे बडे राज्यो में विभक्त था। इनमे पीडमोन्ट, टस्कनी, जिनोआ, वेनिस, सिसली, मोडेना, लोम्बार्डी और परमा मुख्य थे। इन विविध राज्यो में परस्पर एकता की कोई अनुभूति नही थी। इटली एक राष्ट्र है, यह विचार उस समय तक उत्पन्न नही हुआ था। इटालियन राज्यो की निर्बलता से लाभ उठाकर फ्रास और आस्ट्रिया जैसे शक्तिशाली राज्य उन पर अपना प्रभाव व आधिपत्य स्थापित करने मे तत्पर थे। अनेक राज्यो मे तो ऐसे राजवशो का शासन था, जो इटालियन लोगो के लिये विदेशी थे और जो फ्रास, आस्ट्रिया व स्पेन की कूटनीति के कारण वहा अपना प्रभुत्व स्थापित करने मे समर्थ हुए थे। इटालियन राज्यो के ये विविध राजा निरकुश और स्वेच्छाचारी रूप से अपने-अपने क्षेत्र मे शासन करते थे। यद्यपि कतिपय राजा शासन-सुधार और प्रजा की उन्नति के लिये प्रयत्नशील थे, पर कही भी शासन में जनता को कोई अधिकार प्राप्त नही था।

(५) रूस—इसमें सन्देह नही, कि यूरोप के सब राज्यो मे रूस सब से अधिक विशाल था, उसकी जनसख्या भी सबसे अधिक थी। अठारहवी सदी से पूर्व ही रूस उत्तरी एशिया पर अपना आधिपत्य स्थापित कर चुका था और इस कारण उसका साम्राज्य बहुत

विशाल व विस्तीर्ण था। पर उन्नति की दृष्टि से वह पश्चिमी यूरोप के देशो के मुकाबले मे बहुत पीछे था। पीटर दि ग्रेट (१६७२-१७२५) के समय मे रूस पश्चिमी यूरोप के घनिष्ठ सम्पर्क मे आया और वहा के लोगो ने उन्नति के मार्ग पर कदम बढाना शुरू किया। पीटर के प्रयत्न से रूस का शासन सुसगठित और शक्तिशाली बना तथा रूसी सेना यूरोप की अत्यन्त शक्तिशाली सेनाओ मे गिनी जाने लगी। अठारहवी सदी के अन्तिम भाग मे रूस की राजगद्दी पर कैथराइन द्वितीय विराजमान थी। वह एक जर्मन राजकुमारी थी और उसका विवाह रूस के सम्राट पीटर तृतीय के साथ हुआ था। बाद मे उसने अपने पति को राज्यच्युत कर राजसिंहासन पर स्वय अधिकार कर लिया और ३४ साल तक (१७६२-१७९६) बडी दृढता के साथ रूस का शासन किया। कैथेराइन ने उस नीति को क्रिया मे परिणत करने का विशेष रूप से प्रयत्न किया, जिसका प्रारम्भ पीटर दि ग्रेट ने किया था। रूस के शासन को सुसगठित कर कैथेराइन ने राज्यविस्तार के लिये भी प्रयत्न किया। इस नीति से यूरोप के अन्तर्राष्ट्रीय क्षत्र मे उथल-पुथल हुई, उसका उल्लेख हम अगले एक अध्याय में करेगे। यहा इतना निर्देश कर देना ही पर्याप्त है, कि फ्रास और आस्ट्रिया के समान रूस भी इस समय एक शक्तिशाली राज्य था और उसने यूरोप की राजनीति मे निरन्तर अधिकाधिक भाग लेना शरू कर दिया था।

(६) **स्पेन**—पन्द्रहवी और सोलहवी सदियो मे स्पेन यूरोप का सबसे अधिक शक्तिशाली और वैभवपूर्ण राज्य था। अमेरिका मे उपनिवेश विस्तार द्वारा उसकी समृद्धि बहुत अधिक बढ गई थी। सोलहवी सदी में स्पेन के राजा यूरोप के अनेक प्रदेशो पर अपना आधिपत्य स्थापित करने में समर्थ हुए थे। फिलिप द्वितीय (१५५६-१५९८) स्पेन के अतिरिक्त मिलान, नीदरलैण्ड, सिसली औरद क्षिणी इटली का भी अधिपति था, अमेरिकन उपनिवेश तो उसकी अधीनता मे थे ही। पर स्पेन का यह उत्कर्ष देर तक कायम नही रह सका। १५८१ में नीदरलैण्ड उसकी अधीनता से मुक्त हो गया। कुछ समय बाद इङ्गलैण्ड ने स्पेन के सामुद्रिक बेडे को कडी चोट पहुचाई। स्पेन और इङ्गलैण्ड का यह सघर्ष इतिहास मे 'स्पेनिश आर्मेडा का युद्ध' के नाम से विख्यात है। फिलिप द्वितीय के समय में स्पेन की राजनीतिक शक्ति निर्बल होनी शुरू हो गई और वह निरन्तर अधिकाधिक निर्बल ही होती गई। फिलिप के उत्तराधिकारी अपनी शक्ति को सभालने मे असमर्थ रहे। अठारहवी सदी में चार्ल्स तृतीय (१७५९-१७८८) और चार्ल्स चतुर्थ (१७८८-१८००) स्पेन के अच्छे कुशल और योग्य राजा थे। उन्होने स्पेन की आन्तरिक समृद्धि की ओर विशेष ध्यान दिया। पर उनकी विदेशी नीति बुद्धिमत्तापूर्ण नही थी। उन्होने फ्रास के साथ सन्धि करके एक गुट बनाया था, जिसे 'पारिवारिक गुट' कहते है, क्योकि स्पेन का राजवश पारिवारिक दृष्टि से फ्रास के बूर्बो वश के साथ सम्बद्ध था। जब १७८९ मे फ्रास में राज्यक्रान्ति हुई और कुछ समय बाद बूर्बो वश के शासन का वहा अन्त हो गया, तो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से स्पेन की स्थिति बहुत निर्बल हो गई। यही कारण है कि स्पेन के लोग फ्रेंच क्रान्तिकारियो से अपने देश की रक्षा करने में असमर्थ रहे।

(७) **इङ्गलैण्ड**—यूरोप के विविध राज्यो मे इङ्गलैण्ड का स्थान बहुत महत्व का था। व्यापारिक क्रान्ति में उसने बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया था, और वह न केवल

अमेरिका में अपने विविध उपनिवेश स्थापित करने में समर्थ हुआ था, अपितु भारत में भी अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील था। स्पेन की सामुद्रिक शक्ति को परास्त कर नाविक दृष्टि से वह यूरोप की सबसे प्रबल शक्ति बन गया था। इङ्गलैण्ड के राजा भी निरंकुश और स्वेच्छाचारी थे। अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्टुअर्ट राजवंश के राजाओं के 'दैवी अधिकार' के सिद्धान्त पर आश्रित शासन की समाप्ति कर वैध राजसत्ता की स्थापना का जो उद्योग इङ्गलिश लोगों ने किया था, अगले एक अध्याय में उस पर हम अधिक विस्तार के साथ प्रकाश डालेंगे। पर वैध राजसत्ता की स्थापना का यह प्रयत्न अभी पूर्ण रूप से सफल नहीं हुआ था। अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इङ्गलैंड का राजा जार्ज तृतीय (१७६०-१८२०) था। उसका यही प्रयत्न था, कि फ्रास, स्पेन, रूस आदि के राजाओं के समान वह निरंकुश व स्वेच्छाचारी रूप से शासन करे, पालियामेन्ट की उपेक्षा करे और लोकमत पर जरा भी ध्यान न दे। टोरी (कन्जर्वेटिव) पार्टी के नेता इस प्रयत्न मे उसके सहायक थे। अमेरिकन उपनिवेशो मे ब्रिटिश आधिपत्य के विरुद्ध जो विद्रोह हुआ, उसमे जार्ज तृतीय और उसके टोरी मन्त्री लार्ड नार्थ की नीति विशेष रूप से कारण थी। इस युग के ब्रिटिश राजनीतिज्ञ और विचारक क्रान्तिकारी प्रवृत्तियो के विरोधी थे। यही कारण है, कि जब फ्रास मे राज्यक्रान्ति हुई, तो उस का विरोध न केवल टोरी पार्टी ने किया, अपितु पिट, फाक्स और बर्क सदृश ह्विग (लिबरल) नेताओ ने भी उसके विरोध मे आवाज उठाई। पर इसमे सन्देह नही, कि अठारहवीं सदी तक इङ्गलैण्ड वैध राजसत्ता की ओर महत्त्वपूर्ण कदम उठा चुका था और इसलिये अनेक फ्रेंच क्रान्तिकारी विचारको के मत मे इङ्गलिश शासनपद्धति बहुत उत्तम और अनुकरणीय थी।

(८) **पोलैण्ड**—सोलहवी सदी तक पोलैण्ड यूरोप का एक शक्तिशाली और समृद्ध राज्य था। भाषा और नसल की दृष्टि से पोल लोग रूसी लोगो से बहुत कुछ मिलते जुलते थे। पर पीटर द ग्रेट के नेतृत्व में सतरहवी सदी मे जब रूस उन्नति के मार्ग पर तेजी के साथ अग्रसर हो रहा था, तभी पोलैण्ड की अवस्था निरन्तर निर्बल और अव्यवस्थित होती जाती थी। वहा किसी एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन का विकास नही हो पाया, सामन्तो और जागीरदारो की शक्ति अक्षुण्ण बनी रही। नाम को तो पोलैण्ड में पालियामेन्ट विद्यमान थी और वहा राजा भी निर्वाचित हुआ करता था। पर वस्तुत यह पालियामेन्ट बडे-बडे जागीरदारो की सस्था थी, और कोई भी जागीरदार पालियामेन्ट के निर्णय को रद्द (वीटो) कर सकता था। इन जागीरदारो को केवल अपने स्वार्थ से मतलब था, देश की एकता व सार्वजनिक हित का विचार भी इनके सम्मुख कभी न आता था। किसानों की दशा अर्द्ध-दासो के समान थी। इस दशा मे यदि पोलैण्ड की राजशक्ति निरन्तर क्षीण होती जाती, तो इसमे आश्चर्य की क्या बात थी? पोलैण्ड की न कोई प्राकृतिक सीमाएं थी, और न ही वहा के राजाओ ने एक प्रबल सेना के सगठन पर ध्यान दिया था। मध्य काल के राजाओ के समान अठारहवी सदी मे भी पोलैण्ड की सैनिक शक्ति सामन्तो और जागीरदारो की अपनी निजू सेनाओ पर निर्भर करती थी और ये सामन्त एक सूत्र में सगठित होना जानते ही नही थे। इस दशा में यह स्वाभाविक था, कि पडोस के प्रबल राज्य पोलैण्ड को अपना शिकार समझे। रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया की सीमाएँ पोलैण्ड से

लगती थी और ये तीनो राज्य इस बात के लिये उत्सुक थे, कि पोलैण्ड का अग-भग करके उसके प्रदेशो को अपने अधीन कर ले। १७७२ ई० मे पोलैंड का पहला बंटवारा हुआ। इसके बाद १७९३ मे दूसरी बार और १७९५ मे तीसरी बार पोलैण्ड का अग भग किया गया। १७९५ मे पोलैंण्ड की एक पृथक राज्य के रूप मे सत्ता नष्ट हो गई और उसके सब प्रदेश रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया ने आपस मे बाट लिये। पोलैण्ड के इस अग-भग के सम्बन्ध मे इस इतिहास मे आगे चलकर हम अधिक विस्तार से लिखेगे।

(९) **स्वीडन**—अठारहवी सदी के शुरू मे स्वीडन एक शक्तिशाली और समृद्ध राज्य था। बाल्टिक सागर के पूर्व और दक्षिण के अनेक प्रदेश उसके अन्तर्गत थे और इस कारण बाल्टिक सागर की स्थिति एक स्वीडिश झील के समान थी। पर रूस और प्रशिया की बढती हुई शक्ति के सम्मुख स्वीडन नही टिक सका। अठारहवी सदी के अन्त तक बाल्टिक सागर के पूर्व और दक्षिण के सब प्रदेश उसके हाथ मे से निकल गये और स्वीडन की शक्ति बहुत कुछ क्षीण हो गई।

स्वीडन का शासन एक वशक्रमानुगत राजा के अधीन था। यद्यपि वहा पार्लियामेन्ट (रिक्सडाग) की सत्ता थी, पर शासन मे उसका विशेष महत्व नही था। १७८९ मे स्वीडन का राजा गुस्तवस तृतीय (१७७१-१७९२) था, जिसे शासन और सैन्य सचालन सम्बन्धी अपरिमित अधिकार प्राप्त थे।

(१०) **डेनमार्क और नार्वे**—अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे नार्वे और स्वीडन का शासन एक ही राजा के हाथ मे था, यद्यपि नार्व को डेनमार्क का अधीनस्थ राज्य समझा जाता था। इन दोनो देशो का शासक क्रिश्चियन सप्तम (१७६६-१८०८) था, जो अपने मन्त्रिमण्डल के सहयोग से राज्य की उन्नति और शासन-सुधार के लिये प्रयत्नशील था।

(११) **हालैण्ड**—नाम को तो हालैण्ड मे रिपब्लिक विद्यमान थी, पर वस्तुत उसका प्रधान शासक वशक्रमानुगत होता था। अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे हालैण्ड का शासक विलियम पचम (१७६६-१७९५) था, जो एक पार्लियामेन्ट के परामर्श के अनुसार शासन करता था। पर हालैण्ड में लोकतन्त्र शासन या वैध राज्यसत्ता निरन्तर असफल हो रही थी और सारी राजशक्ति विलियम पचम के हाथो मे केन्द्रित होती जाती थी।

(१२) **स्विट्जरलैण्ड**—अठारहवी सदी मे यूरोप भर में स्विटजरलैण्ड ही वस्तुत ऐसा राज्य था, जहा सही अर्थों में रिपब्लिक विद्यमान थी। पर यह स्विस रिपब्लिक भी लोकतन्त्र न होकर श्रेणितन्त्र थी और उसकी शासनशक्ति कतिपय सम्पन्न परिवारो के हाथो मे थी। स्विटजरलैण्ड मे जर्मन, फ्रेंच और इटालियन—तीन भाषाओ को बोलनेवाले व तीन जातियो के लोगो का निवास था। स्विस रिपब्लिक तेरह कैन्टनो (राज्यो) की सघ थी और ये कैन्टन क्रियात्मक दृष्टि से स्वतन्त्र राज्यो की स्थिति रखते थे। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से स्विटजरलैण्ड यूरोप मे कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नही रखता था और वहा के निवासी अपने पर्वत प्रधान प्रदेशो मे स्वतन्त्रता का उपभोग करते हुए सुख और शान्ति के साथ जीवन व्यतीत करते थे।

अठारहवी सदी के अन्तिम भाग में, १७८९ मे, यूरोप के ये ही प्रमुख राज्य थे। इन्हें दृष्टि मे रखने से यूरोप के आधुनिक इतिहास को समझने मे अच्छी सहायता मिलेगी।

२ शक्ति-समुत्तुलन का सिद्धात

यूरोप की एकता—यूरोप के सब निवासी राष्ट्रीय दृष्टि से एक नही हैं। वहा अनेक भाषाए बोली जाती है, अनेक नसलो के लोग वहा निवास करते है, उनके रीति-रिवाज ऐतिहासिक परम्परा आदि भी एक दूसरे से बहुत भिन्न है। पर इन सब विभिन्नताओ के होते हुए भी यूरोप के विविध राज्यो मे एक प्रकार का सादृश्य और एक प्रकार की एकता है, जो यूरोप को एशिया, अफ्रीका आदि से पृथक करती है। इस एकता के आधार निम्नलिखित है—

(१) यूरोप के सब देशो पर प्राचीन ग्रीक साहित्य, दर्शन और कला का प्रभाव है। सर्वत्र ग्रीक साहित्य का आदर के साथ अनुशीलन किया जाता है, और विविध देशो के विद्वान अपने साहित्यिक व दार्शनिक जीवन के लिये प्राचीन ग्रीस का आश्रय लेते है। जिस प्रकार प्राचीन सस्कृत साहित्य ने भारत के विविध प्रान्तो में एक प्रकार की सास्कृतिक एकता स्थापित की हुई है, वैसे ही ग्रीक साहित्य द्वारा यूरोप के विविध राज्यो मे एकता की सत्ता है। ग्रीक साहित्य के समान ही प्राचीन लैटिन साहित्य द्वारा भी यूरोप की एकता मे सहायता प्राप्त होती है।

(२) किसी समय मे यूरोप का बडा भाग रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत था। रोमन शासको का यह प्रयत्न था, कि वे अपने सारे साम्राज्य मे एक रोमन कानून को प्रचलित करें। रोम की सस्थाओ, कानून और भाषा का असर अभी तक भी यूरोप से पूर्णतया मिटा नहा है और इस के कारण यूरोप के विविध देशो मे अनेक बातें एक सदृश विकसित हुई है।

(३) यूरोप के प्राय सभी निवासी ईसाई धर्म के अनुयायी है। मध्यकाल में सब ईसाई रोम के पोप को अपना धार्मिक गुरु मानते थे और धार्मिक क्षेत्र मे उस के आधिपत्य को स्वीकार करते थे। राजनीतिक दृष्टि से यूरोप अनेक राज्यो मे विभक्त था, पर रोम का धार्मिक साम्राज्य सर्वत्र विद्यमान था। फ्रास मे इटालियन पादरी और जर्मनी में फ्रेंच पादरी चर्च के ऊँचे पदो पर नियुक्त होते थे। चर्च की एकता ने मध्यकाल मे यूरोप में इस ढग की एकता उत्पन्न कर रखी थी, जिस के महत्व से इनकार नही किया जा सकता। धार्मिक सुधारणा के कारण रोमन कैथोलिक चर्च का प्रभुत्व सारे यूरोप में कायम नहा रहा, इङ्गलैण्ड आदि कई देशो में राष्ट्रीय चर्चों की स्थापना हुई, पर फिर भी ईसाई धर्म के उस प्रभाव का सर्वथा लोप भी नही हुआ, जिसके कारण यूरोप के लोग परस्पर एकानुभूति रखते थे। धर्म की एकता मनुष्यो मे एकानुभति पैदा करती है, और धार्मिक सुधारणा के बाद भी यह अनुभूति पूर्णतया नष्ट नही हुई।

(४) मध्यकाल मे जब पवित्र रोमन साम्राज्य अपने उत्कर्ष पर था, यूरोप का अच्छा बडा भाग राजनीतिक दृष्टि से भी एक शासन में था। इसमे सन्देह नही, कि पवित्र रोमन साम्राज्य के कारण यूरोप के बहुत से लोगो में एकता की भावना विद्यमान थी।

राष्ट्रीय राज्यो का विकास—मध्यकाल के यूरोपियन राज्यो की विशेषता उनकी सामन्तपद्धति थी। सोलहवी सदी में सामन्त-पद्धति का ह्रास हुआ और इङ्गलैण्ड, फ्रास, स्पेन, रूस आदि राज्यो में शक्तिशाली केन्द्रीय शासनो की स्थापना हुई। सामन्ता

के पारस्परिक युद्धो का अन्त होने से राज्यो मे आन्तरिक व्यवस्था और शान्ति की भी स्थापना हुई। शक्तिशाली केन्द्रीय शासनो के विकास का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि फ्रास, इङ्गलैण्ड आदि देशो मे एक प्रकार की एकता की भावना उत्पन्न होने लगी। फ्रेंच राजा द्वारा शासित सब प्रदेश एक थे, उसके दरबार मे एकत्र हुए सब अमीर उमरा एक भाषा बोलते थे, एक सस्कृति के रग मे रगे हुए थे और अपने राजा के राज्य को एक देश समझते थे। इस दशा का परिणाम यह हुआ, कि धीरे-धीरे फ्रास एक राष्ट्र बनने लगा और उस के निवासियों मे राष्ट्रीयता की अनुभृति विकसित होने लगी। यही प्रक्रिया इङ्गलैण्ड, स्पेन, प्रशिया आदि मे भी हुई। मध्यकाल की समाप्ति पर यूरोप मे जो नये प्रकार के राज्य प्रकट होने लगे, उन्हे हम राष्ट्रीय राज्य (नेशन स्टेट) कह सकते है।

राष्ट्रीय-राज्यो के विकास का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ, कि यूरोप के विविध देशो मे जो एकता की अनुभूति प्राचीन व मध्यकाल मे विद्यमान थी, वह नष्ट होने लगी। फ्रास, प्रशिया व इङ्गलैण्ड पृथक राष्ट्र है, और उनकी सम्पूर्ण शक्ति अपने राष्ट्रीय उत्कर्ष म ही लगनी चाहिए, इस विचार ने राज्यो के परस्पर विरोध और विद्वेष को बहुत अधिक बढा दिया। यूरोप मे अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना निर्बल होने लगी और वहा के लोग क्रिश्चियन धर्म पर आश्रित यूरोपियन सस्कृति की अपेक्षा अपने राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय उत्कर्ष को अधिक महत्त्व देने लगे।

शक्ति समुत्तुलन का सिद्धान्त—इस दशा मे यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि यूरोप के विविध राज्य केवल अपने हित का ध्यान रखे, अन्य सब राज्यो को पराया व अपना प्रतिस्पर्धी समझें और अपनी विदेश नीति का इस ढग से सचालन करे, जिससे कि अपने राज्य का हित सम्पादित हो सके। इस स्थिति में उस सिद्धान्त का विकास हुआ, जिसे शक्ति-समुत्तुलन (बैलेन्स ऑफ पॉवर) कहते है। इस सिद्धान्त के अनुसार यूरोप के विविध राज्यो का यह प्रयत्न रहता था, कि कोई एक राज्य यूरोप मे इतना प्रबल व शक्तिशाली न हो जाय, कि अन्य राज्य उसके सम्मुख अपने को असहाय अनुभव करे। यदि किसी राज्य की शक्ति बहुत अधिक बढ जाती थी, तो अन्य राज्य परस्पर सन्धि द्वारा उसके विरुद्ध एक गुट का निर्माण कर लेते थे और इस गुट में सम्मिलित राज्य शक्तिशाली राज्य से अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार, यूरोप मे राजशक्ति का समुत्तुलन कायम रहता था और कोई राज्य इस स्थिति मे नही होता था कि अन्य सबको अपना वशवर्ती बना सके।

सोलहवी सदी में स्पेन बहुत अधिक शक्तिशाली था। परिणाम यह हुआ, कि फ्रास और इङ्गलैण्ड के नेतृत्व मे यूरोपियन राज्यो ने उसके विरुद्ध गुट का निर्माण किया। सत्रहवी सदी मे जब फ्रास की शक्ति बढने लगी, तो आस्ट्रिया, इङ्गलैण्ड आदि उसके विरुद्ध हो गये और इस कारण चौदहवा लुई जैसा शक्तिशाली राजा भी मनमानी कर सकने म असमर्थ रहा। अठारहवी सदी में जब इङ्गलैण्ड की सामुद्रिकशक्ति असाधारण रूप से उन्नत हुई, तो फ्रास के नेतृत्व में अनेक यूरोपियन राज्य उसके विरुद्ध सगठित हो गये, और फ्रास की सहायता के कारण ही अमेरिकन उपनिवेश ब्रिटेन की अधीनता मे मुक्त होने मे समर्थ हुए। फ्रास की राज्यक्रान्ति के परिणामस्वरूप जब नैपोलियन यूरोप में

बहुत प्रबल हो गया तो इस शक्ति-समतुलन के सिद्धान्त के कारण ही बहुत से यूरोपियन राज्य उसके विरुद्ध सगठित हो गये और उन्होने सम्मिलित रूप मे नेपोलियन का मुकाबला किया।

अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे यूरोप मे अन्तर्राष्ट्रीय भावना का सर्वथा अभाव था। यूरोप की एकता सर्वथा लुप्त हो चुकी थी, राष्ट्रीय अनुभूति के कारण प्रत्येक राज्य अपने को पूर्णतया स्वतन्त्र व स्वच्छन्द समझता था। इस दशा मे शक्ति-समतुलन का सिद्धान्त ही उनके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो का निश्चित करता था।

३ यूरोप की दशा

आधुनिक समय मे यूरोप ने जिस प्रकार असाधारण उन्नति की है, उस बात को भली-भाति समझने के लिये यह उपयोगी होगा, कि हम अठारहवी सदी के अन्तिम भाग मे, फ्रास की राज्यक्रान्ति के शुरू होने के समय, यूरोप की क्या अवस्था थी, उसका भी सक्षेप के साथ प्रदर्शन कर दे। फ्रास की राज्यक्रान्ति का इतिहास लिखते हुए हमने इस विषय पर अधिक विस्तार से विचार किया है। जो दशा फ्रास की थी, वही प्राय अन्य राज्यो की भी थी। पर फिर भी यहा सक्षिप्त रूप से यूरोप के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सास्कृतिक व राजनीतिक जीवन का उल्लेख करना उपयोगी होगा।

सामाजिक जीवन—१७८९ मे यूरोप का समाज अनेक श्रेणियो में विभक्त था। ये श्रेणिया निम्नलिखित थी, कुलीन, पादरी, किसान (स्वतन्त्र और अर्द्धदास), मध्यश्रेणि और मजदूर। विविध श्रेणियो के मनुष्यो मे केवल अमीर और गरीब का ही भेद नही था, अपितु उनके अधिकार स्थिति आदि मे भी भेद था। कुलीन श्रेणि के लोग समाज म सर्वोच्च स्थान रखते थे, उनकी स्थिति केवल राजा व राजपरिवार के व्यक्तियो से निचले दर्जे की थी। यूरोप की सब जमीन जागीरदारो मे विभक्त थी और इन जागीरो के स्वामी कुलीन श्रेणि के लोग समाज मे बहुत ऊंचा व प्रतिष्ठित स्थान रखते थे। ये जागीरदार मध्यकाल के सामन्तो के उत्तराधिकारी थे। इनकी राजनीतिक व सैनिक-शक्ति नष्ट हो गई थी, पर इनकी सामाजिक स्थिति अब भी कायम थी। ये बडी शान-शौकत के साथ अपनी जागीरो मे निवास करते थे और वहा इनके बडे-बडे प्रासाद, जो प्राय किले के रूप में होते थे, अब तक विद्यमान थे। इन्हे अनेक ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त थे, जो सर्वसाधारण जनता को प्राप्त नही थे। कानून की दृष्टि मे इनकी स्थिति साधारण जनता की अपेक्षा ऊँची थी।

व्यापारिक क्रान्ति के कारण यूरोप मे सर्वत्र मध्यश्रेणि का महत्व बढ रहा था। इङ्गलैण्ड में मध्यश्रेणि का निर्माण निम्नलिखित लोगो द्वारा हुआ था—(१) कुलीन परिवारो के कनिष्ठ पुत्र—जागीर का स्वामी जागीरदार का बडा लडका होता था, अत उसके कनिष्ठ पुत्र व्यापार, राजकीय सेवा व वकालत आदि पेशो का अनुसरण करते थे। (२) देहात के छोटे जागीरदार, जिनकी स्थिति बडे कुलीन जागीरदारो और किसानो के बीच की होती थी,। (३) व्यापारी वर्ग, व्यावसायिक क्रान्ति के कारण बहुत से साहसी व अध्यवसायी लोग व्यापार में लगकर अच्छा धन कमाने लगे थे। धनी हो जाने

पर भी इन्हे कुलीन श्रेणि की स्थिति प्राप्त नही हुई थी। फ्रास, स्पेन आदि मे भी इसी ढग की मध्यश्रेणि का विकास हो रहा था। यह श्रेणी शिक्षित थी, सम्पन्न थी और साथ ही अध्यवसायी भी। पर सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में इसकी स्थिति सम्मानित नही थी। क्रान्तिकारी प्रवृत्तियो के प्रसार मे यह बात एक महत्वपूर्ण कारण बनी।

पादरी लोग दो प्रकार के थे, उच्च स्थिति के पादरी और साधारण भिक्षु। इस युग मे चर्च के पास अपार सम्पत्ति थी और उसके बडे अधिकारी कार्डिनल, आर्कबिशप, बिशप और एबट बडे कुलीन जागीरदारो के समान जीवन व्यतीत करते थे। बडे-बडे ईसाई मठ सर्वत्र विद्यमान थे और इनके महन्तो का जीवन बडी शान-शौकत व विलास मे व्यतीत होता था। छोटे पादरी, जो प्राय भिक्षुओ का जीवन बिताते थे, स्थिति मे महन्तो से बहुत हीन थे। उनकी स्थिति मध्यश्रेणि व उससे भी निम्नश्रेणि के लोगो के समान थी। वे प्राय शिक्षित होते थे और यही कारण है, कि क्रान्ति की भावना उन्हे भी प्रभावित कर रही थी। वे बडे पादरी व महन्तो के भोगमय जीवन से ईर्षा और अपनी दशा से असन्तोष अनुभव करते थे। यही कारण है, कि राज्यक्रान्ति के युग मे उनकी सहानुभूति क्रान्तिकारियो के साथ थी।

मजदूर श्रेणि के लोग शिल्पी व कारीगर थे। बडे कारखानो का विकास इस समय तक नही हुआ था। कारीगर लोग अपने मकान पर रहकर तैयार माल का उत्पादन करते थे और स्वय ही उसे बाजार मे बेचते थे। बढई, लुहार, जुलाहा, दर्जी, मोची, नाई, जिल्द-साज, छीपी आदि के सब शिल्प इन कारीगरो द्वारा सचालित होते थे, और प्रत्येक शिल्प के कारीगर पृथक-पृथक अपनी श्रेणियो (गिल्ड) में सगठित थे। इन श्रेणियो के सम्बन्ध में इसी अध्याय मे हम अधिक विस्तार के साथ लिखेगे। शिल्पी लोग आर्थिक दृष्टि से समृद्ध नही थे, उनकी स्थिति मध्यश्रेणि की अपेक्षा हीन थी।

जनता का सबसे बडा भाग किसानो का था। इस समय मे यूरोप के सभी देश कृषि-प्रधान थे। इङ्गलैण्ड मे किसानो की सख्या ८० प्रतिशत और फ्रास मे ९० प्रतिशत थी। अन्य देशो मे तो किसान और भी में अधिक सख्या थे। ये किसान दो प्रकार के थे, स्वतन्त्र और अर्द्धदास (सर्फ)। स्वतन्त्र किसानो की अपेक्षा अर्द्धदासो भी सख्या बहुत अधिक थी। जागीरदार लोगो की जमीन पर किसान लोग खेती करते थे, और अपनी जमीन व सत्ता के लिये जमीदार पर निर्भर रहते थे। देहात में जागीरदारो के किलेनुमा बडे-बडे राजप्रासाद थे, जिनके पडोस में ये किसान लोग कच्चे व छोटे-छोटे झोपडो मे निवास करते थे। जिन मकानो मे ये किसान रहते थे, उन्ही में उनके पशु भी बाधे जाते थे। जमीदार जब चाहे, किसानो (स्वतन्त्र किसानो) को बेदखल कर सकता था। अर्द्धदास जमीदार की जमीन को बिना किसी उजरत के जातते अपने पारिश्रमिक के रूप मे उन्हे कुछ जमीन दे दी जाती थी, जिसकी पैदावार का वे स्वय उपभोग कर सकते थे। उन्हें अनेक प्रकार से जमीदार की बेगार भी करनी पडती थी। किसान प्राय अशिक्षित होते थे। ससार के समाचारो व प्रगति से सर्वथा अपरिचित रहते हुए अपनी दुर्दशा को अपना भाग्य समझकर सतोष अनुभव करते थे। जमीदार के प्रति उन्हे एक विशेष प्रकार का अनुराग था, उसे वे अपना स्वामी, अन्नदाता व भाग्यविधाता समझते थे। अपनी स्थिति

मे असन्तोष व क्रान्ति की भावना का उनमे प्राय अभाव था। यही कारण है, कि क्रान्ति के युग मे उन्होंने बहुधा अपने जमींदारो का साथ दिया।

आर्थिक जीवन––अठारहवी सदी मे यूरोप मे बडे व समृद्ध नगरो का विकास नही हुआ था। इस युग मे यूरोप का सबसे बडा नगर पेरिस था, जिसकी जनसंख्या ७ लाख के लगभग थी। यूरोप का दूसरा बडा नगर लण्डन था, जिसकी जनसंख्या पाच लाख से कुछ कम थी। व्यापारिक क्रान्ति के कारण लण्डन ग्रेट ब्रिटेन के आर्थिक जीवन का केन्द्र बन गया था, इसीलिये उसकी आबादी इतनी अधिक थी। ब्रिटेन मे उस समय केवल १५ ऐसे नगर थे, जिनकी जनसंख्या बीस हजार से ज्यादा थी। वहा ८६ नगर ऐसे थे, जिनकी आबादी पाच हजार और बीस हजार के बीच मे थी। अन्य सब कसबे व गाव ५००० से भी कम जनसंख्या वाले थे। बर्लिन, वीयना आदि यूरोपियन नगरो की जनसंख्या अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे दो लाख के लगभग थी। शहरो की सडके प्राय कच्चा थी। पानी निकलने का समुचित प्रबन्ध नही था। यही कारण है, कि अठारहवी सदी के अन्त तक वर्षा के समय लण्डन, पेरिस और बर्लिन जैसे नगरो मे घुटना तक पानी एकत्र हो जाता था। राजपथो पर सवारी गाडियो और पैदल चलनेवालो के लिये पृथक व्यवस्था नही थी। सडके प्राय तग होती थी और दोनो ओर की इमारतो के कारण उनमे दिन के समय भी रोशनी का अभाव रहता था। रात के समय सडको को प्रकाशित करने का समुचित व्यवस्था नही थी और गलियो व सडको की सफाई का प्रबन्ध करने के लिये किसी सगठन का भी अभाव था। प्राय सब नगरो के चारो ओर किलेबन्दी व ऊँची दीवारे थी, जिनके कारण लोग छोटे से क्षेत्र मे भिचकर निवास करते थे।

शहरो की आबादी का बडा भाग शिल्पियो व कारीगरो का होता था। अठारहवी सदी के मध्यभाग तक न यान्त्रिक आविष्कार हुए थे और न व्यावसायिक क्रान्ति का ही सूत्रपात हुआ था। कारीगर लोग अपने मकानो पर पुराने किस्म के औजारो से काम करते थे। सब प्रकार के शिल्पी श्रेणियो (गिल्ड) मे सगठित थे। बढई, लोहार, जुलाहे, दर्जी, नाई––सबकी अपनी-अपनी 'श्रेणिया' होती थी। प्रत्येक कारखाने मे एक आचार्य (मास्टर व उस्ताद) और उसके साथ कतिपय अन्तेवासी (शागिर्द) होते थे। ये अन्तेवासी आचार्य के घर में पुत्र के समान निवास करते हुए उससे शिल्प की शिक्षा ग्रहण करते थे और आर्थिक उन्नति में आचार्य की सहायता करते थे। एक किस्म के शिल्प के सब आचार्य मिलकर अपनी 'श्रेणि' (गिल्ड) सगठित करते थे और इस श्रेणि के नियमो का पालन करते थे। श्रेणि द्वारा यह निश्चय किया जाता था कि अन्तेवासी को किन शर्तों पर रखा जाय, वह कितने सालो तक शागिर्दी करे और फिर किन शर्तों पर वह अपना पृथक कारखाना खोल सके। बहुधा, श्रेणि द्वारा यह भी निश्चय होता था कि माल को किस कीमत पर बेचा जाय व उसे तैयार करने के लिये किस सामग्री का उपयोग किया जाय। श्रेणि मे सम्मिलित आचार्य व अन्तेवासी केवल वही माल तैयार कर सकते थे, जिसकी अनुमति वह श्रेणि से प्राप्त कर लेते थे। सुनार साहूकार का काम नही कर सकते थे और लोहार हथियार नही बना सकते थे, क्योकि विविध प्रकार के हथियार बनानेवाले शिल्पियो की अपनी पृथक् श्रेणिया होती थी। इन श्रेणियो (गिल्ड) के कारण माल बढिया बनता

था और विविध कारीगर कीमत के मामले मे प्रतिस्पर्धा नही कर सकते थे। श्रेणियो के नियमो व कानूनो को राज्य भी स्वीकार करता था।

व्यापारिक क्रान्ति के कारण श्रेणियो के सगठन मे कुछ ढिलाई आने लगी थी। विदेशी व्यापार के लिये जिस माल की आवश्यकता थी, नये पूंजीपति व्यापारी उसे बडे परिमाण मे तैयार कराने के लिये उत्सुक रहते थे। अत कतिपय पूंजीपतियो ने शिल्पियो को अपनी नौकरी मे रखकर बडे पैमाने पर माल तैयार कराने की कोशिश प्रारम्भ कर दी थी। यान्त्रिक शक्ति से चलनेवाले कारखानो की स्थापना से पहले ऐसे कारखाने कायम होने शुरू हो गये थे, जिनमे सैकडो की सख्या मे कारीगर लोग एक छत के नीचे बैठकर निश्चित वेतन के बदले मे मजदूरी करते थे। इसी बीच मे वैज्ञानिक आविष्कारो यूरोप के आर्थिक जीवन मे भारी परिवर्तन लाना प्रारम्भ कर दिया। यान्त्रिक शक्ति के आविष्कार के कारण पूंजीपतियो द्वारा सचालित कारखानो के मुकाबले मे पुराने ढग की 'श्रेणियो' के लिये अपनी सत्ता को कायम रख सकना सम्भव नही रहा। इसी का परिणाम यह व्यावसायिक क्रान्ति थी, जिसने यूरोप के आर्थिक जीवन को एकदम परिवर्तित कर दिया था। इस व्यावसायिक क्रान्ति पर हम अगले एक अध्याय मे विस्तार मे विचार करेगे।

धार्मिक जीवन—अठारहवी सदी मे यूरोप मे तीन धर्म विद्यमान थे, ईसाई, यहूदी और इस्लाम। मुसलमानो का क्षेत्र तुर्क साम्राज्य तक सीमित था। यूरोप के दक्षिण-पूर्वी कोने में तुर्को का सुविस्तृत साम्राज्य था, जिसमें बालकन प्रायद्वीप का बडा भाग अन्तर्गत था। तुर्क लोग इस्लाम के अनुयायी थे। यहूदी लोगो का पृथक देश कोई नही था, वे प्राय सम्पूर्ण यूरोप में फैले हुए थे। उनका निवास प्राय बडे नगरो मे था, जहा साहूकारे और व्यापार द्वारा वे अपना निर्वाह करते थे। ईसाई लोग यहूदियो से घृणा करते थे और उनके निवास के लिये शहरो मे पृथक स्थान सुरक्षित रखे जाते थे। उनके अधिकार भी नियन्त्रित होते थे और उन्हे अपनी इच्छा के अनुसार व्यवसाय आदि का अनुसरण करने की स्वतन्त्रता नही होती थी।

पर यूरोप के निवासियो का प्रधान धर्म ईसाइयत था। अठारहवी सदी मे ईसाइयो के प्रमुख सम्प्रदाय तीन थे—(१) रोमन कैथोलिक (२) ग्रीक आर्थोडोक्स और (३) प्रोटेस्टेन्ट। इटली, स्पेन, फ्रास, पोर्तुगाल, आयरलैण्ड, आस्ट्रिया, पोलैण्ड और बेल्जियम मे प्रधानतया रोमन कैथोलिक धर्म का प्रचार था। रूस और पूर्वी यूरोप के देशो के निवासी ग्रीक आर्थोडोक्स चर्च के अनुयायी थे। इङ्गलैण्ट, जर्मनी और उत्तरी यूरोप के विविध देश प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय का अनुसरण करते थे। धार्मिक सुधारणा के कारण किस प्रकार अनेक देशो में रोमन कैथोलिक चर्च के विरुद्ध विद्रोह हुआ और वहा राष्ट्रीय चर्चों की स्थापन हुई, इसका उल्लेख हम पहले कर चुके है। राष्ट्रीय भावना और नये विचारो के प्रसार के कारण चर्च का प्रभाव अब कम होने लगा था। पर यूरोप में अभी साम्प्रदायिक सकीर्णता और धार्मिक विद्वेष मे विशेष न्यूनता नही आई थी। रोमन कैथोलिक देशो मे जनता को धर्म के मामले म स्वतन्त्रता अभी प्राप्त नही हुई थी। अन्य सम्प्रदायो के लोगो को यह अधिकार नही था, कि वे अपने विचारो व विश्वासो के अनुसार धार्मिक अनुष्ठानो को स्वतन्त्रता के साथ कर सकें। आशिक रूप में यही बात प्रोटेस्टेन्ट देशो के सम्बन्ध

से भी कही जा सकती है। इङ्गलैण्ड मे उन सम्प्रदायो के अनुयायियो पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये जाते थे, जो इङ्गलिश चर्च को नही मानते थे। रोमन कैथोलिक लोगो का अठारहवी सदी के अन्त तक भी इङ्गलैण्ड मे राजकीय पदो पर नियत नही किया जा सकता था और न ही उन्हे यह अनुमति थी, कि वे अपने धार्मिक अनुष्ठानो को सार्वजनिक रूप में कर सके। ग्रीक आर्थोडाक्स चर्च का सगठन रोमन कैथोलिक चर्च से बहुत कुछ मिलता-जुलता था। पर रोम के पोप के समान उसका कोई एक प्रधान अधिकारी नही था। एक पोप की बजाय उसके अनेक पेट्रियार्क होते थे।

सास्कृतिक जीवन--अठारहवी सदी मे यूरोप मे शिक्षणालयो व यूनिवर्सिटियो की कमी नही थी। प्राय सभी देशो मे अच्छे-अच्छे विद्यापीठ विद्यमान थे। पर ये शिक्षा-सस्थाए प्राय चर्च के अधीन थी। रोमन कैथोलिक देशो मे तो शिक्षापद्धति का सचालन ही चर्च द्वारा होता था। प्रोटेस्टेन्ट देशो मे भी शिक्षणालयो पर चर्च का बहुत प्रभाव था। इस स्थिति मे यह सम्भव नही था, कि शिक्षणालय बुद्धिस्वातन्त्र्य व स्वतन्त्र विचार के केन्द्र बन सके। अठारहवी सदी के बहुसख्यक शिक्षणालयो का वातावरण सकीर्ण और सकुचित होता था। उनमे केवल कुलीनो व धनियो की सतान ही शिक्षा ग्रहण कर सकती थी। सर्व-साधारण जनता को पढने-लिखने का न कोई अवसर था और न वह इसकी आवश्यकता ही अनुभव करती थी। यही कारण है, कि उस समय तक यूरोप मे शिक्षित लोगो की सख्या बहुत कम थी। शिक्षणालयो की पाठविधि मे धर्म, लैटिन ग्रीक आदि का महत्त्व अधिक था। जिसे आजकल विज्ञान कहा जाता है, उसका उस समय के विद्वानो को न विशेष परिचय था और न ही उसके महत्व को वे स्वीकार करते थे।

चर्च द्वारा सचालित व नियन्त्रित विद्यापीठो मे विज्ञान के प्रति उपेक्षा के बावजूद भी यूरोप के विचारको का ध्यान विज्ञान की ओर आकृष्ट होने लगा था। तेरहवी सदी मे रोजर बेकन नामक विद्वान ने सत्य की खोज के लिये तीन साधनो का प्रतिपादन किया था, सही तौर पर निरीक्षण, परीक्षण, और वैज्ञानिक उपकरण। बेकन का कहना था, कि किसी पदार्थ या सिद्धान्त के ठीक-ठीक स्वरूप को समझने के लिये शास्त्रीय प्रमाणो पर आश्रित न रहकर निरीक्षण, परीक्षण और वैज्ञानिक उपकरणो का प्रयोग करना चाहिये। उस युग के यूरोपियन विद्वानो ने बेकन के मत पर कोई ध्यान नही दिया, वे क्रिश्चियन शास्त्रो के आधार पर ही सत्य असत्य का निर्णय करते रहे। पर आज ससार के विद्वान सत्यनिर्णय के सम्बन्ध में रोजर बेकन की स्थापना को पूरी तरह अपना चुके है। सोलहवी सदी के अन्त और सत्रहवी सदी के प्रारम्भिक काल मे फ्रासिस बेकन (१५६१-१६२६) नाम का एक अन्य विद्वान इङ्गलैण्ड मे हुआ, जिसने कि बुद्धिस्वातन्त्र्य पर बहुत जोर दिया। उसका कथन था, कि मनुष्य जब एक बार प्रमाणवाद और अन्धविश्वास के जाल से अपने को मुक्त कर लेगा, तो आश्चर्यजनक उन्नति का मार्ग उसके लिये खुल जायगा, वह ऐसे-ऐसे आविष्कारो को करने मे समर्थ होगा, जिसकी अभी कल्पना भी नही की जा सकती।

चर्च के मन्तव्यो और विश्वासो की उपेक्षा कर अनेक विद्वान परीक्षण द्वारा सत्य की खोज में तत्पर होने शुरू हो गये थे। ऐसे कतिपय विद्वानो का उल्लेख हम पहले कर चुके है। वैज्ञानिक तथ्यो के आविष्कार से यूरोप के लोगो के हाथ मे ऐसे साधन आने प्रारम्भ

हो गये, जिनसे वे प्रकृति पर विजय स्थापित करने मे ममर्थ हुए । व्यावमायिक क्रान्ति और नवयुग के सूत्रपात मे इसमे असाधारण सहायता मिली ।

हमने इम अध्याय मे अठारहवी सदी के अन्तिम भाग के यूरोप का सक्षेप से निदर्शन किया है। आगे के अध्याय से हम यूरोप के आधुनिक इतिहाम को नियमित रूप से प्रारम्भ करेंगे। अब तक हमने केवल उन बातो का उल्लेख किया है, जिनको जानना यूरोप के आधुनिक इतिहास को समझने के लिये अनिवार्य है। अन्य अनेक बाते जो इम दृष्टि से उपयोगी है, वे हमने जान-बूझकर नही लिखी है। उन्हे इस इतिहाम के विविध अध्यायो मे विपय को स्पष्ट करते हुए दिया गया है, क्योकि हमारी दृष्टि मे उन्हे वहा लिखना पाठको के लिये अधिक उपयोगी होगा।

चौथा अध्याय

फ्रान्स में राज्यक्रान्ति का प्रारम्भ

१ राज्यक्रान्ति से पूर्व फ्रान्स की दशा

एकतन्त्र राजा——राज्यक्रान्ति से पूर्व फ्रास मे स्वेच्छाचारी एकतन्त्र राजा राज्य करते थे। ये राजा वंशक्रमानुगत होते थे और अपने को ईश्वर के सिवा किसी अन्य के सम्मुख उत्तरदायी न समझते थे। इनकी इच्छा ही कानून थी। ये जिसे चाहते, राजकीय पद पर नियत करते, जिसे चाहते पद-च्युत करते। राजा अपनी इच्छा से जनता पर कर लगाता था और राजकीय आमदनी को अपनी इच्छानुसार ही खर्च करता था। सन्धि और विग्रह का अधिकार केवल राजा को था। वह अपनी इच्छा से प्रजा से किसी भी प्रकार की सलाह बिना लिये, किसी राजा व देश से लडाई शुरू कर सकता था। वह जिसे चाहे कैद कर सकता था, जिसे चाहे सजा दे सकता था। लुई १६वा अभिमान से कहा करता था —"यह कानून है, क्योंकि मेरी ऐसी ही इच्छा है। राज्य की प्रभुत्व शक्ति मुझ में निहित है। कानून बनाने का हक केवल मुझे है, इसके लिये मुझे किसी पर आश्रित रहने व किसी का सहयोग लेने की आवश्यकता नही।" फ्रास के राजाओं का शासन-सम्बन्धी मूल सिद्धात यह था, कि राजा पृथिवी पर परमेश्वर का प्रतिनिधि है। वह राजा है, क्योंकि परमेश्वर ने उसे राजा बनाया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर परमेश्वर ब्रह्माण्ड के विविध प्राणियो की किसी भी प्रकार की सम्मति बिना लिये स्वेच्छा से शासन करता है, उसी प्रकार राजा अपने राज्य मे प्रजा की सम्मति पर जरा भी आश्रित हुए बिना अपनी इच्छा से शासन करता है। यदि राजा दयालु है, प्रजा का सौभाग्य है। यदि राजा अत्याचारी है, तो किसी का क्या वस है! परमेश्वर के शासन मे आधिया आती है, तूफान आते है, महामारिया फैलती है, भूकम्प आते है—इन सब ईश्वरीय विधानो के सम्मुख मनुष्य क्या कर सकता है? कुछ नही। अपने पापो का फल समझकर चुप रह जाने के सिवा मनुष्य की गति ही क्या है? इसी प्रकार यदि राजा अत्याचार करता है, कर से जनता को पीडित करता है, निरपराधियो को शूली पर चढाता है, तो इन राजकीय विधानो के सम्मुख मनुष्य का क्या वस है? मनुष्य को यह सब राजकीय प्रकोप भी चुपचाप सहना ही चाहिये?

फ्रास के राजा इसी पुराने सिद्धान्त को माननेवाले थे। अधिकाश जनता भी यही विश्वास रखती थी। राजा बडी शानशौकत से, हजारो पार्श्वचरो और अनुचरो के साथ वर्साय के राजप्रासाद में निवास करता था। पेरिस से १२ मील दूर राजा और उसके दरबारियो के भोग-विलास का केन्द्र यह वर्साय नगर विराजमान था। इसकी कुल आबादी ८० हजार थी। ये इतने लोग राजा और उसके दरबार की आवश्यकताओ को पूर्ण करने

के लिये ही इस सुन्दरी नगरी मे निवास करते थे। राजा का महल तीस करोड रुपये की लागत से बनाया गया था। यह विपुल धनराशि जनता मे कर के रूप मे वसूल की जाती थी। राज-दरबार में १५ हजार आदमी थे। अकेली रानी के नौकरो की संख्या ५०० से ऊपर थी। राजा के खर्च की कोई हद न थी। राजा की अपनी घुडसाल पर ही सालाना एक करोड रुपये से अधिक खर्च आता था। ५० लाख के लगभग रुपये खाने-पीने मे उडा दिये जाते थे। राजा के आमोद-प्रमोद, शान-शौकत और भोग-विलास का खर्च ६ करोड रुपया सालाना से कम न था।

यह भोग-विलास प्रधान, स्वेच्छाचारी, एकतन्त्र शासन जनता के लिये असह्य न होता, यदि इसमे क्षमता होती। पर फ्रास का इस समय का शासन बहुत ही ढीला ढाला तथा विच्छृखल हो गया था। राजा तथा उसके कर्मचारियो को शासन की कोई परवाह न थी। उन्हे परवाह थी, अपने आमोद-प्रमोद की, अपने सम्मान की और आराम की जिन्दगी की। चौदहवे लुई के समय मे फ्रास का एकतन्त्र शासन जिस प्रकार सशक्त, मजबूत और प्रचण्ड था, वह दशा अब नही रही थी। फ्रास का इस समय का राजा सोलहवा लुई चौदहवे लुई के समान ही निरकुश और स्वेच्छाचारी था, पर उसके शासन मे शक्ति और क्षमता का सर्वथा अभाव था। ऐसा शासन देर तक कायम नही रह सकता था। जब उसे क्रान्ति का धक्का लगा, तब वह उसका मुकाबला नही कर सका। वह पुराने खोखले वृक्ष की तरह लडखडा कर गिर गया।

राजा की स्वेच्छाचारिता—राजा की स्वेच्छाचारिता अनेक अशो मे सीमा को लाघ चुकी थी। फ्रास के राजा जिसको चाहते, गिरफ्तार कर सकते थे। केवल राजा ही नही, उसके रिश्तेदारो, कृपापात्रो, कर्मचारियो और सरदारो को भी यह अद्भुत अधिकार प्राप्त था। राजा एक किस्म के "मुद्रित-पत्र" (लेत्र् द काशे) जारी किया करता था, इन पर राजा की मुद्रा लगी होती थी और किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने तथा सजा देने का हुक्म जारी किया गया होता था। किसको गिरफ्तार किया जाय, उसके नाम की जगह खाली रहती थी। कितनी और क्या सजा दी जाय, इसका स्थान भी खाली रहता था। जिस आदमी के पास यह "मुद्रित-पत्र" मौजूद हो, उसे केवल इन खाली स्थानो को भर देना होता था। वे "मुद्रित-पत्र" की खाना पूरी कर जिसे चाहते, गिरफ्तार करवा देते और जो सजा चाहते, दिलवा देते। राजा को यह जानने की जरूरत भी नही थी कि किसे और क्या सजा दी जा रही है। ये "मुद्रित-पत्र" भी एक सौगात थे, एक उपहार थे, एक कृपा थी—जिसे राजा बडी उदारता के साथ अपने कृपापात्रो को प्रदान किया करते थे। कितने निरपराध इन "मुद्रित-पत्रो" से कष्ट भोगते थे, इसका अनुमान सहज में ही किया जा सकता है।

राजकीय कर—फ्रास की जनता पर जो टैक्स लगाये जाते थे, वे दो प्रकार के थे—प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्ष टैक्सो मे नमक, शराब, तमाखू और आयात व निर्यात माल पर लगाये गये टैक्स प्रमुख थे। नमक पर कर की मात्रा बहुत अधिक थी। इस कर से जनता बहुत कष्ट मे थी। नमक जैसी उपयोगी वस्तु उन्हें बहुत ही महगी कीमत मे प्राप्त होती थी। इन करो को वसूल करने का तरीका बहुत ही अजीब था। अमीर आदमियो व कम्प-

नियो को टैक्स वसूल करने का ठीका राज्य की तरफ से दिया जाता था। ये ठेकेदार एक निश्चित धनराशि देकर मनमाना टैक्स वसूल करने का हक प्राप्त कर लेते थे। इन्हे अपनी जेब भरने से मतलब था। जनता की अवस्था की जरा भी परवाह किये बिना ये अपने स्वार्थ को दृष्टि मे रखकर टैक्स वसूल करते थे।

प्रत्यक्ष-कर भूमि तथा अन्य प्रकार की सम्पत्ति से होनेवाली आमदनी पर लिया जाता था। पर इस कर का ढग इस प्रकार का था, कि अमीरो पर बहुत ही कम बोझ पडता था। गरीबो पर टैक्स का भार बहुत अधिक था। मामूली किसान अपनी जमीनो से जो कुछ पैदा करते थे, उसका आधा उन्हे भूमि-कर के रूप मे राज्य को दे देना होता था। पर बडे-बडे जमीदार राज्य-कर से प्राय मुक्त ही रहते थे।

विविध करो से जो आमदनी होती थी, राजा उसका उपयोग अपनी इच्छा से करता था। राजा के निजू खर्च और राज्य के खर्च मे कोई भेद न था। राजा जितना चाहे, खर्च कर सकता था। वह जो बिल बना दे, राजकर्मचारियो को आख मीचकर उसे स्वीकार करना पडता था। वे कोई आपत्ति न कर सकते थे।

लोक सभाओ का अभाव—फ्रास मे कानून बनाने के लिये या राजकीय विषयो पर विचार करने के लिये कोई ऐसी लोक-सभाएं न थी, जिनमें जनता के प्रतिनिधि एकत्रित हो सके। निस्सन्देह, पुराने समयो मे फ्रास मे भी एक इस प्रकार की सभा थी, जिसे 'एस्टेटस जनरल' कहते थे, पर सन १६१४ के बाद उसका एक भी अधिवेशन नहीं हुआ था। लोग यह भी भूल गये थे, कि इस 'एस्टेटस जनरल' के क्या सगठन और नियम थे। अब तो फ्रास पर राजा का अबाधित शासन था। उसने अपनी मदद के लिए कुछ सभाएँ बनाई थी, पर ये राजा की अपनी सृष्टि थी। ये राजा के सम्मुख उत्तरदायी थीं, उसकी इच्छा पर अवलम्बित थी। इनका प्रयोजन यही था, कि राजा अपने सामान्य राजकीय कार्यों से भी निश्चिन्त हो सके, वह सब चिन्ताओ से मुक्त हो कर मौज से अपने कृपापात्रो के साथ आमोद-प्रमोद में विलीन रह सके।

राष्ट्रीयता का अभाव—फ्रास पर एक राजा का अबाधित राज्य था, इससे ऊपर से देखने पर तो यह मालूम होता था कि फ्रास एक देश है—एक राष्ट्र है। पर वास्तविकता यह नही थी। यद्यपि जर्मनी, इटली और आस्ट्रिया आदि के मुकाबले मे फ्रास राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत अधिक सगठित था, पर सच्चे अर्थो मे अभी वहा राष्ट्रीयता का उदय नही हुआ था। जनता में एक राष्ट्र की भावना का अभी अभाव था। भिन्न-भिन्न प्रदेशो के लोग अपने को फ्रासीसी न समझकर उस-उस प्रान्त का निवासी समझते थे। पुराने जमाने में फ्रास में अनेक राजाओ व सामन्तो का शासन था। फ्रास अनेक छोटे-छोटे राज्यो में विभक्त था। अब ये विविध राज्य नष्ट हो चुके थे, पर उनकी स्मृति अब भी मौजूद थी। यह स्मृति केवल मनुष्यो के हृदय में ही नही थी, अपितु देश के कानूनो और विविध सस्थाओ में भी विद्यमान थी। अब तक भी इन प्रदेशो मे से बहुतो की सीमा पर आयात और निर्यात कर लगते थे। अगर कोई व्यापारी फ्रास के दक्षिणी समुद्र तट से माल लाद कर उत्तर मे ले जाना चाहे तो रास्ते मे अनेक स्थान पर उसके माल की तलाशी होती थी, अनेक स्थान पर उसे चुंगी देनी पडती थी। ये आयात और निर्यात कर स्पष्ट

रूप मे यह जताते थे, कि फ्रास अब भी एक देश नही है, अनेक देशो का समूह है। इन विविध प्रदेशो मे टैक्स वसूल करने के नियम तथा ढग भी एक दूसरे से पृथक थे।

फ्रास अब भी एक राष्ट्र नही बना था, इसका सबसे अच्छा प्रमाण यह है, कि उसमे कानून की कोई एक पद्धति प्रचलित नही थी। दक्षिणी फ्रास मे विशेपतया रोमन कानून का प्रचार था। पर उत्तरी, पश्चिमी और पूर्वी फ्रास मे, २८५ किस्म के कानून प्रयोग मे आ रहे थे। ये विविध कानून फ्रास के मध्यकालीन विभेदो के अवशेष थे। इन भिन्न-भिन्न कानूनो के रहते हुए फ्रास मे एक राष्ट्र की भावना कैसे उत्पन्न हो सकती थी ?

सामाजिक रचना—फ्रास की सामाजिक रचना स्वतन्त्रता पर आश्रित न होकर जन्म मूलक स्थिति पर आश्रित थी। सब फ्रेन्च लोगो के अधिकार एक समान न थे। कुछ लोग विशेष अधिकार रखते थे और कुछ के कोई भी अधिकार न थे। कुछ लोग बडे थे और कुछ लोग छोटे। कुछ लोग कुलीन समझे जाते थे और कुछ लोग नीच। फ्रास मे सामाजिक सगठन का आधार-भूत सिद्धान्त यह था, कि सब मनुष्य एक समान और स्वतन्त्र नही है। कुछ लोग स्वभावत ही बडे है, विशेष अधिकार रखते है, अमीर है, और दूसरे स्वभावत ही छोटे है, अधिकार रहित है और गरीब है। रूसो का प्रसिद्ध सिद्धान्त "परमेश्वर ने सब मनुष्यो को एक समान और स्वतन्त्र उत्पन्न किया है" उस समय फ्रास म केवल कुछ विचारको के दिमाग मे ही था, क्रिया म नही।

फ्रास की जनता को हम तीन श्रेणियो मे बाट सकते है—कुलीन श्रेणी, पुरोहित श्रेणी और सर्वसाधारण जनता। इनमे से कुलीन और पुरोहित श्रेणिया विशेष अधिकारो से युक्त थी, ऊँची समझी जाती थी और सख्या मे बहुत कम होने पर भी बहुत अधिक प्रभाव रखती थी। सर्वसाधारण जनता की उनके मुकाबिले मे न कोई स्थिति थी और न कोई अधिकार।

फ्रास की सम्पूर्ण भूमि का एक चौथाई भाग कुलीन श्रेणी की सम्पत्ति था। ये कुलीन लोग मध्यकालीन सामन्तपद्धति के अवशेष थे। इनकी राजनीतिक स्थिति अब क्षीण हो चुकी थी, पर सामाजिक और आर्थिक अधिकार अभी वैसे ही कायम थे। राज्य, सेना और चर्च के सब उच्च पद इन्ही के लिये सुरक्षित थे। अनेक प्रकार के टैक्सो से ये बरी थे। ये समझते थे, हमे रुपये पैसे के रूप मे टैक्स देने की क्या जरूरत है ? हम तो अपना टैक्स तलवार से देते है। जो कुलीन लोग अमीर होते थे, वे बडी शान-शौकत के साथ राज दरबार में राजा के इर्द गिर्द निवास करते थे। वहा इन के भोग-विलास की कोई सीमा न थी। इनका पेशा केवल मौज उडाना ही न होता था, अपितु दरबार की साजिशो से भी इन्हे फुरसत न मिलती थी। इन की जमीन किसान लोग जोतते थे। जमीन की फिक्र करने की इन्हे कोई जरूरत न थी। राज्य के बडे-बडे पद, खास तौर पर आमदनीवाले पद—नीलाम हुआ करते थे और ये कुलीन लोग उन्हे खरीदने के लिये सदा उत्सुक रहते थे। ये पद इनकी शान को बढाते थे, और साथ ही आमदनी को बढाने मे भी सहायक होते थे, क्योकि उस समय फ्रास के शासन मे रिश्वतखोरी का बाजार बहुत गरम रहता था।

परन्तु कुलीन श्रेणी के सभी लोग अमीर न थे। बहुत से कुलीन लोग जूए, शराब तथा इसी प्रकार के अन्य व्यसनो में फँसे रहने के कारण ऋणी होकर तबाह हो गये थे।

एक कुलीन के मरने पर उसकी सम्पत्ति का दो तिहाई हिस्सा सब से बडे लडके को मिल था, बाकी तिहाई हिस्सा छोटे लडको मे बाट दिया जाता था। विरासत के इस कार से भी बहुत से कुलीन लोग गरीब हो गये थे। पर गरीब होने पर भी इनके अधिकारो कोई कमी न आती थी। इनका रहन-सहन मामूली किसानो का सा ही था, अनेक कुलीन की आमदनी साधारण किसानो से भी कम थी। पर इन के अधिकार अक्षुण्ण थे। लो इन्हे मजाक मे कहा करते थे कि ये "कबूतर खाने या मोहल्ले के महान् और शक्तिशा सामन्त है।"

पुराने कुलीन लोगो मे से बहुतो की इस प्रकार दुर्दशा हो रही थी। दूसरी तरफ राज की कृपा ने अनेक लोगो को श्रीमन्त बना दिया था। स्वेच्छाचारी एकतन्त्र राजाओ कृपा कटाक्ष से बहुत से साधारण आदमी कुलीनो की श्रेणी मे पहुच गये थे। सर्वसाधार लोगो मे ऊँचे घरानो के लिये एक विशेष प्रकार का आदर भाव होता है। वे उन्हे सद से अच्छी स्थिति मे देखने के लिये अभ्यस्त होते है। उन कुलीनो के विशेष अधिका का उपभोग करना उन्हे नही चुभता। पर जब कोई उन्ही की तरह का मामूली आदम विशेष अधिकारो को प्राप्त कर लेता है, तब वह उन्हे असह्य हो जाता है। फ्रास की जन की दृष्टि मे राजा की कृपा से कुलीन बने हुए उन मामूली लोगो के विशेष अधिकार का की तरह से चुभते थे। इसी प्रकार कुलीनता के रोब को कायम रखने के लिये आर्थि समृद्धि अत्यन्त आवश्यक होती है। गरीबी की हालत मे कुछ समय तक तो खानदान रोब काम करता है, पर कुछ समय बाद ही वह काफूर की तरह उड जाता है। फ्रास गरीब कुलीनो का रोब भी इसी प्रकार निरन्तर क्षीण हो रहा था। पर कुलीनता के विशेष अधिकार इन्हे प्राप्त थे और जनता को ये सह्य न थे।

चर्च की स्थिति——धार्मिक सुधारणा का युग इस समय समाप्त हो चुका था प फ्रास मे अभी रोमन कैथोलिक चर्च का ही आधिपत्य था। यह चर्च राज्य के अन्दर ए दूसरे राज्य के समान था। इसकी अपनी सरकार और अपने राजकर्मचारी थे। फ्रास क बहुत सी भूमि चर्च की मिल्कियत थी। किसी-किसी प्रदेश मे तो ४० फी सदी जमीन च की सम्पत्ति थी। इस जमीन से चर्च को भारी आमदनी थी। इसके सिवाय चर्च त लोगो से कर वसूल करता था। जमीन की उपज का दसवा हिस्सा चर्च को कर रूप मे जा था। हिसाब लगाया गया है, कि चर्च की कुल आमदनी तीस करोड रुपये वार्षिक लगभग थी। चर्च की जमीनो और सम्पत्ति पर राज्य कोई कर न लेता था। चर्च जो टैक वसूल करता था, वह केवल रोमन कैथोलिक लोगो से ही नही, अपितु प्रोटेस्टेन्ट औ यहूदी लोगो से भी लिया जाता था। इन सब कारणो से चर्च के प्रभाव और शक्ति की को सीमा न थी। राज्य के बाद उसी का स्थान सर्वोच्च था। इस अत्यन्त प्रभावशाली च के सचालको का महत्व उस समय में कितना होगा, इसका अनुमान कर सकना कठि नही है।

चर्च का सचालन करनेवाली पुरोहित-श्रेणी को हम दो भागो मे बाट सकते है—उच पुरोहित और सामान्य पुरोहित।

उच्च पुरोहितो की सख्या ६००० के लगभग थी। ये आर्कबिशप, बिशप, एव

आदि चर्च के ऊँचे पदो पर नियत थे। इनके प्रभाव और समृद्धि की कोई सीमा न थी। ये वडे-वडे कुलीन श्रीमन्तो की तरह शान-शौकत और भोग-विलास से जीवन व्यतीत करते थे। धार्मिक कर्त्तव्यो की तरफ इनका कोई ध्यान न था। इनमे से वहुत से राजदरवार मे मौज किया करते थे, और कुलीन लोगो की तरह राजदरवार मे अन्दरूनी साजिशो मे महत्व-पूर्णस्थान प्राप्त करने मे ही अपने जीवन की सफलता समझते थ। इनमे से वहुतो की आम दनी लाखो रुपये साल थी। इस आमदनी का उपयोग अनाथो और पीडितो की सहायता म न होकर सहभोजो और शराव की दावतो मे होता था। वहुत से उच्च पुरोहितो का पर-मेश्वर मे विश्वास तक न था, फिर भी वे चर्च के ऊँचे-ऊँचे पदो पर विराजमान थे।

चर्च के वास्तविक कर्त्तव्यो का सम्पादन सामान्य पुरोहित करते थे। इनकी सख्या सवा लाख के लगभग थी। ये सर्वसाधारण जनता मे से लिये जाते थे। देहातो मे इनका निवास था, और ये ही धार्मिक विधि-विधानो और कर्मकाण्डो का सम्पादन करते थे। ये लडको को पढाते थे और मामूली लोगो की तरह सुख या दुख मे दिन काटते थे। इन्ह वहुत थोडा वेतन मिलता था। सारा काम ये करते थे, पर वेफिकरी से पेट भर सकना भी इनके लिये दूभर था। चर्च की विशाल आमदनी का वहुत थोडा हिस्सा इनके प ले पडता था। उसका फल तो वे लोग प्राप्त करते थे, जो राजा के साथ वर्साय मे मौज उडाते थे। यही कारण है, कि सामान्य पुरोहितो के हृदय मे उच्च पुरोहितो के प्रति विद्वेष की भावना थी और राज्यक्रान्ति के समय में उन्होने जनता का साथ दिया।

इस काल मे फ्रास के अन्दर जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त न थी। यद्यपि फ्रास की अधिकाश जनता रोमन कैथोलिक धर्म को माननवाली थी, पर यहूदियो और प्रोटे-स्टेन्टो की सख्या भी कम न थी। फ्रास के कानून के मुताविक प्रत्यक आदमी के लिये, चाहे वह यहूदी या प्रोटेस्टेन्ट धर्म को माननेवाला क्यो न हो, चर्च के—जो कि रोमन कैथोलिक था—अधीन होना आवश्यक था। सव आदमियो को चर्च के अधीन होना होता था और चर्च के करो को देना पडता था। रोमन कैथोलिक लोगो के अतिरिक्त अन्य लोगो के विवाह तक गैर कानूनी समझे जाते थे। उनकी मृत्यु के वाद उनके कैथोलिक रिश्ते-दार सम्पत्ति के मालिक वनने के लिये दावा कर सकते थे, और इस प्रकार उनके वास्तविक उत्तराधिकारियो से विरासत के हक को छीन सकते थे। विधर्मियो को अपने विश्वासो के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक धार्मिक कृत्यो तक को करने का अधिकार नही था। जव भी धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये फ्रास मे कोशिश की गई, पुरोहितो न उसका विरोध किया।

एक तरफ जव फ्रास के कानून के अनुसार धार्मिक स्वतन्त्रता को पूर्णतया रोक दिया गया था, दूसरी तरफ नास्तिकता की प्रवृत्ति वडी तेजी के साथ वढ रही थी। सर्वसाधा-रण जनता मे ही नही पुरोहितो और उच्च पुरोहितो में भी नास्तिकता की लहर वडी तेजी से चल रही थी।

कुलीन श्रेणी—इन कुलीन और पुरोहित (उच्च पुरोहित) श्रेणियो के विशेषा-धिकार अनेक प्रकार के थे। अपनी-अपनी जमीदारियो से कई किस्म की आमदनी वे रिवाज के आधार पर प्राप्त करते थे। विवाह आदि विशेष अवसरो पर किसी खास खर्च के आ पडने पर ये वडे जमीदार अपने आसामियो तथा अपनी जमीदारी के निवासियो से

तरह-तरह के नजराने वसूल करते थे। जो माल उन के इलाके में आता था, उस पर वे कर लेते थे। स्वतन्त्र किसानों से उनकी उपज का भाग हिस्सा प्राप्त करते थे। इनके इलाकों में कई किस्म के कारोबार, जैसे आटे की चक्की, नानबाई, शराबखाना आदि, इनके सिवा दूसरा न कर सकता था और सब लोगों के लिए आवश्यक था कि उन कामों को इन्हीं के कारखानों में करावें। जमीन के क्रय-विक्रय के समय में उसकी कीमत का पाँचवां हिस्सा ये बड़े जमींदार प्राप्त करते थे। शिकार इनका खास अधिकार था। इस के लिए बहुत सी जमीन सुरक्षित रखी जाती थी, ताकि जानवर संख्या में खूब बढ़ सकें। नजदीक के किसान शिकार के इन जानवरों को किसी किस्म का नुकसान नहीं पहुंचा सकते थे, चाहे ये उनके खेतों को तबाह ही क्यों न कर दें। जमींदारों के कबूतरखानों में पले हुए हजारों कबूतर किसानों के खेतों को उजाड़ते फिरते थे, पर किसी की क्या हिम्मत थी कि उन्हें उड़ा भी सके। तरह-तरह के जानवर—जिनका शिकार करके जमींदार आनन्द प्राप्त करता था, खेतों की तबाही मचाते रहते थे, पर कोई किसान उन्हें मार नहीं सकता था। जमींदारों के इन विशेषाधिकारों से लोग तंग आ गये थे, पर वे बेबस थे।

फ्रांस में कुलीन और पुरोहित श्रेणियों के लोगों की कुल आबादी दो या ढाई लाख से अधिक नहीं थी। शेष जनता—जिस की आबादी ढाई करोड़ के लगभग थी, किस दशा में थी? इस सर्वसाधारण जनता को हम तीन भागों में बांट सकते हैं—मध्य श्रेणी के लोग, शहरों के मजदूरी पेशा लोग और देहातों के किसान लोग।

मध्य श्रेणी—मध्य श्रेणी में वे लोग सम्मिलित थे, जो कुलीन व पुरोहित श्रेणी के न थे और जो हाथ से मेहनत किये बिना अन्य तरीकों से आमदनी प्राप्त करने में समर्थ थे, जैसे वकील, चिकित्सक, साहित्यिक लेखक व कवि, व्यापारी, साहूकार, कलाविद्, नट, नर्तक, सरकारी नौकर और छोटे-बड़े कारखानों के मालिक। ऐसे लोगों की संख्या बीस लाख के लगभग थी। फ्रांस की सम्पत्ति, दिमाग, विद्या और कारोबार सभी मध्य श्रेणी के लोगों के पास था। तरह-तरह के कारोबार और तिजारत से ये लोग लगातार अमीर होते जाते थे। राजा और कुलीन श्रीमन्त लोग इनसे रुपया कर्ज लेते थे। सहायता के तौर पर इनकी शक्ति और प्रतिष्ठा निरन्तर बढ़ रही थी। इसी श्रेणी के लोगों में बहुत से विचारक दार्शनिक तथा लेखक उत्पन्न हुए थे, जो फ्रांस में पहली बार लोकमत नाम की नई वस्तु को पैदा कर रहे थे। सामाजिक दृष्टि से सब प्रकार उन्नत तथा सम्पन्न होते हुए भी इनके राजनीतिक अधिकार कोई न थे। राजनीतिक अधिकारों की दृष्टि से इनकी वही हैसियत थी, जो कि एक नंगे भूखे किसान की थी। यही कारण है कि इनमें असन्तोष निरन्तर बढ़ रहा था। ये लोग अपनी वर्तमान दशा से असन्तोष अनुभव कर रहे थे। योग्यता और सम्पत्ति की दृष्टि से ये कुलीन श्रेणी के बराबरी के थे, पर अधिकारों की दृष्टि से इनकी कोई गिनती न थी। जब फ्रांस में राज्यक्रान्ति हुई, तो इन्हीं लोगों ने उसका सबसे अधिक साथ दिया। क्रान्ति में इन्हें स्पष्ट रूप से अपनी इस दुरवस्था के अन्त होने की सम्भावना नजर आ रही थी।

मजदूर श्रेणी—शहरों के मजदूरी पेशा लोगों की संख्या २५ लाख के लगभग थी। शहरों का व्यावसायिक जीवन उस समय या तो आर्थिक श्रेणियों (guilds) में संगठित

था, या छोटे-छोट कारखानो मे। जो मजदूर इन श्रेणियो के सदस्य थे, उनकी हालत बहुत बुरी न थी। पर श्रेणियो के कडे कायदे उनकी स्वतन्त्रता के मार्ग मे सबसे बडी रुकावट थे। जो मजदूर कारखानो मे काम करते थे, उनकी दशा बहुत खराब थी। उन्हे बहुत थोडा वेतन मिलता था, उन्हे बहुत अधिक समय तक काम करना पडता था। उनकी मेहनत बहुत ही थकानेवाली तथा कष्टप्रद होती थी। इन मजदूरो का किसी प्रकार का सगठन नही था। ये अपनी हालत से बहुत असन्तुष्ट थे। जब राज्यक्रान्ति हुई, तो यही मजदूरी पेशा लोग थे, जो बडे उत्साह के साथ सब तरह की अव्यवस्था और दगा मचाने के लिय उसमे शामिल हो गये। क्रान्ति मे इन्होने गवाना कुछ नही था। क्रान्ति मे इनकी मौज ही मौज थी। बिना पसीना बहाये क्रान्ति के समय ये उसमे बहुत अधिक प्राप्त कर सकते थे, जितना कि इन्हे मजदूरी से मिलता था।

किसान श्रेणी—देहातो के किसानो की सख्या दो करोड के लगभग थी। ये कुल जनता के अस्सी फी सदी थे। पर इनकी हालत सबसे अधिक खराब थी। ये ग्रामो मे कुलीन श्रेणी के जमीदारो की जागीरो मे निवास करते थे। आधे के करीब किसान अभी तक 'भूमिदास' व अर्द्धदास' थे, जो अपनी इच्छानुसार अपने मालिक की जमीन को छोड-कर कही बाहर नही जा सकते थे। इन्हे बाधित होकर अपने मालिक की जमीन को जोतना पडता था। पर शेष आधे किसान स्वतन्त्र थे। वे जहा चाहे आ-जा सकते थे, और जमीनो पर अपने हक को बेच व खरीद सकते थे। जमीनो पर इनका हक मान लिया गया था और बहुत से किसान अपनी जमीन के मालिक भी बन गये थे। परन्तु किसान चाहे अभी भूमि-दास की दशा मे हो, चाहे स्वतन्त्र हो, और चाहे अपनी जमीन के स्वय मालिक हो, विविध किस्म के टैक्सो से दबे हुए थे। ऐसे किसानो को ही लीजिये, जो अपनी जमीन के आप मालिक थे। राजा उनसे टैक्स लेता था, जमीदार उनसे नजराने लेता था और चर्च उनसे आमदनी का दसवा हिस्सा वसूल करता था।

यह नही समझना चाहिये कि फ्रास के किसानो की दशा इस समय मे असाधारण रूप से खराब थी। वास्तविकता तो यह है, कि उनकी दशा अन्य देशो के किसानो की दशा से बहुत काफी अच्छी थी। क्रान्ति के लिये यह जरूरी नही है कि लोग बहुत पददलित हो, बहुत अत्याचार-पीडित हो। जनता भयकर से भयकर अत्याचारो से सताई हुई रह सकती है, और हो सकता है कि उसको अपनी स्थिति से जरा भी असतोष न हो। हजारो साल तक मनुष्य जाति का अधिकाश भाग दास-प्रथा का शिकार रहा है। दास की दशा मे लोग भयकर से भयकर अत्याचारो को दैवी विधान समझकर सहन करते रहे है। क्रान्ति के लिये जनसाधारण की दशा ऐसी होनी चाहिये, कि वे अत्याचारो को अनुभव कर सके, अपनी दुर्दशा को समझ सके। फ्रास मे क्रान्ति सफलता से हो सकी, इसका कारण यह भी था, कि सर्वसाधारण लोगो की हालत इस हद तक उन्नत हो गई थी कि वे अपने ऊपर किये गये अत्याचारो को—अपनी दुर्दशा को अनुभव कर सकते थे। ज्यो-ज्यो उनकी दशा सुधरती गई, वे अपने जमीदारो को डाकू समझने लगे, चर्च के दशाश कर को लूट समझने लगे और राजा के अनुत्तरदायी शासन को अनुचित बताने लगे। यूरोपियन देशो में फ्रास ही सबसे पहले अत्याचारो के खिलाफ विद्रोह करने के लिये अग्रसर हुआ, इसका प्रधान

कारण यही था कि वहा के जनसाधारण की दशा पर्याप्त अच्छी थी।

यह सब होते हुए भी यह न भूलना चाहिये कि फ्रास के अधिकाश किसान भूखे नगे और गरीब थे। जमीदारो के शिकार के विशेषाधिकार जहा एक तरफ उनके खेतो को उजाडे बिना नही छोडते थे, वहा दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि आदि प्राकृतिक विपत्तिया भी उनकी तबाही करने मे किसी प्रकार की कसर नही रहने देती थी। फ्रास के किसानो पर विविध प्रकार के करो का बोझा इतना अधिक था, कि उनके पास यदि अपने गुजारे के लिये भी अनाज बच जावे, तो उसे वे बडी भारी गनीमत समझते थे।

व्यापार और व्यवसाय--फ्रास के व्यापार और व्यवसाय इस काल म धीरे-धीरे परन्तु निरन्तर उन्नति कर रहे थे। व्यापारिक क्रान्ति का प्रभाव यूरोप के सभी देशो मे दृष्टिगोचर होना शुरू हो गया था। उसके कारण फ्रास मे ऐसे लोगो की सख्या निरन्तर बढती जा रही थी, जो आन्तरिक और बाह्य व्यापार द्वारा धनी होते जा रहे थे। उस समय मे यान्त्रिक शक्ति से चलनेवाले यानो का आविष्कार नही हुआ था। इसलिये पेरिस से मार्सेय्य तक जाने मे ११ दिन लगते थे। जलमार्ग द्वारा पेरिस से ल्या तक १८ दिन लगते थे। पर इसमे सन्देह नही, कि जल और स्थल दोनो प्रकार के मार्गो को उन्नत करने का उस समय मे पर्याप्त प्रयत्न किया जा रहा था। सन् १७८८ मे ३६ हजार मील सडके बन चुकी थी। करोडो रुपया सडको और पुलो के लिये खर्च किया जा रहा था। इजीनियरो को तैयार करने के लिये फ्रास में एक विद्यालय की भी स्थापना हो चुकी थी। इन सब प्रयत्नो का परिणाम था, कि फ्रास का व्यापार काफी अच्छी गति मे निरन्तर उन्नति कर रहा था। परन्तु इस व्यापारिक उन्नति मे फ्रास का एक देश न होना सबसे बडी बाधा थी। जगह-जगह पर चुगी देना तथा माल को खोलना व्यापारियो के लिये बहुत कष्टप्रद था और इससे आन्तरिक व्यापार की उन्नति मे बहुत रुकावट उत्पन्न होती थी।

व्यापारिक क्रान्ति के कारण पुराने जमाने की आर्थिक श्रेणियो (गिल्ड) का स्थान कारखाने ले रहे थे। इन कारखानो मे पूँजीपतियो की अधीनता मे बहुत से मजदूर काम करते थे। आर्थिक उत्पत्ति का सारा काम ये मजदूर करते थे, पर व्यवसाय पर इनका कोई हक नही था, ये मशीनो की तरह पूँजीपति के हित के लिये काम करते थे। बदले मे इन्हे मजदूरी मिलती थी, जिसकी दर बहुत कम होती थी। इन कारखानो की वजह से एक इस प्रकार की श्रेणी उत्पन्न हो रही थी, जो शहरो मे रहती हुई, नई लहरो से जानकारी रखती हुई और आर्थिक उत्पत्ति का सारा कार्य करती हुई भी सर्वथा असहाय थी। इस श्रेणी के लोगो को अभी अपनी शक्ति और महत्व का ज्ञान नही हुआ था। पर फिर भी वे अपने हितो को कुछ-कुछ समझने लगे थे और इसी का परिणाम था, कि यद्यपि फ्रास की राज्यक्रान्ति राजनीतिक स्वाधीनता की स्थापना के लिये विशेष रूप से प्रयत्न कर रही थी तथापि आर्थिक समस्या की कुछ झलक उसमे विद्यमान थी।

राज्यक्राति से पूर्व का फ्रास--राज्यक्रान्ति से पूर्व फ्रास की जो दशा थी, उसका सक्षेप म इस प्रकार प्रकट कर सकते है —

(१) राजा स्वेच्छाचारी और निरकुश था। राजा की इच्छा ही कानून थी। जनता को नागरिक व राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त नही थी। भाषण, विचार व प्रेस की स्वत-

न्त्रता का अभाव था। राजा व उसके कृपापात्र व राजकर्मचारी स्वेच्छापूर्वक जिसे चाहे गिरफ्तार कर सकते थे। अदालतो मे निर्णय करते हुए ज्यूरी पद्धति सर्वथा अज्ञात थी। सारे देश के लिये एक कानून नही थे। प्रादेशिक दृष्टि से कानून पृथक्-पृथक् थे और साथ ही जनता की विविध श्रणियो के लिये भी। सरकारी टैक्सो की स्वीकृति पार्लियामेन्ट से नही ली जाती थी, राजा अपनी इच्छानुसार टैक्स लगाता था। पार्लियामेन्ट उस युग मे थी ही नही। सरकारी कर्मचारी जनता पर अत्याचार करते थे और रिश्वतखोरी द्वारा अपने को समृद्ध बनाने मे प्रयत्नशील रहते थे। पुराने समय से स्थानीय स्वशासन की जो कतिपय सस्थाएँ चली आती थी, उन्ह भी नष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा था। राज्य जनता से जो टैक्स वसूल करता था, उसे खर्च करने के लिये बाकायदा बजट बनाने की पद्धति उस समय नही थी। राजा व उसके मन्त्री उसका व्यय स्वेच्छापूर्वक करते थे।

(२) चर्च बहुत समृद्ध व शक्तिशाली था। निरकुश व स्वेच्छाचारी शासन मे वह राजा का प्रधान सहायक था। बडे महन्त और पादरी अपने धार्मिक कर्त्तव्यो की उपेक्षा कर राजदरबार की साजिशो मे भाग लिया करते थे और भोग-विलास मे जीवन व्यतीत करते थे। जनता को धार्मिक विश्वास व पूजा के सम्बन्ध मे स्वतन्त्रता प्राप्त नही थी। चर्च की इस विकृत दशा के कारण जनता में, विशेषतया विद्वानो और विचारको मे नास्तिकता का प्रसार हो रहा था।

(३) सामाजिक जीवन श्रेणिभेद पर आश्रित था। कुलीन श्रणी अब तक भी अनेक ऐसे विशेषाधिकारो का उपभोग करती थी, जो सामन्तपद्धति के अवशेष थे। मध्यश्रेणी के शिक्षित व सम्पन्न लोगो की सख्या निरन्तर बढ रही थी, पर राजनीतिक दृष्टि से उनका कोई महत्व नही था। देहातो की बहुसख्यक जनता अभी अर्द्ध-दास की दशा मे थी।

(४) शिक्षा चर्च के अधीन थी, इसलिये इस युग के शिक्षणालय ज्ञान व प्रकाश के केन्द्र न होकर पुरानी परिपाटी की साम्प्रदायिक शिक्षा को अधिक महत्व देते थे। बहु-सख्यक जनता अशिक्षित थी। पुस्तको को प्रकाशित करने के लिये सरकार से अनुमति लेनी पडती थी और इस कारण ज्ञान का विस्तार स्वतन्त्र रूप से नही हो सकता था।

(५) शहरो में निवास करनेवाली मध्यश्रेणि और मजदूर जनता में असन्तोष बहुत अधिक था। उनमें क्रान्ति की भावना निरन्तर जोर पकडती जा रही थी।

२ क्रान्ति की भावना का प्रादुर्भाव

अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे यूरोप के सभी देशो की लगभग वही हालत थी, जिसका हमने ऊपर वर्णन किया है। इस पुराने जमाने के खिलाफ सब से पहले राज्यक्रान्ति फ्रास मे हुई, इसका कारण यह नही है, कि फ्रास की दशा अन्य देशो से अधिक खराब थी। वस्तुत फ्रास की दशा अन्य देशो से कही अच्छी थी। क्रान्ति सबसे पहले फ्रास में हुई, इसका प्रधान कारण वह क्रान्ति की भावना है, जो अनेक विचारको द्वारा फ्रास मे उत्पन्न की जा रही थी। इस समय तक यूरोप के दिमाग पुराने अन्ध-विश्वासो की जकड से बहुत कुछ छुटकारा पा चुके थे। लोग अपने दिमागो से स्वच्छन्दतापूर्वक विचार करने लग गये थे। वे किसी बात पर केवल इसीलिये विश्वास नही कर लेते थे, क्योकि बहुत सी

सदियों से प्रारम्भ बने हुए मानते आये हैं या धार्मिक ग्रन्थ में वैसा लिखा है, अपितु प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कसकर सत्य या असत्य का फैसला करने की प्रवृत्ति उनमें पैदा हो चुकी थी। इसी का परिणाम था कि अनेक विचारक ऐसे उत्पन्न हुए, जिन्होंने मनुष्य जाति के पुराने मार्ग में चले आ रहे विश्वासों के आगे प्रश्नात्मक चिह्न लगाया और नये विचार जनता के सम्मुख पेश किये। फ्रांस में भी इसी प्रकार के बहुत से विचारक थे, जो क्रान्ति की भावना को जनता में उत्पन्न कर रहे थे। ये विचारक कौन थे और उनके क्या विचार थे, इस विषय पर हम संक्षेप में प्रकाश डालते हैं —

मान्तेस्क्यू—इसका काल सन् १६८९ से १७५५ तक है। वह स्वयं कुलीन श्रेणी का था। इसने राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त के खिलाफ आवाज उठाई। मान्तेस्क्यू का कहना था कि राजा ईश्वरीय विधान की कृति नहीं है, वह इतिहास की रचना है, घटनाओं के विकास ने राजसंस्था का प्रादुर्भाव किया है। मान्तेस्क्यू ने फ्रांस के शासन विधान के मुकाबले में इङ्गलैण्ड के शासन-विधान की बहुत अधिक प्रशंसा की। वह कहता था कि इङ्गलैण्ड का शासन संसार में सर्वोत्तम है, क्योंकि उसमें नागरिकों की स्वतन्त्रता सुरक्षित है। मान्तेस्क्यू ने ही सबसे पहले राज्य की विविध शक्तियों को पृथक्-पृथक् रखने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। राजशक्ति को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं—शासन, व्यवस्थापन (कानून-निर्माण) और न्याय। मान्तेस्क्यू का सिद्धान्त था, कि ये तीनों शक्तियाँ एक ही व्यक्ति के हाथ में न होकर पृथक्-पृथक् हाथों में रहनी चाहिये। यह सिद्धान्त राजशासन के प्रमुख सिद्धान्तों में से एक है और वर्तमान काल मे सब लोग इसे मानते है। पर अठारहवी सदी के लिये यह सिद्धान्त एक नई चीज थी। फ्रास के एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन में मान्तेस्क्यू का यह सिद्धान्त किसी भी तरह लागू नही हो सकता था।

वाल्तेयर—वाल्तेयर कुलीन श्रेणी का न होकर मध्य श्रेणी का था। अपने समय के अत्याचारो और अन्यायो का उसे प्रत्यक्ष अनुभव था। वह अच्छी तरह जानता था कि जब कोई कुलीन सरदार गुस्से मे आकर मारने पीटने लगता है, तो उसकी मार कितनी भयंकर होती है। वह अच्छी तरह समझता था, कि बास्तील की जेल मे एक वर्ष व्यतीत करना कितना कष्टप्रद होता है। कुछ समय तक वाल्तेयर राजदरबार मे रहा। पर वह देर तक वहा न रह सका। उसे फ्रास छोडकर प्रशिया और इङ्गलैण्ड भागना पडा। वाल्तेयर को पुराने जमाने के अन्याय और विषमता से प्रचण्ड घृणा थी। उसका विश्वास था, कि इस पुराने जमाने को जड से उखाड देने मे ही भला है। वह किसी किस्म के समझौते को सहन नही कर सकता था। वह कहता था, हम नवीन युग की आधारशिला तभी स्थापित कर सकेगे, जब कि पुराने जमाने के नाम को भी पृथिवी से मिटा दिया जावेगा। इसलिये पुराने जमाने के विरुद्ध प्रचार को ही उसने अपना मुख्य कार्य बनाया। उसने चर्च और राज्य—दोनो की बुराइयो के ऊपर जबर्दस्त हमले किये। उसकी शैली बहुत जोरदार थी, व्यङ्ग लिखने मे वह सिद्धहस्त था। वाल्तेयर लोकतन्त्र शासन का पक्षपाती नही था। वह कहा करता था कि सौ चूहो की बजाय एक शेर का शासन मुझे अधिक पसन्द है। यदि वह लोकतन्त्र शासन का पक्षपाती नही था, तो एकतन्त्र शासन का तो बडा भारी दुश्मन था

चर्च और राज्य के दोषो के विरुद्ध उसने जो पुस्तके लिखी, उनके कारण लोगो का ध्यान उनकी बुराइयो की तरफ आकृष्ट हुआ और लोग इन दोषो को नष्ट कर एक नवीन युग की कल्पना करने लगे।

रूसो—क्रान्ति की भावना को प्रादुर्भूत करने मे सबसे प्रधान स्थान रूसो का है। रूसो केवल दोष-प्रदर्शन का ही कार्य नही करता था, वह नवीन युग की कल्पना का विधायक था, वह मानव-समाज का एक नवीन सगठन चाहता था। उसके विचार मे मनुष्य जाति का भूतकाल बहुत ही उज्वल था। एक समय ऐसा था, जब सब लोग स्वतन्त्र थे, कोई किसी का दास न था, कोई पराधीन न था, सब एक दूसरे के बराबर थे। न उस समय मे लोगो को टैक्स देने पडते थे, न लडाइया होती थी, न कोई राजा था, न कोई प्रजा थी। वह सुवर्णीय समय सदा के लिये स्थिर न रह सका। जिसे आजकल 'सभ्यता' कहा जाता है, उसके प्रादुर्भाव के साथ मनुष्यो मे वैयक्तिक सम्पत्ति की उत्पत्ति हुई और इस वैयक्तिक सम्पत्ति के पैदा होते ही मनुष्यो मे लोभ, मोह आदि प्रकट होने लगे। वह सुवर्णीय युग समाप्त हो गया और विषमता, अत्याचार व पराधीनता का युग आ गया। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सामाजिक सविदा (Social Contract) का प्रारम्भ उसने इन शब्दो से किया है—

"मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न होते है, पर वह सर्वत्र जजीरो में जकडे हुए पाये जाते है। कुछ लोग अपने को दूसरो का मालिक समझते है, पर वस्तुत वे दूसरो की अपेक्षा भी अधिक गुलाम होते है। यह परिवर्तन कैसे आ गया ? मै नही जानता। इस परिवर्तन को किस प्रकार न्याय्य और समुचित कहा जा सकता है ? मेरा विश्वास है, कि इस प्रश्न का उत्तर मै दे सकता हूँ।"

रूसो ने इस प्रश्न का उत्तर यह दिया है, कि मानव समाज व राज्य मे जनता की इच्छा ही सर्वोपरि है, सरकार की न्याय्यता इसी जनता की इच्छा पर आश्रित है। जनता शासन करने के लिये किसी एक आदमी को—जैसे राजा—नियत कर सकती है, पर उस आदमी की सत्ता जनता की इच्छा पर ही निर्भर है। जनता अपनी इच्छा को कानून की शक्ल मे प्रकट करती है जिसके अनुसार राजा को शासन करना चाहिए।

ये विचार अठारहवी सदी के लोगो के लिये 'भयानक क्रान्तिकारी' विचार थे। जनता की इच्छा कानून है, राजा की इच्छा कानून नही है, यह भाव फ्रास की राज्यक्रान्ति में प्रधान रूप से काम कर रहा था। रूसो की विचार-सरणी के अनुसार राज्य का निर्माण जनता की आपस की सविदा (Contract–ठीका) द्वारा हुआ, अत राज्य मे लोक-मत ही सर्वोपरि होना चाहिये। वह शासन-पद्धति सर्वोत्तम है, जिसमे बहुमत के अनु-सार शासन होता है। रूसो के ये सिद्धान्त एक नये सदेश के समान सम्पूर्ण यूरोप मे व्याप्त हो गये। फ्रास के क्रान्तिकारियो के लिये रूसो के विचार 'धार्मिक-सिद्धान्तो' का सा महत्व रखते थे। रूसो ने केवल पुराने जमाने की आलोचना ही नही की, अपितु नवीन युग का चित्र भी लोगो के सम्मुख उपस्थित किया। लोगो ने अनुभव किया, कि यह नवीन चित्र बहुत ही सुन्दर है। वे उसके अनुयायी हो गये।

दिदरो—क्रान्ति की भावना को जन्म देनेवाले विचारको मे दिदरो भी बहुत महत्वपूर्ण

स्थान रखता है। दिदरो ने एक विशाल विश्वकोश को प्रकाशित करने की योजना की और इसके लिये बहुत से वैज्ञानिकों और विद्वानों को अपने साथ एकत्रित किया। इस विश्वकोश का उद्देश्य यह था, कि उस समय के सम्पूर्ण ज्ञान को सरल भाषा में उपस्थित किया जाय, ताकि पढ़े लिखे लोग सुगमता से उन सब विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें, जिन्हें जानने का उन्हें अन्यथा अवसर नहीं मिलता। दिदरो और उस के साथी किसी पर आक्षेप नहीं करना चाहते थे। उनका विचार था, कि जहां तक भी हो सके, दूसरों के विरोध से बचा जाय। परन्तु ज्ञान को चाहे कितने ही सरल स्वरूप में पेश किया जाय, वह बहुत से लोगों के लिये आपत्तिजनक हो ही जाता है। राज्य क्या चीज है, चर्च का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ, जनता के क्या अधिकार हैं—इत्यादि विषयों पर यदि अच्छी तरह प्रकाश डाला जाय, तो एकतन्त्र राजाओं व विशेषाधिकार प्राप्त पुरोहितों को यह सब किस प्रकार सह्य हो सकता है? वस्तुत, सत्य ज्ञान को सरल रूप में पेश करना ही अन्धविश्वास और अज्ञान पर आश्रित लोगों के लिये सब से अधिक कष्टप्रद होता है। विश्वकोश के इन लेखकों ने ज्ञान को जिस प्रकार जनता के सम्मुख उपस्थित करना प्रारम्भ किया, वह राजा तथा चर्च को सह्य न हो सका। इस विश्वकोश द्वारा जनता को विचार करने के लिये सामग्री मिल रही थी। वे इस ग्रन्थ को पढ़कर स्वयं यह सोच सकते थे, कि किस संस्था के क्या गुण व दोष हैं? इस प्रकार विश्वकोष की यह योजना क्रान्ति की भावना को प्रादुर्भूत करने में बहुत ही सहायक थी। १७५२ में इस विश्वकोश के प्रथम दो ग्रन्थ प्रकाशित हुए। प्रकाशित होते ही राजा के मन्त्रियों ने उद्घोषित किया, कि ये ग्रन्थ राजसत्ता तथा धर्म के खिलाफ हैं, अत इन्हें नहीं पढ़ना चाहिये। पर इस उद्घोषणा के बावजूद भी विश्वकोष के अन्य खण्ड बड़ी तेजी से प्रकाशित होते गये। ग्राहकों की संख्या बढ़ने लगी और विश्वकोष का प्रचार तेजी से होना शुरू हुआ। पर साथ ही विरोध भी बढ़ता गया। विरोधी कहने लगे, कि यह विश्वकोष मानव-समाज और धर्म की जड़ पर कुठाराघात करनेवाला है। राजशक्ति ने फिर हस्तक्षेप किया। विश्वकोष के अब तक सात खण्ड निकले थे। उनके विक्रय को रोक दिया गया और अगले खण्डों को प्रकाशित करने का लाइसेन्स वापिस ले लिया गया। पर दिदरो ने अपना काम बन्द नहीं किया। दस साल बाद उसने विश्वकोष के दस खण्ड और निकाले, और इस प्रकार अपने महान ग्रन्थ को पूर्ण कर दिया। सरकारी विरोध के होने पर भी विश्वकोश की बिक्री बन्द नहीं हुई।

इस विश्वकोश में एकतन्त्र राजसत्ता, धार्मिक असहिष्णुता, दास प्रथा, अन्याययुक्त टैक्स, सामन्तपद्धति, फौजदारी कानून आदि सभी विषयों पर विस्तार से विचार किया गया था, और इस विचार का ढंग इस प्रकार था कि इन सब के दोष पाठकों के सम्मुख आ जाते थे। क्रान्ति की भावना के लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी था।

क्वेसने—क्वेसने लुई १५वें का राजवैद्य था। इसने उन बहुत से विद्वानों को अपने पास आश्रय दिया था, जिन्हें 'अर्थशास्त्री' कहा जाता है। ये 'अर्थशास्त्री' व्यापार, व्यवसाय और आय-व्यय आदि आर्थिक विषयों पर विचार करते थे और अपने समय की आर्थिक बुराइयों का विरोधकर सुधार की योजनाएँ पेश करते थे। इनका प्रधान सिद्धान्त यह था, कि आर्थिक जगत् में 'खुला छोड दो' की नीति का अनुसरण करना चाहिये। प्रकृति के

अन्य क्षेत्रो की तरह आर्थिक क्षेत्र मे भी वहुत से स्वाभाविक नियम काम करते है। मनुष्य को चाहिये, कि उन्हे पता लगाये और उन्ही के अनुसार अपने कार्यों को मर्यादित करे। यह स्पष्ट है, कि मनुष्यो के आर्थिक कार्यों मे यदि राजा की तरफ से हस्तक्षेप होगा, तो वह प्राकृतिक नियमो के प्रतिकूल होगा। अत राजा को चाहिये, कि 'खुला छोड दो' की नीति का अनुसरण करे। उस समय के राजा आर्थिक क्षेत्र मे अनेक प्रकार से हस्तक्षप करते थे। उस समय मे व्यापार के मार्ग मे अनेक प्रकार की वाधाएँ थी, श्रमियो के मग-ठनो के लिये अनेक प्रकार की रुकावटे थी। 'अर्थशास्त्री' लोग इन सब का जोरदार तरीके से विरोध कर रहे थे।

छपी हुई पुस्तिकाएँ—इन सुप्रसिद्ध लेखको और विचारको के अतिरिक्त अन्य भी वहुत से लोग थे, जो अपने समय के प्रश्नो और समस्याओ पर गम्भीरता के साथ विचार करने लगे थे। इस काल मे समाचार-पत्र प्रकाशित नही होते थे। वर्तमान काल मे लोक-मत को उत्पन्न करने के तथा जनता को मार्ग प्रदर्शित करने का काम प्रधानतया समाचार-पत्र करते है। उस समय तक समाचार-पत्रो का प्रादुर्भाव नही हुआ था, पर छोटे-छोटे ट्रैक्ट व पुस्तिकाएँ वडे परिमाण मे छपने व प्रकाशित होने लग गई थी। छापाखाना यूरोप में प्रवेश कर चुका था, और हजारो की तादाद मे छपे हुए पर्चे फ्रास के वाजारो मे दृष्टि-गोचर होने लगे थे। ये पर्चे लोगो की आखे खोलने लग गये थे। लोग इन्हें शौक से पढते थे, और इन पर वहस करते थे। उन सव वातो पर विचार होना अव प्रारम्भ हो गया था, जिन्हें अव से पहिले विचार करने के लायक ही नही समझा जाता था। यह परिवर्तन क्रान्ति की भावना को उत्पन्न करने के लिये वडा भारी कार्य कर रहा था।

न्यायालयो के अधिकार—लोकमत इन छपे हुए पर्चो से केवल प्रकट ही नही होता था, अपितु शासन पर भी उसका प्रभाव पडना शुरू हो गया था। यद्यपि उस काल मे कोई ऐसी लोकसभाएँ न थी, जिनमें जनता के प्रतिनिधि लोकमत को प्रकट करने का अवसर प्राप्त कर सके, पर ऐसे साधनो का सर्वथा अभाव भी नही था, जिनसे राजा के स्वेच्छाचार को रोका जा सके। इस प्रकार के साधनो में सर्वप्रथम वे 'न्यायालय' थे, जिन्हें 'पार्लमा' कहा जाता था। इनका नाम ही इङ्गलैण्ड की 'पार्लियामेन्ट' से मिलता है, स्वरूप नही। ये न्यायालय सख्या मे १३ थे, जिनमें सर्वप्रथम पेरिस का न्यायालय था। इनमे केवल मुकदमो का निर्णय ही नही होता था। इनका यह भी दावा था, और यह दावा सर्वथा उपयुक्त था कि राजा जव किसी नये कानन का निर्माण करे, तो उसे पहले इनके पास रजिस्टर्ड करने के लिये भेजे, क्योकि जव तक कोई कानून इनके रजिस्टरो में दर्ज न होगा, तव तक ये उस का प्रयोग किस प्रकार कर सकेंगे? यद्यपि कानून वनाने का एक-मात्र हक राजा को ही था, पर यदि ये न्यायालय किसी कानून को पसन्द नही करते हो तो उसे अपने पास दर्ज करने के स्थान पर उसके विरुद्ध एक आवेदनपत्र राजा की सेवा मे भेज देते थे। इन आवेदनपत्रो को वे केवल राजा की सेवा में ही नही भेजते थे, अपितु उसकी हजारो प्रतिया छपवाकर जनता में वितीर्ण भी कर देते थे। इन छपी हुई प्रतियो से जनता को यह भलीभाति ज्ञात हो जाता था, कि पार्लमा ने राजा के किस कानून का और किन आधारो पर विरोध किया है।

जब राजा पार्लमा द्वारा भेजा हुआ इस प्रकार का आवेदनपत्र प्राप्त करता था, तब उसके सम्मुख तीन मार्ग होते थे। या तो वह पार्लमा के विरोध को स्वीकार कर अपने कानून को वापिस ले ले, या उसमे उचित परिवर्तन कर दे, या पार्लमा की बैठक का अपने सम्मुख बुलाकर आने दे। श्रीमुख से उसे हुक्म दे, कि वह उस कानून को रजिस्टर्ड कर ले। इस दशा मे पार्लमा के पास अन्य कोई मार्ग न था। उसे बाधित होकर उस कानून को अपने पास दर्ज करना होता था। अन्त मे राजा की इच्छा ही विजयी होती थी।

पर धीरे-धीरे पार्लमा ने अपनी शक्ति बढानी शुरू की। उसने यह भी दावा करना शुरू किया, कि उसकी इच्छा के विरुद्ध जो कानून दर्ज कराये जाते है, वे वस्तुत न्याय्य नही समझे जा सकते। न्याय करना तो पार्लमा के हाथ मे ही था, अत वे मजे मे किसी कानून की उपेक्षा कर सकते थे।

पार्लमा की इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ, कि सर्वसाधारण जनता राजकीय मामलो मे बहुत दिलचस्पी लेने लगी। लोकमत का निर्माण करने मे पार्लमा द्वारा प्रकाशित आवेदन-पत्रो ने बहुत बडा काम किया। लोग इस बात पर विचार और बहस करने लगे, कि राजा ने जो कानून जारी किये है, वे उचित है या नही, वे न्याय्य है या नहा।

अमेरिकन क्रान्ति का प्रभाव—फ्रास मे क्रान्ति की भावनाओ को उत्पन्न करने मे कुछ अन्य घटनाओ ने भी बहुत सहायता की। सन् १७७६ मे अमेरिकन स्वाधीनता का सग्राम लडा गया था। अमेरिका ने इङ्गलिश आधिपत्य के विरुद्ध स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। ब्रिटिश आधिपत्य से मुक्त होकर अमेरिका ने अपने देश मे लोकतन्त्र शासन का विकास किया। क्रान्ति की भावनाओ की इस स्थूल मूर्तिमान् विजय ने सब जगह क्रान्तिकारियो के हृदयो को उत्साह से भर दिया। अमेरिकन स्वाधीनता-सग्राम मे सहायता पहुचाने के लिये हजारो की सख्या मे फ्रासीसी युवक स्वयसेवक बनकर गये थे। ये लोग अपनी आखो से अपने स्वप्नो को क्रिया मे परिणत होते देखकर अपने देश मे वापिस आये थे। इनके हृदय स्फूर्ति से परिपूर्ण थे। पुराने जमाने का अन्त कर नवीन युग की स्थापना के लिये इन्हे बडा उत्साह था। अमेरिका की स्वाधीनता ने फ्रास मे भी नवीन भावनाएँ बडी तेजी से हिलोरे लेने लग गई थी।

उस समय के राजा इन नई प्रवृत्तियो से सर्वथा बेफिकर हो, यह बात नही थी। वे खुली हुई आखो से इन नवीन लहरो को देख रहे थे। पर इनके वास्तविक महत्व को समझने की क्षमता उनमे नही थी। उनका विचार था, कि कुछ मामूली से परिवर्तनो से काम चल जायगा। उन्होने अनेक सुधार किये भी। कुलीन और पुरोहित श्रेणियो के अधिकारो मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। कानूनो मे भी सशोधन हुआ। पर यह सब अपर्याप्त था। इन सबसे तो क्रान्ति की भावना और भी बलवती होती गई। इन थोडे से परिवर्तनो से जनता सन्तुष्ट कैसे हो सकती थी ? इन्होने तो उसकी हिम्मत को और भी अधिक बढा दिया। क्रान्ति की जो भावना विचारको द्वारा प्रारम्भ की गई थी, वह निरन्तर बढती ही गई और अन्त मे राज्यक्रान्ति के रूप मे फूट पडी। जिस समय सुधार तथा परिवर्तन जनता की माग व आवश्यकताओ से बहुत पीछे रह जाते है, उस समय क्रान्ति के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नही रहता।

३ सोलहवे लुई का शासन

सन् १७७४ मे पन्द्रहवे लुई की मृत्यु हुई। उसके शासनकाल मे जो असफल युद्ध लडे गये थे, उनका वर्णन करने की हमे आवश्यकता नही है। पर इतना ध्यान मे रखना चाहिये, कि इनसे फ्रास को कोई लाभ तो हुआ नही था, अपितु बहुत से प्रदेश उसकी अधीनता से निकल गये थे। इतना ही नही, इन युद्धो मे खर्च इतना अधिक हुआ था, कि फ्रास का राजकोश सर्वथा दिवालिया हो गया था। लोगो पर टैक्सो का बोझ पहले ही इतना अधिक था, कि नये टैक्स नही लगाये जा सकते थे। ऐसे समय मे राज्य को दिवालिया होने से बचाने का केवल एक ही उपाय था, वह यह कि खर्च मे कमी की जाय। पर फ्रास की सरकार का इस ओर जरा भी ध्यान नही था। उसे प्रति वर्ष सवा दो करोड के लगभग घाटा हो रहा था। राजकीय मामलो का सचालन दरबारी कर रहे थ, शासन मे वेश्याओ का बडा हाथ था। राजा के कृपापात्र खुले हाथ कोश को लुटा रहे थे। इस भयानक दशा मे फ्रास को अनाथ छोडकर १५वा लुई इस लोक से सदा के लिये विदा हो गया और उसकी जगह पर उसका लडका सोलहवा लुई राजगद्दी पर बैठा।

राजा १६वाँ लुई—राजसिहासन पर बैठते समय १६वे लुई की आयु केवल १६ वर्ष की थी। उसकी शिक्षा राजदरबार के विकृत वातावरण मे हुई थी। उसे शिकार खेलने तथा आमोद-प्रमोद मे मस्त रहने मे बडा आनन्द मिलता था। अपनी कमजोरियो तथा अयोग्यताओ के बावजूद भी वह एक भलामानस युवक था। उसका दिल अच्छा था। यदि वह अधिक उद्योगशील तथा मजबूत होता, तो अवश्य ही अपनी प्रजा का कुछ भला कर सकता।

उनकी रानी—लुई का विवाह मेरी आतोआत नाम की राजकुमारी से हुआ था। उस समय मे बहुत से विवाह राजनीतिक उद्देश्य से किये जाते थे। उस समय मे राजा और राजवशो के विवाह का मतलब था, राज्यो का विवाह या सन्धि। इसी किस्म की एक सन्धि—१७५६ मे हुई आस्ट्रिया और फ्रास की सन्धि—को सुदृढ करने के लिये आस्ट्रियन राजकुमारी का विवाह १६वे लुई से कर दिया गया था। यह मेरी आतोआत बहुत ही उथली तथा आराम-पसन्द स्त्री थी। उसे आचार-व्यवहार का कोई ख्याल नही था। राज दरबार के रीति-रिवाज तक उसकी दृष्टि मे कोई महत्व न रखते थे। उसके दिल मे जो आता, वही वह करती। राजा से उसे स्नेह नही था, वह उसके भारी तथा आलसी तन से घृणा करती थी। उसके बहुत से कृपापात्र तथा स्नेहपात्र थे। इन्हे सहायता देने के लिये वह जो चाहती थी, करती थी। उसे उचित अनुचित का कोई विचार न था।

तूर्जो (१७७४-१७७६)—राजगद्दी पर बैठते ही १६व लुई ने तूर्जो को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। यह तूर्जो फ्रास का सबसे योग्य अर्थशास्त्री था। वह केवल विद्वान् ही नही था, उसे शासन का क्रियात्मक अनुभव भी था। अपने कार्य को सँभालते ही तूर्जो ने सबसे पहले मितव्ययिता पर ध्यान दिया। वह अच्छी प्रकार अनुभव करता था कि फ्रास को दिवालिया होने से बचाने तथा टैक्स के बोझ को हलका करने का एकमात्र उपाय

मितव्ययिता है। मितव्ययिता का सबसे उत्तम ढग यही था, कि राजदरबार के महान् व्यय को कम किया जाय। दरबार मे भोग-विलास और शान-शौकत पर जो भारी रकम खर्च होती थी, उसमे कमी की जाय। पर खर्च को कम करना कोई हंसी खेल न था। राज दरबारी इसके लिये कब तैयार हो सकते थे? वे जो मौज उडा रहे थे, उसे छोडना उनके लिये कैसे सम्भव था? वे रात-दिन राजा के आसपास रहते थे। उठते-बैठते, खाते पीते हर समय वे राजा के साथ रहते थे। उन्हे ऐसे मौको की कमी न थी, जब वे उस आदमी के खिलाफ—जिसे वे न चाहते हो, राजा के कान भर सके। तूर्जा तो केवल काम काज के समय ही राजा से मिलता था। उसका प्रभाव इन दरबारियो के मुकाबले मे क्या हो सकता था? तूर्जा १७७४ मे अपने पद पर नियुक्त हुआ था। १७७६ मे उसे अपने पद से पृथक् होना पडा। बडे-बडे अमीर उमरा उसके इतने विरुद्ध हो गये थे, कि उसके लिये कार्य करना असम्भव हो गया। तूर्जा के सामने बडी-बडी योजनाएँ थी। वह राष्ट्रीय ऋण को सगठित करना चाहता था, वह बजट का निर्माण वैज्ञानिक ढग से करना चाहता था। वह टैक्स की पद्धति मे परिवर्तन करना चाहता था। वह व्यापार की विविध बाधाओ को हटाकर मुक्तद्वार वाणिज्य की नीति का अवलम्बन करना चाहता था। वह फ्रास मे लोकसभाओ की स्थापना करने के पक्ष मे था। पर उसकी सब योजनाएँ यूँ ही धरी रह गईं। तूर्जा राजा को अपनी योजनाओ को मनवाने मे असफल हुआ। लुई १६वा एक निर्बल व्यक्ति था, और वह अपने दरबारियो के विरोध में कोई कार्य करने का साहस नही कर सकता था। निराश होकर एक दिन तूर्जा ने राजा से यह कहा—"मालिक यह न भूलिये, कि निर्बलता के कारण ही चार्ल्स प्रथम (इङ्गलैण्ड का स्टुअर्ट राजा) का सिर धड से अलग किया गया था।" सोलहवे लुई ने इसका यह उत्तर दिया—"ठीक है, सारे देश में केवल दो व्यक्ति है, जिन्हे वस्तुत जनता से प्यार है, तूर्जो और मै।" पर उसने तूर्जो को अपने पद से बर्खास्त कर दिया। वह अपने दरबारियो के सम्मुख असहाय था।

नैकर—तूर्जो के बाद नैकर को प्रधान मन्त्री बनाया गया। यह नैकर स्विटजरलैंड का रहनेवाला था और पेरिस मे महाजनी करता था। उसने बजट के आय और व्यय को समुत्तुलित करने के लिये टैक्स के तरीके मे बहुत से सुधार प्रस्तावित किये और राष्ट्रीय ऋण लेने की योजना की। पर कुलीन और पुरोहित श्रेणियो को उसकी ये योजनाएँ पसन्द न आईं। असली बात तो यह है, कि सुधार के लिये जो भी वास्तविक और सच्चे प्रयत्न उस समय मे किये जा सकते थे, उनसे इन विशेषाधिकार प्राप्त श्रेणियो को कुछ न कुछ हानि अवश्य ही पहुँचती थी, परन्तु ये ऐसे किसी भी प्रस्ताव का स्वागत करने के लिये उद्यत न थे, जिससे उनपर जरा भी आच आती हो। इन लोगो ने सब तरह से नैकर का विरोध करना शुरू किया। उसे विदेशी कहकर बदनाम किया गया। उसे प्रोटेस्टेन्ट कहकर विधर्मी बताया गया। रानी ने उसको बर्खास्त करने के लिये बडा जोर दिया। परिणाम यह हुआ, कि नैकर को भी उसी राह पर जाना पडा, जिस पर तूर्जो गया था। पर जाने से पहले वह एक महत्त्वपूर्ण कार्य कर गया। उसने राजा को एक आवेदन पत्र लिखा, जिसमें फ्रास की आर्थिक दशा का ठीक-ठीक विवरण दिया गया था। इस आवेदन पत्र की अस्सी हजार प्रतिया छपाई गईं। जनता ने इसे बडे उत्साह तथा शौक से पढा। पहली बार उन्हें